खोज में उपलब्ध

हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों

का

सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण

[सन् १९३५-३७ ई०]

संपादक

स्वर्गीय डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल

(श्री दौलतराम जुयाल द्वारा अंग्रेजी से हिंदी में रूपांतरित)



उत्तर प्रदेशीय शासन के संरक्षण में काशी नागरीप्रचारिणी सभा
द्वारा संपादित और प्रकाशित

काशी

सं० २०१२ वि०

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मुद्रक—महताबराय, नागरी मुद्रण, काशी

प्रथम संस्करण, सं० २०१२, १००० प्रतियाँ

मूल्य 22)

विषय सूची



[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वक्तव्य

हमने त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२६-२८ ई०) में दिए गए वक्तव्य में बताया है कि सौर मिति २० श्रावण २०१० वि० (५ अगस्त, १९५३ ई०) की खोज उपसमिति ने उत्तर प्रदेशीय शासन की १००००) रु० की सहायता को--जो अप्रकाशित खोज विवरणों को छापने के निमित्त दी गई--दृष्टि में रख कर तीन हजार पृष्ठों में अधिक से अधिक विवरणों को छापने का निश्चय किया था। तदनुसार तीन जिल्दें (पहली, दूसरी और तीसरी) छप चुकी हैं जिनमें क्रमशः उक्त त्रैवार्षिक विवरण, चौदहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९२९-३१ ई०) और पन्द्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३२-३४ ई०) हैं। चौथी जिल्द पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें सन् १९३५-३७ ई० का त्रैवार्षिक विवरण है। इसका कलेवर बड़ा न होने से इसका संक्षेपीकरण नहीं हुआ है। इस विवरण को भूतपूर्व निरीक्षक स्व० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने खोज विभाग के साहित्यान्वेषकों की सहायता से अंग्रेजी में संपादन किया था। हिंदी में इसका रूपांतर खोज के वर्तमान साहित्यान्वेषक श्री दौलतराम जुयाल ने सावधानी पूर्वक किया है। रूपांतर में ग्रंथों एवं ग्रंथकारों का अनुक्रम अंग्रेजी लिपि के ही अनुसार है। इसको परिवर्तित न करने का कारण पूर्वोक्त त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण में पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र द्वारा लिखित पूर्वपीठिका में दिया गया है।

दीर्घ व्यवधान के पश्चात् खोज विवरण प्रकाशित हो रहे हैं। इसके लिये हम उत्तर प्रदेशीय शासन के आभारी हैं जिसकी सहायता से यह संभव हो सका है और जिसे इस कार्य के संरक्षण का श्रेय प्राप्त है। हमें पूर्ण आशा है कि राज्यशासन की सहायता से अप्रकाशित सभी विवरण शीघ्र ही छप जाएँगे।

मैं सभा के प्रधान मंत्री डा० राजबली पांडेय के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस कार्य में पूर्ण रुचि लेते हुए इस विवरण को नागरी मुद्रणालय में छपवाने का तुरंत प्रबंध कर दिया। मुद्रणालय के मैनेजर बाबू महताबराय जी का मैं विशेष अनुगृहीत हूं जिन्होंने प्रस्तुत विवरण को समय पर छापने के अतिरिक्त प्रूफ संशोधन के कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई है। खोज विभाग के अन्वेषक श्री दौलतराम जुयाल के परिश्रम और लगन से ही यह कार्य शीघ्र संपन्न हो सका है। उन्होंने ही इस विवरण का हिंदी में रूपांतर किया है। अतः वे विशेष धन्यवाद के भाजन हैं। खोज विभाग के सहायक लेखक श्री रामकृष्णशर्मा को भी उनकी सहायता के लिये धन्यवाद देता हूँ।

प्रस्तुत खोज विवरण की छपाई समाप्त हो जाने के साथ-साथ सरकारी अनुदान का रुपया भी समाप्त हो गया है। जैसा कि आरंभ में उल्लेख किया गया है, सरकारी सहायता से ३००० पृष्ठों में अधिक से अधिक खोज विवरण छापने का निश्चय हुआ था। परंतु हम केवल २५०० पृष्ठों में चार त्रैवार्षिक विवरणों (सन् १९२६–२८ ई०, १९२९–३१ ई०, १९३२–३४ ई०, १९३५–३७ ई०) को छापने में समर्थ हो सके हैं। प्रथम विवरण में ८४८ पृष्ठ, दूसरे में ६९६ पृष्ठ, तीसरे में ४५० पृष्ठ और चौथे में ५०६ पृष्ठ हैं। इस प्रकार ५०० पृष्ठों की कमी हो गई। छपाई में भी थोड़ा अतिरिक्त व्यय (१२६६॥≡)।) हो गया। इसका कारण यह है कि पहले प्रत्येक खोज विवरण की ३०० प्रतियाँ छापने का निश्चय किया गया था जिसके अनुसार प्रथम तीन विवरण छापे गए हैं। परंतु इनका मूल्य अधिक हो जाने के कारण प्रबंध समिति की अनुमति से उक्त निश्चय को बदल देना पड़ा और आगे के प्रत्येक विवरण की १००० प्रतियाँ छापने का निश्चय करना पड़ा। चौथा विवरण इसी दूसरे निश्चय के अनुसार छापा गया है। फलतः पृष्ठों का घटना और व्यय का बढ़ना स्वाभाविक था। व्यय का ब्यौरा दूसरे पृष्ठ पर दिया गया है।

काशी,
२९–९–५५

हजारीप्रसाद द्विवेदी
निरीक्षक, खोजविभाग

खोज के विवरणों (सन् १९२९-३७ई०) का प्रकाशन व्यय

सं० २०१०

७८५।-)॥। कागज
२७३८) छपाई
४॥।-) जिल्द मढ़ाई
२९८॥) वेतन
२०॥=) फुटकर

३८४७।)॥।

सं० २०११

१०५६।) कागज
२८८०) छपाई
६२३॥-)॥। जिल्द मढ़ाई
७३७) वेतन
१९≡) फुटकर

५३१६)॥।

सं० २०१२

३००) कागज
१६०।≡)॥ कागज का भुगतान करना है
७००) छपाई
२६१॥=)। वेतन
१।) फुटकर
६८०) जिल्द मढ़ाई बिल नहीं आया है

२१०३।-)॥।

११२६६॥≡)।

प्राचीन हस्तलिखित हिंदी-ग्रंथों की खोज का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण

(सन् १९३५, १९३६ और १९३७ ई०)

इस विवरण की कार्यावधि में खोज का कार्य मैनपुरी, इटावा, और मथुरा जिलों में हुआ। श्रीबाबूराम बित्थरिया पहले मैनपुरी में खोज का कार्य करते रहे और वहाँ का कार्य समाप्त हो जाने पर इटावा जिले में कार्य करने के लिए भेज दिए गए। इस वर्ष हमें श्री लक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी की मृत्यु के कारण खोज-कार्य में बड़ी क्षति उठानी पड़ी। श्रीलक्ष्मीप्रसाद त्रिवेदी एक उत्साही, होनहार और परिश्रमी कार्यकर्त्ता थे। वे मथुरा जिले में अन्वेषण का कार्य कर रहे थे। १ जुलाई सन् १९३६ को उनकी मृत्यु हुई। उनके स्थान पर श्री दौलतराम जुयाल नियुक्त किए गए।

इस अवधि में १०६३ हस्तलेखों के विवरण लिए गए। इनमें से ४९ ग्रंथों के विवरण पं० त्रिभुवनप्रसाद सहायक अध्यापक मिडिल स्कूल तिलोई जिला रायबरेली से प्राप्त हुए। शेष कार्य तीन वर्षों में इस प्रकार विभक्त है :—

सन् ईसवी				हस्तलिखित ग्रंथों की संख्या जिनके विवरण लिए गए।
१९३५	...	...	...	३६८
१९३६	...	...	...	३०८
१९३७	...	...	...	३३८

२८१ ग्रंथकारों के बनाए हुए ५१६ ग्रंथों की ६९२ प्रतियों की सूचनाएँ ली गई हैं। इसके अतिरिक्त ३७१ ग्रंथों के रचयिता अज्ञात हैं। १०७ ग्रंथकारों के रचे हुए २११ ग्रंथ खोज में बिलकुल नवीन हैं। इनमें ९० ऐसे नवीन ग्रंथ सम्मिलित हैं जिनके रचयिता तो ज्ञात थे किन्तु उनके इन ग्रंथों का पता न था।

नीचे दी हुई सारिणी द्वारा ग्रंथों और उनके रचयिताओं का शताब्दिक्रम दिखाया जाता है :—

शताब्दि	१४वीं	१५वीं	१६वीं	१७वीं	१८वीं	१९वीं	अज्ञात एवं संदिग्ध	योग
ग्रंथकार	१	३	३१	४६	७४	५५	७१	२८१
ग्रंथ	२	५०	१३३	९६	१७५	११०	४९७	१०६३

ग्रंथों का विषयानुसार विभाग नीचे की सारिणी में दिया जाता है:—

१—धार्मिक	...	१५९	१७—पिंगल	...	११
२—भक्ति तथा स्तोत्र	...	१२०	१८—कोश	...	११
३—कथा-कहानी	...	१००	१९—स्वरोदय	...	८
४—शृंगारिक	...	८४	२०—जीवनी	...	८
५—संगीत	...	८५	२१—कोकशास्त्र	...	४
६—दार्शनिक	...	८१	२२—कौतुक	...	४
७—ज्योतिष	...	६३	२३—नाटक	...	४
८—पौराणिक	...	५०	२४—गणित	...	३
९—काव्य	...	३९	२५—रत्नपरीक्षा	...	२
१०—उपदेश	...	३८	२६—बागवानी	...	२
११—वैद्यक	...	३८	२७—सामुद्रिक	...	२
१२—लीलाविहार	...	२९	२८—शालिहोत्र	...	१
१३—रमल और शकुन	...	२६	२९—रसायन शास्त्र	...	१
१४—अलंकार	...	२६	३०—वंशावली	...	१
१५—तंत्र-मंत्र	...	२१	३१—लोकोक्ति	...	१
१६—राजनीति	...	१४	३२—विविध	...	२१

नवीन लेखकों में से आलम (चाँदसुत), गंगाराम पुरोहित 'गंग', जीमन महाराज की माँ, नवीन कवि और लाल जी रंगखान मुख्य हैं।

१ आलम (चाँदसुत) का रचा हुआ "ग्रंथसंजीवन" नामक गद्य-पद्य-मिश्रित ग्रंथ प्रस्तुत खोज में नवीन मिला है। यह वैद्यक का ग्रंथ है। पहले नाड़ी परीक्षा का विषय दिया गया है। फिर औषधियाँ बताई गई हैं। औषधियाँ शिर, नेत्र, कर्ण, दंत आदि अंगों के रोगों के क्रम से लिखी गई हैं। यह किसी फारसी ग्रंथ का अनुवाद है, जैसा नीचे दिए हुए उद्धरण से ज्ञात होता है:—

वेद ग्रंथ हो फारसी, समझि रच्यौ भासान (भाषान)।
सहज अरथ परकट करौ, औषधि रोग समान ॥

ग्रंथकार ने भाषा में इसका अनुवाद करना उचित समझा, क्योंकि मुसलमान होकर भी उसने यह समझ लिया था कि जनसाधारण के लाभ की दृष्टि से भाषा में ही लिखे जाने पर उसका प्रचार हो सकेगा। उसने जायसी आदि कुछ मुसलमान कवियों की भाँति हिन्दी भाषा में ग्रंथ लिखते हुए भी अपने मजहब की ओर ध्यान देकर नबी आदि की वन्दना नहीं की, वरन् मंगलाचरण में बड़े आदर के साथ हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति की है:—

सिव सुत पद प्रनाम सदा विधि सिद्धि सरसुति मति देहु।
कुमति विनासहु सुमति मोहि देहु मंगल मुदित करेहु ॥

ग्रंथ बहुत ही अशुद्ध लिखा है।

विषय और भाषा के विचार से यह लेखक अपने नाम के अन्य कवियों से बिलकुल भिन्न जान पड़ता है। इस ग्रंथ में इसने अपने संबन्ध में केवल एक दोहा लिखा है:—

ग्रंथ संजीवन नाम धरि, देषहु ग्रंथ प्रकास।
सेहद (?) चाँदसुत आलम भाषा कियो निवास॥

संभवतः सेहद सैयद का बिगड़ा हुआ रूप है। इससे केवल यह ज्ञात हुआ कि ये किसी सैयद चाँद के पुत्र थे। इस ग्रन्थ के अन्त में इन्होंने कालिदास कवि का रचा हुआ निम्नलिखित छप्पय दिया है। ज्ञात नहीं यह कालिदास कौन है। यदि यह छप्पय 'हजारा' के रचयिता कालिदास का है तो आलम का रचनाकाल कालिदास के रचनाकाल संवत् १७४९ वि० (सन् १६९२ ई०) के बाद होना चाहिए :—

छप्पय

बालापन दस वर्ष बीस लौं बढ़त गनोजै।
छवी सोभा रहै तीस बुद्धि चालीस लहीजै॥
सुन्न दिढ़ वर्ष पचास साठि पर नैन जोति कमि।
सत्तरि पै षसै काम असी पर लाल जात रमि॥
बुद्धिनास नब्बे भए सतवीसे सबते रहित।
जेदावस्था नरन की कालिदास ऐसैं कहित॥

२ गंगाराम पुरोहित 'गंग' कृत 'हरिभक्तिप्रकाश' नामक एक बृहत् ग्रन्थ इस त्रिवर्षी में मिला है। 'गंग' जाति के जैमिनि गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण थे और मथुरा से पश्चिम की ओर ५० कोस दूर करेली नदी के तटपर लिवाली ग्राम इनका निवासस्थान था यह प्रदेश पचवार कहलाता है। नीचे लिखे पद्य में इन्होंने अपना परिचय दिया है: —

मथुरा ते पश्चिम दिसा बनत कोस पचास।
तहाँ पुनीत पचवार धर विप्रन को वरवास॥
श्रीपति जू श्रीजुत सदा वसत लसत तिहि ग्राम।
याही ते सबही कहत प्रगट लिवाली नाम॥
नदी करेली को जहाँ सुन्दर सुखद प्रवाह।
मज्जन करि पातक कटत देषत बढ़त उछाह॥
द्विज सनाढ मोचन भयो, हरिदासन को दास।
जैमुनि गोत्र सु कहतु तिहि किय हरिभक्तिप्रकास॥

ग्रंथ के रचनाकाल का पता निम्नलिखित दोहे से चलता है:—

हरिप्रबोधिनी को प्रगट भयो हरिभक्तिप्रकास।
सत्रह सै निन्यानवै गुरु दिन कातिक मास॥

इससे प्रकट होता है कि उक्त ग्रंथ संवत् १७९९ वि० (१७४२ ई०) के कार्तिक मास की हरिबोधिनी (एकादशी) गुरुवार को रचा गया था। ग्रन्थ के अन्त में लिखा है :—

"ग्रंथकर्ता प्रोहित गंगाराम जी तस्य पुत्र रामकृष्ण जी तस्य पुत्र लिपिकृत श्रीराम सहर दुर्गमध्य गृंथ समाप्तः लिषायतं महाराजि पुंडरीक श्रीजगन्नाथ जी सुभमस्तु श्रीरस्तु संवत् १८४७ वैसाष शुक्ल १० सनिं वासुरे श्री किसोरीरमण लेषक पाठकयो शुभं भूयात् ॥" इससे प्रकट होता है कि ग्रंथकार के पौत्र तथा रामकृष्ण के पुत्र श्रीराम ने सहर दुर्ग में श्री पुंडरीक जी श्री जगन्नाथ जी के लिये संवत् १८४७ वि० में प्रस्तुत प्रतिलिपि की। आज कल के मध्यप्रान्त में एक नगर है जो अंगरेजी में Drug लिखा जाता है। संभवतः यही दुर्ग नगर है जहाँ यह प्रतिलिपि हुई है। ग्रंथ के रचनाकाल और इस प्रतिलिपि के काल में ४८ वर्ष का अन्तर है जो दो पीढ़ियों के लिये ठीक है। इस ग्रंथ में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। कथाप्रसंग प्रणाली से तथा दृष्टान्तों और उदाहरणों द्वारा इस क्लिष्टविषय को रोचकता से समझाया है। ग्रन्थ १६ कलाओं में विभक्त है। दशावतार-वर्णनोपरांत कथा इस प्रकार आरंभ हुई है:--

हिमालय के दक्षिण प्रदेश की सुरम्य भूमि का अधिपति कोई जीवसेन राजा था। सुमति उसकी पटरानी थी। उसके पुत्र मनसेन का पाणिग्रहण संकल्पा और विकल्पा नाम की दो रूपसंपन्ना, सद्गुणशीला युवतियों के साथ हुआ था। इन सबका पारस्परिक प्रेम अप्रतिम था। एक दिन उक्त राजा ने शिकार खेलने के विचार से अपने साथियों समेत किसी वन में पहुँचकर एक हिरन का पीछा किया। हिरन उसे बहुत दूर एक भयानक वन में ले गया। उसके सब साथी बिछुड़ गए। आगे बढ़कर उसको विष्णुशर्मा नामक एक ऋषि का आश्रम मिला। वहाँ पहुँचकर उसने ऋषि से धर्मोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। ऋषि ने उसे आत्मज्ञान सुनाना आरंभ किया, कर्म और भक्ति का भेद बतलाया, भक्ति और ज्ञान का अन्तर समझाया। षट्दर्शन और बौद्ध, जैन तथा नास्तिक आदि मतों की एकता बताई। ईश्वर और जीव पर भिन्न भिन्न विचार प्रकट किए। तत्त्वादि निरूपण के अनन्तर मोह को तिरोहित कर ज्ञानचक्षु द्वारा निज स्वरूप जानने का विधान बताया। अन्त में वृन्दावन का वर्णन किया। कृष्ण की बाललीला की बातें भी सुनाईं तथा विशुद्ध भक्ति का प्राधान्य स्थापित किया। इस उपदेश से राजा अत्यन्त चमत्कृत हुआ और आनन्द-पूर्वक अपनी राजधानी को लौटा। घर आकर उसने यही उपदेश अपनी स्त्रियों तथा माता-पिता को भी सुनाया जिससे सबको आत्मज्ञान द्वारा शान्ति प्राप्त हुई। यही ग्रंथ का संक्षिप्त सार है।

यह ग्रंथ एक प्रकार से भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारावली का विश्वकोष है।

३ जीमन महाराज की माँ एक वैष्णव कवयित्री थीं। गोकुल के बालकृष्ण-मन्दिर के गुसाइयों के वंश में एक जीमन जी महाराज हुए। अनुसंधान से पता चला है कि उनका शरीरपात हुए ४० वर्ष के लगभग हुए होंगे। उन्हीं की माता का रचा हुआ 'बनयात्रा' नामक ग्रंथ इस खोज में मिला है। इसमें रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। इनकी भाषा में गुजराती का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। ग्रंथ खोज में नवीन है इसमें ब्रज के भिन्न-भिन्न स्थानों, गोकुल, मथुरा, गोबर्द्धन, कामवन, बरसाना, नन्दगाँव, माँठ और वृन्दावन

आदि की महिमा और पवित्रता का वर्णन किया गया है। इनका जीवनवृत्त तथा समय आदि कुछ भी ज्ञात न हो सका।

४ **नवीन कवि** इनका एक ग्रंथ 'सुधासागर' वा 'सुधारस' नाम का मिला है, जिसकी दो प्रतियों के विवरण लिए गए हैं। इसका रचनाकाल विक्रम संवत् १८९५ = १८३८ ई० है और लिपिकाल प्रथम प्रति में सं० १९१० वि० = १८५३ ई० दिया है तथा दूसरी प्रति में, जो अपूर्ण है, सं० १८९६ वि० = १८३८ ई०। लेखक का असली नाम गोपाल सिंह था। ये जाति के कायस्थ और जयपुर के ईश कवि के शिष्य थेः—

श्री गुरु ईश प्रवीन कृपा करि दीन को छाप नवीन की दीनी

गुरु की आज्ञा से ही इन्होंने अपना उपनाम 'नवीन' रखा था। ये नाभा राज्य के मालवेन्द्र महाराज जसवन्त सिंह तथा उनके पुत्र देवेन्द्र के आश्रित थे और कुछ दिन तक ग्वालियर में भी रहे थे। इनका 'सुधासागर' बृहद् ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति है, जिसमें शृंगार, ब्रजरसरीति, रामसमाज वर्णन, नीति और भक्ति, दानलीला (इस लीला में अनेक कवियों के नाम श्लिष्ट पदों से व्यक्त किए गए हैं), गोपियों और कृष्ण के प्रश्नोत्तर, विविध जानवरों तथा पक्षियों की लड़ाइयों का वर्णन और नवरस आदि अनेक विषयों पर की गई रचनाओं का संग्रह है। विवरण कर्त्ता के कहने के अनुसार 'गोपियों और कृष्ण के प्रश्नोत्तर' में नवीन की ही रचना है। इसमें २६६ दोहे, २२९५ सवैये तथा कवित्त, ३५ छप्पय, ३ कुंडलियाँ, १० बरवै, और ४ चौपाइयाँ हैं और कुल २५७ कवियों की कविताएँ हैं। ग्रन्थ-निर्माणकाल का दोहा यह हैः—

प्रभु सिधि कवि रस तत्त्व गिन, संवत् सर अवरेषि।
अर्जुन शुक्ला पंचमी, सोम सुधासर लेषि॥

इससे ग्रंथ का निर्माणकाल फाल्गुन शुक्ला पंचमी चंद्रवार संवत् १८९५ वि० = १८३८ ई० निकलता है।

५ **लालजी रंगखान** नाम के एक नवीन मुसलमान कवि का पता इस त्रिवर्षी में चला है, जिसके बनाए हुए एक अपूर्ण नाम के ग्रंथ 'सुधा' के विवरण लिए गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ग्रंथ के प्रारम्भ में पत्रों के लुप्त हो जाने के कारण विवरणकार को ग्रंथ का पूरा नाम मालूम न हो सका इसलिये पत्रों के सिरों पर ग्रंथ का जो आधा नाम लिखा रहता है वही दे दिया है।

इस कवि ने जयपुर नरेश सवाई महाराजा महेन्द्रप्रताप सिंह को अपना आश्रयदाता बताया है, जैसा कि नीचे के उद्धरण से स्पष्ट हैः—

महेन्द्र प्रताप सिंह कहे रंगषान ऐसे
नीति रीति रावरी सी आप में बषाने हें।

× × × ×

कूरम सवाई माधोसिंह के प्रतापसिंह
अति ही प्रवीनों पाचों भाव ही उमंग है॥

उक्त महाराज बड़े साहित्यानुरागी थे। उनके आश्रय में अन्तराय, पद्माकर और रामनारायण (रसरासि) नाम के कवि रहते थे। वे स्वयं भी एक अच्छे कवि थे। ब्रजनिधि ग्रन्थावली के अनुसार उनका जन्मकाल पौष वदि दोज संवत् १८२१ वि० = १७६४ ई० है। वे पन्द्रह वर्ष की अवस्था (संवत् १८३६ वि० = १७७९ ई०) में राजगद्दी पर बैठे थे और संवत् १८६० वि० = १८०३ ई० में परलोकवासी हुए।

ग्रन्थ के अन्त में काल-संबन्धी एक दोहा दिया है जो इस प्रकार है:—

संवत एकै आठ सत चौके बादी जानि।
मास अषाढ़ जु दोजे वदि वासर रवि पहिचानि॥

यदि वादी का अर्थ वाद कर देना याने निकाल देना लिया जाय तो समय संवत् १८०–४ = १७९६ वि० = १७३९ ई० निकलता है और यदि सत को सात और चौके को चार मानें तो संवत् १८७४ वि० = १८१७ ई० होता है। किन्तु ये दोनों ही संवत् ग्रंथकार के आश्रयदाता के जीवनकाल से मेल नहीं खाते। अतएव इनमें से कोई भी रचनाकाल नहीं माना जा सकता। हाँ, केवल सं० १८७४ वि० लिपिकाल हो सकता है, किन्तु विवरण की प्रारम्भिक खानापुरी करते हुए विवरणकार ने लिपिकाल संवत् १८४७ वि० दिया है। यह किस आधार पर दिया है, कुछ मालूम नहीं होता। अतएव लिपिकाल का विषय भी संदिग्ध ही रह जाता है।

लेखक ने एक दोहा अपने विषय में भी लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि इनका वास्तविक नाम लालजी था, और ये ललन भी कहलाते थे। मुसलमान होने की सूचना देने के लिये इन्होंने अपने नाम के आगे 'रंगखान' जोड़ा था:—

असल नाम है लालजी ललन अरुन पुनि येहु।
मुसलमान के जानिबे रंगखान कहि देहु॥

ज्ञात लेखकों में से जिनके नए ग्रंथ प्रकाश में आए हैं, अलबेली अली, आलम, गंगाबाई या विट्ठल-गिरधरन, दास, परशुराम, बनारसी, मुनिमानजी और हजारीदास मुख्य हैं।

६ अलबेली अली रचित तीन ग्रंथों, 'अलबेली अली ग्रंथावली', 'गुसाईं जी का मंगल' और 'विनय कुंडलिया' के विवरण लिए गए हैं। पहले में 'प्रियाजी को मंगल', 'राधा अष्टक' और 'साँझ' नाम के तीन छोटे-छोटे ग्रन्थ संगृहीत हैं जिनमें राधा जी के स्वरूप-शृंगार और स्तवन सम्बन्धी गीतों का चयन है। दूसरे में ग्रंथकार ने अपने गुरु वंशीअली के सम्बन्ध में प्रेम तथा शृंगारपूर्ण बधाई के गीतों का संग्रह किया है और तीसरे में युगलमूर्ति का ध्यान तथा प्रार्थना है। अन्तिम ग्रन्थ इनका ही रचा हुआ है, इसमें सन्देह है। कई कुंडलियों में इनके नाम की छाप देखकर ही अन्वेषक ने उसे इनका रचा हुआ मान लिया है। साथ ही ऐसा मानने के विरोध में कोई प्रमाण भी नहीं है।

विनोदकारों ने लिखा है—"इनकी कविता भक्तमाल में है और ३०० पद गोविन्द गिल्लाभाई के पुस्तकालय में हैं। रसमंजरी में भी इनके कवित्त हैं।" (दे० मि० वि० सं०

१३/६२१) । परन्तु अब तक इनका स्वतंत्र ग्रंथ न तो शोध ही में मिला था और न हिन्दी-साहित्य के किसी इतिहास-ग्रंथ में ही ऐसे किसी ग्रंथ का उल्लेख हुआ है । इन ग्रन्थों में रचना-काल और लिपिकाल नहीं दिया गया है । परन्तु इनके गुरु वंशीअली का रचना-काल सन् १७२३ ई० के लगभग माना गया है, (दे० खो० विवरण १६१२–१४ ई० सं० १६ और मिश्रबन्धुविनोद सं० ६८८) । संभवतः यही समय इनकी रचना का भी होगा । ये कवि स्त्री थे या पुरुष ? यह निश्चयपूर्वक कहना तो कठिन है, परन्तु रचना को देखते हुए इनके सखी संप्रदाय के पुरुष कवि होने की ही संभावना होती है । ऐसा भी जान पड़ता है कि अलबेली अली शिष्य परंपरा में बहुत पीछे न होकर स्वयं वंशीअली से ही दीक्षित उनके समकालीन थे । वे स्वयं लिखते हैं:—

जब ते वंशीअलि पद पाए,
श्री वृन्दावन कुंज केलि कल लूटत सुख मनभाए ।
रूप सुधा मादिक पद पीवे डोलत घूम घुमाए ॥
अलबेली अलि सबते निज कर स्यामजू अपनाए ॥

अर्थात्—जब से मैंने वंशीअली के चरण प्राप्त किए (उनका शिष्य हुआ) तभी से मुझको वृन्दावन के कुंजों में कल-केलि लूटने को मिली, आदि ।

इनकी कविता अत्यन्त सरस एवं भावपूर्ण है ।

७ आलम नाम के दो कवि हुए हैं—एक सुप्रसिद्ध शेख रँगरेजिन का प्रेमी आलम, जो मुगल सम्राट् अकबर के समय में हुआ और जिसने माधवानल कामकंदला और स्यामसनेही या रुक्मिणी ब्याहलो नामक ग्रंथों की रचनाएँ कीं । दूसरा आलम औरंगजेब के द्वितीय पुत्र मुअज्जम के आश्रित था, जिसकी रचना का एक उदाहरण सरोजकार ने अपने ग्रन्थ में दिया है । इस त्रिवर्षी में इसी दूसरे आलम के बनाए हुए 'सुदामाचरित्र' के विवरण लिए गए हैं । यह खड़ी बोली में लिखा गया है और इसमें अरबी तथा फारसी के शब्दों का प्रयोग भी काफी हुआ है । नीचे हम इनकी सरोजवाली कविता तथा 'सुदामा चरित्र' से कुछ उद्धरण देते हैं, जिससे तुलना करने में सरलता होगी ।

१—सरोज में दी हुई कविता

जानत औलि किताबनि को जे निसाफ के माने कहे हैं ते चीन्हें ।
पालत हौ इत आलम को उत नीके रहीम के नाम को लीन्हें ॥
मोजमशाह तुम्हें करता करिवे कौ दिलीपति हैं बर दीन्हें ।
काबिल हैं ते रहैं कितहूँ कहूँ काबिल होत हैं काबिल कीन्हें ॥

२—सुदामाचरित्र से उद्धृत कविता

ओंकार है अलष निरंजन कैसा कृष्ण गोबर्धनधारी ।
नादर सबके कादर सिर पै सुन्दर तन घनश्याम मुरारी ॥

सूरति खूब अजायब मूरति आलम के महबूब बिहारी ।
जगमग जग है जमाल जगत में हिलमिल दिल की जय बलिहारी ॥
सत सुनाम अस बहुत बंदगी जो इसको नीके कर जाने ।
ज्यों ज्यों याद करे वह बंदा त्यों त्यों वह नीके कर जाने ॥
देषो कर्म कियो बामन ने जो कछु दिया सो मनमें जाने ।
ऐसे कौन बिना गिरिधारी जो गरीब के दुष को भाने ॥

× × × ×

केते रतन पारखी परखे जेवर कितिक सुनार गढ़त हैं ।
केते बाजीगर और नचुआ केते नचुआ नाच करत हैं ॥
केते बाजार चहुँ खंड दीसे केतिक अखारन मल्ल लरत हैं ।
केते जमींदार हैं ठाढ़े अपनी अपनी अरज करत हैं ॥

दोहा

गदागीर रषम सुखन सुदामा, श्रीकृष्णचन्द्र को मार (?यार) ।
आलम में प्रगटत भए सब राजन सिरदार ॥

सरोज और सुदामा चरित्र दोनों ही की रचना में विदेशी शब्दों का प्रायः एक सा व्यवहार है । आलम की प्रवृत्ति अपनी छाप को बहुधा श्लिष्ट पद के रूप में रखने की है । दोनों स्थानों की कविता समान है । इन दोनों उदाहरणों में जो थोड़ा सा अन्तर दिखाई देता है उसका कारण छन्द की एवं भाषा की विभिन्नता है । सरोज के उदाहरण का झुकाव ब्रजभाषा की ओर और सुदामाचरित्र के छन्दों का खड़ी बोली की ओर है, परन्तु सुदामा चरित्र में भी आगे चलकर ब्रजभाषा का पुट आ गया है जैसा दोहे के ऊपरवाले छन्द से प्रकट है । इस आलम का समय १६९६ ई० के लगभग माना गया है । प्रस्तुत ग्रंथ का रचनाकाल अज्ञात है । लिपिकाल सन् १८१९ ई० है ।

८ **गंगाबाई या विट्ठल गिरिधरन** रचित पदों के एक संग्रह के विवरण इस त्रिवर्षी में पहली ही बार लिए गए हैं । रचना-काल इस संग्रह में नहीं दिया गया है, किन्तु लिपिकाल १७९३ ई० है । गंगाबाई का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था । ये महावन में रहती थीं । सुप्रसिद्ध वैष्णवाचार्य गुसाईं विट्ठलनाथजी इनके गुरु थे । वैष्णवों की वार्ताओं में इनका नाम आया है । इनकी कविता सजीव और मर्मस्पर्शिनी है । पदों के संग्रहों में ऐसे बहुत से पद मिलते हैं जिनमें दो नामों--बिट्ठल और बिट्ठल गिरिधरन—की छाप पाई जाती है । ये दोनों पृथक्-पृथक् कवि हैं । जिन गीतों में बिट्ठल गिरिधरन की छाप है वे सभी गंगाबाई के रचे हुए हैं ।

इनका रचनाकाल, स्वामी बिट्ठलनाथ की शिष्या होने के कारण, सं० १६०७ वि० (१५५० ई०) के लगभग होना निश्चित है; क्योंकि स्वामी जी इस समय वर्तमान थे, (दे० खोज विवरण १९०५ ई० संख्या ६१; सन् १९०६-०८ ई० संख्या २०० और सन् १९०९-११ ई० संख्या ३२) ।

९ दास का बनाया हुआ 'रघुनाथ नाटक' नामक ग्रंथ इस त्रिवर्षी में नवीन मिला है, किन्तु दुर्भाग्यवश वह खंडित है। फलस्वरूप कवि के सम्बन्ध में उससे कुछ भी ज्ञात नहीं होता और न उसके रचनाकाल एवं लिपिकाल का पता चलता है। सुप्रसिद्ध भिखारी दास उपनाम 'दास' से प्रस्तुत दास अभिन्न जान पड़ते हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो दास की रचनाशैली इस 'रघुनाथ नाटक' की रचनाशैली से मिलती है, दूसरे दास की रचनाओं में जिस प्रकार प्रायः श्रीपति इत्यादि उनके पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं के पद के पद लिए गए देखे जाते हैं उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ में भी महाकवि देव के सुप्रसिद्ध--

एक ओर विजन डुलावति है चतुरनारि--

आदि छन्द की पूरी छाया मौजूद है।

'दास' नाम की छाप केवल ग्रंथ के अन्त में दी गई है। संभवतः नाटक का ग्रन्थ होने के कारण उसमें कई भद्दी भूलें हो गई हैं, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों पर ध्यान देने से पता चलता है।

१० परशुराम के रचे हुए १३ ग्रंथों के विवरण प्रस्तुत खोज में पहली ही बार लिए गए हैं। इनमें से चार ग्रंथ 'तिथिलीला', 'बारलीला', 'बावनी लीला' और 'विप्रम-तीसी' विषय और नाम-साम्य के विचार से कबीर के कहे जानेवाले इन्हीं नामों के ग्रंथों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इनमें भी अन्तिम ग्रंथ तो बहुत कुछ मिलता है।

'तिथिलीला' में कबीर और परशुराम दोनों ही ने अमावस से लेकर पूर्णिमा तक संतोचित विचारों को प्रकट किया है, कबीर कहते हैं, "कबीर मावस मन में गरब न करना। गुरु प्रताप दूतर तरना ॥ पड़िवा प्रीति पीव सूं लागी। मंसा मिथ्या तव संक्या भागी ॥" परशुराम का कथन है, "मावस मैं तैं दोऊ डारी। मन मंगल अन्तर लै सारी ॥ पड़िवा परमतंत ल्यौ लाई। मन कूं पकरि प्रेम रस पाई।" कबीर ने मावस में गर्व या अहं भाव को मिटाया है। परशुराम ने भी "मैं" और "तू" का बाध कर इसी भाव को सम्मुख रखा है। पड़िवा को कबीर मन पर शासन करके पीव से प्रीति स्थिर करते हैं और परशुराम भी मन को वश में करके परमतंत रूपी प्रियतम से ही लौ लगाते हैं। 'बार' ग्रंथ में कबीर लिखते हैं, "कबीर बार बार हरि का गुन गाऊँ। गुरु गमि भेद सहर का पाऊँ। सोमवार ससि अमृत झरै। पीवत वेगि तवै निस्तरै।" इसी प्रकार परशुराम अपनी 'बारलीला' में कहते हैं, "बार बार निज राम सँभारूँ। रतन जनम अमवाद न हारूँ ॥ सोमसुरति करि सीतल बारा। देष सकल ब्यापक ब्यौहारा ॥ सोन बिसरि जाको निस्तारा। समदृष्टि होइ सुमरि अपारा।" दोनों ही कवि नाम का सुमिरन करते हैं। कबीर सोमवार को जो अमृत झरता है, उसे शीघ्र पीने पर निस्तार होना कहते हैं और परशुराम सोम को सुरति का शीतल वार कहकर समदृष्टि होकर उसको (नाम को) न बिसारने में ही निस्तार बतलाते हैं। 'बावनी' में कबीर ने उल्लेख किया है, "बावन अक्षर लोक त्रिय, सब कछु इनहीं माहिं। ये सब षिरि षिरि जाहिगे, सो अषिर इनही में नाहिं ॥ तुरक तरीकत जानिए, हिन्दू वेद पुरान। मन समझन के कारनै, कछु एक पढ़ीये ग्यान ॥" और परशुराम लिखते

हैं, "श्री गुरु दीपक उर धरैं, तब होय प्रकट प्रकास। अक्षर परचौ प्रेम करि, ज्यौं सकल तिमिरि को नास ॥ सत संगति सँग अनुसरै, रहैं सदा निरभार। बावन पढ़ै बनाय करि, वदि सोइ आकार ॥" अर्थात् कबीर इन बावन अक्षरों को लोकत्रय कहकर सब कुछ इन्हीं में बताते हैं। इसी प्रकार परशुराम भी इनको सकल तिमिर का हर्त्ता कहकर उससे 'परचौ' करने का उपदेश देते हैं। इस प्रकार इन ग्रंथों में अनेक स्थलों पर भावसाम्य है। परन्तु कबीर के नाम से 'विप्रमतीसी' नाम का जो ग्रंथ मिलता है वह परशुराम की 'विप्रमतीसी' से सर्वथा अभिन्न है।

विप्रमतीसी का मिलान

कबीर	परशुराम
सुनहु सबन मिलि विप्रमतीसी।	सबको सुणियो विप्रमतीसी।
हरि बिन बूड़े नाव भरीसी ॥	हरि बिन बूड़े नाव भरीसी ॥
ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै।	वांमण छै पणि ब्रह्म न जाणै।
घर मह जगत परिग्रह आनै ॥	घर में जगत पतिग्रह आणै ॥
जे सिरजा तेहि नहिं पहिचानै।	जिन सिरजे ताकू न पिछाणै।
कर्म भर्म लै बैठि बषानै ॥	करम भरम कू बैठि वषाणै ॥
ग्रहण अमावस सायर दूजा।	ग्रहण अमावस थाचर दूजा।
स्वस्तिक पात प्रयोजन पूजा ॥	सूत गया तव प्रोजन पूजा ॥
प्रेत कनक मुष अन्तर वासा।	प्रेत कनक मुष अन्तरिवासा।
आहुति सत्य होम कै आशा ॥	सती अऊत होम की आसा ॥
उत्तम कुल कलि मोहिं कहावै।	कुल उत्तम कलि माहि कहावै।
फिरि फिरि मध्यम कर्म करावै ॥	फिर फिर मधम कर्म कमावै ॥
× × ×	× × ×
हंस देह तजि न्यारा होई।	हंस देह तजि नयरा होई।
ताकी जाति कहौ धूँ कोई ॥	ताकर जाति कहऊँ दहुँ कोई ॥
श्वेत श्याम की राता पियरा।	× × ×
अवर्ण वर्ण की ताता सियरा ॥	स्याह सुपेत कि राता पीला।
हिन्दू तुरक की बूढ़ा बारा।	अवरण वरण कि ताता सीला ॥
नारि पुरुष मिलि करहु बिचारा ॥	अगम अगोचर कहत न आवै।
कहिये काहि कहा नहिं माना।	अपणै अपणै सहज समावै ॥
दास कबीर सोई पै जाना ॥	समझि न परै कही को मानै।
	परसादास होइ सोइ जानै ॥

ऊपर के उद्धरणों पर ध्यान देने से स्पष्ट विदित होता है कि थोड़े से हेर-फेर के साथ दोनों ग्रंथ एक ही हैं। अतएव इनका रचयिता भी एक ही होना चाहिए। दोनों ग्रंथ-कारों ने अपना अपना नाम भी दे दिया है जिससे स्पष्ट है कि दोनों ही उस पर अपना

अधिकार प्रकट करते हैं। परशुराम का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। वे कबीर से पहले के हैं या पीछे के, यह भी ज्ञात नहीं। इसलिये पूर्ववर्ती और परवर्ती सम्बन्ध से भी इस विषय में कोई निर्णय नहीं हो सकता। परन्तु इतना निश्चय है कि औरों की भी कुछ रचनाएँ कबीर के नाम से चल पड़ी हैं। कबीर के नाम से प्रसिद्ध कुछ रचना स्वामी सुखानन्द और बखना जी के नाम से मिलती है। कबीर जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति की रचना दूसरों के नाम से चल पड़ेगी, यह कम संभव है। अधिक संभव यही है कि कम प्रसिद्ध लोगों की रचनाएँ कबीर के नाम से चल पड़ी हों और उनके कर्ताओं को लोग भूल गए हों।

परशुराम के ग्रन्थों में न तो निर्माणकाल दिया है और न लिपिकाल ही, जीवन-वृत्त भी इनका अज्ञात है। अनुसंधान से ऐसा विदित होता है कि ये निंबार्क संप्रदाय के थे। इनके कुछ ग्रंथों के विवरण पहले भी लिए जा चुके हैं जिनके अनुसार ये श्रीभट्ट और हरिव्यासदेव जी के शिष्य थे और संवत् १६६० वि० या सन् १६०३ ई० में उत्पन्न हुए थे, (दे० खोज विवरण सन् १९०० ई०, सं० ७५ और दे० खोज विवरण सन् १९३२-३४ ई०, सं० १६३)। प्रस्तुत खोज में मिले हुए 'निज रूप लीला' में भी इन्होंने हरिव्यासदेव का नामोल्लेख किया है:—

हरि सुमिरण निर्मल निर्वाण। जा घट बसैं सन्ति सोइ प्राण ॥
परसराम प्रभुविण सब काँच। श्री हरिव्यास देव हरि साँच ॥

इनके जितने ग्रंथ इस शोध में मिले हैं उनकी भाषा राजस्थानीपन लिए हुए है। इसके दो कारण हो सकते हैं, या तो लेखक ही राजस्थानी था या लिपिकार वहाँ का रहनेवाला हो।

ये निर्गुणवादी और सगुणवादी, दोनों विचार-परंपराओं से प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। इन्होंने कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म पर भी कविताएँ की हैं और कृष्णभक्तों की तरह सगुणोपासना पर भी कही हैं। इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं:—

निर्गुण भक्तिकाव्य

अवधू उलटी रामकहाणी।
उलट्या नीर पवन कू सोषै यह गति विरलै जाणी ॥ टेक ॥
पाँचू उलटि एक घरि आया तब सर पीवण लागा।
सुरही सिंघ एक सँग देष्या दानी कूँ सर लागा ॥ १ ॥
मिरगहि उलटि पारधि वेध्या झीवर मछि वसेषा।
उलट्या पावक नीर बुझावै संगिम जारी सुवा देष्या ॥ २ ॥
नीचै वरष ऊँच कूँ चढ़ीया वाज वटेरी दाव्या।
ऐसा अणगत हुआ तमासा छावै साथा सोई छाव्या ॥ ३ ॥
ऐसी कथै कहै सब कोई जो घर तैं सो सूरा।
कहि परसा तव चौंकि पहुँता की जस मेत अंकूरा ॥ ४ ॥

सगुण भक्तिकाव्य

राग गौड़ी

मनमोहन मंगल सुष सजनी निरषि निरषि सुष पाऊँ।
अति सुन्दर सुषसिंधु स्याम घण हूँ तासू मन लाऊँ॥ टेक॥
निमषन भजूं तजू निहचौ धरि हरि अपभुवन वसाऊँ।
जाकौ दरस परस अति दुर्लभ हूँ ताकू सिर नाऊँ॥ १॥
तन मन धन दातार कल्पतरु हूँ ताकौ जस गाऊँ।
अति निर्मलनि देषि भगतिफल मोहि भावै बलि जाऊँ॥ २॥
प्रभु सों प्रेम नेम निहचौं सर्व सदै भलौ मनाऊँ।
और उपाय सकल सुष परिहरि हरि सुष माहिं समाऊँ॥ ३॥
सेरु चरण शरण रहि हित करि मन हरि मनहि मिलाऊँ।
लज्या लोक वेद की परसा परिहरि दूरि दुराऊँ॥ ४॥

कबीर की तरह इन्होंने भी हिन्दू मुसलमानों के ऐक्य-विषयक कविताएँ की हैं, जिससे पता चलता है कि अन्य कृष्णभक्त कवियों की तरह ये देश सुधार के संबंध में सर्वथा मौन नहीं रहे। उदाहरणः—

राग गौड़ी

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहीम न जाणा रे।
हारि गये नर जनम वादि जो हरि हिरदै न समाणा रे॥
जठरा अगनि जरत जिन राष्यो गरभ संकट गँवाणा रे।
तिहि और तिन तज्यौ न तोकूं तैं काहै सु भुलाणा रे॥ १॥
भांड़े बहुत कुम्हारा एकैं जिनि यह जगत घडाणा रे।
यह न समझि जिन किनहु सिरजे सो साहिब न पिछाणा रे॥ २॥
भाई रे हक्क हलालनि आदर दोऊ हरषि हराम कमाणा रे।
भिस्ति गई दुरि हाथ न आइहो जग सो मनमाना रे॥ ३॥
पंथ अनेक नयर उधर ज्यौं सब का एक विकाणा रे।
परसराम व्यापक प्रभु वपु धरि हरि सबको सुरताणा रे॥ ४॥

नीचे उनके शेष ९ ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देकर उनके कुछ उद्धरण दिए जाते हैं:—

(१) 'नाथलीला' में महात्माओं और दिव्य व्यक्तियों के नाथांत नाम गिनाए गए हैं, जिनमें से कुछ नाथपंथी भी हैं—जैनियों के सुप्रसिद्ध तीर्थंकर नेमनाथ का भी उल्लेख है:—

भगति भंडारो जानि के, आइ मिले सब नाथ।
परसराम प्रसिद्ध नाम सोइ, भेंटे भरि भरि बाथ॥
परसा परम समाधि में, आय मिले बहु नाथ।
दिव्यनाथ ए सति करि तू, सुमिरि सुमंगल साथ॥

श्रीबद्रीनाथ अनाथ के नाथा । मथुरानाथ भये ब्रजनाथा ।
गोकुलनाथ गोवर्धननाथा । नारानाथ वृन्दावननाथा ॥
कासीनाथ अजोध्यानाथा । सीतानाथ सति रघुनाथा ।

× × × ×

अनन्त नाथ अचलेसुर नाथा । नेमनाथ श्रीगोरषनाथा ॥
सोमनाथ सुंदर सुषनाथा । भावनाथ भुवनेस्वरनाथा ॥

× × × ×

सर्वनाथ को नाथ हरि, परसराम, भजि सोइ ।
मनवंछित फल पाइये, फिरि आवागमन न होइ ॥

(२) 'पदावली' में उपदेश, ब्रजलीला तथा भगवान् की अनन्य भक्ति का वर्णन है:—

गोविन्द मैं बन्दीजन तेरा ।
प्रात समै उठि मोहन गाऊँ तौ मन मानै मेरा ॥ टेक ॥
कर्तम करम भरम कुल करणी ताकी नाहि न आसा ।
करूँ पुकार द्वार सिर नाऊँ गाऊँ ब्रह्म विधाता ॥
परसराम जन करत वीनती सुणि प्रभु अविगत नाथा ॥

(३) 'रोगरथनामलीलानिधि' में परम तत्त्व का विवेचन किया गया है:—

ओंकार अपार उरि उतरे अन्तर षोय । अन्तरजामी परसराम व्यापक सबमें सोय ॥
वै तारक वै तत्त्व सब वे पालक प्रतिपाल । वारविणपार बिसासु है इतवत सोई आल ॥

× × × ×

एक अकेला एक रस, एक भाय एक तार । एकाएकी एक ही, एक सकल इक सार ॥

× × × ×

हरि अगणित नाम अनन्त के, गाए जे गाए गये । अंत न आवै परसराम और अमित योंही रहे ॥

(४) 'साँचनिषेधलीला' में विना ईश्वर-चिन्तन के अन्य सभी कृत्य-कर्मों की व्यर्थता का वर्णनः—

ईसुर अण ईसुर सब ईसुर । जो जाण्यो हरि ईश्वर को ईश्वर ॥
ब्रह्मा अण ब्रह्मा सब ब्रह्मा । जो जाण्यो हरि ब्रह्मा को ब्रह्मा ॥
राजा अण राजा सब राजा । जो जाण्यौ हरि राजा को राजा ॥
मंगल अण मंगल सब मंगल । जो जाण्यो हरि मंगल को मंगल ॥
हरि मंगल मंगल सदा, मंगलनिधि मंगलचार ।
परसराम मंगल सकल, हरिमंगल हरण विकार ॥

(५) 'हरिलीला' में हरि की लीला का दार्शनिक विवेचन है:—

हरि औतारन कौ हरि आगर । हरि निज नांव नांव कौ सागर ॥
हरि सागर में सकल पसारा । निर्गुण गुण जाकौ व्यौहारा ॥

हरि व्यौहार विचारैं कोई । तौ हरि सहज समावै सोई ॥
सोइ भागवत भगत अधिकारी । हरि कीरति लागै जेहि प्यारी ॥

× × × ×

हरि है अजपा जाप हरि जापा । हरि है तहाँ पुन्नि नहिं पापा ॥
पाप पुन्य हरि कूं नहीं परसै । परसा प्रेम रूप जन दरसै ॥
दरस परस जन परसराम, हरि अम्रत भरि पीव ।
ता हरि कूं जिनि वीसरे, अब होइ रहौ हरिजीव ॥

(६) 'लीलासमझनी' में विश्व का प्रपंच रूप दिखाया गया है:—

राग गौड़

कैसी कठिन ठगौरी थारी । देख्यौ चरित महा छल भारी ॥
बड़ आरंभ जो औसर साध्या । ज्यौं नलनी सूवा गहि बांध्या ॥
छूटि न सकै अकल कललाई । निर्गुण गुण मैं सब उरझाई ॥
उरझि उरझि कोई लहै न पारा । भुरकी लागि बह्यौ संसारा ॥
वहि गये वनजि मांहि समाया । अविगत नाथ न दीपक पाया ॥
दीपक छांड़ि अन्ध्याहै धावै । वस्तु अगह क्यौं गहणी आवै ॥
गहणी वस्तु न आइये, वाणी जब कियो विचारि ।
अन्ध अचेतन आसवसि, चाले रतन विसारि ॥

× × × ×

(७) 'नक्षत्रलीला' में नक्षत्रों का दार्शनिक विवेचन है:—

चित्रा चिन्ताहरण सबूरी । चित्त गयो चारो दिस पूरी ॥
चालि लियो चित चढ्यो चितारैं । हरि की चरचा चार विचारैं ॥
सोइ चेतन चित्त की चतुराई । जु चरित्र बिसारि चितारे लाई ॥
ज्यों चात्रिग चितवत चित दीने । त्यौं चिहन धरैं सति चौरे चीन्हें ॥
ज्यों चंद चरित चंदोर पसारी । पै चित चकोर कै प्रीति सुन्यारी ॥
चाहि अगनि ताकूं नहिं जारैं । जिनि कीनूं चक्र चक्रधर सारैं ॥

× × × ×

(८) 'निजरूपलीला' में परमात्मा के स्वरूप का विवेचन है:—

मन क्रम वचन कहतु हौं तोही । हरि समान समृथ नहिं कोई ॥
हरि भगति हेत वपु धरि औतारे । हरि परम पवित्र पतित उद्धारे ॥
असरण सरण सत्ति हरि नाऊँ । हरि दीन बंधु ताकी बलि जाऊँ ॥
हरि निज रूप निरन्तर आही । गावै सुणै परम पद ताही ॥
निज लीला सुमिरण जो करै । तौ पुनरपि जनमि न सो वपु धरै ॥

× × × ×

हरि सुमिरण निर्मल निर्वाण। जा घट बसैं सत्ति सोइ प्राण ॥
परसराम प्रभु विण सब काँच। श्री हरिव्यासदेव हरि साँच ॥
जाकै हिरदै हरि बसैं, हरि आरत रतिवन्त।
परसराम असरणसरण, सत्ति भगत भगवन्त ॥

(३) 'निर्वाण' में संसार के त्याग और भगवद्भक्ति का उपदेश है: —

जौ मन विषय विकार न जाही। तौ स्वारथ स्वांग धन्या सुष नाहीं ॥
नाटक चेटक स्वांग कहाए। हरि विण सकल काल छलि षाए ॥
मंत्र जंत्र पढ़ि ओषद मूला। उद्म उपाइ करै जग भूला ॥
कर्म करत हरि चीत न आया। षाय सकल ब्रह्म की माया ॥
षाये माया ब्रह्म की, कर्म भर्म के जीव।
भज्यो न केवल परसराम, सोधि सकल वर सीव ॥

× × × ×

कोई जाणै नम हरि भजन की बाँधि लई जिन टेक।
मनसा वाचा परसराम प्रेरक सबको एक ॥

११ बनारसी के चार ग्रन्थों 'वेदान्त-अष्टावक्र', 'ज्ञानपच्चीसी', 'शिवपच्चीसी' और 'वैराग्यपच्चीसी' के विवरण इस खोज में लिए गए हैं। इनके कई ग्रन्थ पहले भी सूचना में आ चुके हैं (दे० त्रैवार्षिक खोज विवरण सन् १९०० ई० की संख्या १०४, १०५, १०६, १३२)। 'वेदान्तअष्टावक्र' में वेदान्त सम्बन्धी कुछ तत्वों के निरूपण और आत्मज्ञान का विषय विवृत हुआ है। यह संस्कृत से अनुवाद हुआ जान पड़ता है। 'ज्ञानपच्चीसी' में माया-मोह के त्याग और आत्मानुभव का वर्णन है, 'शिवपच्चीसी' में शिव के नाम तथा स्वरूप का दार्शनिक विवेचन है और 'वैराग्यपच्चीसी' में संसार की निस्सारता दिखाकर उससे उपराम करने की शिक्षा है। निर्माणकाल केवल 'वैराग्यपच्चीसी' में दिया है जो संवत् १७५० वि० की रचना है:—

एक सात पंचास के संवत्सर सुषकार।
पौष शुक्ल तिथि धरम की जै जै वृहस्पतिवार ॥

इन सबका लिपिकाल संवत् १८८० वि० इस आधार पर माना गया है कि ये चारों ग्रंथ अनुक्रम से एक अन्य ग्रन्थ 'सुन्दर-विलास' के साथ एक ही जिल्द में हैं और एक ही व्यक्ति के द्वारा लिखे गए हैं। 'सुन्दर-विलास' का लिपिकाल संवत् १८८० वि० है, अतः इनका भी निश्चयपूर्वक यही लिपिकाल होना चाहिए।

रचयिता का नाम केवल 'ज्ञानपच्चीसी' और 'शिवपच्चीसी' में आया है, बाकी दो ग्रन्थों में नहीं। किन्तु 'वेदान्तअष्टावक्र' का यह दोहा:—

ज्ञानप्रकासहि कह्यो प्रभु मुक्त किहि विधि जानि।
पुनि वैराग्यहि सो कह्यो तत्व लह्यो सर्व ज्ञानि ॥ १ ॥

स्पष्ट बतलाता है कि 'ज्ञानप्रकास' और 'वैराग्य' गुरु द्वारा कथन किए गए हैं। ये 'ज्ञानप्रकास' और 'वैराग्य' सिवा 'ज्ञानपच्चीसी' और 'वैराग्यपच्चीसी' के अन्य ग्रंथ नहीं हो सकते। और क्योंकि 'ज्ञानपच्चीसी' का लेखक बनारसी है इसलिये 'वैराग्यपच्चीसी' का लेखक भी वही हो सकता है। इस तरह इन चारों ग्रन्थों को बनारसीकृत मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

'ज्ञानपच्चीसी' और 'शिवपच्चीसी' में स्याद्वाद और पुद्गल जैसे शब्दों के प्रयोग से रचयिता के जैन होने का प्रमाण मिलता है; क्योंकि ये शब्द जैनशास्त्रों में ही अधिकतर प्रयुक्त होते हैं:—

ज्ञानदीप की सिषा संवारै। स्याद्बाद घंटा झणकारै।
आगम अध्यातम चँवर दुलावै। ब्यापक धूप सरूप जगावै॥

—शिवपच्चीसी

सुर नर त्रिजग जोनि में नरकनि गोद भमन्त।
महामोह की नींद में सोवै काल अनन्त॥
जहाँ पवन नहीं संचरै तहाँ न जल कल्लोल।
त्यौं सब परिग्रह त्याग तैं मनसा होय अडोल॥
ज्यों बूटी संजोग तैं पारा मूर्छित होय।
त्यौं पुद्गल सौं तुम मिलै आतम सक्त समोय॥

— ज्ञानपच्चीसी

ऐसा जान पड़ता है कि वैराग्य के उदय होने पर ये वेदान्त की ओर अधिक झुक गए। वैसे भी उच्च स्तर में सब भारतीय दर्शन प्रायः एक ही हो जाते हैं।

१२ मुनिमान जी बीकानेर के रहनेवाले एक जैन लेखक थे। इनका रचा हुआ 'कवि प्रमोद रस' नामक एक अपूर्ण वैद्यक ग्रंथ पहले भी खोज में मिल चुका है, जिसका रचनाकाल संवत् १७४६ वि० या सन् १६८९ ई० है (दे० खो० विवरण सन् १९२०-२२ ई०, सं० १०१)।

इस त्रिवर्षी में उनका इसी विषय पर रचा हुआ 'कवि विनोदनाथ भाषा निदान चिकित्सा' नामक नवीन ग्रन्थ प्रकाश में आया है। यह संवत् १७४५ वि० या सन् १६८८ ई० में रचा गया था और संवत् १८७६ वि० या सन् १८१९ में लिपिबद्ध हुआ। रचनाकाल का दोहा यह है:—

संवत् सत्रह सै समै, पैंतालै वैशाष।
शुक्ल पक्ष पाँचीस दिनै, सोमवार वैभाष॥

अर्थात् १७४५ वि० की वैशाख सुदी ५ सोमवार को उक्त ग्रंथ बना। इन्होंने इस ग्रन्थ में अपने गुरु का परिचय इस प्रकार दिया है:—

भट्टारक जिनिचन्द्र गुरु, सब गछ को सरदार।
खरतर गछ महि मानिलौं, सब जन को सुषकार॥

जाको गछ वासी प्रगट, वाचक सुम्मति मेर।
ताकौ शिष्य मुनिमान जी, वासी बीकानेर॥
कियौ ग्रंथ लाहौर में, उपजी बुधि की वृद्धि।
जो नर राषै कंठ में, सो होवै परसिद्ध॥

इससे प्रकट है कि वे बीकानेर के खरतर गच्छ के प्रधान भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य श्री सुम्मति मेरु के शिष्य, जैन मतावलंबी थे। उनका कहना है कि उन्होंने सर्वसाधारण के लिये संस्कृत समझ सकना कठिन जानकर इस ग्रंथ को भाषा में लिखा है, जिससे सब समझ सकें।

संस्कृत अरथ न जानई, सकत न पूरी होइ।
ताकै बुद्धि परकास कौ भाषा कीनी टोइ॥

इसमें चिकित्सा के चार चरण, नाड़ी, रोगज्ञान, रोगलक्षण और रोग-चिकित्सा का वर्णन है। इसके आगे चूर्ण प्रकरण, गुटिका प्रकरण, अवलेह प्रकरण तथा रसायन प्रकरण सहित कुल पाँच प्रकरण हैं। इस ग्रन्थ का लाहौर में निर्माण हुआ है।

प्रारंभ में निम्नलिखित कवित्त वन्दना-स्वरूप लिखा है:—

उदि (त) उदोत जगमग रह्यो चित्र भानु
ऐसेई प्रताप आदि ऋषभ कहति हैं।
ताको प्रतिबिंब देषि भगवान् रूप लेषि
ताहि नमो पाय पेषि मंगल चहति है॥
ऐसी करौ दया सोंही ग्रंथ करौं टोहि टोहि
धरौ ध्यान तब तोहि उमग गहति है।
बीचन विघन कोऊ अच्छर सरल दोऊ
नर पढ़ै जोऊ सोऊ सुष को लहति है॥

इसमें जैन तीर्थंकर आदिनाथ और ऋषभनाथ का नाम आया है।

१२ हजारीदास के रचे हुए 'त्रिकांडबोध' और 'शून्यविलास' नामक ग्रंथ इस त्रिवर्षी में पहली बार प्रकाश में आए हैं। पहले ग्रंथ का निर्माणकाल संदिग्ध और दूसरे का अज्ञात है। लिपिकाल दोनों का क्रम से १९४० वि० (१८८३ ई०) और १९८८ वि० (१९३१ ई०) है। पहले ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान का वर्णन तीन भागों में हुआ है, और दूसरे में शून्य की महत्ता का वर्णन है जिसमें शून्य को ही समस्त सृष्टि का आधार माना गया है।

हजारीदास के विषय में यह कहा जाता है कि ये जाति के चौहान क्षत्रिय थे। इनके गुरु गजाधरसिंह और ये एक ही फौज में नौकर थे। वहाँ से पेंशन लेकर दोनों

बाराबंकी जिला के भूलामऊ नामक गाँव में रहने लगे। हजारीदास का दूसरा नाम संत दास भी है। सन्तदास नाम से बनाए हुए उनके कुछ ग्रंथ पहले भी मिले हैं (दे० खो० वि० सन् १९०९–११ ई० सं० २८१)।

इनके बनाए हुए ६० ग्रंथ कहे जाते हैं। 'त्रिकांडबोध' के रचनाकाल का दोहा यहाँ दिया जाता है:—

संवत् दिक श्रुति वान सत, तिथि हरि माधो मास।
सुक्ल पक्ष दिनकर देवस, पूरन ग्रंथ विलास॥

यदि नियमानुसार गति लें तो सं० ७५४४ होते हैं; जो स्पष्ट अशुद्ध है। यदि वक्र गति न लें तो ४४५७ या १४५७ हो सकते हैं। किन्तु विवरणकर्ता ने इसके विरुद्ध रचना-काल सं० १८६९ वि० (१८१२ ई०) माना है। परन्तु किस आधार पर यह प्रकट नहीं किया। अतएव रचनाकाल संदिग्ध ही है।

ग्रंथकार सत्यनामी साधु थे। इन्होंने त्रिकांड-बोध के आदि में सत्यनामी संप्रदाय के संस्थापक जगजीवनदास की वन्दना की है:—

सुमिरि सच्चिदानन्दघन, जगजीवन सुषकन्द।
सतगुरु पूरन ब्रह्म सोइ, भनत नेति जेहि छन्द॥

× × × ×

संता जगजीवन बिना, जीवन को फल कौन।
बिन पति की पतनी तथा जथा मनुष बिन भौन॥

१४ इस खोज में 'मदनाष्टक' की एक प्रति मिली है जिससे उसके रचयिता के सम्बन्ध में एक नवीन समस्या खड़ी हो गई है। 'मदनाष्टक' अब्दुल रहीम खानखाना की रचना कही जाती है। परन्तु इस बार खोज में प्राप्त एक हस्तलेख के अनुसार यह पठानी-मिश्र की रचना ठहरती है। संभव है कि रहीम को अत्यन्त धर्म-परायण होने तथा हिंदू देवताओं में श्रद्धा रखने के कारण—जैसा कि उसकी हिन्दी और संस्कृत रचनाओं से ज्ञात होता है—पठानी मिश्र या मुसलमान ब्राह्मण कहा गया हो; परन्तु यह भी असंभव नहीं कि इसका रचयिता कोई भिन्न व्यक्ति ही हो जो ब्राह्मण से मुसलमान होने के कारण पठानी मिश्र कहा जाता हो और जिसने रहीम की सेवा में रहकर अपने स्वामी के नाम से उक्त ग्रंथ की रचना की हो।

नीचे विवरण के साथ दिए गए परिशिष्टों की सूची दी जाती है:—

परिशिष्ट १—ग्रंथकारों पर टिप्पणियाँ।
„ २—ग्रंथों के विवरणपत्र (उद्धरण, विषय, लिपि और कहाँ वर्तमान हैं आदि विवरण)।

परिशिष्ट ३—उन रचनाओं के विवरणपत्र (उद्धरण, विषय, लिपि और कहाँ वर्तमान हैं आदि विवरण) जिनके लेखक अज्ञात हैं।

,, ४—(अ) परिशिष्ट १ और २ में आए हुए उन रचयिताओं की नामावली जो आज तक अज्ञात थे।

(ब) परिशिष्ट १ और २ में आए हुए उन रचयिताओं की नामावली जो पहले से ज्ञात थे, परन्तु जिनके इस खोज में मिले हुए ग्रंथ नवीन हैं।

(स) काव्य-संग्रहों में आए हुए उन कवियों की नामावली जिनका पता आज तक न था।

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल
निरीक्षक,
खोज विभाग

प्रथम परिशिष्ट

रचयिताओं पर टिप्पणियाँ

१ अह्लाददास—ये सुप्रसिद्ध सत्यनामी संप्रदाय के संस्थापक स्वामी जगजीवन दासजी के भतीजे थे। इन्होंने स्वामीजी से ही मंत्रोपदेश ग्रहण किया था और उक्त संप्रदाय के चौदह गद्दीधरों में से एक थे। जाति के ये चंदेलवंशी क्षत्रिय थे। इनका जन्मस्थान सरदहा और निवास स्थान कोटवा (बारहबंकी, अवध) था। इनके जन्मकाल के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ये स्वामी जगजीवन दास जी के समकालीन थे। स्वामी जी का रचनाकाल सन् १६७० से १७६० ई० तक माना जाता है, अतः यही समय इनका भी मानना चाहिए। ये सत्यनामी संप्रदाय में बहुत बड़े सिद्ध पुरुष और मस्त फकीर कहे जाते हैं। यह भी जनश्रुति प्रचलित है कि स्वामी जी के कई ग्रंथों को इन्होंने ही लिखकर पूर्ण किया था। प्रस्तुत शोध में इनकी रची हुई "शब्द झूलना" पहले पहल मिली है। इसमें इन्होंने प्रायः झूलना कवित्त और रेख्ता आदि अनेक छंदों में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, प्रेम और विरह का वर्णन किया है। इनकी भाषा ग्रामीण मिश्रित अवधी है जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इनका वर्णन विनोद तथा सरोज में नहीं आया है।

२ अलबेली अली—प्रस्तुत शोध में इस कवि के तीन ग्रंथों—(१) अलबेली अलि ग्रंथावली (२) गुसाईं जी कौ मंगल तथा (३) विनय कुंडलिया के विवरण लिये गये हैं। पहले ग्रंथ में प्रिया जी कौ मंगल, राधा अष्टक और माँझ नामक तीन छोटी छोटी पुस्तिकाएँ संगृहीत हैं जिनमें राधा जी के स्वरूप, शृंगार और स्तवन सम्बन्धी गीतों का चयन है। दूसरे में गोसाईं वंशी अलि जी के सम्बन्ध के प्रेम तथा शृंगारपूर्ण बधाई के गीतों का संग्रह है। तीसरे ग्रन्थ में युगल मूर्ति का ध्यान और प्रार्थना है। अन्तिम ग्रंथ इनका ही है, यह संदिग्ध है। कई कुंडलियों में इनका नाम आया है। अतः केवल इसी आधार पर इन्हें उक्त ग्रंथ का कर्त्ता माना गया है। विनोदकार लिखते हैं कि इनकी कविता भक्तमाल में है और ३०० पद गोविन्द गिल्ला भाई के पुस्तकालय में हैं। 'रसमंजरी' में भी इनके कवित्त हैं, देखिए मि० बं० वि० सं० $\frac{१३२१}{६}$। इनका अबतक कोई स्वतंत्र ग्रंथ न तो शोध में मिला था और न हिन्दी साहित्य के किसी इतिहास ग्रंथ ही में उल्लिखित है। प्रस्तुत तीनों ग्रंथों में से किसी में भी रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए गए हैं। इनके गुरु वंशी अलि का रचनाकाल सन् १७२३ ई० के लगभग माना गया है, देखिए (खोज विवरण १९१२–१४ ई०, सं० १६ और मिश्र बंधु विनोद सं० ६८८)। संभवतः यही समय इनकी रचना का भी होगा। अलबेली अलि स्त्री थे या पुरुष, यह निश्चित रूप

से नहीं कहा जा सकता । परन्तु रचनाओं से इनके पुरुष होने की झलक मिलती है । यह भी ज्ञात होता है कि ये शिष्य परंपरानुसार बहुत पीछे के न होकर स्वयं वंशी अली द्वारा ही दीक्षित किये हुए शिष्य थेः—

जब ते वंशी अलि पद पाए,
श्री बृन्दावन कुंज केलि कल लूटत सुख मन भाए ।
रुप सुधा मादिक पद पीवे, डोलत घूम घुमाए ॥
अलबेली अलि सबते निज कर स्यामा जू अपनाए ॥

अर्थात् जब से मैंने वंशी अलि के पद पाए (जब से मैं उनका शिष्य हुआ) तभी से मुझे बृन्दावन के कुंजों में कल केलि लूटने को मिली, आदि । इनके लिए देखिए विवरण का अंश संख्या ६ ।

३ आलम (सैयद चाँद सुत)—इनका रचा हुआ "ग्रंथ संजीवन" नामक एक वैद्यक ग्रंथ का विवरण लिया गया है । इसमें नाड़ी परीक्षा और औषधियों का वर्णन है । औषधियाँ प्रायः शिर, मस्तक, नेत्र, कर्ण और दन्त आदि अंगों के रोगों के क्रम से लिखी गई हैं । यह किसी फारसी ग्रंथ का अनुवाद है, जैसा निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हैः—

वेद ग्रंथ हो पारसी, समझि रच्यौ भासान ।
सहज अरथ परकट करौ, औषदि रोग समान ॥

इसके पश्चात् दूसरे दोहे में रचयिता ने अपने को किन्हीं सैयद चाँद का सुत बतलाया हैः—

ग्रंथ संजीवन नाम धरि, देषहु ग्रंथ प्रकास ।
सेहद चाँद सुत आलम, भाषा कियौ निवास ॥

विषय और भाषा आदि के विचार से ये अपने नाम के अन्य ग्रन्थकारों से भिन्न जान पड़ते हैं । ग्रंथान्त में इन्होंने कवि कालिदास का एक छप्पय दिया है । परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह कौन सा कालिदास है । यदि "हजारा" के रचयिता कालिदास का रचा हुआ उक्त छप्पय है तो इनका रचना काल कालिदास के रचना काल संवत् १७४९ वि० (१६९२ ई०) के पश्चात् होना चाहिए । विशेष के लिए देखिए विवरण का अंश संख्या १ ।

४ आलम—इनका 'सुदामा चरित्र' मिला है जिसके विवरण पहले पहल लिए गए हैं । यह खड़ी बोली की रचना है जिसमें ब्रजभाषा और फारसी भी प्रयुक्त हुई है । नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तुत रचयिता अबतक विदित आलमों में से कोई एक है या नहीं ।

गत विवरणों में आए आलम नामक रचयिताओं के सम्बन्ध में देखिए खोज विवरण (१९०४, सं० ९; १९२३–२५, सं० ८; १९२९–३१, सं० ८; १९३२–३४, सं० ६) । ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया गया है, परन्तु इसकी प्रस्तुत प्रति में लिपिकाल सन् १८१९ ई० है । विशेष के लिये देखिए विवरण में संख्या ७ ।

५ अवध प्रसाद—इनके तीन ग्रंथ—(१) जगजीवन अष्टक, (२) रत्नावली और (३) विनय शतक—इस खोज में प्राप्त हुए हैं । इनमें से पहला सन् १८८० ई० के

पश्चात् का होने के कारण प्रस्तुत विवरण में सम्मिलित नहीं किया गया है। शेष दो में से 'रत्नावली' का रचनाकाल और लिपिकाल क्रमशः सन् १८७२ और सन् १९२३ हैं तथा 'विनय शतक' का रचनाकाल सन् १८७३ ई० और लिपिकाल सन् १९२२ ई० दिए हैं। रचयिता सत्यनामी संप्रदाय के प्रसिद्ध साधु दूलनदास के वंशज थे। इस समय इनके पुत्र भोंदूदास जीवित हैं जिनकी अवस्था ७० वर्ष की है। ये हिन्दी तथा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। जिला रायबरेली के अन्तर्गत धर्मेई स्थान के ये निवासी थे और इनका जन्म उक्त जिले की महाराजगंज तहसील के अन्तर्गत तदीपुर नामक ग्राम में हुआ था। इनकी मृत्यु सन् १९०९ ई० में ८७ वर्ष की आयु में पुरइन गाँव (जिला बस्ती) में हुई जहाँ इनकी समाधि बनी है।

६ बचऊदास--इनके एक ग्रन्थ 'जन्म चरित्र श्री गुरुदत्त दास' के विवरण लिए गए हैं। सत्यनामी सम्प्रदाय के अनुयायी श्री दूलनदास के शिष्य रामबकस इनके गुरू थे। ये सन् १८२३ ई० में उत्पन्न हुए थे। सलेथू गाँव (रायबरेली) के निवासी थे और वर्ण के ब्राह्मण थे। प्रस्तुत ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया है, पर लिपिकाल दिया है जो सन् १९३२ है।

७ बदलीदास--इनके 'अनुभव प्रगास' ग्रन्थ के विवरण लिए गए हैं जो खोज में नया मिला है। ये सत्यनामी सम्प्रदाय के संस्थापक सुप्रसिद्ध साधु जगजीवनदास के पुत्र श्री जलालीदास के सुयोग्य शिष्य थे। इनके सम्बन्ध की विशेष बातें ज्ञात नहीं। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में ये विद्यमान थे। ग्रन्थ का रचनाकाल अज्ञात है। लिपिकाल सन् १९२९ ई० दिया है।

८ बलदेव सनाढ्य—ये 'गरुड़ पुराण भाषा' के रचयिता हैं। खोज में इनका और प्रस्तुत ग्रन्थ का पता प्रथम बार लगा है। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में और कुछ ज्ञात नहीं। ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया है। लिपिकाल सं० १८११ (१७५४ ई०) है।

९ बलराम जी--भक्ति विषयक ग्रंथ 'रामधाम' के ये रचयिता हैं। कोई गुरुप्रसाद इनके गुरू थे। अन्य परिचय अज्ञात है। ग्रंथ का रचनाकाल अविदित है। लिपिकाल सन् १८१३ ई० दिया है, पर पता नहीं अन्वेषक (त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी, प्राणपांडे का पुरवा, तिलोई, रायबरेली) ने यह लिपिकाल किस आधार पर लिखा है। ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं है वरन वह अन्त में खंडित है।

१० बनारसी—एक हस्तलेख में इनके रचे चार ग्रन्थों का पता चला है जिनके विवरण लिए गए हैं। ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—

१—ज्ञान पच्चीसी, २—वैराग्य पच्चीसी, ३—शिवपच्चीसी और ४—वेदान्त अष्टावक्र (भाषा)। इनमें से केवल 'वैराग्य पच्चीसी' में ही रचनाकाल दिया गया है जो सं० १७५० वि० है। लिपिकाल किसी भी ग्रन्थ की प्रति में नहीं है। परन्तु उक्त ग्रन्थ सुन्दर दास कृत 'सुन्दर विलास' के साथ एक ही जिल्द में है जो एक ही व्यक्ति का लिखा हुआ है और क्योंकि 'सुन्दर विलास' सं० १८८० वि० (१८२३ ई०) का लिखा हुआ है,

अतएव उसी समय के लगभग इन ग्रन्थों का भी लिपिकाल मानना चाहिए। 'वेदान्त अष्टावक्र' के निम्नलिखित दोहे से विदित होता है कि प्रस्तुत सभी ग्रंथ एक ही रचयिता के हैं:—

"ज्ञान प्रकाशन कह्यो प्रभु, मुक्त किहि विधि जानि।
पुनि वैराग्यहि सो कह्यो, तत्व लह्यौ सर्व ज्ञानि॥"

इससे पता चलता है कि 'वेदान्त अष्टावक्र' 'ज्ञानपच्चीसी' और 'वैराग्य पच्चीसी' के पश्चात् रचा गया। 'ज्ञान पच्चीसी' और 'वेदान्त अष्टावक्र' तो निःसन्देह एक ही व्यक्ति बनारसी के रचे हुए हैं। अतएव अन्य शेष रचनाएँ भी सरलता से इन्हीं की मानी जा सकती हैं। दूसरी बात यह है कि प्रस्तुत रचयिता 'समय सार नाटक' के रचयिता के सिवा और कोई नहीं। परन्तु ऐसा मानने में समय का विरोध उत्पन्न होता है। 'वैराग्य पच्चीसी' के अनुसार प्रस्तुत बनारसी का समय सं० १७५० वि० है, परन्तु उक्त नाटक का रचयिता बनारसी ९० वर्ष पहले वर्तमान थे। जो कुछ हो प्रस्तुत बनारसी भी जैनी ही थे; क्योंकि 'पुद्गल' और 'स्याद्वाद' जैसे जैनी शब्द इनकी रचनाओं में प्रयुक्त हैं। इनका उल्लेख विवरण में संख्या ११ पर भी है।

११ भगवानदास—इनका बनाया हुआ 'रमल प्रश्न' अथवा 'शिव शक्ति रमल विचार' नामक ग्रंथ का विवरण पहले पहल लिया गया है। इसकी तीन प्रतियाँ मिली हैं। लिपि-काल केवल एक में सं० १९१९ = १८६२ ई० दिया है। रचनाकाल अज्ञात है। कवि के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं। परन्तु ये इस नाम के सभी कवियों से भिन्न जान पड़ते हैं।

१२ भवानी लाल—खोज में ये रचयिता पहले पहल मिले हैं। इन्होंने 'अद्भुत रामायण' की रचना की जो इस नाम के मूल संस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर है। रूपांतर साधारणतः अच्छा है। इसका रचनाकाल सं० १८४० = (१७८३ ई०) है:—

"एक सहस अरु आठ सै, संवत् दस अरु तीस।
शुक्ल द्वितीया मास मधु, भाषा कथा नवीन॥"

ऐसा विदित होता है कि रचयिता ने ग्रंथ को सं० १८५७ में दूसरी बार संशोधित करके लिखा था। निम्नलिखित दोहे में आये 'वहोरि' शब्द से ऐसा ही संकेत मिलता है:— "वार वान वसु चन्द धरि, संवत लीजिय जोरि। फागुन सुदि तिथि तीज को लिख्यौ चरित्र वहोरि॥" लिपिकाल संवत् १८६६ (१८३९ ई०) है।

१३ भीखजन—इनकी बनाई हुई एक 'बारह खड़ी' मिली है जिसमें कोई समय नहीं दिया गया है तथा जो अपूर्ण भी है। खोज विवरण (१९२९–३१, सं० ४५ और १९३२–३४, सं० २४) में इसी ग्रन्थकार का एक ग्रंथ क्रमशः "सर्वज्ञान चपैनी" या "सर्वज्ञान बावनी" नाम से आया है। ये सभी ग्रंथ एक ही हैं। जो कुछ अन्तर इनमें देखने को मिलता है वह लिपिकर्त्ता के हस्तदोष के कारण ही समझना चाहिये। उक्त पिछली रिपोर्टों में ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १६८३ वि० (१६२६ ई०) दिया गया है।

१४ भीकमदास या 'अनन्तदास'—ये खोज में नवोपलब्ध हैं। इनके १४ ग्रंथों के विवरण लिये गए हैं। इनका वास्तविक नाम भीषमसाह था। अनन्तदास उपनाम है। ये जाति के ब्रह्मभट्ट, हरिवंशदास जी के पुत्र और डौंड़ियाखेर, जिला उन्नाव के निवासी थे। पश्चात् अपने पुत्र खरगसेन की ससुराल रायबरेली जिले की तहसील महाराजगंज के उजेहनी नामक ग्राम में जा बसे थे। युवावस्था में अवध के नवाब शुजाउद्दौला के यहाँ ७ सात तोपों के दारोगा एवं सूबेदार बहादुर थे। वहीं पर इन्हें किसी महात्मा की संगति से ज्ञान प्राप्त हुआ था। कहा जाता है कि ये नबाब आसफ़उद्दौला के यहाँ भी कुछ दिन तक रहे थे। वे अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, किन्तु सत्संगति के प्रभाव से इन्हें बड़ा ज्ञान हो गया था। अन्ततोगत्वा इन्होंने १९ ग्रंथों की रचनाएँ कीं जो आकार प्रकार में काफी बड़े हैं और जिनमें भक्तिज्ञान योग तथा प्रेम आदि का वर्णन है। इनका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है। प्रस्तुत खोज में मिले इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं:—

क्र० सं० नाम ग्रंथ	र० का०	लि० का०	विषय
१—अमरावली	१८३५ ई०	१८३५ ई०	ब्रह्मज्ञानोपदेश
२—अनुरागभूषण	,,	१७५६ शाके	अनुराग की महत्ता और उसके द्वारा भक्ति का उपदेश।
३—भक्ति विनोद	१७९३	१७९३ ई०	नवधा भक्ति का वर्णन
४—कृष्ण केलि	१७८०	१७८४	कृष्ण का चरित्रवर्णन (महाभारत के आधार पर)
५—मंगलाचरण	१७७३	१८५७	आत्मज्ञानोपदेश।
६—शब्दावली	१८००	१८८१	स्फुट भजन और पदों का संग्रह।
७—समुझिसार	×	१८४४	वेदान्त का सार, ज्ञान की महत्ता
८—सम्मत सार	१८२३	१८४३	चौदह विद्या, तत्वज्ञान, आत्मज्ञान, और ब्रह्मज्ञान।
९—सोसासार	१८३९	१८३६	स्वरोदय ज्ञान।
१०—सृष्टिसागर	१८३५	१८३५	सृष्टि निरूपण।
११—सुकृत सागर	१७९९	१७९९	निज पंथ के अनुसार कर्मकांड आदि का वर्णन।
१२—तत्वसार	१७६३	१८३९	तत्वसार वर्णन।
१३—विवेक सागर	१८११	१८११	ब्रह्मांड की उत्पत्ति का वर्णन।
१४—शब्दावली(दूसरी)	१८११	×	वेदान्त एवं आत्मोपदेश सम्बन्धी ग्रंथ

१५ बिहारीलाल अग्रवाल—सन् १९३२-३४ के खोज विवरण संख्या ३० में ये अपने दो ग्रंथों 'गजेन्द्र मोक्ष" एवं "दोष निवारण" के साथ उल्लिखित हैं। इस बार इनका "नाम प्रकाश" कोश संबन्धी ग्रंथ नवीन मिला है। ग्रंथ में समय नहीं दिया है। यह संस्कृत के अमरकोश तथा नन्ददास की 'नाम मंजरी' या 'नाममाला' के आधार पर लिखा गया है। इनके सम्बन्ध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं।

१६ चरणदास—ये अपने को सुप्रसिद्ध शुकदेव मुनि का शिष्य बतलाते हैं। प्रस्तुत शोध में इनके रचे आठ ग्रंथों की २२ प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं जो प्रायः पिछले खोज विवरणों में आ चुकी हैं। इनमें से निम्नलिखित ४ ग्रंथ ऐसे हैं जो पहले पहल मिले हैं:—

क्र० सं० नाम ग्रंथ	र० का०	लि० का०	विषय
१—जागरण माहात्म्य	×	×	जागरण और कीर्तन का महत्त्व वर्णन
२—कालीनाथन लीला	×	×	श्रीकृष्ण की कालीदह लीला का वर्णन
३—माखन चोरी लीला	×	×	श्रीकृष्ण की माखनचोरी लीला का वर्णन।
४—निर्गुन बानी	×	×	'मटकी की समस्या पूर्ति द्वारा कृष्ण प्रेम में तल्लीनता का वर्णन। तदुपरान्त कृष्णभक्ति से ओत प्रोत अन्य निर्गुण सम्बन्धी पद कहे गये हैं। अन्त में 'सर्गुन बानी' (सगुणबानी) लिखकर ग्रंथ समाप्त कर दिया गया है।'

चरणदास का लीलादि कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ करना यह स्पष्ट करता है कि वह निर्गुण उपासना के पक्ष में होकर भी सगुणोपासना के विरोधी नहीं थे।

१७ चतुर्भुजदास—सुप्रसिद्ध अष्टछापवाले चतुर्भुजदास के कतिपय पदों का एक संग्रह नवीन प्राप्त हुआ है। इससे बड़ा इनका एक संग्रह पिछले खोज विवरण (१९३२–३४ ई०, सं० ४०) में आ चुका है। प्रस्तुत संग्रह में कोई समय नहीं दिया है।

१८ चित्तरसिंह—इनके रचे हुए "ज्योतिषसार नवीन संग्रह" के विवरण प्रथम बार लिए गए हैं। ये सी० पी० (मध्यप्रदेश) के अन्तर्गत सागर (गोपालगंज) के अधिवासी थे और सब इन्सपेक्टर पुलिस के पद पर काम करते थे। पेंशन लेने के पश्चात् इन्होंने यह संग्रह सम्पादित किया। संग्रह स्वयं संपादक के हाथ का लिखा हुआ है। रचनाकाल सं० १९१८ (१८६१ ई०) है। इसमें गद्य और पद्य दोनों का व्यवहार हुआ है।

१९ दलेलपुरी—इनका 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' नामक ज्योतिष ग्रंथ मिला है जिसका विवरण प्रथम बार लिया गया है। मूल ग्रंथ संस्कृत में है जिसका यह हिन्दी रूपान्तर है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। ग्रंथकार के नाम के साथ 'पुरी' शब्द का लगा होना उसको जाति का गोसाईं सिद्ध करता है। अन्य परिचय इनका अप्राप्त है।

२० दास—दास का रचा हुआ 'रघुनाथ नाटक' इस शोध में नवीन प्राप्त हुआ है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह खण्डित है, अतएव कवि के सम्बन्ध की कोई भी बात इससे विदित नहीं होती। संभव है सुप्रसिद्ध भिखारीदास ही प्रस्तुत दास हों, क्योंकि उनका उपनाम भी दास है। ग्रंथ की रचना शैली भी इसकी पुष्टि करती है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही। विशेष के लिये देखिये विवरण में संख्या ९।

२१ देवीदास—प्रस्तुत खोज में इनकी "दुर्गाचालीसी" नामक रचना मिली है जिसमें देवी स्तुति विषयक ४० छन्द हैं। इसकी प्रतिलिपि किन्हीं अजीराम ने सन् १९०३ ई० में की है। रचनाकाल ज्ञात नहीं। कवि के सम्बन्ध में विशेष वृत्त उपलब्ध नहीं।

२२—दूलनदास—ये सत्यनामी सम्प्रदाय के प्रभावशाली अनुयायी एवं रचनाकार थे और १८ वीं शताब्दी के मध्य में अवस्थित थे। पिछले खोज विवरणों में अनेक ग्रंथों के रचयिता के रूप में ये उल्लिखित हैं, देखिये खोज विवरण (१९०९–११, सं० ७८; १९२० २२, सं० ४६; १९२६–२८, सं० १०९)। इस बार इनका एक छोटा सा ग्रंथ जिसमें अनेक देवी देवताओं की स्तुतियाँ दी गई हैं "विनय संग्रह" के नाम से मिला है जिसका अबतक विवरण नहीं लिया गया था। इसमें रचनाकाल नहीं दिया है। लिपिकाल सन् १९३० ई० है।

२३ दुर्गाप्रसाद द्विवेदी—दुर्गाप्रसाद द्विवेदी नाम से एक नवीन ग्रंथकार का प्रस्तुत खोज में पता लगा है। 'विवाह पद्धति' नामक इनके एक ग्रन्थ का विवरण लिया गया है जिसमें मंत्र संस्कृत में ही दिए हुए हैं, पर जो प्रचलित विवाह पद्धति के अनुसार ही है। परन्तु प्रयोग का क्रम और समय ग्रंथकार ने अपनी भाषा में लिख दिया है जिससे साधारण पढ़े लिखे पंडिताई करनेवाले व्यक्तियों को भी बड़ा सहारा मिलता है। ग्रंथ का रचनाकाल अविदित है। इसकी प्रतिलिपि संवत् १९७४ वि० में हुई। ये याकूतगंज (जिला, फर्रुखाबाद) के निवासी थे।

२४ गङ्गाबाई (विट्ठल गिरिधरन)—इनका एक संग्रह "गंगाबाई के पद" नाम से मिला है जिसका विवरण लिया गया है। रचनाकाल ग्रंथ में नहीं दिया है। इसकी प्रस्तुत प्रति सन् १७९३ ई० की लिखी हुई है। रचयित्री जाति की क्षत्राणी थीं और महावन में रहती थीं। ये सुप्रसिद्ध गोसाईं विट्ठलनाथ जी की शिष्या थीं। २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनका वर्णन आया है। इनकी कविता बड़ी मर्मस्पर्शिनी और सजीव है। गीतों के संग्रहों में इनका उपनाम 'विट्ठल गिरिधरन' दिया हुआ मिलता है। प्रस्तुत संग्रह महत्वपूर्ण है; क्योंकि इसमें केवल इन्हीं के गीत संगृहीत हैं। खोज में नवोपलब्ध हैं। विशेष के लिये देखिए विवरण में संख्या ८।

२५ गंगादास—इनका रचा हुआ "कृष्णमंगल" नामक एक छोटा सा ग्रंथ मिला है जिसमें राधाकृष्ण की मधुर क्रीड़ा का वर्णन है। इसमें न तो रचकाल का ही ब्यौरा है और न लिपिकाल का ही। खोज में रचयिता नवोपलब्ध है।

२६ गंगाराम पुरोहित 'गंग'—इनके लिए देखिए विवरण में संख्या २ जहाँ इनका विस्तृत विवेचन किया गया है।

२७ ग़रीबदास—गरीबदास का परिचय पिछले खोजविवरण में दिया जा चुका है, देखिए खोज विवरण (१९२६–२८, सं० १३; १९०२, सं० ९५)। उक्त विवरणों के अनुसार ये सन् १६४६ में वर्तमान थे। इनके गुरु सुप्रसिद्ध महात्मा दादूदयाल जी थे जिनका समय विक्रम की १७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। प्रस्तुत खोज में इनकी एक छोटी सी रचना 'आरती' नाम से मिली है जिसमें ब्रह्म की आरती की गई है।

२८ गोकुलनाथ--इनकी 'वृत्तचर्या की भाषा' की एक प्रति के विवरण प्रथम बार लिए गए हैं। इसका निर्माणकाल और लिपिकाल दोनों ही अविदित हैं। श्रीवल्लभाचार्य जी ने अपने सम्प्रदाय के आध्यात्मिक तत्वों का निरूपण करते हुए संस्कृत में एक अष्टक की रचना की जिसका यह हिन्दी रूपांतर है। गद्य की रचना होने से यह महत्वपूर्ण है। रचयिता श्रीवल्लभाचार्य जी के पौत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पुत्र थे। इनके पहले भी कई ग्रंथ मिल चुके हैं, देखिए खोज विवरण (१९२९–३१ ई०, संख्या १२१; १९३२-३४, सं० ६५)।

२९ गोपेश्वर—ये 'शिक्षापत्र' नामक ग्रंथ के रचयिता हैं। ग्रंथ के अनुसार ये श्री हरिराय जी के—जो सन् १५४० ई० में वर्तमान थे—छोटे भाई थे। अतः इनका भी समय इसी के लगभग मानना उचित है। प्रस्तुत ग्रंथ हरिराय जी कृत इस नाम के मूल संस्कृत ग्रंथ का हिंदी गद्यानुवाद है। अनुवाद को हरिराय कृत मानना भूल है। ग्रंथ की तीन प्रतियाँ मिली हैं जिनमें से दो पूर्ण हैं। रचनाकाल किसी भी प्रति में नहीं दिया है। पूर्ण प्रतियों में से एक का लिपिकाल संवत् १९१९ वि० है। ग्रंथ में ४१ शिक्षा पत्र हैं जो हरिराय जी द्वारा गोपेश्वर जी को लिखे गए थे तथा जिनकी श्रीगोपेश्वरजी ने विस्तृत व्याख्या की।

३० गोरखनाथ—सुप्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथ जी के नाम से दो ग्रंथ—"गोरखसत पराक्रम या अष्टांग योग साधन विधि" तथा योगमंजरी—इस शोध में प्राप्त हुए हैं। दोनों योग विषयक ग्रंथ हैं और प्रस्तुत रचयिता के मूल संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद हैं। पहला ग्रन्थ गद्य में है और दूसरा पद्य में। भाषा इनकी बहुत प्राचीन नहीं जान पड़ती। पहला ग्रंथ सम्भवतः वही है जो पंजाब के खोज विवरण (सन् १९२२–२४, संख्या ३३) पर आया है। ग्रन्थों की प्रस्तुत प्रतियों में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं।

३१ गोविन्द रसिक अथवा अलि रसिक गोविन्द—अलि रसिक गोविन्द कृत "गोविन्द स्वामी के पद" 'समय प्रबोध' और 'उत्सवावली' नामक तीन ग्रन्थ शोध में उपलब्ध हुए हैं। इनमें से पहिले दो पिछले खोज विवरणों में आ चुके हैं, देखिए खोज विवरण (१९३२–३४, सं० १८८; १९०६–८, सं० १२२ यफ)। 'उत्सवावली' प्रथम बार मिली है। इसकी प्रस्तुत प्रति सं० १९४० (१८८३ ई०) की लिखी हुई है। रचनाकाल इसमें नहीं दिया हुआ है। इसमें वैष्णवधर्म के विशेषतः चैतन्य प्रभु की शिष्य परंपरा में होनेवाले उत्सवादि का वर्णन किया गया है। इसके उत्तर भाग में चैतन्य प्रभु तथा उनके शिष्यों के जीवन चरित्र भी संक्षेप से दे दिए गए हैं।

३२ गोसाईं जी—गोसाईं जी के 'अन्तःकरण प्रबोध', 'भक्तिवर्द्धिनी' और 'विवेक धैर्याश्रय' नाम के तीन ग्रन्थ ऐसे मिले हैं जिनके विवरण अबतक नहीं लिए गये थे। इनमें न तो किसी का रचनाकाल ही दिया गया है और न लिपिकाल ही। पहिले में माया से आवृत जीव को पिता-पुत्र, मित्र-मित्र, तथा पति पत्नी के दृष्टान्तों द्वारा भक्ति विषयक उपदेश दिया गया है। दूसरे में भक्तिव्रत के पालनार्थ पुष्टिमार्ग के साधनादि दिये गए हैं

और तीसरे में भक्ति के लिये विवेक और धैर्य की क्या आवश्यकता है इस सिद्धान्त को अपने सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से समझाया गया है। गोसाईं जी किसी व्यक्ति विशेष का नाम न होकर जाति का विशेष बोधक शब्द है। वल्लभ सम्प्रदाय के गोकुलस्थ सभी महन्त और आचार्य इस नाम से संबोधित किये जाते हैं। प्रधानतया विट्ठलनाथजी, गोकुलनाथ जी और हरिराय जी गोसाईं जी के नाम से प्रख्यात हैं। अन्तिम ने प्रायः अपने ग्रंथों में नाम भी दे दिया है, अथवा उनके ग्रंथ उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। शेष दो में से कौन प्रस्तुत ग्रंथों के रचयिता हैं, यह जानना कठिन है। इसीलिये 'गोसाईं जी' के नाम से इन ग्रंथों का विवरण लिया गया है।

३३ ग्वाल कवि—इनके बनाये हुए पाँच ग्रंथ—'गृष्मादि ॠतुओं के कवित्त' की तीन प्रतियाँ, 'ग्वाल कवि के कवित्त', 'कवित्तों का संग्रह', 'फुटकर कवित्तों का संग्रह' और 'शान्त रस के कवित्तों का संग्रह' इस खोज में नवीन प्राप्त हुए हैं। ये कोई स्वतन्त्र ग्रंथ न होकर उक्त रचयिता की कविताओं के संग्रहमात्र जान पड़ते हैं। किसी ग्रंथ में सन् संवत् नहीं हैं। ग्रंथों का विषय उनके नाम से ही प्रकट है। उनके दो ग्रंथ 'गोपी पचीसी' और 'कवि दर्पण', भी उपरोक्त ग्रंथों के साथ ही मिले हैं; परन्तु ये पहले विवृत हो चुके हैं, देखिये पहले के लिए खोज विवरण (१९०१, सं० ९०; १९२०–२२, सं० ५८ ए; १९२३ २५, सं० १४६; १९२६–२८, सं० १६१; १९२९–३१, सं० १३५; १९३२–३४, सं० ७३) तथा दूसरे के लिए खोज विवरण (१९१७–१९, सं० ६५ सी)।

३४ हरिभक्त सिंह या हरिबक्स सिंह विसेन—इनका बनाया हुआ 'युगलाष्टक' नामक एक छोटा सा ग्रंथ, जिसमें प्रायः सीताराम के युगल स्वरूप का वर्णन है, इस शोध में नया मिला है। पिछली खोज में इनके दो ग्रंथों 'ज्ञानमहोदधि' और 'रामायन' के विवरण लिए गए हैं, देखिए खोज विवरण (१९०९–११, सं० १०६; १९२३–२५, सं० १५१ और १९१७–१९, सं० ६८)। ये सन् १८४८ के लगभग वर्तमान थे। प्रस्तुत ग्रंथ की प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। रचयिता का भी अन्य विवरण अप्राप्त है।

३५ हरिदास—इनके दो ग्रन्थों—१—भक्तिविलास और २—कवितावली के विवरण लिए गए हैं। कवितावली पिछली खोज में मिल चुकी है, देखिये खोज विवरण (१९२९–३१, सं० १४१)। 'भक्ति विलास' का रचनाकाल सं० १९३८ (सन् १८८१ ई०) है और लिपिकाल संवत् १९८९ (सन् १९३२ ई०)। इस ग्रन्थ में अनेक देवताओं की प्रार्थनाओं के अतिरिक्त संसार की असारता, सन्तसत्संग की महिमा, नाम माहात्म्य और जप-तप तथा भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुए सत्यनामी संप्रदाय के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इसके सवैया विशेष रोचक हैं; किन्तु घनाक्षरी में कहीं-कहीं पिंगल के नियमों का उल्लंघन हो गया है। सिंहावलोकन पर विशेष जोर दिया गया है। इसमें ५०५ छन्द सिंहावलोकन के हैं। सिंहावलोकन का इतना बड़ा ग्रंथ हिन्दी में शायद ही और कोई होगा। कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार इनका जन्म बल्ला सूरपुर (तहसील महाराजगंज, रायबरेली) में हुआ। ये गौर अमेठियावंश के क्षत्री लालसाही के

पुत्र और सुखशाही के पौत्र थे। जन्मकाल सं० १८४९ = १७९२ ई० है। इनका विवाह धम्मौर से हुआ था। इनको तीन पुत्र और एक कन्या थी। यद्यपि ये बाबा रामप्रसादजी अयोध्यावासी से दीक्षित हुए थे तौभी बाबा रघुनाथदास जी (छावनीवाले) के सत्संग में ही अधिक रहा करते थे। इनके बनाए हुए प्रायः आठ ग्रंथ और हैं जिनमें से 'कवित्तावली' आ चुकी है। शेष ७ के नाम इस प्रकार हैं—१—रामायन की टीका शीलावृत्ति, २—समुझाई बुझाई, ३—मसल विवेक, ४—भक्तमाल, ५—प्रश्नोत्तरी, ६—चित्रकाव्य और ७—सप्तछन्दी रामायण।

३६ हरिदास—ये पंजाब खोज विवरण सन् १९२२-२४, सं० ३७ पर नौ ग्रंथों के रचयिता के रूप में उल्लिखित हैं। इस बार भी इनके ११ ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से दो 'जोग समाधि' और 'निरपरवा जोग' उक्त खोज बिवरण में आ गए हैं। शेष का विवरण नीचे दिया जाता है:—

१-अगाध अचिरज जोग ग्रंथ, २-माला जोग ग्रंथ, ३-मनहठ जोग ग्रंथ, ४-मन प्रसंग जोग ग्रंथ, ५-नाँवनिरूप जोग ग्रंथ, ६-निरंजन लीला जोग ग्रंथ, ७-उत्पत्ति अहेत जोग ग्रंथ, ८-बन्दना जोग ग्रंथ तथा ९-बीरारस वैराग्य जोग ग्रन्थ। सभी ग्रंथ सं० १८३८ वि० (१७८१ ई०) के लिखे हुए हैं। रचनाकाल किसी में नहीं दिया है। रचयिता जोधपुर राज्यान्तर्गत डीडवाना नामक स्थान के निवासी थे। इन्होंने सन् १५२० से १५४० ई० तक रचनाएँ कीं : १२० वर्ष की दीर्घायु में इनकी मृत्यु हुई। ये निरंजनी पंथ के संस्थापक थे, देखिए खोज विवरण (१६०२, सं० ६४; १९०५, सं० ४७)।

३७ हरिदास 'वेन'—हरिदास 'वेन' के दो खंडित ग्रंथों के विवरण प्रथम बार लिए गए हैं। ग्रंथों के नाम हैं—'गोपी स्याम संदेश' और 'पदावली'। 'गोपी श्याम सन्देश' में गोपी उद्धव संवाद के व्याज से कृष्ण प्रेम का सरस वर्णन किया गया है। 'पदावली' में कृष्णभक्ति विषयक उत्तम पद हैं। रचयिता टट्टी संप्रदाय के संस्थापक बाबा हरिदास के अनुयायी थे। इनका कथन है कि ये स्वामी हरिदास जी के वंशधर गोस्वामी रामप्रसाद के शिष्य थे। पहले ग्रन्थ का रचनाकाल १८७९ वि० (१८२२ ई०) है। लिपिकाल अज्ञात है। दूसरे ग्रंथ में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही। रचयिता खोज में नवोपलब्ध हैं।

३८ हरिराय—इनके रचे बारह ग्रन्थ मिले हैं जिनमें से प्रायः आधे निम्नलिखित रीत्यनुसार पिछले खोज विवरणों में आ चुके हैं:—

क्र० सं नाम ग्रंथ	खोज विवरण
१—भाव २—भावना	(१९३२-३४, सं० ८३ जी)।
३—चौरासी वैष्णवों की वार्ता	(१९०९—११, सं० ११५ बी; १९२३—२५, सं० १६०)।
४—नित्यलीला	(१९२३—२५, सं० १६०)।
५—शिक्षा	(१९२९—३१, सं० १४५)।
६—भावना (बसन्त होली की)	(१९३२—३४, सं० ८३ यफ)।

शेष छः—१–दैन्यामृत, २–निरोध लक्षण, ३–स्नेहामृत, ४–स्फुरित कृष्ण प्रेमामृत, ५–सन्यास निर्णय और ६–वचनामृत नवीन रचनाएँ हैं। इनमें से एक में भी रचनाकाल और लिपिकाल का ब्यौरा नहीं है। पहले ग्रन्थ में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार दैन्यभाव से भक्ति करने का प्रतिपादन है। दूसरे में सांसारिक बातों का निषेध और भगवद्भक्ति की तल्लीनता का वर्णन है। तीसरे में कृष्ण की भक्ति और उनकी मधुर लीलाओं का वर्णन है। चौथे में कृष्ण प्रेम एवं भक्ति का प्रतिपादन है। पाँचवें में वल्लभाचार्य के इसी नाम के ग्रन्थ की व्याख्या है जिसमें पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार भक्तिरूपी सन्यास का वर्णन है। छठवें में वल्लभाचार्य जी के नवधा भक्ति सम्बन्धी उपदेश हैं, मूल ग्रंथ वल्लभाचार्य जी ने संस्कृत में लिखा है जिसपर हरिरायजी ने यह टीका की है।

कहा जाता है कि हरिराय जी 'रसिकराय', 'रसिक प्रीतम' और 'रसिक सिरमौर' आदि कई नामों से लिखते थे। ये श्रीनाथ द्वार के महन्थ और वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे, देखिए खोज विवरण (१९२३–२५ ई०, संख्या १६०)। इनका रचनाकाल १५५० ई० के लगभग माना गया है। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त इनकी 'रसिकदास' उपनाम से दो अन्य रचनाएँ -'रसिक सागर' और 'चात्रक लगन' भी मिली हैं जिनका उल्लेख प्रस्तुत खोजविवरण में संख्या ८५ पर है। ये दोनों ही कृष्णभक्ति विषयक रचनाएँ हैं। 'चात्रक लगन' की प्रति किसी नारायणदास की लिखी हुई है; पर ऐसा विदित होता है कि उसने किसी हरिदास की लिखी हुई प्रति से नकल की अथवा इसको उससे लिखवाया:—"लिखत मथुरा माँझ व्यासदास के पास, श्री जमुना के तीर पर लिखत कियो हरिदास।" दोनों रचनाओं की प्रतियों में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। रसिकदास का उल्लेख खोजविवरण (१९२३–२५, सं० ३५७) पर हो चुका है।

३९ हस्ति—इनका और इनके दो ग्रंथों—१–वैद्य वल्लभ और २–वन्ध्याकल्प चोपई का पता पहले पहल लगा है। पहला ग्रंथ खड़ी बोली और ब्रजभाषा मिश्रित गद्य में है जिसमें राजस्थानी का भी मेल है। रचनाकाल दोनों का अज्ञात है। पहले ग्रंथ की दो प्रतियाँ हैं जिनमें से केवल एक में ही लिपिकाल संवत् १९३५ वि० = १८७८ ई० लिखा हुआ है। दोनों ही ग्रन्थ वैद्यक से सम्बन्ध रखते हैं और दोनों ही मूल संस्कृत ग्रंथों के जिनका रचयिता हस्ति जान पड़ता है अनुवाद हैं। 'वैद्यवल्लभ' में अनुवादक का कोई उल्लेख नहीं, पर 'वन्ध्या कल्प चोपई' में जो विशुद्ध राजस्थानी रचना है स्पष्टरूप से हस्ति नाम दिया है। ग्रंथों की भाषा से ये राजस्थानी विदित होते हैं। अन्य परिचय अज्ञात है। 'वंध्याकल्प चोपई' का लिपिकाल सं० १८२७ = १७७० ई० है।

४० हजारीदास—इनके रचे हुए 'त्रिकाण्डबोध' और 'सुन्यविलास' नामक ग्रंथ पहली बार मिले हैं जिनके विवरण लिए गये हैं। प्रथम ग्रन्थ में कर्म, उपासना और ज्ञान का तीन भागों में विशद विवेचन किया गया है। दूसरे में शून्य की महत्ता का वर्णन है जिसमें शून्य को ही समस्त सृष्टि का आधार माना गया है। रचयिता मैनपुरी जिला के

निवासी और जाति के चौहान क्षत्री थे। इनके गुरू गजाधरसिंह जिस फौज में नौकर थे उसी में ये भी थे। जब पेंशन मिल गई तो दोनों भूलामऊ (जिला सुल्तानपुर) में रहने लगे। इनके प्रस्तुत ग्रन्थों में से केवल पहले ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है जो अस्पष्ट है:—

संवत् दिक[१०] श्रुति[४] वान[५] सत, तिथि हरिमाधो मास।
सुक्कपक्ष दिनकर दिवस, पूरन ग्रंथ विलास॥

विवरण पत्र में पं० त्रिभुवन प्रसाद (विवरण लेनेवाले) ने ग्रन्थ का रचनाकाल १८६९ वि० (१८१२ ई०) माना है; परन्तु किस आधार पर माना है, यह ज्ञात नहीं। यही बात ग्रंथों की प्रतियों के लेखनकाल के विषय में भी है। 'त्रिकांडबोध' की प्रति का लिपिकाल सं० १९४० (१८८३ ई०) और 'शून्यविलास' की प्रतिका लिपिकाल सं० १९८८ (१९३१ ई०) दिये हैं जहाँ कि स्वयं इन प्रतियों में लिपिकाल का कोई उल्लेख नहीं है। विशेष के लिये देखिए विवरण अंश संख्या १३।

४१ हजारीलाल—ये पुवायाँ के अधिवासी थे और इस नाम के अन्य रचयिताओं से भिन्न हैं, देखिये खोजविवरण (१९२९-३१, सं० १५२)। इनकी 'बारहमासी' की एक खंडित प्रति के विवरण लिए गये हैं जिसमें रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। इसमें बारह मासों के क्रम से लंका विजय का वर्णन किया गया है।

४२ इच्छाराम—ये वल्लभ संप्रदाय के वैष्णव थे। प्रस्तुत खोज में इनका पता पहले पहल लगा है। संभवतः नित्य के पद (नि० पद) नाम से इनका २५४१ अनुष्टुप् श्लोकों का एक वृहत् पद-संग्रह मिला है जिसमें कुछ पद तो विशुद्ध श्रृंगार विषयक और कुछ उत्सवों पर गाने योग्य एवं कुछ बधाई आदि के हैं। इनकी प्रस्तुत प्रति खंडित है और उसमें रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। रचयिता का और कोई परिचय नहीं मिलता। ये पिछले खोज विवरणों में उल्लिखित इस नाम के रचयिताओं से भिन्न हैं, देखिये खोजविवरण (१९०९-११, सं० १२१ और १९०६-८, सं० २६३)। ये अच्छे कवि विदित होते हैं।

४३ जगन्नाथ—इनका और इनकी रचना 'चौरासीबोल' का प्रस्तुत खोज में पहले पहल पता चला है। इस नाम के कई ग्रन्थकार पिछले खोजविवरणों में आ चुके हैं, देखिये खोजविवरण (१९०९-११, सं० १२३, १२४, १२५, १२६ और १९०५, सं० ७५)। परन्तु यह निश्चित नहीं कि ये उनमें से कोई एक हैं अथवा नहीं। ग्रन्थ की भाषा में कुछ राजस्थानी का भी मिश्रण है। अतः इससे पता चलता है कि ये राजस्थान की ओर के थे। ग्रन्थ में रचनाकाल और लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। इसमें उपदेशात्मक चौरासी बोलों का वर्णन किया गया है।

४४ जगन्नाथ शास्त्री—इनका बनाया हुआ 'नाड़ी ज्ञान प्रकाश' नामक ग्रंथ मिला है जिसके विवरण लिये गए हैं। खोज में ये नवोपलब्ध हैं। अन्य परिचय इनका अप्राप्त है। ग्रंथ के रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं। यह इस नाम के मूल संस्कृत ग्रंथ का खड़ी बोली गद्य में किया गया अनुवाद है। नाड़ी ज्ञान विषयक यह सुन्दर रचना है।

४५ जन जयकृष्ण—जन जयकृष्ण का रचा हुआ 'वैराग्य सत'' नामक ग्रंथ इस शोध में पहली बार मिला है जिसमें संसार से विरक्त होकर भगवद्भक्ति का उपदेश किया गया है। रचनाकाल अज्ञात है। लिपिकाल संवत् १८३४ वि० (सन् १७७७ ई०) दिया है। पिछले खोजविवरणों में प्रस्तुत रचयिता के नाम से दो व्यक्तियों का उल्लेख है, देखिए खोजविवरण (१९००, सं० ८०; १९०२, सं० ६८,८९ और ९१)। परन्तु प्रमाणाभाव में उनमें से किसी के साथ इनकी एकता स्थापित करना संभव नहीं। अपने सम्बन्ध में इन्होंने कोई विवरण नहीं दिया है।

४६ जनराज—ये जाति के वैश्य एवं एक अच्छे कवि थे। इनका रचा हुआ ''कविता रस विनोद'' नामक ग्रंथ पिछली खोज में मिल चुका है, देखिये खोजविवरण (१९३२–३४, सं० ९६) जिसके अनुसार ये सन् १७७६ ई० में वर्तमान थे। इस बार इनके एक दूसरे ग्रन्थ 'श्रीकृष्णचन्द्र लीला ललित विनोद' के विवरण प्रथम बार लिये गये हैं। इसमें दशम स्कंध भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण चरित्र वर्णित है। सम्भवतः यह भागवत दशम स्कन्ध का अनुवाद है। इसकी प्रस्तुत प्रति में न तो रचनाकाल दिया है और न लिपिकाल ही।

४७ झामदास—ये एक सन्त थे। युवावस्था में जब सेना में नौकर थे तो इन्हें कतिपय महात्माओं का दर्शन हुआ था जिन्होंने इनको आत्मज्ञान का उपदेश दिया। कुछ समय तक इन्होंने हरिद्वार में रहकर तपस्या की। पश्चात् कुछ ईश्वरीय प्रेरणा से ये वहाँ से चल दिये और दखिनवारा (जिला सुलतानपुर) नामक स्थान में रहने लगे। जाति के ये वैस क्षत्रिय थे। पिछली खोज में इनका 'चरित्र प्रकाश' मिला है, देखिये खोज विवरण (१९२३–२५, सं० १९१)। इस बार इनकी ''शब्दावली'' के विवरण प्रथम बार लिये गये हैं। इसमें निर्गुण मत का प्रतिपादन है; परन्तु राम और कृष्ण भक्ति विषय पर भी रचना की गई है। पं० त्रिभुवन प्रसाद ने, जिन्होंने इस ग्रंथ का विवरण लिया है, इसका रचनाकाल सं० १८३१ (१७७४ ई०) दिया है। परन्तु ग्रंथ में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

४८ जीमन महाराज की माँ—गोकुल के बालकृष्ण मंदिर के गुसांइयों के वंश में एक जीमन जी महाराज हुए। उनके शरीर पात हुए लगभग ४० वर्ष बतलाए जाते हैं। उन्हीं की माता ने 'वनयात्रा' नामक एक ग्रंथ बनाया था जो प्रस्तुत विवरण में संमिलित है। इसकी भाषा में गुजराती का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें ब्रज के विभिन्न स्थानों—गोकुल, मथुरा, गोवर्द्धन, कामवन, बरसाना, नन्दगाँव, माँट और वृंदावन आदि की महिमा और पवित्रता का वर्णन है। रचनाकाल एवं लिपिकाल नहीं दिये गये हैं। रचयिता का विशेष वृत्त उपलब्ध नहीं। विवरण में संख्या ३ पर भी इनका उल्लेख है।

४९ कबीरदास—हिन्दी के सुप्रसिद्ध सन्त कवि एवं कबीर मत के संस्थापक महात्मा कबीर अनेक ग्रंथों के साथ अबतक के लगभग समस्त खोजविवरणों में उल्लिखित हैं। उनमें उनकी जीवनी पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। अतएव यहाँ उन पर

कुछ अधिक लिखना किसी भी नवीन तथ्य के अभाव में अनावश्यक है। प्रस्तुत खोज में उनके ४४ ग्रन्थों की ४७ प्रतियों के विवरण लिए गए हैं जिनमें से कई ग्रन्थ पिछले खोज विवरणों में आ चुके हैं। नीचे उनके नाम पर मिले २६ ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है:—

क्र० सं० नाम ग्रंथ	प्रतियाँ	लिपिकाल
१—अवधु की बारह खड़ी	१	×
२—अगाध बोध	१	१७८१ ई०
३—अष्टांगयोग	१	१६९० ई०
४—अष्टपदी रमेणी	१	१७८१ ई०
५—बार ग्रंथ	१	१६९० ई०
६—बावनी रमेणी	१	१७८१ ई०
७—बेलि	१	१९०५ ई०
८—बीजक चिन्तामणि	१	×
९—विप्र मतीसी	१	×
१०—विरहुली	१	१९०५ ई०
११—चाँचर	१	×
१२—गुरु महिमा	१	१७९० ई०
१३—हिंडोल	१	×
१४—इकतार की रमैनी	१	×
१५—जन्म पत्रिका प्रकाश रमेणी	१	१७९२ ई०
१६—कबीर भेद	१	१६९० ई०
१७—कबीर मंगल	१	×
१८—नवपदी रमेनी	१	१६९० ई०
१९—पंच मुद्रा	१	,,
२०—शब्द	१	१९०५ ई०
२१—सप्तपदी रमेनी	१	१६९० ई०
२२—षट्दर्शन सार	१	,,
२३—सोलह कला तिथि	१	,,
२४—बसन्त	१	×
२५—ककहरा (आनुमानिक)	१	१६९० ई०
२६—रेखता	१	,,

५० कल्याण—ये खोज में नवोपलब्ध हैं। इनका बनाया हुआ 'सुदामा चरित्र' मिला है जिसके विवरण लिये गये हैं। इसका न तो रचनाकाल ही दिया गया है और न लिपिकाल ही। इसकी प्रस्तुत प्रति खंडित है और साथ ही साथ बहुत अशुद्ध लिखी हुई है। केवल १८ सवैया और दो घनाक्षरियाँ हैं। रचयिता का वृत्त अज्ञात है।

५१ कल्याणराय—प्रस्तुत खोज में इनका 'जलभेद' नामक ग्रंथ मिला है जिसके विवरण लिये गये हैं। यह वल्लभाचार्य कृत इस नाम के मूल संस्कृत ग्रंथ का ब्रजभाषा में गद्यानुवाद है। इसमें पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि मनसा, वाचा, कर्मणा तथा ज्ञानेद्रियों और कर्मेंद्रियों द्वारा किस प्रकार भगवद् आराधना करनी चाहिए। रचयिता के पद भी अनेक संग्रहों में मिलते हैं। ये बड़े भक्त थे। जयपुर में इनके ठाकुरजी अब भी हैं जिनकी बड़ी मान्यता है।

५२ कमलानन्द—कमलानन्द और इनका ग्रंथ 'सुदामाचरित्र' खोज में पहले पहल मिले हैं। ग्रंथ के रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं। विवरण में समस्त ग्रंथ की प्रतिलिपि कर दी गई है। इसका विषय इसके नाम से ही स्पष्ट है। कवि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं, पर इनकी प्रस्तुत पुस्तक छोटी होते हुए भी काव्य की दृष्टि से उत्तम है।

५३—केशवदास—ये इस नाम के कवियों से भिन्न कोई दूसरे केशवदास हैं। इनका एवं इनकी 'शब्दावली' का पता पहले पहल चला है। ग्रंथ के रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं। इसमें नाम माहात्म्य आदि सत्यनाम संप्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। रचयिता सत्यनामी साधु झामदास के शिष्य थे। कहा जाता है कि इनके बनाये हुए कुछ दोहे और पद भी हैं। इनकी समाधि इनके गुरु झामदास की कुटी पर बनी हुई है। झामदास का पंथ रामापंथ कहलाता है जिसके ये दूसरे महन्थ थे। अन्वेषक (श्री त्रिभुवनप्रसाद त्रिपाठी, प्राणपांडे का पुरवा, तिलोई (रायबरेली) को पता चला कि इनका जन्म सुलतानपुर जिला के अन्तर्गत झामदास बाबा की कुटीपर सन् १७८३ ई० में हुआ था और सन् १८४३ ई० के लगभग स्वर्गस्थ हुए थे।

५४ खड्गदास (खरगदास)—इनके बनाए हुए (१) क्रियाशोधन गायत्री (२) शब्द रेख्ता (३) शब्द रमैनी (४) शब्द सुमिरन कौ मन्त्र तथा (५) स्तोत्रविज्ञान या शब्द-स्तोत्र विज्ञान—पाँच ग्रन्थ इस शोध में मिले हैं। इनमें से अन्तिम ग्रंथ खोजविवरण (१९३२-३४, सं० ११५) में आ चुका है। इनकी प्रस्तुत प्रतियों में से किसी में भी रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। सभी ग्रन्थों का विषय निर्गुण सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है। कवि का विशेष परिचय उपलब्ध नहीं होता, परन्तु ये कोई कबीरपंथी साधु जान पड़ते हैं।

५५ किशोरीलाल—'शृंगार छन्दावली' और 'वैराग्य छन्दावली' नामक इनके दो ग्रंथों के विवरण लिए गये हैं। ग्रंथों का विषय उनके नामों से ही प्रकट है। इनकी प्रस्तुत प्रतियों में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। पहला ग्रंथ पूर्ण है और दूसरे के ३३ छन्द लुप्त हो गए हैं। कवि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं।

५६ लालजी रंगखान—लालजी रंगखान अपने बनाए 'सुधा०' नामक ग्रन्थ के साथ खोज में नवोपलब्ध हैं। ग्रंथ खंडित है। इसमें नायिकाभेद वर्णन किया गया है। इसकी प्रस्तुत प्रति में लिपिकाल सं० १८४७ (१७९० ई०) दिया है। रचनाकाल अज्ञात

है। रचयिता जाति के मुसलमान थे। असल नाम तो इनका 'लालजी' था, पर इन्हें 'ललन' भी कहते थे। मुसलमानी नाम 'रंगखान' था। जयपुर के महाराज सवाई महेन्द्रप्रतापसिंह (सं० १८३६-६० वि०) के आश्रय में रहते थे। विशेष के लिए देखिए विवरण में सं० ५।

५७ लेखराजसिंह—प्रस्तुत रचयिता अपने 'पदार्थतत्व दीपिका' और 'वैद्यक (अमृतसागर)' के साथ क्रमशः खोजविवरण (१९२६-२८, सं० २६८ और १९३२-३४ ई०, सं० १३५) में उल्लिखित हैं। ये १९ वीं शताब्दी में हुए हैं और बड़ी अच्छी योग्यता के व्यक्ति थे। कई विषयों पर इनका अच्छा अधिकार था। नगरा खुशाली (मजरै मौजा, करहरा, तहसील व परगना, शिकोहाबाद, जिला मैनपुरी) के रईस या जमीदार थे। इस बार इनका एक छोटा सा ग्रंथ 'दिन नापने का कायदा' नाम से मिला है जिसके विवरण लिए गये हैं। इसमें इन्होंने ज्योतिष मतानुसार दिन नापने तथा लड़का हुआ है या लड़की आदि जानने के नियम लिखे हैं। यह खड़ी बोली में है और इसमें गद्य पद्य दोनों ही का व्यवहार हुआ है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं।

५८ माधव—इनका और इनके ग्रन्थ 'गो गुहार' का खोज में पहले पहल पता लगा है। वृत्त इनका अप्राप्त है। ग्रंथ में गो जाति की दुर्दशा, उसका दैन्य और दुःख का वर्णन है। इसकी प्रस्तुत प्रति में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही।

५९ माधवरायजी या माधोरायजी – इनकी रची हुई 'मथुरेश जी की भावना' नामक रचना के विवरण लिए गये हैं जिसमें कोटा (राजस्थान) में स्थित वल्लभ संप्रदाय की सात मूर्तियों में से एक मथुरेश जी की पूजा अर्चना की विधि एवं संप्रदाय के वर्ष भर के त्योहार मनाये जाने की रीतियों का वर्णन है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। यह ब्रजभाषा गद्य में है। अतः इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रचयिता का केवल इतना ही पता चलता है कि ये वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। खोज में ये नवोपलब्ध हैं।

६० महादेव जोशी—इस त्रिवर्षी में इनकी एक छोटी सी रचना 'शकुन विचार' नाम से मिली है जिसके विवरण लिए गये हैं। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। भाषा इसकी राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली है तथा आदि और अन्त के इसके कुछ पृष्ठ लुप्त हो गए हैं। इसमें कृषि विषयक शकुनों और ज्योतिष का वर्णन है। रचयिता का वृत्त अनुपलब्ध है।

६१ मातादीन शुक्ल—इनके रचे हुए तीन ग्रंथों १-रामगीताष्टक २-रससारिणी तथा ३-वृत्त दीपिका के विवरण लिये गये हैं जिनमें से प्रथम दो खोजविवरण (१९२६-२८ सं० २९७) में आ चुके हैं। तीसरा ग्रन्थ नया है। इसमें संक्षिप्त पिंगल वर्णित है। मूल ग्रंथ संस्कृत में है। इसका रचनाकाल सं० १८९९ है। लिपिकाल अज्ञात है। रचयिता प्रतापगढ़ जिले के अजगरा नामक स्थान के निवासी सयूंपारीण शुक्ल ब्राह्मण थे। अजगरा

नाम की उत्पत्ति के विषय में एक किंवदन्ती कही जाती है कि अनेक यज्ञों के फलस्वरूप नहुष राजा इंद्रासन प्राप्त कर शची (इन्द्राणी) के प्रेम में उन्मत्त होकर और सप्तऋषियों को यान में जोतकर शची के पास आ रहा था। शीघ्र पहुँच जाने की इच्छा से ऋषियों को सर्प सर्प शीघ्र चलो, शीघ्र चलो का आदेश देता था तो उन्होंने क्रोधावेश में उसे सर्प हो जाने का शाप दे दिया। अतएव वह 'सर्प' (अजगर) होकर यहीं गिरा। तभी इस ग्राम का नाम अजगरा पड़ गया। यहाँ पर एक तालाब के किनारे सर्प की मूर्ति अभी भी बनी हुई है जिसकी पूजा होती है और जहाँ प्रतिवर्ष एक मेला भी लगता है।

६२ मिश्र—इनकी 'रक्षावली' नामक ग्रंथ के विवरण लिये गए हैं। जिसमें रक्षा के निमित्त अनेक देवी देवताओं के मन्त्रादि लिखे हुए हैं। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हुए है। ग्रंथकार के सम्बन्ध में केवल इतना ही कि ये मिश्र ब्राह्मण थे और कोई पता नहीं चलता:—'इति श्री मिश्र वंशावतंश विरचितं रक्षावली समाप्तम्।'

६३ मिट्ठूलाल—ये "फूल चिन्तनी" के रचयिता हैं। अन्य विवरण इनका अज्ञात है। खोज में ये नवोपलब्ध हैं। ग्रंथ में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही। यद्यपि इसका नाम फूलचिन्तनी है परन्तु इसमें फूलों के बदले फलों ही के दोहे अधिक हैं। वर्णन विरह श्रृंगार का है जिसका सम्बन्ध श्री कृष्ण और एक गोपी के प्रेम से है। उसका निर्वाह करते हुए कवि ने प्रत्येक दोहे में कोई न कोई एक श्लिष्टपद ऐसा रखा है जो फूल अथवा फल के साथ अपना कोई दूसरा भी अर्थ रखता है।

६४ मोतीलाल—ये खोज में नवोपलब्ध हैं। 'मोतीलाल के गीत' नाम से इनकी एक रचना मिली है जिसके विवरण लिये गए हैं। इनके सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त कि ये वृन्दावन के निवासी थे और कुछ ज्ञात नहीं। ग्रन्थ में राधाकृष्ण का प्रेम, गोपियों का आमोद प्रमोद, फाग और होली संबंधी गीतों का संग्रह है। कुछ उत्सव सम्बन्धी पद भी इसमें आये हैं।

६५ मुकुन्ददास—मुकुन्ददास और इनका 'भागवत महापुराण' का पता खोज में पहले पहल लगा है। विवरण में एक दूसरे मुकुन्ददास का भी वर्णन है जो शाहजादा सलीम (जहाँगीर) के आश्रित सन् १६१५ ई० में उपस्थित और 'कोकभाषा' के रचयिता थे, देखिये खोजविवरण (१९०९-११, सं० १८३ ए, बी)। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तुत मुकुन्ददास उनसे भिन्न हैं अथवा अभिन्न ? इनका अन्य विवरण अप्राप्त है। प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रति में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही।

६६ मुनिमानजी—इनका रचा हुआ 'कवि विनोदनाथ भाषा निदान चिकित्सा' नामक वैद्यकग्रंथ मिला है जिसके विवरण लिए गये हैं। यह सं० १७४५ वि० = १६८८ ई० का रचा हुआ है और इसकी प्रस्तुत प्रति सं० १८७६ = १८१९ ई० की लिखी हुई है रचयिता बीकानेर के खरतरगछ के सरदार भट्टारक जिनचंद के शिष्य श्रीसुमतिमेर के शिष्य और जैन 'मतावलंबी' थे

ग्रंथ में चिकित्सा के चार चरणों, नाड़ी, रोगज्ञान, रोगलक्षण, रोग चिकित्सा तथा ओषधियों का वर्णन है। आगे चूर्ण प्रकरण गुटिका प्रकरण अवलेह प्रकरण तथा रसायन प्रकरणों का भी वर्णन है। इस प्रकार कुल पाँच प्रकरण ग्रंथ में हैं। रचयिता अपने एक ग्रंथ 'कविप्रमोदरस' के साथ खोज विवरण (१९२०–२२, सं० १०१) में उल्लिखित है। विशेष के लिये देखिए विवरण में संख्या १२।

६७ नन्ददास—हिंदी के सुप्रसिद्ध वैष्णव एवं अष्टछाप कवि नन्ददास पिछले कई खोज विवरणों में उल्लिखित हैं। इस बार इनके ८ ग्रंथों की १९ प्रतियाँ मिली हैं। परंतु एक छोटे से ग्रंथ 'कृष्णमंगल' को छोड़कर अन्य सभी पहले मिल चुके हैं, देखिए खोज विवरण (१९०९–११, सं० २०८; १९१७–१९, सं० ११९; १९३२–३४, सं० १५२; दिल्ली खोज विवरण १९३१, सं० ६१)। 'कृष्णमंगल' के रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं। इसमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव का वर्णन है। ग्रंथों की नामावली निम्नलिखित हैः—

क्रम सं०	नाम ग्रंथ	प्रतियाँ	क्रम सं०	नाम ग्रंथ	प्रतियाँ
१—	अनेकार्थ मंजरी	३	५—	नन्द ग्रंथावली	१
२—	भ्रमर गीत	३	६—	नासकेत पुराण	१
३—	विरह मंजरी	३	७—	श्याम सगाई	१
४—	नाम माला या मानमंजरी	६	८—	कृष्ण मंगल	१

६८ नौबतिराय—नौबति राय के 'भजन महाभारत उद्योग पर्व' के विवरण लिए गए हैं। अन्य परिचय इनका अज्ञात है; पर खोज में ये नवोपलब्ध हैं। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। इसमें महाभारत उद्योग पर्व की कथा संबंधी भजन हैं जो ग्राम्य कविता के नमूने हैं। ऐसे भजन प्रायः व्रज और उसके आस-पास के स्थानों में डफ पर गाए जाते हैं। ख्यालों की भाँति इन भजनों के भी दंगल होते हैं। अवसर विशेष के लिए खासतौर से तैयारी की जाती है और दंगल में हारने वाले लज्जित होकर मैदान छोड़ जाते हैं तथा जीतने वाले की प्रशंसा होती है। ग्राम्य कविता होने पर भी इस प्रकार के भजनों में शास्त्रीयज्ञान का पूर्ण संपर्क रखने का उद्योग किया जाता है। परंतु कहीं-कहीं इतना गूढ़ कर देते हैं कि अच्छे-अच्छे साहित्यिकों को भी अर्थ लगाना कठिन हो जाता है।

६९ नवीन कवि—नवीन कवि कृत 'प्रबोध रस सुधासागर' या 'सुधासर' नामक ग्रंथ की दो प्रतियों के विवरण लिए गए हैं। ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १८९५ है। इसकी प्रस्तुत प्रतियाँ क्रमशः सं० १८९६ और १९१० वि० की लिखी हुई हैं। ग्रंथकार का नाम गोपाल सिंह है। ये वृंदावन में रहते थे तथा जाति के कायस्थ और जयपुर के ईश कवि के, जिन्होंने इन्हें 'नवीन' की उपाधि दी थी, शिष्य थेः—"श्री गुरु ईश प्रवीन कृपा करि दीन को छाप "नवीन" की दीनी"। नाभा राज्य के 'मालवेंद्र महाराज जसवन्त सिंह तथा इनके पुत्र देवेंद्र इनके आश्रयदाता थे। कुछ काल तक ये गवालियर में भी रहे। इनके रचे

हुए चार ग्रंथ कहे जाते हैं जिनके नाम हैं, १–सुधासागर, २–सरस रस, ३–नेहनिदान और ४–रंगतरंग। इन सबमें प्रस्तुत ग्रंथ बड़ा और महत्वपूर्ण है। इसमें श्रृंगार, ब्रजरस रीति, विभिन्न कवियों द्वारा किया गया रामसमाज, नीति, भक्ति, कवियों के नामों में दान-लीला, कृष्णगोपियों का प्रश्नोत्तर एवं विविध जानवरों और पक्षियों की लड़ाइयों का वर्णन हुआ है। २५७ कवियों की रचनाएँ इसमें संगृहीत हैं जिनकी नामावली विवरण पत्र में विषय के खाने के अंतर्गत दी हुई हैं। ग्रंथस्वामी, पं० मयाशंकरजी याज्ञिक इस ग्रंथ के विषय में एक लेख 'साहित्य समालोचक' (श्रावण १९८२ वि०, पृ० २२०) में लिख चुके हैं। उनका कहना इस प्रकार है:—"नवीन कवि के आश्रयदाता जोधपुर नरेश जसवंत सिंह नहीं थे जैसा कि १९०५ के खोजविवरण में दिया हुआ है वरन् नाभा के राजा जसवन्तसिंह थे।" हो सकता है पिछले खोजविवरण में उल्लिखित नवीन प्रस्तुत नवीन न हों, परंतु संभावना यही जान पड़ती है कि दोनों एक ही हैं। प्रस्तुत ग्रंथ का रचनाकाल इस प्रकार दिया है:—

"प्रभु सिधि कवि रस तत्व गिन, संवतसर अवरेषि।
अर्जुन शुक्ला पंचमी, सोम सुधासर लेष॥"

विशेष के लिए देखिये विवरण अंश संख्या ४।

७० नेवलसिंह—इनके बनाये हुए 'मंगलगीता' और 'शब्दावली' नामक दो ग्रंथ मिले हैं। रचनाकाल दोनों ग्रंथों का अज्ञात है। लिपिकाल एक ही सं० १९८८ (१९३१ ई०) दिया है। पहले ग्रंथ में रामजन्म संबंधी मंगल और दूसरे में नाम माहात्म्य का वर्णन है। रचयिता का वृत्त अनुपलब्ध है। ये संभवतः नवलसिंह प्रधान विदित होते हैं जिनका उल्लेख पिछले खोजविवरणों में हो चुका है, देखिए खोजविवरण (१९०५ और १९०६–८)।

७१ पहलवानदास—इनका रचा हुआ 'गुरुमहातम' ग्रंथ खोज में नया मिला है जिसका रचनाकाल सं० १८५२ वि०=१७९५ ई० है। इसकी प्रस्तुत प्रति सं० १९३५ वि० = १८७८ ई० की लिखी हुई है। इसमें गुरु की महिमा का वर्णन है। रचयिता भारद्वाज गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण थे। पिता का नाम दुजई पाँड़े था। इनकी जन्मभूमि बल्दूपाँड़े का पुरवा (सुलतानपुर) थी, परन्तु किसी सम्बन्ध से जिला रायबरेली के अन्तर्गत भीखूपुर में रहते थे। इनका 'उपाख्यान विवेक' और 'मसलानामा' पहले मिल चुके हैं, देखिए खोज विवरण (१९०९–११, सं० २२१ और १९१७–१९, सं० १७१)। सत्यनामी संप्रदाय के अनुयायी महात्मा सिद्धदास के ये शिष्य थे, परन्तु विवरण में इन्हें दूलनदास का शिष्य बतलाया गया है जो भूल जान पड़ती है। ये अधिक पढ़े लिखे तो नहीं थे, परंतु साधु सन्तों की संगति में रहकर इन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

७२ परमानन्ददास (स्वामी)—इनके रचे हुए दो ग्रंथ 'परमानन्द विलास' और 'बहुरंगीसार' पिछली खोज में मिल चुके हैं, देखिये खोज विवरण (१९२६–२८, सं० ३४२; १९२९–३१, सं० २६३)। उक्त खोजविवरणों में से प्रथम में उल्लिखित 'बहुरंगीसार'

में दिए हुए दोहे के आधारपर उसका रचनाकाल सं० १८९० (१८३३ ई०) माना है जिसकी पुष्टि पिछले खोज विवरण में भी की गई है। इसबार इनके दो अन्य ग्रंथ, १—छठों के पद और २—परमानन्द सागर मिले हैं। इनकी प्रस्तुत प्रतियों में न तो इनके रचनाकाल ही दिये हैं और न लिपिकाल ही। पहले ग्रंथ में कृष्ण की छठी का और दूसरे में कृष्ण के विविध चरित्र और लीलाओं का वर्णन है। रचनाशैली से ये सुप्रसिद्ध अष्टछाप कवि परमानन्द की कृतियाँ जान पड़ती हैं। परन्तु अष्टछाप कवि परमानंन्द का समय 'बहुरंगीसार' वाले परमानन्द के समय से टक्कर नहीं खाता। अतः या तो प्रस्तुत कवि 'बहुरंगीसार' के रचयिता से भिन्न हैं अथवा 'बहुरंगीसार' का रचनालाल ही अशुद्ध है।

७३ परशुराम—इन्होंने भागवत के षष्ठम और सप्तम स्कंधों का हिन्दी में पद्यानुवाद किया जिसका विवरण लिया गया है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। कवि के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। पिछले खोजविवरणों में आए इस नाम के रचयिताओं से ये अभिन्न नहीं जान पड़ते। कविता इनकी साधारण कोटि की है।

७४ परशुराम—प्रस्तुत खोज में इनकी रचनाएँ मिली हैं जिनका विवरण नीचे दिया जाता है:—

क्र० सं० नाम ग्रंथ	विषय
१—नाथलीला	इसमें नाथ लोगों के नाम गिनाये गए हैं।
२—पदावली	उपदेश तथा भक्ति।
३—रोगरथ नाम लीला निधि	परमतत्व का दार्शनिक विवेचन।
४—साँच निषेध लीला	बिना ईश्वर के स्मरण किये सब कुछ व्यर्थ।
५—हरि लीला	हरि की लीला का दार्शनिक विवेचन।
६—लीला समझनी	विश्व प्रपंच का दार्शनिक विवेचन।
७—नक्षत्र लीला	नक्षत्रों पर दार्शनिक विवेचन।
८—निज रूप लीला	परमात्मा के स्वरूप का दार्शनिक विवेचन।
९—निर्वाण लीला	संसार के त्याग और भगवद्भक्ति का उपदेश।
१०—तिथि लीला	तिथियों पर दार्शनिक विवेचन।
११—वार लीला	सातों वारों पर दार्शनिक विवेचन।
१२—बावनी लीला	अक्षर क्रम से ईश्वरी ज्ञान का उपदेश।
१३—विप्रमतीसी	मनुष्य के कर्म धर्मादि पर मार्मिक उपदेश।

विषय और नाम साम्य के विचार से इनके अंतिम चार ग्रन्थ कबीरदास के इसी नाम से मिलते जुलते ग्रंथों से मिलते हैं। इनमें से अंतिम ग्रंथ तो बहुत मिलता है। रचयिता के चार ग्रंथ—जोड़ा, रागसागर, अमरबोधशास्त्र, और धर्म समाधि—पिछली खोज में मिल चुके हैं, देखिए खोजविवरण (१९३२-३४, सं० १६३)। विशेष के लिये देखिए विवरण में संख्या १०।

७५ प्रवीणराय—इनका 'एकादशी महात्म्य भाषा' नामक ग्रंथ खोज में प्रथम बार मिला है। ये रेवती रमण श्री बलरामजी के भक्त जान पड़ते हैं, क्योंकि ग्रंथ में इन्होंने उन्हीं की वन्दना की है। ग्रंथ में सभी एकादशियों का माहात्म्य ब्रह्मांड और भविष्योत्तर पुराण के आधार पर लिखा है। मूल ग्रंथ रचयिता ने वृंदावन के किन्हीं मिश्र भारती से पढे थे जिनका इन्होंने श्रीबलदेवजी (जि० मथुरा) के पंडा श्री दयाकृष्ण के कहने पर किसी मिश्र सुजीवराम के कथा बाँचने के निमित्त हिन्दी में अनुवाद किया। पंडा दयाकृष्ण के ये बड़े प्रशंसक थे। उन्हें वैद्य तथा ज्योतिषी बतलाया है। पंडा दयाकृष्ण वही जान पड़ते हैं जिनके दो ग्रंथों—'बलदेव विलास' और 'बलदेव पिंगल' का उल्लेख खोज विवरण (१९१७-१९, सं० ४६) में है। प्रस्तुत ग्रंथ का र० का० सं० १८८१ वि० है।

७६ पठान-मिश्र—प्रस्तुत खोज में इनके नाम से 'मदनाष्टक' की एक प्रति के विवरण लिए गए हैं। इस संबंध में विशेष के लिये देखिए विवरण अंश संख्या १४।

७७ प्रभुदयाल—ये सिरसागंज (जिला, मैनपुरी) निवासी सुप्रसिद्ध कवि हैं। प्रस्तुत खोज में इनके छः ग्रंथ, १—बारहमासी, २—बारहमासी (दूसरी), ३—ज्ञानदर्पण, ४—ज्ञानसतसई, ५—कवित्त विरह, और ६—पावस मिले हैं जिनमें से ४ और ५ के अतिरिक्त अन्य सब पहले मिल चुके हैं, देखिए खोजविवरण (१९३२-३४, सं० १६६)। उक्त विवरण के अनुसार ये सन् १८८० ई० में वर्तमान थे। ज्ञान सतसई की ३ प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। रचयिता ने प्रचुर मात्रा में रचनाएँ की हैं, परन्तु खेद है कि अभी तक इनके किसी वृहद्ग्रंथ का पता नहीं चला। इनके बहुत से कवित्त उधर के भाटों को कंठस्थ हैं और समयानुसार वे उन्हें सुनाते हैं। इस बात का पता चला है कि तत्कालीन साहित्य समाज में जलेसर (एटा), फिरोज़ाबाद (आगरा) तथा सिरसागंज (मैनपुरी) साहित्यिक केंद्र गिने जाते थे और वर्ष में दो तीन बार प्रत्येक स्थान में कवि सम्मेलन हुआ करते थे। उस समय के कवियों की कविताओं के संग्रह कभी कभी मिल जाते हैं। प्रभुदयाल समय के साथ प्रवाहित होना खूब जानते थे। यही कारण है कि उनकी कविता में सब रंग की कविता मिलेगी। वे साहित्य संगीत दोनों ही के पंडित थे। पहले राम और कृष्ण पर काफी रचना की, फिर आर्यसमाज का जोर होने पर स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज का राग अलापने लगे। जब नौटंकी का शौक बढ़ा तब चौबोले बनाना भी आरंभ कर दिया। ये जाति के गुलहरे कलवार थे। 'ज्ञान सतसई' में—जिसकी तीन प्रतियाँ मिली हैं—ज्ञान, भक्ति, नीति और उपदेश विषयक दोनों का संग्रह है और 'कवित्त विरह' में बिरह संबंधी कवित्त हैं। रचनाकाल और लिपिकाल किसी भी ग्रंथ की प्रति में नहीं दिए हैं।

७८ रघुबरदास—ये खोज में नवोपलब्ध हैं। 'आत्मविचार (प्रकाश)' नाम से इनके वेदांत विषयक एक ग्रंथ के विवरण लिये गए हैं जिसमें गुरु शिष्य संवाद के रूप में 'श्रवण षट्निरूपण, 'पंचकोश निरूपण, समष्टि व्यष्टि निदिध्यासन निरूपण, साक्षात्स्वरूप निरूपण तथा शिष्य अनभै स्वरूप निरूपण नामक छे खंड हैं। इनमें अनुबंध चतुष्टय से

विषय प्रवेश करके वेदान्त संबंधी आवश्यक और मोटी मोटी प्रायः सभी बातों को ले लिया है। कवि के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं। ग्रंथ सं० १८०३ वि० = १७४६ ई० का रचा और संवत् १८८० वि० = १८२३ ई० का लिखा हुआ है। रचनाकाल का दोहा इस प्रकार है:—

"मास भादव जानिये, सुकल पक्ष निरधार।
ता दिन ग्रंथ पूरण भयो, द्वितीये सोमवार॥
संवत् अठारसह गुणहन्ने, सब संतन विश्राम।
भूलचूक सब बकसियो, बार बार प्रणाम॥"

७९ राघवानन्द स्वामी—इनके नाम से "सिद्धान्त पंचमात्रा" नामक एक छोटी सी रचना के विवरण लिये गए हैं। यहाँ राघवानन्द स्वामी का तात्पर्य अन्य किसी और व्यक्ति से न होकर सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द जी के गुरु से है। परंतु जैसा कि रचना में कबीर का उल्लेख होने से पता चलता है, ये शायद ही इस पुस्तक के रचयिता हों। पुस्तक में योग औ वैष्णव वाक्यावलियों का संयोग है जो इस बात का द्योतक है कि किस तरह पुनः प्रादुर्भूत वैष्णव प्रचार उत्तर भारत में योगियों की विचारधारा द्वारा पराभूत हुआ और किस प्रकार योगमत ने निर्गुण संत मत को जन्म दिया। इसमें निर्गुण संत साहित्य का प्रारंभिक रूप मिलता है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं।

८० रामदास—इनकी "प्रभु सुजस पचीसी" नामक रचना खोज में नई मिली है। इसमें केवल पच्चीस छंद हैं जिनमें विविध उदाहरणों द्वारा भगवान का सुयश वर्णन किया गया है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। ग्रन्थकार के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। ये संभवतः खोजविवरण (१९०६–८, सं० २१२ ए, बी) में उल्लिखित रचयिता हैं फिर भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इनकी भाषा और शैली रहीम की मानी जानेवाली सुप्रसिद्ध रचना "मदनाष्टक" की भाषा और शैली से मिलती जुलती है।

८१ रामजी भट्ट—ये खोज में नवोपलब्ध हैं। इनके द्वारा किया गया मूल संस्कृत ग्रंथ "अद्‌भुत रामायण" का हिन्दी पद्यबद्ध अनुवाद का विवरण लिया गया है। इसकी रचना सन् १७८९ ई० में हुई और इसकी प्रस्तुत प्रति सन् १८५५ ई० में लिखी गई। रचयिता गंगा के किनारे स्थित भोजपुर स्थान के निवासी थे। ये गूजर वंशी थे। इनके पिता का नाम गौरीनाथ, पितामह का रामदेव और प्रपितामह का नाम मधुसूदन था।

८२ बाबा रामप्रसाद जी—ये सत्यनामी साधु झामदास के वंशज थे। स्वयं भी सत्यनामी थे। इनके गुरु का नाम केशवदास था। जाँच करने पर पता चला कि इनका जन्म सन् १८१८ ई० में और मृत्यु सन् १८८३ में हुई थी। इनकी शिक्षा दीक्षा भली प्रकार हुई थी जिसका प्रभाव इनकी रचनाओं में दिखाई देता है। प्रस्तुत खोज में इनकी "शब्दावली" के विवरण लिये गये हैं जिसमें सत्यनामी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इसकी प्रति में रचनाकाल नहीं दिया है। लिपिकाल सन् १९१९ ई० है।

८३ **रावकृष्ण**—रावकृष्ण ने धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ 'मनुस्मृति' की हिन्दी गद्य में टीका की । इसकी भाषा फारसी, अरबी और अपभ्रंश मिश्रित है । ग्रंथकी प्रस्तुत प्रतियों में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं ।

८४ **रसखान**—ये ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध मुसलमान कवि हैं । प्रस्तुत खोज में मिला बिना नाम का एक नवीन ग्रंथ संभवतः इनकी कृति है । ग्रन्थ का नाम 'ककहरा रसखान' जान पड़ता है; क्योंकि इसके छंदों का प्रत्येक चरण नागरी अक्षरों के क्रम से आरंभ होता है । इसका विषय प्रेम है जिसके लिए कवि विख्यात है । इसकी प्रस्तुत प्रति में न तो रचनाकाल ही दिया है और न लिपिकाल ही । रचयिता के संबंध में कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है । संभव है ये सुप्रसिद्ध रसखान से भिन्न ही हों ।

८५ **रसिकदास**—इनके लिए देखिये हरिराइ पर लिखी गई टिप्पणी संख्या ३८ ।

८६ **रसिक गोविन्द**—यह ग्रंथकार नवोपलब्ध है । इनका रचा हुआ 'ककोरा या ककहरा रामायण' नामक ग्रन्थ का विवरण लिया गया है जिसमें संक्षिप्त रामचरित्र वर्णित है । ग्रंथ की पूरी नकल कर ली गई है । ककहरा के नियमानुसार 'ह' अक्षर तक वर्णन चलना चाहिए था, परन्तु यह 'स' अक्षर तक के दोहे तक ही पूर्ण हो गया है । इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल का उल्लेख नहीं है ।

८७ **रसिक सुन्दर**—इनका पता खोज में प्रथम बार लगा है । 'गंगाभक्ति विनोद' नामक इनकी एक रचना के विवरण लिये गये हैं । जिसमें गंगा की स्तुति वर्णित है । यह शाहजहाँ के दरबारी पंडित पंडित राज जगन्नाथकृत गंगा लहरी का पद्यानुवाद है । इसका रचनाकाल सं० १९०९ है । लिपिकाल दो प्रतियों में से केवल एक में संवत् १९१० दिया है ।

८८ **रतनदास**—इनकी एक छोटी सी रचना 'बारहमासी' नाम से मिली है जिसके विवरण लिए गये हैं । इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं । साहपुरा (राजस्थान) के सुप्रसिद्ध संत रामचरण की महिमा में यह 'बारहमासी' लिखी गई है । उक्त साधु ने जेठ में संसार का व्यवहार छोड़ दिया था और केवल रामभजन में ही दिन व्यतीत करने लगे थे । किसी ने उदयपुराधीश रणसिंह से उनकी चुगली खाई । अबोध राजा ने बिना सोचे समझे उनके बुलाने के लिए डंडिया भेजे । साधु राजा की कुबुद्धि समझकर पहिले ही वहाँ के लिए चल पड़े और 'झोडोली' नगर पहुँचे । राजा यह वृत्तान्त सुनकर लज्जित हुआ और वहाँ पहुँचकर उन्होंने साधु दर्शन करके एवं कुछ दिन तक उनकी सेवा करके अपनी ग्लानि मिटाई । साधु रामचरण 'रामसनेही पंथ' के संस्थापक थे जिसके प्रस्तुत रचयिता अनुयायी थे । रचयिता ने परमहंस सुरतेश देव (संभवतः इनके गुरू) के द्वारा किए गए साधु रामचरण संबन्धी उपदेशों के आधारपर प्रस्तुत रचना की:—

"श्री रामचरण जी की बारहमासी । दास रतन गाई ।
श्री परमहंस सुरतेसदेव ये गाथा समझाई ॥

श्रवण सुणि जो नर उरि धारै। चारि पदारथ मिलै तास कूँ जम कै नहिं सारै॥
नाँव को ऐसो वलभारी। श्री रामचरणजी संत जाणि ज्यौं समृथ अवतारी॥ २३॥"

८९ रिसाल गिरि—ये प्रसिद्ध ख्यालबाज थे। इनका रचा हुआ 'बारहमासी' नामक ग्रंथ इस शोध में पहिली बार मिला है। इसमें वियोग श्रृंगार का वर्णन है जो ख्याल पद्धति पर रचा गया है। इस 'बारहमासी' को रचयिता के शिष्य 'रामदयाल' ने गाया था और उसके गाते समय 'हीरा' नामक किसी व्यक्ति ने बाँसुरी बजाई थी। रचनाकाल संवत् १७०४=१६४७ ई० है। लिपिकाल नहीं दिया है। संभवतः रिसाल गिरि नाम के एक से अधिक रचयिता हुए हैं जैसा कि पिछले खोजविवरणों से पता चलता है, देखिये खोजविवरण (१९०९-११, सं० २५९; १९२३-२५, सं० २५६)। उक्त विवरणों में उल्लिखित रचयिता और प्रस्तुत रचयिता के समय में ७० वर्षों का अन्तर है।

९० सहदेव भड्डरी—इनका रचा हुआ एक ग्रंथ "छींक व शकुन विचार" नाम से मिला है जिसका इस बार विवरण लिया गया है। ग्रन्थ में छींक सम्बन्धी शुभाशुभ शकुनों का विचार है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिया है। रचयिता का वृत्त उपलब्ध नहीं है। ऐसा विदित होता है कि ये पौराणिक व्यक्ति अर्जुन के भाई हैं जो शकुन शास्त्र के बड़े ज्ञाता थे। किसी ने उन्हीं के नाम से प्रस्तुत रचना की है। भड्डरी भी कोई एक व्यक्ति न होकर एक जाति है जिसको जोसी, जोइषी और जुतषी भी कहते हैं। भड्डरी का उल्लेख भड्डलि नाम से पिछले खोज विवरण में हो चुका है, देखिए खोजविवरण (१९००, सं० ९६; १९१२-१४, सं० २०; १९२६-२८, सं० ४६ ए, बी, सी, डी, ई; दिल्ली विवरण ३१, सं० २३; १९३५-३७, सं० ९०; १९३८-४०, सं० ७ ए)।

९१ सीताराम—ये नायिका भेद और श्रृंगार विषयक ग्रंथ 'रसिकबोध' के रचयिता हैं। ग्रन्थ खोज में प्रथम बार मिला है। इसकी प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल सं० १९२५ दिया है। रचयिता सरयूपारीण उपाध्याय ब्राह्मण थे। पिता का नाम धौंकलराम था। जन्मभूमि इनकी मवैया (बहरेला) बलीपुर (जिला बाराबंकी) थी। ये तिलोई (रायबरेली) नरेश यज्ञपाल सिंह के आश्रय में रहते थे। राजाशंकर सिंह (तिलोई नरेश) के दरबार में भी इनका विद्यमान होना कहा जाता है। 'काव्य-कल्पतरु' (तिलोई राज्य की वंशावली) नाम से इनका एक ग्रंथ पिछली खोज में मिल चुका है, देखिए खोज विवरण (१९२६-२८, सं० ४३९)।

९२ शिवलाल—इनका और इनकी रचना 'भक्त विरुदावली' का पता प्रस्तुत खोज में पहले पहल लगा है। ग्रंथ में रामनाम माहात्म्य वर्णित है। इसकी प्रस्तुत दो प्रतियों में रचनाकाल नहीं दिये हैं। लिपिकाल एक प्रति में सं० १९२३ वि० है। रचयिता का परिचय अज्ञात है।

९३ शिवनारायण—ये जाति के राजपूत और गाजीपुर जिले के निवासी थे। इनके चार ग्रंथ 'सन्तसुन्दर', 'सन्तविलास', 'सन्तविचार' और 'सन्तउपदेश' खोज में मिल

चुके हैं, देखिये खोजविवरण (१९०९-११, सं० २९४; १९२६-२८, सं० ४४७)। इस बार इनके 'सन्तसरन' नामक ग्रंथ के विवरण लिए गये हैं जिसमें सन्तों के गुणों का वर्णन किया गया है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में कोई समय नहीं दिया है। रचयिता संतमतानुयायी थे और अपने नाम पर इन्होंने शिवनारायणी मत का प्रचार किया था जिसके अब भी हजारों अनुयायी हैं।

९४ सोहन--सोहन ने प्रचलित गायन शैली में 'रामजन्म' नामक एक छोटी सी पुस्तिका लिखी है जिसके विवरण लिए गये हैं। खोज में ये नवोपलब्ध हैं। पुस्तक में जन्म से लेकर विवाह तक की रामकथा का संक्षेप में वर्णन किया गया है। रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं। रचयिता का भी वृत्त उपलब्ध नहीं।

९५ सुखसखी—ये सखी संप्रदाय के वैष्णव थे। इनके बनाये 'रंगमाला' तथा 'आठों सात्विक' नामक दो ग्रन्थ पिछली खोज में मिल चुके हैं, देखिए खोजविवरण (१९०९-११, सं० ३०९ ए, बी)। प्रस्तुत त्रिवर्षी में इनके दो और ग्रन्थों—'भक्त उपदेशिनी' और 'बिहार बत्तीसी' के विवरण लिए गये हैं जिनमें से प्रथम में ज्ञानोपदेश वर्णित है और दूसरे में राधाकृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं का वर्णन है। इनकी प्रस्तुत प्रतियों में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं।

९६ सुन्दरदास—प्रस्तुत खोज में 'रामचरित्र' नामक ग्रन्थ के रचयिता के रूप में इनका पता पहले पहल लगा है। पिछले खोजविवरणों में आये हुए इस नाम के प्रायः सभी ग्रन्थकारों से ये भिन्न प्रतीत होते हैं। ग्रंथ में राम माहात्म्य का वर्णन है। नामदेव, धन्ना, कबीर और रैदास इत्यादि भक्तों के उदाहरण देकर राम की भक्तवत्सलता, कृपालुता और दयालुता प्रदर्शित की गई है। इस प्रति में रचनाकाल नहीं दिया है। लिपिकाल संवत् १९२५ है। ग्रन्थकार ने अपना निवास स्थान रामपुरी और गुरू का नाम कालूसुख लिखा है :—

रामपुरी में मेरा बासा। गुरु कालूसुष सुन्दर दासा॥

संभव है 'रामपुरी' कोई नगर विशेष न होकर आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त किया गया हो।

९७ सूरतराम (जन)—इनका उल्लेख 'बानी प्रसंग' नामक ग्रंथ के साथ खोजविवरण (१९२३-२५, सं० ४१८) में हो चुका है। इस बार इनके तीन नये ग्रन्थ और मिले हैं जिनके नाम 'ग्रंथ चिन्तामणि बोध', 'ककाबत्तीसी' और 'पदवधावणा' हैं। इनकी प्राप्त प्रतियों में से किसी में भी रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं। पहला ग्रन्थ अपूर्ण है और उसमें संसार के समस्त झंझटों से छूटकर भगवद्भक्ति में ही निरत रहने की चेतावनी दी गयी है। दूसरे में 'क' से 'ह' तक के प्रत्येक अक्षर पर दोहे रचे गये हैं जिनमें भक्ति संबन्धी उपदेश हैं। तीसरी में गुरू की वंन्दना और रामभक्ति का उपदेश किया गया है। कवि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। संभवतः ये राजपूताना के रहनेवाले थे, क्योंकि इनकी प्रस्तुत रचनाओं में राजस्थानी शब्दों का बाहुल्य पाया जाता है।

९८ सुवंसराइ—इनका बनाया हुआ 'जैमुनी-अश्वमेध' नामक ग्रंथ, जिसका रचनाकाल संवत् १७४९ वि० (१६९२ ई०) और लिपिकाल सं० १७८१ वि० (१७२४ ई०) है, प्रस्तुत खोज में मिला है। ग्रन्थ अपूर्ण है और इसमें पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। यह एक अनीराय दीक्षित (सनाढ्य) द्वारा, जैसा कि इसकी पुष्पिका में उल्लेख है, किसी मीरनूरुद्दीन के लिए लिखा गया थाः—

"लिषितं अनीराइ दीषत (दीक्षित) सनोढिया (सनाढ्य)। पठनार्थं मीरनूरुद्दीन।" रचयिता गोस्वामी (? गुसाईं) थे। इनके पिता का नाम गदाधर और पितामह का नाम गोवर्द्धन था। अन्य विवरण अप्राप्त है।

९६ सुक्राचार्य—सुक्राचार्य के नाम पर 'दत्तसतोत्र (दत्तस्तोत्र)' के विवरण लिए गये हैं। ग्रंथ का रचनाकाल अविदित है। लिपिकाल सं० १८३८ वि० = १७८१ ई० दिया है। इसमें दत्तदिगम्बर (? दत्तात्रय) की स्तुति है। ग्रन्थकार के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इस नाम के एक रचयिता खोजविवरण (१९०९-११, सं० ३७) में भी उल्लिखित हैं; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रस्तुत रचयिता ही हैं। संभव है प्रस्तुत रचयिता सुक्राचार्य न होकर शंकराचार्य हों जिनके नाम से संस्कृत में एक 'दत्तस्तोत्र' प्रचलित है। प्रस्तुत रचना एक बड़े आकार के हस्तलेख में है जिसमें अन्य अनेक रचनाएँ विशेषकर तुरसीदास की लिपिबद्ध हैं। लिपिकाल एक सोरठे में इस प्रकार दिया हैः—

"संवत् संख्या जान। अष्टादश[१८] अठतीसै[३८] पुनि।
भादव मास बखान। सुकुल पछ तिथि पंचमी॥ सुकरवार"॥

१०० तुरसीदास—रामचरित मानस के कर्त्ता गो० तुलसीदास और आप.पंथ के संस्थापक तुलसी साहब (हाथरसवाले) से भिन्न एक नवीन संत तुरसीदास के सात ग्रन्थों के विवरण लिए गये हैं। रचनाकाल किसी भी ग्रन्थ में नहीं दिया है। ग्रंथों का विवरण नीचे दिया जाता हैः—

क्र० सं० नाम ग्रंथ	विषय
१—तुरसीदास के पद	निर्गुण उपासना संबन्धी उपदेश और भक्ति एवं माहात्म्य।
२—ग्रंथचौपरी	निर्गुण मतानुसार परम वैष्णव की विवेचना।
३—करनी सार जोग ग्रन्थ	योगी बनने के विषय पर दार्शनिक विवेचना।
४—साधु सुलक्षण जोग ग्रन्थ	साधु के सुलक्षणों के विषय में निर्गुण पंथ के अनुसार उपदेश।
५—तुरसीदास की वाणी	गुरू की महिमा और सामर्थ्य का वर्णन तथा विनय, दास विधान, निहकर्मी, पतिव्रता, सील, वैभव, वीनती, संजीवनी, पारिष, दया, निरवैरता, सुन्दरी और पीव पहिचान आदि प्रकरणों का वर्णन।

६—तत्व गुन भेद जोग ग्रन्थ	मोक्ष प्राप्ति का उपदेश, इन्द्रिय दमन और भक्ति का उपदेश।
७—तुरसीबानी (अपूर्ण)	ज्ञान के अधिकारी, भक्ति, योग, वैराग्य, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन और अर्चना, विधान, वंदनादि वर्णन।

इनमें सं० ७ को छोड़कर अन्य सबका लिपिकाल सं० १८३८ वि० = १७८१ ई० है। जो हस्तलेख के (देखिए सं० ९९) अन्त में दिये हुए एक सोरठे के आधार पर कल्पित किया गया है। क्योंकि ये सभी ग्रन्थ एक ही जिल्द में हैं जिनका लेखक भी एक ही है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि लेखक ने लिपिकाल प्रत्येक ग्रंथ में न देकर अन्त में दे दिया है। संख्या सातवाली रचना का हस्तलेख अलग से मिला है जिसका लिपिकाल संवत् १७४५ (१६८८ ई०) है। यह स्वयं रचयिता के हाथ की लिखी इस आधार पर प्रतीत होती है कि इसके साथ एक ही हस्तलेख में 'इतिहास समुच्चय' भी लिपिबद्ध है जिसकी पुष्पिका में लिपिकार का नाम 'तुरसीदास' दिया हुआ है। ये तुरसीदास लालदास के—जिनके गुरू का नाम ऊधोदास था—शिष्य थे। अतः प्रस्तुत रचयिता और उक्त लिपिकार को एक मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।* रचयिता निरंजनी पंथ के अनुयायी थे और शेरपुर (राजस्थान) में इस पंथ की एक गद्दी के महन्त थे।

१०१ तुलसीदास—इनका बनाया हुआ "मल्ल अखारौ" नामक ग्रन्थ का विवरण लिया गया है। ग्रन्थ की प्राप्त प्रति में कोई समय नहीं दिया है। इसका विषय श्रीकृष्ण की उन वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन करना है जो उन्होंने कंस के द्वारा निमंत्रित होकर उसके अखाड़े में आकर उसको मारने तक संपन्न किये थे। इसकी लेखन शैली गो० तुलसीदास कृत 'रामलला नहछू' के सदृश है। परन्तु अधिक संभावना यही है कि ये उनसे भिन्न कोई दूसरे तुलसीदास हैं जो ब्रज के रहनेवाले थे। ग्रन्थ की प्रस्तुत प्रति काफी पुरानी जान पड़ती है जिससे रचना की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है।

१०२ उदय—ये बहुत से ग्रंथों के रचयिता हैं। इनके कुछ ग्रंथों का उल्लेख खोज विवरण (१९३२-३४, सं० २२३) में हो चुका है। इस बार इनके चार ग्रंथों—कृष्ण परीक्षा, उदयग्रंथावली, चीर हरण और हनुमान नाटक के विवरण लिये गये हैं। कृष्ण परीक्षा में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। इसमें राधा के छद्मवेश की कथा वर्णित है जो उसने श्रीकृष्ण के प्रेम की परीक्षा करने के लिए धारण किया था। उदय ग्रंथावली में रचनाकाल संवत् १८५२ वि० = १७९५ ई० दिया है। लिपिकाल अज्ञात है। रचनाकाल का दोहा इस प्रकार है:—

---

* पं० भवानी शंकर जी याज्ञिक, जिनके पास प्रस्तुत हस्तलेख है, मुझे सूचित करते हैं कि यह वास्तव में तुरसीदास का ही लिखा हुआ है।—संपादक

"संवत् अठारह बामना, सुदि कार्तिक बुधवार।
भयो उदै उरते जबै, यह लीला अवतार॥"

यह एक संग्रह ग्रंथ है जिसमें (१) प्रतीत परीक्षा (२) रामकरुणा और (३) दानलीला संगृहीत हैं। इनमें से पहले के लिये देखिये संख्या १ वाला ग्रंथ (कृष्ण परीक्षा)। दूसरे में शक्तिवाण के प्रहार से लक्ष्मण के मूर्छित और निष्प्रभ होने पर श्रीराम के विलाप का वर्णन है। तीसरे में ब्रजवनिताओं से कृष्ण के दान लेने और परस्पर विनोदात्मक ढंग के झगड़े का वर्णन है। चीरहरण लीला का रचनाकाल अज्ञात है। इसकी प्रस्तुत प्रति सं० १८७४ वि० = १८१७ ई० की लिखी हुई है। इसमें भी दो पुस्तकें हैं—"चीरहरण लीला" और "देवी स्तुति"। पहली उदय कवि द्वारा ही रची गई है और उसमें कृष्ण के द्वारा जमुना में नग्न नहानेवाली गोपांगनाओं के चीरहरण सम्बन्धी आख्यायिका वर्णन की गई है। इसके साथ वाला ग्रंथ देवीस्तुति किन्हीं खुशाल कवि की कृति है और शोध में नवीन है। चौथा और अन्तिम ग्रंथ 'हनुमान नाटक' है। इसमें रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिये हैं। यह नाटक न होकर एक वर्णनात्मक काव्य है जिसमें अहिरावण और राम की लड़ाई का वर्णन है। अहिरावण अन्त में हनुमान के द्वारा मारा गया था। रचयिता कालीदास त्रिवेदी के पुत्र उदयनाथ 'कवीन्द्र' से भिन्न हैं। इनका जीवनकाल आधुनिक है। पं० मयाशंकर जी याज्ञिक को गोवर्द्धन में इनके कुछ ग्रंथों का एक गुटका मिला था जिसमें कवि ने अपना स्थान ब्रजभूमि के अन्तर्गत बतलाया है। उदय ग्रन्थावली की पुष्पिका से पता चलता है कि इनका पूरा नाम उदयराम था और ये सन् १७९६ के लगभग वर्तमान थे। अन्य वृत्त अज्ञात है।

१०३ वंशीअली—इनका 'सजन बहोरा' नामक एक ग्रंथ पहले भी मिल चुका है, देखिए खोजविवरण (१९०६–८, सं० ११)। ये संवत् १७८० वि० = १७२३ ई० में वर्तमान थे। प्रस्तुत खोज में इनके दो ग्रन्थों—'राधा तिलाता' और 'सिद्धांत के पद' के विवरण लिए गये हैं। रचनाकाल और लिपिकाल इनमें से किसी में भी नहीं दिये हैं। पहिले ग्रंथ में राधा-माधव के युगल स्वरूप का विशद सजीव और मनोरंजक वर्णन है। दूसरे में सखी संप्रदाय सम्बन्धी, जिसका रचयिता अनुयायी था, गीत संगृहीत हैं। रचयिता का अन्य परिचय अज्ञात है।

१०४ जनविक्रम—इनका बनाया 'विक्रम शतक' नामक ग्रंथ के विवरण लिए गये हैं। ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिली हैं; परन्तु रचनाकाल और लिपिकाल एक में भी नहीं दिये हैं। इसमें कवि ने भक्ति एवं विनय सम्बन्धी सौ छंद रचे हैं जिनमें कई देवताओं और अवतारों की वन्दनाएँ हैं। अन्त में हनुमान जी की प्रार्थना भी वर्णित है। यह समस्त ग्रन्थ दोहों में लिखा गया है। एक दो स्थानों में सोरठे भी हैं। मध्य में एक सोरठा इस प्रकार है:—

"मेरे कुल की राज, सो प्रभु तेरो ई दियो।
प्रणतपाल धरि लाज, विक्रम अब तेरो भयो॥"

इससे प्रकट होता है कि ग्रन्थकार किसी राजकुल का है और विक्रम उसका नाम है। एक विक्रम साहि उपनाम विक्रमाजीत अथवा विक्रमादित्य, चरखारी (बुन्देलखंड) नरेश, १७८२ ई० से १८२९ ई० तक राज्य करते थे, देखिये खोजविवरण (१९०३, सं० ७२-७३); परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे प्रस्तुत रचयिता ही हैं।

१०५ वीरभद्र – ये 'बुढ़िया लीला' नामक एक ग्रंथ के रचयिता हैं। ग्रन्थ के रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात होने के अतिरिक्त यह अपूर्ण भी है। इसकी रचना मथुरा जिले की एक ठेठ देहाती बोली में हुई है जिसमें श्री कृष्ण का बुढ़िया भेष धारण कर ब्रज वनिताओं के साथ नटखटी, मनोरंजन एवं प्रेमालाप आदि क्रीड़ाओं का वर्णन है। ग्रंथ खोज में नया मिला है। रचयिता खोजविवरण (१९१७–१९, सं० २६) में उल्लिखित इस नाम के रचयिता से अभिन्न जान पड़ते हैं। अन्य परिचय इनका अप्राप्त है।

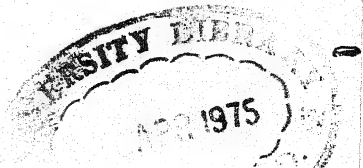
१०६ ब्रजवासीदास—ये १८वीं शताब्दी में वर्तमान थे और पिछले खोज विवरणों में इनके कुछ ग्रंथों का उल्लेख हो चुका है, देखिये खोजविवरण (१९०९-११, संख्या ३६; १९२६–३१, सं० ५७ ए, बी, सी, डी,)। इस बार इनका 'पुरातनकथा' नाम से एक नया ग्रन्थ मिला है जिसके विवरण लिए गये हैं। इसमें रामचरित्र वर्णित है जो यशोदा ने श्री कृष्ण को सुलाते समय कहा था। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिए हैं।

१०७ यमुनादास—ये खोज में नवोपलब्ध हैं। इनका 'भागवत माहात्म्य' नामक ग्रंथ मिला है जिसके विवरण लिए गये हैं। यह पद्म पुराणान्तर्गत इस नाम के मूल संस्कृत अंश का हिंदी पद्यानुवाद है जिसमें भागवत का माहात्म्य वर्णित है। इसमें दिया हुआ अस्पष्ट रचनाकाल इस प्रकार है:—

"उनीसऊ चौथ संवत, मकर मास शुभ।
इनमें अक्षर बहोत, लीजै शुद्ध विचार कै॥
बहावलपुर के बीच, भाषा महात्म में कियो।
सुनो सन्त जगदीशपुर, शुक्लपक्ष पूरन भयो॥"

इससे या तो संवत् १९०० वि० (चौथ शुक्ल माघ मास) निकलता है अथवा संवत् १९०४ वि० (माघशुक्ल)। रचयिता ने इस ग्रंथ को बहावलपुर में लिखना आरम्भ करके जगदीशपुर में समाप्त किया था। ये सुप्रसिद्ध सन्त नामदेव के वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके गुरू का नाम रामदास था। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में लिपिकाल नहीं दिया है।

—❀—



द्वितीय परिशिष्ट

प्रथम परिशिष्ट में वर्णित रचनाकारों की कृतियों के उद्धरण

द्वितीय परिशिष्ट

रचनाकारों की कृतियों के उद्धरण

संख्या १. शब्द झूलना, रचयिता—श्री अहलाददास जी (कोटवाँ, जिला, बारहबंकी), कागज—नीला मोटा, पत्र—५५, आकार ६ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—५८७, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—१८४० वि० के लगभग, लिपिकाल—१९६० वि० के लगभग, प्राप्तिस्थान—महन्त चन्द्रभूषण दास जी, स्थान—उमापुर, डाकघर—मीरमऊ, जि०—बारहबंकी।

आदि—श्री गणेशायनमः झूलना—ग्यान ते भर्म करू छमा सर्व कर्म करू सील जहि नरम करु दया राषौ ॥ कपट को काटियौ कुमति को कूटि कै सुद्धि करि नाम शुभ शब्द भाषौ ॥ पाप औ पुन्य दोउ हुन्नि वैराग में धुन्नि सतनाम धरि धीरज राषौ ॥ पाँच की पैंड तजि तरक करि तीनिसों चारि में चरन चित चूनि राषौ ॥ दीन को छार में दया की चौक करि सुमति की सेज मन सुमन राषौ ॥ भाउते प्रेम दरियाउ होइ घट भरौ प्रगट नहि करौ रस गुप्त चाषौ ॥ गुरू को वान लै पैठि चौगान में जगत की आसते कियो साषौ ॥ कहत अहलाद जगजीवन के चरन में सीस यक भाउदिन रैनि राषौ ॥ १ ॥

अन्त—रेखता—महबूब तेरे दरस की आसा भई मन आइ कै ॥ लाचार हौं कछु बसि नही यह दरद कहौं सुनाइ कै ॥ तन मन सुषित विरही भई सपने में पीतम पाइकै ॥ जागे सुरति यह समुझि कै व्याकुल भई अकुलाइ कै ॥ तेहि का कछू भावै नहीं पपिहा भई रट लाइकै। दिन रात पिय के सोच माँ बौरी भई जग आइकै ॥ इस इश्क के दरियाउ में विरले परे कोइ धाइकै ॥ तत सुष गिरे गुरखेत माते पार बैठे जाइकै ॥ गिरवर पियाला नाम रस मागैं कदमसिर नाइकै ॥ जगजीवन साहन साह मेरी अरज सुनिए आइकै ॥ × ×

विषय—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, प्रेम और विरह तथा ईश प्राप्ति सम्बन्धी सरल युक्तियों का अत्यन्त रोचक तथा चित्ताकर्षक ढंग से मर्मस्पर्शी शब्दों तथा भावपूर्ण भाषा में वर्णन किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—श्रीअहलाद दास जी—श्री अहलाद दास जी अनन्त श्रीजगजीवन स्वामी जी के भतीजे चंदेल वंशी क्षत्रिय थे। आपका जन्म स्थान सरदहा में संवत् १७४० वि० के लगभग होना अनुमान सिद्ध है। ये स्वामी जी के बड़े प्यारे थे। उन्हीं के पास बहुधा बैठे रहते थे और सेवा किया करते थे। स्वामीजी से मन्त्रोपदेश लेने की इच्छा रखते थे; परन्तु आदर तथा संकोच के कारण कह नहीं सकते थे। स्वामी जी ने इनकी इच्छा जानकर इन्हें प्रेमपूर्वक मंत्रोपदेश दिया उसी समय से इनका ज्ञान निर्मल हो गया ये चौदह गद्दीधरों में सबसे प्रथम थे। इन्होंने स्वामी जी के बनाये हुए कई ग्रन्थों को

लिखकर पूर्ण किया। ये बहुत बड़े सिद्ध पुरुष और मस्त फकीर हुए। इनके विषय में एक बात प्रसिद्ध है कि एक बार ये स्वामी जी के पास बैठे थे। दैवात् एक पत्र फारसी में लिखा हुआ कोई लाया। उसको पढ़नेवाला कोई नहीं था। स्वामी जी ने आज्ञा दी, अहलाद दास को दो ये पढ़ेंगे। पूर्व जन्म में इन्होंने फारसी अरबीपढ़ी थी। इस समय भूले हुए हैं। आज्ञा पाकर इन्होंने पत्र को उठाया और स्वामी जी की कृपा से अनुभव ज्ञान हो गया तथा उसको पढ़कर सुनाया। फिर तो आप फारसी—अरबी नवीस हो गए। फारसी में भी आपने बहुत से रेखता बनाये हैं। इसके अतिरिक्त आपने झूलना, कवित्त आदि छन्द भी बनाए हैं जो आम श्रेणी के हैं। आपके विषय में बहुत सी सिद्धाई की बातें प्रसिद्ध हैं; परन्तु हम यहाँ स्थानाभाव से उन्हें नहीं लिखते।

संख्या २ ए. अलबेली अलि ग्रंथावली (अनुमा०), रचयिता—अलबेली अली (वृन्दावन), कागज—देशी, पत्र—४४, आकार—१० × ९ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—७८९, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—राधावल्लभ जी का मन्दिर, स्थान—वृन्दावन, मथुरा।

आदि—अथ प्रिया जी कौ मंगल लिख्यते। बलि बलि श्री राधा नाम प्रेम रस रंग भरयो; रसिक अनन्यनि जानि सुसर्वस उर धरयो; रटत रहैं दिन रैन मगन मन सर्वदा; परम धरम धन धाम नहीं बिसरै कदा, कदा बिसरत नहि नेही लाल उरमाला रची; रही जगमगि नवल हिय में मनौ मनि गनि सौं खची; चतुर वेद कौ सार संचित प्रेम विवरन निज रह्यो; बलि बलि श्री राधानाम प्रेम रस रंग भरयो।

अंत—नेह सनेह सनी अंगीया रंग या सारी मन भावै; सखी जानि कै आपनी हमकौ वह अंतरौटा पहिरावै; नरप सुजा को गरी मानै हम चित मोद बढ़ावै; जय श्री प्रिय प्रेम परिपूरन लोकहिं मनहिं बहावै; वाल खुलै पर सूहौ फैटा तूरा अजब सुहावै; डोरी लगै डुपट्टे की लपटन लटकनि मान भावै; मिट्टी डोर सो ठुमकी दै दै आली गुड़ी उड़ावै; जै श्री वंशी अली खैचन हूँ लाल मनहिं खैंच न आवै; रंग गुलाबी फैटा ऐंठा रतन पेंच कसि भोहनि नैन अनविधि साधे; तिलक अलक माला मोतिन की कट तट बंदी बाँधे; चुम्बन करत लाल मुखलाल वंशी कर धर काँधे। × × ×

विषय—१-प्रिया जी कौ मंगल, २-राधा अष्टक , और ३-माँझ नामक छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का इसमें संग्रह है। राधा जी के स्वरूप, श्रृंगार और सावन संबन्धी गीतों का चयन है।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रन्थ राधा वल्लभ तथा सखी संप्रदाय का प्रतीत होता है जिनके अनुयायी बड़े कट्टर विचारों के होते हैं। बड़ी युक्ति से इन तक पहुँच होती है।

कविता बड़ी ही मधुर है। खोज में यह ग्रन्थ नवीन प्राप्त हुआ है। पूर्व विवरणों में इसका वर्णन नहीं है।

संख्या २ बी. गुसाईं जी कौ मंगल, रचयिता—अलबेली अलि (वृंदावन), कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ट)—१४, परिमाण

(अनुष्टुप्)—४१३, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—राधावल्लभ ाी का मन्दिर, स्थान—वृन्दावन, मथुरा।

आदि—मंगल श्री गुसाईं जी की लिष्यते। जय जय श्री वंशी अलि ललित अभिरामनी, रूप सुशील सुभाव प्रियै गुन गामिनी। केलि कुंज केलि हित कहन सुललिता वपु धारयो, श्री प्रद्युम्न कुलचन्द्र उदित रस विरतारयो। विस्तरयो रस सरस अद्भुत प्रेम को अम्बुध बह्यो; वृन्दावन विपिन रस अति अगोचर रहस सब प्रगट करयो। रहत संतन अंग संगी रसिक मनि कल कामिनी; जय जय श्री वंशी अलि ललित अभिरामनी।

अंत—जय जय श्री वंशी अलि गुन गावैं; श्री वृन्दावन अचल बसे दिन श्रीराधापन पावै, नवल कुँवरि नव लाड़ गहेली नव नव भाँति लड़ावै, अलबेली अलि रूप माधुरी पीवत और पियावै। जब ते श्री वंशी अलि पद पाए; श्री वृन्दावन कुंज केलि कल लूटत सुख मन भाए; रूप सुधा मादिक पद पीवे डोलत घूम घुमाए; अलबेली अलि सबते निज कर स्यामा जू अपनाए। इति श्री गोसाईं जी कौं मंगल संपूर्णम्

विषय—इसमें श्री गोसाईं वंशी अली जी के सम्बन्ध के प्रेम और शृङ्गार पूर्ण बधाई गीतों का संग्रह है।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता सखी संप्रदाय के मालूम होते हैं। ये गोस्वामी वंशी अली के भक्त थे। अतः उनका मंगलगान इन्होंने किया है। इस संप्रदाय में अपने गुरुओं तथा संप्रदाय के विशेष भक्तों को साक्षात् राधा स्वरूप समझा जाता है। पद छोटे-छोटे बड़े ही भावपूर्ण हैं। कविता सरस एवं ललित है।

संख्या २ सी. विनय कुंडलिया (अप्रकाशित), रचयिता—अलबेली अली (वृन्दावन), कागज—देशी, पत्र—१३, आकार ९३⁄४ × ६३⁄४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१५, पूर्ण, रूप—नवीन (प्राचीन प्रति से नकल की हुई), पद्य, लिपि—देवनागरी, प्राप्तिस्थान—बाबू श्यामसुंदर मुन्सिफ एम० ए०, एल-एल० बी०, मुंसिफ महाबन, म्यूनिसिपल आफिस के पास, मथुरा।

आदि—॥ अथ विनय कुण्डलिया लिख्यते ॥ श्री वंशी रूप जो धरयो ललित कुँवर अभिराम; रहौ सदा हित चित्त दै मधु मंगल यह नाम। मधु मंगल यह नाम सदा हिय को आभूषन; जरयो प्रेम अनुराग दिये अंग अंग निरदूषन। बढ़ै प्रीति रस रीति आन धरमनि विधि नासै; श्री वृन्दावन नित्य विहार नैनन परकासै। ललित कुँवरि वर लाड़िली प्रेम सुधा रस सार; चरन सरन राखो सुदृढ़ मति कहुँ देहु बिसार। मत कहुँ देहु बिसार नवल नवरूप उज्यारी; करुना सिन्धु अपार प्रान वल्लभ सुकुमारी। जाके नैन कटाक्ष सों मोहे जड़ चैतन्य सबै; राखो मन अलि लम्पट सम्पुट पद पंकज अबै।

अंत—मोसो दीन कोऊ पातकी; तुमसों दीन उधार; तुम हौ तैसी कीजिए, अहो रसिक सुकुमार। अहो रसिक सुकुमार करूँ विनती कर जोरी; बँध्यो रहेमन रैन दिना तुव प्रेम की डोरी। जो चाहो सो करो कुँवर तिर विधि मन हरना; अलबेली अलि परी आन पद पंकज सरना। विनय कुंडलिया प्रेम सो पढ़े सुने निसि भोर; पावै टहल महल की निरखे जुगल किशोर। इति विनय कुण्डलिया सम्पूर्ण

विषय—राधा कृष्ण की युगल मूर्ति का ध्यान एवं प्रार्थना वर्णित है।

विशेष ज्ञातव्य—अनुसंधान में यह ग्रन्थ प्रथम बार प्राप्त हुआ है। जिस संप्रदाय का यह ग्रन्थ है वह इसे बहुत छिपा कर रखता है। यही कारण है कि हमारी पहुँच इन ग्रंथों तक नहीं होती। यहाँ तक देखा जाता है कि एक वैष्णव दूसरे संप्रदाय के वैष्णव तक को अपने ग्रंथ नहीं दिखलाता। कविता इसकी अपूर्व और प्रसाद गुण पूर्ण है। भाषा मधुर एवं ललित है। कई कुण्डलियों में अलबेली अली का नाम आया है, अतः वही इसकी निर्माता हो सकती हैं। अलबेली अली पुरुष थे अथवा स्त्री, यह कहना जरा कठिन है। पुरुष अपने को सखी तथा सहचरी मानकर राधा कृष्ण की उपासना करते हैं।

संख्या ३. ग्रंथ संजीवन (वैद्यक), रचयिता—आलम (सैयद चाँदसुत), कागज—देशी, पत्र—५५, आकार—९½ × ६ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५१२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बाबूरामजी पुरोहित, स्थान—कैस्थ, डाकघर—मलाजनी, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्रीराम जू सहाइ ॥ श्रीसरसुतीजू ॥ ॐ नमः ॥ अलष असुरती अलष गति, किस ही न पायो पार। सुरती समझि की अरज हौ, देहु देहु मति सार ॥१॥ सिव सुत पद प्रनाम सदा, विधि सिद्धि सरसुति मति देहु। कुमति विनासहु सुमति मोहि देहु। मंगल मुदित करेहु ॥ २ ॥ वेद ग्रन्थ हौ पारसी, समझ रच्यौ भासान। सहज अरथ परकट करौ। औषदि रोग समान ॥ ३ ॥ × × × ग्रन्थ संजीवन नाम धरि; देषतु ग्रन्थ प्रकास। सेहद चाँद सुत आलम; भाषा कियौ निवास ॥ ५ ॥

अन्त—गर्भ गिरने कौ उपाय—ककसी कपास की ॥ पइसा तीन औटाये ॥ पुराना गुड़ पाइ ॥ मिलाइ तब पीवै गर्भ दूरि होइ ॥ तत रेह को पानी पीवै ॥ श्रीमान श्रीरामजू॥ छप्पै बालापन दस वर्ष, वीस लौं बढ़त गनीजै। छबी सोभा रहै वीस, बुद्धि चालीस लहीजै ॥ सुच दृढ़ वर्ष पचास, साठि पर नैन जोति कमि। सत्तरि पै षसै काम, असी पर लाल जाव रमि ॥ बुद्धि नास नव्वै भये, सतवीसे सवते रहित। जेदा वस्था नरन की, कालिदास ऐसें कहित ॥

विषय—१-नाड़ी परीक्षा, पत्र २ तक। २-औषधि मथवाह की, जुवाती, आधा सीसी, केस बढ़ावन, अंजन, पत्र३ तक। ३-नेत्र रोग, वभानी, पृ०५ तक। ४-कर्णरोग, पृ० ६ तक। ५-दंतरोग, पृ० ७ तक। ६-मुषरोग, पृ० ८ तक। ७-छाती के रोग, पित्त ज्वर को चिन्ह, कफ चिह्न, बात रोग चिन्ह तथा इन सबकी दवाएँ, काढ़ा क्वाथ, पत्र १४ तक। ८-सन्निपातकी और शीताङ्ग की औषधियाँ, पत्र १५ तक। ९-पांडु रोग, कँवलवायु तथा उपाय, पत्र १६ तक। १०-पांडु रोग, पीलिया और माटी खाये की दारू, पत्र १७ तक। ११-कोढ़ी की औषधि, पत्र २० तक। १२-खाँसी की औषधि, पत्र २३ तक। १३-जलंधर रोग और दवा, पत्र २५ तक। १४-अतीसार और उसकी दवा, पत्र ३० तक। १५-पित्त कफ, वायु, मुसखाद, सन्नपात, अमलवात आदि रोग और उनकी औषधि, पत्र ३३ तक। १६-

पेट पीड़ा, कुरकरी आदि की दवा, पत्र ३५ तक। १७—भूख, पाचन और मृगी की दवा, पत्र ३८ तक। १८—काची की पीड़ा और दवा, पत्र ३९ तक। १९—साजी पाके की दवा, पत्र ४० तक। २०—पथरी की औषधि, पत्र ४४ तक। २१—रक्त मूत्रता की पहचान और दवा, पत्र ४८ तक। २२—आँव झड़नी ताका पहचान और दवा, पत्र ४९ तक। २३—अरस की दवा, पत्र ५० तक। २४—नासूर की दवा, पत्र ५१ तक। २५—गरम विकार और दवा, पत्र ५२ तक। २६—ओर तोड़ को उपाय, पत्र ५३ तक। २७—लिही विकार, पत्र ५४ तक। २८—गर्भ गिरने का उपाय, पत्र, ५५ तक।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत "ग्रन्थ संजीवनी वैद्यक" ग्रन्थ सैयद चाँद के पुत्र आलम का बनाया हुआ है। इसमें उन्होंने रचनाकालादि कुछ ज्ञातव्य विषयों पर प्रकाश नहीं डाला है और न उसके लिपिकाल का ही पता दिया है। ग्रन्थ को लिखने में अशुद्धियाँ बहुत की गई हैं। ग्रन्थकार का कथन है कि मूल ग्रन्थ पारसी भाषा मे था। जन साधारण के समझने की दृष्टि से उसने उसे हिन्दी भाषा में लिखा है। ग्रन्थ को समाप्त करते हुए रचयिता ने कालिदास कृत एक छप्पय भी लिखा है। उसमें उसने दिखाया है कि कितनी अवस्था में मनुष्य की क्या स्थिति होती है।

संख्या ४. सुदामाचरित्र, रचयिता—आलम, कागज—मूँजी, पत्र—४, आकार—१३ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१७४, पूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—वि० १८७६ = १८१९ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री पं० रेवती प्रसाद जी, स्थान—गढ़ी परसोती, डा०—सुरीर, जि०—मथुरा।

आदि—अथ सुदामाचरित्र लिख्यते ॥ ॐ कार है अलष निरंजन कैसा कृष्ण गोवर्द्धन धारी। नादर सबके कादर सिर पै सुन्दर तन घनश्याम मुरारी॥ सूरति खूब अजायब मूरति आलम के महबूब विहारी। जगमग जग है जमाल जगत में हिलमिल दिल की जय बलिहारी॥ सत सुनाम अरु बहुत बंदगी जो इसको नीके कर जाने। ज्यों ज्यों याद करे वह बंदा त्यों त्यों वह नीके कर जाने॥ देखो कर्म कियो वामन ने जो कछु दिया सो मन में जाने। ऐसो कौन बिना गिरधारी जो गरीब के दुष को भाने॥

अंत—केते रतन पारषी परषे जेवर कितिक सुनार गढ़त है। केते बाजीगर और नचुआ केते नचुआ नाच करत है। केतिक बाजार चहुँ खंड दीसे केतिक अखारन मल्ल लरत हैं। केते जमींदार हैं ठाड़े अपनी अपनी अरज करत है। दोहा—गदागीर रषन सुखन सुदामा, श्री कृष्णचन्द्र को यार। आलम में प्रगटत भए, सब राजन सिरदार॥ इति सम्पूर्णम्

विषय—१—भगवान कृष्ण का कीर्तन। २—सुदामा की दीन दशा, उनकी स्त्री का दुखी होना, बार बार द्वारकावासी सखा कृष्ण के यहाँ जाने के लिये अनुरोध करना, दीन ब्राह्मण सुदामा का टालते रहना, आखीर में विवश होकर फटे वेश में द्वारका जाना, कृष्ण का सुदामा को सिरमाथे से लगाना एवं उनके दुःख से विह्वल होना, सुदामा की स्त्री के भेजे हुए तन्दुलों को बड़े चाव से खाना। पश्चात् कुछ दिन रहकर सखा सुदामा का अपने घर को

प्रस्थान करना, कृष्ण का स्पष्ट रूप से सुदामा को कोई आर्थिक सहायता न देना, सुदामा का रास्ते में मन ही मन झुँझलाना और अपनी स्त्री की मूर्खता पर हाथ पटकना, घर के स्थान पर झोपड़ी का न पाना, विशालकाय महलों को देखकर अचम्भित होना, क्योंकि कृष्ण ने अपनी माया से पहिले ही ऋद्धि-सिद्धि से सुदामा की झोंपड़ी को एक राजगृह में परिणत कर दिया था। अन्त में स्त्री द्वारा इस महान रहस्य का मालूम होना और दोनों का कृष्ण भजन करते हुए सानन्द काल यापन करना।

विशेष ज्ञातव्य—"कह्यो मान पिय उठि चल जालिम, वह सब आलम का सुखदाई ॥" "जान राय है अन्तर्ज्ञानी जिनकी आलम करत गुलामी॥" "धूम परी आलम वाला में, जब विरंजि लै मुष में डारे।" 'यह तो कर्म कियो तिस ही ने, सो सब आलम को है कर्ता।' उपर्युक्त उदाहरण ग्रन्थ के अन्त में इसके प्रमाण मे दिये गए हैं कि "आलम" शब्द का प्रयोग संसार के अर्थ में नहीं हुआ है वरन् ग्रंथ का रचयिता आलम ही है। जिसका नाम कई स्थानों पर आया है और प्रायः सभी स्थलों में द्वयर्थक रूप में नाम दिया है जैसा कि ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है। आलम हिन्दी के एक सर्वमान्य कवि हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने एक मुस्लिम महिला के प्रेम में फँसकर इस्लाम को अपना लिया था। मुसलिम महिला का नाम शेख था और वह एक अच्छी कवियित्री थी। मुस्लिम हो जाने पर भी आलम पर उस धर्म का प्रभाव नाममात्र को भी नहीं पड़ा। वह एक पक्के कृष्ण भक्त थे और उन्हीं की भक्ति में उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। इस दृष्टि से आलम द्वारा सुदामा चरित्र लिखा जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है। सुदामा का आख्यान ऐसा है, जिसके प्रभाव से भक्तगण गद्गद् हो जाते हैं और प्रायः अधिकांश कवियों ने अपनी योग्यतानुसार सुदामा की भक्ति और कृष्ण के प्रेम पर कुछ न कुछ लिखा है। फिर भक्ति में निमग्न आलम क्यों अपने उद्गार सुदामा एवं कृष्ण प्रेम पर प्रकट न करते। किन्तु अभी तक आलम की जो कविता और ग्रंथ हमें मिले हैं वे प्रायः सभी सुन्दर भाषा में हैं। इसके विपरीत इस सुदामा चरित्र में उन्होंने छन्द भी बदल दिया है और उर्दू शब्दों का भी कविता में थोड़ा बहुत प्रयोग किया है। इसका कारण शायद यह है कि उन्होंने अपनी ढलती अवस्था में लिखा है। हिन्दुओं ने थोड़ा बहुत उनका बहिष्कार मुसलमान होने के कारण किया ही होगा और मुसलमानों के संपर्क में भी वे अधिक रहे ही होंगे। अतः भाषा पर इस परिस्थिति का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी था। इतना होते हुए भी भक्ति का संस्कार उन पर ज्यों का त्यों रहा।

संख्या ५ ए. जगजीवन अष्टक, रचयिता—श्री अवधप्रसादजी (धर्मे जिला रायबरेली), कागज—सफेद मोटा, पत्र—२, आकार—६ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—सं० १९४० वि० (१८८३ ई०), लिपिकाल—सं० १९८० वि०, प्राप्तिस्थान—त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी, 'विशारद', सहायक अध्यापक मिडिल स्कूल, तिलोई, स्थान—पूरे परान पांडे, डाकघर—तिलोई, जि०—रायबरेली।

आदि—जय जय जय श्रीराम अलख अज अगुन निरंजन। ब्रह्म सच्चिदानन्द, द्वन्द, दुख दुसह विभंजन॥ प्रणत कल्प तरु राम नाम सुख धाम कृपाकर। सर्वोपरि सर्वज्ञ सर्वमय सर्ववरण पर॥ जपत जाहि गिरजा सहित, शिव विरंचि नित नेम करि। इष्ट स्वामि सोइ अवध के, जगजीवन जगदीश हरि॥ १॥ नारदादि सनकादि सप्तऋषि शक्र शची पति। शेष गणेश दिनेश सिद्धि किं पुरुष महामति॥ राम नाम सव जपत हरत कलिमल दुष दूषण। लहत सुलभ कैवल्य, परम पद विश्व विभूषण॥ जीव मुक्ति प्रद मंजु मणि, जे सुमिरत नित नेम करि। इष्ट स्वामि सोइ 'अवधि' के, जगजीवन जगदीश हरि॥ २॥

अन्त—जय जय अज अव्यक्त अमल जय जय जग कारन। जय जय शिव मानस मराल जय जय जन तारन॥ जय भ्रम भंजन हार जैति दारिद दल दाहन। जै प्रभु शंकर शमन जैति माया ममताहन॥ जैति जैति शुचि सेव्य श्री, सदा स्वतः सव वर्णपरि। इष्ट स्वामि सोइ अवध के जग जीवन जगदीश हरि॥१॥ दोहा—जग जीवन अष्टक मिंदु प्रणवत अह निशि जोय। जग जीवन की कृपा ते, जग जीवन फल होइ॥ १॥

विषय—इस ग्रंथ में श्री अवध प्रसाद जी ने श्री जगजीवन स्वामी (सत्यनामी संप्रदाय के प्रथमाचार्य) की वंदना आठ छप्पय छन्दों में की है। उनको श्रीजगन्नाथ जी, राम अथवा निराकार ब्रह्म का रूप मानकर वर्णन किया है अथवा इन तीनों नामों में भेद न मानकर तद्रूप माना है। यद्यपि इसमें आठ ही छप्पय छन्द हैं; परन्तु इसकी कविता उच्च श्रेणी की है। भाषा ओज गुण से परिपूर्ण और परिमार्जित है। यह अष्टक भक्तजनों के नित्य पाठ करने योग्य है।

संख्या—५ बी. रत्नावली, रचयिता—अवध प्रसादजी (धर्मे, जिला, रायबरेली), कागज—मोटा बदामी, पत्र—६०, आकार—१३ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—५२०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—१९२९ वि० (१८७२ ई०), लिपिकाल—सं० १६८० वि० (१९२३ ई०), प्राप्तिस्थान—पं० परमेश्वरदत्त जी त्रिपाठी, स्थान—जगदिसवापूर, डा०—इन्हौना, जिला—रायबरेली।

आदि—बन्दों श्री करिवर वदन, लम्बोदर यक दन्त॥ बिघ्न विनाशन सिद्धि प्रद, जैगणपति भगिवन्त॥ १॥ वन्दनीय वरदानि वर, श्री शंकर सुत सोय॥ गिरि नन्दनि नंदन द्रवहु, रामचरन रति होय॥२॥ ब्रह्म सच्चिदानन्द जै, रामकृष्ण सुखकन्द॥ वन्दौं विष्णु विरंचि शिव, सनकादिक सुखवृन्द॥ ३॥ जै चौविस औतार कृत, लीला ललित ललाम॥ भूमिदेव श्रुति संत हित, जय जय जय श्रीराम॥ ४॥ भरत लषन रिपु दमन पद वन्दों सहित सनेहु॥ कौशिल्या केकैइ सहित, सुमति सुमित्रा देहु॥ ५॥

अंत—वेद उपनिषद संत मत, परम तत्व मै ग्रंथ॥ सत्यनाम रत्नावली, भक्ति मुक्ति को पंथ॥ कह्यो वेद सत पंचदश, दोहा औध प्रसाद॥ ग्रंथ नाम रत्नावली कलिमल हरन विषाद॥ अब्दनंद[९] युग[२] नंद[९] ससि[१], माधौ मास पुनीत॥ १९२९ पूरनमासी शुक्र दिन, पूरन ग्रंथ विनीत॥ सो० कलिमल हरण विषाद, मंगल को मंगल करन॥

विरच्यो औध प्रसाद, महामंत्र दोहावली ॥ राम नाम रस लीन, कवि कोविद सज्जन सुमति ॥ हों तिनसों आधीन, मेरी चूक सुधारिये ॥

विषय—ग्रंथ का विषय शान्तरस है। इसमें प्रथम श्रीगणेशजी की वन्दना है। पश्चात् श्री महादेव-पार्वती, श्री रामचन्द्रजी, कृष्ण भगवान्, चौबीस अवतार इत्यादि की वन्दनाएँ हैं। तत्पश्चात् संसार की असारता, संतों की रहनी-गहनी, मन को वश में करने के उपाय, ईश्वर प्राप्ति के साधन योग, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान आदि का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया हैं। [ग्रंथ के विषय में रचयिता स्वयं लिखते हैं कि वेद, उपनिषद और सन्तमत से पूर्ण परमतत्व से युक्त यह 'रत्नावली' भक्ति तथा मुक्ति के पंथ को प्रकाशित करनेवाली है। वास्तव में केवल इसी को पढ़कर कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान आदि सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया जा सकता है। इस ग्रन्थ की भाषा अवधी मिश्रित ब्रजभाषा है। केवल दोहा तथा सोरठा दो ही प्रकार के छंदों में ग्रंथ पूर्ण किया गया है। उसमें भी सोरठा केवल थोड़े से हैं। शेष सब दोहे हैं। स्थान स्थान पर अलंकारों की छटा भी दृष्टिगोचर होती है; विशेषकर यमक आदि शब्दानुप्रास अधिकता से पाये जाते हैं।]

विशेष ज्ञातव्य--श्रीअवध प्रसाद जी का जन्म श्रीमहात्मा दूलनदास जी सत्यनामी के प्रसिद्ध सोमवंशी क्षत्री वंश में तदीपुर, तहसील महाराजगंज, जिला रायबरेली में सं० १८८० वि० के लगभग हुआ था। आप संपन्न घराने के थे, अतएव बाल्यकाल में आपकी शिक्षा दीक्षा भली भाँति हुई थी। आपके रचित ग्रन्थों से जान पड़ता है कि आप हिन्दी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। युवावस्था में आप देशाटन किया करते थे और बहुधा घाघरा पार बस्ती जिले के ग्राम पुरइन में निवास करते थे। वहीं पर सं० १९६६ वि० में ८७ वर्ष की आयु में आपका शरीर पात हुआ। उक्त स्थान पर आपकी समाधि बनी हुई है। आपके रचे हुए तीन ग्रंथ मेरे देखने में आए हैं—(१) रत्नावली, (२) जगजीवन अष्टक, (३) विनय शतक। ये तीनों ही ग्रंथ उत्तम श्रेणी के हैं। भाषा परिमार्जित अवधी है। इनमें माधुर्य-प्रसाद-गुण की मात्रा अधिक है। 'रत्नावली' में केवल दोहे सोरठे हैं, विनय शतक में भाँति भाँति के पद तुलसीदास जी के विनय से मिलते हैं। अष्टक छप्पय छंदों में है। आप ऊँची गति के पहुँचे हुए महात्मा हुये हैं। आपके पुत्र भोंदूदास की अवस्था इस समय ७० साल के लगभग है।

संख्या ५ सी. विनय शतक, रचयिता--श्रीअवध प्रसादजी (धर्मे जिला रायबरेली), कागज—देशी, पत्र—८०, आकार—८½ × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६३, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—१९३० वि० के लगभग (१८७३ ई०), लिपिकाल—१९७९ वि०, प्राप्तिस्थान—त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी 'विशारद', स्थान—पूरेपरान पाँडे, डा०—तिलोई, जि०—रायबरेली।

आदि—वन्दौं श्री गणपति वरदायक। जय गिरिजानन्दन जग बंन्दन शंकर सुवन सहायक। सिद्धि पुरुष गज बदन रदन-यक, लम्बोदर अधिनायक। प्रणतारतहर बिघ्न विनाशन

देव अनादि विनायक। नाम महत्व जानि सर्वोपरि पूज्यमान सब लायक। जेहि ध्यावत पावत फल अभिमत, गावत निगम सिद्धि मुनि नायक। द्रवहु दीन जन जानि गजानन देहु दयाकरि वर मन भायक। बसहिं राम सुखधाम, 'अवध' उर कर सरोज लीन्हें धनुशायक।

अन्त—राम कृपालु कृपा अब कीजै। भव भय विकल पुकारत आरत नाथ विनय सुनि लीजै॥ १॥ पाँच पचीस; चारि दश तीनिऊँ षट विकार युत माया॥ यह उपाधि परि हरहु करहु अब कृपासिन्धु निज दाया॥ २॥ माया प्रबल तिहारी माधव शिव विरंचि भ्रमि जाहीं। जे ऐसे सर्वज्ञ महातम नर पामर केहि—माहीं॥ ३॥ भव-निधि तारन विपति विदारन अधम उधारन हारो। हे जगदीश ईश करुणामय ? कृपा-कटाक्ष निहारौ॥ ४॥ बार बार कर जोरि विनय करि निज दीनता सुनाई। जग जीवन जगदीश जगतपति लेहु अवध अपनाई॥ ५॥ × × ×

विषय—विनय शतक—यह ग्रंथ श्री अवध प्रसाद जी ने भक्तजनों के आनन्द तथा अपने अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु निर्मित किया था। इसमें सर्वप्रथम कवि परम्परा के अनुसार श्री गणेश जी की प्रार्थना की गई है। पुनः क्रमशः सूर्य, महादेव, पार्वती, श्रीगंगा जी, श्री सरयू जी, श्री काशी जी, वृन्दावन और यमुनाजी, चित्रकूट, श्री हनुमान जी, श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी, श्री शत्रुहन जी, श्री दशरथ जी, श्री जनक जी, श्रीकौशिल्या जी, केकयी जी, सुमित्रा जी, श्री सीता जी, श्री माण्डवी जी, उर्मिला जी, श्रुतिकीरति जी आदि की वन्दनाएँ अनेक पदों में की गई हैं। इसके पश्चात् राम नाम की वंदना है जिसमें श्री जगजीवन स्वामी सत्यनामी संप्रदाय के आचार्य का नाम श्री राम के रूप में आया है और कहीं-कहीं अलग भी उनके नाम से पद कहे गये हैं। माधव के नाम से भी कहीं-कहीं पदों में विनय की गई है। इस ग्रंथ के पद विनय पत्रिका से बहुत मिलते हैं। ज्ञात होता है कि आपने विनयपत्रिका (तुलसीकृत) के अनुसार ही ग्रंथ लिखा है। जिसमें अनेक देवी देवताओं का वर्णन है। कविता के विचार से भी यह ग्रंथ विनय पत्रिका के लगभग पहुँचा है। इसके छंदों की भाषा अवधी है। संस्कृत के शब्द भी अधिकता से आये हैं।

विशेष ज्ञातव्य—श्री अवध प्रसाद जी की जीवनी पिछले विवरण में दे चुका हूँ। आप सोमवंशी क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे। आप एक अच्छे कवि और ऊँचीगति के महात्मा हुए हैं। आपने जितनी कविता की है सब ईश्वर भक्ति से सम्बन्धित है। आपके सभी ग्रंथ शांति रस से पूर्ण हैं।

५ संख्या—६. जन्म चरित्र श्री गुरुदत्त दास जी का, रचयिता—बचऊ दास जी (सलेथू, जिला रायबरेली), कागज—सफेद देशी, पत्र—४४, आकार—८½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२०, पूर्ण, रूप—साधारण, पद्य, लिपि—देवनागरी, लिपिकाल—१९८९ वि० (१९३२ ई०), प्राप्तिस्थान—मुंशी सन्त प्रसाद जी, स्थान—प्राइमरी स्कूल, तिलोई, डा०—तिलोई, जि०—रायबरेली।

आदि—श्री गणेशाय नमः। दोहा॥ बन्दौ गुरु गणेश पद गिरजा शंभु समेत। शची शारदा सरस्वति, रमा समेत रमेस॥ १॥ देव दनुज नर नाग-खग सहसानन हरि-

यान । करहु कृपाजन जानि कै, भजौं नाम तजि मान ॥ २ ॥ बिनती श्री हनुमान जी, सुनिये बारहु बार । कहा चहौं सत ग्रंथ कछु, तुम प्रभु करहु संभार ॥ ३ ॥ जगजीवन जगदीश हरि, धरौं चरन पर माथ । करौ मनोरथ पूर यह, है सब तुम्हरे हाथ ॥ ४ ॥

अन्त—जो यह चरित लिखै सदा, और लिखावै कोय ॥ सो वांछित फल पावै, जग में कीरति होय ॥ १ ॥ जो यहि ग्रंथ क पूजै, धूप दीप नित देय ॥ भूत प्रेत की बाधा तेहि घर रहै न कोय ॥ २ ॥ और सकल बाधा हरै, करै सुमंगल क्षेम ॥ जो निश्चै मन में धरै, गुरू चरित्र के नेम ॥ ३ ॥ गुरु चरित्र गुरु रूप है, इनको लखै न कोय ॥ जो कोउ इन ही का लखै, तेहि समान सोइ होय ॥ ४ ॥ यह चरित्र जेहि के ग्रह, तेहि कर बड़ी है भागि ॥ रिद्धि सिद्धि शुभ गुन सकल, रहै ताहि संग लागि ॥ ५ ॥

विषय—जन्म चरित्र श्री गुरुदत्त दास जी सत्यनामी—इस ग्रंथ में प्रथम श्री गुरु जी, गणेश जी, श्री महादेव जी, सरस्वती, लक्ष्मी, हनुमान जी आदि की वन्दना की गई है । पश्चात् बुद्धि शुद्ध होने के हेतु और ग्रन्थ पूर्ण होने की कामना से श्री जगजीवन स्वामी की वन्दना की है । आगे कथा आरंभ करने का प्रसंग इस भाँति वर्णन किया है:—रायबरेली शहर किला के मुहल्ले में मुं० रामसेवक जी के यहाँ जन्म सप्तमी (श्री जग जीवन स्वामी की जन्म तिथि) के समय बड़े बड़े ब्रह्म विचारवाले सत्यनामी एकत्र थे । उस समय आनन्द उत्सव हो रहा था । बाजे बज रहे थे । अवसर पाकर उक्त मुन्शी जी ने श्री गुरुदत्त दास जी (तत्कालीन महन्त श्री देवीदास जी का पुरवा) से उनके पूर्व जन्मों की कथा पूछी । जिसका सारांश इस प्रकार है:—"इससे २ जन्म प्रथम मैं काशी में कबीर के रूप में प्रकट हुआ था । वहाँ पर बहुत दिनों तक निराकार ईश्वर की भक्ति और ज्ञान का उपदेश किया । शरीरान्त होने पर कुछ काल पश्चात् अयोध्या जी में पलटूदास के नाम से अवतार धारण किया और निराकार की निर्मल शोभा का उत्तम वर्णन किया । अब श्री अनूपदास जी का पुत्र होकर ईश्वर का भजन करता हूँ । मेरे शरीर का जन्म सं० १८७७ वि० अषाढ़ शुक्ल १३ बृहस्पतिवार को लछमनगढ़ में हुआ । लड़कपन से ही ईश्वर का भजन कर रहा हूँ । साहब सधनदास जी (कोटवा) ने मंत्रोपदेश दिया" । इसके पश्चात् आपने अपने जीवन में जो अलौकिक और चमत्कार पूर्ण कार्य किये हैं उनका वर्णन विस्तार पूर्वक समय और स्थान सहित श्री बचऊदास जी ने वर्णन किया है । ग्रंथ उत्तम और शिक्षाप्रद है ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री बचऊदास जी सत्यनामी—आप सलेथू जिला रायबरेली के रहनेवाले ब्राह्मण थे । आपका जन्म सं० १८८० के लगभग होना अनुमान सिद्ध है । आप साधारण पढ़े लिखे थे ऐसा आपके रचित ग्रंथों से ज्ञात होता है । युवावस्था में श्री महात्मा रामबकस दास जी (श्रीदूलनदासजी सत्यनामी, धर्मे, जिला रायबरेली, के पुत्र) के शिष्य हुए थे । और गुरु के सिद्ध महात्मा होने के प्रभाव से आप भी एक ऊँची गति के महात्मा हुए । आपकी रचित दो पुस्तकें मेरे देखने में आई हैं:—१—श्री रामबकसदास जी का जीवन

चरित्र। २—श्री गुरुदत्त दास जी का जीवन चरित्र। ये दोनों पुस्तकें अत्यन्त सरल भाषा (ग्रामीण भाषा) में हैं। सरल इतनी हैं कि बिना पढ़ा मनुष्य भी अर्थ भली भाँति समझ सकता है। इन पुस्तकों में कई प्रकार के छंद और अलंकार आदि काव्य के गुण भी पाये जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि आपको भाषा काव्य का साधारण ज्ञान था। आपका देहावसान सं० १९६० वि० के लगभग होना अनुमान से सिद्ध होता है। यह बहुत बड़े भजनानन्दी और ऊँची गति के महात्मा थे।

संख्या ७. अनुभव प्रगास, रचयिता—साहब बदलीदासजी (लखनऊ), कागज—देशी, पत्र—७४, आकार—८½ X ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)—५७२, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—सं० १८५० वि० के लगभग, लिपिकाल—सं० १९८६ वि० (१९२९ ई०), प्राप्तिस्थान—महन्त चन्द्रभूषण दास जी, स्थान—उमापुर, डा०—मीरमऊ, जि०—बाराबंकी।

आदि—सोरठ—गुरु पद रज सिर राखि, अनुभव ज्ञान प्रकास करि। तुम्हैं कहौं प्रभु भाखि, दास हृदय बसि बिमल गुन ॥ १ ॥ मोहिं करु आपन दास, गुरु साहेब सुख दानि तुम्ह। देहु एक विश्वास, नाम जिकिर छूटै नहीं ॥ २ ॥ गुरु साहेब सुख-दानि, नाम जलाली सुख-सदन। भक्ति-ज्ञान-गुन-खानि, खेवक भव-जल के सदा ॥ ३ ॥ जग जीवन सुख-मूल, सूल हरन निज दास कर। होहु नाथ अनुकूल निज सुत सेवक जानि मोहिं ॥४॥

अंत—दोहा—आशा यहि संसार की मिटै न कोटि उपाइ। बदलिदास, कीजै कहा, जेहि विधि मन ठहराइ ॥ सिंधु-प्रसूती जक्त-सुख, मन-मतंग करि पान। 'बदलिदास' मानै नहीं, बिन सत अंकुश ज्ञान ॥ परमातम दरशै नहीं, मन को कारज पाइ। मारतण्ड छवि समुद में, लहरै देत दुराइ ॥ जो चित पावै सन्त गति, तरौ मन होइ निरास। यथा देह पौरुष थकै है इन्द्री रूचिनास ॥ चित की थिरता तोष गति, मन को थिरता चीत। मन थाके कारज मिटै, मेंटै आतम मीत ॥

बिषय—[अनुभव प्रकाश (अनुभौ परगास) यह ग्रंथ श्रीमहात्मा जगजीवन साहब सत्यनामी के पुत्र जलालीदास जी के सुयोग्य शिष्य श्रीबदलीदास जी का रचा हुआ है। इसमें वास्तव में यथा नाम तथा गुण की कहावत चरितार्थ की गई है।] प्रथम श्री गुरुजी के चरण रज की वंदना तथा ग्रंथ के निर्विघ्न समाप्त होने के हेतु प्रार्थना की गई है। पश्चात् श्री जगजीवन स्वामी की विशेष रूप से वन्दना है। फिर सद्गुरु से इस बात की प्रार्थना की गई है कि वे कृपालु ऐसा ज्ञान दें कि मन जो माया और मोह के वश में है कृतार्थ हो। इसका उत्तर गुरु इस प्रकार देते हैं, "जब तक जीव कर्म के वश में रहता है तब तक अनेक बार जन्म लेता और कर्म के अनुसार दुःख भोगता रहता है। विषय और मोह के वश में पड़कर दुःख उठाता रहता है। इससे उद्धार होने का एक उपाय यह है कि नाम के दृढ़ अभ्यास से मन को निर्मल और एकाग्र करे। सुरति के द्वारा नाम के अजपाका अभ्यास करे। इससे बढ़कर और कोई दूसरा उपाय नहीं है—"। इसी बात की पुष्टि के लिए अनेक

दृष्टान्त और कथाएँ दी हैं। अनहद शब्द के अभ्यास पर भी जोर दिया है। पुस्तक आत्म ज्ञान के इच्छुकों के हेतु अति उत्तम है।

विशेष ज्ञातव्य—महात्मा श्री बदली दास जी अनन्त श्रीमहात्मा जगजीवन स्वामी सत्यनामी के पुत्र श्री जलाली दास जी के सुयोग्य शिष्य थे। आप कदाचित लखनऊ के निवासी थे। आपकी जाति आदि का ठीक ठीक पता बहुत खोज करने पर भी नहीं लगा। आप अनुमानतः सं० १८४० वि० के लगभग विद्यमान थे। आपका जन्म सं० १८०० वि० के आसपास सिद्ध होता है। आप साधारण श्रेणी के कवि और ऊँची गति के महात्मा हुए हैं। आपका रचा हुआ केवल एक ही ग्रंथ 'अनुभव प्रकाश' मेरे देखने में आया है, परन्तु यह अकेला ग्रंथ ही आपकी प्रतिभा और आत्मज्ञान को पूर्ण रूप से प्रकाशित करता है। इस ग्रन्थ की भाषा ग्रामीण मिश्रित अवधी है। दोहा, चौपाई और सोरठा आदि छंदों में कविता की गई है। किसी किसी स्थल पर उत्तम श्रेणी की कविता दृष्टिगोचर होती है। आपका अनुभव ज्ञान बढ़ा चढ़ा था इस ग्रंथ में ज्ञान की प्रधानता है और भक्ति का भी यत्र तत्र उत्कृष्ट रूप में वर्णन किया है। आत्मज्ञान के अभिलाषी पुरुषों के हेतु यह ग्रंथ उत्तम है। आपका देहावसान अनुमान से सं० १८६० वि० के लगभग हुआ।

संख्या ८. गरुड़ पुराण भाषा, रचयिता—पं० बलदेव सनाढ्य (सादाबाद), कागज—बाँसी, पत्र—५१, आकार—९×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—११५०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८११ वि०—१७५४ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री चिरंजीलाल जी पुरोहित, बरसाना, मथुरा।

आदि—अथ गरुड़ पुराण लिष्यते ॥ गरुड़ जू श्री भगवान जू सौं पूछत भए भगवत के प्रसाद करिकै तीन्यो लोक वैकुंठ आदि सचराचर जीव सम्पूरन देषे उत्तम स्थान सम्पूर्ण देषे। जा पाताल ते लै कैं सत्य लोक परयंत संपूर्ण देषे पैले जमलोक नदी देष्यौ भूलोक जो है म्रत्युलोक सो सरव जीव तिन लोकनि के प्रचुर कहियै महरलोक कौ चले जात है।

अंत—जो प्राणी भगवत् भाव सौं या पुराण की विधि विधान करैं अथवा श्रवण करै हैं ताके पित्र वैकुण्ठ वास पामै है अस कर्ता जो विधि कौ धर्म बैकुंठ मैं वृद्धि को प्राप्त होतु है ते प्राणी या गरुड़ पुराण की विधि विधान करै हैं ते अन्त समै जम लोक को देषै नहीं। आद्य विंस जो तर्क हैं तिनको दर्सन देषे नहीं यह पुराण या प्रकार को है। इति श्री गरुड़ पुराणौं समाप्त संवत् १८११।

विषय—गरुड़ पुराण का हिन्दी-गद्यानुवाद।

संख्या ९. रामधाम, रचयिता—बलराम जी, कागज—देशी (बादामी), पत्र—६०, आकार—९×५$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४६०, खंडित, रूप—जीर्ण शीर्ण, पद्य, लिपि—देवनागरी, लिपिकाल—१८७० वि० (?), प्राप्तिस्थान—ठा० हाकिम सिंह चहुवान, स्थान—उत्तर पारा, डा०—अमावाँ, जि०—रायबरेली।

आदि--औगुण सकल मेटि कै तिन्ह के आपन कहि सब विधि अपनायो । गनिका गीध अजामिल सेवरी कोल किरात अधम समुदायो । और अमित को गनै कहाँ लगि तरे सँकल जो सरन तकि आयो । प्रभु को बिरद धुरंधर समरथ जगत विदित श्रुति संतह गायो । यक बलिराम पतित तारन कौ जानि पिनाक नाथ अरगायो ॥ ७ ॥

अंत—अष्टपदी पुनः । जन्म सब यों ही बीति गयो । कर उर प्रेम न कियो संत संग नहि हरि नाम लियो । सुख निधान सुर दुर्लभ यह तन सो प्रभु तोहि दयो । तू सठ हठ सो प्रभुहि बिसारो साह ते चोर भयो । बार बार जग जन्म जहाँ तह नेह नात बढ़यो । ते सब भोरै तोहि करि धोखा राह चलत ठगयो । उपजत विनसत काल कर्म बस जनम अमित वितयो । कह वलिराम काम पूरन हरि कृपा कोर चितयो ॥ × × ×

विषय—इस पुस्तक का नाम श्री रामधाम है । नाम के अनुसार ही इसमें गुण भी है । संपूर्ण पुस्तक में श्री रामचंद्र जी का यश और महिमा वर्णन की गई है तथा अपनी दीनता और असमर्थता प्रकट करते हुए श्री रामचन्द्र जी से भक्ति और मुक्ति देने की प्रार्थना रचयिता ने की है । विनय पत्रिका के ढंग पर अनेक प्रकार से रामचन्द्र जी की प्रार्थना की गई है । स्थान स्थान पर ईश्वर भजन करने की चेतावनी दी है । कई पदों में क्रमशः बालकांड अयोध्याकांड आदि की कथा संक्षेप में वर्णन की गई है । अयोध्यापुरी का भी वर्णन किया गया है । रामनाम की महिमा का वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है । सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन भी एक अष्टपदी में है । एक पद "जय रघुनाथ हरे—" गीत गोविन्द के ढंग पर लिखा गया है । अन्त में दो तीन पद निराकार ईश्वर, मन तथा आत्मा के विषय में लिखकर ग्रंथ पूर्ण किया गया है । ग्रंथ पाँच सर्गों में समाप्त हुआ है ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री बलराम जी की जीवनी बहुत खोज करने पर भी मुझे प्राप्त न हो सकी । कदाचित् आप बँधुआहसनपुर जिला सुलतानपुर के उदासी (नानकपंथी) महन्त थे; परन्तु आप वैष्णव संप्रदाय को विशेष रूप से मानते थे । पुस्तक के आद्योपांत पढ़ने से ज्ञात होता है कि ये बड़े सरस हृदय, रामचन्द्रजी के भक्त और अच्छे कवि थे । आपके गुरु का नाम गुरुप्रसाद था जो कई स्थानों पर वर्णन किया गया है । आपकी केवल यही एक पुस्तक मेरे देखने में आई है जिसकी कविता अच्छी है । इसमें अधिकतर अष्टपदी (भजन) छन्द लिखे हैं । कई पद जिनमें श्री रामजी की शोभा का वर्णन है सूरदास जी तथा तुलसीदास जी के बालशोभा वाले पदों के समान ही सरस हैं । दुःख है कि आपके विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं हो सका ।

संख्या १० ए. ज्ञानपचीसी, रचयिता—बनारसी, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—१०½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—४७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७५० वि० (संभवतः), लिपिकाल—१८८० वि० (देखिए वेदान्त अष्टावक्र का विवरण पत्र), प्राप्तिस्थान - ठा० रामचरण सिंह, मौ०—विलारा, डा०—विसावर, जिला—मथुरा ।

आदि--अथ ज्ञान पच्चीसी लिख्यते ॥ सुरनर त्रिजग जोनि में नरकनि गोद भमंत । महामोह की नींद में सोवै काल अनंत ॥ १ ॥ जैसे जुर के जोर सों भोजन की रुचि जात । तैसे कुकरम के उदै धरम बचन न सुहात ॥ २ ॥ लगै भूख ज्वर के गये रुचि सों लेय अहार । असुभ हानि सुभ कौं जगै जाने धरम विचार ॥ ३ ॥ जैसें पवन झकोर तैं जल मैं उठै तरंग । त्यौं मनसा चंचल भई परिगह के परसंग ॥ ४ ॥ जहाँ पवन नहि संचरै तहाँ न जल किल्लोल । त्यौं सब परिगह त्याग तै मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥ ज्यूं काहू विषधर डसैं रुचि सों नीव चबाय । त्यूं तुम ममता सूं मढै मनन विषै सुषपाय ॥ ६ ॥

अन्त--जैसे ताल सदा भरै जल आवैं चहुँओर ॥ तैसे आश्रव द्वार सौं करम बंध कौ जोर ॥ २१ ॥ ज्यौं जल आवत मूदिए सूके सरवर पानि । तैसे सेवर के किये करमनि जरा हानि ॥ २२ ॥ ज्यौं बूटी संयोग तैं पारा मूर्च्छित होय । त्यौ पुदगल सौं तुम मिलै आतम सक्त समोय ॥ २३ ॥ मेलि षटाई मांजिये पारा परगट रूप । शकुन ध्यान अभ्यास तै दरसन ग्यान अनूप ॥ २४ ॥ कहे उपदेश बनारसी चेतन अब कछु चेत । आप बुड़ावत आप कूं उदै करण के हेत ॥ २५ ॥ इति ज्ञान पच्चीसी संपूर्णम् ॥

विषय--शिष्य को संसार के झूठे धंधों, प्रलोभनों, माया, मोह, रागद्वेष आदि से दूर रहकर आत्मा को पहचानने का उपदेश दिया गया है।

संख्या १० बी. शिवपच्चीसी, रचयिता—बनारसी, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—१०½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—१७५० वि० (लगभग), लिपिकाल—१८८० वि० (देखिए वेदांत अष्टावक्र का विवरण पत्र), प्राप्तिस्थान—ठा० रामचरण सिंह, स्थान—विलारा, डा०—विसावर, जि०—मथुरा।

आदि—अथ शिव पच्चीसी ॥ ब्रह्म विलास विकास धर चिदानंद गुणषान । वंदौ सिध समाधि मय, शिवस्वरूप भगवान ॥ १ ॥ मोह महातम नासनी ग्यान उदधि की सींव । वंदु जगत विकासिनी, शिव महिमा शिव नीव ॥ २ ॥ चौपाई ॥ शिव स्वरूप भगवान अवाची । शिव महिमा अनुभो मत साँची ॥ शिव महिमा जाके घट भासी । सो शिव रूप होय अविनासी ॥ ३ ॥ जीव और शिव और न होई । सोई जीव वस्तु शिव सोई ॥ जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिव स्वरूप निहचै गुणधारी ॥ ४ ॥ करै जीव जब शिव की पूजा । नाम भेद तैं होय न दूजा ॥ विधि विधान सों पूजा ठानै । तब शिव आप आप हूँ मानै ॥ ५ ॥

अन्त—अष्ट करम सौं भिड़े अकेला । महारुद्र कहिये तेहि बेला ॥ मन कामना रहे नहीं कोई । काम दहन कहिये तब सोई ॥ २० ॥ भववासी भव नाम कहावै । महादेव यह नाम जु ध्यावै ॥ आदि अंत कोई नहीं जानै । शंभु नाम सब जगत बषानै ॥ २१ ॥ मोह हरन हरिनाम कहीजै । शिव स्वरूप शिव साधन कीजै ॥ तजि करनी निहचै महि आवै । तब जग भंजन विरद कहावै ॥ २२ ॥ विश्वनाथ जगपति जग जानै । मृत्युंजय जब मृत्यु न मानै ॥ शुकल ध्यान गुन जब आरोहै । नाम कपूर गौर तब सोहै ॥२३॥ दोहा ॥ इहि विधि

जे गुण भादरै रहै राचै जेहि ठाम ।। जेहि जेहि मारग अनुसरै ते सव सिव के नाम ॥ २४ ॥ नाम यथामति कलपना कहूँ परगट कहूँ गुढ ॥ गुणी विचारै वस्तु गुण नाम; नाम विचारै मूढ ॥ २५ ॥ मूढ मरम जानै नहीं करै न शिव सौं प्रीत । पंडित लषै बनारसी शिव महिमा शिव रीति ॥ इति श्री शिव पच्चीसी संपूर्णम् ॥

विषय—शिव के नाम और स्वरूप का दार्शनिक विवेचन किया गया है ।

संख्या १० सी. वैराग्य पच्चीसी, रचयिता—बनारसी, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—२०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७५० वि०, लिपिकाल—१८८० वि० (देखिए वेदांत अष्टावक्र का विवरण पत्र), प्राप्तिस्थान—ठा० रामचरण सिंह, ग्राम—विलारा, डा०—विसावर, जि०—मथुरा ।

आदि—अथ वैराग्य पच्चीसी लिष्यते ॥ दोहा ॥ रागादिक दोषण तजै वैरागी जो देव ॥ मन वच सीस नवाइये कीजै तिनकी सेव ।। १ ॥ जगत मूल यहू राग है मूक्ति मूल वैराग ॥ मूल दोऊ को यह कह्यौ जागि सकै तौ जाग ।। २ ॥ क्रोध मान माया धरत; लोभ सहित परिनाम । एई तेरे शत्रु हैं समझौ आतम राम ॥ ३ ॥ ऐई चारौं शत्रु कौं जो जीतै जग मांहि । सो पावै पथ मोक्ष कौं यामै धोषा नाहिं ॥ ४ ॥ × × × जा कुटुम्ब के हेत तू करत अनेक उपाय ॥ सो कुटुम्ब आगै धरै तोकू देहि जराय ॥ ६ ॥

अन्त—अधौ सीस उरध चरन कौन असुचि अहार । थोरे दिन की बात यह भूलि जात संसार ॥ १९ ॥ अस्ति चरम मल मूत्र में रैनि दिना कौ वास ॥ देषै दृष्टि घिनावनी तऊ न होत उसास ॥ २० ॥ रागादिक पीडित रहै महाकष्ट जो होय । तबहू मूरष जीव यह धरम न चीने कोय ।। २१ ॥ मरन समय विललात है कोई लेह बचाय । जानै ज्यौं त्यौं जीजिये जो नर कछु वसाय ॥ २२ ॥ फिरि निरभौ मिलिवौ नहीं कीये कोटि उपाय । तातै वेगि न चेतहू अहो जगत के राय ॥ २३ ॥ भइया की यह बीनती चेतन चित्तहि विचार । दरसवन ग्यान चरित्र मैं आपा लेहू निहार ॥ २४ ॥ एक सात पंचास के संवत्सर सुषकार । पोष सुकुल तिथि धरम की जै जै बृहस्पतिवार ॥ २५ ॥ इति श्री वैराग्य पच्चीसी संपूर्णम् ॥

विषय—पच्चीस दोहों में वैराग्य का विषय तथा संसार की क्षण-भंगुरता समझाई गई है ।

संख्या १० डी. वेदांत अष्टावक्र (भाषा), कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—७३५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७५० वि० के लगभग, लिपिकाल—१८८० वि० के लगभग, प्राप्तिस्थान—ठा० रामचरण सिंह, ग्रा०—विलारा, डा०—विसावर, जि०—मथुरा ।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ॥ अथ वेदान्त अष्टावक्र की भाषा लिष्यते ॥ दोहा ॥ ज्ञान प्रकासहि कह्यो प्रभु मुक्त किहि विधि जानि । पुनि वैराग्यहि सो कह्यो तत्व लह्यो सर्व

ज्ञानि ॥ १ ॥ श्री गुरुवाच ॥ जो तोहि तात मुक्ति की इच्छा । विषवत विषया जान पर इच्छा ॥ षमा और जबदया संतोष । इन पंचामृत पावै मोक्ष ॥ २ ॥ दोहा ॥ पृथ्वी वाय तुं जल नाहीं अग्नी अकास हूं नाहीं ॥ इनको साषी रूप है तूं चैतन घन माहि ॥ ३ ॥ जवही जाने शिष्य तूं प्रगट देह हूँ नाहि । चित्त विश्रांत और शान्ति सुष वंध मुक्त क्षन मांहि ॥ ४ ॥ चौपाई ॥ तूं तो वर्णाश्रम ते न्यारो । साक्षी सदा असंग उजारो ॥ इन्द्री ताहि सकै नहीं जान । सुषी होइ सुत अैसे भान ॥ ५ ॥

अंत—मन प्रकास नहीं मूढता सुप्न सुषोप्त नाहि ॥ कछु मुनि की अचरज दसा गलत भयो ता माहि ॥ २० ॥ इति सत्व स्वरूप विंशति कं सप्तदश प्रकर्णम् ॥ × × कहा मुमुछी मुक्त कहा हे । कहा ज्ञान पुनि ज्ञान कहा हे ॥ वंध मुक्त कहूँ कछु नाहीं । सहज स्वरूप अद्वैत मों माहीं ॥ ६ ॥ सृष्टि और सिंघार कहा अव । साध अरु सिद्ध कहु कैसै तव ॥ साधक साध तहाँ कछु नाहीं । स्वसुरूप अद्वैत मो मांहि ॥ ७ ॥ कहा प्रमाता कहा प्रमाण । परम प्रेम सो करौ वषान ॥ किंचित और न पैये क्यूंही । अचल अमल हों ज्यूं को त्यूंही ॥ ८ ॥ दोहा ॥ कहा प्रवृत्तीन्नवृत्ति पुनि वंध मुक्त कछु नाहीं । निर विभाग कूटस्थ हो अचल सदा अपमाही ॥ १२ ॥ कहा शास्त्र उपदेश है गुरू सिव कोऊ नाहीं । पुरूपारथ कासौं कहो निर उपाध सिव मांही ॥ १३ ॥ एक कहा अरु द्वैत है पुनि है नाहीं कहि ठौर ॥ कहौ कहाँ लौं वात यह यो ते कछू न और ॥ १४ ॥ इति शिष्य प्रोक्तं जीवन मुक्त चतुर्दशकं ॥ इति अष्टावक्र संपूर्ण ॥

विषय—१–प्रथम प्रकरण—उपदेश विंशतिकं २० छंद, पत्र ३ तक । २–द्वि० प्र०–आत्मानुभावोल्लास चतुर्विंशतिकम् २४ छंद, पत्र ५ तक । ३–तृ० प्र०–आक्षेप द्वारा उपदेश चतुर्दशकं छंद १४, पत्र ६ तक । ४–च० प्र०–हुल्लास षष्टकं छंद ६, पत्र ७ तक । ५–पं० प्र०–लय चतुष्कं छंद ४, पत्र ७ तक । ६–ष० प्र०–शिष्य प्रोक्त उत्तर चतुष्कं छंद ४, पत्र ७ तक । ७–स० प्र०–अनुभव पंचकं छंद ५, पत्र ७ तक । ८–अ० प्र०–वंध मोक्ष चतुष्कं छंद ४, पत्र ७ तक । ९–न० प्र०–निर्वेदाष्टकं छंद ८, पत्र ८ तक । १०–द० प्र०–उपसम अष्टकं छंद ८, पत्र ८ तक । ११–ए० प्र०–ज्ञाताष्टकं छंद ८, पत्र ८ तक । १२–द्वा० प्र०– एवाष्टकं छंद ८, पत्र ९ तक । १३–त्रयो० प्र०–यथासुष सप्तकं छंद ७, पत्र ९ तक । १४–चतु० प्र०–शांति चतुष्कं छंद ४, पत्र ९ तक । १५–पंच० द० प्र०–तत्वोपदेश विंशतिकं छंद २०, पत्र १० तक । १६–षो० प्र०–सर्व विस्मरणोपदेश एकादशकं छंद ११, पत्र ११ तक । १७–स० प्र०–सत्वस्वरूप विंशतिकं छंद २०, पत्र १२ तक । १८–अ० प्र०–शांति शतकं छंद १००, पत्र १८ तक । १९–ए० प्र०–आत्म विश्रांति अष्टकं छंद ८, पत्र १९ तक । २०–वि० प्र०–शिष्य प्रोक्तं जीवन्मुक्त चतुर्दशकं छंद १४, पत्र २२ तक ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के प्रारंभ में जो दोहा दिया है उसमें 'ज्ञान प्रकास' और 'वैराग्य' गुरू द्वारा वर्णन किए गये है । इन्हीं नामों के दो ग्रंथ 'ज्ञान पचीसी' और 'वैराग्य पचीसी' प्रस्तुत हस्तलेख में इस ग्रंथ के आगे दिये गए हैं । 'ज्ञान पचीसी' बनारसी नाम के एक रचयिता की कृति है । शायद प्रस्तुत ग्रंथ भी उन्हीं का रचा हुआ हो ।

उनका कोई शिष्य चेतन नाम का जान पड़ता है। 'ज्ञान पच्चीसी' के अन्त के दोहे से ऐसा कुछ ज्ञात होता है। उसमें रचनाकाल सं० १७५० वि० दिया है। इससे ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रंथ भी इसी समय के लगभग निर्मित हुआ। शायद चेतन का गुरु बनारसी है जिनके गुरू शिष्य संवाद के रूप में यह ग्रन्थ वर्णन किया गया है अथवा 'अष्टावक्र गीता' का ही क्रम हो। ग्रंथ कर्ता ने ग्रंथ में न तो अपना नाम ही दिया है और न रचनाकाल ही। सारे ग्रंथ की रचना दोहा चौपाइयों में हुई है। इस ग्रन्थ के पहले प्रस्तुत हस्तलेख में सुन्दर विलास ग्रन्थलिपिबद्ध है जिसका लिपिकाल सं० १८८० है। इससे प्रस्तुत ग्रंथ भी इसी काल का लिपिबद्ध हो सकता है।

संख्या ११ ए. रमल प्रश्न, रचयिता—भगवानदास, कागज—देशी, पत्र—२०, पंक्ति—(प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८०, पूर्ण, रूप—पुराना, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० महादेव प्रसाद जी, स्थान व डा०—जसवन्त नगर, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ अथ पोथी रमल प्रश्न लि०॥ ऐसा काजी स पूर्वा दोहा॥ ॐ सिवा सिव जपत ही, राति निवंतन देइ। भोर करै असनान तब, काज मरम कहि देइ॥ १॥ जो कछु विधि यामैं लिषी; कीजै ताहि प्रसिद्धि। सो विष चूकै नहीं, समझि सकै तिहि सिद्ध॥ २॥ सहज षेलकरि पूछही, तो कविकुल हि न दोस। विधि पूर्व करि सुचित है, मो शिव शक्ति भरोस॥ ३॥ वेद सहस्र कलि गुप्त जव, तव जानै यह कोइ। ताही कहँ जग जानिये, वड़ पंडित है सोइ॥ ४॥ आगे कवि है गए जे हुइ भाषा जग मांहि। तिनसौं कहिये देवता, हमसे कवि ठहराहिं॥ ५॥ भगवानदास शिव शक्ति की, वरनी रमल विचार। जो प्रसन्न सुभ ना मिलै, तीन बार लग साइ॥ ६॥ अमल रमल करि कीजिए, निश्चै का मन माहि॥ फल निर्फल समुझै सही, जामैं संसै नाहिं॥ ७॥

अन्त—ॐ शिवा शिव नामत है, प्रसिद्ध यह काज। जुध्य जथा व्यहि कै सकल कीजै आपन सुभ साज॥ प्रथम चारि फिरि चारि पुनि, तीजै तजै ठारत चार सै चवालिस अंक की कीजै प्रश्न विचार॥ ४४४॥ मनवाँछित फल पाइहौ, रमल प्रश्न अवरूह धरि धीरज यह कीजिये, कारज सकल समूह आदि मैं ग्यारह लोज सौ अन्त जानिये॥ भूल है भगवान दास सिव सक्ति की, बरनी रमल विचार। सगमौती जे जगत में, तिन तैं हैं सुषसार॥ इति रमल प्रश्न॥ संपूरनम्॥

विषय—रमल द्वारा शुभाशुभ प्रश्नों का उत्तर बतलाना।

संख्या ११ बी. रमल प्रश्न, रचयिता—भगवानदास, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—६¾ × ४¾ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामप्रसाद जी, स्थान व डा०—बकेवर, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ रमल लिष्यते॥ ऐसा काजीस पूर्व॥ दोहा॥ ॐ शिवा शिव जयति हरि, तिन्हैं नवंतन देइ। भोर करै असनान तव, काज रमल कहि देइ

॥ १ ॥ जो कछु विधि यामैं लिखी, कीजै ताहि प्रसिद्धि ॥ २ ॥ सहज षेल करि पूछ ही, नौ कवि कुलहि न दोस । विधि पूर्व करि सुचित है, करि शिव शक्ति भरोस ॥ ३ ॥ वेद सहस्र कलि गुप्त जब, तब जानै यह कोइ । ताही कहँ जग जानियै, वह पंडित है सोइ ॥४॥ आगे कवि है गए जे, हैं भाषा जगमाँहि । तिनसे कहिये देवता, हमसे कवि ठहराइ ॥ ५ ॥ भगवान दास शिव शक्ति की, वरनी रमल विचार । जो प्रसन्न सुभ ना मिलै, तीनिबार लगसार ॥ ६ ॥ अमल रमल करि कीजियै, निश्चै कर मन माहिं । फल निर्फल समुझै सही, जामैं संसय नाहिं ॥ ७ ॥ अर्थांक भेद ॥ एक एक ढाएन लषै, तीनि बार कै अंक । इकसत ग्यारह जोरियै, नीक प्रश्न गत संक ॥ १११ ॥

अन्त--अति प्रसिद्धि ता जानिये, कारजु दो इन थोर । गिरिजा वचन प्रवान करि, कहत मनोरथ मोर ॥ चार सै तं चार हय वार कै, तीजै ढारत तीनि । चारि सै तेतालीस की देषौ प्रश्न विचार ॥ ४४३ ॥ ॐ सिवा सिव नमत है, प्रसिद्धि यह काजु । जधिध जथा व्यहि कै सकलक कीजै अपन--सुभ सना प्रथम चार फिरि चार ॥ पुनि तीजै तजै ढारत चार सै चार सै चौवालिस अंक, की कीजै प्रश्न विचार ॥ ४४४ ॥ मनवाँछित फल पायहौ, रमल प्रश्न अवरह धरि धीरज यह कीजिये । कारज सकल समूह आदि मैं ग्यारह लीज सो अन्त जानिये भूल है ॥ भगवान दास सिव सक्ति की, वरनी रमल विचार । सगनौती जे जगत में तिनते है सुषसार ॥ इति रमल प्रश्न संपूरनं ॥

विषय—रमल द्वारा शुभाशुभ प्रश्नों के उत्तर देने का वर्णन ।

संख्या ११ सी. रमल प्रश्न, रचयिता—भगवानदास, कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९१९ (१८६२ ई०), प्राप्तिस्थान—मास्टर भानु किशोर जी, स्थान—कटरा साहब खाँ, इटावा ।

आदि—···जे ठारत दोइ । एक सत वारह अंक की, नीक प्रश्न नहिं होइ ॥ ११२ ॥ अफल प्रस्न सुभ है नहीं, जानि परत उपहास । ताते करौ न काज यह, तजि यै मन विस्वास ॥ पासा ढारत एक पुनि, दूजे एक फिरि तीन । एक सत तेरह अंक कौ, जानौं प्रश्न प्रवीन ॥ ११३ ॥ पहिलैं देषि कठिन बहु, पीछै है आसान । भ्रम तजि धरि धीरज करौ, कारज अति सुभ जान ॥ वार दुइक जौ परै तीजै ढारत चार । इकसत चौदह अंक की, देषहु प्रश्न विचार ॥ सुभ कारज यह देषहू, देषहु प्रश्न विचार ।···प्रश्न कही कछु दिन गए······ते होइ । भ्रम तजि जानौं सिद्धि है; शिव प्रताप ते सोइ ॥ प्रथम एक फिरिहू परै, तीजे ढारत एक । इकसत इकइस अङ्क की, कीजै रमल विवेक ॥ १२१ ॥

अन्त—अति प्रसिद्धता जानिए, कारज होय न थोर । गिरजा वचन प्रवान करि, कहत मनोरथ मोर ॥ चारि सैतं चारि दुइ, तीजैं ढारत तीन । चार सै तैतालीस की देषो प्रश्न विचार ॥ ४४३ ॥ ओं सिवा सिव नाम ते, है प्रसिद्ध यह काज । जुद्ध जथा व्याहि कैं । सकल कीजै आपन सुभ साज ॥ प्रथम चारि फिरि चारि पुनि, तीजैं ढारत चार । चारिसै चौवालिस अंक की, कीजै प्रश्न विचार ॥ १४४ ॥ मन वांछित फल पाइहौ । रमल प्रश्न अवखह । धरि धीरज यह कीजिए । कारज सकल समूह ॥ आदि में ग्यारह लीजियौ, अन्त

जानिये भूल । है भगवानदास सिव सक्त की, बरनी रमल विचार । सगुनौती जै जगत मैं, तिन ते है सुष सार ॥ इति रमल प्रश्न संपूरनं ॥ सुभ मिती आषाढ़ सुदी १२ । संमतु १९१९ को ॥ श्री राम जी ॥ सहाइ ॥

विषय—रमल द्वारा शुभाशुभ फलों का वर्णन ।

संख्या १२. अद्भुत रामायण, रचयिता—भवानी लाल, कागज—मूँजी, पत्र—८, आकार—८½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, रचनाकाल—सं० १८४० वि० = १७८३ ई०, लिपिकाल—वि० १८९६ = १८३९ ई०, प्राप्तिस्थान—ठा० डूँगर सिंह जी, स्थान—मदैम, पो० राया, मथुरा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः अथ अद्भुत रामायण लिख्यते ॥ दोहा पारवती पद वन्दि कैं सीस चरण सिर नाइ । लिखित भवानी लाल उर, शारद किन वसु आइ ॥ वार० वान५ वसु८ चन्द्र१ धरि संवत लीजिय जोरि । फागुन सुदि तिथि तीज कौ, लिख्यौ चरित्र बहोरि ॥ जनक लली कर चरित शुभ, रूचि करि सुनहु सुजान । दारा सुत सुख जग लहत, कहत जो वेद पुरान । छंद जयति जग जग दम्बिका जननी अखिल जग जानकी । अति अतुल जासु प्रभाव पावन गम्य नहिं अति ज्ञान की ॥ गुण तीन पाँचौ तत्व मय सब निगुण सगुण सरूप जो । प्रसिद्धि त्रिभुवन विभव भूषित अमित शक्ति सरूप जो ।

अंत—सीय राम राजा अवध जग अभिराम अपार । चरित चारु लीला ललित, करत अनेक प्रकार ॥ छंद लीला ललित सिय राम यह अति गुप्त ग्रन्थन जो रही पावन करण हित गिरा तुलसीस प्रसिधि भाषा कही ॥ पद कंज जानकि प्रीति युत जे सुनहिं सादर गावही । सौभाग्य श्रीपति सकल सुख कल्याण कीरति पावही ॥ दोहा सहस अरु आठ सै, संवत दस अरू तीस । शुक्ल द्वितीया मास मधु, भाषा कथा नवीन ॥ इति श्री जानकी विजयकथा संपूर्णं संवत् १८९६

विषय—राम और सहस्रवाहु रावण के महायुद्ध का वर्णन । सहस्रवाहु रावण का अपने ब्रह्मास्त्रों से राम लक्ष्मण को मूर्छित और घायल कर देनेपर महामाया सीता जी का कुपित होना और क्रोध में रण चण्डी (महाकाली) का विकराल रूप धर रावण को मार कर टुकड़े टुकड़े कर देना । यही इस अद्भुत रामायण का कथानक है ।

विशेष ज्ञातव्य—मूल ग्रंथ संस्कृत में है । इसका कथानक अद्भुत है । इसीलिये इसका नाम अद्भुत रामायण पड़ा है । किसी ने तुलसीदास के नाम से इसका हिंदी में पद्यानुवाद कर डाला है । इसमें रचनाकाल १७८३ ई० तथा ग्रंथ का लिपिकाल १८३९ ई० पड़ा है । इस दृष्टि से ग्रंथ महत्वपूर्ण है । रचयिता ने इसको सं० १८५७ में दुबारा लिखा था जिसका उल्लेख आरंभ में किया गया है:—"वार वान वसु चंद्र धरि संवत लीजिय जोरि । फागुन सुदि तिथि तीज कौ लिख्यो चरित्र बहोरि ॥"

संख्या १३. बारहखड़ी (सम्भवतः), रचयिता—भीखजन, कागज—देशी, पत्र—१८, आकार—४½ × ३½ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८८,

खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० शोभाराम जी, स्थान व डा०—जैंत, जि०—मथुरा।

आदि— × × × मध्य स्वान मन्यौ भूषि, भूसि कै ताहि गति। फटिक षंभ गज चाहि वंदहि दहन वेदन किय। मर्कट मूढि स्वाद तास पर हाथ प्रान दिय। ज्यूं "जन भीष" विवेक विन सुक नलिनी वंधन कस्यौ। यूं अग्यान मति आपतें अफस प्राण फंदन पन्यौ ॥१०॥ उदि यन पति किहि कह्यौ सहज इंद्रीवर फूल्यौ। पहुप वास अनियास आनि मधुकर मर्म भूल्यौ। पारस भाष्यौ काहि मोहि परसत ह्वै कंचन। चंदन कब गुन कथ्यौ तपति तन रहे सुरंचन। रतन अमोलिक सत्र कहै आप मुख कहा बषानिये। ऐसे जन प्रतिभीष जन गुन सहजै ही जानिये ॥ ११ ॥ "रूं" ष डार फल लग्यौ पोषता अंतरि पावत। परै टूटि जल पेषि गिरे पुनि काम न आवत। नदी नीर परवाह मिल्यौ सागर कौ परसे। आतुर ह्वै जल जुदौ वहै फिरि बूंद न दरसै। तजि नवकाजै भीष जन बूढत पार न पाइहै। तैसे गुरू तजि हरि भजै निहचै निर्फल जाइहै। रीति अनूपम येह पुहम पुरवै अनहच्छिक। नाहि जुराहन काहि सेव अनसेव अवांछिक। षग मृग पसू पतंग सकल पोषै सूष सागर। कहै को पचि मरत लिष्यौ सो मिटत न कागर। विरइ लाज पोषै सकल गह्यौ जानि भंजन सरै। सोक्यूं विसरत भीषजन अनचिंतत चिंताकरै ॥१३॥ लियै तासु गुन गयौ दूध कांजी कै परसै। मिलै सुर सरी स्यंध भयौ जल षार सुदरसै। मगमहु कै ढिग लहसन सु तौ ताकौ गुण षोयो। दयौ सर्प पय पान मधुर तै ह्वै विष वोयो। कै लै तऊ कारौ करै जो उज्जल अति धोइये। तौऊ सुसंग तजि भीषजन संग कुसंग न होइये ॥ १४ ॥ मिल्यौ जीव सत संग भयौ मलयाढिग चंदन। लोहा पारस परस सरस दरसत है कुंदन। मिलै सुरसरी नीर सीर चिहचै सो गंगा। मिश्री सौ मिलि वंश तुल्यौ ताही संगा। लोह तिन्यौ नवका मिलै साषि सकल सुनि लीजिए। वदत 'भीषजन' जगत मैं जानि सुसंगति कीजिए ॥ १५ ॥ "एक" बूद आकास जास कदली कपूर भए। एक बूंद मुष व्याल भई विष ज्वाला प्रगट भये। येक बूंद मध्य सीप दीप प्रगटै ह्वै मोती। येक बूंद ग्रह नीच भयौ उत्तम जत छोती। येक बूंद मिटी सिंध में गंध रूप ह्वै गई। यूं जिहि संगति भीषजन मिल्यो सुउह प्रकृति भई ॥ १६ ॥ "ऐ" त लाख करोरि जोरि जो अर्ब्बद षर्व है। पद्म संष अन संष संचि जौ करै दरव है। तृष्णा लहत न तोष पोष जिय न उष उनो। जरै अंगनि ज्यू काठ येक संतोष विहीनो। नदी सिंध सोषै सकल रित पावस छीनौ रहित। त्यूं तृष्णा लगि भीष जन तृप्ति न कबहूँ ना लहत ॥ १७ ॥ 'ओं' स नीर ज्यूं जानि जगत सुपने की संपति। मीत कोठ सम तूध धूम गृह ज्यूं सुष संपति। बालक कौ सो षेल जिशो ठहरावत ओरा। रेतभीति ज्यूं चाहि आहि अंजुलि जल थोरा। सव नवका संजोग सम बिन विछोह ह्वै जात है। चेतत नाहि न "भीषजन" फिर पीछे पछिताहै ॥ १८ ॥ "औषद" मूल अपार भेद विन वारह भूलत। हीरादेत अजान लेत कौड़ी अति फूलत। चिंतामनि कर अंध अस्मकै धरी पटंता। हंस कहै वग आदि मूढ मति के तौ अंतर। पारस लै अहंज कियौ चंदन फूंकत काठ मम। विन पारिष जन भीष जन कैसै जानत तास गम ॥ १९ ॥ 'अं' ग तपति अति दहै

अगनि सीतर करि कारो। तब चाटै करि प्रीति स्वान टेरिस न्यारौ ॥ रूठौ सर्वस लैत देव रूठौ दुष देहै ॥ अर्प च चूंधरि गहत कुंष्ट तही न जु कैहै। दोऊ भांति न होत सुष नीच न भूलि पतीजिये। रस रिस कैसी भीषजन ताहि न कबहू धीजिये ॥ २० ॥ "अति" सुपनै सुष लह्यौ चह्यौ तव नाहि एक छिन। मिल्यौ आइ नौरोज चोज वै चारि पंच दिन। वानी चिहरज आहि चाहि विछुरे बहु वानी। नौका वारि संजोग पारि द्रुम चिरि उडानी। चेतन नाहीं न भीषजन जो आयो सो जाइ है। राति वसै दिन उठि चलै यहु संसार सराइ है ॥ २१ ॥ "कहा" करै बलवंत कहा लंकेस सीस दश। कहा अरजुन कहा भीम कहा दानव हरनाकुस। कहा चकन मंडलीक कहा सांवत सेनाचर। कहा विक्रम कहा भोज कहा वलि वेनु करन कर। उग्रसेन कलिकंस कहा जम ज्वाला मैं जग जलै। वदत भीष जन पंथ इहि को आइन को चलै ॥ २२ ॥ "षरै' चंदन असभार सार कछु मधिम जानत। कूटा कठिन सरीर मधि घृत ताहि वषानत। दरवीपाक संजोग तैक रसस्वादन पागै। चिंतामनि करि अंध डारि कंकर करि भगै। दादुर निकरि न जानिहै कवल को बानी वढ़ी। तत्व न जान्यौ भीष जन कहा भरौ विद्या पढ़ी ॥ २३ ॥ 'ग'णिका सिषवत सील कृपा दृढ़ वै अति दानहि। वधिक दया उतपरै मूढ वहु ग्यान वषानहि। कामी इन्द्री दमन जुध कौ जपै सु कायर। अंध-वतावत पंथ अति रति रिवे को सागर। आपन वहु वंधन वध्यौ और न युक्ति बखानिये। ये सब झूठी भीष जन सांच कवन विधि मानिये ॥२४॥ "घर" घर नाहि न केल्प तरू द्रुम आन जगत सहु पारस। × × × कहुक आहि चाहि चक्षु ते पसांन वहु चिंतामनि। कहु साँच काच सारे जगमाही। सकल समुद हीरा नही सुष वहुत वित जोनि है। तरै साधु जन भीष जन निहचै कहुंक होत है ॥ २५ ॥ "ना"हिन पारस परस रह्यौ जो लोह निरंतरि। चंदन भयो न संगनीच पलट्यौ नहीं अंतरी। चिंतामनि नहि लही अजौं चिंता जो अहैं। मिल्यौ कल्पतर नाहि कल्पना न जैहै। कामधेन पाइनहि कामना जीव भ्रमि। तौ गुरु मिल्यौ न 'भीषजन' ग्यान न पायौ मूढ गमि ॥ २६ ॥ "चंदन" ढिगै जो वंश ऊंच कुल भयो न मलया। पाहन कठिन जुहीयमधि सर भिटनौन जलया। पारस को कहा दोष लोह विचि रह्यौ सु अंतर बूटी षात न मूढ़ वैद काकरै धनंतर। छिद्र कुंभ ज्या नार है जो चरषा वहु कीजिए। सीषिमूढ मति 'भीषजन' गुरु दोष न दीजिये ॥ २७ ॥ 'छे'दन मलया आहि क्रियौ सीतल सु ताहि तन। पंडित इष अनेक श्रवत सो मधुर जानि कन। कहु कंचन अति कसै लसै वहु निर्मल वानी। अगर अग्रगन्य तन दाहि ताहि फिरि फिरि मलठानी। दुर्मदिस्य डेलौ डारि है वहुफल देत अनंतइ। दुष्ट दुष्टमति भीष जन संतन छांडै संतई ॥ २८ ॥ जरत दावा गनिमूष हंस लै चल्यौ मान सर। उनि कीनौ फिरि नास कंद तिहि मूल विदोप्यौ। अहिपै वान सुभीष जन विष अमृत करिसानि है। जो निर्गुणहि गुण कीजिये तऊष औगुन मानिहै ॥ २९ ॥ झूठ सांच सम कहो कहौ पाहन कहा पारस। कहा लोह कहा हेम कहां विष अमी महारस। कहाँ दिवस कहाँ रैन कहाँ तारा कहाँ सूरजि। कहाँ धरनि कहाँ व्योम कहाँ सर सिन्धु सपूरजि। चिंतामनि कंकर कहा सुनि यह पटंतरा। तेषि परष्यौ भीष जन स्वांग साध यह अंतरा ॥ ३० ॥ निरषि काम प्रति हेत भयौ लंकापति षंडन। क्रोध काजिवल साजि कीन हिरन्याक्ष विहंडन। लोभ लागि बलिराइ धाइ कर गयो

पतालहि । मोह कपोत सनेह कुटुम्ब हित पर्यौ सुजालहि । काम क्रोध अरु लोभ लगि मोह सहित चार्यौं गता । ये सुनि थ्थापत भीष जन सो कैसे नहिं ह्वै हता ॥ ३१ ॥ टेक काजि सिव कंट अजौ विष नाहिन त्यागत । टरी न अजहु टेक सिंध बड़वानल जारत । अजौ शेष सिर भार नाहि डारत गति ऐसी । चुंगै अंगार चकोर टेक तिन तजी न तैसी । तरुन तपति लियें रहै सो व्रत नेक न षंडियै । यूं जानि भीषजन सांच की गही टेक क्यों छंडियै ॥ ३२ ॥ उग्यौ ज्यौ वीसल जोरि कोटि वीसक जिहि सँची । उग्यौ जु नंदनरेस रही जल माँहि न वंची । उग्यौ जु नृपति वल वेनु सकै ओस नहि जागी । उग्यौ भोज करि च्योज सो जहरि हेत न लागी । निपट कपट वल छांडि कै ठगै न काहू की सगी । जगत विसासनी भीष जन सो माया संतन ठगी ॥ ३३ ॥ 'ड' ग डग डोलत मूर सूर को लयो जु वानिक । पंच अविधि गाहि भगै लगै लक्षण जग जानिक । पहरि सती को साज उलटि मरहठ तै भाजै । सोभ न पावत सोइ डिगै दोऊ कुल लाजै । स्वांग जती का साजि कै करै लजावत गोत है । तैसे जीये भीषजन जग न विटवन होत है ॥ ३४ ॥ "ढि"ग ढिग ढूंढ्यौ प्राण आननहि चह्यौ पटंतरी । कस्तूरी मृग नाभि जानि ज्यूं लह्यौ सुअंतर । ज्यूं दर्पन मल माहि नाहि आनन सुचि देष्यौ । जब निर्मल गुरू कह्यौ तबहि मुष तहाँ परेष्यौ । अवगन जो जन ग्यान विन बहु भाँति भटकत भयौ । कृपासिंध मैं भीष जन अब हरिहीरा कर चयौ ॥ ३५ ॥ "निज" भावी भरमाय राम वनवास पठायौ । पड़ो तजि गृह देव विपत्ति परदेश वसायौ । करमलोक संजोग वहै मारुत विन वायन......ह० लि० प्र० में से संपूर्ण प्रतिलिपि

विषय—वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को लेकर उपदेशात्मक तथा विचारात्मक वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ के आदि के सात पत्रे लुप्त हैं। अंत का भाग भी खंडित है। नाम इसका अज्ञात है। इसमें वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को लेकर पद्य में उपदेशात्मक वर्णन किया गया है। इस क्रम को देखकर ही इसका नाम "बारह खड़ी" रखा है। ग्रंथ जिस हालत में मिला है उसकी संपूर्ण प्रतिलिपि कर दी गई है। प्रत्येक छंद में 'जनभीषा' नाम आया है, अतः यही कवि का नाम जान पड़ता है। पुस्तक में कोई सन् संवत् नहीं है।

संख्या १४ ए. अमरावली, रचयिता—श्री भीषमदास जी (उजेहनी, जिला रायबरेली), कागज—हाथ का बना पुराना बादामी, पत्र—८५, आकार १५ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८१३, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि-नागरी, रचनाकाल—१८९२ वि०, लिपिकाल—१८९२ वि०, प्राप्तिस्थान—बाबा पराग सरनदास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, जिला—रायबरेली ।

आदि—दोहा—तुम्ह समरस्त सर्वं परकारन रहित कृपाल ॥ सो उपदेस दीजिए जाहि न व्यापै काल ॥ १ ॥ काल औ कर्म शुभाव गुण गर्व समै अभिमान ॥ एइ नहिं व्यापहिं मोहि पर तब प्रसाद परमान ॥ २ ॥ अँमरावलि अँवखरे मूल अमर परगास ॥ तवन सुनाइय मोहिं यँह, हौं तुम्हार लघुदास ॥ ३ ॥ चौपाई ॥ जाते अँवर होई ॥ जो परलै परलै तर षोइ ॥ प्रथम कहहु मोई इतिहाँसा ॥ म्वहि लघु किंकर जानि प्रगासा ॥

अंत—चौ०—जो माया कर करउ निरूपा ॥ ग्रंथ वढ़ै तेहि नहि अनरूपा ॥ याते माया भेद न गाई । ब्रह्म विवेकहि समुझी भाई ॥ छंद—यह ब्रह्म विवेक प्रचार कहा

ममता मदलोभ न जाहि लहा ॥ यह सार मता सत ग्रंथन्ह को, निरुवार कहा सत पंथन्ह को ॥ मदमान मलीन रहे सगरे भवसागर मध्य सबै बगरे ॥ यह वेद वेदान्त को भेद सही, निरुवार सबै विस्तार कही ॥ यह जोगिन्ह जुक्ति विचार कही ममतादि विकारन जाहि रही ॥ सत ग्रंथ समस्त सुने सगरे भवसागर के जिव सोउबरे ॥ × × ×

विषय—अमरावली ग्रंथ—इस ग्रंथ में श्री भीषमदास जी ने प्रथम निराकार ईश्वर की प्रार्थना की है। पश्चात् कथा का प्रसंग इस प्रकार प्रारम्भ किया है:—परसाददास नामक शिष्य ने प्रश्न किया कि हे स्वामी मुझको ऐसा उपदेश दीजिये जिससे काल न व्यापै। काल, कर्म, स्वभाव, गुण और अभिमान मुझे दुःख न दे सकें और जीव अमर हो जाय। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई है। प्रथम दो प्रकार के जीवों का वर्णन किया है, १—जड़ और २—सहजीव। जो माया मोह ममता, अहंकार आदि में फँसे हैं वे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जड़ जीव हैं। जो सज्जन मधुर शब्द बोलते हैं, किसी से कुछ लेना देना या संबंध नहीं रखते, सदैव आनन्द रूप रहते हैं, जप, तप, नियम आचार करते हैं, सहजीव कहलाते हैं। बहुत से लोग ऊपरी देखावा के लिए पूजा, पाठ जप-तप आदि करते हैं, परन्तु बिना आत्मज्ञान और ईश्वर साक्षात्कार के वे अमर नहीं हो सकते। विशेष रूप से कलियुग में लोग अनेक प्रकार के पाखंड में फँसे हैं। जिन्होंने सतगुरु नहीं किया वे अमर पद को नहीं प्राप्त कर सकते। मनुष्य को चाहिए कि संतों का सत्संग करे, सार और असार का विचार करे तब अमरज्ञान उत्पन्न हो सकता है। मनुष्य को सदैव सत्य बचन बोलना चाहिए। इच्छाओं का बढ़ाना ही बन्धन का कारण है। इसलिये अनेक प्रकार की इच्छाओं को त्यागकर मन को वश में करना परम धर्म और सत्य मार्ग है। किसी भी जाति या वर्ण का मनुष्य हो, भूखा प्यासा हो, उस पर दया करके उसे भोजन और जल देकर संतुष्ट करना चाहिए। सोऽहं शब्द की विधि पूर्वक जप से भी आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

संख्या १४ बी. अनुराग भूषण, रचयिता—श्री भीषमदास जी (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—४१, आकार—१४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—११७५, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८९२ वि०, लिपिकाल—१७५६ शाके, प्राप्तिस्थान—बाबा प्रागसरन दास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, जिला—रायबरेली।

आदि—सत्यनाम करता पुरुष, अनुराग भूषण ग्रन्थ लिख्यते ॥ दो० न मोरा सतगुरू तुम्हें, सदहिं निरूपन भेव। यह भूषण अनुराग वर, मोहिं निरनय करि देव ॥ तुम साहेब समरस्त वर, तारक सब संसार। जो न तरै क्रम आपने, ताको कवन विचार ॥ तारा चहै तो ग्रंथ यह, समुझै बारहुँ बार। बूड़ चहै भव सिन्धु में, तव नीको संसार ॥ मोंहि भरोसा नितहि नित, साँई तव पद केर। यह अनुराग विवेक वर, निरनय कहहु निबेर ॥ चौ० निरनै कहहु निबेरि प्रगासा, हौं तुम्हार अतिशय लघुदासा ॥ अस मुनि बोल्यो सतगुरु बानी, सरल सुचित सेवक प्रिय जानी ॥ सुनु परसाद दास यह भेवा, है अनुराग सकल विधि जेवा। किरखी कर्म करै जत जोई, विन अनुराग सिद्धि नहि होई ॥

अंत—छंद—दुरि गयउ मोह विकार मन गोतीत शोभा को लह्यो । अद्वैत अविगति अथक वर परमान पावन पद लह्यो ॥ तुम मोह विषय विकार मन को कर्म भर्म दुरायऊ। निर्वान निर्मल विमल अति पारमारथो वर पायऊँ ॥ तव ज्ञान अमल अमान अविचल पाय नाना दुख टरयो । अब पाहि पाहि प्रवाहि सम्रथ अस न काहू मन भरयो ॥ जस कह्यो तुम निर्वान निर्मल, विमल वानी उद्धरयो ॥ हम भइन अमल अमान अविचल नाथ तुम दाया करयो ॥ जस कह्यो तुम निर्वान निर्मल, विमल वानी उद्धरयो ॥ हम भइन अमल अमान अविचल नाथ तुम दाया करयो ॥ दो० अस कहि पायन परयो सोइ, सतगुरु ठोंक्यो पीठि । परमपरा परमारथौ, सदा रहै तव दीठि दै अविचल भक्ति हि पायवर, आनंद भे परसाद । निधटी मन की लालसा, छूट्यो सकल विषाद ॥ सो० आनंद मंगल मूल, बढ्यो प्रेम परसाद के । गई सकल श्रम शूल, अविचल भक्तिहि पायकै ॥

विषय—प्रथम श्री भीषमदास जी ने इस ग्रंथ में श्री सतगुरु की वंदना की है । पश्चात् परसाद दास के शिष्य को बोध कराने के हेतु प्रथम अनुराग की आवश्यकता का वर्णन किया है । इसमें यह दिखलाया है कि बिना अनुराग या प्रेम के प्राणायाम, योगाभ्यास, जप-तप एवं भक्ति आदि कुछ भी फलदायक नहीं हो सकते । पश्चात् ज्ञान प्राप्ति के हेतु सत्य और श्रद्धा की आवश्यकता को पुष्ट किया है । यह भी बताया है कि बिना कर्म किये मौखिक ज्ञान कथन से कोई लाभ नहीं हो सकता । बिना अनुराग के नाना भेष बनाने और पाखंड करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । चाहे भिखारी हो या मौलबी, हाजी या किसी भी संप्रदाय या पंथ का अनुयायी, यदि उसमें सच्चा अनुराग नहीं है तो उसको सद्गति भी प्राप्त नहीं हो सकती । सांसारिक काम, खेती व्यापार आदि भी बिना अनुराग के नहीं पूर्ण होते । पश्चात् पाखंडी गुरुओं का वर्णन किया है । सत्य और श्रद्धा पर अधिक जोर दिया है । फिर काम, क्रोध, मद, लोभ परित्याग करके भक्ति करने का उपदेश है । ज्ञान-विज्ञान के हेतु भी अनुराग की आवश्यकता दिखाई है । सारांश यह कि अनुराग या प्रेम ही संसार में मूल पदार्थ है ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री भीषमदास जी की जीवनी और उनकी कविता का परिचय कई विवरणों में दे चुके हैं । वे ही सब बातें इस ग्रन्थ के विषय में भी समझनी चाहिए । ग्रंथ की भाषा कुछ ग्रामीण रूप लिए अवधी है । छंदों में दोहा, सोरठा, हरि गीतिका, चौपाई आदि का प्रयोग अधिकतर किया गया है । कविता साधारण श्रेणी की है ।

संख्या १४ सी. भक्ति विनोद, रचयिता—श्री भीषमदास जी (उजेहनी), कागज—बादामी, पत्र—३९, आकार—१२½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—११६४, पूर्ण, रूप—सुन्दर, पद्य, लिपि—कैथी, रचनाकाल—१८५० वि०, लिपिकाल—१८५० वि०, प्राप्तिस्थान—बाबा प्राग सरनदास जी, ग्राम—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, रायबरेली ।

आदि—भक्ति विनोद, सो०—सत्यनाम करतार, बूझहु संत विवेक करि । जाते उतरहु पार, भव सागर कर धार जल ॥ प्रेमदास कर भेव, सुनत मगन सब हंसगन ।

सुख सागर सत सेव, सतगुरु पारस परम-पद ॥ तामे भोजईदास, उभै भाँति विनती कियो साहेव सत्य-विलास, तुम कारन तारन-तरन ॥ चौ० तारन तरन चरन सत गुरु के, दास विलास वास सत पुर के। बंदौ मनि गण मानिक जोती, सतगुर पद-नख मुक्ति के मोती । कमली कमल पाँखुरी भीनी, बंदौ सहित सुगंध नवीनी । सतगुरु पद रज अंजि अमी से, दृग भूषन तजि दूषन दीसे ॥

अंत--मनलाय पढ़ै सुभाय सहजेहि परमपद को पावई । वैराग जोग विभाग सत-गति, सहज समता आवई ॥ तृष्णादि मोह मनोज तन गन, कबहु नहि तेहि पर लहै । माया गुनादि वेवाद वाद, प्रत्यागि सतगति को गहै ॥ यह ग्रंथ सत्य सहाब्ब को परसंग पावन मन रते । विष्यात ज्ञान गोदावरी परचार ब्रह्म दिवाज्जते । नखजस भक्ति सप्रेम संयुत योग धारा सुरसती । सतसंग दिग्गज घर्घरा जन जक्त पावन को अती ॥ सतग्रन्थ भक्ति विनोद मोद विचार सात्विक को कहै । तजि राग सकल विकार जग भवपार पारस सो लहै ॥ कहि भीष यह संवाद सतमत, भक्तहित परगट किये । सुनिदास भोज हुलास हरषित, सोम रह रह सो पियो ॥ सो० ऐसो भक्ति विनोद, पढ़ै सुनै समुझै जोई । मिटै महामन मोह, संतन मिलि भव-जल तरहि ॥

विषय—भक्तिविनोद—इस ग्रंथ में प्रथम श्री सतगुरु की वन्दना की गई है । पुनः सतगुरु की महिमा का वर्णन है । इसके पश्चात् नवधा भक्ति, उनके अधिकारी, भक्ति करने योग्य देवता तथा प्रत्येक को भक्ति का फल ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति, सूर्य, आदि देवता एवं देवियों की भक्ति करने का फल आदि का वर्णन करके निराकार ईश्वर की भक्ति करने का उपदेश दिया है । यह संपूर्ण वर्णन रचयिता ने अपने शिष्य भोजईदास के प्रश्नोत्तर के रूप में किया है । अन्त में ग्रंथ के पढ़ने का प्रभाव तथा माहात्म्य आदि का वर्णन है ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री भीषमदास जी का जीवन चरित्र पिछले विवरण पत्रों में दिया जा चुका है । आपके बनाए हुए १९ ग्रंथ हैं जिनमें एक यह ग्रंथ 'भक्ति विनोद' भी है । इसमें विशेष रूप से भक्ति की महिमा का वर्णन है । अनेक देवी देवताओं की भक्ति करने से क्या फल प्राप्त होता है और निराकार ईश्वर की भक्ति से क्या फल होता है यह सब वर्णन किया है । ग्रंथ की भाषा अवधी है और कविता दोहा, चौपाई, सोरठा आदि छन्दों में की गई है ।

संख्या १४ डी. कृष्ण केलि, रचयिता—भीषमदास जी (उजेहनी), कागज—देशी (बादामी), पत्र—१३०, आकार—९½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—३८४९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८३७ वि० (श्रावण सुदी २), लिपिकाल—१८४१ वि० आषाढ़ सुदी ११, प्राप्ति स्थान—बाबा पराग शरण दास, ग्राम—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, रायबरेली ।

आदि—कवित्त—वेद अरु धर्म के हेतु कौं गौरि सुत अहो समरस्त तुव सर्वजानी । सर्व देव मुनि वृन्द हित चहत त्रिपुरारि तुम आदि के पूज्य हरि ब्रह्म मानी ॥ ज्ञान अरु ध्यान उपदेश उर मध्य में अहो समरस्त तुव सर्व जानी । कवि भीख की गर्ज गजबदन

सुनु अर्ज करु सिद्धि गन्नेस शुभ कृत बानी ॥ कुण्डलिया--दुर्गा तुम्ह परतक्ष हौ, लीन्ह्यौ पक्ष तुम्हार। जानों सुद्ध असुद्ध ना, अक्षर अर्थ विचार ॥ अक्षर अर्थ विचार सुमति शुभ गति सुख पाइय। त्रिभुवन आदि भुआर जासु जश सुर-हर गाइय ॥ कहि भीषम कविराय जासु जस बरनत सेसा। ज्ञान बुद्धि अरु ध्यान हमैं दुरगै उपदेसा ॥

अंत--चेत हेत कारकं कमादि सिंधु तारिकं। विशुद्ध बोध पालितं, क्षमानिसिन्धु तू मयं ॥ महाकराल कालयं, वदन्ति वेद सालयं ॥ कृपाल भूत भूभयं भजन्ति सन्त तू दयं ॥ त्रिलोक शोक मोचनं, नमामि कुंज लोचनं ॥ विनै विरञ्चि यों करी ससृष्टि हेतु सों परी। दुरास आस वद्धनं, सचित्त हेतु मेलकं ॥ निशाकरं शरद्ये, सुरेश ये सदा महे ॥ भनन्ति "भीख" दासयं, विनय करी प्रकाशयं ॥ समाप्त

विषय--इस पुस्तक में श्री कृष्ण भगवान का समस्त चरित्र वर्णित है। विशेष रूप से श्रीमद्भागवत के आधार पर उनकी प्रेम लीला का वर्णन किया गया है। 'प्रेम सागर' ग्रंथ से यह ग्रंथ अधिक मिलता है। काव्य के विचार से ग्रंथ मध्यम श्रेणी का है।

विशेष ज्ञातव्य--भीषमदास जी ने १९ ग्रन्थों की रचनाएँ कीं जिनमें कई एक आकार प्रकार में तुलसीकृत रामायण से भी बड़े हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में श्री गणेश जी तथा श्री दुर्गाजी की प्रार्थनाएँ अन्त में की गई हैं। ऐसा अन्य ग्रंथों में नहीं है।

संख्या १४ ई. मंगलाचरन, रचयिता--श्री बाबा भीषमदास (उजेहनी), कागज--देशी, पत्र--२४, आकार--१२ × ६$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१७, परिमाण (अनुष्टुप्)--१०४४, पूर्ण, रूप--उत्तम, पद्य, लिपि--नागरी, रचनाकाल--१८३० वि०, लिपिकाल--१९१४ वि०, प्राप्तिस्थान--श्री बाबा पराग शरण दास जी, स्थान--उजेहनी, डा०--फतेहपुर, रायबरेली।

आदि--सतगुरु तुम सरवज्ञ प्रभु, कारन रहित कृपाल। तव पद वन्दौं सरस मन, जाहि न व्यापै काल ॥ सर्वचार आपार तुम्ह, आनँद रूप प्रकास। अद्वै अविगत अकथ तुम्ह, हौं तुम्हार लघु दास ॥ सोरठ--मंगल मोद अनन्द, मोहिं समुझाइय जानि जन। मिटै अविद्या मन्द, ज्ञान भानु परगास वर ॥ साखी--सतगुरू के पद वंदि कै, कहौं मंगलाचार। सन्त विवेकी भेद सो, करिहैं तासु विचार ॥

अंत--'साखी' तन-मन सो अरपन करै, मोह महातम टेक। सब्द सुरति साँचो रहै, उरमां सहित विवेक ॥ सोइ सन्त सरवज्ञ है, सोइ सदा भव पार। चेतदास सादर सुनहु, जाके एक विचार ॥ चेतदास आनंद अति, अविचल पद परकास। वार वार प्रनवत भये, रहि जग संभव भास ॥

विषय--इस ग्रंथ में सर्व प्रथम श्री भीषमदास जी ने सतगुरु की वंदना की है। पश्चात् कथा प्रसंग इस प्रकार चलाया है:--"एक शिष्य चेतदास जी ने भीषमदास जी से प्रश्न किया कि आप कौन हैं और कैसे आये? पूर्वजन्म में आप कौन थे और जब जब शरीर धारण किया, आप कहाँ रहे थे? श्री भीषमदास जी ने कहाः--मैं अनामय, निराकार,

निर्विकार परमात्मा का ही रूप हूँ। न मरता हूँ न जीता हूँ। महाप्रलय में भी मेरा नाश नहीं होता। फिर चेतनदास जी ने पूछा :—यदि आप ऐसे हैं फिर संसार में शरीर धारण करके माया मोह में फंसने की क्या आवश्यकता थी? भीषमदास जी ने इसका उत्तर दिया कि जितने दिन संसार में सृष्टि रहती है उतने ही समय तक महाप्रलय के पश्चात् शून्य रहता है। फिर परमात्मा की इच्छा से सृष्टि उत्पन्न होती है। सृष्टि के पश्चात् अनेक जीव भांति भाँति के पाखंड में फँस जाते हैं। इसी कारण उनका उद्धार करने के हेतु मैंने बार बार शरीर धारण किया है। फिर अष्टावक्र की कथा और उसके भीतर उत्तम आत्म-ज्ञान का वर्णन है। बीच में ईश्वर साक्षात्कार की विधि व योगाभ्यास का वर्णन किया है एवं और भी अनेक प्रकार की कथाएँ और ब्रह्म विचार स्थान-स्थान पर वर्णन किये हैं। पुनः अपने कई जन्मों का वृत्तांत कहा है।

विशेष ज्ञातव्य—भीषमदास जी का जन्म स्थान, डौड़िया स्टेट, खेर, जिला उन्नाव में श्री भागीरथी जी के किनारे सं० १७७० वि० के लगभग हुआ था। आपके पिता श्री हरिवंशराय जी कश्यप गोत्रीय भट्ट थे। उनके पुत्र श्री खरगसेन जी का विवाह उजेहनी जिला रायबरेली में श्री आसरे राय की पुत्री के साथ हुआ था। आपने बाल्यकाल में विद्याभ्यास बहुत अधिक नहीं किया था। ७ वर्ष की अवस्था में ही अयोध्या जी चले गए और वहाँ साधुओं का सत्संग करते रहे। युवावस्था में नवाब शुजाउद्दौला (अवध) की फौज में नौकर हुए और शीघ्र ही तोपखाने में दारोगा हो गए। वहीं पर साधुओं की संगति से ज्ञान और भक्ति का प्रकाश हुआ। नवाब ने इनकी साधुता की परीक्षा ली जिसमें इन्होंने कई चमत्कार दिखाए और नौकरी छोड़ दी। इनके वंशज कहते हैं कि नवाब आसफुद्दौला इन्हें गुरु करके मानते थे। नौकरी छोड़कर आपने स्थायी रूप से ईश्वर का भजन किया और बहुत से शिष्य किए। संसार के उपकार के लिए आपने १९ ग्रंथ रत्न निर्माण किए जिनमें से कई एक बहुत बड़े पुराणों के समान हैं। अन्तिम ग्रंथ अधूरा रह गया है। आपके निर्मित ग्रंथों के नाम क्रमशः निम्नलिखित हैं:—१—सोसासार, २—तत्वसार, ३—प्रचैसार, ४—अनुराग भूषण, ५—अमरावती, ६—अलपबोध, ७—मुक्तिमूल, ८—शब्दावली प्रथम, ९—शब्दावली द्वितीय, १०—शब्दावली तीसरी, ११—मंगलाचरन, १२—प्रेम प्रबोध, १३—समुझसार, १४—भक्ति विनोद, १५—सुकृतसागर, १६—विवेकसागर, १७—श्री कृष्ण केलि, १८—ज्ञान प्रकाश, १९—सृष्टि सागर। ये संपूर्ण ग्रंथ वर्तमान महंत बाबा पराग सरन जी के पास प्रस्तुत हैं। भीषमदास जी ने एक पंथ चलाया जिसे 'अनंत' पंथ कहते हैं तथा जिसके अनुयायी थोड़े से हैं। इस पंथ के सिद्धान्त कबीर पंथ से मिलते जुलते हैं। ज्ञात होता है यह उसी की एक साखा है।

संख्या १४ यफ्. शब्दावली, रचयिता—भीषमदास जी (उजेहनी), कागज—देशी बादामी, पत्र—२११, आकार ८½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)— ६५६४, पूर्ण, रूप —जीर्ण, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८५७ वि० के लगभग, लिपिकाल—सं० १९३८ वि०, प्राप्तिस्थान—बाबा पराग शरण दास, ग्राम—उजेहनी, डा०—फतहपुर, रायबरेली।

आदि—आरती—ऐसी आरति करिय विचारा, सातिक संधि संतगति सारा ॥ सत्य अनंत जहँ साहब सोई, ना अब अहै न तब अहै कोई ॥ आरति करिये सत समरथ की, मोह मया निसु दिन करु वर की ॥ पहली आरति वेद पसारा, जप-तप संयम नेम अचारा ॥ दूसरी आरति दश अवतारा, भुक्त उबारन असुर संहारा ॥ तीसरी आरति नाम निरंतर, अध क्रम नाशन दुखद दुरंतर ॥ चौथी आरति अनहद तारा, सुमिरि नाम जग भयउ नियारा ॥ पचवीं आरति सुकृत थारा, लै सतदीपक अरति उतारा ॥ भीषम सतगुरु आरति कीन्हा, सत समरथ साहब कहँ चीन्हा ॥

अंत—शब्द सार भाई शब्द सार । यह भेद बतावै गुरू हमार ॥ बिना भजन जहँ भजन होइ, ज़प अजप न साजै जहाँ कोइ ॥ बिन बाजा जहँ अमित तान, अनहद नहिं बाजै यह प्रमान ॥ विह मातावर पूत एक, सोइ बाप न वाके यह विवेक ॥ बिनकर पायन्ह नटै सोइ, भल भाव बतावै विरत होइ ॥ विन पंखन सहजै उड़ाइ, पक्षी न होय नहिं पवन आई ॥ अस कासिदि दीजै बताइ, जहाँ बिनु पानि सों प्यास जाइ ॥ दश इंद्रिय नहिं बाट घाट, तेहि पथिक चलै नहिं बिकत ठाट ॥ ठग ठाकुर नहिं लगै सोइ, नहिं चोर तमीचर तेहि विगोय ॥ यक चींटी खाती ऊँट घोर, सोई हाथी ऊपर करै सोर ॥ तेहि चींटी के कर न पायँ, मुख श्वास नाहिं दहुँ कैस खाय ॥ सतगुरु कहिये सत विलास, यह भेद विचारी विमल हाँस ॥ कहैं "भीखम" यह शब्द बूझ, सोइ सत गति पावै बेगि सूझ ॥

विषय—इस पुस्तक का विषय क्रम बद्ध नहीं है । वरंच इसमें स्फुट भजन और पदों का संग्रह है जो समय-समय पर रचे गए हैं । इनमें विशेष रूप से ईश्वर की भक्ति, प्रेम, ज्ञान, विज्ञान, ईश्वर के प्राप्त होने की रीति, ईश स्मरण की विधि, आत्मानंद शरीर की असारता, गुरू और साधु संतों की महिमा, सत्संग की महिमा, सब जातियों की एकता आदि विषयों पर जोर दिया है । कहीं कहीं आश्चर्यजनक पद 'कबीरदास जी की उलट बाँसी के ढंग पर भी लिखे गये हैं । अनहद नाद, अजपाजाप और निराकार ईश्वर का वर्णन भी किया गया है ।

विशेष ज्ञातव्य—भाषा बैसवाड़ी मिश्रित है । कविता के विचार से ग्रंथ मध्यम श्रेणी का है और ज्ञान के विचार से उच्च श्रेणी का । ऐसे ग्रंथों से संसार का बहुत कल्याण हो सकता है । इसी उद्देश्य से इसकी रचना हुई है ।

संख्या १४ जी. समुझि सार, रचयिता—श्री भीषमदास जी (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—८१, आकार—१३½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४५६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—देवनागरी, लिपिकाल—१९०१ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री बाबा पराग सरन दास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, रायबरेली ।

आदि—सति साहेब सत्यनाम करता पुरूस समुझि सार ग्रंथ लिष्यते । दोहा—तन्नमामि पद परम गुरू, ग्रंथ साक्ष विष्यात ॥ कहहु नाथ अरू सुनिय मम समुझि गम्य सुरसात ॥ १ ॥ चौपाई—सतगुर मुष अमृत रस चुवई । श्रवन पान पुट अंवर हुवई ॥

जीव सहस संश्रित भव रोगी ॥ तव प्रताप प्रभु अमृत भोगी ॥ हमसे सठन्ह अनेक चेतावा। शब्द अमी परमारथ पावा ॥ यह जग सिन्धु जरनि भव भारी ॥ बड़वानल जिमि कहर दवारी ॥ चन्द्रबदन सरवै ससि नीरा ॥ सीतल होवै संत गंभीरा ॥ अस प्रभु जीवन्ह सीतलकारी ॥ शब्द तुम्हार अमीवर बारी ॥ सति सिंधु पद पूरन पाथा। केहि बिधि बिनै करौं तव नाथा ॥ जलचर साधु कंज बरसता। अमिय सिंधु तुम्ह बिदित अनंता ॥

अंत—चौपाई—समुझि सार अस ग्रंथ सुनावा, चेति दास सह मुक्तिहि पावा। भगति भेद पावा निरबाना, समुझि सार कर समुझि ग्याना। दोहा—चेतदास आनंद अति, भगति मुक्ति परगास। समुझि सार समुझत रहै, सदा अनंदित दास। छंद—दास अनंद हुलास सदा जेहि ग्यान विराग संजोग बदा। सत सागर सत्य सहश्रमहा। परमारथ पाथ सपूरि रहा। जल जंतुस साधु समाज तहाँ, बरग्यान बिराग संजोग लहाँ। तत ग्यान तरंग उठै चहुँधा, अनुराग समीरूत लागि सुधा। अरथा परथा परसंग उभै सुनि साधक सामुझि सूझि सुझै। यह भीषम दास प्रगास सही वर सामुझि सारस ग्रन्थ कही। समाप्त

विषय—इस ग्रंथ में श्री भीषमदास जी ने प्रथम श्री सतगुरु की वंदना की है। पश्चात् उनकी महिमा का वर्णन किया है। इसके आगे चेतईदास (भीषमदास जी के शिष्य) ने बहुत ही अधीनता के साथ प्रश्न किया कि जो कुछ आपने समझा है उसका सार कृपा करके कहिए। भीषमदास जी ने उत्तर दिया कि जैसे शरीर के मध्य में सोसा-सार समर्थ है वैसे ही लोक वेद में समुझसार ही मुख्य सार है। जैसे नाड़ी पकड़ कर वैद्य सारे शरीर का हाल जान लेता है वैसे ही तत्वज्ञानी संपूर्ण संसार और ग्रंथों की बात को समझ लेता है। इस मत को गुप्त रखने के लिए बहुत उपदेश दिया है। पुनः चौदह विद्याओं के नाम और उनका वर्णन विस्तार पूर्वक किया है और बताया है कि यह समुझ-सार चौदह विद्याओं से भी परे है। सबसे मुख्य विषय सतसंग है और उसको भी समझना तथा उसके अनुसार चलना मुख्य कार्य है। फिर लक्षण एवं लक्षित अर्थ का वर्णन किया है। साथ ही अनेक प्रकार से शब्दों के अर्थ लगाने के उदाहरण दिये हैं। पुनः अक्षरों और शब्दों के उच्चारण होने के भीतरी स्थानों का विस्तृत वर्णन किया है। १४ विद्याओं का विस्तार पूर्वक वर्णन है। उनके दूसरे अर्थ संतमत पर घटित किए हैं। बारह महीनों और छः ऋतुओं को भी इसी प्रकार भक्ति, ज्ञान और कर्म कांड आदि में दिखलाया है। तीर्थों का असली अर्थ भी इसी प्रकार दिखाया गया है। चौदह विद्याओं को शांत रस में घटित करके ग्रंथ को समाप्त किया है। श्री भीषमदास जी की जीवनी तथा उनके अन्य पुस्तकों का वर्णन ऊपर कर चुके हैं। इस ग्रंथ में जिन १४ विद्याओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है उनमें से कई एक अन्य ग्रन्थों में वर्णित विद्याओं से भिन्न हैं एवं कई एक का वर्णन ही नहीं किया गया। जिनका वर्णन किया है उन सबको अन्त में महात्माओं के भक्ति, योग, वैराग्य, ज्ञान, ध्यान से तुलना करके उन्हीं पर घटित किया है। प्रत्येक का सारांश भी दिया है। ग्रंथ विशेष कर भक्तों के लिए लिखा गया है। भाषा इसकी सरल अवधी है।

संख्या १४ एच. संमतसार ग्रंथ, रचयिता—भीषमदास (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—४०, आकार—८½ × ६ इन्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५,

परिमाण (अनुष्टुप्)—१२८०, पूर्ण, रूप—साधारण, पद्य, लिपि—देवनागरी और कैथी मिश्रित, रचनाकाल—सं० १८८० वि०, लिपिकाल—१९०० वि०, प्राप्तिस्थान—बाबा परागसरन दास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, जिला—रायबरेली।

आदि—दोहा—सतगुरु पद बंदौं सोई, निर्विकार निरवेव। संमतसार विवेकवर, मोहि निरनै करि देव ॥ १ ॥ सोरठा—सतगुर पदरज सीस, धरौं जानि किरपा यतन। जाहि जाय अघ रवीस, विमल ज्ञान निर्वान लहि ॥ २ ॥ चौपाई—विमल ज्ञान निर्वान लहीजै ॥ सतगुर पद प्रताप भ्रम छीजै। सतगुर पद प्रनवौं अभिरामा ॥ चिदानंद पूरन सुख धामा ॥ जेहि जाने जग स्वप्न विनासै। संसै भ्रम नहि भासै त्रासै ॥ नाम प्रताप दया सतगुर की ॥ साधु संग जब होय निधर की ॥

अंत—छंद—देखी लिख गावा सकल प्रभावा संवल सार विचार महा। सन्तह वर वानी वेद वेद वर वानी समुझि सकै निर्वान तहाँ। यह संमत सारा ब्रह्म प्रचारा, जो नर समुझि विवेक करै। सोई निरवानी, वर विज्ञानी, संमत सार बिचार वरै। भव भर्म नसावै दुखद दुरावे, विषया विषमन ताहि लहै। कहि भीषमदासा विमल विलासा विस्वासा करि ताहि गहै ॥ सोरठा—लहै नहीं संसार, जात भार भवकष्ट वर। जो समुझै निरधार, समुझि सार सत ग्रंथवर ॥ १८० ॥ दोहा—संवत सार सु ग्रन्थवर, सुनि समुझै यहि कोय। जोग ज्ञान विज्ञान दृढ़, मुक्ति सहज ही होय ॥ १८१ ॥

विषय—इस ग्रंथ में प्रथम सतगुरु की वंदना की गई है जिससे संसार का अज्ञान नाश होकर निर्वाण पद प्राप्त हो। सतगुरु संसार में सब सगे संबंधियों से अधिक प्रिय हैं; क्योंकि वह विज्ञान और मोक्ष का दाता है। इसके पश्चात् श्री भीषमदास जी और उनके शिष्य चेतदास जी के प्रश्नोत्तर के रूप में वेदांत और तत्वज्ञान का वर्णन है। शरीर क्या है, कैसे बना है, इसमें कौन से तत्व हैं एवं पाँच तत्व, पच्चीस प्रकृती, कर्म और ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्तःकरण चतुष्टय, पंचतत्वों के विषय माया, जीव, ब्रह्म, द्वैत, अद्वैत और निज स्वरूप का दिग्दर्शन अनेक उदाहरणों द्वारा कराया है। माया के वश में पड़कर जीव का निज रूप भूलने, माया के वश में पड़ने का कारण तथा उससे छूटकर निज स्वरूप दर्शन का उपाय वर्णित है। आत्मा का वास्तविक रूप क्या है, वह भ्रम में पड़कर अपने को क्या समझता है और अपने रूप को कैसे प्राप्त हो सकता है, इन बातों का सविस्तार वर्णन है। बंधन और मोक्ष का कारण मन ही है और मन को स्थिर किए बिना संसार में कोई आत्मदर्शन नहीं प्राप्त कर सकता, इस पर भी विचार किया है। मन कैसे स्थिर होता है, इसका साधन भी बतलाया है।

विशेष ज्ञातव्य—श्री भीषमदास जी के अनेक ग्रंथों का परिचय तथा जीवनी दे चुके हैं। यह ग्रंथ 'संमतसार' भी भाषा, भाव, छंद, अलंकार और काव्य के अनेक अंगों के विचार से साधारण श्रेणी का है; परंतु विषय तथा ज्ञान के विचार से उच्च श्रेणी का है। इसमें संपूर्ण कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, अन्तःकरण, पाँच तत्व, पच्चीस प्रकृति, दस वायु, पंचप्राण, इंद्रियों के विषय, जीव, आत्मा और ब्रह्म आदि का निर्णय अनेक संतों के कथनानुसार एवं अपने अनुभव द्वारा किया गया है।

संख्या १४ आई. सोसासार, रचयिता—श्री भीषमदासजी (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—३८, आकार—८½ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४७०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, जीर्ण, पद्य, लिपि—नागरी और कैथी मिश्रित, रचनाकाल—१८९६ वि०, लिपिकाल—१८९६ वि०, प्राप्तिस्थान—बाबा पराग सरनदास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, रायबरेली।

आदि—दोहा—नमो नमो सतगुरु तुम्हें, करो प्रणाम अनंत। सोसासार सु भेदवर कहौं बुझावन सन्त ॥ १ ॥ पुरुषोत्तम परमात्मा; पूरन बिस्वाबीस। आदि पुरुष अविचल तुही, तोहिं नवावों सीस ॥ २ ॥ आतम तत कर भेद बर, मूल मता तत-सार। सोवत लाइव मोहि यह, सादर सहित बिचार ॥ ३ ॥ चौपाई—जब सिवि कहेउ परमपद ठानी। तब सतगुर बोलेउ वर बानी ॥ आतम-तत्तु भेद परमाना ॥ सुसुमवेद में सकल ठेकाना ॥

अन्त—चौपाई—सदहि सहाय करब मम साईं ॥ जाते हम भव पारहि जाईं ॥ यह वर देहु विमल वर बानी। संसै संजुत हरहु गलानी ॥ निरभै निरविकार तव दाया ॥ कर्म कामना सकल दुराया ॥ तव प्रसाद परमारथ पाई ॥ ग्यान गरीबी सो सर साईं ॥ ज्ञान विराग जोग विज्ञाना ॥ तुव प्रसाद यह निरनय जाना ॥ अब किरतारथ भयेउ गुँसाईं ॥ तुव प्रसाद निरनय सब पाई ॥ येव मस्तु करि सतगुर बोले ॥ ज्ञान विराग विभेद अडोले ॥ वसय तासु उर सदहि सदाहीं ॥ दुतिया भेद सबै दुरि जाहीं ॥ दोहा—क्षमा शील संतोष जुत; दया दीनता दास। यह बानी निघटै नहीं; सदा प्रेम परकास ॥

विषय—सोसासार ग्रंथ—इस ग्रंथ में प्रथम श्री सतगुरु की वंदना की है। पश्चात् गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तर रूप में ग्रन्थ की प्रस्तावना प्रारंभ की है। स्वरोदय विद्या का नाम आपने सुसुम वेद कई स्थानों पर लिखा है। इसमें प्रथम क्षर, अक्षर और निःअक्षर ब्रह्म का निरूपण उदाहरण सहित किया है। यह भी दिखाया है कि स्वाँसा से सोहं और सोहं से ओंकार तथा ओंकार से राम नाम की उत्पत्ति हुई है। मनस्थिर होने से ही अक्षर और निःअक्षर का पूर्ण ज्ञान हो सकता है। ररंकार शब्द ही निराकार ब्रह्म है और जीव पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर ब्रह्मरूप हो जाता है। इसके आगे इड़ा, पिंगला और सुखमना नाड़ियों तथा इनके चलने का समय, चरस्थिर कार्य और उनके करने के लिए स्वर और दिनों का वर्णन, पाँचों तत्व एवं उनकी पहिचान, रूप-रंग आकार-प्रकार, उनमें होनेवाले कार्यों का वर्णन, तत्वों के विचार से कार्य की सिद्धि, स्वर और तत्वों के आधार पर अनेक प्रकार के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देना, कार्य की सिद्धि [असिद्धि का विचार, स्वरोदय के विचार से आगे के समय का विचार, काल का ज्ञान, योग की रीति से साधन करके काल से बचने का उपाय और अपनी इच्छानुसार योग युक्ति से प्राण त्यागकर मुक्ति प्राप्त करने का साधन, संयम पूर्वक रहने से आयु की वृद्धि तथा अकाल मृत्यु को रोकने आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। आगे चलकर शरीर की अनित्यता, जाति, वर्ण, कुल आदि देह के गुणों का प्रतिपादन है। जीवात्मा अमर और परमात्मा का रूप है। पाँच तत्व, पचीस प्रकृती और उनके गुण तथा स्वभाव जड़ शरीर के हैं, आत्मा की चैतन्यता से ये सब चैतन्य होते हैं,

आत्मा अजर, अमर, अद्वैत एवं परमात्मा का रूप है, अनहद शब्द सुनने, अजपा जाप करने अथवा योगाभ्यास के द्वारा जीव ब्रह्म रूप में लीन हो जाता है इत्यादि विषयों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—आपके इस ग्रंथ में श्री महात्मा चरनदास जी के स्वरोदय के अनेक पद ज्यों के त्यों और कुछ परिवर्तन के साथ लिखे गये हैं। इसके वर्णन की शैली भी श्रीचरणदास जी के स्वरोदय से बहुत मिलती हुई है। कुछ बातें अपने अनुभव की रखी गई हैं। ग्रन्थ अपने विषय के प्रतिपादन करने के विचार से साधारण श्रेणी का है।

संख्या १४ जे. शृष्टि सागर ग्रंथ, रचयिता—श्री भीषमसाह जी (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—४५७, आकार—१४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८३४३, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८९२ भादों वदी ८ रविवार, लिपिकाल—सं० १८९२ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री पराग सरनदास जी, ग्रा० —उजेहनी, डा०—फतेहपुर, जि०—रायबरेली।

आदि—सत्यनाम कर्त्ता पुरुष सतगुरु पद बंदौं सोई, मोतनु जासु अधार। जेहि प्रताप लवलेश ते, उत्पति जिव संसार॥ सतगुरु-पद रज अंजि दृग, दीसे चरित अनूप। त्रैपद भक्ति सज्ञान युत, साजन सकल निरूप॥ सतगुरु समृथ सर्वपर, दीनबंधु हित जीव। सो पद वन्दौ विमल मन, सावधान की सींव॥ सो०—सतगुरु समृथ छोह, करहु सुचित हित जानि जन। मिटै महाभ्रम मोह, साहब समृथ पाहि तव॥ साहेब दीन दयाल, करहु दया सव जीव पर। तुम बिन फिरहिं विहाल, देव की आसवास। पूजहिं ताहि अनेक, नर सुर असुर गुनादि कृत। हमरे साहब एक, अपर पूजिवे गमि नहीं॥

अंत—छंद—सोई भक्ति सत्य अनन्त की परसिद्धि जो नर पावहीं। द्वैता दुरासा आस ममता, ताहि पर नहिं धावहीं॥ आनन्य भक्ति सो कहिय तासु विलास संयुत जग रही। विज्ञान मत निर्वान धारन रहित कारन जो कहीं॥ सो तरहिं विना प्रयास भव जम त्रास कारन ना लहै। कहि दास भीष प्रकाश पावन परम पद यह दृढ़ गहै॥ सो०—ताहि न व्यापै काल, कविन कलापि जक्त को। नाहित फिरै विहाल, सह कर्मन्ह पचि पचि मरहिं॥ दो०—सागर शृष्टि विधान जो, कह्यो सकल समुझाय। समुझि सकहि तौ भव तरै नाहिं त भटका खाय॥

विषय—इस ग्रंथ में प्रथम श्रीसतगुरु जी की वंदना है। पश्चात् इस क्रम से कथाओं का वर्णन किया है:—१-अक्षर निरूपण, २-गुणों की उत्पत्ति, ३-माया की उत्पत्ति, ४-विराट की उत्पत्ति, ५-अक्षर ब्रह्म, ६-वेदी की उत्पत्ति, ७-सत्तरि युग की उत्पत्ति, ८-जीव वर्तमान, ९-षोडस लोक की उत्पत्ति, १०-अड़तीस लोक की उत्पत्ति, ११-क्षर इरन्यात सतयुगी कथा, १४-त्रेतायुग की कथा, काल की उत्पत्ति, १५-दैतवंश की उत्पत्ति और वंशावली, १६-प्रह्लाद चरित्र, १७-द्वापर की कथा, सोमवंश की वंशावली, १८-कलियुग की कथा, ब्रह्मा का मोह, १९-इन्द्र का प्रलय, २०-सूर्यवंश का राज्य, रघुवंश का राज्य, २१-राजा पृथु की कथा, २२-वशिष्ठ की उत्पत्ति, २३-काशी राज की कथा, २४-

नारद जन्म, पृथु की सृष्टि, २५–विधि का प्रलय, २६–हनुमान बोध, २७–गरुड़ बोध, २८–विधि की उत्पत्ति, २९–विधि सृष्टि उत्पत्ति का कारन, ३०–गन्धर्व विवाह विधि, ३१–विधि की उत्पत्ति, ३२–वेद की उत्पत्ति, ३३–युगन की उत्पत्ति, ईश्वर धर्म राव का शरीर धरा, देवी का तन धरा, शुंभ निशुंभ को मारा, सतयुग की कथा, ३४–राजा धर्म धीर की कथा, द्वापर में, ३५–ईश्वर ने हंस रूप में ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, ३६–राजा प्रियव्रत की कथा और समुद्र की उत्पत्ति, ३७–व्यास जी की उत्पत्ति, लक्ष्मण का प्रश्न परचा, ३८–सती का प्रश्न, ३९–श्री रामचन्द्र जी का संवाद, ४०–ब्रह्मा की सृष्टि, द्वापर की कथा, ४१–महाभारत, कौरव पांडव की कथा, ४२–अश्वमेध प्रश्न, ४३–परीक्षित का जन्म, ४४–यदु वंशियों का प्रलय, ४५–ऊधव का संवाद, ४६–कलियुग की कथा, ४७–महाप्रलय की कथा इत्यादि अनेक कथाओं का वर्णन विस्तार पूर्वक एवं रोचक भाषा में किया है। महाभारत पुराण की अनेक कथाएँ इसमें लिखी गई हैं।

संख्या १४ के. सुकृत सागर, रचयिता—बाबा भीषमदास (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—१५, आकार—१४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४६४, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—१८५६ वि०, लिपिकाल—सं० १८५६ वि०, प्राप्तिस्थान—महन्त परागसरनदास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, रायबरेली।

आदि—सत्यनाम कर्ता पुरुष, सुकृत सागर, दो०—सत्यनाम सत्य सुकृत साहेब सत्य अनन्त। भीषम सत्य सहस्र हित, दया करो सब सन्त॥ सतगुर पद बन्दौ सोइ, आदि अनादि अपार। जेहि सुमिरे संसय टरै सहज तरै भवधार॥ बंदौ सत्य अचिंतपद, चिन्ताहरन स्वभाव। सत्य सहस्र विरंचिते, सत्य करो चितचाव॥ सोरठा—पार ब्रह्म पद सीस, धरि बन्दौं कर जोरि दोउ। कृपा करहु अज ईश, सहित ज्योति जुग सकल शुभ॥ दोहा—ब्रह्मा विष्णु महेश, पद वन्दौ अज्वैन जोइ। करहु सत्य उपदेश, गुन सम्भव माया रहित॥

अंत—सो०—सुकृत सर अस्नान, पढ़हिं सुनहिं समुझहिं करहिं। तजि ममता अभिमान, सो वर भव सागर तरहिं॥ दो०—सुकृत सागर सुनहिं नर, मंजहि गम्य समेत। अल्प मृत्यु ते नहिं मरैं, परहिं न मोह निकेत॥

विषय—इस ग्रंथ में प्रथम श्रीसतगुरु की वंदना की है और फिर उनके गुणों का वर्णन किया गया है। पश्चात् शिष्यों के हेतु पंथ के अनुसार कर्मकांड, पूजापाठ, नवधा भक्ति, चौका आरती आदि का वर्णन है। यह भी बतलाया है कि उन कर्मों के करने से क्या क्या फल प्राप्त होता है। दया, क्षमा, शील, सन्तोष, नम्रता, सत्यभाषण, आदि गुणों पर भी बहुत अधिक जोर दिया है। ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य को ईश्वर के साक्षात् कार के लिए आवश्यक बताया है। पश्चात् उन कर्मों के अनुसार आचरण करनेवालों की महिमा और फलों की श्रेष्ठता का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

संख्या १४ यल. तत्वसार ग्रंथ, रचयिता—श्री भीषमदासजी (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी मोटा, पत्र—२८, आकार—८३/४ × ५१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२७,

परिमाण (अनुष्टुप्)—१००८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी कैथी मिश्रित, रचनाकाल—१८५० वि० के लगभग, लिपिकाल—सं० १८९६ वि० = १८३९ ई०, प्राप्ति स्थान—बाबा परागदास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, रायबरेली।

आदि—दोहा—सतगुर समर्थ सर्व पर, कारन रहित कृपाल। तब प्रसाद आनन्द अति, रहित कामना काल ॥ एक लालसा मोहि यह, तत्तुसार की रीति। सो समझाइय नाथ मोहि सादर सप्रीति ॥ चौपाई—प्रथमहि बन्दौ पुनि गुर देवा, जेहि प्रसाद पावैं निज मेवा। आदि अनादि अखंड अपारा, सर्वभूत मय पूरन सारा ॥ अगम अगोचर लखि नहिं जावै, कहाँ ते उपजय कहाँ समावै। जाकों खोजैं देव मुनिन्दा, जती तपी सन्यासी विन्दा ॥

अन्त—छन्द—तुम दीन दयाल दया करनं, भवसिन्धु अपार महातरनं। निसि नासन मोह समान वरं, ममता मद मान समोच्च करं ॥ दिलदार विकार महाहरनं, भवपार परा पति को भरनं। जत वेद पुरान कुरान कथं तत भेद निवेदन तासु मथं ॥ अरका परका रनि कारि लयं, छल छंद सबै यह छाड़ि दयं ॥ परमारथ स्वारथ सिद्धि करं, ममता मद मंदक सोउ वरं ॥ अस गावत संत पुरान परै, हमरे दुख हारन द्वन्द टरे। तुम दीन दयाल दया करनं, हमहू भवपार परे परनं ॥ × × ×

विषय—प्रश्नोत्तर रूप में तत्वज्ञान का वर्णन किया गया है।

संख्या १४ यम. विवेक सागर, रचयिता—भीषमदास जी (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—२०६, आकार—१५½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—७६७२, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८६८ वि०, लिपिकाल—१८६८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री पराग सरनदास जी, स्थान—उजेहनी, डा०—फतेहपुर, जिला—रायबरेलो।

आदि—सत्यनाम कर्ता पुरुष ॥ विवेकसागर ग्रंथ लिख्यते ॥ दो०—सतगुरु समर्थ सर्वपर, कारन करनो पार। तव पद बंदौ विमल मन, सादर विमल विचार ॥ सोरठ—नाथ दया करि सोय, देहु मोहिं यह दानि वर। विमल ज्ञान दृढ़ होय, निरनय भक्ति बिबेक वर ॥ चौ०—वर बिबेक मोहिं दीजे साँई, जाते परम परागति पाई। तव परसाद विमल मति होई, विमल विवेक निवेरा जोई ॥ सतगुरु पद प्रताप निरमाया, कह विवेक सो सत गुरुदाया। एक समय सत सुकृत कूला, होय कथा मुद मंगल मूला। निरनै ब्रह्म विचारि प्रचारा, होय महा शुभ निरनय सारा। तब सोचते दास मन माही, कीन्ह विवेक विचार निवाही ॥ समुझि बूझि मन में दृढ़ आनी, बोले बचन जोरि युग पानी। साहब तव प्रसाद सब जाना, सतगति जगगति वेद विधाना ॥

अंत—रमैनी—चेतदास समुझहु मन लाई, अब यह भेद कहौ समुझाई। यह सत संग विवेक कि षानी, जामे सरस संत की वानी ॥ दुपद दुरासा जग दुर भावा, कहत सुनत सब जाय दुरावा ॥ जगत कि रीति सकल परमाना, कुला धर्म जत जातक ग्याना। सो सब भिन्न भेद करि गावा, सुनि सज्जन लेइहैं अलगावा ॥ कर्म कथा निरनै करि गावा, जो

संसारी जीवन्ह दावा । सतगुर भेद नाम परगासा, जेहि रस रसिक सु संत हुलासा । सरस विवेक अमी की धारा, है संतन्ह कर सत मत सतसारा । चेतदास सुनि आनन्द भएउ, सकल कलस दुसह मिटि गयउ ।

विषय——इस ग्रंथ में प्रथम सतगुरू की वंदना की गई है । फिर बुद्धि के निर्मल होने की प्रार्थना है जिससे सुगति प्राप्त हो । इसके पश्चात् कथा प्रसंग इस प्रकार है:—एक समय सुकृतसर के किनारे ब्रह्म विचार की कथा हो रही थी । उसी समय एक शिष्य श्री चेतदास ने प्रश्न किया कि हे सतगुरू जी मुझे कई एक शंकाएँ उत्पन्न हुई हैं । उनमें प्रथम ब्रह्मांड का विवेक कहिए, पश्चात् और प्रश्नों का उत्तर यथा समय दीजिएगा जिससे मुझको भी बोध हो और दूसरे मुमुक्षु लोगों का भी भला हो । सतगुरू ने कहा, एक समय कैलाश पर्वतपर श्री पार्वती जी ने श्री महादेव जी से भी यही कथा पूछी थी । सूत जी से शौनक जी ने भी पूछा था जिसका उत्तर इस प्रकार है कि निराकार निर्गुण माया रहित जो परमात्मा है, वह सहज ही स्वतंत्र रहनेवाला सच्चिदानन्द है । वही अलख निरंजन और निर्लेप है । वह शून्य लोक का वासी है । उसी ने यह संसार बनाया है । उससे प्रथम ओंकार शब्द उत्पन्न हुआ जिससे वेद उत्पन्न हुआ । वेद से संपूर्ण विद्याएँ उत्पन्न हुईं । ओंकार से आकार व आकाश की भी उत्पत्ति हुई । फिर आकार से त्रिगुण की उत्पत्ति हुई । गुणों से पाँच-तत्वों की उत्पत्ति हुई । इन्हीं से चार आकार और चौरासी लक्ष योनियों की उत्पत्ति हुई । पाँच तत्वों से पच्चीस प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं । इन सबका वर्णन सृष्टिसागर में भी किया गया है । इन प्रकृतियों से एक बुद-बुदा पानी का उत्पन्न हुआ । तत्व, प्रकृति और गुणों के संयोग से ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई । इसीसे एक ज्योति की उत्पत्ति हुई जिसको आदि ज्योति कहते हैं । इसीसे चार अन्तःकरण और पाँच कोशों की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार अनेक विषय श्री भागवत आदि पुराणों के आधार पर वर्णन किये गए हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रंथ विवेकसागर एक बृहदाकार ग्रन्थ है । इसमें सृष्टि की उत्पत्ति और संसार की रचना का बृहद् रूप से वर्णन किया गया है । इसकी भाषा ग्रामीण अवधी है । दोहा, चौपाई, सोरठा आदि छंदों में कविता की गई है । भाषा प्रसाद गुण पूर्ण है । भाव, भक्ति और विवेक से पूर्ण है ।

संख्या १४ एन. शब्दावली, रचयिता—श्री भीषमदास उपनाम अनन्तदास (उजेहनी, रायबरेली), कागज—देशी बादामी, पत्र—१०३, आकार——१० × ६½ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)——२२, परिमाण (अनुष्टुप्)——२४७२, खंडित, रूप——बिगड़ा हुआ, पद्य, लिपि——कैथी, रचनाकाल——१८६८ वि० के लगभग, प्राप्तिस्थान——महन्त नरायनदास जो, स्थान–धर्मे, डा०—तिलोई, जि०—रायबरेली ।

आदि–सब देही सब आतमा, सब इन्द्री सब ठौर । अनन्त प्रेम संभारिये, जौ लगि होय न और ॥ मनसा वाचा करमना, अनन्त प्रेम संभार । प्रेम संभारे हरि मिलैं, जीती बाजि न हारु ॥ अनंत प्रेम ते जानिए, शिव सनकादिक व्यास । जनकादिक सुक प्रेम ते, मुक्त भये निजदास ॥ परम भागवत प्रेम ते, नारद भगवत प्रेय । निकट सदा आनन्द

मय, अनंत सबते स्रेय ॥ प्रेम ते ध्रुव नेवाजिआ, दीन्हे अविचल राज। अनन्त प्रेम प्रवाह ते, राम गरीब नेवाज ॥

अंत—सुन्य देश के पंथ में, साधू जन जाहीं। सो नर कैसे जाइहैं, जाके सतगुरु नाहीं ॥ पंछी अधर धरे नहिं, बहु मारग होई। जहँ चितवै तहँ पन्थ है ऐसा जन कोई ॥ मीन सरोवर महँ रहै चितवै चहुँ पासा। काँस परे अँधरा भया बेमुख नर ऐसा ॥ नाव नशै कड़हार विना को तीर लगावै। अनन्त दास सतगुरू बिना को ततुहि पावै ॥ × × ×

विषय—इस पुस्तक (शब्दावली) में श्री अनन्तदास जी ने श्री कबीर साहब की भाति अपने उत्तम और निर्भीक विचारों को दोहा-चौपाइयों में साखी-शब्द के रूप में वर्णन किया है। आपने ब्रह्म, जीव, आत्मा, मन, इन्द्रियगण और उनके विषय तत्व एवं पच्चीस प्रकृति, योग, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, ईशस्मरण, अवतारवाद, तीर्थ-व्रत, गुरु माहात्म्य, कृत्रिम पूजापाठ, शाक्तमत खंडन, मात्रा विवेचन, चारों आकाश, दीनता, भक्ति, अमल (नशा), भावी, देश, मांस भक्षण-निषेध, देही, स्त्री पुरुष, प्रीति, सत्य, परिचय, निंदावाद, अनन्त भक्ति, अनन्त प्रबोध, अनंतज्ञान, प्रकाश आदि के संबन्ध में सांख्य, योग सिद्धान्त और शास्त्रों का मत संक्षेप में वर्णन किया है। वास्तव में यह ग्रंथ भाषा का वेदान्त है। गूढ़ वेदान्त शास्त्र को सरल भाषा में रचकर मानो सागर को गागर में भर दिया है। विशेषकर ब्रह्मज्ञान की इच्छा रखनेवाले सज्जनों के हेतु यह ग्रन्थ कल्पवृक्ष के समान फलदायक तथा चिंतामणि के समान मनोरथदायक है।

विशेष ज्ञातव्य—अनन्त श्री भीषमदास जी उपनाम श्री अनन्तदास जी के पिता हरिवंशदास जी ब्रह्म भट्ट वंशावतंश डौंड़िया खेर, जिला उन्नाव में रहते थे। उनके पुत्र खरगसेन जी का विवाह ग्राम उजेहनी, तहसील महाराज गंज, जिला रायबरेली में श्रीराम-आसरे जी की पुत्री से हुआ था। जन्म तिथि का ठीक पता नहीं ज्ञात हो सका; परन्तु अनुमानतः १८२० वि० के लगभग आप अवतीर्ण हुए। आपके विषय में बाल्यकाल से ही बहुत सी आश्चर्य की घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। आपने विद्याभ्यास बहुत कम किया; परन्तु महात्माओं की संगत से आपको ज्ञान की प्राप्ति हुई। युवावस्था में नवाब शुजाउद्दौला के यहाँ ७ तोपों के दारोगा और सूबेदार बहादुर थे। वहीं पर किसी महात्मा के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ। फिर कुछ दिन लखनऊ में आसफुद्दौला के यहाँ गुरु की भांति रहे। आपने १९ ग्रंथ बनाए जिनमें एक अपूर्ण रह गया है। शेष अठारह ग्रन्थ पुराणों के समान बृहत् और उत्तम हैं जिनमें ब्रह्म, जीव, माया, मन, भक्ति, ज्ञान, योग, प्रेम निराकार, साकार, निर्णय, सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन है। आप ऊँचे दरजे के महात्मा थे। आपके संपूर्ण ग्रन्थ उजेहनी, जिला रायबरेली में विद्यमान हैं।

संख्या १. नाम प्रकाश, रचयिता—विहारीलाल अग्रवाल (कोसी कलां), कागज—बाँसी, पत्र—२८, आकार—७ × ६ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६६, खंडित, रूप—प्राचीन, दीमक लगी, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्ति स्थान—श्री मदन लाल वल्द पन्नालाल जी अग्रवाल, बल्देवगंज, डा०—कोसी कलाँ, जि०—मथुरा।

आदि--श्री गणेशाय नमः ॥ श्रीमद्राधा रसिक सर्वेश्वर जू सहाय ॥ अथ श्रीबिहारी लाल कृत नाम प्रकाश ग्रंथ लिख्यते ॥ दोहा--श्री राधा गिरिधर चरन बन्दौ बर अरविन्द ॥ निसि दिन तिन मकरन्द कौं, मोमन लहत अलिन्द ॥ श्री दरबारी जू सुकवि मनुष भेष हरि अैन ॥ बन्दो बोहित तिन चरन, भवसागर सुष दैन ॥ श्री गजमुख अरु सारदा, पुनि बन्दौ सुष रूप ॥ तिनके अतुल प्रताप सौं, रचियत ग्रन्थ अनूप ॥ ग्रन्थ प्रयोजन-अगम संस्कृत जास मति ताहित भाषा आस । सुकवि बिहारी शुगभयहिं, विरचित नाम प्रकास ॥ नाम ग्रंथ के बोध बिन, अरथ बोध नहिं होय । वरनौ नाम प्रकास यौं सुनि रीझे कवि लोय ॥

अंत--अथ तरकस नाम ॥ उपा संग तरकस इषुधि तूणी तूणनि निषंग ॥ तूणीर सु रघुवीर कहि, जगमगात बहुरंग ॥ इषु नामन अवसान मै, धरिधि शब्द मतिधीर ॥ कहै विहारी लाल कवि, रचना नाम तू नीर ॥ अथ सीतानाम--राम प्रिया रिषि वाक्य जा वैदेही कुसुमात । सिया करष जा जानु की सीता है श्रीख्यात ॥ रचना--जनक कर्ष ऋषि वचन महि इन पर तन या नाम । कुश जगपर मातादिकन, धरि रच सीता नाम ॥ × ×

विषय—संस्कृत के अमरकोश तथा नन्ददास जी की नाम माला के आधार पर यह ग्रंथ बनाया गया है । इसमें एक-एक शब्द के अनेक अर्थ दोहों में बतलाए गए हैं । मुख्यतः निम्नलिखित शब्दों के अनेकार्थ तथा उनके पर्यायवाची शब्द आए हैं:—नाम, राधा, विष्णु लोक, बाँसुरी, छिद्र, शब्द, शंख, गरुड़, लक्ष्मी, कामदेव, द्वारिका, बलदेव, हल, शंष, रामचन्द्र, धनुष, चिल्ला, बाण, तरकस, सीता इत्यादि । ग्रन्थ का आधार कवि के शब्दों में:—दोहा—अमर धनंजय हेमिका, हारा वलि हू खास । इन कोशादिक भाव सों, वरनों नाम प्रकास । इंच्छित क्रम कौ नेम ले, जेई बरनौ नाम । तिनकौं बहु ग्रंथन विषै, परै शेष करि काम ॥ प्रथम नाम वरनन करौं, बरनौं बहुरि बनाव ; तासों कवि कोविद लहें, अमित नाम कौ भाव ॥ नामावलि सब इमि रचौं, जिमि गजमुकतन दाम । तिनकौ भूषन लक्ष पै, मिले भाव सब ठाम ॥

संख्या १६ ए. जागरण महात्म्य, रचयिता—चरणदास (दिल्ली), कागज—देशी, पत्र—४, आकार—६ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३२, पूर्ण, रूप—प्राचीन सजिल्द, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—लाला श्री नारायण जी पटवारी, स्थान—चरवार, डा०—बरुई, जि०—इटावा ।

आदि—॥ अथ जागर्न महात्म लिष्यते ॥ छप्पै ॥ प्रथम सुमिरि गुरु चरन बहुरि सुमिरूं हरि चरना । गुरु कूँ करूँ प्रनाम आय साधों की सरना ॥ गुरु कृपा सूं तिमि अज्ञान दुरमति सब नासैं । ....॥ गुरु सुष देव के चरन चित सदा सर्वदा राषियै । कहै चरनदास अधीन हो जु दुविधा दुरमत नाषियै ॥ १ ॥ दोहा ॥ अब में विनती करत हूँ । श्री सतगुरू महराज ॥ दया करौ आधीन पर, मो सिर के सिरताज ॥ २ ॥ तन मन न्योछावर करूं, दोऊ कर लेहुँ बलाय । चरनदास सुखदेव के, चरनन पै बलि जाय ॥ ३ ॥ तिम अज्ञान मेरौ हरौ, ज्ञान देहु प्रगटाय । कृपा करौ मो पतित पै, रहूँ चरन लिपटाय ॥ ४ ॥ तुम सौ दाता और को, जाहि निवाऊं सीस । मनसा वाचा कर्मणा,

तुमही मेरे ईस ॥ ५ ॥ सुखदेव गुरु सुनि लीजिए, मोइ करौ सनाथ । ज्ञान भक्ति जातैं बढ़ै, सो कहियै हो नाथ ॥ ६ ॥

अंत—॥ दोहा ॥ इहि विधि श्री भगवान ने, राजहि किय उपदेस । पद्म पुरान में इहि कथा, कही व्यास जोगेस ॥ ४३ ॥ पानी का सा बुलबुला, ऐसें सुष संसार । भौसागर के तिरन कूँ, कीर्तन है ततसार ॥ ४४ ॥ पल पल छिन छिन अवध यह घटत जात है सोय । सुषदेव कहैं या कथा कूँ, सुनि लीजौ सब कोय ॥ ४५ ॥ अहो सिष्य तो सों कही, अचरज कथा अनूप । सुषदेव कहैं जो कोई सुनै देषैं हरि कौ रूप ॥ ४६ ॥ श्री सतगुरु सुषदेव कूँ, हित सूं करूँ प्रनाम । चरनदास कूँ दीजियै, चरनन में बिसराम ॥ ४७ ॥

॥ इति श्री चरनदास कृत जागरण ॥ महातम संपूर्ण समाप्त ॥

विषय—जागरण का माहात्म्य वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—इस रचना के रचयिता साधु चरणदास जी थे । इसमें उन्होंने जागरण की महिमा का वर्णन किया है और बताया है कि उक्त कथा व्यास जी ने 'पद्म पुराण' में लिखी है । जागरण एवं कीर्तन की महत्ता दिखाने के लिये ग्रंथ में राक्षस तथा ब्राह्मण की कथा को उद्धृत किया है जो इस प्रकार है:—एक राक्षस को एक ब्राह्मण मार्ग में मिला । उसको राक्षस खा जाना चाहता था, किन्तु ब्राह्मण ने कीर्तन करके प्रातः आने का वचन दिया तो राक्षस ने उसे छोड़ दिया । अपने वचनों के अनुसार ब्राह्मण सबेरे लौट आया और राक्षस से कहा, "मैं आगया अब तू अपनी क्षुधा तृप्ति कर ।" परन्तु राक्षस उस कीर्तन करनेवाले ब्राह्मण का दर्शन पाकर पाप मुक्त हो गया और उसे न खाया । चाटुकारी करके उसने एक एकादशी का फल उससे माँग लिया जिससे उसका उद्धार हो गया ।

संख्या १६ बी. काली नाथन लीला, रचयिता—चरणदास (दिल्ली), कागज—देशी, पत्र—५, आकार—६ × ४½ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि - नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लक्ष्मीनारायण जी, स्थान व डा०—धनुआँ, जिला—इटावा ।

आदि—अथ काली नाथन लीला लिष्यते ॥ राग मांझ ॥ सतगुरु जी के चरन मनाऊँ जासूं बुद्धि प्रगासै । ज्ञान बढ़ै सब निर्मल होवै दुविधा दुरमति नासै ॥ बहुरई शंकर तार गुशाईं तुमकूं सीस नवाऊँ । चरनदास कर जोरि कहत हैं, चरन कमल चित लाऊँ ॥ १ ॥ प्रेम कथा की बात अनोखी सुनो संत चितलाई । श्री सुखदेव कहैं राजा सूँ अद्भूत चरित कन्हाई ॥ मन मोहन प्यारे की वतियां चरनदास मन भाई ॥ काली नथन स्याम जू कीनों ताकी माँझ बनाई ॥ २ ॥ एक समै हरि चिंता कीनी विषधर अति दुषदाई । ग्वाल वाल जल पीवन जावैं तिनकूँ बहुत सताई ॥ वा काली कौ गर्भ निवारूँ जल सें काढ़ि निवासूं । चरनदास हरि कियौ मनोरथ जल निर्मल करि डारूं ॥ ३ ॥

अंत—करुणा सिंधु दया को सागर, दुषकौ मेटन हारौ । है दयाल काली के ऊपर, जीवत ताहि उबारौ ॥ चरणदास कहैं उठि वोले । मन में संक न ल्यावो । कुटंब सहित तुम हारे, अब ही ह्यां सों उदधपुरी कूं जावो ॥ २० ॥ मेरे चिहन चरन के तेरें माथे अधिक

सुहावें। जाकौ दरसन गरुड़ देषि कें तोकूं सीस नवावें ॥ चरणदास कहैं ऐसें हरिनें काली को वर दीनों। तव विषधर ने करि परकम्मां गवन सिंधु कूं कीनों ॥ २१ ॥ कालीनाथन स्याम जू करिकें, कालीनाथ कहाए। चरनदास कहैं हरि दरसन सों वृजजन आनन्द पाए ॥ यह हरि कथा जथा मति गाई, जो सुनि के मन लावें। विषधर कौ भै नाहीं व्यापै, अंत परमपद पावें ॥ २२ ॥ इति श्री कालीनाथन ॥ लीला संपूर्ण ॥

विषय--काली नाथन लीला का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य --प्रस्तुत ग्रंथ में यमुना में रहनेवाले कालीनाग को वहां से निकालने के लिये भगवान कृष्ण ने यमुना में कूदकर उसको नाथा और दूसरे स्थान को भेज दिया। इसी कथानक को लेकर इस छोटे से ग्रंथ की रचना साधु चरणदास ने की है। ग्रंथ ठेठ ब्रजभाषा में लिखा गया है और उसमें वात्सल्य तथा करुणारस का अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

संख्या १६ सी. माखन चोरी लीला, रचयिता--चरणदास (दिल्ली), कागज--देशी, पत्र--२, आकार--६ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--११, परिमाण (अनुष्टुप्)--२८, पूर्ण, रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--पं० लक्ष्मीनारायण जी, स्थान व डा०--धनुवाँ, जिला--इटावा।

आदि--॥ अथ श्री चरन दास जी कृत माषन चोरी लीला वर्नंते ॥ एक समै गोपाल ग्वाल संग लेकरि धाए। ग्वारनि गई जल भरन देषि सूने घर आए ॥ छींके पै माषन धरौ लीनों जाय उतार। तवहीं ग्वारन आइ के पकरे कृष्ण मुरार ॥ १ ॥ अचरज गाइ पै तुम सुनियो संत सुजान। तव गहि लीनें स्याम चलीं ग्वारनजसुधा पै ॥ सखी और द्वैचारि मिली संग भई जु ताके। बहुत दिना चोरी करी आजहिं आए हाथ। गुलचा दै कर यों कह्यो अब क्यों न भाजै नाथ ॥ २ ॥ अचरज गाइये तुम सुनियो संत सुजान। वहाँ ते चली वेगि माता पै आई। तेरो मोहन चपल जु व्रज में धूम मचाई ॥ एक कहै मेरे खरिक सों माखन दियो लुटाय। एक कहै मेरे सीस तें गागर दई ढुरकाय ॥ अचरज ॥ ३ ॥ एक कहै गहि चोर हार हिये तें मेरे झटक्यो। एक कहै दध मांट चाटि धरती पर पटक्यो ॥ एक कहै मोहि घेरि कै दान लगावै आय। तेरो मोहन ढीठ है बरजि जसोधा माय ॥ ४ ॥ अचरज वातव श्री मोहन लाल मतो मन माहिं विचारौ। उनकौ मन लियो खैचि कछू टोना पढ़ि डारौ। एक और बालक खड्यो ताली पकरी बांहि। वा ग्वालिन के कर दियो। भेद लख्यो कोई नाहिं ॥ ५ ॥ अचरज० ॥

अंत--पूरन पुरुष अनादि ईश तिहुँ पुर पुर को स्वामी। घट घट व्यापक होइ रह्यो हरि अंतरयामी ॥ ताके कौतिक बहुत हैं कहाँ लौं करौं बखान। चरनदास सुखदेव ने, कह्यो भागवत पुरान ॥ ८ ॥ अचरज ॥ इति श्री माखन चोर लीला संपूरन ॥

विषय--श्री कृष्ण की माखन चोरी लीला का वर्णन।

संख्या १६ डी. निर्गुन वानी, रचयिता--चरणदासजी (दिल्ली), कागज--देशी, पत्र--८, आकार--६ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--११, परिमाण (अनुष्टुप्)-

२२४, पूर्ण, रूप--पुराना, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--पं० चुन्नीलालजी उपाध्याय, पुजारी, रंडीवाला कुआ, नगला आसा, मजरै मौजा—धरवार, डा०—बलरई, जि०-इटावा।

आदि--॥ अथ मटकी लिष्यते ॥ मोर मुकुट कुंडल, की झलकैं चरनदास हिंये में खटकी । पीरा फेंटा तुर्रा थिरकात नाक बुलाक अधर मटकी ॥ मंद मंद मुसकात कन्हैया कुंडित चपला सी झटकी । सब तन कछे सजे आभूषन, कटि ऊपर जुलफै लटकीं ॥ १ ॥ ॥ मटकी ॥ सुंदर रूप सलोनी सी अखियाँ, तिलक भाल अलकैं अटकीं । मुतियन की माला मुरलीवाला सुध न गई पियरे पटकीं । चित्त चुराय जवहीं मेरो लीन्हों चट चौपट मटुकी पटकी ॥ २ ॥ मुरली की धुनि सुनि विरह वान लगी आय कलेजे में खटकी ॥ दधि-भाजन लै धरौ सीस पर मोहन देखन कूँ सटकी ॥ चरनदास काहु की न मानैं सासु नन्द के तो हटकी । चारि द्दग जब भए स्याम सूं चट चौपट मटकी पटकी ॥ ३ ॥ मटकी ॥

अंत—वेदहू कों मानें और पूजे पुरान हूँ कूं, गीताहू समझै जो गुरु ने समझाई है। ब्राह्मण के पाँय लागूं मारू मुष पंडित कौ, वेद कौं छिपाय भेद और गति गाई है ॥ पढ़ि पढ़ि कै अर्थ करै, हिये मांहि नाहिं धरैं, करै ना विचार सब दुनिया भरमाई है। कहै सो तो करै नाहिं पंडित इकलो मांहि, सुख जी के दास चरणदास गति पाई है ॥ ॥ इति श्री महाराज साहब श्री चरनदास जी ॥ कृत सर्गुन वानी संपूरण समाप्त ॥ श्रोता वक्ता सोधियो, मन लेखक अज्ञान । भूल चूक कछु होइ तो, करियो शुद्ध प्रमान ॥ मिती चैत वदी ६ लिषी सिवलाल कायस्थ कुलश्रेष्ट मौजा चावली व पठनार्थं शिवलाल थोक परसराम ॥ राम राम राम ॥ संवत् १९१२ सन् १२६२ फसली ॥ मि० चैत वदी ६ गुरुवार ॥ रामचन्द्र की कृपा सूं, है गई पोथी पार ॥

विषय--कृष्ण प्रेम संबंधी गीतों के व्याज से निर्गुण वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत पुस्तक के आदि में 'मटकी' की समस्या लेकर कृष्ण प्रेम में कवि ने अपनी तल्लीनता दिखाई है। तदोपरान्त कृष्ण की भक्ति में पगे हुए अन्य निर्गुण संबंधी पद कहे हैं। ग्रंथ के रचनाकालादि पर कोई प्रकाश नहीं डाला। आदि में 'मटकी' का शीर्षक है और अन्त में (सर्गुन) वानी लिखकर ग्रंथ समाप्त किया गया है।

संख्या १७. चतुर्भुज पद माला (अनुमानिक), रचयिता—चत्रभुजदास, कागज—बांसी, पत्र—९, आकार—९×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बाबा मोहन लाल, गौरानी बगीची, ग्राम--मिरजापुर, डा०--गोकुल, मथुरा।

आदि--॥ अथ त्रभुजदास के पद लिष्यते ॥ गौरज राजत साँवरे अंग ॥ देख सखी सोभा जु बनी हे, गोविन्द गोधन संग ॥ १ ॥ अम्बुज वदन नैन जुग खंजन, क्रीड़त अपुने रंग ॥ कुंचत केस सुदेस देख, मानो अलि कुल गुंज ॥ २ ॥ नाचत गावत बैन बजावत उपजत तान तरंग ॥ चत्रभुज प्रभू गिरधरन लाल पर, वारों कोट अनंग ॥

अंत--टेर हो टेर कदम तर दूर जात है गैया ॥ तुम्हरी टेर सुनत बगदेंगी पाछे कीजे छैया ॥ आज हमारी फिरत न घेरी वही जात हे रैया ॥ हमते बहुत तिहारे गोरस

हँसत कहाँ हो भैया। चत्रभुज प्रभू कर धावत दुहैया ॥ पोंछत रैन धेनु के मुख को गिर गोबरधन रैया ॥ सहज उरज पर छूट रही लट ॥ कनिक लता में उतर भुव गन अमृत पान मानो करत कनिक घट ॥ चितवन चार चलन मोहे पिय चिबुक वृन्द अधर निकट ॥ चत्रभुज प्रभू गिरधरन नव रंगी अति विचित्र वटह कुल जमुना तट ॥ लिषतं राधूदास वैष्णव बटोरी मध्ये ॥ संवत् १ (अस्पष्ट) मधुमासे बुधवासरे द्वादश्याम् ॥ जय श्री कृष्ण जय श्री कृष्ण ॥

विषय--अष्टछाप के कवि चतुर्भुजदास के रचे हुए कृष्ण की विभिन्न लीलाओं सम्बन्धी भावपूर्ण पदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—अष्टछाप के कवियों के गीतों की एक विशाल राशि इस ब्रज भूमि में बिखरी पड़ी है। लोगों की धार्मिक संकीर्णता के कारण बहुत कम ऐसे संग्रह देखने को मिलते हैं। जो प्राप्त भी होते हैं उनमें प्रायः अष्टछाप के कवियों तथा उनके अनुयायियों के पद संगृहीत रहते हैं। इस उपयोगी संग्रह में चतुर्भुज दास के ही केवल कुछ पद एकत्रित हैं। इसी प्रकार का एक संग्रह जमुनादास कीर्तनिया, गोकुल निवासी के यहाँ गत वर्ष मिला था। वह इस संग्रह से भी बड़ा था और उससे पता चलता था कि चतुर्भुज दास के बनाये हुए पद दो चार सौ, जैसा कि हिन्दी साहित्य के लेखक समझते हैं, नहीं हैं अपितु सहस्र से अधिक हैं। इस प्रकार अनुमान लगता है कि एक-एक अष्टछाप कवि के गीत सहस्रों की संख्या में हैं।

संख्या १८. ज्योतिष सार नवीन संग्रह, रचयिता—चित्तरसिंह सबइंस्पेक्टर (सागर), कागज देशी, पत्र—५१, आकार—१०३/४ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१८८, पूर्ण, रूप—पुराना, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १९१८ (१८६१ ई०), प्राप्तिस्थान—पं० रामकृष्ण तिवारी, स्थान व डा०—फफूँद, जि०-इटावा ॥

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ लिखते ज्योतिष सार नवीन संग्रह ॥ दोहा ॥ विघन हरन तुम हौ सदा, गणपति दीन दयाल। करौ प्रगट मम बुद्धि कों करिके, चित्त विशाल ॥ १ ॥ एक सहस कौ सैकड़ा, अठ्ठारह की साल। चित्तरसिंह रचना करी, धरि द्विज चरण विशाल ॥ २ ॥ ज्योतिष विद्या प्रबल है, देखौ बुद्धि विशाल। श्री त्रिशनू भगवान के, नेत्र का हित बुधपाल ॥ ३ ॥ सब विद्या से है सबल, ज्योतिष शास्त्र जहान। वचन सत्य सब ऋषिन के, भूत भविष्य वरतमान ॥ ४ ॥ या विद्या के भ्यास से, दुख सुख जग के पेख। चंद्र सूर्य शार्थी भए, करके दृष्टि अदोष ॥ ५ ॥ पूरण विद्या के विना, सब विद्या निरमूल। दोष न विद्या दीजिए, विद्यार्थी की भूल ॥ ६ ॥ वारह घर औ नौग्रह, सब दुनियाँ के काज। और २७ नक्षत्र हैं, विधि ने दये वताय ॥ ७ ॥ इनहीं ग्रहन तै सदा, दुख सुख जग में होत। इनहीं ते सब होत हैं, सब रंक नर पोच ॥ ८ ॥

अंत—॥ शनिदेव चक्कर ॥ शनि चक्कर की सुनिये वात, मेष राशी कीजे गुजरात ॥ बृष में करै निहेधाचार। भूंमेआबू और गिरवार ॥ मिथुनै पिंगल अरु मुलतान, कर्क काश्मीर और खुरसान ॥ जो शनि सिंह करसी रंग। तौ गढ़ दिल्ली होसी भंग ॥ जो शनि कन्या करै निवास, तौ कछू पूर्व मालवा नाश ॥ तुला वृश्चीक पर जो शनि जाय। मारवाड़

को काट विलाय ॥ मकरा कुंभा जो शनि आवै, दियौ अन्न नहीं कोउ खावै ॥ जो धन मीन शनिश्चर जाय। पवन चलै पानी जो नशाय ॥ सम्यौविचार ॥ नगिन तीन सौ साठ छिन, ना करि लग्न विचार। गिन नौमी आषाढ़ वद, होवै कोन उवार ॥ रवि अकल मंगल जातु गौ, बुधा सम्यौ समझावै लसैं। सौम शुक्र सुर गुरु को जोय, पहुमी कूल कलंती होय ॥ अथाँ कवि की प्रार्थना—मैंने जो इस ग्रंथ को संग्रह किया है सो सब ऋषियों के वाक्य हैं। फल जिसका नहीं मिलेगा जो ईश्वर के आधीन है और सर्व ऋषिमत है कै येही नौग्रह राजा महाराजा को पड़ते हैं और ये नीच मजदूर दरिद्रों को पड़ते हैं, जो ग्रह बलवान है परम उच्च का है या स्वक्षेत्री है या अंसबली है मुकामवली है और सब तरह से बलवान है वह पूरा फल करेगा और नीच का ग्रह शत्रू क्षेत्री अंसहीन मुकमाहीन बलहीन कुछ फल अच्छा नहीं करेगा, पंडितों को चाहिए कै ग्रह वल कौं देखकर फल शुभअशुभ बतलावै फ० दस्तखत मुंशी चित्तरसिंह सब इंसपेक्टर पिंशनर सागर गोपालगंज।

विषय—१—मंगलाचरण, हालत और नाम संग्रही, लगन साधन, विधि और घड़ी पल, होरा कथन नवांश, द्वादशांस, त्रिशांस, षोड़श वर्ग आनने का नियम, लग्नांश, ग्रहमैत्री द्वादश भाव, केन्द्र औ त्रिकोण ग्रहों के अधिकार, रंग, स्वामी, रूप, स्वभाव, धातु तथा स्थानादि व दृष्टि वर्णन, बारह भाव के जन्म पत्री के फल, पृ० १–२२। (२) सुनका राजयोग, आयुरदायोग, अरिष्टयोग, अरिष्टभंगयोग, मेषादि राशियों के चन्द्रमा का फल। अष्टोत्तरीदशा, अंतर्दशा, विंशोत्तरी, योगिनीदशा, फल, गोचर ग्रह दिवस और फल। ग्रहों की रीति, दशा निकालने का प्रकार, गोचर ग्रहों की मास, दिन, संख्या और फल। ग्रहों में नेष्ट स्थानों के वार अनुसार, दान, जप, स्त्री जातक काव्य-कोष, कन्या, विधवायोग विवाह पटल, पृ० २२–५०। ३—यात्रा प्रकरण, मकान बनाने का मुहूर्त, शनीश्चर साड़साती के वाहनादि, छायकीव करक टिषा विचार, अंग फड़कन, वर्षफल। प्रत्येक ग्रह के दान की सामग्री और करने का समय, आयु जानने का प्रकार, लग्न बनाना, सामुद्रिक शास्त्र। भड्डर मुनि के अनेक शकुन और वर्षा आदि के विचार, बारह मासों के फल, संक्राति का फल, ग्रहण का विचार, कवि की प्रार्थना, पृ० ५१–१०२।

विशेषज्ञातव्य—यह ग्रंथ ज्योतिषशास्त्र से संबंध रखता है। ज्योतिष सम्बन्धी अनेक मोटी-मोटी और आवश्यकीय बातें इसमें वर्णित हैं। इसमें गद्य और पद्य दोनों का व्यवहार हुआ है। इसके रचयिता का नाम मुं० चित्तर सिंह है जो अपने को सागर (गोपाल गंज) का सब इंस्पेक्टर लिखते हैं। वे इसको संग्रह ग्रंथ बतलाते हैं। संभवतः गोपालगंज, सागर जिले (मध्यप्रदेश) का कोई स्थान है। ग्रंथ का रचनाकाल सं० १९१८ वि० है। इस ग्रंथ की यह विशेषता है कि इसके रचयिता ने स्वयम् अपने हाथ से लिखा है। लिपिकाल नहीं दिया है।

संख्या १९ ए. मुहूर्त चिंतामणि, रचयिता—दुलेलपुरी, कागज – देशी, पत्र—२६, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२७६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० जुगल किशोर जी, स्थान व डा०—जगसौरा, जिला—इटावा।

आदि—द्वैज वुद्ध आठै गुरु, भृगु नौमी शनि सात। ता दिन ए तिथि वार मिलि, विषम जोग गणिजात ॥ १२ ॥ दिति छटि सातैं अष्टमी, नौमी दशमी ग्यासि। अगहन सातै अष्टमी, माघ अष्टनो भासि ॥ १३ ॥ उभय पक्ष की सून्य तिथि, भाषि पंडिए जोइ। भिन्न भिन्न दोऊ तिथी, शुक्ल कृष्ण सूं नोइ ॥ १४ ॥ × × शुक्ला नौमी अष्टमी, कृष्णा नौमी दोइ। नषत रोहिनी अस्वनी, कुंभ चेत सो नोइ ॥ १८ ॥ शुक्ला कृष्णा द्वादशी, स्वाँति चित्र का मीन। सुन्य कहि वैशाष मैं, कारज कारन हीन ॥ १९ ॥ तेरसि शुक्ला जेष्ठ की, चौदसि कृष्णा जानि ॥ पुष्य उत्तराषाढ़ वृष, एहि शून्य वषानि ॥ २० ॥ सातैं शुक्ला कृष्ण छटि, शून्य अषाढ़ा मास। नषत पूर्वा फाल्गुणी, धनिष्ठा मीथुन जुतरासि ॥ २१ ॥

अंत—भवन प्रतिष्ठा देव गुरू, वृत उद्यापन जोग। महादान षोड़ष कला, अष्ट सौम्य मस भोग ॥ ६१ ॥ डाढ़ी केस मुड़ावनौ, नयो जु आवै अन्न आहार। वेद रंभ वृषदा गणौ, श्रावण तर्पण सार ॥ ६२ ॥ वृत वंधन सुर थापड़ा, संसकार वालाइ व्याह। अवूर देवता क्षेत्र अवूर वजाई ॥ ६३ ॥ नृप दर्शन सन्यास पद, नृप अभिषेक कराइ। आनि होत्र जात्रा करण, अगम चोमासै वृत ठाइ ॥ ६४ ॥ करण वेध पारीछता ॥ भाषो एते भेद दलेल पुरी, गुरु अस्त भृगु। बाल वृद्ध तजिय है चामहूण कला ॥ ६५ ॥ संख्या महुरत चिंतामणि ॥ कला भाषा ॥ अर्थ उपाई ॥ दलेल पुरी प्रघटी सवै, सरस महूरत बीज ॥ ६६ ॥ ॥ इति श्री महूर्त चिंतामणि ॥ संपूर्णम् ॥

विषय—संस्कृत ग्रंथ मुहूर्त चिन्तामणि का भाषा में पद्यानुवाद।

संख्या १९ बी. महूर्त चिंतामणि, रचयिता—दलेलपुरी, कागज—देशी, पत्र—३०, आकार—१० × ६¾ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३२०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामचन्द्र जी, स्थान—वियामऊ, डा०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—भद्रा द्वितीया तीज तिथि, माधव द्वादशी द्वैज। पुष्य चोथि पाँचै तिथी, कातिक दशमी जासि ॥ अगहन सातैं अष्टमी, माघ अष्ट नो भासा। उभय पछ की सून्य तिथि, भाषि पंडिरा जोइ ॥ भिन्न भिन्न दोऊ तिथी, शुकुल कृष्ण सुनोई ॥ १७ ॥ शुक्ला नौमी अष्टमी, कृष्णा नौमी दोइ। नषत रोहिनी अस्विनी, कुंभ चेत सो नोइ ॥ १८ ॥ शुक्ला कृष्णा द्वादसी, स्वाति चित्र कामीन ॥ सुन्य कही वैसाख मैं, कारज कारन हीन ॥ १९ ॥ तेरसि शुक्ला जेठ की, चौदसि कृष्णा जानि। पुष्य उत्तराषाढ़ वृष, एही शुन्य वषानि ॥ २० ॥ सातैं शुक्ला कृष्ण छठि, शून्य आषाढ़ मासः। नषत पूर्वा फाल्गुणी धनिष्टा मिथुन जुत्तरासि ॥ २१ ॥ शुक्ल कृष्णा द्वितीया श्रवण, शून्य प्रमाण। श्रवण उत्तरा फाल्गुणी मैषरासि पैहचानि ॥ २२ ॥

अंत—बाल वृद्ध गुर अस्त भृगु, कर्म मंगी यागि। ताल बावरी कूप षण, ग्रहरंभ कृत भागि ॥ ६० ॥ भवन प्रतिष्ठा देव गुरु, वृत उद्यापन जोग। महादान षोड़ष कला, अष्ट सौम्य मसभोग ॥ ६१ ॥ डाढ़ी केश मुड़ावनौ, और नयो जो अन्न। अहार वेद रंभ वृष दागणौ, श्रावण तर्पण सार ॥ ६२ ॥ वृत बंधन सुर थापणा, संस्कार वालाइ व्याह। अबूरव

देवताः क्षेत्र अबूर बजाइ || ६३ ॥ नृप दर्शन सन्यास पद, नृप अभिषेक कराइ ॥ अगिणि होत्र जात्रा अगम, चौमासे बृत ठाइ || ६४ ॥ करणवेध पारीछता, भाषो एते भेद । दलेल पुरी गुरू अस्त भृगु, वाल बृद्ध तजिएद || महूरत कला || ६५ ॥ संख्या || महुरत चिंता मणि कला भाषा अर्थ उपाइ । दलेलपुरी प्रघटी सबै, सरस महूरत बीज ॥ ६६ ॥ इति श्री महूर्त चिंतामणि || संम्पूर्णम् || शुभम् ॥

विषय—मुहूर्त बताने के नियमादि का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ ज्योतिष विषय से संबंध रखता है। इसमें अनेक प्रकार के मुहूर्त बताने और उसके अनुसार अथवा विरुद्ध चलने से जो लाभ-हानि होते हैं उनका वर्णन किया गया है। समस्त ग्रंथ प्रायः दोहों में है। ग्रन्थ के आदि का एक और मध्य के ग्यारह से लेकर ३० तथा ३२ से ५९ तक के पत्रे लुप्त हो गए हैं।

संख्या १९ सी. मुहूर्त चिंतामणि, रचयिता—दलेलपुरी, कागज—देशी, पत्र—६२ आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३६४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० काशीराम जी, स्थान—गोशपुरा, डा०—शिकोहाबाद, जिला—मैनपुरी।

आदि—प्रथम पृष्ठ लुप्त। द्वितीय पृष्ठ से उद्धृतः—द्वैध बुध आठैं गुरु, भृगु नौमी शनि सात। तादिन ए तिथि वार मिलि, विषम जोग गणि जात ॥ १२ ॥ दिति छति सातै अष्टमी, नौमी दसमी ग्यासि। रवि ते शनि लौं वरणि, जोग हुता शन भासि || १३ ॥ मघा विशाषा अर्द्रका, मूल कृतिका विधि हस्त। सूरज ते शनिवार जित, जमघटक प्रशस्त ॥ १४ || इति चतुयोग। भद्रा द्वितीय तीज तिथि, माधव द्वादशि द्वैज। पुष्यचौथि पाचै तिथी, कातिक दशमी जासि ॥ १० ॥ अगहन सातैं अष्टमी, माघ अष्टनो भषा। उभय पक्ष की सून्य तिथि, भाष पंडिरा जोइ ॥ भिन्न भिन्न दोऊ तिथी, शुकुल कृष्ण सुनोइ ॥ १७ ॥ शुक्ला नौमी अष्टमी, कृष्णा नौमी दोइ। नषत रोहिनी अस्विनी, कुंभ चेत सो नोइ ॥ १८ ॥ शुक्ला कृष्ण द्वादसी, स्वाँति चित्रका मीन। सुंन्य कहि वैशाष मै, कारज कारन हीन ॥ १९ ॥ तेरसि शुक्ला ज्येष्ठ की, चौदसि कृष्णा जानि। पुष्य उत्तरा षाढ़ बृष, एही शून्य बषानि || २० ॥

अंत—बाल वृद्ध गुरु अस्त भृगुकर्म मंगी मागि ताल बावरी कूप षरग ग्रहरंभ बृत भागि || ६० ॥ भवन प्रतिष्ठा देवगुरू, बृत उद्यापन जोग। महादान षोड़षकला, अष्ट सौम्य समभोग ॥ ६१ ॥ दाढ़ी केश मुड़ावनो, नयो अन्न आहार। वेद रंभ बृष दागणो, श्रावण तर्पण सार || ६२ ॥ बृत बंधन सुर थापणा, संसकार वलि व्याह। अवुरव देवता, क्षेत्र अवूरव जाइ ॥ ६३ ॥ नृप दर्शन सन्यास पद, नृप अभिषेक कराइ। अगिणि होत्र जात्रा करण, अगम चोमासै बृत ठाइ ||६४|| करण वेध पारीछता, भाषो एते भेद। दलैल पुरी गुरु अस्त भृगु, बाल बृद्धि तजि ऐद ॥ ६५ ॥ महूरत कला ॥ संख्या महूर्त चिन्तामणि कला भाषा अर्थ उपाइ। दलेलपुरी प्रघटी सबै, सरस महूरत बीज || ६६ ॥ इति ॥ श्री मुहूर्त चिन्तामणि संपूर्णम् ॥

विषय—अनेक प्रकार के मुहूर्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक में नाना प्रकार के मुहूर्तों का संग्रह किया गया है जो छंद बद्ध है। किन्तु उसमें अनेक अशुद्धियाँ हैं। छंदों के तुक बहुत स्थानों पर नहीं मिलते। रचयिता ने अपना नाम "दलेलपुरी" बताया है। इससे यह जाना जाता है कि उक्त ग्रंथ का कर्ता जाति का गुसाईं था। क्योंकि 'गिरि' तथा 'पुरी' आदि शब्द अपने नाम के आगे गुसाईं लोग ही लगाया करते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ संस्कृत ग्रंथ "महूर्त चिंतामणि" का पद्यानुवाद जान पड़ता है।

संख्या २०. रघुनाथ नाटक, रचयिता दास, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—१० × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० प्रभुदयाल जी शर्मा, स्थान—सिरसा, डा०—इकदिल, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ श्री रघुनाथ नाटक लिष्यते ॥ आजु री देखु समेत समाज कियो रितुराज सुहावनो साजुरी ॥ साजुरी भूषण भूरि सिंगार भयो मन भावतो तेरोइ काजुरी ॥ काजुरी जानि यही जिय में कि षेलावन फागु मिलो रघुराजरी ॥ राजुरी वारों तिहूँपुर को जो भयो यह औसर होरी को आजुरी ॥ १ ॥ गुंजते भँवर विराग भरे सुर पूरि रहे नव कुंज के पुंजते। पुंजते आसै मो देषहि छबि काम सवारे वसंत के सुंजते ॥ सुंजते फूले गुलाल गुलाव नेवारी औ कुंद पलास के गुंजते। गुंजते कोकिला औ षग महागज माते ज्यों पिव गुंजते ॥ २ ॥ देषि वसन्त सुहावन साज तबै रघुराज बुलायो सुमंत राते को। मंत कियो की तुरंत सर्वरिये............ [आगे पृष्ठ छ तक लुप्त]

अंत—तब तौ बुलाये भरतादि सषा भावै कौन, दई अभवाह सबै आए सकुचाए कै। सवन अन्हवाय अग्रजा पहिराए नए वागे भली भाँति कै ॥ बाजे हैं मृदंग चंग विना अवौड पग जंत्र, सादि आनौवति बजा भली भाइकै। सखीगन नाचैं हूड़कर षाषै मन वीचै। नहिं कोउ रंग सबै कौन गाइकै ॥ ४५ ॥ वाम ओर जानकी कृपा निधान के विराजै, धरे भुजा अस देषै नृत्य सुषकारी है। भरत लषन शत्रुहन षवावइ पान, चँवर डुलावै गावै तन को सँभारी है ॥ अतर अबीर औ गुलाल छूटै चहुँदिसि, देषे सुर कौतुक विमान चढ़ि भारी है। विष विष देषि कै सुवाँग रीझि रीझि हसै, दास यह औसर की जात बलिहारी है ॥ ४६ ॥ इति श्री रघुनाथ नाटक ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—सीताराम का सखा, सखी और बन्धु समेत फाग खेलने और क्रीड़ा करने का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ 'रघुनाथ नाटक' 'दास' की रचना है। इसमें नाटकत्व न होते हुए भी यह हिंदी का पुराना नाटक है। इसके मध्य के कुछ पत्रे लुप्त हो गए हैं।

संख्या २१. दुर्गाचालीसा, रचयिता—देवीदास, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—६$\frac{3}{4}$ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—४, परिमाण (अनुष्टुप्)—३०, पूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १९६० वि० (१९०३ ई०), प्राप्तिस्थान—पं० इच्छाराम जी मिश्र, करहरा, डा०-सिरसागंज, जिला—मैनपुरी।

आदि—नमो नमो दुर्गे सुख करनी, नमो नमो अम्बे दुखहरनी ।। १ ।। निरंकार है ज्योति तुम्हारी ।। तिहुँ लोक फैली उजियारी । चंद्र लिलाट मुख महा विशाला ।। नेत्र लाल भृकुटी विकराला ।। ३ ।। रूप मातु को अधिक सुहावै ।। परश करत जन अति सुख पावै ।। ४ ।। तुम संसार शक्ति लौकीना ।। पालन हेतु अन्न धन दीना ।। ५ ।। अन्न पूरण जग पाला ।। तुमही आदि सुंदरी बाला ।। ६ ।। धरौ रूप नरसिंह को अम्बा, परगट भई फाड़ के खम्भा ।। १० ।। रक्षा कर प्रहलाद बचाओ ।। हरिण्याक्ष को स्वर्ग पठाओ ।। ११ ।। लक्ष्मी रूप धरौ जग माहीं ।। श्री नारायण अंग समाही ।। १२ ।। क्षीर सिन्धु में करत विलासा, दयासिंधु दीजै मन आसा ।। १३ ।। हिंगलानि में तुम्हीं भवानी ।। महिमा अमित न जात षषानी ।। १४ ।। मातंगी धूमावती माता ।। भुवनेश्वरी बगला सुखदाता ।। १५ ।। श्रीभैरव तारा जगराणि । छिन्नभाल भव दुख निवाणी ।। १६ ।। केहरि वाहन सोह भवानी ।। लंगुर वीर चलत अगवानी ।। १७ ।।

अंत—मोको मातु कष्ट अति घेरो । तुम विन कौन हरै दुख मेरो ।। ३५ ।। आशा तृष्णा निपट सतावै, रिपू मूरख मोहिं अति डरपावै ।। ३६ ।। शत्रुनाश कीजे महरानी, सुमिरो इकचित तुम्हें भवानी ।। ३७ ।। करौ कृपा हे मातु दयाला, समृद्धि सिद्धि देकरहु निहाला ।। ३८ ।। जबलगि जीयूं दया फल पाऊँ । तुम्हारे यश सदा सुनाऊँ ।। ३९ ।। दुर्गा चालीसी जो गावै । सब सुख भोग परम पद पावै ।। ४० ।। देवीदास शरण निज जानी । करहु कृपा जगदेव भवानी ।।४१।। इति श्री दुर्गा चालीसा समाप्ताः । द० अजीराम ने यह दुर्गाचालीसा लिखी है ता० १६ अक्टूबर सन् १९०३ ई० ।)

विषय—दुर्गादेवी की स्तुति ।

संख्या २२. विनय संग्रह, रचयिता—श्रीदूलनदास जी (धर्मे, समैसी, रायबरेली), कागज—देशी, पत्र—४, आकार—८ × ६½ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण—(अनुष्टुप्)—९६, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि-देवनागरी, लिपिकाल-सन् १९३० ई०, प्राप्तिस्थान—त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी 'विशारद', मिडिल स्कूल—तिलोई, डा०—तिलोई, जिला—रायबरेली ।

आदि—छप्पय—एक दंत भगवन्त सिद्धि बुद्धि कंतऽनंत गुन । भक्तिवन्त शुभकरन हरन दारिद दुख दारन ।। देव अनादि आदि जग वन्दन सहित सुधाकर । गजमुख गौर किशोर शंभु सुत हित लम्बोदर ।। जन दूलन विनती करत तुम्ह सकल व्याधि बाधा हरन । अवराम भक्ति वर देहु मोहि जै जै गनेश असरन सरन ।। जै जै उमा अम्बिका जै जै गिरवर राज दुलारी । त्रिभुवन ठकुराइन गौरि गोसाइनि जै जै शंभु पियारी ।। जै गनपति षटवदन मातु तव महिमा जात न बरनी । जै जै जगबंदनि दुष्ट निकंदनि अशुभ अमंगल हरनी ।।

अंत—कवित्त—कर कञ्चन से तरहदार वर पेंच बार वहुवानी के । चपला से चमकैं चुनीदार तैसे तवीण डरमानी को ।। सिर सोहैं चीरा गोस पेंच जर जरे जराऊ पानी के ।। अति उर अनन्द दूलन गोविन्द ताके तनय जसोमति रानी को ।। कवित्त—दामिन से दमकै दसन मनोहर पीत वसन कटि बाँधे हैं । मोहन को दंड तिलक वर मानहु मदन सुमन सर

साधे हैं ।। दूलन सिर सोहै मुकुट मंजु कर लकुटि, कामरी काँधे है । यों विविध भाँति मधुवन वीथिन में खेलत माधौ राधे हैं ।। × × ×

विषय—ग्रंथ में प्रथम श्री गणेश जी की वंदना है । पश्चात् श्री पार्वती जी, महादेव जी, हनुमान जी, श्री रामचंद्र जी, श्री कृष्ण भगवान, श्री गंगा जी आदि आदि अनेक देवी देवताओं की स्तुति, प्रार्थना तथा महिमा का वर्णन किया है ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री महात्मा दूलनदास जी का जन्म सं० १७१७ वि० में तदीपुर, जिला, रायबरेली में हुआ था । आपके पिता का नाम रायसिंह था । ये सोमवंशी क्षत्री थे । बाल्यकाल का विशेष हाल विदित नहीं है । बड़े होने पर ये सैमसी (रायबरेली) में रहने लगे । युवावस्था में श्री जगजीवन साहब (कोटवा निवासी) के शिष्य हुए । तत्पश्चात् सैमसी के निकट धर्मे में रहने लगे । ये श्री जगजीवन साहब के दूसरे शिष्य थे । उनके प्रेम के कारण आपको 'दुलारे दास' की पदवी मिली थी । ये बहुत ऊँची गति के महात्मा थे । इनके विषय में अनेक सिद्धि की बातें प्रसिद्ध हैं । इनमें से एक अपने सेवक (बारी) के लड़के को अकाल मृत्यु से जीवित करना भी है । ये एक अच्छे कवि हुए हैं । इनके ग्रंथों से विदित होता है कि ये संस्कृत और फारसी भी पढ़े थे । कविता उत्तम है । भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण का प्राधान्य है । उपमा, रूपक दृष्टान्त आदि अलंकार और कवित्त, सवैया, झूलना आदि अनेक प्रकार के छंद तथा भाँति-भाँति के पद आपके ग्रंथों में पाये जाते हैं । आपने शब्दावली, दोहावली, गंगाअष्टक और झूलना आदि ग्रंथ लिखे हैं । आपका शरीरपात ११८ वर्ष की आयु में सं० १८३५ वि० में हुआ ।

संख्या २३. विवाह पद्धति, रचयिता—दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी (याकूतगंज, फर्रुखाबाद), कागज—देशी, पत्र—१७, आकार—७ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४६८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१९७४ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० हरचन्द जी शर्मा, स्थान—आलई, डा०—बलरई, जिला—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ।। अथ विवाह पद्धति प्रा० । अथ निकरौसी किसोंदे को विधि ।। प्रथम चौक पूरै ।। गणेश गौरो नवग्रह स्थापित करै ।। फिर लड़के को अंजुलि मारि कैं शिलौटा पर बैठारै ।। मंत्र ।। ओं शुक्लां वरधरं देवं शशि वरणे चतुर्भुजम् ।। प्रसन्न वदनं ध्यायेत्सर्व विघ्नोप शांतये ।। पवित्रं आचमन मन्त्र ।। ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतो पिवा । यस्मरेत् पुंडरीकाक्षां सर्वाहनभ्यांतरः शुचि ।। संकल्प ।। टका अक्षित धरिकैं फिरि गणेश गौरी वरुण नवग्रह देवता का आह्वान करै । मंत्र ।। ओं मनो ज्योतिरः युक्ता महं यस्य बृहस्पतिर्यज्ञ मियन्तनो वरिष्टं यज्ञं समिपंदधातु ।। विश्वेदेवा सऽइमादयंत एकवै प्रतिष्ठानां यज्ञैनं सर्वदेव प्रतिष्टितं भवतु ।।

अंत—वर वधू अंजुरी भरि चौकपर फिरि आवैं ।। वर का प्रोहित ग्रंथ बंधन करावै । हक्क लेवै ।। आचमन करावै ।। संकल्प गणेश गौरी वरुण नवग्रह कौ पूजन कलश कौ रुपैया

धरावै ।। घर को प्रोहित लेवै ।। जौ खड़ी का हवन करावै ।। वरकौ नाऊ किसौड़ो करै ॥ हक्क लेवै ।। सुनार पहिरावै ॥ हक्क लेवै ॥ दो दोना में चामर और दिउल मँगावै ।। ५ टका पैसा डारै ।। लड़िका के हाथ ऊपर वधू के नीचें पंडित लड़िका की अंजुरी में दिउलारी डारै बर कन्या छोड़त जावै ।। तहाँ यह मंत्र पढ़ै ।। वागार्था विवसं प्रक्तौ वागर्थ प्रति पत्तयै जगत पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ ।। पंडित गोदी भरै तिलक करै ।। आशीर्वाद दै निछावरि नाऊ की ।। माली हार पहिरावै ॥ बधू वर उठि कैं भीतर जावैं ॥ खर्चवरदार दक्षिणा बाँटै ॥ फिरि सब नाऊनेगिनि कौं पैसा बाँटै ।। सबकौं राजी करिकै जनवासे कौं जावै ।। इति श्री विवाह पद्धति व दुरागमन ।। वार्तिक सम्पूर्णम् ।। मिती ।। चैत्र शुक्ला ॥ ८ ॥ भृगु ।। वार संवत् १९७४ । मुकाम अतुर्रा । व वैनी रामकायस्थ ।। मौजा सिंहुड़ा, तहसील व थाना व डाकखाना व सफाखाना जसराना, जि० मैनपुरी ।। ई० ।। दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी याकूत गंज, जिला फर्रुखाबाद ।

विषय--विवाह एवम् द्विरागमन पद्धति का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत पुस्तक में विवाह और द्विरागमन सम्बन्धी पूजा आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है । मंत्र संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं और विधि विशुद्ध साहित्यिक हिन्दी गद्य में । परन्तु लेखन शैली पंडिताऊ है । प्रतिलिपि कर्ता जिला मैनपुरी की तहसील जसराने में अवस्थित अतुर्रा नामक ग्राम का अधिवासी वैनी राम कायस्थ है । उसने ग्रंथ की नकल चैत्र शुक्ला अष्टमी भृगुवार सं० १९७४ वि० में की । ग्रंथ को समाप्त करते हुए लिखा गया है कि यह याकूत गंज जिला फर्रुखाबाद के निवासी पं० दुर्गाप्रसादजी ने रचा है । किन्तु यह नहीं बताया कि ग्रंथ का रचनाकाल क्या है ।

संख्या २४. गंगाबाई के पद (अनु०), रचयिता--गंगाबाई (महाबन), कागज—मूँजी, पत्र--५६, आकार--११ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--२०, परिमाण (अनुष्टुप्)--११९०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, लिपिकाल--सं० १८५० = १७९३ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री जमनादास जी कीर्तनिया, नवा मन्दिर (गुजरातियों का), गोकुल, मथुरा ।

आदि--श्री कृष्णाय नमः ।। अथ गंगाबाई के पद ।। राग देव गंधारा ।। रानी जू सुख पायो सुत जाय ।। बड़े गोप बधून की रानी हँसि हँसि लागत पाय । बैठी महरि गोद लिए ढोटा, आछी सेज बिछाय ।। बोलि लिए व्रजराज सबनि मिलि यह सुख देखो आय । जेई जेई बदन बदी तुम हमसों ते सब देहु चुकाय ।। ताते लेहु चौगनो हम पै कहत जाइ मुसकाइ । हमतो बहुत भए सुख पायो, चिरजीवो दोउ भाइ ।। श्री विट्ठल गिरधरन, खिलानो ये बाबा तुम माइ ।।

अंत—राग गंधार--जो सुख नैनन आज लह्यो । सो सुख मों पै मोरी सजनी, नाहिन जात कह्यो । हौं सखियन संग श्री वृन्दाबन बेचन जात दह्यौ ।। नंदकुमार सिलोने ढोटा आँचर धाइ गह्यो । बड़े नैन विसाल सखी री मों तन नैकु चह्यो ।। मृदु मुसकाई बानी हँसि ही कुँवार कह्यो । व्याकुल भई धीर नहिं आयो, आनन्द उँमगि बह्यो ।। श्री

विट्ठल गिरिधरन छबीलो मम उर पैठि रह्यो ॥ मिति माह बदि १० संवत् १८५० पोथी लेखक देवकरण ब्राह्मण श्री गोकुल जी मध्ये जो बाँचे ताको जय श्री कृष्ण ॥

विषय—(१) कृष्णजन्म के पद, पत्र १—१७ तक। (२) पालने, छठी, राधाअष्टमी की बधाई और दान आदि के पद, १८—१९। (३) रास, रूपचौदस, दीप मालिका, अन्नकूट, गुसाईं जी की बधाई और धमार सम्बन्धी गीत, २०—३७। (४) आचार्य जी की बधाई, मलार तथा नित्य पूजा अथवा ठाकुर सेवा के समयोचित गीत, पत्र ३८—५५ तक।

विशेष ज्ञातव्य—गीतों के संग्रहों में ऐसे बहुत से गीत मिलते हैं जिनमें दो प्रकार की छाप पाई जाती है। एक तो 'विट्ठल' की और दूसरी 'विट्ठल गिरिधरन' की। दोनों अलग अलग हैं। जितने गीतों में 'विट्ठल गिरिधरन' की छाप है, वे सब गंगाबाई के बनाये हुए हैं। ये श्री विट्ठलनाथ जी की शिष्या थीं। इनकी कथा "वैष्णवों की वार्ताओं" में आई है। ये जाति की क्षत्राणी महाबन में रहती थीं। इनकी कविता बड़ी मर्मस्पर्शिनी और सजीव है। मुझे तो इन्हें दूसरी मीरा कहने में कोई आपत्ति नहीं। उद्धृत कविता से मालूम हो जायगा कि इनकी कविता कितनी सरल और ललित है। प्रस्तुत संग्रह महत्त्वपूर्ण है। इसमें इन्हीं के गीत हैं। कितना अच्छा हो यदि इसकी नकल प्राप्त हो सके, पर जिसके पास संग्रह है वह महाशय बड़े ही अनुदार हैं। बड़ा उद्योग करने पर सिर्फ इसका विवरण लेने में सफल हुआ हूँ।

संख्या २५. कृष्ण मंगल, रचयिता—गंगादास, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—$६\frac{१}{२} \times ३\frac{३}{४}$ इन्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—५५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री महेश प्रसाद जी, ग्राम—रतिया, डा०—विसावर, जिला—मथुरा।

आदि—श्री राधा कृष्णाय नमः। प्रथम सुमरि गुरुदेव गणेस मनाइये। सारद कूँ सिरनाय कृष्ण गुन गाइये ॥ १ ॥ राजत तहँ घनस्याम वृंदावन रुचि रहे। मोर मुकुट सिर छत्र पिताम्बर काछिनी हे ॥ २ ॥ संग सखा नन्दलाल सुकुंजन क्रीडा करै। बैठि कदम्ब की डार चीर गोपिन की हरै ॥ ३ ॥ राषत वदन बिसाल स्याम अति सोहने। सुंदर लोल कपोल जगत प्रभु मोहने ।। ४ ।। राखत हिय वनमाल लाल रंग रुचि रहे। सुर नर मुनि धरि ध्यान संत जै जै करै ॥ ५ ॥ राषत काछिनि पीत वांसुरी कर धरे। नखपर गिरिवर धारि व्रज रक्षा करै ॥ ६ ॥ सुंदर राधे स्याम आनंद मंगल घने। घर घर गोपी ग्वाल रूप शोभा बने ॥ ७ ॥ राजत वाजू वंध खयल अति सोहने। हिय में मुक्तामाल जाल राधे मन मोहने ॥ ८ ॥ खेलत हैं नंदलाल ग्वाल संग साथ हे। घेरे जमुना घाट दान की वात हे ॥ ९ ॥ संग ग्वाल चरावत धेनु स्याम वन वन फिरत। तिलक विराजत भाल कुंडल झल मल करत ॥ १० ॥ करत हार श्रृंगार ओढे सिर चुँदरि भलि। संग सहेली ब्रजनारि राधे मधुवन चलि ॥ ११ ॥ जब बोलि वृजनारि राधिका यूं सुनिये। हे प्रभु हम तुमइ कहि गांव दान कैसो लिए ॥ १२ ॥ झगरत गोपी ग्वाल लाल तुम घर चलो ॥

बहुत करो उतपात जसोदा जी ढिग भलो ॥ १३ ॥ जब बोले नंदलाल कुँवर व्रज के सुधनी । सुंदर राधे स्याम आनंद मन में धनी ॥ १४ ॥ मधुवन मंडल गोप सखा मंगल करै । घर घर आनन्द होय वधायनि नंद घरे ॥ १५ ॥ निरखि स्याम को रूप मुनि जैं जै करै । यूं व्रजपति औतार ध्यान हिय में धरै ॥ १६ ॥ यह लीला अवतार रूप प्रभु धरिय । राम कृष्ण निज रूप हरी द्दग चाहिय ॥ १७ ॥ स्याम राम को रूप हृदय चित्त लाइये । कृष्ण भजन विन जनम अकारथ जानिये ॥ १८ ॥ लाड़िलिलाल को मंगल रूप गुन गाइये । हरषि निरषि "गंगादास" चरन चिलाइये ॥ १९ ॥ इति श्रीकृष्ण मंगल संपूरण समाप्तम् ॥
(पूर्ण प्रतिलिपि)

विषय—राधा कृष्ण की मधुर क्रीड़ा का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में रचनाकार ने अपना नाम तो दिया है, परन्तु रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया । लिपिकाल भी नहीं है ।

संख्या २६. हरिभक्ति प्रकास, रचयिता—गंगाराम पुरोहित 'गंग' (लिवाली ग्राम), कागज—देशी, पत्र—४०८, आकार—११ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७९९ वि०, लिपिकाल—सं० १८४७ वि०, प्राप्तिस्थान—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, दाता—पुजारी कृष्णदास, बिहारी जी का मन्दिर, स्थान—नसीठी, डा०—माँठ, जि०—मथुरा ।

आदि—श्री गणाधिपतये नमः ॥ श्री राधा रमणो जयति ॥ अथ हरिभक्ति प्रकास भाषा लिष्यते ॥ सोरठा ॥ जय जय जुगल किसोर । मंगल मय मंगल करन । परम रसिक सिर मौर । वृन्दा विपिन विहार निति ॥ १ ॥ छप्पै ॥ प्रथम बंदि गुरु चरन कमल सुभ करन सुभायक । दुतिय बन्दि गन ईस बिघन हरवर वरदायक ॥ तृतीय बंदि सरस्वतिय मात मो मति भल कीजै ॥ हरिजस रस रमग्यो अरथ अछिर अस पीजै ॥ श्रवन सुनत अति रति बढत गंग तनक उर आनिये ॥ भ्रम भर्म वर्म अग्यान तजि भक्ति सुपंथ पिछानिये ॥ २ ॥ × × × इह जिय जानि कृष्ण गुन गाऊं । है निसंक कवि संक न लाऊं ॥ गुरुपद पंकज रज सिरधरि कै । अभिवंदन संतन कौ करि कै ॥ ११ ॥ दोहा ॥ हरि प्रबोधिनी को प्रगट । भयो हरि भक्ति प्रकास ॥ सत्रह सै निन्यांनवै । गुर दिन कातिक मास ॥ १२ ॥ मथुरा ते पच्छिम दिसा । वरनत कोस पचास ॥ तहाँ पुनीत पचवार घर । विप्रन को वरवास ॥ १३ ॥ श्रीपति जु श्री जुत सदा । वसत लसत तिहि ग्राम ॥ यही तें सवठां कहत प्रगट लिवाली नाम ॥ १४ ॥ नदी करेली को जहाँ सुंदर सुखद प्रवाह । मंजन करि पातक कटत देषत वदनु उद्धार ॥ द्विज सनाह मोचन भयो हरिदासन को दास ॥ जैमिनि गोत्र सुकहनु तिहि दियौ हरिभक्त प्रकास ॥ १६ ॥ चक्र सुदरदस जु भये तापर परम कृपाल । कियो गंग जन आपनौ काटि कठिन जग जाल ॥ १७ ॥ प्रथमहिं वरनों विमल जस दस हरि के अवतार ॥ स्रवनन सुनि सुनि पतित वहु भए भवसागर पार ॥ १८ ॥

अंत—जहाँ इक मुनि निज तेज प्रकासी । जुलत अग्निवत मनु तप रासी ॥ ३० ॥ हरिपद पंकज ध्यान सदाहीं । जनुह दुतिय दिन का वंन मांही ॥ जिहि मुनि के सुभ दरसन करिकें । तृण जिमि पाप पुंज गए जरिकैं ॥ ३१ ॥ तुरत तुरंगम तजि नृप नंदन । मुनि पद

पंकज करि अभिवंदन ॥ दोउ कर जोरि जोरि ठाढौ भयौ । रिषि अशिर्वाद तिहिं दयो ॥३२॥ मधुर वचन कहि स्वागत कीन्हों । इक सुन्दर तृण आसन दीनो । सुनि निदेसलह बेठत भयौ । जनु संसार जन्य दुष गयो ॥३३॥ इति श्री हरिभक्त प्रकाशे सज्जन मनरंजन दरसन दुतिय कला ॥ २ ॥ विष्णुशर्मा उवाच ॥ सवैया ॥ नर गजराज जग कानन गहत तामैं अतिसै अगाध सरवर सोइ गेह है ॥ कंचन किलोल काम कथन कमल फूल फूलेही रहत कीच कामिनि सनेह है ॥ कपट सिवाल जाल पूरि परिवार ग्राह तृष्णाही तरंग तुंग तरल अछेह है । विषय तृषित होइ बूडिके मगन भये तासौं तिन काढ़न को गंग गुरु मेह है ॥१९॥ × × ॥दोहा॥ सिव सारद नारद निगम नेक न पावत पार । महामंद मतिगंग तिहिं बरनत कोन प्रकार ॥८३॥ × × सोरठा ॥ इह हरिभक्ति प्रकाश । इतौ सुनि गुनि मन में धरै ॥ लह बृन्दावन वास । जहाँ निरंतर सुष सदा ॥ ८७ ॥ इति श्री हरिभक्ति प्रकासे सज्जन मन रंजने बृंदावन प्रापते षोडस कला ॥ १६ ॥ गृंथ कर्ता प्रोहित गंगाराम जी तस्य पुत्र रांम कृष्ण जी तस्य पुत्र लिपिक्रत श्रीरांमसहर दुर्ग मध्य गृंथ समाप्तः लिषायतं महाराजि पुंडरीक जी श्री जगन्नाथ सुभ मस्तु श्री रस्तु संवत् १८४७ वैसाष शुक्ल १० सनिवासुरे श्री किशोरी स्मरण लेषक पाठकयो शुभं भूयात् श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री ।

विषय—सारी पुस्तक मैं सोलह अध्याय (कला) हैं जो इस प्रकार हैं:—१—प्रथम कला में लेखक ने मंगलाचरण, ग्रंथ परिचय, स्वपरिचय तथा ग्रंथ लिखने का संवत् और दशावतार वर्णन किया है । २—द्वितीय कला से कथा का आरंभ होता है जो निम्नलिखित प्रकार से है:—हिमालय के दक्षिण में एक रमणीक काया नगरी थी जिसमें जीवसेन नामका राजा राजकरता था । उसका दूसरा नाम चंद्रचूड़ था । उसकी सुमति नाम की पटरानी थी जिससे मनसेन नामका पुत्र हुआ जिसका दूसरा नाम हंसकीरति था । हंसकीरति (मनसेन) की संकल्पा-विकल्पा नाम की दो स्त्रियाँ थीं जिनका दूसरा नाम क्रमशः चंद्रप्रभा तथा चित्रलेखा था । एक समय नृप मनसेन शिकार खेलते समय एक हिरन के पीछे दौड़ पड़ा; किंतु हिरन उनको बहुत दूर ले गया । मनसेन अपने साथियों से बिछुड़ गया । निर्जन वन में आकर उसने देखा कि एक सुन्दर सरोवर है । उसके चारों ओर सुन्दर फलों से लदे पेड़ हैं । नाना प्रकार के फूल फूले हुए हैं । नाना प्रकार की पक्षियाँ कल्लोल कर रही हैं । पशु-पक्षियों में कोई वैर नहीं है । सब निर्भय होकर इधर उधर घूम रहे हैं । आगे बढ़कर राजा मनसेन ने एक ऋषि को देखा जो अपने तेज से तप्त हो रहा था । उसने नृप मनसेन की अभ्यर्थना करके उसको अपने पास बैठाया । (३) तृतीय कला में आपस में बातचीत करने के बाद मनसेन की धर्म चर्चा सुनने की इच्छा हुई । ऋषि ने जिनका नाम विष्णुशर्मा था उनको वैराग्य का उपदेश किया । (४) चतुर्थ कला में कर्म और भक्ति का भेद बताया गया है । (५) पंचम कला में भक्ति-ज्ञान का भेद बताया गया है । (६) षष्ठम कला में द्वैताद्वैत का तथा जीव और ईश्वर का भिन्न-भिन्न दृष्टि से विचार किया गया है । (७) सप्तम कला में जीव का ईश्वर के वशीभूत होने का विचार किया गया है । पंचकोष और षड्दर्शन का मत कहा गया है । (८) अष्टम कला में मोह निसा का सादृश्य तम रूप से निभाया

गया है। जिसको विवेकी लोग ज्ञानचक्षु से देखकर अपना असली स्वरूप पहचानते हैं। (९) नवम कला में शुद्ध भक्ति ही प्रधान है, इसका वर्णन किया गया है। (१०) दशम कला में स्याम स्वरूप श्री कृष्ण चंद्र की बाल लीला का वर्णन किया गया है। (११) एकादश कला में शुद्ध भक्ति ही प्रधान है, इसका वर्णन किया गया है। (१२) द्वादश कला में जाति-ऐश्वर्य का तथा श्री रामचन्द्र जी का वर्णन किया गया है। (१३) त्रयोदश कला में कलिकाल में हरि का नाम ही आधार मात्र है, इस विषय में गीता के मत को उद्धृत करके विचार किया गया है। (१४) चतुर्दश कला में काल प्रमाण, जुग उत्पत्ति तथा युगधर्म वर्णन किया गया है। (१५) पंचदश कला में मनसेन ने अपनी नारियों को उपदेश किया है। (१६) षोडश कला में मनसेन अपने माता-पिता को उपदेश करता है।

विशेष ज्ञातव्य—हरिभक्ति प्रकाश एक बृहद् ग्रंथ है। यह सभा के लिये प्राप्त कर लिया गया है। ग्रंथ स्वामी का कहना है, "अगर यह पुस्तक छप जावे तो ज्ञानपिपासु लोगों के अत्यन्त काम की होगी और साथ ही इससे सभा को भी आर्थिक लाभ होगा। पुस्तक की शायद हिंदी संसार में यही एक प्रति है। इस दृष्टि से भी इसको छपाना लाभदायक है। सभा एक उच्चकोटि की संस्था है इसलिये यह पुस्तक मैंने उसको अर्पण कर दी है जिससे बुजुर्गों की अलभ्य कृतियों का संरक्षण हो सके।"

संख्या २७. आरती, रचयिता—गरीबदास, कागज - देशी, पत्र—३, आकार—१०१/२ × ६३/४ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—५०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठाकुर मुल्लू सिंह जी, स्थान—कुड़ाखर, डा०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ गरीबदास जी की आरती लिष्यते ॥ अदल आरति अदलि समोई। निरभै पदमैं मिलना होई ॥ दिल का दीप पवन की वाती। चित का चंदन पाँचू पाती ॥ तत्त्व का तिलक ध्यान की धोती। मन की माला अजपा जोती ॥ नूर के दीप नूर के चौंरा, नूर के पौहप नूर के भोरा ॥ नूर की झाँझि नूर की झालरि। नूर के सष नूर की टालरि। नूर की सौंज नूर के सेवा। नूर के सेवग नूर के देवा ॥ आदि पुरुष अदलि अनुरागी। सुनि संपट मैं सेवा लागी। षोजो कँवल सुरति की डोरी। अगर दीप मै षेलै होरी ॥ निरभै पद में निरत रस मानी। दास गरीबदरस पर बानी ॥१॥

अंत—ऐसी आरति अपरंपारा। थाके ब्रह्मा वेद उचारा ॥ अनन्त कोटि जाके सिव ध्यानी। ब्रह्मा सष वेद पढ़ै वानी ॥ इन्द्र अनंत मेघ रस माला। सवद अतीत ब्रह्म नहिं वारा ॥ चंद सूर जासे अनंत चिरागा। सवद अतीत अजरंग वारा ॥ सात समुद्र जाके अंजन नैना, सवद अतीत अजरंग वैना ॥ अनंत कोटि जाकैं जै वाजै। पूरन ब्रह्मा असपुर छाजै ॥ तीस कोटि सीता सी चेरी। सपतलल राधा दे फेरी ॥ जाकैं अरध रूम परी सकाल पसारा। ऐसा पूरन ब्रह्म हमारा ॥ दास गरीब कहै नर लोई। येह पद चीनै विरला कोई ॥ इति श्री गरीबदास जी की ॥ आरती संपूरण ॥

विषय—ब्रह्म की महिमा का वर्णन करते हुए आरती की गई है।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत ग्रंथ साधु गरीबदास की रचना है। रचनाकाल लिपिकाल इसमें नहीं दिया गया है। इस छोटे से ग्रन्थ के केवल आठ ही पदों में संक्षिप्त रीति से ब्रह्म की महत्ता का वर्णन किया है और समस्त देवी देवताओं से ब्रह्म की पृथकता का दिग्दर्शन कराया है।

संख्या २८. व्रतचर्य्या की भाषा (वल्लभाष्टक की टीका), रचयिता—गोकुलनाथ (गोकुल), कागज—देशी, पत्र—७५, आकार—९ × ६३/४ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—२११४, पूर्ण, रूप—प्राचीन जीर्ण, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—किशोरीलाल पुरोहित, पुरानी बस्ती—जतीपुरा, मथुरा।

आदि—श्री गोपीवल्लभाय नमः श्लोक कुमारीणां राधा वर मिलन वैया कर्णाय रमा समास्यं ॥ स्मर स्मित लवजिता शेष सुद्रशां अलं तद्भगोक्ताय यद्रुति मधुरो माधव वरो वसो जातो लोकत्रय युवति मृग्य सहचरी ॥ कुमारी काया को श्री राधा जू के वर को मिलने की सुनि के रमा जो लक्ष्मी जी हू ॥ समा मास्यं अभिलाखा ठाकुर की एक लव सौन्दर्यता अरु मन्द हास्य ने जीते हैं ॥ असेश सुन्दरी ॥ बहुत नाइका श्रेष्ठ जीते हैं ॥ उन कुमारि कान के परम महाभाग्य उक्त अलं पूरण कहाँ लो कहिए ॥ जाते अत्यन्त मधुरं ॥ माधव श्रेष्ठ जो लक्ष्मीपति प्यारो सो वर होइ करि ताके वस होत भयो ॥ जाको त्रिलोक की युवती स्त्री खोजत फिरत हैं ॥ और पावत नाहीं ॥ ताकूँ वर करि पाए हैं ॥ सहचरी सखी ॥

अंत—पितृ पादाब्ज कृपया विवृत्तंवल्लभाष्टकम् कृपयुन्तु सदाचार्य्या भूत्ये श्री वल्लभे मपि। इति श्री पितृ पादाब्ज परागा स्तु चेतसा ॥ श्री वल्लभेन विवृत मखिलं वल्लभाष्टकं ॥ याको अर्थं ॥ श्री गोकुलनाथ कहत हैं श्री गुसाईं जी के चरण कमल की जो कृपा ताकरि श्री वल्लभाष्टक की टीका कियो सो श्री गुसाईं जी के चरण कमल को जो पराग तासू रंग्यो हे चित जाको एसो होइकें यह टीका कियो। ताके यह टीका कियो ॥ ताते यह टीका भली भाँति पूर्ण भई ॥ यो श्री गोकुलनाथ जी कहत हैं ॥ इति श्री मत्प्रभु चरणैक शरण श्री वल्लभाष्टक विवर्णम् सम्पूर्ण ॥

विषय—भगवान की व्रतचर्य्या किस प्रकार करनी चाहिए। इस संबंध में स्वयं वल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय के आध्यात्मिक तत्वों का निरूपण करते हुए आठ श्लोकों का एक अष्टक बनाया है। उसीपर गोसाईं गोकुलनाथ जी ने विस्तार पूर्वक यह भाषा टीका की है।

संख्या २९ ए. सिक्षापत्र टीका, रचयिता—गोपेश्वर, कागज—मूँजी, पत्र—२४, आकार ७ × ५ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)--४५१, खंडित, रूप—प्राचीन, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--अमोलक राम जी, स्थान--द्योसेरस, डा०--गोबर्धन, मथुरा।

आदि--श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ श्री हरीराम जी कृत सिक्षा पत्र टीका श्री गोपेश्वर जी कृत भासा में लिख्यते ॥ एक समे श्री हरीराय जु परदेस कुँ पधारे और

श्री गोपेश्वर जी सेवा हते ।। सो श्री हरीराय जी बड़े भाई ।। और श्री गोपेश्वर जी छोटे भाई ।। सो श्री गोपेश्वर जी की बहु अनुकूल सेवा में तत्पर ।। भगवद् भाव सब लीत । सो बहुजी महाराज ने लीला विस्तारे पहेले ।। श्री हरीराज जी दोई महीने पहिले ।। जानी ।। ।। तब ।। श्री हरिराय जी मन में विचारे जो श्री गोपेश्वर जी नी प्रयोग करी के बहुत दुख पावेंगे । ताते कछु सिक्षक पत्र पहले ते । पठायो चाहि । श्री आचार्य जी के कृपा ते ।। जो कोई सिक्षा पत्र वाचेंगे । ताके सकल दुखनि वर्त होई जे ।। हृदे में भगवद होईगो ।।

अंत—२१ या वाटिका ।। अव ऊपर कहत हैं। जे से भाव पूर्वक श्री कृष्ण, जू ।। समर्पतहु । तेसे ही भाव सहीत । भगवदय कुँ ।। धन्यग्न समर्पे ।। ताहां कोई कहें ।। जे भगवान की सेवा तो अवस्य कहें ।। सो करी चाहिए ।। और भगवदीय की ।। सेवा किये ते काहा होत है । या भाँती कोऊ कहे ।। ताहाँ कहत है ।। जो भगवदीय की सेवा करी प्रश्न करीए सन्तुष्ट करीए ।। तो भगवान सन्तुष्ट होई ।। जो भगवदीय सन्तुष्ट न होई तो ।। भगवान सन्तुष्ट न होई ।। कोही कहिकें पूर्व पक्ष न करे ।। जो तदीय सन्तुष्ट होई ।। तो भगवान जी निश्चै सन्तुष्ट होई ।। ताहाँ कोई कहे ।। जो तदीय सन्तुष्ट न होई ।। आपने वने सो ।। सेवा कर ।। और वैष्णव कठीन आज्ञा करे ।। सो आपने बेन नाहीं तो वैष्णव सन्तुष्ट न होई ।। तो भगवान सन्तुष्ट न होई ।। या भाँति कोऊ कहे ।। × × ×

विषय—वैष्णवों के कल्याण के निमित्त हरिराय जी के उपदेश इसमें वर्णित हैं।

संख्या २९ बी. सिक्षापत्र टीका, रचयिता—गोपेश्वर, कागज - बाँसी, पत्र—२७३, आकार—१४ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—७६९०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—वि० १९१९ = सन् १८६२ ई० प्राप्तिस्थान—बिहारी लाल ब्राह्मण, नई गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ श्री हरिराय जी कृत सिक्षा पत्र ताकी टीका भाषा ।। संपूर्ण लिख्यते ।। अब एक समें श्री हरिराय जी परदेश पधारे हते । और गोपेश्वर जी घर सेवा में हते । श्री हरिराय जी बड़े भाई श्री गोपेश्वर जी छोटे भाई सो श्री गोपेश्वर जी के बहूँ जी बहोत अनुकूल सेवा में तत्पर । भगवद् भाव संवलित हते सो बहू जी महाराज तो लीला विस्तारे । तब श्री गोस्वर जी को सेवा संवाधर्म वहोत ही विरह भयो सो दिन तीन लों भोजन नाहीं किये । सो बहू जी के लीला विस्तारे प्रथम ही श्री हरिराय जी मन में विचारे जो श्री गोपेश्वर जी विप्रयोग करिकें वोहोत ही दुःख पावेंगे सो ताते कछू सिक्षा के पत्र पहिले ते पठाए चाहिए । सो श्री आचार्य जी श्री गुसाईं जी की कृपा तें जो कोई सिक्षापत्र बाँचेगे सो ताके तो सकल दुःख निवर्त होयगे । जो हृदय में भगवद् भाव होयगो ।

अंत—सत्संग करिकें जैसें ईंधन विना अग्नि बूझि जात है । लौकिक ते भाव सांतता के पद पावे हैं । जो प्रभून के दासन की सदा आरति राखनी । लौकिक विखें पर आसक्त न होयवे देय वाकों अपनों जानें यह अंगीकार को लक्षण हैं । सो याही तें श्री

आचार्य्य जी लिखे हैं। जो लोके स्वास्थ्य तथा वेदे हरि स्तुति न करिष्यति। जो श्री प्रभु जी तो दयाल है। अपने भक्तन की चिन्ता करैं सो तब यह जीव तो वृथा चिन्ता करै जो मूर्ष ही है। तैसें श्री आचार्य जी के सेवकन हूँ को मेरी सिक्षा लिखे रहनो। सो ताते प्रभु तो सर्व कार्य सिद्ध करैंगे। सो ताते सर्व कल्यान ही करेंगे। जो उनही के भरोसे रहनो यह सिद्धांत है सो तो सर्वथा जानो होगे। इति श्री हरिराय जी कृत सिक्षा पत्र इकतालीस संपूर्ण ॥ दसखत सनोढ़िया ब्राह्मण सेटू को वाचें सुने ताको जैसी कृष्ण ठिकानो राजा ठाकुर श्री नवनीत प्रिया जी की ड्योढ़ी आगे। मिती माह सुदी १५ संवत १९१९।

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टि मार्ग की विवेचना की गई है। उसके मुख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन भागवत आदि ग्रंथों के उद्धरण और उनका स्पष्टीकरण करके किया गया है।

संख्या २९ सी. हरिराय कृत शिक्षापत्र की टीका, रचयिता—गोपेश्वर, कागज—मूँजा, पत्र—२०३, आकार—१२½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—५२७५, पूर्ण, रूप—प्राचीन सजिल्द, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—जमना प्रसाद ब्राह्मण इमलीवाले, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ श्री हरिराय जी कृत श्री सिक्षापत्र ताकी टीका गोस्वामी श्री गोपेश्वर जी कृत सो भाषा में लिख्यते ॥ अेक समै हरिराय जी परदेश पधारे हुते ॥ अरू श्री गोपेश्वर जी अपने घर सेवा में हुते। सो श्री हरिराय जी तो बड़े भाई अरु श्री गोपेश्वर जो तो छोटे भाई। गोपेश्वर जी के बहू जी सो तो बहुत ही अनुकूल सो तो सेवा में तत्पर श्री भगवद् भाव सब लीन हुते। सो श्री बहु जी महाराज ने लीला बिस्तारी तब श्री गोपेश्वर जी महाराज को सेवा सम्बन्धी अर्थ को बहुत ही विरह भयो। सो तो दीन तीन लो भोजन नाहीं कीयो। सो श्री बहूजी महाराज ने लीला विस्तार तें प्रथम ही। श्री हरिराय जी महाराज ने मन में विचारे जो श्री गोपेश्वर जी विप्रयोग करिकें बहुत दुःख पावेंगे। ताते कछुक तो शिक्षा पत्र सो तो पहिले ते पठाये चाहिते सो तो श्री आचार्य जी महाप्रभु जी की कृपा तें जो कोई यह शिक्षा पत्र बाँचेगो। ताके तो सकल दोष निवर्त्त होंयगें। यह विचार कें सिगरे शास्त्र पुराण श्री भागवत सर्व को सिद्धान्त युक्त सो सिक्षापत्र लिखिके अेपन्न नित्य श्री हरिराय जी अपुने मनुष्य के साथ श्री गोपेश्वर जी को पठवातें। सो तो श्री गोपेश्वर जी महाराज अपुनो बैठक में अकगवाखे में धरि राखते। वाँचते नहिं। यो जानते जो बड़े भाई को स्नेह हमारे परि बहुत है।

अंत—॥ सेव्यः प्रभू स्ततो भद्र मखिलं भाव सर्वथा ॥ याको अर्थ ॥ अब श्री हरिराय जी कहत हैं। जो पुष्टि मारग में अनेक धर्म हैं। ताते अधिकारी के भेद करि जप पाठ गुन गान वार्ता प्रभू कों आश्रय श्रवन तिन सबन में मुष्य प्रभु की सेवा है। तामें प्रभु कों तत्सुखत्व है। सेवा बिना मुख्य फल कों अधिकार न होय। ताते यह मन में जाननो। जो कोई प्रभू की सेवा करत हैं तिनको सदा ही कल्याण है। तिनकों सकल कार्य पुष्टि मारग को फल होनहार है। यह सर्वोपरि निश्चय सिद्धान्त सिद्ध भयो। अब श्री गोपेश्वर जी

कहत हैं जो। धन्य हरी जीवनदास तिहारें हृदय में श्री हरिराय जी आइ मेरो दुःख दूरी कीए। और यह शिक्षा पत्र की टीका मेरी क्रती मत जानियो। मेरे हृदे में प्रतिष्ठ होई श्री हरिराय जी कीए हैं। ताते श्री हरिराय जी हृद में श्री आचार्य जी महाप्रभु श्री गुसांई जी निरन्तर विराजमान हैं। तातें यह भाव प्रगटयो हैं। सो तुम परम चतुर हैं। अत्यन्त गोप्य यह रत्न राखियो। काहू दिखायवें योग्य नाहीं हैं। इति श्री द्विजेन्द्र तैलंग कुलतिलक दिवाकर श्री वल्लभाचार्य विशोत्पन्न श्रीभगवच्चरण सरोरुह चंचलीकायमान श्री हरिदासो दितेन एकचत्वारिंस शिक्षा पत्रिकायां तद् भावानुसारेण चरणार्विंद रसिक श्री गोपेश्वर जी कृत एक चत्वारिंशतिम शिक्षा पत्रिकायां भाषा विवर्णं समाप्तिम् गमत्। समाप्तोयं ग्रंथ। ग्रंथ संख्या ८५२२ तामे श्री हरिराय जी कृतं मूल श्लोक संख्या ५२२। श्री गोपेश्वर जी कृत टीका संख्या ८०००। श्री कृष्णाय नमः ॥

विषय—वैष्णव को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए, उसकी दिनचर्या क्या होनी चाहिए, घर में किस प्रकार नियम पूर्वक ठाकुर सेवा होनी चाहिए आदि विषयों का अपने शिक्षापत्रों में श्री हरिराय जी ने प्रतिपादन किया है। इन्हीं की सविस्तृत टीका-टिप्पणी श्री गोपेश्वर जी ने की है। पुष्टिमार्ग (वल्लभ सम्प्रदाय) के सिद्धांत और नियम आदि विषयों का इतना अच्छा स्पष्टीकरण शायद अन्य किसी ग्रंथ में नहीं है। हरिराय जी के जीवन की कई शिक्षाप्रद एवं भक्तिपूर्ण घटनाओं का भी इसमें वर्णन है।

विशेष ज्ञातव्य—अन्वेषण में हरिराय जी के शिक्षापत्र नामक ग्रंथ की कई प्रतियाँ गोकुल तथा उसके आस पास के गाँवों में मिलती हैं। वल्लभ कुल के वैष्णव इस ग्रंथ का मनुस्मृति के समान आदर करते हैं। इसकी श्रीगोपेश्वर जी ने ब्रजभाषा गद्य में टीका की। मुझे बतलाया गया है कि श्री गोपेश्वर जी गोकुल के निवासी थे। इस भाष्य के देखने से प्रतीत होता है कि ये बड़े धुरन्धर विद्वान थे। हिन्दी और संस्कृत खूब जानते थे।

संख्या ३२ ए. अष्टांग जोग साधन विधि, रचयिता—गोरखनाथ, कागज—बाँसी, पत्र - ३१, आकार—८½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—५५४, पूर्ण, रूप—नवीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिं० वि० वि० काशी।

आदि—श्री गणेशाय नमः अथ गोरख बोध सत पराक्रम भाषा अष्टांग जोग साधन विधि लिख्यते ॥ अष्टांग जोग कोई साधे सो पूरण जोगेश्वर होई। सिद्ध जोगी कहावै परब्रह्म सूं मिलि रहै। इसकूं जै साधै तो ततकाल परमपद कूं मिले। परम सक्ती परमगुरू ब्रह्मा विष्णु महेसः सपत रिष देवता इन सूं ध्यान मैं मिला रहै। ऐसा परमपद पावै। तवै विग्रह होई जबै गुरू कूं नमस्कार कीया करै। सदादेही का काल वचावने कूं प्रथम मूल मुद्रा कूं साधै सो जोगेश्वर मन की कलपना मिटै ब्रह्म कलपताई काल सौं आपणी देही बचावै। जोगी कूं यह ग्यान मोछिदाता है। गुरू मछिन्द्रनाथ जी नै भी ये ही जोग साधो है। अवरनवनाथ जी मेरा पंथ चवरासी सिद्धो अनंत कोटि सिद्ध जोगेश्वरों ने यह अष्टांग योग साधकर काल सूं देही वचावै। अमृत ग्यान ऐसे अधिकारी भये हैं। जोगेश्वर ऐसो

नर हैं । मन कूं प्रसन्न राखि जोगेश्वर मन में इच्छा करे सोई मनों कोमना सिद्धि होई । परमात्मा की दया थी कि । अवर दूजा जोग सास्त्र ये भी ये ही कह्या है याकैं साधै तीन सक्ती फल होय । याकै साधे मैं तीन सक्ती बसे हैं सो कौन सक्ती बसे हैं । ब्रह्मा, ब्रह्माणी, विसन, विसनाणी रुद्र रुद्राणी ॥ ये तीन सक्ती बसे हैं । सो कौन सक्ती बसे हैं । ये तीन सक्ती बसे हैं ए तीन फल प्राप्ति होई जो कोई साधै तिनकूं महत मुकति कूं आवै ॥ ईं देही के सरब रोग जाई जरामरणादिक जोग साधन ऐसा है । कोई साधे सोई जोगेश्वर कहावै जोग का वेता कहावै ।

अंत—चैतन्य पुरुष कूं देखते हैं । प्रसन्न रहते हैं । आनन्द करते हैं । श्री गरू गोरखनाथ जी कृपा करि कह्यों है । जो इस सास्त्र कौ पाठ करतौ इस साख्र समान अवर साख्र का फल नाहीं । यह शास्त्र महामोक्ष का देणदार है । मोह नाम अन्धकार । तिसकै विषै पडे हैं । मनुष्य मोष्य लक्ष मार्ग कूं देषते नाहीं । तिसकूं देषण कै ताईं । श्री गुरु गोरषनाथ जी ग्रन्थ कीया है । ग्रंथ गोरष सतकोटि को दीपक ज्योति ॥ सिषरूप नाथ नवाणी जोगेश्वर संस्कृत कौ प्राकृत कीयौ भाषा अनभूति कृत जोग अष्टांग सूक्ष्मबदे । श्लोक— सु शब्द गोरष सतं सुभं मष्टांग साधनं । सारं जोग शास्त्रोयं पारंयरमय ध्यनं ॥१ ॥ ६७॥ इति श्री सतगुरु गोरषनाथ जी विरचित गोरसमंत जोग शास्त्र धर्माविधि साख्र संपूर्णम् ॥

विषय—योग के अष्टांगों—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि, षष्टचक्र आदि का सांगोपांग वर्णन । [प्रस्तुत भाषा कर्त्ता सिष रूपनाथ नवाणी विदित होता है]

संख्या ३० बी. जोग मंजरी, रचयिता—गोरखनाथ, कागज—बाँसी, पत्र—५४, आकार—८½ × ६ इन्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२५५, पूर्ण, रूप—नया, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हि० वि० वि० काशी ।

आदि—अथ जोग मंजरी लिष्यते ॥ ब्रह्मानन्द परम सुषदं केवलं ज्ञान मुर्तिदं । खातीतं गगन सहषं तत्व मस्यादि लक्षम । एकं नित्यं विमलम चक्रालं सर्वछोके भूतं । भावातीतं त्रिगुण रहितं सगुत्वांनमामी ॥ १ ॥ श्रीगुर प्रमानं देव देस्वा नंद विग्रहं । यस्व प्रसंग मात्रेण सर्व पापै प्रमुच्यते ॥ २ ॥ अतर निश्चिलिता त्मदिष कलिका स्वाधरं वदादिनिर्यो । योगी युग कलर काल कलरना तत्वं चयोगीयते ॥ ३ ॥ ज्ञानामोद महोदधि समभय प्राधीदि नाथ स्वयं । वक्ताव्यक्त गणाधिकत्वं मनिसं श्री मीन नाथ भजै ॥ ४ ॥ गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरूदेव महेश्वरं ॥ गुरुदेव परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुभ्यो नमो ॥ ५ ॥ ॥ चौ० ॥ ॐ प्रमम धरूं गुरू को ध्याना । अध्यातम उर उपजै ज्ञाना ॥ हृदय कवल मैं होय प्रगासा । गुरु समरथ पूजै सब आसा ॥ १ ॥ योग साख्र है अगम अपारा । सर्बं सिद्धांमथि काटरो सारा ॥ हठ प्रदीप का ताकौ नाम । योगी जन के पूरन काम ॥ २ ॥

अंत—॥ श्री गुरुवाच ॥ प्रथम विघन देह का भाई । जे तोकौं हम कहे सुनाई ॥ जोग पंथ मैं जो कोई आवै । ताकौ मनसा बहौत सतावै ॥ वैरी काम क्रोध मद उबरी ॥ मात अपमान लोभ की लहरी ॥ षुध्या त्रिषा निंदा दहे । इन सों जोगी डरता रहे ॥ यह

जिह्वा इन्द्री दौ निरधार । सब इन्द्री मेरा सरदार ॥ इनकौं जीतै जोगी जेही । जाकै वसि रहा वैदेही ॥ ३ ॥ कीया जीति ध्यान चित लावै । ताकै सिद्धि विघन कौं आवै ॥ भाँति भाँति कै लोभ दिषाई । जोगी कौ मन देह बिचलाई ॥ इति श्री गोरष जोग मंजरी संपूर्णम्॥

विषय—योग का ग्रंथ है जिसमें सब आसनों और मुद्राओं का सांगोपांग वर्णन है।

संख्या ३१. उत्सवावली, रचयिता—गोविंद रसिक, अलिरसिक गोविंद (दासानुदास गोविंद), कागज—देशी, पत्र—६३, आकार—१३ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५३६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य और पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१९४० वि०, प्राप्तिस्थान—पं० प्यारेलाल जी, ग्राम—नीवगाँव, डा०—आयराखेड़ा, जि०—मथुरा।

आदि—श्री राधारमणो जयति ॥ अथ उत्सावावली लिष्यते ॥ श्री कृष्ण कृष्ण चैतन्य स सनातन रूपक ॥ गोपाल रघुनाथस व्रज श्री जीव पाहिमां ॥ १ ॥ सोरठा ॥ वंदौ सचीकुमार श्री चैतन्य दया निकर ॥ प्रियाभाव उरधारि प्रगटै नदीया नगर में ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ बंदौं नित्यानंद प्रभु संकर्षण अवतार । श्री अद्वैत महेश जू, भक्त वृंद सुषसार ॥ १ ॥ सोरठा—अभिनव जलधर तडिताम्बर सौं लसित उर । गति त्रिभंग मुष वेणु बंदौं राधारमणवर ॥ ३ ॥ वंदौ साग्रजरूप जीव भट गोपाल प्रभु । रघुनाथ भट्टरस कूप दास रघु देहु पादरज ॥ ४ ॥ पहले नर इहलोक में गर्भवास दस माह । सोणित सुक्र दोऊन के मिल कै भयौ प्रकास ॥ ६ ॥ एक रात्रि में कलि लहे दूजै वुद वुद जान । कर्कन्धु सम दशेदिन मास में मास समान ॥ ७ ॥ द्वितियेमास में आकृति सत्र तृतिय छिद्र संचार । अस्थि चतुर्थे पंच षट् कुक्षिभ्रमत वहुवार ॥ ८ ॥

अंत—॥ दोहा ॥ श्री चंद्रमन के सुत भये भक्त लाल है नाम । पंडित भक्त सुसीलता गुण भूपित रस के धाम ॥ १ ॥ सोमम तात कहा मही तिनकौ दासनुदास । बंदौं वारिन इव रचन तास कृपा की आस ॥ २ ॥ पतित छुद्रमति जीव में नही शास्त्र कौ ज्ञान । कियो ग्रंथ विस्तार यो गौर कृपा वलजान ॥ ३ ॥ सोरठा ॥ वंदौ श्री गुरुदेव सची सुन राधा रमण । गोविंद कृत उत्सावळी यह पेव व्रज वृन्दावन रवि सुता ॥ ४ ॥ राधारमन चरन वारिज कौ मन मैं धारिकै ध्यान । गोविंद कृत भई अघ अवसान ॥ ५ ॥ ॥ श्लोक ॥ गोपाल रूप सोभाद धदपि रघुनाथ भाव विस्तारो । तुस्यतु सनातनामा अदः उत्सवावली ग्रंथे ॥ ६ ॥ इति श्री कलियुग पावनावतारस्य संप्रदास्य दासानुदास कृत कृति नाम नमोदाय उत्सवावली समंन विधि कथनं नाम नवमदल ॥ ९ ॥ संपूर्णम् संवत् १९४० फालगुणे

विषय—१—शिष्य लक्षण, गुरुलक्षण, मंत्र स्वीकरण, वार निर्णय आदि,

	पत्र	१—२ तक।
२—साधन प्रकरण प्रथम दल,	,,	२—५ तक।
३—भक्ति लक्षण, द्वितीय दल,	,,	५—७ तक।
४—नित्य कृत्य प्रकरण तृतीय दल,	,,	७—१२ तक।

विशेष ज्ञातव्य—यह एक वृहद्ग्रंथ है जिसमें वैष्णव धर्म के विशेषतः चैतन्य प्रभु के शिष्य परंपरा में होनेवाले धर्म-कृत्य एवं उत्सव तथा गुरु शिष्य पहिचान, भक्ति, पूजा, जप, तप, ध्यान, पर्व, मास, मूर्ती और उसकी पूजा-अर्चना आदि के महत्व पर विचार किया गया है। इस ग्रंथ के अन्त में चैतन्य महाप्रभु के तथा उनसे आगे के शिष्यों का भी जीवन वृत्त संक्षेप में दिया है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में रचनाकाल नहीं दिया है।

संख्या ३२ ए. अन्तकरण प्रबोध, रचयिता—गुसाईं जी (भाषाकार), कागज—बाँसी, पत्र—१०, आकार—११ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—४११, पूर्ण, रूप—प्राचीन (खुलेपत्र), गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रमनलालजी, श्री नाथ जी का मन्दिर, पो०—राधाकुण्ड, मथुरा।

आदि—अथ अन्तकरण प्रबोध की टीका लिख्यते। श्री पूर्ण पुरुषोत्तम की आज्ञा ते श्री वल्लभाचार्य जी प्रगट होइबें पुष्टिमार्ग प्रगट किए। तामे अनेक जीवन को उद्धार कीये॥ ओर व्यास सूत्र को अर्थ प्रगट करिवे को निबन्ध श्री सुबोधिनी तो पूर्ण होन न पाई॥ सो तो स्कंध तीन ही की भई॥ तव श्री पूर्ण पुरुषोत्तम ने विचारी जो इन बिना हमारी लीला तो न होइ॥ ताही तें इनकों आज्ञा न दीनें॥ जो तुम भूतल विषै हमारी अज्ञाते वर्ष वावन ताईं तो विराजे॥ सो भक्ति मार्ग मारग विस्तार करिवे की आज्ञा देहु॥ ओर तुम तो वेगि ही मेरे निकट आवो॥ या भाँति सों जब श्रीकृष्ण जी ने अज्ञा दीनी॥ तब श्री आचार्य जी महा प्रभून ने अपने अन्तकरण में विचार कीयो जो श्री भगवान ने तो अपने पास आइबे की या भाँति सो अज्ञा दीनी॥ परि में तो भक्ति मार्ग प्रगट कीयो॥ ता विषें ओर कार्य तो सब सम्पूर्ण कीए॥

अंत—अब या ग्रन्थ की समाप्ति कहत हें॥ श्लोक॥ इति श्री कृष्णदासस्य वल्लभस्य हित वच॥ चितं प्रति यदाकर्ण भक्तो निश्चिन्त तां व्रजेत्॥ याको अर्थ॥ या रीति सों करिकें श्री कृष्ण के परम प्रिय वे दास भक्ति को प्राप्ति भए॥ ऐसे जो श्री वल्लभाचार्य जी तिनके अन्तकरण प्रति वचन जानिए॥ इन वचन को जो भक्त विचार करें॥ तब श्री कृष्ण जी वाकों श्री आचार्य जी महाप्रभून को सेवक करिके जानें॥ यह लोक और परलोक को सकल मनोरथ पूरन करे॥ यामे सन्देह न करनो॥ इति श्री वल्लभाचार्य्य विरचितं अन्तकरण प्रबोध ग्रंथ ताकी टीका श्री गुसाईं जी कृत ताकी भाषा सम्पूर्णम्॥

विषय—१—श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को भागवत की सुबोधिनी टीका संस्कृत में करने की भगवदीय प्रेरणा। २—माया से आवृत जीव को भक्ति के लिए प्रबोध। ३—

भक्ति विषयक प्रबोध के लिए पिता-पुत्र, मित्र-मित्र और पति-पत्नी के प्रेम के दृष्टान्त। ४—ब्रजदेश का प्रेम। ५—भक्ति सम्बन्धी और बहुत से उपदेश।

विशेष ज्ञातव्य—अन्तःकरण प्रबोध मूल संस्कृत में है। गोसाईं जी ने इसकी भाषा की है।

संख्या ३२ बी. भक्ति वर्द्धिनी, रचयिता—श्री गुसाईं जी (गोकुल), कागज—मूँजी, पत्र—३६, आकार—१० × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—कुल्लन चौधरी, स्थान—अन्योर, डा०—जतीपुरा, मथुरा।

आदि—अथ भक्ति वर्द्धिनी ग्रन्थ लिख्यते ॥ अब श्री वल्लभाचार्य जी महाप्रभु पुष्टि मारग प्रगट करिवें को आपु भूतल में पधारे हैं ॥ सो अनेक ग्रंथन करि भक्त मारग की रीति बताए ॥ ओर जा प्रकार भक्ति बाढ़े ॥ भाव भक्ति करिकें ॥ श्री ठाकुर जी की प्राप्ति होइ यह उपाइ काहू ग्रंथन में बताए नाहीं ॥ याई ते अपने भक्तन पर कृपा अनुग्रह करिकैं भक्त वर्द्धिनी कोऊ पाइ निरूपन करत हैं ॥ तहाँ प्रथम यथा भक्ति प्रवृधास्यात तथो पायो निरुप्यते ॥ वीज भावे दृढ़े तुस्या त्यागाश्रवण कीर्तनात् ॥ जा रीत करि श्री आचार्य जी महाप्रभू करि प्रगटित जो भक्ति मारग याकी वृद्धि होइ ॥ सो उपाइ आपु निरूपन करत हैं ॥ वीज भाय को अर्थ जो जवते यह जीव श्री आचार्य जी महाप्रभून की सरनागति भयो ॥ सेवा के विषें रुचि उपजी ॥ यासो वीज भाव कहिए ॥ सो वीज भाव दृढ़ होइ ॥ तब यह अपने ग्रह को परित्याग करे ॥ ओर श्री ठाकुर जी को स्थल हे स्थापना हे ॥ जैसें श्री गोवर्द्धननाथ जी विराजत हैं। तथा श्री वृन्दाबन हें ॥ श्री मथुरा हे ऐसे अस्थलन विषे रहे ॥ और श्री भगवान की सेवा श्री भागवत् को श्रवण कीर्तन करे ॥ तब श्री कृष्ण जी प्रसन्न होइ के वैसे ही अपनो दर्सन देइ याको उद्धार करें ॥ तब वीज भाव की दृढ़ता कोन रीति सों होइ ॥ सो प्रकार कहत हैं ॥

अंत—इत्येव भगवच्छास्त्रं गूढ़ तत्वं निरूपितं एतत्समधीये तस्यापि दृढ़ा रति ॥ अब श्री आचार्य जी महाप्रभू अपने भक्तन के हित के लिए यह ग्रंथ निरूपण किए हैं ॥ काहे तें श्री ठाकुर जी के सेवा विषे या प्रकार तत्पर रहनो ॥ सो यह बात तो वैष्णव कों गोप्य ही राखनी ॥ काहे ते श्री आचार्य जी महाप्रभू सब शास्त्रन कों मथिके नवनीत प्रगट किए हैं ॥ सो तत्व ही को निरूपण हें ॥ ताते सबन के आगे प्रगट नाहीं करनो ॥ और या ग्रंथ में जो साधन कहे हैं सो जौन बनि आवे ॥ तो या ग्रंथ को निरंतर पाठ ही करनो ॥ तो हूं याको श्री ठाकुरजी के चरणारविंद में दृढ़ आसक्त होइ ॥ प्रेम होइ ॥ तब श्री ठाकुर जी याको अपनो अनुभव करावे ॥ पुष्टि मार्ग को फल देइ ॥ या प्रकार यह सिद्धांत सम्पूर्ण भयो ॥ इति श्रीवल्लभाचार्यं विरचितं भक्तिवर्द्धिनी की टीका श्री गुसाईंजी कृत सम्पूर्णम् ॥

विषय—भक्तिव्रत पालनार्थ इसमें पुष्टिमार्ग के साधनों—क्रिया, कर्म, आचार, विचार आदि का वर्णन है।

विशेष ज्ञातव्य—इस पुस्तक का सम्बन्ध वल्लभ सम्प्रदाय से है। मूल ग्रन्थ संस्कृत में है जिसके रचयिता स्वयं सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी हैं। उसी की व्रजभाषा में टीका और व्याख्या श्री गुसाईं जी ने की है। गद्य की दृष्टि से पुस्तक अच्छी है।

संख्या ३२ सी. विवेक धैर्याश्रय, रचयिता—गुसाईं जी, कागज—स्याल कोटी, पत्र—१४, आकार—८ X ६ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—३४१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री नत्थीलाल जी गुसांई, स्थान, व डा०—बरसाना, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ श्लोक ॥ विवेक धैर्य संतत रक्षणीये तथाश्रय विवेकस्तु हरिः सर्वं निजे छात करिष्यति ॥ श्री वल्लभाचार्यजी भक्ति मार्ग प्रगट करिके वैष्णवन शुद्ध मार्ग कहत हैं ॥ वैष्णवन कों विवेक धैर्य अरू आश्रय इनकी स्वतंत्र कहे ॥ निरन्तर रक्षा कर्तव्य हे ॥ इनकी रक्षा न करे तो भक्त को नाश होइ ॥ ओर सकल उदिम सेवा व्योपार कृषि वनिज्यादिक वृति येहू सब विवेक धैर्याश्रय की रक्षा किए ते फले ॥ तहाँ कहत है जो अविवेक भक्त कैसो है ॥ सो साढ़े चारि श्लोकन करिकें कहेत हैं ॥ विवेक कहा जो शुभाशुभ पदारथन को कर्ता हरि हे ॥ ऐसे न जाने जो मैं ही कर्त्ता हूँ ॥ ऐसे न माने ॥ और अन्य जीव हें ॥ ताको न माने ॥ ओर देवतान कों कर्ता करिके न माने ॥ ऐ श्री कृष्ण ही अपनी इच्छा ते शुभाशुभ करत हें ॥ ऐसे ही माने तो यह विवेक ही को प्रकार हे ॥ अब ओर हू विवेक को दूसरों प्रकार कहत हें ॥

अंत—ऐवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां शर्वं दाहितं ॥ कलौ भक्तादि मार्गोहि दुसाध्य इति में मति ॥ तहां फेरिकें श्री आचार्य जी कहेत हें ॥ या प्रकार सों हमने आश्रय कह्यो ॥ ताको स्त्री सुद्रादिकन को ओर सबन को अधिकार हें। ताते रूबन को सदा ही हितकारी है ॥ ताते या कलियुग के विषे भक्तादि विवेक धैयाश्रय ॥ दुसाध्य हे ॥ कृपेण कलु हे ॥ ऐसी हमारी सम्मति हे ॥ ताते भगवदाश्रय भयो ॥ ताकों तो सर्व भक्ति की प्राप्ति भई ताते भगवदीय वैष्णव को भगवादाश्रय ही राखनो ॥ यह आश्रय सो मूल रूप हे ॥ इति श्री वल्लभाचार्य विरचित विवेक धैर्याश्रय ताकी टीका श्री गुसाईं जी कृत भाषा सम्पूर्णम् ॥

विषय—महाप्रभु वल्लभाचार्य्य ने इस पुस्तक में भक्ति के लिए विवेक और धैर्य्य की आवश्यकता पर विचार किया है। अन्त में इस बात पर जोर दिया है कि स्त्री और सुद्रादिक भी जो श्रुति धर्मपालन से वंचित हैं भक्ति के अधिकारी हैं।

संख्या ३३ ए. ग्रीष्मादि ऋतुओं के कवित्त, रचयिता—ग्वाल कवि (मथुरा), कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुबर दयाल जी, स्थान—रजौरा, डा०—मदनपुर, जिला—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ कवित्त ग्रीष्मादि ऋतु के ॥ गरमी अति धूप नै कीनो हुती फिरि लू में कीलेन जुझै तो जुझै। अनुमान में आवत एक यही पुनि और को और सुझै तो सुझै ॥ कवि ग्वाल अगस्त की शक्ति छई यह ईश्वर ही पै रूझै वो रूझै।

अवनीकी नदी सब पीलई पै नभ गंग से प्यास बुझै तो बुझै ।। १ ॥ पूरन प्रचंड मारतंड की मयूषैं मण्डि, जारैं ब्रह्मण्ड ऋण्डडारै पंख धरिये । लूयें तन घूभै विन धूवें की अगिनि तातें चूयें स्वेद बिंदु दुदु धोर अनुसरिये ॥ ग्वाल कवि जेठी जेठ मास की जला कन तें, प्यास की सलाकन से अैसी चित्त अरिये ॥ कंड पिये कूप पिये सर पिये नद पिये, सिंधु पिये हिम पिये पीय वोई करिये ॥ २ ॥

अंत—ऊधों यह सूधो सो संदेसो कहि दीजो जाय, श्याम सों सिवा की तुम विन तरसंत है । कोप पुरहूत के बचाई वार धारन तें, तिन पै कलंकी चंद्र विष वरसंत है । ग्वाल कवि शीतल समीरे सुखदही ते वे, वेधत निशंक तीर पीर सरसंत है । जेइ विपिनउ गिनितें वरत वचाई तिन्हैं, पारि विरहागिनि में वारत वसंत है ॥ ४५ ॥ वाह वाहे आपुकों बिहारी लाल ख्याल भरे, वाला विरहाग्नि तची अवना बचैगी वह । वानी कोकिला की विष धार सी वचायौ करी । अवलों पचीसो पची अवना पचैगी वह ॥ ग्वाल कवि केते उपचारन सच्याई करी, अवलों सची सो सची अवना सचैगी वह । आयो पंचवान लै वसंत वज मारो वीर, अवलों वची सो वची अवना वचैगी वह ॥ ४६ ॥ इति ॥

विषय—षट् ऋतु संबन्धी कवित्तों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में ७ छन्द ग्रीष्म के, ९ छन्द पावस के, ४ छन्द शरद के, ६ छन्द हेमन्त और शिशिर के, १० छन्द होली के तथा ७ छन्द वसन्त ऋतु के इस प्रकार समस्त ४६ छंद संगृहीत हैं । इनमें कुछ छन्द तो नायक और नायिका से सम्बद्ध हैं और कुछ प्राकृतिक छटा का दिग्दर्शन करानेवाले हैं । ग्वाल कवि के इन छन्दों में पद योजना के सौष्ठव और अनुप्रास पर विशेष जोर दिया गया है । किसी किसी पद में श्लिष्ट पद भी आये हैं । भाषा में उर्दू, फारसी तथा अर्बी के बोल चाल के शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

संख्या ३२ बी. षट ऋतु संबंधी कवित्त, रचयिता—ग्वाल कवि (मथुरा), कागज—देशी, पत्र—६, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्) – ३२०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्रीनारायण जी, स्थान—भाड़री, डा०—शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी ।

आदि—कवित्त ग्रीषम ऋतु के ॥ गरमी अति धूप ने कीनी हुती फिरि लूयें की लेन जुझै तो जुझै । अनुमान में आवत एक यही पुनि और को और सुझै तो सुझै ॥ कवि ग्वाल अगस्त की शक्ति छई यह ईश्वर ही पै रुझै तो रुझै । अब नीकीं नदी सब पीलई पै नभ गंग से प्यास बुझै तो बुझै ॥ १ ॥ पूरन प्रचंड मारतंड की मयूषें मण्डि, जारै ब्रह्मण्ड अण्ड डारें पंख धारिये । लूएं तन घूअें विन धूऐं की अगिनि तातें, चूऐं स्वेद बुन्द दुदु धारे अनुसारिये ॥ ग्वाल कवि जेठी जीठ मास की जलाकन सें, प्यास की सलाकन सें अैसी चित आरिये । कुंड पिये कूप पियै सर पिये नद पिये, सिंधु पिये हिम पिये पीयवोई करिये ।

अंत—ऊधो यह सूधो सो संदेसो, कहि दीजो जाय, श्याम सों सितावी तुम विनु तरसंत है । कोप पुरहूत के बचाई वारि धारन तें, तिन पै कलंकी चंद्र विष वरसंत है ॥

ग्वाल कवि शीतल समीरैं जे सुखदतीते, वेधत निशंक तीर पीर सरसंत है ॥ जेई विपिना गिनि तें वरत वचाई तिन्हैं, पारि विरहागिनि में वारत वसंत है ॥ ४७ ॥ वाह वांहे अपुकौं विहारीलाल ख्याल भरे, वाला विरहागि तची अव ना तचैगी वह । वानी कोकिला की विषधार सी पचायो करि, अबलौं वची सो वची अवना वचेगी वह ॥ ग्वाल कवि केते उपचारन सच्याई करी, अवलैं सची सो सची अवना सचैगी वह । आयो पंचवान लै वसंत वजमारो वीर, अवलौं वची सो वची अवना वचैगी वह ॥ ४८ ॥ [शेष लुप्त

विषय—षट्‌ऋतु कवित्तों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—इस ग्रंथ में ग्वाल कवि के रचे हुए षट्‌ऋतु संबंधी उत्तमोत्तम कवित्तों का संग्रह कर दिया गया है । ग्रंथ में समाप्ति का कोई लक्षण नहीं है, अतएव ऐसा जान पड़ता है कि इसके अन्तिम भाग का कुछ अंश लुप्त हो गया है ।

संख्या ३३ सी. ऋतु संबंधी कवित्त, रचयिता—ग्वाल कवि (मथुरा), कागज—देशी, पत्र—११, आकार—८ × ५$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—३५२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौ० प्रसाद रामजी शर्मा, स्थान व डा०—भरथना, जि०—इटावा ।

आदि—॥ कवित्त ग्रीष्म ऋतु के ॥ गरिमी अति धूप ने कीनी हुती फिरि लूयें की लेन जुझै तो जुझै । अनुमान में आवत एक यही पुनि और को और सुझै तौ सुझै ॥ कवि ग्वाल अगस्त की शक्ति छई यह ईश्वर ही पै रुझै तौ रुझै ॥ अवनींकी नदी सब पीलई पै नभ गंग सों प्यास वुझै तो वुझै ॥ पूरन प्रचंड मारतंड की मयूषें मण्डि, जारै ब्रह्मण्ड डारैं पंख धरिये । लूयें तन छूअें बिन धूऐं की अगिनि तातें, चूअें स्वेद बुंद दुदुधारे अनुसरिये ॥ ग्वाल कवि जेठी जीठ मास की जलाकन सों, प्यास की सलाकन सें अैसी चित्त अरिये । कुंड पिये कूप पिये सर पिये नद पिये, सिंधु पिये हिमि पिये पीय वोई करिये ॥

अंत—ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो जाय, श्याम सों सितावी तुम विनु सरसंत है । कोप पुरहूत के वचाई वार धारन तें तिन पै कलंकी चंद्र विष वरसंत है ॥ ग्वाल कवि शीतल समीरै जे सुखदही ते, वेधत निसंक तीर पीर सरसंत हैं । जेई विपिन गिनि तें वरत बचाई तिन्हैं, वारि विरहागिनि में वारत वसंत है । बाह बाहै अपुकौं विहारी लाल ख्याल भरे, बाला विरहागि तची अवना तचैगी वह । वानी कोकिला की विषधार सी पचायो करी, अबलौं पची सो पची अबना पचैगी वह ॥ ग्वाल कवि केते उपचारन सच्याई करी, अबलों सची सो सची अबना सचैगी वह । आयो पंच वान लै वसंत वजमारो वीर, अबलौं बची सो बची अबना बचैगी वह ॥ इति ॥ समाप्तम् ॥ शुभम्

विषय—षट्‌ऋतु पर रचे गए ग्वाल कवि के कुछ कवित्तों का संग्रह ।

संख्या ३३ डी. ग्वाल कवि के कवित्त, रचयिता—ग्वाल कवि (मथुरा), कागज—देशी, पत्र—९, आकार—८ × ५$\frac{1}{2}$ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौ० प्रसाद राम जी शर्मा, स्थान व डाकघर—भरथना, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ ग्वाल कवि के कवित्त लि० ॥ कवित्त चंडी को ॥ दंडी ध्यान ल्यावै गुन गावै है अदंडी देव, चंद भुज दंडी आदि केत कवि हंडी है। कीरति अखंडी रही छायन वखंडी खूब, चौभुज उदंडी वराभै असि भुशुंडी है ॥ झंडी करुना की ब्रह्म मंडी कहै ग्वाल कवि, छंडी नहि पैज भक्त पालन घुमंडी है। मंडी जोति जाहिर घमंडी खल खंडी दंडी, अधिक उमंडी चल वंडी मातु चंडी है ॥ १ ॥ कवित्त श्रीगंगाजी के॥ जाकी तमासवको अनूपमा रमा है वही, झमाले गुआबन के झमावै पै लजत हैं। काली विष झाली के फनाली नें परस करि, भये अभिशाली और अबलौं सजत हैं॥ ग्वाल कवि कहै प्रहलाद नारदादि सब, धरि धरि ध्यान सरवोपरि रजत हैं। मेरे जान गंगे तुम प्रगटी नदों ते ताते, मुख्य करि माधव के पद ही पुजत हैं ॥ २ ॥

अंत—गैल में देख्यो कहूँ नँदराय के ढोटौ खयेन पै कामरि कारी। हंवेरी देख्यो गयो इहि गैल पै ऊधमी देया अनोखो खिलारी ॥ त्यौं कवि ग्वाल लिए सँग ग्वाल विहाल करी लखि राधिका प्यारी। खायबो पीवो दयो विसराय परी तुतराय यों हाय विहारी ॥ ॥ कवित्त पुरबी भाषा ॥ मोर पखा सिर ऊपर सोहे अधर वसुरिया राजत बाय। गाय बजाय नचावै अँखिय करिया कामरी साजत बाय ॥ ग्वाल लिए सँग ग्वाट वाट में छरा छूइ मोर भाजत वाय। हाय ननदिया का करिहौं मैं कहत वात जिय लाजत बाय ॥ नंद का बबुआ बगिया में वाटै अस कहि मुहिका लयलस वाटी। नहिं पर ससुर का डरवा छुड़ल्यूं मिलवान पैल्यू सोचत वाटी ॥ गवई कमनई मिलेन मगमा यह विधना हम माँगत वाटी। जस जस ग्वैयाँ कीन्हा हम सन तस तस हम सब जानत वाटी ॥ इति ॥ समाप्तम् ॥ ॥ शुभम् ॥

विषय—जमुना, त्रिवेणी, कृष्ण और राम संबन्धी कुछ कवित्तों का संग्रह है। इस छोटे से ग्रंथ में ग्वाल ने दो एक छन्द यमुना और त्रिवेणी की महत्ता एवम् पवित्रता पर कहकर कृष्ण और श्री राम की दयालुता और दीनबंधुता का वर्णन किया है। शांत रस पर कहे छन्दों में कुछ छंद ब्रजभाषा, पूर्वी, पंजाबी और गुजराती के भी हैं।

संख्या ३३ ई. कवित्तों का संग्रह, रचयिता—ग्वाल कवि, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—७६८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री फूलचंद जी साहु, स्थान—दिहुली, डा०—वरनाहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—वलिसरवस्व देहिरस्व करि राखे विष्णु, अति उच्चता को अस्व चढ़ि सरसात है। शंकर कौं रावणने दे दै शीश शंकरन। भयो तिहूँ पुर को भयंकर विख्यात है ॥ ग्वाल कवि राम दै विभीषणैं लंकेश पद, तोरि लई लंक जाकी अजौ वंक घात है। सूमन की नाव जल हू पै फाटि डूबि जात, दातन की नउका पहाड़ चढ़ि जात है ॥ १५ ॥ तरल तुरंग रंग रंग के मतंग संग, पालकी सुरंग सजे कार चोव त्यारी की। भूषन वसन वेस कीमती विविध भोग। भोग करिवे कौं पास पाँति बर नारी की ॥ ग्वाल कवि हाजिर हुकुम सब भाँति पूर, पर इतने पै परिजात धूरि खारी की ॥ कौल करि वोल फेरि बदलत तुर्त तातैं, तोल माल घटै बढ़ै पाल सिरदारी की ॥ १६ ॥

अंत—रीझनि तिहारी न्यारी अजब निहारी नाथ, हारी मति व्यास हू की पावत न ठौर है। नाम लियो सुत को सोहित कौ विचारयौ निज, गनिका पढ़ायो शुक तापै करी दौर है॥ ग्वाल कवि गौतम की नारी ह्वै शिला स्वरूप, कियो कब तरिवे कौ कहौ कौन तौर है। पति की पताकीहुति पातक कतारी हुती, ताही तारी तुम राम तारी तुम सो न और है।। २०॥ पानी पीयबें कूँ गज गयो हो अवाह पर, आय ग्रस्यो ग्राह ने अथाह बल भरकैं। जोर बहु पारयौ पै न टारयौ गयौ ग्राह तब, दीन ह्वै पुकारौ हरि हारयौं में तो लरकैं॥ ग्वाल कवि सुनत सवारी तजि प्यारी तजि, धवि चित्र सारी तजि नागे पाँउ टरकें। जानी ना परी है कब चक्र चक्रधर जू सों, चलदल नक्र गयौ कर चक्रधर कैं॥ २१॥

विषय—उद्धव गोपियों का संवाद, श्रृंगार तथा शांत रस संबंधी कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—इस पुस्तक में ग्वाल कवि के कुछ कवित्तों का संग्रह है। ग्रंथ आद्यंत से खंडित है। अतएव उसके नाम आदि का कुछ पता नहीं चलता। इसमें विषय विभाजन संबन्धी किसी नियम विशेष का समादर नहीं किया गया है। जितना भाग इस ग्रंथ का उपलब्ध है उसपर विचार करने से यह पद्य तीनों भागों में—श्रृंगार, शांतरस तथा ज्ञान—विभाजित किया जा सकता है।

संख्या ३३ यफ. फुटकर कवित्त, रचयिता—ग्वाल कवि (मथुरा), कागज—देशी, पत्र—२८, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८९६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौ० प्रसाद रामजी शर्मा, स्थान व डा०—भरथना, जिला—इटावा।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः॥ अथ ग्वाल कवि के फुटकर कवित्त लि०॥ पहरूकि गरकि प्रेम पारी पारी परियंक पर, धरकि धरकि हिय होलसो भभरि जात। ढरकि ढरकि जुग जंघन जुरन देई, तरकि तरकि वंद कंचुकि के करि जात॥ ग्वाल कवि अरकि अरकि पिय धापै तऊ, थरकि थरकि अंग परि टगैं विखिर जात। सरकि सरकि जाय सेरे पै सरोज नैनी, फरकि फरकि फेलि फंद ते उछरि जात॥ कालि केलि भौन में कला निधि मुखी सों कंत, केलि करते ही नाहीं मुख से निकरि परै। झिलकी न जानै मन हिल मिलकी न जाने बात। हिल की मैं सोभ झिल मिल की उझल परै॥ ग्वाल कवि मसकि मसकि पिय राषै तऊ, खसकि खसकि प्यारी पाटी पै फिसिलि परै। चंचला सी चंचल सुपारद सी हलचल, जल विनु मीन जैसी उछलि उछलि परै॥

अंत—बैठी सरसु पास चंद्रबदनी विकास रास, देखि दुति दंतन की दाड़िम दरकि परे। ज्योति गई आइके यशोमति की आली तहाँ, अचका अरून ओठ प्यारी के फरकि परे॥ ग्वाल कवि तरकि परे री वंद कंचुकी के, अधिक उमंगन तें अंगहू मुरकि परे। नीरकन नैननि तें ढरकि परेरी मंजु, मानो दल कंज के तें मुकत सरकि परे॥ चौसर चमेली चारु चाँदी के चँगेरन लै, चंदन कपूर दूर कार डारयो सास त्रास। गेह तजि आई नये नेह में विकाई हाय, देह में अदेह दुःखदाई यों खवास खास॥ ग्वाल कवि मंजुल निकुंज में बुलाई

छाय, आप न दिखाई खूब सूरति बिलारन भास । आस में बिसास दै बिलासी रस राप, प्यारे करी में निरास पास अबहूँ न आस पास ॥ इति ॥

विषय—ग्वाल कवि के नखशिख और नायिका भेदादि पर कहे कुछ कवित्तों का संग्रह ।

संख्या ३३ जी. शान्तरसादि कवित्त, रचयिता—ग्वाल कवि (मथुरा), कागज—देशी, पत्र—४, आकार—८३/४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुवर दयाल जी, स्थान—रजौरा, डा०—मदनपुर, जिला—मैनपुरी ।

आदि—शान्त रस के कवित्त ॥ ग्वाल कवि रचित ॥ लिष्यते ॥ कोहर में बिनं में वधूकन में विद्रुम में, जावक जपा में वट किशलै अमंद के । लाल में गुलाल में गहर गुल लालन में, लाली गुन येक सोन तू लहै सु छंद के ॥ ग्वाल कवि ललित लुनाई को मलाई जैसी, तैसी है न कंज बीच औ गुलाब फंद के । नंद के करन दुख दुंद के हरन घन, असरन सरन चरन नंद नंद के ॥ १ ॥ मुनि जन मन के अधार के अगार गुर, काली नाग सीस के सिंगार चारु साज के । वेद और पुरान शास्त्र तत्त्व को तत्त्व तेज, सत्त्व को प्रमत्त द्रव्य मुकति समाज के ॥ ग्वाल कवि कमल कुलिस ध्वज अंकुश ते, चिह्नित विचित्र रूप दर से निराज के । सोभा के जहाज राज लोकन के ताज राज, पद जुग राज ब्रजराज महराज के ॥२॥

अंत—राम घन श्याम के न नाम ते उचारे कभूं, काम बस ह्वै कै नाम गरें बाँह डाली है । एक एक स्वाँस ये अमोल कढ़े जात हाय, लोल चित्त यहै ढोल फोरत उताल है ॥ ग्वाल कवि कहै तूँ, विचारै वर्ष बढ़ै मेरे, एरे घटै छिन छिन आयु की बहाली है । जैसें धार दीखति फुहारे की बढ़ति आछे, पाछें जल घटें हौज होत आवै खाली है ॥ ३० ॥ चोआ सार चंदन कपूर चूर चारू लै लै, अतर गुलाब का लगावै तन घाटी में । खासा तन जेब के वसन वेस धारि धारि, भूषन सँभारि कहा सोवै सेज पाटी में ॥ ग्वाल कवि साधुन के साधन लगै न मंद, बैठि मसनंद पै लुभायो दगा ठाटी में । मेरी यह तेरी सों बँधी हे मजबूत वेरी, मेरी मेरी कहत मिलैगो अंत माटी में ॥ ३१ ॥

विषय—भक्ति और शांतरस के कुछ कवित्तों का संग्रह ।

संख्या ३४. युगलाष्टक, रचयिता—हरिबख्श बिसेन, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—५२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्यामलाल जी शर्मा, स्थान—इंधौजा, डा०—इकदिल, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ युगलाष्टक लिष्यते ॥ दोहा ॥ गणपति गुरु गौरी गिरा, हनुमत सिय सिय ईश । भरत लषण रिपुहन चरण प्रणवौं धरि निज शीश ॥ १ ॥ भद्र मोद मंगल मई, सुरनर स्वामि महेश । युगलाष्टक वर्नन करौं, सुमति देहु गिरिजेश ॥ २ ॥ गौर वरण सिय जनकजा, श्याम वरन रघुनाथ । युगल रूप जग मातु पितु, बन्दौं धरि निज माथ ॥ ३ ॥ घनाक्षरी ॥ जैति जगदेव स्वामि स्वामिनी सिया सियेश,

महाराज महारानि जन दुष हारी हैं। भारती रमा शिवा सरूप भूमि नन्दिनी जू, बिधि हरि हर रूप राम सुखकारी हैं॥ शेष और शिव शुक सनकादि जासु जस, गावैं पार पावैं नहिं राम असुरारी हैं। कमला रती सती विलोकि जासु मुष लाजै, राजै राम संग सिय जनक दुलारी हैं॥ १॥

अंत—दिव्य मणि मई अति अकथ अनूप मेय, अवध पुरी भरी, सुजस रघुवीर के। तामे सुर तरु शुचि सुभग सुहायमान–तेहि नर मखि धान हर पर पीर के॥ वेदिका कनक मई रतन जटित जापै, सुंदर सिंहासन रमेश रणधीर के। तामैं कमलासन पै राम सो विराजमान, रघुवर जन भव सागर गँभीर के॥ ५॥ जैति रघुराज महाराज सुर नर राज, राजन के राज दीन जन अनुरागी है। जैति जै कृपाल निज जन प्रतिपाल निशि चरन के काल सब विषय विरागी हैं॥ बाम भाग सोहति सोहाग भरी भूमि सुता, रघुवर रूप रंग रसराग पागी हैं। भरत लषण रिपुहन सेव्य सियाराम, हनुमत प्रभु जस गावै बड़ भागी है॥ ६॥ सवैया॥ दिव्य किरीट सुमस्तक में मकराकृत कुंडल कानन राजै। आनन अँबुज ऊपर मेंचक लोचन भृंग कि भाँति सुछाजै॥ मन्द मनोहर हास सरूप विलोकि अनेक रती पति लाजै। सो रघुनाथ धरे धनुहाथ कृपाकरि मेरे हिये में विराजै॥ ७॥ सोहति वेणी सिया सिर पै मुख इन्दु कि भाँति कहै कवि को है। सोम सदैव घटै व बढ़ै सिय आनन पूरण ही नित सोहै॥ लोचन सुंदर दृष्टि सुधा ज्यहि देषि रमावरती मन मोहै। मोतिन माल विराजत कंठरु सारिकी झनपटीक झरोहै॥ ८॥ राम सिया जस रूप अपार कहौं किमि मंद गवार। सिय सीयापति अष्टक भाषि रमेश कृपा स्वमती अनुसार॥ जाँचत हौं वर राघव सौं प्रभु देहु स्वभक्ति सदा श्रुति सार। बहत हौं मझधार अपार भवाँवुधि में प्रभु मोहि उबार॥ १॥ श्री रघुपुंगव सीय सुअष्टक जे चित दै नित पाठ करै। सम्पति व भुक्ति मुक्ति लहै दुःख दोखि सियापति तासु हरैं। देवनि सू विनती इतनी हरिबख्श सीयापति ध्यान धरैं। भक्त सदा सत्संग करै सियराम पदांवुज प्रेम भरै॥ २॥ दोहा—श्री मय्युगलाष्टक कह्यो जन हरिबख्श विसेन। चाहे हनुमत शंभु सो भक्ति राम की लेन॥ वंदौं शिव शुक शारदा, भरत लखन रिपुदवन। करुणा करि जन जानि कै देहु भक्ति सिय रवन॥ ३॥ इति युगलाष्टक समाप्तम्॥

विषय—सियाराम के युगल स्वरूप का वर्णन।

संख्या ३५. भक्ति विलास, रचयिता—श्री हरीदास जी (बल्लासूरपुर, महराजगंज, रायबरेली), कागज—देशी सफेद मोटा, पत्र—७५, आकार—८½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५२७, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—सं० १९३८ वि०, लिपिकाल—सं० १९८९ वि०, प्राप्तिस्थान—मुं० सन्त प्रसाद जी, स्थान—बड़ागाँव, डा०—रसेहता, जि०—रायबरेली।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः॥ अथ भक्तिविलास ग्रंथ लिख्यते॥ बन्दौं गुरुपद कमल रज, सदा जोरि युग पानि। राम लषन सिय भक्ति रति, देत सर्व सुख खानि॥१॥ श्री गुरु चरन सरोज रस, मन मधुकर नहिं जौन। दास हरी सिय राम पद, लहत भक्ति

नहिं तौन ॥ २ ॥ श्री रघुनन्द किशोर जिउ, मोर परम हित कीन । राम नाम पावन परम, भरम नसावन दीन ॥३॥ कवित सिंघालोकनि सवैया--गन के पति है मति के, गति के घन संपति दान तनौ मन के । मन के सुनि कर्म कठोर किये हिय बोर न जोर चलै तनके ॥ तन के सब रोग वियोग गये, हरिदास रु त्रास विषै वन के । वन नेरह उमा सुत के जिन ध्यान न पाय सुखै गन के ॥ १ ॥

अंत--दोहा--कवित पाँच सै पाँच हैं सिंघालोकन छंद । भक्ति विलास प्रकास मैं हरन मोह भ्रम फंद ॥ १ ॥ वहु ग्रंथन को सार लै तुलसी कृत मत खास । कवित सवैया झूलना घनअच्छरी विलास ॥ २ ॥ वन३रसै अरतीस को संवत है सनिवार ॥ श्रावण शुक्ल यकादशी, ग्रंथ पूर श्रुति सार ॥ ३ ॥ रायबरेली उत्तरै जोजन एक प्रमान । गंज दुरविजे सूरपुर, वल्ला विच स्थान ॥ ४ ॥ हैं कुमार सुख साहि के, लाल साहि अस नाम । तासु तनै हरिदास हैं, आस मनै सिय राम ॥ ५ ॥ क्षत्री कुल में जन्म है गौर अमेठिया वंस । श्री भारतु सुत की कृपा, भयो काग सो हंस ॥ ६ ॥

विषय--भक्ति विलास ग्रंथ--इस ग्रंथ में श्री हरिदास जी महात्मा ने प्रथम श्री गुरु की वन्दना ३ दोहों में की है । पश्चात् श्री गनेश जी, शिव जी; श्री गंगा जी, श्री हनुमान जी, शेष जी, श्री राम जी; लक्ष्मण जी, भरत जी, शत्रुहन जी, जानकी जी की वन्दनाएँ हैं । फिर संसार की असारता, चेतावनी, वैराग्य, संत महिमा, सत्संग महिमा, राम नाम की प्रभुता आदि का वर्णन किया है । विशेष रूप से राम नाम का ही वर्णन संपूर्ण पुस्तक में है और उसी राम नाम के स्मरण का उपदेश तथा संसार की असारता का वर्णन स्थान स्थान पर किया गया है । ग्रंथ में सवैया छंद विशेष रूप से प्रयुक्त हैं । सिंहावलोकन छंद ५०५ है । इतना बड़ा ग्रंथ सिंहावलोकन का देखने सुनने में नहीं आया है ।

विशेष ज्ञातव्य--श्री महात्मा हरिदास जी--आपका जन्मस्थान जिला रायबरेली, तहसील, महाराजगंज के समीप वल्ला सूरपुर ववुरिहा पुरवा के अन्तर्गत सं० १८४९ वि० में श्री लाल साहि जी अमेठिया क्षत्रिय के यहाँ हुआ था । आप सात भाई थे । बाल्यकाल में अधिक विद्याध्ययन नहीं किया था; परन्तु बड़े शान्त चित्त और बुद्धिमान् थे । संसार से विरक्त रहते थे । आपका विवाह धम्मौर में हुआ था । आपके तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी । युवावस्था में बाबा रामप्रसाद दास जी (अयोध्यावासी) से मंत्रोपदेश लिया था; परन्तु बाबा रघुनाथदास जी छावनीवाले से बहुधा सत्संग हुआ करता था । आप श्री रामचंद्र जी के अनन्य भक्त थे । सत्संग के प्रभाव से आप बहुत बड़े महात्मा और विद्वान् हुए । आपने निम्नलिखित ग्रंथ रत्न रचे हैं--(१) तुलसीकृत रामायण की टीका शीला वृत्ति, (२) भक्ति विलास ग्रंथ (सिंहावलोकन), (३) समुझाई बुझाई, (४) मसल विवेक, (५) भक्तमाल, (६) प्रश्नोत्तरी, (७) चित्रकाव्य, (८) सप्तछंदी रामायण । आपके ये समस्त ग्रंथ कविता और भाषा के विचार से उत्तम हैं । इनमें आपकी बुद्धि का चमत्कार देखने को मिलता है । आपका देहावसान सं० १९७४ वि० में १२५ वर्ष की अवस्था में गंगा जी की गोद में हुआ ।

संख्या ३६ ए. अगाध अचिरिज जोग ग्रंथ, रचयिता--हरीदास, कागज--देशी, पत्र--३, आकार--९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--२०, परिमाण (अनुष्टुप्)--६७, पूर्ण, रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, लिपिकाल--सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान--श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, मथुरा म्यूजियम, जि०--मथुरा।

आदि--गोरष हणु भरथरी सुषदेव । सिध सनकादिक सुषसारं ॥ नारद संकर मुनि ब्रह्मादिक । अगणित साध परिसि भये पार ॥ १ ॥ चंद सूर किया दोइ दीपक । कर तारा मंडल कर तारं ॥ अनन्त लोक बिसपाल बिसंभर । सकल सछाया तो सारं ॥ २ ॥ रूप न रेख भरम नहीं भंजन । ताहि भजौ भजि भ्रम जारं ॥ वेद कतेव कहै दोइ वातां । दोइ आगैं नर निसतारं ॥ ३ ॥ ग्यान न ध्यान पाप नहीं पुनिषर । अधर अलेप नहीं चक्र चालं ॥ भेद अभेद अरीस अच्छेदं । सुनि सुधारस रहतालं ॥ ४ ॥ राजन रीति प्रीति नहीं परघत । कलपि न झलकै करतारं ॥ रमताराम सकल बिस व्यापी । निरषि निरषि निरधारं ॥ ५ ॥ निज निरसिध अगह अभिअंतर । अकल अरूप नहीं वृद्ध वालं ॥ धरणि अकास नहीं समद सुमेर । लषचौरासी प्रतिपालं ॥ ६ ॥ उपजि न विनसे जागि न सोवै । आलस नींद न आकारं ॥ पुरुष न नार करै नहीं क्रीड़ा । अगम अगोचर ततसारं ॥ ७ ॥ गाँव न ठांव विघन नहीं बासं । सास उसास न नौ द्वारं ॥ पूरन ब्रह्म परम सुषदाता । आस उदास न आचारं ॥ ८ ॥ नौ सै नदी वहत्तर छाजा । इन्द्रीयां चनचित चारं ॥ पेट न पीठ नैन नहीं नासा । हाथ न पाँव घटधारं ॥ ९ ॥ जोकिन छोति सुनि नहिं संकट । तेजस पुंज न भू भारं ॥ भेष अलेष अदेषं । आदि अषंडित अध जारं ॥ १० ॥

मध्य--वार न पार मुनि नहीं वक्ता । अगह अकथ तहाँ धुनिधारं ॥ ऊँच न नीच वरण नहीं अवरण । कहर न व्यापे तस कालं ॥ ११ ॥ अविगति अगम अगह अभि अंतर । नाथ निरंजन निरकारं ॥ गरजै गगन मगन मन उन मन । निसदिन दरसै दीदारं ॥ १२ ॥ निज निरलेप सकल जग करता । सकल सपोषै सुष न्यारं ॥ सकल निरंतर सर मन व्यापै । आनंद रूप अगम षारं ॥ १३ ॥ बृष्टि न सुष्टि ग्यान नहिं गुष्ठं । संकट वरतन विन जारं ॥ देह न ग्रेह भोग नहीं रोगं । जटा न जोगी नभ नालं ॥ १४ ॥ सीत न धूप मीन न पाणी । कीर न प्रसै किस जालं । स्याम न सेत रगत नहीं रेतं । तरवर मूल न तिस डालं ॥ १५ ॥ भवण न गवण न पिता सहोदर । मोह न दोह न परिवारं ॥ परम उदार परम निधि निरभै । निज चिंता मणि चितधारं ॥ १६ ॥ अर्ध न उर्ध जोग नहीं जापं । अजर अजोनि तसलालं ॥ अगम अथाह परम सुषसागर । नाथ अनाथ प्रतिपालं ॥ १७ ॥ ज्यूं अकास सकल भंजन जल । सब मै दीसै आकारं ॥ हाथ गह्या कोई गहत न आवै । यूं सवमें घट धारं ॥ १८ ॥ निरभै निरवाण असिल अविनासी । अवरन वरन न निसतारं ॥ दीरघ लघु लोभ षिमा नही षीजे । हरि नरसिंध निकुटि न्यारं ॥ १९ ॥ निरगुण निरधात गात गुण नाही । निज निरमूल सनिज सारं ॥ निडर निराट विराट अनंत हरि । सब कछू कर सब तै न्यारं ॥ २० ॥ अधर अरूप अथाह अजूनी । अनंत अमूरति अघ जारं ॥ दीन दयाल काल नहीं करणा । त्रिविध न व्यापै तत सारं ॥ २१ ॥ हरिपद प्राण सदा संग सम्रथ । परसिय रम तत्त भै पारं ॥

अंत—उदै न अस्त आन नहीं अठपट । तरवर मूल न इलधारं ॥ २२ ॥ सुभ नहीं असुभ गिणत नहीं अगणित । भष नहीं अभष मधुर षारं ॥ विरकत नही बिकुल अकुल अभि अंतर । तन मन साम न तहाँ धारं ॥ २३ ॥ इम्रत नहीं जहर कहर नहीं करणा । मर नहीं अमर न औतारं ॥ नर नहीं अनर अजर अजरा नंद । है पणिसारां सिरसारं ॥२४॥ जो गन जोग पाप नही पुनियर । भूत अऊत न परिवारं ॥ बल नहीं अवल निरूप निरषर । सदा सनेही सुषसारं ॥ २५ ॥ छल नहीं अछल अचल नहीं चंचल । धर नहीं अधरन आकारं ॥ लालच नहीं लोभ भरम नहीं निहभरम । नट वाजी करि नट न्यारं ॥ २६ ॥ निरमल निरछोह निरास निरंतर । निज तत्त तहाँ निजमन धारं ॥ संकट नहीं सरम करम नहीं । अकरम भरम न व्यापै तस भारं ॥ २७ ॥ परम जोति प्रकास परम सुख । अगम अगम साइ उर धारं ॥ ऊँच न नीच वरन नहीं अवरन । गति नहीं अगति नहै कारं ॥२८॥ सकल बियापी अलस अपंपर । षल नहीं अषल नमै मारं ॥ परम उदार अपार अखंडित । रटि रसनां रटि ररकारं ॥ २९ ॥ अगह अंकह उरतै अघ जारन । सुनि मंडल मैं सहस प्रकास ॥ जन हरिदास पति परम सुष । अरिदल जीति अभै पुरबास ॥ ३० ॥ इति अगाध अचिरज जोग ग्रंथ संपूरण ॥

विषय—परमात्मा का दार्शनिक विवेचन ।

संख्या ३६ बी. माला जोग ग्रंथ (हरीदास जी की वाणी), रचयिता—हरीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा ।

आदि—श्री निरंजनायन्मः ॥ स्वामी जी श्री हरिदास जी की वाणी लिख्यते ॥ अथ माला जोग ग्रंथ ॥ भजि करुणानिधि करतार । करम भै भरम निवारण ॥ सम्रथ सिरजन हार ॥ विविध जम का फंद जारण ॥ १ ॥ कैसो रमता राम । हाथ जान कै सिर धारण ॥ नाराइण गोपाल । संत राषण रिपु मारण ॥ २ ॥ परम सनेही नाथ । त्रिविध गुण गहर गुदारण । अविनासी हरि अषिल करन । निरविष नौ विष दुषदारण ॥ ३ ॥ इनका करौ प्रहार । रघुनाथ निज आंषि उधारण । गैवल करि गोविंद । चिंता अरि विरष उपारण ॥ ४ ॥ अपरंपार अपार । पारभव सिन्धु उतारन ॥ तुम नर हर निरवंस । तोहि साध सुष कारण ॥ ५ ॥ निर संसै सूं प्रीति । ताहि संसौ क्यौ ग्रासै । जहाँ अजपा तहाँ बैसि । बात अनभै अभ्यासै ॥ ६ ॥ नट निरभै निरभेष । अरीझ हरि रीझै नाही ॥ निरमल निकट हजूरि । अगह अभिअंतर मांही ॥ ७ ॥ परम रीति पर प्रीति, परम निधि आपण स्वामी ॥ जुरा काल भै हरण, करण निरभै निज नामी ॥ ८ ॥ परम पुरुष परकास । लहै कोई गुरु गभिसूरा ॥ स्वयं ब्रह्म सचराचर । सकल विष व्यापी पूरा ॥ ९ ॥ परम तेज परम जोति । परम दुष भंजन सोई ॥ परम सुनि परम देव । जीव जागि सुमिरै लोई ॥ १० ॥ परम ग्यान परम ध्यान । हरि परम सुष सांच वतावै ॥ परम जोग परम भोग । हरि परम गति लै पहुँचावै ॥ निरालंब निरलेप । अचल चरणाचित धारं । हरि निरगुण निरछेह ।

नार नहीं लाभै पारं ॥ ११ ॥ अकल अभेद अच्छेद । निरूप निरभै घर पाया ॥ निराकार निरबांण । प्राण मन तहाँ समाया ॥ १२ ॥ अवगति अगम अलेष । ताहि कोई बिरला परसै ॥ अजोनि अस्थिर अचितं । अभिअन्तर दरसै ॥ १३ ॥ अदिष्ठ असिर अरूप । अथाह निरमोही सन्यारं ॥ निरामूल निरधार । निकुल निरपष निज सारं ॥ १४ ॥ परम तत्त परभेद । सकल जग मंडण जोगी । पारब्रह्म हरि अषिल । रसरोग रसनां नहीं भोगी ॥ १५ ॥ अधर अजर समभाइ । जीव सब जग थल पोवै ॥ अकह निरंजन देव । साध सुमरै मन चोषै ॥ १६ ॥ अहत अछीज अनेक । निरास निरभै सुष सारं ॥ अकरम अरत अलोक । निरषारस इम्रत धारं ॥ १७ ॥ एक मेक भरपूरि दूरि तोहि कहूँक नेरा । निज तरुवर निरसिंध । प्राण तहाँ पंषी मेरा ॥ १८ ॥ अषंड षंड ब्रह्मंड । सकल मैं साँच लुकाया ॥ 'जन हरिदास' हरि अघट आथि गुर गम तैं पाया ॥ १९ ॥ जहाँ हरिराषै तहाँ मैं रहूँ । हरि पठवै तहाँ जाइ ॥ जन हरिदास की बीनती । में हरि नहीं छाड़ौं हरिनांव ॥२१॥ ॥ इति माला जोग ग्रंथ संपूर्ण ॥

विषय—परमात्मा के विषय में दार्शनिक विवेचना ।

संख्या ३६ सी. मन हठ जोग ग्रंथ, रचयिता—हरीदास, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति—(प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—६७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा ।

आदि—मन हठ जोग ग्रंथ :—बाण पकड़ि उभा रह्या । मन फिर लागा झूठि ॥ बिसाणा न्यारा रह्या । मडी और ही मूंठि ॥ १ ॥ सांच सबद मानै नहीं । झूंठ तहाँ चलि जाइ ॥ मनसा वाचा करमनां । गति काकौ व्रत ताहि ॥ २ ॥ मन हमसूं घड़ि कूल ज्यूं । रषे दिषावै छेह ॥ बाई का गुण छांड़ि दै । बसुधा का गुण लेह ॥ ३ ॥ अगम तहाँ पहुँता नहीं । रही भरम की रेख ॥ मनका मान्या मरहगा । करै करि नाना भेष ॥ ४ ॥ माया काका दुमड्या । कला सुनि कसै नाहिं । आस पर सहोइ मिल रह्या । ज्यूं माषी गुडमांहि ॥ ५ ॥ सिंह स्याल रन वन बसै ॥ बसती सकै न चूरि ॥ के बसती के बन वंध्या ॥ साध दहौं सूं दूरि ॥ ६ ॥ साध वंध्या हरि अवंध सूं । हरि वंध्या साध के भाई ॥ परम सनेही परम सुष । तहा रटे ल्यौ लाई ॥ ७ ॥ हरि सुमरन मनहठ मतौ । सो मैं छांडू नाहीं ॥ राम रतन धन अजब है । लै राष्यो मांही ॥ ८ ॥ रंक हाथ हीरा चढ्या । सतगुर दीया बताइ ॥ ताकू मैं छँडू नहीं । छांड्या सर्वस जाइ ॥ ९ ॥ पाति साह बलकरि कह्या । नामा कह्यौ सुदाई ॥ सदा संग गऊ वछ जूं । जन के राम सहाइ ॥ १० ॥ राम धणी सनमुष सदा । सकल काल का काल ॥ पाति साहि नामौ कहै । तू मति पड़ै जंजाल ॥ ११ ॥ तव नामै मन हठि किया । गहि गुर ग्यान विचार ॥ मैं हरि सुमरन छाँडू नहीं । सिरपर समरथ सिरजन हार ॥ १२ ॥ पै पाया पाषांण कूं । देवल फेरया देह ॥ माया जल भेदै नहीं । छांनि छवाइ एह ॥ १३ ॥ सेज मंगाइ जलां सूं । सो वहौड़ि न जल मैं जाइ ॥ तब नामै मन हठि किया । मुइ जिवाई गाइ ॥ १४ ॥

मध्य—एक वोड़ि हिंदू तुरक। ऐके दास कबीर ॥ मन हठ लै उभा रह्या, सिर पर साहस धीर ॥ १५ ॥ टेक रहौ तन मति रहौ। टेक गया पण जाइ ॥ ऐसी टेक कवीर की। चौड़े रह्या बजाइ ॥ १६ ॥ पुनि बात सुनै प्रह्लाद की। कहि समझाऊं लोइ ॥ मनहठ करि गोविंद भज्या। धका न लागा कोइ ॥ १७ ॥ गिर जल ज्वाला तै वच्या। पिसण गये पचहारि ॥ नहीं साध कूं साँकड़ौ। यों ही अर्थ विचारि ॥ १८ ॥ धू बालक कैसी करी। धऱ्या न कोई भेष ॥ मन हठकरि भांड्या मरन। जहाँ इष्ट तहाँ देष ॥ १९ ॥ अगम सवद सुषदेव सुण्यां। संकर कह्या सुणाई। तन दीया राषा सबद ॥ यूं मन हठ सू घर जाइ ॥२०॥ इन्द्र लोक सूं ऊतरी। रंभा करि सिंगार ॥ तव सुषदेव न्यारा रह्या। ग्यान बहती धार ॥ २१ ॥ जनक जनक सबको कहै। अमर लोक सूं बाथ ॥ जनक मता कछू और था। दुष सुष रहत अनाथ ॥ २२ ॥ पाव अगनि मुष ऊपरै। जनक कहावै सोई। इहां दाधा उहां दाहि है। इह भरोसा मोहिं ॥ २३ ॥ जाइ मंछि इ मंड़ि रह्या। माया तरकी छाँह ॥ गोरष कछू भोला न था। जिन गुर काढ्या गह बाँह ॥ २४ ॥ राजपाट तजि भरथरी। कीया आपणा काज ॥ जोग ध्यान राजा लहैं। तौ वै क्यूं छांडै राज ॥ २५ ॥ हस्ति घोड़ा गाँव गढ़। सुत वनिता परिवार ॥ कहै माता मैणावती। तजि गोपीचंद इहुसार ॥ २६ ॥ ईं सुष विषसम देषीये। लाषी सौंज नरि हारि ॥ अगम वस्तु अंतर वसै। उलटा गोता मारि ॥ २७ ॥ वल छाड्या निरवल भया। गहि गोपीचंद गुर ग्यान ॥ सुनि मंडल मैं रमि रह्या। अगम वौड अस्थांन ॥ २८ ॥ छत्र सिंघासन छांड़ि गया। ऐसी व्यापी आइ ॥ माया संग सांई मिलै। तौ बलक छाँड़ि क्यूं जाइ ॥ २९ ॥ सेज तुलाइ गींदुवा। इह रंक कै ईद ॥ पथर तलै विछाइ करि। साँई भज्या फरीद ॥ ३० ॥ रतन पारसू मन हठ कऱ्या। षोज्या सबही भेष ॥ तब वाकू गोरष मिलया। ए मन हठ का गुण देष ॥ ३१ ॥ ग्रंथ नाव मन हठ मतौ। मन कै मन हठ दोइ ॥ एकै मन हठ हरि मिलै। एकै पड़दा होइ ॥३२ ॥ काम क्रोध मैं तैं मनी। पग दे सक्या न चूरि ॥ या मन हठ मन वूढीये। हरि सूं पड़ीये दूरि ॥ ३३ ॥ गुण जातै गोविंद भजै। निरभै निज घर आइ। यामन हठ मन नीप जै। झाई पडै न काई ॥ ३४ ॥ कान कहर गरजत फिरै। दिन दिन व्यापै रोग ॥ जन हरिदास हरि भजन विन। जहाँ तहाँ विपति वियोग ॥ ३५ ॥ जन हरिदास दुरभष तहाँ। जहाँ न हरि सूं हेत॥ जो नर लग्या न रहे हठी। जम द्वारे डंड देत ॥ ३६ ॥ जन हरिदास गोविंद भजौ। भूलां भली न होइ ॥ अव भूलातेते फिरहगा। ऊझड़ पैंडा दोइ ॥ ३७ ॥ ग्रंथ ॥ १० ॥ संपूर्ण ॥

विषय—हठ द्वारा मन को भगवद् भजन में लगाने का उपदेश।

संख्या ३६ डी. मन परसंग जोग ग्रन्थ, रचयिता—हरिदास (संभवतः), कागज—देशी, पत्र—१, आकार—९ × ६ इन्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा।

आदि—मन परसंग जोग ग्रंथ ॥ मन परसंग सुणौ हो साधौ। तुम सूं कहूँ सुणाई ॥ कबहुँक मन विषिया तजै। कबहूँक विष फल षाई ॥ १ ॥ मनसा काला डूकरै।

कछु न आवै हाथि ॥ मन भूषौ भरमत फिरै । गुण इन्द्रयां के साथि ॥ २ ॥ या मन की या रीति है । जहाँ तहाँ चलि जाइ ॥ कबहुक लौटै छार मैं । कबहुक मलि मलि न्हाइ ॥ ३ ॥ इहुमन पुरुष नारि सुत मात । इहुमन बंधु इहुमन तात ॥ इहुमन मूरष इहुमन देव । या मन का कोइ लहै न भेव ॥ ४ ॥ इहुमन सक्ति रूप होइ जाइ । इहुमन भजै निरंजन राइ ॥ तुन्ठा वैठि कंचन दै काटि । इहुमन विविडाणैं हाथ ॥ ५ ॥ इहुमन दाता होइ दक्ष करै । इहुमन भूषौ मारि मरै ॥ आरंभ करैरहै निरदंद । इहुमन मु.................. असमाप्त—अपूर्ण ।

विषय—मन का विषय वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रंथ अपूर्ण है । इसमें पत्र संख्या केवल १२७ तक ही दी गई है । आगे के पत्रों में पत्र संख्याएँ नहीं हैं; किन्तु कागज और लेख में कोई भेद नहीं पड़ा है । ग्रंथ को देखकर मालूम पड़ता है कि इसकी दूसरी बार रक्षा की गई । जिल्द बाहर से मखमली है । प्रत्येक पत्रों के ऊपर-नीचे किनारों पर पुराने ढंग का कागज चिपकाया गया है । इससे यह जान पड़ता है कि पहले इसके पन्ने बिखर गये थे । प्रस्तुत रचना के आगे पीपा की वाणी है, उसके भी आदि के कुछ पत्र खोगए विदित होते हैं ।

संख्या ३६ ई०. नाँव निरूप जोग ग्रंथ, रचयिता—हरीदास, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—६ × ६ इन्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—६७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा ।

आदि—अथ नांव निरूप जोग ग्रंथ ॥ नांव निरूप परम सुख ॥ जाणै विरला कोइ ॥ जन हरीदास ताकूं भजै । तब ही आनन्द होइ ॥ १ ॥ परापरै पूरण ब्रह्म । फिरै तहां मन लाई ॥ गरब छांडी गोविंद भजौ । जनम अमोलक जाई ॥ २ ॥ सतगुरु मिलै तौ पाइये । हरि परम सनेही तात ॥ बहौड़ि वहौड़ी लाभे नहीं । इह औसर इह घात ॥ ३ ॥ मैं छांडौ निरभै भजौ । गुणां रहत गोपाल ॥ अगम ठौड़ आनंदा । जुरा जन्म नहीं काल ॥ ४ ॥ जोगारंभ का मूल है । हरि अवगति अपरंपार ॥ सुषसागर समृथ धरमी । सवक का सिरजन हार ॥ ५ ॥ निरभै पद नर कर चढया । मनष जन्म भल देह ॥ निराकार निसदिन भजौ । हरि अगणि अनन्त अछेह ॥ ६ ॥ मनिष जनम षरचै रषै । हरि विन दूजी ठौड़ ॥ सास उसासा नांव लै । नर दौरिस कै नौ दौडि ॥ ७ ॥ जागि जीव सोवै कहा । प्रथम मोह तजि माण ॥ साध मुलक तहां वास करि । जम लै सकै न दाण । ८ ॥ भगति करौ भगवंत की मन दीन्हा सिध होई ॥ मन विन दीन्हा मन लरू । षाइ न धाया कोई ॥९॥ × × × पाप पुनि दोऊ विरष । तहाँ करै मन पान ॥ मन ए दोनों तरवर तजै । तव पावै भगवान ॥ १० ॥ भरम छाँडि निरभै मतै । निरभै वस्तु विचारि ॥ गुरू अषरि कर वाण धरि । मोह महारिपु मारि ॥ ११ ॥ कर धारन के सौभ जौ । समझि न कीजै सोच ॥ इहु औसर चलि जायगा । वहौडि न लाभै पोच ॥ १२ ॥ राम भजौ विषिया तजौ । घर मांही घर एक ॥ ताघर सूं लागा रहौ । छाँडौ द्वार अनेक ॥ १३ ॥ हरि सुमिरन हिरदै

धरौ । विथा न पहुँचै बीर ॥ काइर टलि कानै चल्या । लग्या न सुष की सीर ॥ १४ ॥ परम पुरुष भै रिपु भजौ । लता न लागै लोइ ॥ अवधि घटै प्रासै जुरा । हरि भजतां होइ सो होइ ॥ १५ ॥ नाव विसंभर नाथ जी । लष चौरासी, प्रतिपाल ॥ सब काहू की करत है । तातैं राम दयाल ॥ १६ ॥ मनस जन तोसूं कहूँ । मानूं सांच हदीस ॥ काल जाल लागै नहीं । सुमरतां जगदीस ॥१७॥ ऊँच नीच नीरभै मतै । कोई भजौ मुरारि ॥ भौ सागर तिरिबौ कठिन । हरि नांव उतारै पार ॥ १८ ॥ भू धरतैं वाजी रची । वाजी मांहि कलाम ॥ षट दरसन षोजत फिरै । पषापषी विसराम ॥ १९ ॥ काल हरन करता पुरुष । सुमरतां गुण एह ॥ चित्त मांही वित्त ले रहौ । ज्यूं बहौड़ि न धारिये देह ॥२०॥ वन माली भजतां भलां । जुरा जनम नहीं तोहि ॥ मैं नहीं छाड़ूं राम कूं । राम न छाडै मोहि ॥ २१ ॥

अंत—बात हाथ रघुनाथ कै । सदा साध के साथ ॥ पै लै अंग छांडै नहीं । जाकूं पकड़ै हाथ ॥ २२ ॥ नाराइन की नांव की । मैं बलिहारी जाऊँ ॥ भृंगी कीट पतंग ज्यौं । दूरौ दूसरौ नांव ॥ २३ ॥ परमानंद कै आसरै । जाय षडै जब जीव ॥ हरि महरि निजरि देषै जबै । तवै जीव सूं सीव ॥ २४ ॥ सकल विषा पी संग बसै । हरि समर्थं सिरजन हार । साहि वही तैं पाइयै । साहिब का दीदार ॥ २५ ॥ अविनासी असष अमर । अजरांवर नग एक ॥ राम दया तैं पाइये । हरि सुमिरण भाव विवेक ॥ २६ ॥ इलम पढ़ै पढ़ि आरबी । च्यारि पढ़ै सुष बेद ॥ सदगति सुष सब तैं अगम । सब कोउ करै उमेद ॥ २७ ॥ अषिल तुम्हारी बंदगो । बहौत करैं वहौ भाइ ॥ अल्हा कृष्ण अरहंत कहै । कोई कहै षुदाइ ॥ २८ ॥ सव कोइ चाहै तुझकूं । तूं तौ सबही मांही ॥ तुमही तैं तुम पाइये । बंदै तैं कछू नाही ॥ २९ ॥ पारब्रह्म पर दुष हरण । प्राण तहां मन लाइ ॥ भेद सहत भै रिपु भजौ । हरिगाइ जै स्यूं गाइ ॥ ३० ॥ महरि कसै मीरां कहौ । कोइ करौ अनंत ॥ निराधार निरगुन कहौ । तथा कहौ भगवंत ॥ ३१ ॥ चित चंचल निहचल भया । मन कै पड़ै न राइ ॥ हरि निरगुन निरभै मतै । जहाँ तहाँ समभाइ ॥ ४१ ॥ हरिचिंता मणि सबमें बसै । जाणों विरला कोई ॥ राम दया तव जाणीये । साधक है स्यूं होइ ॥ ४२ ॥ गंग जमन मध मुक्ति फल । सतगुरु दिया बताई ॥ मन लोभी लालच पड्या । तासुष में रह्या समाई ॥ ४५ ॥ अनंत साध आगै भया । परसि परसि भौ पार ॥ जन हरिदास सिरकै सहै । जहां तहां दीदार ॥ ४४ ॥ इति नांव निरूप जोग ग्रंथ संपूर्ण ॥ ग्रंथ ॥ २ ॥

विषय—दार्शनिक विचारों का वर्णन ।

संख्या ३६ यफ. निरंजन लीला जोग ग्रंथ, रचयिता—हरीदास, कागज—देशी, पत्र—३, आकार ९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्) —६७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण अग्रवाल, म्युजियम, मथुरा ।

आदि—गाइ गाइ गावै कहां । गांवण मांहि वमेक ॥ एक गाइ दह दिस गया । एकां परस्या एक ॥ १ ॥ गुरु हमसूं ऐसी करी । जैसी गुरु सूं होइ ॥ अगम ठौड़ आनंद सदा । पला न पकड़ै कोइ ॥ २ ॥ गुरू निरभै चेला निडर । गुरू निराकार सब मांहि ॥

चेला तनधर तहाँ मिल्या । सो तन धर नाचै नाहि ॥ ३ ॥ परगट परम गुर पार ब्रह्म । परम सनेही सोइ ॥ आप दिषावै आपकूं । कभी किवाड़ी षोइ ॥ ४ ॥ राषन हारा राषि तू । आप आपणौं हाथ । भी फिरि मन चालै नहीं । उठि और के साथ ॥ ५ ॥ साजि निवाजि निरभै करण । भरम विथा भै दूरि ॥ परम पुरुष पर दुष हरण । हरि जहां तहां भर पूरि ॥ ६ ॥ अरस परस आनंद सदा । थक्या आन सब गौण ॥ हरि सम्रथ सुष निजरि भरि । कीमति करै सकौण ॥ ७ ॥ निरगुण का गुण का कहूं । कथीये कहा अकथ ॥ अकल पुरुष कै आसरै । सकल भवन सम्रथ ॥ ८ ॥ गंग जमन मैं एक रस । सुष मैं सुरति निवास ॥ ज्येगारंभ लागा रहै । त्रिवेणी तटि बास ॥ परापरै सरसिधि पुरुष । माया रहत प्रभंग । सेवग की सेवा करै । साध तहां पर संग ॥ ११ ॥ नाना विधि सुणि सुणि असुणी बहौ विधि करौ विचार ॥ "जनहरिदास" लहि लहि अलही । हरि अवगति अपरंपार ॥१२॥

मध्य—॥ छंद वैसूरी ॥ त्रिविध ताप सांसौ न सूल । परम भेद आनन्द मूल ॥ उदै न अस्त आवै न जाय । सकल वियापी सहज भाइ ॥ १२ ॥ मोह दोह आसान पास । बरन विवरजित स्वयं प्रकास ॥ काम क्रोध त्रिष्णा न ताप । ज्ञान ध्यान जोगी न जाप ॥ १३ ॥ तात मात सांसौ न संक । साह बैद रोगी न रंक ॥ घट घटा रसनां न रीति । ऊँच नीच परसै न प्रीति ॥ १४ ॥ निरालंब निरलेप राइ । रसन डसन बयन ही ताहि ॥ धरम गगन समद न हरि । जल ज्वाला मछी न कीर ॥ १५ ॥ पुरूष नारि श्रवननि सास । षान पान इन्द्री न आस ॥ गुण गीत नाद न्यारा न नेह । हरि वृद्ध बालक छोटा न छेह ॥ १६ ॥ तेज पुंज निहचल निवास । वाहरि भीतर ज्यूं आकास ॥ जन हरिदास भजि सहज भाइ । सकल बियापी रामराइ ॥ १७ ॥

अन्त—॥ अस्तुति इन्द्रव्रछंद ॥ सुतौ हरि हुवा न होसी न आवै न आया । हित हीन वित्त हीन भूषा न धासा ॥ १ ॥ ग्यानै न ध्याने न वरणै न भेष । अकाजै नकाजै न न रुपै न रेषं ॥ २ ॥ सिध हीन साधै न सेवा न पूजा । गुरूहीन चेला एकै न दूजा ॥२०॥ घट हीन पट हीन नट हीन वाजी । नैड़ा न नारथा न रूसै न राजी ॥ २१ ॥ वादै न विदैं न सिवैं न गाई ॥ छलहीन बलहीन मारै न षाई ॥ २२ ॥ धरती नगगनै न चंदै न सूरा । सलिता न सिंधै न वोछान न पूरा ॥ २३ ॥ उपजै न बिनसै न बृधै न बालं करणां न केरो धन काया न कालं ॥ २४ ॥ घर हीन बनिता न बसती न सुनि । रसीया न रोगी न पापै न पुनि ॥ २५ ॥ जप हीन तप हीन कुल हीन लाजै । मति हीन मुगधै न रूति हीन गाजै ॥ २६ ॥ मरही न मारै न जीवै न जौरा । रनहीन बनहीन बाड़ी न भौंरा ॥ २७ ॥ आदै न अंत हीन वारै न पारं । विषै न बकला मीठा न षारं ॥ २८ ॥ निरभै न भै ही मिश्री न जहरं । वंधन मुला न कलपै न कहरं ॥ २९ ॥ जरणा न जोगी न इच्छा न बाचै । नरही न नारी न हीरा न कांचै ॥ ३० ॥ गुण हीन गाथा न भरमै न भेदं । तन हीन भासै न कधं न छेदं ॥३१॥ बपुहीन विनसे न प्रभै न मूलं । मंत्रै न बैरी न संसै न सूलं ॥३२॥ रिनही न राजा न सेन्या न साथी । मुलकै न माया न असही न हाथी ॥ ३३ ॥ राचै न विरचै न रीझै न रोवै । मन हीन मौनी न मैला न धोवै ॥ ३४ ॥ रहता न वहता न कूटा

न सारं । सुष हीन दुःख हीन चिन्ता न चारं ।। ३५ ।। थित हीन थानै न आसा न पासं । बैठा न चलि है देवै न दासं ।। ३६ ।। सूद्रै न खत्री न विप्रै न बंसै ।। गिर हीन तरहीन सरहीन हंसै ।। ३७ ।। जरणां न षीजै न कण ही न छोही । इन्द्री न धातै न मासै न लोही वार मार मति गति अगम । परै न पहुचै हाथ ।। जन हरिदास सो कौम है । भरै आम सूंवाथ ।। ३९ ।। मसि कागज पहुँचै नहीं । अगम ठौड़ है लोइ ।। जन हरिदास ऐसी कथा जाणौं विरला कोई ।। ४० ।। जन हरिदास अवगति अगम । जहाँ भ्रांति नहिं छोति ।। हम बात तहाँ की लिषत हैं । करि लेषणि विन दोति ।। ४१ ।। इति निरंजन लीला जोग ग्रंथ संपूर्ण ।। ग्रंथ ।। ३ ।।

विषय—निरंजन का स्वरूप वर्णन ।

संख्या ३६ जी. उतपति अहेत जोग ग्रंथ, रचयिता—हरीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ × ६ इन्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा ।

आदि—उतपति अहेत जोग ग्रंथ । व्योम नहीं वसुधा नहीं । पवन जल तेज न पाणी ।। द्यौस नहीं जारे राति वदि । कहै कौन विनाणी ।। १ ।। सात समद मरजाद । नहिं गिर भार अठारा ।। चौरासी लष जात । नहीं जद मंडल तारा ।। २ ।। आदि शक्ति स्यौ सेस । विष्णु ब्रह्मा नहीं आया ।। जन्म जुरा नहीं मौत । जीव नहीं काल न काया ।। ३ ।। पुरुष नारि रस पाँच । हाट पाटन न पसारा । दामिणि गगन न गाज । नहीं वरषा घण धारा ।। ४ ।। गरुड़ नौ कुली नाग । मंत्र गारुड न गहरं ।। डसण नहीं अहि डंक । नहीं इम्रत नहीं जहरं ।। ५ ।। बीर विदोषन पोष । भूत डाकण नहीं भेदं ।। भैंरो जोग न भोग । रस रोग रसना नहीं कंध न छेदं ।। ६ ।। सात वार रुति तीन । घड़ी मुहुरुति नहीं लोई ।। पहर दिन पष मास । वरस जुग वरनन कोई ।। ७ ।। युध्या त्रिध्या नभ नींद । सेझ सुष सोभन घरही ।। नहीं वैरी नहीं मित्र । नहीं निरभै नहीं डरही ।। ८ ।। सूद्र बैस खत्री मित्र । विद्या विस्तार न वादं । नहीं हिंदू नहीं तुर्क । सरा नहीं सवद न स्वादं ।।९।। नहीं चंद नहीं सूर । हारि हठ जीति न मनही ।। मुक्ति सिधि नौ निधि । चित नहीं चाहि न धन ही ।। १० ।। सिधि साधिक जोगी जती । पीर नही पैगम्बर ।। नहीं कुतुब नहीं गौस दत्त नही देव दिगम्बर ।। ११ ।। नहीं तपस्या जग जाग । नहीं करता नहीं कीषा ।। नहीं जोर नहीं जेर । जोग गोरष नहीं लिखा ।। १२ ।। नहीं सूर नहीं गाय । जिवहत तन तेग तूटा ।। नहीं हेत मुष हाथ । तदि स्वाद कहूँ लीया न छूटा ।। १३ ।। नहीं पाप नहीं पुनि । दया निरदै नहीं माषा ।। नहीं मोह नहीं दोह । दूत दुसह नहीं सुष दुष छाया ।। १४ ।। नही सील संतोष । गहर मति गुरू न चेला ।। नहीं ग्यान नहीं ध्यान । आप तदि अलष अकेला ।। १५ ।। नहीं विरह वैराग नहीं सेवग नहीं स्वामी ।। षट दरसन पष नहीं । तदि आथि अरचित वहौ नामी ।। १६ ।। महल दरगह सेज सुष । नहीं वहौ नारी छंदा ।। नहीं जोध जरकंब । नहीं गै गोड़ी करंदा ।। १७ ।। नहीं पाइक नहीं फौज । चूक न चाक न

घैरही ॥ सूम जाचिक दातार । नहीं कौड़ी नहीं करही ॥ १८ ॥ रैत नहीं राजा नहीं । दैत नहीं दै वाइर ॥ नहीं षत्री नहीं षडग । सूर रिन लरन कायर ॥ १९ ॥ नहीं नाद निसानं । है न बहता गै बावल ॥ नहीं सांवत नहीं सूर । भींव रिणहा कव कावल ॥ २० ॥ तदि स अषंडित राम । आथ अष साथी सोई ॥ सब जीवा का जीव । तास गति लषै न कोई ॥ २१ ॥ जहाँ तहाँ गोपाल । गोपी सब में गोपालक ॥ नहीं जोर नहीं ज्वान । नहीं वूढ़ा नहीं बालक ॥ २२ ॥ सिरजन हार अपार । नांव नाराइन लीजै ॥ निरामूल निरसिंधु । तहाँ फिरि सर्वसुदीजै ॥ २३ ॥ ए सब करि सबतै अगम । हरिजन हरिदास निरभै निडर ॥ प्राण हसै मोती चुगैं । मान सरोवर मंझि घर ॥ २४ ॥ जन हरिदास उदबुद कथा । परम गति गुर गभिल हिए ॥ घर वन गिरतर कंदरा । राम राषै तहाँ रहिए ॥ २५ ॥ संपूर्ण प्रतिलिपि ॥

विषय—सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय का दार्शनिक विवेचन ।

संख्या ३६ एच. बंदना जोग ग्रंथ, रचयिता—हरीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य और गद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा ।

आदि—अथ वंदना जोग ग्रंथ ॥ नमो नमो परब्रह्म परमगुरू नमस्कार ॥ आत्मा अभ्यास प्रमात्मा प्राननाथ ॥ परम पुरुष निरंजन निराकार ॥ निरामय निरविकार विकार ॥ निराधार अविनासी निभार ॥ एकंकार अपरंपार उदार पारब्रह्म करनहार करतार ॥ जगतगुरू अंतरजामी ॥ अजनमां अव जाननहार ॥ अजपाजाप ब्रह्म अगनि प्रकास ॥ अनेक असाध रोग जारनहार ॥ अलिप अछिप निरालंब निरलेप निरदंद ॥ निरमूल निरसिंध ॥ परम जोग परमभोग । परमगति निरगुन ब्रह्म परममति ॥ परम ग्यान परम ध्यान ॥ परम तेज परम जोति ॥ परम धाम परम विश्राम ॥ अधर अमर अलह अजर ॥ अतिर अथिर अषिर ॥ अपार अषार अधर मीठा मधुर अरग अभंग निभंग ॥ न मोह न छोह न भोग न जोग ॥ निरुलि निरोग ॥ संजोग वियोग न सांसा नहीं सोग ॥ हुवा न होसी न आवै न आया ॥ जनमै न जीवै न माया न छाया ॥ जागै न सोवै । न भूषा न धाया ॥ उठै न वैठै न रीझै न क्रोध ॥ जपहीन तपहीन ध्याने न वोधं ॥ इन्द्रीन ततहीन गातै न घातै न बनिता न सुतही न जनमे न तातै । न अलष पुरुष आठो पहर । करै वंदना कोई ॥ जन हरीदास काल वाण लागै नहीं । हरि भजि निरमल होई ॥ मन उनमन लागा रहे । कहा संझ्या कहा प्रात ॥ जन हरिदास तासाधकूं ॥ जम करि सकै न घात ॥ सिध साधिक की वंदना, ग्यान ध्यान धरि देष ॥ जन हरिदास एक अमर फल कर चढ्या । अपरंपार अलेष ॥ ५ ॥ बंदना जोग ग्रंथ संपूर्ण ॥ ग्र० ॥ ५ ॥

विषय—ईश्वर संबंधी दार्शनिक विवेचन ।

संख्या ३६ आई. वीरा रस वैराग जोग ग्रंथ, रचयिता—हरीदास, कागज—देशी,

पत्र—३, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—६७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा।

आदि—क्या कहिए कहणी कहा। रजमां रहणी माहीं॥ सो साहिब के हाथ है। यै तो अचरज नाहिं॥१॥ रहणि तौ जे हरि भजै। रहै निरंतर लागी॥ बलता बुझै अंगार सब। बहौड़ि न सलकै आगि॥ २॥ को चरजै को वंदि जै। को नींदै गहि छार॥ सेलै साध समाधि मैं। कलपै नहीं लगार॥ ३॥ जो कल्पै तौ कस रहै। कछुक रची मन माहीं॥ अगम तहां पड़दाइह। निजतन्त परस्था नाहीं॥ ४॥ ज्यौं हम देषैं त्यूं कहैं। ऊँची करि करि बाँह॥ कुरंग सिंघ वैसै नहीं। एक विरछ की छांह॥ ५॥ दुनिया सूं बांई दई। परमेश्वर सूं प्रीति॥ साधा का सुष अगम है। या कछु उलटि रीति॥ ६॥ कमरम कठिन रहणी कठिन। कठिन साध की टेक॥ ज्यां बातां साईं मिलै। सो कोइ विवेक॥ ७॥ विरह चोट लागी नहीं। साध सबद सुष दूरि॥ काम क्रोध मैं तैं मनी। पग दे सक्या न चूरी॥ ८॥ या बेदिन कटिबौ कठिन। जाणै बिरला कोई॥ दया जहाँ आरंभ नहीं। आरंभ दया न होइ॥ ९॥ दया देस जहाँ बास करि। निरभै पद भज राम॥ धीरज में धन मिलेगा। इहि औसर इहि काम॥ १०॥ मन चंचल निहचल भया। गड्या ग्यान की पालि॥ जाग्या सो भरमै नहीं। सूता पड़ै जंजाल॥ ११॥

मध्य—भरम छांड़ि भरमै कहा। करम कठिन छिन वात॥ राम कहत झड़ि जंहिगा। ज्यूं तरुवर का पात॥ २८॥ निसप्रेही निरभै सतै। सुनि सुधारस षाई॥ उलटा षेलि अकास मैं। सुष मैं रहे समाई॥ २९॥ लोका रंजन होत है। मनष जनम का भंग॥ हिरसध का देषात है। इहसकाचा रंग॥ ३०॥ जहाँ आयौ तहाँ ऊरमी। हिरस तहाँ व्यभिचार॥ ए दोन्यूं मोटी व्यथा। संतौ करौ विचार॥ ३१॥ राम रसाइन अजब है। दूजा रस करि दूजि॥ या वेदनि कौ हरि जाड़ि। है हाजरा हजूरि॥ ३२॥ नैड्या है न्यारा नहीं। न्यारा नैड्या नांहीं॥ परमेश्वर सब तैं अगम। व्यापि रह्या सब मांहि॥ ३३॥ मन मैला हरि निरमला। मन चंचल हरि थीर॥ मन थिर होइ न हरि मिलै। सांभलि आतम बीर॥ ३४॥ अब गति भजि आलस कहा। इहै बधिक फंद जाणि॥ राम विसार्‍यां होत है। मनष जनम की हाणि॥ ३५॥ ज्यों मकड़ी माषी गहे। पकड़ि कंठ ले जाई॥ यूं निगुसांवा जीव कूं। काल विधू सै आइ॥ ३६॥ माया दीपग देषीये। राम न सूझै पीव॥ आप अंधारे आप कै। पड़ि पड़ि दाझै जीव॥ ३७॥ धरम नेम तीरथ बरत। तुला तुलत है जाइ॥ छाज बजा वैड़ो करी। ऊँट खेत कूँ षाइ॥ ३८॥ राजा की चोरी करै। दुरै रंक की ओट॥ रंक ओट कहि क्यूं हलै। कहर काल की चोट॥ ३९॥ षांट गाइ करि वारणै। सुखी न देष्या कोई॥ लाल मारि चलि जात है। भंजन का भंग होइ॥ ४०॥ जल माया जीव माछली। सुषी वसै ता मांही॥ काल कीर वांसै वहै। निहचै छांड़ै नाहीं॥ ४१॥ लोक जाज सिर देत है। देत न लावै बार॥ सिर साहिब कूं सोंपता। तू क्यूं करै बिचार॥ ४२॥ सती जलै सूरा मरै। कठिन वात पलकाम॥

निसप्रेही निज साध कैं । राति द्यौस संग्राम ॥ ४३ ॥ अजब बात पैंडा अगम । जीव जागि सकै जागि ॥ मन रुजन तोसूं कहूँ । "इहु बीरा रस वैराग" ॥ ४४ ॥ कजली वन रेवानदी गै राषै मन माहीं ॥ ऐसे हरि सूं मिलै तो । फिर बिछड़ै नांहि ॥ ४५ ॥ पैंडे मरै तो परम सुष । पहुँच्या हरि सम होइ ॥ जन हरिदास हरि भजन की । षाटी लहै न कोई ॥ ४६ ॥ जन हरिदास कहि क्यूं डरै । राम भजन रस रीति ॥ भ्रुकुटी मांही देषीये । जाकी जैसी रीति ॥ ४७ ॥ इति श्री वीरा रस बैराग जोग ग्रंथ संपूर्ण ॥ ग्रंथ ॥ ९ ॥

विषय—वैराग सम्बन्धी दार्शनिक विवेचन ।

संख्या ३७ ए. गोपी श्याम संदेश, रचयिता—हरिदास "वैन", कागज—देशी, पत्र—५, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—९०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८७९ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० बद्रीप्रसाद जी, ग्राम—सिहोरा, पो०—महावन, जि०—मथुरा ।

आदि—••••••त भये सब गात । उधव पूछे नंद घरनि निकसत नहीं मुष वात ॥ १४ ॥ निकट अथाई जायकें ग्वाल बाल सब देषि । नंद बबा आनंद भयो, कृष्ण सखा मुष देषि ॥ १५ ॥ उधव रथ सूं उतरि के, कीनी चरन प्रनाम । नंद बबा ने कर गही, कृष्ण सखा ले नाम ॥ १६ ॥ वाषरि विषैं जु लै गये वैठारै पर जंक । चरन पषारे नीरसु पथ भाल स गयो निसंक ॥ १७ ॥ आसन दै भोजन रचे । सुत सनेह के भाय । पुत्र कुशल पूछन लगे । नंद जसोधा माय ॥ १८ ॥ शूरसेन के पुत्र की कहो परम कुशलात । कबहु कनुवा पुत्र ने कही हमारी बात ॥ १९ ॥ तुमऊ तौ पालागन कही सवहीऊं कुशलात । वृक्षलता अरु गोपजन षेले तिनके साथ ॥ २० ॥

मध्य—सुष तै सोये सैन में उठे होत परभात । उधव एक ब्रजांगना गहि बैठारे हाथ ॥ २३ ॥ सब गोपिन ने जान के उधव लीने घेर । कहौ कहा अब करि रह्यौ कितनी वाकी देर ॥ २४ ॥ पदुका का मुष देषि के प्रीत प्रेम करौ दूर । नाम जो जाकौ क्रूर हैं हमसूं वैर कियो अक्रूर ॥ २५ ॥ ब्रज स्त्रीन कूं त्यागि के पुर इस्त्री सुष पुर ॥ प्रान हमारे ले गयो हम सौं वैर कियो अक्रूर ॥२६॥ × × बड़ी प्रीति हमसौं करी नीर तीर हरे चीर । गोवरधन करपै धरयौ पर पड़ी जबै भीर ॥ ३८ ॥ ब्रज वन लता सुहावनी इनहिं देषि होय व्याधि । उधव तुम आये भले फेरि करावन व्याधि ॥ ३९ ॥ गोप ग्वाल ब्रजांगना गऊ वन रछया कीन । उधव डूबत ब्रज राष्यौ जबै इन्द्र कियौ ब्रत छीन ॥४०॥ × × पदु जाकौ लालन करैं पावन करै जुमाय । भोर मैं सुष ले रह्यौ गोद मैं पिता तासु नंदराय ॥ ४९ ॥ नंद नंदन यह कृष्ण कूं, सुत अपनो लियो मानि । उधव वह स्वामी त्रैलोक को यह निश्चय करि जानि ॥ ५० ॥

अंत—टेरि जसोदा यह कहे सुनियो उधव राय । मैया मइया तेरि दुषि तहँ वेगि षवर लेऊ जाई ॥ ६८ ॥ कृष्ण गऊ सुहावनी तृनन को नहिं षाय । यादि करैं वह कृष्ण की जिन पाल्यो पय प्याय ॥ ६९ ॥ उधव ब्रज सूं चल दिये मथुरा पहुँचे जाय । कृष्ण देषि

विह्वल भये दीनी सवरी कथा सुनाय ॥ ७० ॥ हाथ जोरि विनती करै सुनो जु ब्रज की रीति। गाय गोप ब्रजांगना तुम सूं जिनकी प्रीति ॥ ७१ ॥ गोपी स्याम संदेश में ब्रज दरसन भयो मोय ॥ जो याकू गावैं सुनौं अस्वमेध फल होय ॥ ७२ ॥ जो वल्लभ त्रै लोक को सो स्वामी लियौ मानि। तन मन सब अर्पि के करी भक्ति निसकाम ॥ ७३ ॥ अब जाचू जाचू कहा जाचू ब्रज गोपिन पद रेनु । मो तन पड़ैं उदास के सुषी रहै दिन रैन ॥ ७४ ॥ संवत् अठारै सै उनासिया तिथि तृतीया गुरुवार। कार्तिक कृष्ण जानिके गोस्वामी वैन कियो विस्तार ॥ ७५ ॥ स्वामी श्री हरिदास वंस में जानिये गुरु स्वामी रामप्रसाद। जिन चरनन की रेनुका हरिदास बैन सिरलाद ॥ ७६ ॥ इति सुभ भुयात ॥

विषय—उद्धव का श्री कृष्ण का संदेश लेकर ब्रज में जाना और गोपियों से वार्तालाप कर उनका संदेश लेकर वापिस मथुरा आना।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ का केवल पहिला पत्र लुप्त है। लिपिकर्त्ता के हस्त दोष से कविता बहुत सी जगहों पर विकृत हो गई है। जरा सावधानी से संपादन करने पर यह एक उत्तम कृति प्रमाणित हो सकती है। रचयिता के कुछ पद भी इसी हस्तलेख में आगे दिये हैं। उनके भी विवरण ले लिए गये हैं। लिपिकाल मालूम न हो सका। हस्तलेख के अंत के पत्र नष्ट हो गये हैं।

संख्या २७ बी. पदावली, रचयिता—हरिदास "वैन" (वृंदाबन), कागज—देशी, पत्र—२५, आकार १० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—६३०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८७९ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० बद्री प्रसाद जी, ग्राम—सिहोरा, डा०—महावन, जि०—मथुरा।

आदि—श्री बिहारी जी सहाय ॥ राग झंझोटी ॥ जे वृथा दिवस दिन वीते। नाम लियो नहीं छिनहू येक आठौं गांठे रीतै ॥ काल व्याल भै अबकौं व्यापौ सदा रहैं भयभीते ॥ दास वैन वसि कुंज विपिन की सबरे साधन जीते ॥ १ ॥ मेरे मन वसि गयौ कुंज विहारी लाल। मोर मुकुट पीताम्बर पहरे उर वैजंती माल ॥ अंबुज कमल नैन दल शोभित अलकैं श्याम विशाल ॥ दास वैन वलिहार माधुरी तिलक विराजत भाल ॥२॥ × × × सुनि मेरी सजनी स्याम विनायो नींद न आवै। भोर भये संग ले गये आगे साझ भये व्रज धावै ॥ लट पटे पेच समारत आवत वन माला उर लावै ॥ अगल बगल सब गैल मंडली वीच में गौरी गावै। कहि न परत छवि विधु बदनी की मधुरी वैन वजावै। मोर मुकुट चंद्रिका कुंडल अलकावली छिटकावै ॥ मो मन विह्वल होत दृगनि तकि मोसन नैन चलावै ॥ बुमक ठुमक पग धरत धरन पर धरनी मागि मनावै। दास वैन वस प्रेम मगन ह्वै सनमुष फूल बिछावै ॥ २९ ॥

मध्य—॥ श्री स्यामा कुंज विहारी नाम माला दास वैन कृत लिष्यते ॥ श्री स्यामा कुंज विहारी नमि गाऊँ। श्री स्यामा कुंज विहारी नाम गाऊं ॥ श्री श्यामा कुंज विहारी नाम गाय विपुल प्रेम पाऊँ। श्री स्यामा कुंज बिहारी नाम गुन रूप तन पहिराऊँ। श्री स्यामा

कुंज बिहारी नाम प्रान के प्रान जिवाऊँ ॥ श्री स्यामा कुंज विहारी नाम लेना ॥ श्री श्यामा कुंज विहारी नाम देना ॥ × × × अथ श्री स्वामी श्री हरिदास जी की वधाई ॥ मदलरा वाजिं रे आस धीर द्विज द्वार । फूले फूले फिरत सकल जन फूल्यो सव परवार । द्विज तिय आय असीस देत जननी कूं प्रगट भयो ललिता अवतार ॥ श्री सुकमार उदार वैन कौ यहि है मनोरथ पाऊँ गरकौ हार ॥ १२३ ॥

अंत—फूल वीनने की लीला ॥ वाजै अली लली की वोलैं सांझी वेलैं । देत असीस सबै भरि अंचल स्यामा स्याम । सषीसंग नितनित ऐसी कीजैं केलैं ॥ १५६ ॥ एरी वृषभान कुमरि फूल वीनन जाई । फूल वीनन चलि है वृंदावन संग सषि लीने चारि । ललिता विसाखा चद्रावली चंपकलता सुकुमारि ॥ १५७ ॥ ××× फूल वीनत दोऊ जने सहचरि नाना रंग विरंग । श्री सुकुमार उदार वैन कै स्वामी स्यामा राषौ अपने संग ॥ लली की सांझी चीतति कीरति माय । गीत वधाये मंगल चार गवाय ॥ चंदन अक्षत दूब कुंकुमा पंचरंग रंग मँगवाय ॥ वह मेवा पकवान मिठाई जलझारी धरवाय ॥ धूप दीप माला पुष्पन की अचवन देत सिहाय ॥ झालर घंटा नाद वजाय कंचन थार सजोय आरती अपने हाथ वनाय । पास किशोरी भोरी गोरी राधा हाथ लगाय । करत आरती आनंद वाढौ दीनो भोग वढाय । परम उदार सुकुमार बैन बलिहारी वार वार वलिजाय ॥ १६८ ॥ × × × रास लीला के पद चलि देषौ आली आजु हरि रास रच्यौ । विदाबन निज कुंज............अपूर्ण ॥

विषय—१-भक्ति विषयक पद, श्री कृष्ण जन्म समय के पद, बालक्रीड़ा के पद, राधा कृष्ण लीला के पद, पत्र—१७ तक । २—श्री स्यामा कुंज विहारी नाम माला, पत्र—१९ तक । ३—दधि लीला या दान लीला के पद, गोचारन के पद, निकुंज लीला बधाई के पद आदि, पत्र—२९ तक । ४—श्री स्वामी हरिदास जी की बधाई, पत्र—३३ तक । ५—सांझी के पद, फूल बीनने के पद, पत्र—३५ तक । ६—रासलीला के पद, पत्र—३५ तक ।

विशेष ज्ञातव्य—पदावली के केवल ३५ पत्रे प्राप्त हैं । आगे के पत्रे खंडित हैं । रचनाकाल "स्याम संदेश" के अनुसार रखा गया है । अंत के पत्रे लुप्त होने के कारण लिपिकाल ज्ञात न हो सका ।

संख्या ३८ ए. दैन्यामृत, रचयिता—रसिक सिरोमनि (हरिराय), कागज—बाँसी, पत्र—१०, आकार—९ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३२२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामकिशन दास, दाऊजी मंदिर, कालीदह, वृंदावन, मथुरा ।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ दैन्यामृत लिख्यते ॥ दोहा ॥ हीन महा जड़ जीव को कीयो कहा कछु होय ॥ हा नाथ हा प्राण पति दैन्य दान दे मोय ॥ नहिं साधन नहिं सम्पति लखिस करें उपाय ॥ भक्तन कौ धन दैन्य है फेरि गई निधि पाय ॥ ऊँचो ऊँचो सब कहें तूं नीचो होय खोज ॥ अपनो आपु देखियें तब आवत हैं रोज ॥ जो मेरी पें देहुगे तो मेरी कहा गति होय ॥ तुम अपनी अपनाइये अपनो जानो मोय ॥

सब जन सों नीचो रहैं येधों परम उपाय ॥ जैसे ठौर निचान में आपु ही ते जल आय ॥ ओरन को उत्तम गिनैं सो सर्वोत्तम सार ॥ रात दिना सोचत रहैं अपनो दोष विचार ॥

अंत—बार बार विनती सुनिये जू सूरति नाथ याके दोष गिनबे में रावरी न बड़ाई है। पग पग अपराध भस्यो कोन धों पुन्य करयो जन्म ते बनाई है पापन की घड़ाई है ॥ पापी पाखंडी तोहू जैसे तैसे तिहारे जू हम हैं बे लोक थोक विरह सूं लड़ाई है ॥ अति करूणा कीरत की संत मिल साख देत हा हा अब कैसी होत चींटी पै चढ़ाई है ॥ नहि देनी सो देत हो कहाँ लग लिखिये लेख ॥ अनहद करूणा रावरी विधि पे मारी मेख ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ट महाबाहु महा प्रीत ॥ जन्म जन्म प्रति दीजिए यो निज पद पंकज प्रीत ॥ सदा हीये में राखियो दैन्य अमोलक रतन ॥ याको वैरी देह में करियो बहोत जतन ॥ बार बार विनती करूँ सुनियो कृपा निधान ॥ मीन हीन कू दीजिए दैन्य महारस दान ॥ इति श्री दैन्यामृत सम्पूर्णम् ॥

विषय—पुष्टि मार्ग के दृष्टिकोण से दैन्य भाव द्वारा किस प्रकार और कहाँ तक भक्ति की जाती है, इसी का प्रतिपादन प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—जैसा कि साथ के अन्य विवरण पत्रों में बतलाया गया है रसिक शिरोमणि 'हरिराय' जी का उपनाम है। उनका यह ग्रंथ खोज में प्रथम बार मिला है। कविता बहुत अच्छी है। हरिराय जी का कविता पर कितना आधिपत्य था, इस ग्रंथ से पुष्ट हो जाता है।

संख्या ३८ बी. निरोध लक्षण, रचयिता—हरिराय जी (गोकुल), कागज—बाँसी, पत्र—५८, आकार—११ × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५२७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामदत्त जी, मु०—हाँतिया, डा०—नन्दग्राम, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः। अथ निरोध लक्षण की टीका लिख्यते ॥ तहाँ प्रथम मंगला चरन को श्लोक श्री हरिराइ जी कृत ॥ नमोस्तु कृष्ण लीलायो भुक्तानां व्रज वासिनाम् ॥ ततः श्री वल्लभाचार्या स्वकीयं तो विरोध कृत ॥ अब मंगला चरन में हरिराए यह कहत हैं जो ॥ जब श्री कृष्ण ब्रज में श्री नन्दराइ जी के घर प्रगट होइ के जो ब्रज सम्बन्धी लीला करी ॥ तामे अपने भक्त जो ब्रज भक्त तथा ब्रज में श्री नन्दराय जी श्री यसोदा जी ॥ सखा गोप सबन को निरोध कराय अंगीकार कीये ॥ तिनको मैं परम प्रेम सों नमस्कार करत हों ॥ सोई साक्षात् श्री कृष्ण भावात्मक स्वरूप श्री आचार्य जी महाप्रभू यह भूतल में प्रगट होइ ॥ स्वकीय नाम अपने अपने अंगीकृत भक्तन कों निरोध करत हैं ॥ सो निरोध को प्रकार तो जीव जानत नाहिं ॥ और विना जाने निरोध कैसे होइ ॥ सो निरोध जताइबे के लीए श्री वल्लभाचार्य जी निरोध लक्षण ग्रंथ आपु प्रगट कीयो हे ॥ ऐसे महोदार श्री आचार्य जी महाप्रभु तिनके चरन कमल को मैं बारम्बार नमस्कार करत हों ॥

अंत—काहे ते जहाँ सहज में भगवद् वार्ता करिए तहाँ सब तीर्थ चले आवत हैं ॥ तो जहाँ पुष्टि पुरुषोत्तम विराजत हैं ॥ तिनमें तीर्थ जो बुद्धिमहा अपराध हैं ॥ अपार तीर्थ

जो अनेक पृथ्वी पर हैं ।। तथा अंसकला अवतार के धाम हैं ॥ सो सब निरोध के आगे तुछ हे ॥ तामे यह निरोध के सो हे ॥ अत्यन्त परे ते परे जो सर्वोपरि श्री ठाकुर जी व्रज भक्तैन कों निरोध कीयो ॥ ताई प्रकार श्री आचार्य जी महाप्रभू यह पुष्टि मारग में निरोध प्रगट कीए ॥ सो यह निरोध श्री पूर्ण पुरुषोत्तम बिना और को ज्ञान हू नाही हे ताते प्रगट करो ॥ तामे यह निरोध लक्षण ग्रंथ सर्वोपर हे ॥ या प्रकार श्री आचार्य जी महा प्रभून ने निरोध लक्षण प्रगट कीयो ॥ अब श्री हरिराय जी कहेत हैं ॥ जो यह पुष्टिमार्गीय भगवदीय कों जा प्रकार यह निरोध में कहे हें ॥ ताई रीति सों सेवा में भगवद् गुन गान में स्थिति होइ जो कछू न बनि आवे तो नेम करिके भाव सहित यह निरोध लक्षण को पाठ अर्थ विचारि के करे तो श्री ठाकुर जी याहू पर कृपा करके भगवद् सेवा के योग्यता देइ ॥ पाछे निरोध सिद्ध होइ ॥ तातें क्षण क्षग में यह निरोध के प्रकार को चिन्तन करनो ॥ याई करके सर्व पदार्थ की सिद्धि होइगी ॥ निरोध हू होइगो ॥ इति श्री वल्लभाचार्य विरचितं निरोध लक्षण ताकी टीका श्री गुसाई जी कृत जाकी भासा हरीराय जी करी ॥

विषय—सांसारिक बातों का निरोध वल्लभ मत के अनुसार किस प्रकार से होना चाहिए और भगवद् भक्ति में किस प्रकार तल्लीन होना चाहिए, इसी का प्रस्तुत पुस्तक में प्रतिपादन है ।

संख्या ३८ सी. स्नेहामृत, रचयिता—रसिक सिरोमनि (हरिराइ), कागज—मूँजी, पत्र—३८, आकार—११ X ९ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—७९२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान - पं० रामकिशन दास, दाऊ जी मंदिर, कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) ।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ॥ अथ श्री स्नेहामृत ग्रंथ प्रारंभ ॥ दोहा ॥ रसिक सनेही दीनता भजन अनन्यता जुष्ट ॥ दया वैराग्य उदारता ते कहिये जन पुष्ट ॥ १ ॥ पुष्टि सनेही संम्प्रदा तहाँ नहिं नेक विरोध ॥ गुणातीत पथ पग धरैं पावें परम निरोध ॥ २ ॥ व्रज रतना ब्रजनाथ सूं कीनो सहज सनेह ॥ पुनि चौरासी जन कह्या द्वैसत बावन तेह ॥ ३ ॥ मुख्य अधिकारी अन्तरंग दामोदर वर दास ॥ क्षण वियोग नहिं सहि सकें श्री वल्लभ पद दास ॥ ४ ॥ पूरण नातो नेह को सर्वातम भयो भाव ॥ लिख्यो न काहू सों कह्यो अपनो मन अनुभाव ॥

अंत—दोहा ।। लोक विषें मन में भरयो, भर्‍यो द्गन में दोष ॥ याकूं यह रस कुपथ हें ज्योंजुर में पय पोष ॥ जाके घट चिर चीकने नहि पर सेंगे तेह ॥ रसिक होय सो देखियो हरि पद बढ़े सनेह ॥ वरन्यो सहज सनेह में रस अमल अमृत अनुपान ॥ संजीवन हैं विरही के हरि पल हैं प्रान ॥ हरे हरे मन हरत हो जरे जरे फिर जार ।। परे ढरे ढिग ढरत हो भले नीत परवार ॥ केऊ भरे केऊ भरत हो, ज्यों सावन को मेह ।। मोय देख के डरत हो भले निभावत नेह ।। दश नगर वन तन भया सबें कीए सरसान ।। रसिक सिरोमणि लाड़िलो व्रज रसिकन की खान ॥ इति श्री सनेहामृत सम्पूर्ण ।। शुभंभवतु ।।

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति संबंधी सिद्धांतों के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति और उनकी लीलाओं का वर्णन है।

विशेष ज्ञातव्य—'रसिक शिरोमणि' हरिराइ जी का उपनाम है। इनके रसिकराय, रसिक प्रीतम आदि और भी नाम विख्यात हैं। इनकी गद्य की कई अप्राप्य पुस्तकों के विवरण लिए जा चुके हैं। अब इधर कुछ पद्य की पुस्तकें भी देखने में आई हैं। ये संस्कृत के प्रकांड पंडित, ब्रजभाषा गद्य के महालेखक, उच्चकोटि के सहस्त्रों पदों के रचयिता, बीसों पुस्तकों के निर्माता और एक ऊँचे दर्जे के कवि हो गए हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में इनका उल्लेख होना आवश्यक है।

संख्या ३८ डी. कृष्ण प्रेमामृत भाषा, रचयिता—हरिराइ जी (गोकुल), कागज—बाँसी, पत्र—६८, आकार—१० × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४५६, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामदत्त जी, स्थान—हाँतिया, डा०—नन्दग्राम, मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ अथ स्फुरत कृष्ण प्रेमामृत ताकी भाषा लिष्यते॥ तहाँ प्रथम श्री हरिराइ जी श्री आचार्य्य जी श्री गुसाईं जी सों बिनती करत हैं॥ जो मोंको प्रेमामृत की टीका करिबे में योग्यता देहु॥ प्रेमामृत ग्रंथ श्री आचार्य जी महाप्रभून की कृपा ते श्री गुसाईं जी वर्णन कीए हैं॥ तामे श्री आचार्य जो को पूर्ण पुरुषोत्तम धर्म सहित जैसे श्री कृष्ण हैं ताही स्वरूप करिके वर्णन कीये हैं॥ ऐसे श्री आचार्य जी को में बारम्बार नमस्कार करत हों॥ सो मंगलाचरण एक श्लोक करि कहत हैं॥ नमो आचार्य लीलाब्धि प्रेम सिंधु महाध पानी पीयूष सर्व कृत् श्री विट्ठले नमोस्तुते॥

अंत—अब श्री हरिराय जी कहेत हैं॥ जो में यह स्फुरत कृष्ण प्रेमामृत की जो टीका कीयो हों॥ सो मोऊपर श्री आचार्य जी महाप्रभु आपु श्री गुसाईं जी की परम कृपा के बल में कीयो हे॥ सो काहे ते जो यह स्फुरत कृष्ण प्रेमामृत के सो हे॥ सब वेद पुराण शास्त्र श्री भागवद तिनमें सार जो फल रूप अमृत ताई को निरूपण और या ग्रंथ में एक जो श्री पूर्ण पुरुषोत्तम आचार्य जी महाप्रभु तिनही को वर्णन हैं॥ ताते जो वैष्णव है सो या ग्रंथ की टीका भाव सहित नेम सो पाठ करे॥ और ताह शी वैष्णव होइ तिनही सो मिलि के या ग्रंथ को भाव अर्थतत्व विचारनो और अन्य मार्गीय आगे या ग्रंथ को पाठ करनो नहीं॥ सो काहे ते जो॥ अपनो मार्ग है सो गोप्य मार्ग है॥ ताते ग्रंथ हू फल रूप हे॥ ताते गोप्य राषनो॥ ताते जो वैष्णव या टीका कों भाव सहित बाँचे कहैं सुने॥ तिनके हृदय में सर्वथा श्री आचार्य जी महाप्रभू आपु विराजत हैं॥ निश्चय ताते वैष्णव को नेम सो याको पाठ करनो॥ या प्रकार प्रेमामृत टीका सम्पूर्ण भई॥ इति श्री विट्ठलेश्वर विरचितं स्फुरत कृष्ण प्रेमामृत टीका हरिराय जी कृत समाप्त। श्री कृष्णाय नमः॥ मिती आश्विन सुदि १३ संवत् १८५७ पोथी गोकुल मध्ये लिषी देव करण वाह्मन जो बांचे ताको जै श्री कृष्ण॥

विषय—वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांतानुसार कृष्ण भक्ति और प्रेम रस का विशद वर्णन किया गया है।

संख्या २८ ई. सन्यास निर्णय, रचयिता—हरिराइ जी (गोकुल), कागज—मूँजी, पत्र—३७, आकार—१३ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३२१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामदत्त जी, स्थान—हाँतिया, डा०—नंदग्राम, मथुरा।

आदि—अथ सन्यास निर्णय ग्रंथ श्री आचार्य जी महाप्रभू कीए हे ताकी भाषा लिख्यते ॥ यह सन्यास निर्णय ग्रंथ है ॥ तामे भक्ति मारग सो सन्यास वर्णन है ॥ सो श्री हरिराय जी दोय श्लोक करिकें श्री आचार्य जी श्री गुसाईं जी सों प्रार्थना करत हें ॥ काहे ते प्रथम मंगलाचरण श्री आचार्य्य जी श्री गुसाईं जी कों कीए ते ॥ इनकी कृपा तें यह सन्यास निर्णय ग्रंथ अत्यन्त गूढ़ है ॥ ताको भाव हृदयारूढ़ होइ ॥ तब टीका करी जाइ ॥ काहे ते यह पुष्टि मारग के प्रगट कर्ता श्री आचार्य जी महाप्रभू हें ॥ ओर यह भक्ति मारग को प्रकास कर्ता श्री गुसाईं जी हें ॥ ताते दोउन की कृपा ते सकल मनोरथ सिद्धि होंइगे ॥ ताते दोइ श्लोक करि मंगलाचरन करियत हें ॥

अंत—इति कृष्ण प्रसादेन वल्लभने विनिश्चितं ॥ सन्यास वर्णं भक्तावन्यथा पतितो भवेत् ॥ याको अर्थ ॥ अब श्री आचार्य्यजी महाप्रभू कहत हैं। जो सब देवन के देव श्री कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम सब रिषि मुनि ब्रह्मा सिवादिक के ध्यान हू में दुर्लभ ॥ तिनके प्रसाद करिके में यह सिद्धान्त वर्णन कीयो है ॥ काहे ते में वल्लभ हों में श्री कृष्ण कों वल्लभ हों ॥ श्री कृष्ण मेरे वल्लभ हें ॥ ताते परम प्रिय जो श्री कृष्ण ॥ तिनके वल ते यह भक्ति मार्ग को सन्यास यह भक्तन को बिना श्रम सिद्ध होइ ॥ भगवान् सदा भक्तन पर कृपा करे ॥ सो वर्णन कीए ॥ ताते पुष्टि मारगीय वैष्णव कों कदाचित् दुसंग भए ते जीव स्वभाव ते चिन्ता होइ ॥ जो हम घर को त्याग कैसे करें ॥ श्री आचार्य जी की आज्ञा नांही ॥ सो चिंता सप्न में हू न कर्तव्य सुखेन पुष्टि मार्ग की रीति सों भगवद सेवा करे ॥ सगरी इन्द्रीन को महा प्रसाद सो पुष्टि करि इनकों भगवद पर करि अपने वस होइ ॥ व्यसन भगवान में होइ ॥ देहादिकन के दुष्ट सुख बाधक करे तो सुख न त्याग घर को करि मानसी सेवा में भाव सहित आश्रय करो ॥ यह प्रकार लीला में प्राप्त होइ ॥ तहाँ सरूपानन्द को अनुभव होइ ॥ यह परम फल रूप सन्यास ॥ ताते या प्रकार मेरी अज्ञा प्रमान जो चलेगो ॥ ताकों आगें फल होइगो ॥ जो मेरी अज्ञा ते अन्यथा रीति सो चलेगो ॥ सो सर्वथा परेगो ॥ या प्रकार भक्ति मारग को सिद्धान्त ज्ञान मारग को सिद्धान्त श्री आचार्य्य जी महाप्रभू दैवी जीवन के अर्थं निरूपन कीए ॥ सो अब श्री हरिराय जी कहत हें ॥ जो भक्ति मारग में आयकें पुष्टि मारग के फल जाके भाग में होइगो ॥ सो यह सन्यास भक्ति मारगीय परम रस रूप ताकी प्राप्ति अब होइगी ॥ यह सरव मारग को सार ही हे ॥ ताते में यह ग्रंथ को श्री आचार्य्य जी महाप्रभून के हृदय को आश्रय उनकी कृपा ते निरूपन कीयो हे ॥ दैवी सृष्टि के उद्धारार्थ हे ॥ इति श्री वल्लभाचार्य विरचितं सन्यास निर्णय ताकी टीका श्री हरिराय जी कृत सम्पूर्णम् ॥

विषय---पुष्टि मार्ग के अनुसार भक्ति रूपी संन्यास का महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य्य ने वर्णन किया है ।

संख्या ३८ यफ. वचनामृत, रचयिता---हरिराइ जी (गोकुल), कागज---बाँसी, पत्र---२७, आकार---११ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)---२५, परिमाण (अनुष्टुप्)---१२३१, पूर्ण, रूप---प्राचीन, गद्य, लिपि---नागरी, प्राप्तिस्थान---पं० मुरलीधर जी, स्थान---गाजीपुर, डा०---बरसाना, मथुरा ।

आदि---श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ श्री गोकुलेशो जयति ॥ वचनामृत लिख्यते ॥ श्री मुख कह्यो जे राजनगर के विट्ठलदास ने मोकू दोहो लिख्यो ॥ माहारे मन तुई कड़ो ताहारे मन सो लख ॥ वापी उड़ो पीउ पीउ करै मेघ न जाने दुख ॥ १ ॥ तव वाकु में दोहो लिख्यो हतो ॥ सज्जन कोई समुरता, अविचित चढ़ीया ॥ चित्र गयन्द मही बताने बहुर न उतरियाँ ॥ १ ॥ एक बार पंचोली ये पूछ्यु जे महाराज ॥ ध्यान तया सुमरण ते शुवेहु आके एक छें ॥ तिवारे श्री जी यो कहें ॥ ध्यान जुओ ने सुमिरण जू ओ ॥ ध्यान ताए जेहु स्वरुप छे तेह बु इन्द्रीयो बस करि ध्यान करो ॥ सुमरन तो जे है कि ठाकुर कौ चरित्र सुमरण जू ॥ ता सुमरण ता स्वरूप आपणी ध्यान माहि आवे ॥ एक बार सतिनी बात चाली ॥

अंत---श्री नवनीत प्रिया जी गजन धावना ने आप्याहता ॥ सेवा माटे ते पाते श्री आचार्य जी पासे पधरा व्यांयो तानी इच्छा थी ॥ तेवनी सेवा श्री गुसाईं जी करै महाराज तो सेवा मां आवे नहीं ॥ तव श्री नवनीत प्रिया जी ने श्री मदन मोहनजी वा श्री घनश्याम जी ॥ पन ते तो निपट लरिका ते बनी सेवा को को समे करें ॥ पन श्री वल्लभ घनु करैं ॥ श्री आचार्य जी नी माता ना ठाकुर ॥ पन तेव प्राकृत देव करी जानें ॥ श्री ए लंमा जी सामार्थ रहे ॥ देवी पूजे ॥ माटे श्री आचार्य जी नी माता ना ठाकुर ॥ पनतेव प्राकृत देव करी जानें ॥ श्री ए लम्बा जी सामार्थ रहें ॥ श्री आजार्य जी श्री नाथ जी ने छोवा देय नहीं ॥ ले अहंकारे जु आवे सांडी सेवा करे ॥ मन पूर्वक सेवा करो ॥ तो एक ठे बैठे ॥ फरी देवी जी जेठा के साड़ी पोते वैष्णव न्यारे एक ठा वेटा ॥ इति श्री वचनामृत सम्पूर्ण ॥

विषय---महाप्रभु श्री आचार्य वल्लभ ने भक्ति सम्बन्धी कई एक उदाहरण देकर समझाया है कि नवधा भक्ति के निमित्त वैष्णव को किस प्रकार आचरण करना चाहिए।

विशेष ज्ञातव्य---वल्लभ संप्रदाय में वचनामृत संस्कृत का सामान्य ग्रंथ है । उसी पर हरिराय जी ने भाष्य किया है। मूल संस्कृत के रचयिता श्री वल्लभाचार्य जी हैं । अनुसंधान में ग्रंथ सर्व प्रथम ही अनुमानतः प्राप्त हुआ है । इसकी भाषा विशुद्ध ब्रज भाषा नहीं कही जा सकती । इसमें गुजराती शब्दों की भरमार है ।

संख्या ३९ ए. वैद्य वल्लभ, रचयिता---कवि हस्ति, कागज---देसी, पत्र---२९, आकार---९ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)---१२, परिमाण (अनुष्टुप्)---६०९, खंडित, रूप---प्राचीन, गद्य, लिपि---नागरी, प्राप्तिस्थान---पं० मायाराम जी, मु० डा०---राया, जि०---मथुरा ।

आदि---...पल आध दीजे दिन ७ क्षीर षांड चावल मूँग मीठो और दीजे ५ उद्वेग भय शोक किंतु दिवा निद्रा च वर्जयेत । न कर्म क्रियते किंचित् साहनं सीत तपयोः ॥ ६ ॥ उद्वेग भय शोक न करै वीजो विष में काम न करे । सीत ताप नाम छै ६ एवं सप्तदिनं कुर्य्यात् वंध्या भवति गर्भणी । चक्रा का वारिणा पीता सगर्भा भामिनि भवेत ॥ ७ ॥ एवं दिन ७ कर वांझडी स्त्री गर्भवति होय । कांकसी जड़ पानी सौ पीता स्त्री गर्भ धरई वंध्या पुत्र जणै ॥

अंत---तदौषध समायाती पत्री पीप्पली केशरं । आकल्ला कंदेव पुष्पं सर्व संचूर्णं मेलयेत ॥ ४३ ॥ ते औषधी समभाग जावत्री पीपली केशरी आवल करो लवंगये सर्वं वाहि चूर्णं ॥ ४२ ॥ गो दुग्धेन गुटी कार्या वो लहि गुल गुगाल । हरे द्वात व्यथां सर्वं संधि वातं च दुसहा ॥ ४६ ॥ इति संग्रही वाते कणवी ॥ × × × अपूर्णं

विषय---१---सर्व स्त्री रोग प्रतिकार द्वितीय विलास, ६-९ तक । २---कास, स्वास, क्षय, सोफ, फिरंग, वायु, रक्तपित्त रोग प्रतिकार तृतीय विलास, ९-१३ तक । ३---धातु प्रमेह, मूत्रकृच्छ, श्मरि, लिंग दृढ़, गत काम, प्रकरण च० वि०, १३-१६ तक । ४---अतिसार, हृष, श्रोत वृद्धि आदि रोग प्रकार पंचम विलास, पृ० १६-१९ तक । ५---कुष्ट, विष, वरहल, गुल्म, मंदाग्नि, कमलोदर प्रतिकार षष्टम विलास, १९-२४ तक । ६---सिर करण क्षई रोग प्रतिकार, स० वि०, २४-२९ तक । ७---अष्टम विलास---स्त्री रोग प्रतिकार, २९-३४ तक ।

संख्या ३९ बी. वैद्य वल्लभ, रचयिता---कवि हरित, कागज---देशी, पत्र---२४, आकार---१० × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)---१३, परिमाण (अनुष्टुप्)---६२४, पूर्ण, रूप---प्राचीन, गद्य, लिपि---नागरी, लिपिकाल---सं० १९३५ वि०, प्राप्तिस्थान---पं० बीरवल, मु० व पो०---कोसी कलाँ, मोह०---गांगवान, जि०---मथुरा ।

आदि---श्री गणेशाय नमः ॥ अथ वैद्य वल्लभ लिष्यते ॥ सरस्वती हृदि ध्यात्वा नत्वा पाद पंकजं । सद्धस्ति रूचिना वैद्यवल्लभोयं विधीयते ॥ १ ॥ सरस्वती कूं हृदय में ध्यान करके उनके कमल रूपी चरणों में नमस्कार करता हूँ । हस्ति रुचि कवि करि वैद्य वल्लभ ग्रंथ कीजियत है । पूर्व दैद्येन विधिना विधाय रोग निर्णयं पश्चात्साध्यं यथा ज्ञात्वा ततो भैषज्य यतः सकल रोगेषु प्रोच्यते वलवान ज्वरः तस्मात रोग नासार्थं प्रोचत्ये हित मौषधं ॥ ३ ॥ पहिले वैद्य विधि करिकैं रोग निर्णय करै पाछें साध्य जान करि पीछे औषधि करै सर्व रोगन विषैं ज्वर वलवान हैं । तातें रोग के नासार्थ हितकारी औषध कहिये हैं । पूर्वं ज्वरे सदा कुर्यात् रेचनं रोग शांतये पश्चात् लंघन भैषज्यं कुर्वाणो जायते सुखी ॥ ४ ॥ पहिले ज्वर के विषैं रेचक करैं रोग शांति के अर्थ पीछे लंघन करै औषधि करैं तौ सुषी होय । अथ ज्वर चिकित्सा ॥ अमृता नागरं मुस्तानि साधन्व समांस कैः वात ज्वरे प्रदातव्यो कृष्ण शुक्तो कषायकः ॥ ५ ॥ इति वात ज्वरे ॥ गिलोय सोंठि मोथा हरदी धमासौ वरावर लै वात ज्वार काढौ करै पीपरी ऊपर ते गेरे वात ज्वर जाय ।

अंत---नष्ट काम रुचि कृत् विदधाति वीर्य वंगे स्वरोहि स्वर सेषु विशेष एव ॥४५॥ भयौ काम जागै वीर्ज बढै वंगेश्वर नाम जानिये। गो दुग्धेन गुटी कार्या बोल हिंगुल गुग्गुलं हरेद्वात्तव्यथां सर्वं संधि वातं चदुः सहं ॥ ४६ ॥ इति सर्वं वातः ॥ गाय के दूध सों गोली कर वेर प्रमान सिंगरफ गुग्गुल इनकरि वात व्यथा जाय। कण वीर स्वगः स्वर्णं बृहती कुसुमानि च हंसपाक कवा वेला नाग कर्पूर केसरी ॥ ४७ ॥ कनेर फूल, आरुफूल, धतूरे के फूल कटेहरी फूल हींगलू कवाव चीनी इलायची केशरी। लवंगा कल्लकं मिश्रां हेफेगोषण मस्तकी जातीफलं जाती पत्री सर्वं तुल्य विमर्दयत ॥ ४८ ॥ लौंग अकरकरा मिश्री अफीम मिरच मस्तगी जायफल जावित्री सब बरोबरि पीसै। क्षौद्रेण वा पत्र रसेन काया ज्वरातिसारामय नाशनी गुटी कफाग्नि वृद्धि वल वीर्य मुरादि साहेन विनिर्मिता स्वयं ॥ ४९॥ इति श्री वैद्य वल्लभे कवि वर्द्धनी ॥ हस्ति विरचिते षेशयोग निरूपनो नाम अष्टमो विलास संपूर्ण ॥ ८ ॥ हस्ताक्षर दूल्हैराम पुजारी गंगाजी के वासी कोसी के आषाढ़ शुक्ला ५ भृगुवासरे सम्वत् १९३५ वि० ॥

विषय---१---रोग निर्णय, ज्वर चिकित्सा, पत्र---१ तक। २---वातज्वर, कासज्वर, अतिसार ज्वर, ज्वर अंजन, पत्र---२ तक। ३---सर्वज्वर लेप, ज्वर गुटिका, ज्वर चूर्ण, ज्वर क्वाथ, पत्र---३-४ तक। स्त्री रोग प्रतिकार प्रोच्यते :— ४---गर्भविधान, योनि संकोचन, स्त्री धातु रोग, गर्भपात, रक्तवात, पुष्पगवन, गर्भनिवारण, लोमपात, पत्र—४---७ तक। कास स्वास प्रतीकारान्प्रोच्यतेः – ५---उत्तम गुटिका, लवंगादि गोली, चिंतामणि चूर्ण, कास, स्वास, क्षयरोग, सोफ, विस्फोटक वत, पत्र—७-८ तक। पुरुषार्थ प्रतिकार प्रोच्यते :— ६—पंचांग गोक्षुर चूर्ण, धातु प्रमेह, लिंगवर्द्धन, पत्र—८-१२ तक। गुदारोग :— ७—अतिसार, भल्लातक विचार, क्रमरोग, भगंदर, पत्र—१२-१४ तक। कुक्षिरोग प्रतिकारः— ८—ब्रज भेदी रस, इच्छाभेदीरस, कुष्टे, विषहरणं, वरहले, समुद्रलवन चूर्णं, मंदाग्नौ, कमल रोग, पत्र—१४-१६ तक। शिर रोग कर्ण रोगः-- ९—मुंठीपाक, नेत्र रोग, कर्णरोग आदि, पत्र—१६-१८ तक। १०—स्वान विष, मुषनासारक्त, पत्र—१८-१९ तक। ११—अथ सर्प, भूत्त प्रतिकार, पत्र—१९-२४ तक।

संख्या ३९ सी. वंध्याकल्प चोपई, रचयिता—हस्ति, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—९ × ५ इंच, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८२७ वि०, प्राप्तिस्थान पं० अंगनलाल जी द्विवेदी, मु० व डा०—राया, जि०—मथुरा।

आदि--॥ ६० ॥ अथ वंध्या कल्प चोपई लिख्यते ॥ पहिलु ते सरसति समरिने। गुरु पासीं मांगु मान रे ॥ हुँकहुँ पर उपगार हेति। वांझि वनिता आष्यान रे ॥ १ ॥ आख्यान प्रमेए हनि सूणि। एक चिंति नारि जे हरे ॥ तस दुखु दोहग दूरि जाई। लहे पुत्र फल ते हरे ॥ २ ॥ जे शास्त्र मांहि वरणवि। अत्तिनिच नारि जेह। सूप दीठी सकृत हारे। वांझि वनिता जेह ॥ ३ ॥ जे काम जाता मिलई सनमुष। तेहु इंति फल काम ॥ इह लोक

महिणां वहुत पामई । परलोक नल हे ठामरे ॥ ४ ॥ यतः अपुत्रस्य गति नीस्ति० ॥ जे पुत्र हे ति सति सूंदरी । नीच नरनि पासि ॥ द्रव्य देइ सकति सूरति पामी । सा शास्त्र कही सार्मासि रे ॥ ५ ॥ यतः यासति सूत कर्यार्थे नीच पार्श्वे धनेन च । भोगं कुर्वंति सा''' कवि कहे शास्त्रे वाह्मणीना ते······पचदश जाणि ।। ७ ॥ दूहा ॥ जंबू द्वीप मांहि भलो । भरत क्षेत्र सुविशाल ॥ अठोत्तर सो देशमां । सोरठ देश रसाल ॥ १ ॥ चौपई ॥ नयरि द्वारिका श्री कृष्ण राय । सेवें सुरपति जेहना पाय ॥ न्याय धर्म जगि वरते धरमो । तेज प्रताप सवल जे हनो ॥ तिणे नयरि इं सर्व सुखिया लोग । कहीं इं केहनेन हुइं शोक ॥ श्री ठाकुर जगदीन दयाल । चउदा भूवनन किरे प्रतिपाल ॥ २ ॥ इंद्रलोक न विदी सइंतसी । सोल सहस्र स्त्री रंभाजिसी ॥ सोलह सहस्र सेइं राजान । जे हनि अषंमित मांनें आणि ॥ ३ ॥ चोसठ लाष सिंधुर मलयता । त्रिण्य कोटि कुरिदी सेवता ॥ चौसठ लाष रथवली आमणा । पाला पयकनी नहीं मणा ॥ ४ ॥ लक्ष त्रिस वाजै नीसाण । बलभद्र बांधव मंत्री जाण ॥ अवर कुद्धि नो नलहुँ पार । श्री जगदीश अवतस्या संसार ॥ ५ ॥ जस नामें दुख दारिद्र जाय । पूरव भवनां दुरित पलाय ॥ जसि नांमि सव संपद आय । रिद्धि सिद्धि मंगल जस धाय ॥ जे मानव मुखि नहीं हरिनाम । ते नर नुंन विसिझइ काम ॥ ६ ॥ मानव रूप पशु कहीइं तेह । श्री हरि नाम जपे नहीं जेह ॥ ७ ॥ मकरो संगत तेहनि संत । जस मुषन दिसइं हरि गुणमंत ॥ ते हरि विलसे सुष संसार । सोल सहस्र स्त्री परिवार ॥ ८ ॥ रमणि स्युं रंगि रमता राति । त्र्यणसयां उपरिं स्त्री सात ॥ ते न हुइं कहीं इं गर्भवती । श्री हरि चिंति तव शुभ मति ॥ ९ ॥ तब लवणाधिप साध्यो देव । त्रिण उपवास करि करतां सेव ॥ प्रसन्न थई अन्याहरि पांसि । स्वामी काज कहो उल्लास ॥ १०॥ तब जगपति तस बोलिं इस्युं । नही स्त्रीनीं गर्भ कारण किस्युं ॥ तवते देव जणावइ वात । तेहतणो कहीइं अवदात ॥ ११ ॥ पहिले रोगें कमल संकोच । बीजि रोग पित्त अति सोच ॥ त्रीतें कमल अति जा सह । चाथइं कमल......॥ १२ ॥ पांचमी वाया कमल उपरि । छटीं पति···ल सुभरि ॥ पुरुष वांझ रोग सातवें । व...वांझ कही इं आठ मई ॥ १३ ॥ नवमें को डोक...मंझार । दशमि रोग वायु विकार ॥ मांस वंधाणं इं ग्यारमी । दृष्टि दोष कहीइं वारमी ॥ १४ ॥ तेरमें कमल सिरारुं धाइं । चउद में वीजन पडे जइवाय ॥ पनरमिं कर्म दूषण कहिवाय । शास्त्रि तेहनो नथी उपाय ॥ १५ ॥ दूहा ॥ देव वयण सुणि एहवां । वोलिं श्री हरि तास । ते किमि लहि इं रोगना । लक्षण कहुं सावास ॥ १ ॥ वलकुं ते सुरपति कहिं । सांभलि श्री वृजराज ॥ कहुं लक्षण सवि रोगना । लक्षण कहु सावासि ॥ २ ॥ ढाल चौपाई ॥ कमल संकोचन हुइं जेह नेइं । हईइं अद्रक घणी तेह नइं ॥ आलस सिर वहु आवइं वेग । मुख फीको अंगी उद्वेग ॥ १ ॥ पग पीडी डीलें दुषी घणु । ए लषण पहिला रोगनु ॥ वीजें रोगे पित्त अति सोच । तेह तणां लक्षण पभरझेस ॥ २ ॥ रहि रहि लौलोही कालुं जास । दाह सूल नें भूषका नास ॥ अंगे अवलत्ता भारै देह । तेह नां लक्षण वोल्या एह ॥ ३ ॥ मुष फेफर मुख पाणी घणूं । कटि दुषंइनि निर्वल पणु ॥ शूल स्वासनै वोडि भूष । वमन विरेचन कूषे कूष ॥ ४ ॥ देह सितनी बहुत डकार । उँधे कमहें ए आचार ॥ धाकु हीन ने दुर्बल देह । मांथूं कूष कटि दूषें जेह ॥ ५ ॥ × × ×

इमि सुखाणी सुणी सुष थाई । समझी थी हरि करे उपाई ॥ सथली नारि थई गर्भवति । श्री हरि पाउ नमिं सुरपति ॥ ३५ ॥ ते सुरपति निज थानि के जाय । इंम सांभलि जे करें उपाय ॥ प्रभु प्रसादे पोहचे तस आस । कहिं कवि हस्ति हरिनोदास ॥ ३६ ॥ एकै मनाएनि सुणि नारि । ते सुत सुख लहें संसार ॥ धूरि सिंधु रिवइजे हनुनांम । अतिकांति अभिराम ॥३७॥ सो मुनिवर ईम परनेहेति । वाझि उपाय भाष्यो संकेत ॥ ते मुनि वरनि पूरो आस । श्री हरिनाम सदा सुखवास ॥ ३८ ॥ इति श्री वंध्याकल्प चोपइ समाप्तं ॥ लिपितं पं० रत्न विजय गणि श्री भंगलपुर मध्ये संवत् १८२७ श्रावणादि इः ॥

विषय—श्री कृष्ण की सोलह सहस्र रानियाँ थीं, किंतु किसी की भी संतान न थी। श्री कृष्ण ने देवता की (संभवतः इन्द्र की) उपासना की। देवता ने वंध्यापन के सब रोगों का श्री कृष्ण से वर्णन किया और उनकी पहिचान तथा निराकरण भी बताया। यह सुनकर श्री कृष्ण ने तदनुसार कार्य किया और सब रानियाँ गर्भवती हुईं। वास्तव में इस पुस्तक में कहानी के रूप मे वंध्यापन के कारण और उस रोग की पहिचान तथा उपचार बताया है।

संख्या ४० ए. सुन्यविलास, रचयिता—श्री हजारीदास जी (उरेरमऊ, सुल्तानपुर), कागज—देशी सफेद मोटा, पत्र—१८, आकार—८ × ६$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५०, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, लिपिकाल—सं० १९८८ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० परमेश्वरदत्त जी, स्थान—जगदीसवापूर, डा०—इन्हौना, जि०—रायबरेली।

आदि—दोहा—प्रथम बन्दि सतगुर चरन, हरन भर्म भौ भार। दुतिय संत तृति राम जिउ, बन्दौं तीन प्रकार ॥ १ ॥ सर्वकाल जो एक रस, ताहि कहत जड़ मूढ़। जो उपजत बिनसत रहै, तापर सब आरूढ़ ॥ २ ॥ जड़ चेतनि दोउ सुन्य में, उपजि उपजि खपि जाहिं। सुन्य न उपजै नहिं खपै, मूरख खंडत ताहि ॥ ३ ॥

अंत—रेखता—गाफिल न होकर ले भजन हर वक्त हर दम राम का। जब तक तेरा दो चार दिन कायम है चोला चाम का ॥ करता है बातें ज्ञान की छूटी नहीं दिल से खुदी। शिकवा मुझे हर दम यही तेरी तबीयत खाम का ॥ जिसने दिया जामा बशर उसको न भूल ऐ बेखबर ॥ मायल हो अब उसकी तरफ कायल हो इस इलजाम का ॥ १ ॥ गुष्टि दो फकीर की बखान सुनि लेहु जुन बोलो एक बचन मालिक कैसे पायो है। दुनिया औ दीन दोनो दई है बिसरि मैंने मालिक दिदारि मुझे तब दिखलायो है ॥ दूजो बोलो आपने कमाल मेहनत करि तब वह मालिक दिदार दीद आयो है। आपको मैं भूलि गया वाही को सरूप भया, जित देखौ तित एक वाही दरसायो है ॥

विषय—शून्य-विलास ग्रंथ में महात्मा हजारी दास जी ने प्रथम श्री सतगुरु पुनः संत जन और श्री रामजी की वंदनाएँ की हैं। तत्पश्चात् शून्य की महिमा का तर्क पूर्ण एवं अति उत्तम वर्णन किया है। यह सिद्ध किया है कि सबका कारण यह शून्य ही है और

प्रलय होने पर भी शून्य ही शेष रह जायगा। चार प्रकार का ध्यान अर्थात् गुरु मूर्ति का ध्यान, अनहद का ध्यान, नाम का ध्यान, अधर का ध्यान इत्यादि लिखा है। पश्चात् आत्मा की निरूपण किया है। आगे प्राणायाम के प्रकार और साधन करने की विधि भी लिखी है। चौदह विद्याओं के नाम और सम्पूर्ण योनियों का वर्णन किया है। चार प्रकार की वाणी, चार अवस्था और दस प्रकार के अनहद नादों का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। यज्ञ का वर्णन भी किया है। अन्त में प्रेम का निरूपण करके ब्रह्मज्ञान का विवेचन है। भाषा उत्तम और रोचक है।

विशेष ज्ञातव्य—श्री महात्मा हजारी दास जी मैनपुरी के चौहान क्षत्रिय थे। इनके गुरु गजाधर दास जी जिस फौज में नौकर ते उसी में ये भी थे। वहीं पर गुरु शिष्य का सत्संग हुआ और पेंशन पाने पर दोनों ही महानुभाव भूलामऊ जिला बाराबंकी में रहने लगे। श्री गजाधर दास जी भी बड़े महात्मा और कवि हुए हैं। श्री हजारीदास जी भी अच्छे महात्मा और कवि हुए हैं। जनश्रुति है कि आपके बनाये हुए ६० ग्रंथ हैं, परन्तु ७ ग्रंथ मेरे देखने में आए हैं:—१-स्वांस विलास, २-काया विलास, ३-सुन्य विलास, ४-त्रिकाण्ड बोध, ५-शब्द सागर, ६-रामाष्टक, ७-विपर्यय की टीका। इनकी भाषा व्रज और अवधी का मिश्रण है। संस्कृत शब्द अधिक पाये जाते हैं। कविता की भाषा ओज गुण पूर्ण है। रेखता उर्दू में भी कहे हैं। पुस्तकों में नाना प्रकार के छंद पाए जाते हैं।

संख्या ४० बी०. त्रिकांड बोध, रचयिता—हजारी दास जी (उरेरमऊ, जिला सुल्तानपुर), कागज—देशी, पत्र—२१०, आकार—७ × ५ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८६९ वि०, लिपिकाल—सं० १९४० वि०, प्राप्तिस्थान—अनंत श्री महन्त चन्द्रभूषण दास जी, स्थान—उमापुर, डा०—मीरमऊ, जि०—बाराबंकी।

आदि—दोहा—सुमिरि सच्चिदानन्द घन, जग जीवन सुष कंद ॥ सतगुर पूरन ब्रह्म सोइ भनत नेति जेहि छंद ॥ १ ॥ जाको कौतुक देषि कै चौदह लोक चवान ॥ सबके पास प्रतक्ष है परत नही पहिचान ॥ २ ॥ सोइ जगजीवन जग्त पति जग मगात सब वोर ॥ संता तेहि परकास ते घट घट माहि अँजोर ॥ ३ ॥ संता जग जीवन बिना जीवन को फल कौन ॥ बिन पति की पतिनी तथा जथा मनुष बिन भौन ॥ ४ ॥

अंत—सुद्ध होय हिय कर्म करि भग्ति करै परकास ॥ लहै मुक्ति पद ग्यान ते बरनत संता दास ॥ भानु ग्यान हरि चष भजन कर्म मुकुर जेहि पास ॥ सो देषै निजरुप को वरनत संता दास ॥ कर्म उभय निसि पाष जुत, भग्ति जथा भिनसार ॥ ग्यान भानुसम जानिये संता कहत विचार ॥ विमल कम करि देह ते, मन ते सुमिरै नाम ॥ लषै ग्यान ते रूप निज, संता आगै जाम ॥ संवत् दिक श्रुति[४] बान[५] सत तिथि हरि माधौ मास ॥ सुक्लपक्ष दिनकर देव सपूरनै ग्रंथ विलास ॥ × × ×

विषय—इस ग्रंथ में अनंत श्री महात्मा हजारीदास उपनाम 'संतदास' जी ने तीन कांड—कर्म, उपासना और ज्ञान का तीन भागों में विशद विवेचन किया है। इसमें संत

मत के सम्पूर्ण अंगों का वर्णन किया है। चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण और वेदांत आदि का सारांश इस ग्रंथ के भीतर लिखकर आश्चर्यजनक कार्य किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म, जीव, माया, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि प्राचीन मतों तथा अन्य नये मतों का विवेचन भी पूर्ण रूप से किया है। कहीं-कहीं बीच-बीच में छोटी-छोटी कथाएँ सिद्धांत को दृढ़ करने के हेतु लिखी गई हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, शरीर की उत्पत्ति, पाँच इन्द्रियाँ, पचीस प्रकृति, पंचीकरण, गुरुमाहात्म्य, ज्ञान, ध्यान, भक्ति आदि के भेद और रीति, संत मत, रहनी, गहनी आदि एवं शांत रस और महात्माओं के विषय में कोई बात ऐसी नहीं है जिसका आपने वर्णन न किया हो। काव्य के विचार से भी यह ग्रंथ उत्तम है। कविता ओज गुण पूर्ण है। कहीं-कहीं ग्रामीण शब्द भी बीच-बीच में आ गए हैं। संतमत का ऐसा उत्तम ग्रंथ 'सुन्दर विलास' को छोड़कर और कोई नहीं देखने में आया। पुस्तक नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित करने योग्य है।

संख्या ४१. बारहमासी, रचयिता—लाला हजारी लाल (पुवायाँ), कागज—देशी, पत्र—५, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१००, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मुन्नालाल जी द्वारा चौधरी जनक सिंह जी, स्थान—जायमई, डा०—भदान, जि०—मैनपुरी।

आदि—कातिक असुरदल भागा धनुष टंकोरा। गहि गहि के मारे वान एक नहिं छोड़ा॥ सूपनिषा असुर की बहिन लगी यों कहन सुनौं रघुराई। मोहि राखो अपनी सरण करौं सेवकाई॥ रघुबीर कह्यो सुन नारी। तुम मानों सीष हमारी॥ तुम जाय लषन को हेरो। तोहि जोवन रूप घनेरो॥ तव लछिमन पास जब गई विथा सब कही सरण तोरे आई॥ मोहि राखो अपनी सरण करौं मैं सेवकाई॥ लछिमन ने नाक लई काटो रूप दौ बाँटि चली अत्र रोई। सियाराम भजन बिनु किये मुक्ति नहिं होई॥ २॥

अंत—जब लगा महीना कुवार वीररस जगा दसेहरा पर्छे। रावन के ऊपर वान मेघ जल वर्षे॥ रघुनाथ मारि दससीस काटि भुज बीस एक सर माई॥ तिहुँ पुर में जय जय भई सुमन वर्षाई॥ रघुनाथ प्रतिज्ञा कीनी। जिन लंक विभीषण दीनी॥ जहँ मिली जानकी आई॥ तिन वाँदर रीछ जियायी॥ लै संग अवधपुर गए भरत को मिले मातु सुख होई। सिया राम भजनु बिनु किये मुक्ति नहिं होई॥ १३॥ जब लगा महीना लौंद राम घर आये। सब लोग हुए आनंद राम मिलने को धाये॥ हजारी लाल पुवायें वासी गावै वुह बारहमासी। नंगू लाल के कहो सुनो सब कोइ। पढ़ै पढ़ावै आनंद अमर पद होई॥ अकाल मृत्यु वचि जाय कहो जो कोई। सिया राम भजन विन किये मुक्ति नहिं होई॥ १॥ ॥ इति बारह मासी रामचंद्र लंका जीत॥ लाला हजारी लाल कृत सम्पूर्ण॥ समाप्तम॥

विषय—बारहमासी के रूप में रामचंद्र जी की लंका विजय का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत छोटी सी पुस्तक पुवायाँ निवासी लाला हजारी लाल की रची हुई है। इसका रचनाकाल उन्होंने नहीं दिया। ग्रंथ में श्री रामचन्द्र जी की लंका विजय और सूर्पणखा अंग भंगादि का वर्णन प्रसंगानुसार संक्षेप रीति से किया गया है।

प्रत्येक महीने की पूर्ति पर 'सियाराम भजन विनु किये मुक्ति नहिं होई।' यह टैक लगाई गई है ।

संख्या ४२. नि० पद, रचयिता—इच्छाराम, कागज—देशी, पत्र—८४, आकार—११×८½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५४१, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० गोविंदराम अधिष्ठाता, मंदिर नंदबाबा, किला—महावन, जि०—मथुरा ।

आदि—गोधन लिए करत क्रीड़ा परम ॥ विनहि भोजन किये, छाक छींकनि लिये विधि रस केलि को जानि जिय को मरम ॥ १ ॥ कोऊ गति हंस कोऊ अंस वाही दिये कोऊ कूदत चलत जैसे मानो हरिन । कोऊ कपि पूछ गहि बैठे चढ़ि रूषपैं कोऊ कोऊ दग मिल चपैं षेलराही करन ॥ २ ॥ कोऊ वक ध्यान धरैं मुष गान कोऊ करैं पक्षी पछांही पाछै ही कोऊ पनन ॥ कोऊ मणिकांच उर हार गुंजा धरैं कोऊ श्रग मुरली कर मुकुट मस्तक ललन ॥ ३ ॥ पहिरें तन पीत पट कटि कौंधनि कनक की कुटिल कुंतल मणि जटित कुंडल करन । उडगन मध्य राकापति ज्यौं सषि गोप मध्य तैसे गोपाल साँवरे वदन ॥ ४ ॥ शेष मुष सहस जाको पार पावत नहीं मोपै रसना येक कहाँ लौं करौं वरन । दास इच्छाराम लाल गिरिवर धरन करौं विन पार भवसिंघु तारन तरन ॥ ५ ॥ ४ ॥ × × × ॥ गोरी ॥ मूल ताल ॥ श्री देवकी नन्द चरन सरणं । श्री वल्लभ वीठल रघुकुल मैं गिरधर सुत असरण सरणं ॥१॥ तैलंग कुल द्विजराज सिरोमणि निज न पोषण वपु धरणं। रोस न रंच कृपा दग चितवनि दीननकै दुषभै हरणं ॥ २ ॥ प्रफुलित वदन सदन सोभा को जस विलान जग विस्तरणं । श्री गोकुल चंद मदन मोहन द्वै सेवा अनुदिन चितधरणं ॥ ३ ॥

अंत—श्री आचार जी ॥ राग वसंत ॥ हेरी माइ माधो मास पछ कृष्ण एकादशी प्रगटे श्री लछमन नंदन री । श्री पुरुषोत्तम अस्य श्री वल्लभ अवनीपर अवतार किनो सो माया मत जिन षंडवरी ॥ १ ॥ दैवी जीव उधारन कारन मारग पुष्टि प्रकास द्विजवर तैलंग कुल मंडनरी । दास इच्छाराम गिरिधर आप श्री विठ्ठल रूप धरयौ सो जिनके ग्रह जगवंदन री ॥ २ ॥ रागदेव गंधार ॥ प्रगटै श्री विट्ठलनाथ उदार । श्री वल्लभ द्विजराज सिरोमनि ग्रह लीनो अवतार ॥ १ ॥ माया मत षंडनकार थाप्यौ मारग पुष्टि प्रकार । दैवी जीव उधारन कारन तैलंग कुल उजियार ॥ २ ॥ नंद सदन ज्यौ लाड़ लड़ावत मथि श्रति वेद विचार । इच्छाराम गिरिधरन लाल पुनि रूपपधरयौ निरधार ॥ ३ ॥ × × × ॥ देव गांधार ॥ हमारे श्री वल्लभ देव धणी । अवर आस कोनी नव राष्ट्र देवी देव तणी ॥ १ ॥ लौकिक धर्म मूकि ने चाल्यौ मारग पुष्टि भणी । असमर्पित अन्या श्रेत जते आंण न कोनी गणी ॥ २ ॥ चार पद रथ त्रयवत तेठिने रिधि सिधि दासी घणी । इच्छाराम श्री देवकी नंदन पाम्यौ चिन्ता मणी ॥ ३ ॥ ४ ॥ × × ×

विषय—१—भगवान श्री कृष्ण की क्रीड़ा संबंधी वर्णन तथा आरती, पत्र ३६ तक ।

२—मानपद, ,, ३८ तक ।

३—रास, ,, ४० तक ।

४—विवाह के पद,	पत्र	४१	तक।
५—षिचरा के पद,	,,	४२	तक।
६—दिवारी के पद,	,,	४२	तक।
७—राग वसंत के पद,	,,	४५	तक।
८—होरी के पद,	,,	५८	तक।
९—फूल रचना के पद,	,,	५९	तक।
१०—हिंडोरा के पद,	,,	६१	तक।
११—लाल जी की बधाई लिष्यते,	,,	७०	तक।
१२—ठकुरानी जी की बधाई,	,,	७४	तक।
१३—सांझी के पद,	,,	७५	तक।
१४—रघुनाथ जी के वसंत पद, होरी, पवित्रा रघुनाथ जी को, जानकी जी की बधाई,	,,	७७	तक।
१५—हनुमान की बधाई, जमुना जी की बधाई,	,,	८४	तक।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत 'नि० पद' ग्रंथ इच्छाराम कवि का बनाया हुआ है। ग्रंथ के देखने से पता चलता है कि यह बड़ा ग्रंथ रहा होगा। रचना उत्तम है। लेखक के विषय में कुछ अधिक ज्ञात न हो सका। इसका कारण यह है कि इधर पुस्तक स्वामियों में यह अंध विश्वास फैला हुआ है कि ऐसी पुस्तकों की कीमत मिलती है। कहते हैं कि सभा पुस्तकों को बेचकर रुपया कमाएगी और ग्रंथ स्वामियों को कुछ नहीं मिलेगा। इसके उत्तर में जो कुछ कहा जाय वह वृथा है, वे सुनने को तैयार नहीं होते। इस ग्रंथ के विवरण लेते समय भी यही बात हुई। केवल कुछ देर के लिए ही ग्रंथ मुझे देखने को मिला। जिस हस्तलेख में यह ग्रंथ है उसमें और ग्रंथ भी लिपिबद्ध हैं, किंतु मैं लाचार था। मुश्किल से इतना ही लिख पाया। यदि फिर प्रभाव डाल सका तो लेखक के बारे में कुछ और बातें ज्ञात होंगी नहीं तो इतने पर ही संतोष करना पड़ेगा। पुस्तक में श्री कृष्ण की समय-समय की क्रीड़ाओं का वर्णन पदों और राग-रागनियों में किया गया है। वर्णन मनोहर, भावमय और उत्कृष्ट है। पुस्तक प्रकाशित होने के सर्वथा योग्य है। ग्रंथ का पूरा नाम मालूम न हो सका॥

संख्या ४३. चौरासी बोल, रचयिता—जगन्नाथ, कागज—देशी, पत्र—५, आकार—६$\frac{1}{2}$ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भूदेव शर्मा, स्थान—छौली, डा०—श्री बल्देव, जिला—मथुरा।

आदि—अथ चौरासी बोल लिष्यते॥ दोहा॥ नकारो नेर सो वचन नटतांही उपजै दुष। यूं चौरासी जाइगा नटै तो वरतै सुष॥ १॥ मिनष जनम कूं पाइकै टालै इतना दोष। तो जगन्नाथ नर नारिको सुधरै लोक पर लोक॥ २॥ छंद॥ राम सुमरता थकिये ना॥ १॥ गुरू सेवा में लुकिये ना॥ २॥ करणी करि गरवाजै ना॥ ३॥ नित्त को नेम

घटा जै ना ॥ ४ ॥ दान देत अस लाजै ना ॥ ५ ॥ संत देषि टलिजाजे ना ॥ ६ ॥ लछि बिनि सीस नेवाजै ना ॥ ७ ॥ सांची बात उठाजै ना ॥ ८ ॥ नीची संगति कीजै ना ॥ ९ ॥ सांची परिहरि पीजै ना ॥ १० ॥ नरप सुंवाद वदी जै ना ॥ ११ ॥ ओछी अकलि उपाजै ना ॥ १२ ॥ दया पालतां लजिये ना ॥ १३ ॥ भाग भरोसो तजिये ना ॥ १४ ॥ आप बड़ाई कीजै ना ॥ १५ ॥ दान उदक फिरि लीजै ना ॥ १६ ॥ दान दियां पछितै जै ना ॥ १७ ॥ गुरू को ग्यान लजाजै ना ॥ १८ ॥

अंत—झूठो दूषण दीजै ना ॥ ७९ ॥ निबलो सरणौं लीजै ना ॥ ८० ॥ मूरष नै बतलाजै ना ॥ ८१ ॥ धन विन अरथ गुमाजै ना ॥ ८२ ॥ लेता देता लजिये ना ॥ ८३ ॥ झलमण सी कूँ तजिये ना ॥ ८४ ॥ दोहा ॥ कै चौरासी सुभ असुभ, कह्या ठाम का ठाम। जगन्नाथ कहिये सवैं, जव लग ग्रह विसराम ॥ १ ॥ ईं चलगति चाले सुघड, लोभ लाक है सब कोइ ॥ निहचै या वा लोक में, पलो नमकडै कोइ ॥ २ ॥ या चौरासी चित्त धरै, तोवा, चौरासी वादि ॥ अपने अपने हाथ है मनमानै जो साधि ॥ ३ ॥ बारबार नर तन नही कहै सास तर संत। तातै सुक्रत कीजिये कै भजिये भगवंत ॥ ४ ॥ जैन जवन सिवधर कहै, करणी सुधरै काम दया धरम इकतार सूं, जगन्नाथ कहो राम ॥ १५ ॥ इति ग्रंथ चौरासी वोल संपूर्णम् ॥

विषय—भगवद्भक्ति और पारमार्थिक तथा जगत व्यवहार में न बरतने योग्य चौरासो बातों का उल्लेख किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ पूर्ण है। लेखक कोई जगन्नाथ हैं। इन्होंने अपने विषय में विशेष कोई बात नहीं लिखी है। रचनाकाल और लिपिकाल भी नहीं दिए हैं।

संख्या ४४. नाड़ी ग्यान प्रकास, रचयिता एवं संग्रहकर्त्ता—जगन्नाथ शास्त्री, कागज—देशी, पत्र—१४, आकार—$8\frac{3}{4} \times 6\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—५४६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० सुखनन्दन जी शर्मा, स्थान—चंदरपुर, डा० —जसवंत नगर, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ नाड़ी ज्ञान प्रकास ॥ भाषा टीका सहित ॥ ॥ मंगलांच ॥ ध्यायेत वालं प्रभाते विकसित वदनः स्फुल्ल राजीव नेत्राः मुक्ता वैदूर्यं गर्भ रूचिर कनक जैर्भूषणौ भूषिता गामे। विद्युत कोटि छटां भायरि वहलां दिव्य सिंहासनास्यां गोछैंवी तस्य दासी भवति सुरवनं नंदन केलि गेहम् ॥ १ ॥ टीका ॥ हम प्रात समय श्री वाला का ध्यान धरते हैं। कैसी है वाला कि प्रफुल्लित है मुख फूल कमल के समान नेत्र मोती और वैदूर्य मणि करिके जटित सुन्दर सुवर्ण के भूषण करके भूषित है देह कोटि विजली के समान प्रकाश बहुत सी सुगन्ध युक्त देह श्रेष्ठ सिंहासन पर स्थित ऐसी वाला का जो मनुष्य ध्यान करता है तिस पुरुष की सरस्वती दासी हो और देवतों का नंदन बन क्रीड़ा का स्थान हो ॥ १ ॥

अंत—अवस्थागत नाड़ी की चाल लिखते हैं ॥ जन्मकाल से परमित काल पीछे एक वर्ष पर्य्यन्त १ पल में वावन बार नाड़ी चलती है ॥ और एक वर्ष पीछे दो वर्ष तक एक

पल में ४४ बार चलती है ॥ दो वर्ष पीछे तीन वर्ष तक एक पल में ४० बार चलती है ॥ तीन वर्ष की अवस्था से सात वर्ष की अवस्था तक नाड़ी एक पल में ३६ बार चलती है । और सात वर्ष की अवस्था से चौदह वर्ष की आयु तक ३४ बार ॥ चौदह वर्ष से तीस वर्ष तक ३२ बार ॥ तीस से पचास वर्ष तक, तीस वर्ष, और पचास वर्ष से अस्सी वर्ष तक एक पल में २४ बार नाडी चलती है ॥ इति श्री जगन्नाथ शास्त्री ॥ कृत नाड़ी ज्ञान प्रकाश॥ समाप्तम शुभम् ॥

विषय—नाड़ी पहचानने की विधि ।

विशेष ज्ञातव्य—पुस्तक संस्कृत के श्लोकों में है और टीका हिन्दी गद्य में । प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में दो चार दोहे भी दिए हैं । इसका विषय नाड़ी ज्ञान कराना है । रचयिता का नाम केवल ग्रंथान्त में दिया है । उसका विशेष परिचय नहीं मिलता ।

संख्या ४५. वैराग सत, रचयिता—जन जैकृष्ण, कागज—देशी, पत्र—१५, आकार—६ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—११२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३४ वि०, प्राप्तिस्थान—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री वल्लभ कुल दीपमनी, श्री परसोम नाम ॥ सुमरि सदा जै कृष्ण जन, करि बारम्बार प्रनाम ॥ १ ॥ वरन वीमल वैराग सत, सुनि उपज्यौ वैराग । विन वैराग न पाइहै गिरधर को अनुराग ॥ २ ॥ छाया सूरज पाइहै भाषा औ भगवान ॥ द्दष्टि देइ जब एक कौं, तव देषै एक प्रमान ॥ ३ ॥ जब लगि माया द्दष्टि पथ, तव लगि प्रभू है दूर । द्दष्टि दिये प्रगट निकट रहै नैन भरि पूर ॥ ४ ॥ कनक कामनि अंग दै माया के जगमाहि । जब लौं इनसौं हित अहै तब लौं ठरि हित वाहि ॥ ५ ॥ काम क्रोध मद मोह भ्रम लोभ छोभ अहंकार । कनक कामिनी सौं लगे प्रगट होत संसार ॥ ६ ॥

अंत—अपनी जानसि देह कौ मनि लोभै तू सुष । यइ नहिं संग सिधारि है तू पावैगो दुष ॥ ९९ ॥ यह देही ठगनी अहे ठगें दहत है लोग । बचे जे हरि चरनन रचे तजै विषै रस भोग ॥ १०० ॥ जो कोउ यह बैराग सत पढै सुनै सुषदाइ । जन जै कृष्ण लहै सु हरी मन निरमल ह्वै जाइ ॥ १०१ ॥ इति श्री वैरागसत संपूर्ण समाप्तम् ॥

विषय—वैराग्य संबंधी विषय का वर्णन किया गया है ।

विशेष ज्ञातव्य—इस 'वैराग सत' में कुल १०१ दोहे हैं । रचयिता का नाम स्पष्ट दिया है और रचना को पढ़ने से वे 'हित हरिवंश' के शिष्य परंपरा के विदित होते हैं । रचनाकाल और लिपिकाल नहीं दिया है । लिपिकर्ता ने यत्र तत्र बहुत भूलें की हैं ।

संख्या ४६. श्री कृष्ण चंद्र लीला ललित विनोद, रचयिता—जनराज, कागज—देशी, पत्र—४४, आकार—८½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—९९०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० उमाशंकर जी द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य, पुराना शहर वृन्दावन, जि०—मथुरा ।

आदि—......भयो बल में । विय जंगम धरो जमुना जल में । उबटे घनस्याम अही जबही । जल उन्नत अति भये तवहीं ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ कारी सौं लपटै सुनत बृज मैं परी हुँकार । ठौर ठौर घर अरिन तै आत चलै नर नारि ॥ ४५ ॥ मनहर ॥ परिहै पुकार वृजषंड धाम धामनि में सुनिके सकल वृजवासिन उपटिगौ । तरुनि के तीर तीर भीर नर नारिन की कुंज वन वीथन प्रचंड गन अटिगौ ॥ देषि देषि नंदादिक व्याकुल विहाल हाल प्यारो 'जनराज' आजि ऐसी विधि रटिगौ ॥ गोकुल के ग्वाल वाल कूक दै पुकारत यौं हाइ हाइ कृष्ण चंदकारी सों लिपटिगौ ॥ ४६ ॥ दोहा ॥ वृजवासी विकलाति लषि नंदादिक तिहि काल । काली व्याल कपाल परि नाचन लगे गुपाल ॥ ४७ ॥ घनाक्षरी छंद ॥ मुकुट की लटक धार चंद्रिका चटक धरैं लटकै अलक स्याम कुतिल विसात गति । विंव अधरान धरैं बैन 'जनराज' प्रभु सप्त सुर साधि गावैं राग नर साल गति । फन पै फनकि फनकि चंचल चलत चाल पाइ घुघरान की घमक धमाल गति ॥ नंदादिक ग्वाल वाल देहै करताल ताल काली के कपाल परि नाचत गुपाल गति ॥ ४८ ॥

अंत—॥ भ्रमर गीत × × × ॥ दोहा ॥ मधुकर करत गुंजार अति तिहिकाल इक आय । वचन कहत सब सुन्दरी उद्धव ताहि सुनाइ ॥ २३ ॥ इंदव ॥ गोकुल गांव तज्यौ नंद नंदन, छांडि हमें तिहि काल सिधाये । औधि करी फिरि आवन की उत जाय सबै बृज के विसराये । कारज कौन लगे मथुरा 'जनराज' इते अभिमान लसाये । भाग जगे हमरे अलि उद्धव आजि तुमैं घनस्याम पठाये ॥ २४ ॥ वचन सुने सब तियन के कलित उराने जान । तव उद्धव तिनसौं कहत ललित बैन सुषदान ॥ २५ ॥ इंदव ॥ नागरि चार नवीन महा बृज मंडल की सब गोप कुमारी । ते उनके मन मांझ वसौ नित प्रान समान लगौ अति प्यारी । केलि कला रस रंगन तैं जनराज करीतुम संग बिहारी । ते वन कुंजन के सुष पुंज रहे दृग मैं अभिलाष तुमारी ॥ २६ ॥ नेह सुनत बृज चंद कौ उद्धव पै अभिराम । अपनै तन मन की सुगति प्रगट करत बृज वाम ॥ २७ ॥ × × ×

विषय—१—श्री बलदेव जन्म वर्णन चतु० विनोद,	पत्र	१६	तक
२—वृंदाबन प्रवेश वर्नन पंचम विनोद,	,,	१८	तक
३—दावानल पान वरननं षष्टमो विनोद,	,,	२३	तक
४—गोवर्द्धन लीला वरननं सप्तम विनोद,	,,	२६	तक
५—जग्ग पतनीन भोजन वरननं नाम अष्ट० विनोद,	,,	३१	तक
६—रास लीला नवमो विनोद,	,,	४१	तक
७—अक्रूर संवाद दसम विनोद,	,,	४३	तक
८—कंस नरेश हतन एकादस विनोद,	,,	४८	तक
९—उद्धव संवाद द्वादस विनोद,	,,	५२	तक
१०—कृष्ण बलदेव द्वारिका प्रवेश त्रयोदस विनोद	,,	५४	तक
११—विवाह प्रसंग दोहा चतुर्दश विनोद,	,,	५८	तक

विशेष ज्ञातव्य—'कृष्णचंद लीला ललित विनोद' एक विशाल ग्रंथ जान पड़ता है। आदि में चौदहवें पत्र के पहले के पत्र नष्ट हो गये हैं। ऐसे ही अंत के भी पत्रे नहीं हैं।

रचनाकार एक भावुक कवि हैं। रचनाशैली केशव की रामचंद्रिका के समान है। छंद परिवर्तन शीघ्रता से किए गए हैं। ग्रंथ खंडित होने से रचयिता तथा रचनाकाल का ठीक ठीक पता नहीं चलता।

संख्या ४७. शब्दावली, रचयिता—महात्मा झामदास जी (कुटी झामदास, अहुरी, रायबरेली), कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) १४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५५, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—सं० १८३१ वि० = १७७४ ई०, लिपिकाल—सं० १६८५ वि०, प्राप्तिस्थान—मुं० कृष्णराम जी, स्थान—अहुरी, डा०—शाहमऊ, जि०—रायबरेली।

आदि—श्री गणेशाय नमः साखी—प्रथमहि सतगुर गाइए, जिन रचेव सकल जहान। पानी सो पिन्ड सवाँरिये, अलख पुरुष निर्वान ॥ १ ॥ रामनाम सुमिरत बढ्यौं, झाम हृदय अनुराग। पाय भक्ति अनपावनी, सहित विवेक विराग ॥ २ ॥ भक्ति कि महिमा को कहै, नाम प्रभाव अपार। शिव अज शारद शेष श्रुति, झाम प्राण आधार ॥ ३ ॥ हीरा नाम अमोल है, मणि मोती की खानि ॥ झाम, भोंदु केते पचे, संत लियो पहिचानि॥४॥

अंत—शब्द—मै जे सुनी जन राम सहाई ॥ पक्षी भूल परो परबस बस, फाँसी कर्म भर्म किवझाई ॥ लागि गई तव जागि, है तव मै सिर धुनि २ पछिताई ॥ पंच तत्तु कर मँदिल वनाया। तामे मेरे प्रभु बहुत चत्राई ॥ चार विचार होन नहिं पावहिं। ताले मैं बार बार अरिगाई ॥ व्याध निषाद अज मिल गणिका गज गिरदान अचल पद पाई ॥ जहँ जहँ गाढ़ परो संतन का क्षण मा प्रगट भयो तेंई ठाँई ॥ रा रा मन्त्र उठै झनकारै प्रेम प्रीति प्रभु बड़ी है दृढ़ाई ॥ अशरण सरन 'झाम' प्रभु आयो। लागि लगन कैसे छूटै सांई ॥ जाजा बति कान्हा हम जानी हो ॥ जब से दृष्टि परी मन मोहन। घर बन की मोहि गैला भुलानी हो ॥ १ ॥ लोक लाज कुल कानि विसरि गै। आवे नहिं मुख बैना हो ॥ २ ॥ सुर औ असुर नाग मुनि बसि करि। वसि कियो मुरख खल ज्ञानी हो ॥ ३ ॥ अग्नितरंग बहुधा जा बाजैं सुनि सखि झाम देवानी हो ॥ ४ ॥

विषय—ग्रंथ में महात्मा झामदास जी ने प्रथम श्री सतगुरु की बंदना की है फिर ईश्वर की वंदना तथा राम नाम की महिमा और प्रभाव का वर्णन किया है। भक्ति और प्रेम पर बहुत अधिक जोर दिया है। निराकार ईश्वर की उपासना की है और आत्मा को ही ईश्वर का रूप माना है। लिखा है कि यही शरीर ईश भजन करने पर ऐसा पूजनीय और श्रेष्ठ हो जाता है कि बड़े बड़े राजा इसके आगे सिर झुकाते हैं। संपूर्ण ग्रंथ में राम नाम की महिमा, प्रेम और भजन का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त शरीर और संसार की असारता राम नाम की महत्ता, कथनी, रहनी, गहनी, सतगुरू की महिमा आदि का बारंबार वर्णन किया है। कहीं कहीं श्री कृष्णचन्द्र तथा श्री रामचन्द्र की भक्ति का भी वर्णन है। एक-एक साखी देकर उसके ऊपर एक-एक पद उसी विषय का लिखा है। कई रेख्ता उर्दू भाषा और खड़ी बोली में लिखे गये हैं जिनमें फारसी के शब्द और इस्लाम धर्म के अनुसार नवी, पैगम्बर आदि का वर्णन भी आया है। पुस्तक की भाषा सरल और प्रसाद गुण पूर्ण है।

कहीं कहीं पदों में यति और गति भंग भी पाए जाते हैं, परन्तु विषय के विचार से ग्रंथ उच्चकोटि का है।

विशेष ज्ञातव्य—श्री महात्मा झामदास जी सुल्तानपुर जिले के रहनेवाले वैस क्षत्रिय थे। आपके जन्म स्थान और समय का ठीक ठीक निर्णय बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं हो सका; परन्तु सं० १७९० वि० के पास अनुमान सिद्ध है। बाल्यकाल का भी विशेष हाल ज्ञात नहीं है, परंन्तु साखी और शब्दों से ज्ञात होता है कि आप साधारण हिंदी और उर्दू पढ़े थे। युवावस्था में आप किसी फौज में नौकर थे। वहीं पर रहकर अनेक महात्माओं का सत्संग किया। किसी सिद्ध पुरुष ने ईश्वर के भजन और साक्षात्कार की विधि बताई। उसके पश्चात् आपने प्रेम सहित और विधि पूर्वक ईश्वर का भजन करना आरंभ कर दिया। सं० १८३१ वि० में एक दिन आधी रात के समय आपको परमात्मा का साक्षात्कार हुआ और आकाशवाणी हुई तथा प्रेम सहित अपने नाम का वर प्राप्त किया। उसी समय सब संदेह और भ्रम दूर हो गया एवं सिद्ध महात्मा हो गये। इसके पश्चात् अपने नाम से जिला सुल्तानपुर में दखिनवारे के पास कुटी बनाई। आपने वहाँ पर रहकर अखण्ड भजन किया। आपके विषय में अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं जिन्हें हम विस्तार भय से नहीं लिखते। हाँ, भजन के प्रभाव से सैकड़ों पागल मनुष्य आपकी कुटी पर अच्छे हो चुके हैं तथा अब भी जिन मनुष्यों का मस्तिष्क बिगड़ जाता है वे वहाँ जाकर अच्छे हो जाते हैं। आपकी रची दो पुस्तकें मेरे देखने में आई हैं:— १—साखी दोहावली, २—शब्दावली। ये दोनों पुस्तकें ब्रह्म-ज्ञान युक्त हैं। कविता साधारण है। कहीं-कहीं काव्य के चमत्कार भी पाए जाते हैं। निराकार ब्रह्म का वर्णन आपने अधिक किया है। आपके बहुत से अनुयायी और शिष्य हैं। यह पंथ वैष्णव संप्रदाय की एक शाखा की तरह है। इस पंथ के अनुयायी एक हरी कंठी बाँधते हैं। पंथ के गद्दीधर मूर्तिपूजा भी करते हैं। झामदास जी का देहावसान दीर्घायु प्राप्त होने पर सं० १८७० वि० के लगभग अनुमान सिद्ध है।

संख्या ४८. बनयात्रा, रचयिता—जीमन महाराज की माँ (गोकुल), कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—७ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६०, पूर्ण, रूप—जीर्ण, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, स्थान—श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः श्री गोपीजन वल्लभाय नमः। अथ श्री जीमन जी महाराज के माँजी कृत गायवे की बनयात्रा लिष्यते। प्रथम श्री वल्लभ प्रभू जी ने जाणु रे; श्री गुरु देवना चरण चित आणु रे। व्रज भोमिना चरी बखाणु चालो बन जात्रा नो सुख लीजे रे॥ श्री गुसाईं जी कीधों विचार रे बनयात्रा करवी निरधार रे। छे व्रज धामनी लीला अपार॥ श्री विट्ठल प्रभु परम दयाल रे॥ साथे लीधां श्री वल्लभ लाल॥ संवत सोल्हे सें नी साल रे भाँदरवा वदि द्वादशी सार रे॥ बालो उतरया श्री यमुना पार रे॥

अंत—हाथ जोर श्री मथुरा जी माँ करिया रे बहु आनंद रमा भरिया रे हवे कारज सर्वे सरियाँ जे कोई निसा दिन मुख थी गाए रे बन यात्रा नो फल तेने थाये रे॥ ते श्री

महाप्रभु जी ने सुहाये ।। सदा मन श्री गोकुल माँ रहिये रे । श्री महा प्रभु जीना गुण नित्त गैये रे श्री विट्ठल नाथ चरण चित लैये श्री वल्लभ श्री विट्ठल प्रभु पूरी आस रे ।। राष्या चरण कमल में पास रे; दास माँगे छे श्री गोकुल वास चलो वन यात्रा नो सुष लीजे रे । इति श्री जीवन जी महाराज के माँ जी कृत गायवे की वन यात्रा सम्पूर्णं ॥

विषय—ब्रज के विभिन्न स्थानों गोकुल, मथुरा, गोवर्द्धन, कामवन, बरसाना, नन्दग्राम, माँठ, वृन्दावन आदि की महिमा और पवित्रता का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य--गोकुल के बालकृष्ण मंदिर के गुसाइयों के वंश में जीमन जी हुए । उन्हें मरे लगभग ४० वर्ष हो गए हैं। उनकी माता ने यह 'बन यात्रा' बनाई थी । गोसाइयों के यहाँ स्त्रियां प्रायः पढ़ी लिखी और बुद्धिमती होती हैं। ऐसी ही वह भी थीं । भाषा में गुजराती की स्पष्ट छाप लगी हुई है ।

संख्या ४९ ए. अवधु की बाराषड़ी, रचयिता--कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र--३, आकार--१०$\frac{1}{2}$ X ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१२, परिमाण (अनुष्टुप्)--६७, पूर्ण, रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी ।

आदि--श्री गणेशाय नमः श्री परमातमने नमा । अवधु की बाराषडी लिष्यतै ॥ काका के तौ कही कबीर ॥ कहा कोई ना मानै, काया में करतार । कोई ना पहचानै, कर्म बंध संसार ॥ काल सु अटन है, ऐ अवधु काम क्रोध । अहंकार कलपना कठन है ।। १ ॥ षाषा षारी कु कहै, षाउ षारी के लेषै । षेर षोटै को नांव हिरदे, अपने नहिं पेषै ।। षोरत फेरत षास मुहे लायकै, ऐ अवधु षसमं पर्यौ । निर्तंचन रहए षसिय इकै ॥ २ ॥ गागा ग्यान सोई निजसार, जाई सुथिर हुवा । छूट्या गले का फंद, दुषसव मिटि गया ॥ ग्यानी कथै अगाद मिलै हरि फरकै । येह अवधु गीडीषाई वात ना लागै रौ रो उषाकै ॥ ३ ॥ घाघा घंटिहि मै आल राम, मिल्यौ साहि वसंना । घटहि प्रेम निधान, चेति मेरे मना ॥

अंत--सासा संत सुकरत संसार में साहब सांचौ है । सो वोलै घट माहि एहि निज आप है ॥ संसै टरन भौ हरैन, सकल निधान सो सही । एह अवधु सों पूछी सो कही, और कहा कहे ॥ ३० ॥ षाषा षोजे सकल जहान, षोजन हाना कीया । षोवै मूल गँवार । षसम दीलना दीया ॥ येह अवधु दी गहा, परम निधान षोजत है न कीया ॥ ३१ ॥ सासा संसै भई, अथ सासत जीवक भया । सो मिलन को मोहि, सिफल सवन्ह कीया ॥ सीध साध कस वस मरन करै, एह अवधू सुकरत पैरौ गहीं चीन्ह नहीं संसय टरै ॥ ३२ ॥ दादा हाजर कोही, जो रहे गाफिल कूं दूरहि । हिरदा कमल सजीवन मूल है, हंस हंस हो वैर है ॥ नाहंस सोई है, एह अवधु ॥ हृदय देषि विचार सवन में सोई हें ॥ ३३ ॥ छा छा छिमापार छल छोडि, छमा छील संतोष । भया छूट जभकी आस, छत्र सिर पर धरा ॥ परा सति का छाप काज पूरन भया । एह अवधु अब विछर जात हो तातै मिलना भला है ॥ ३४ ॥ इति श्री कबीर साहब की वाराषडी संपूर्णम् ॥

विषय--'क' से लेकर 'ह' तक प्रत्येक अक्षर पर कविता रचकर ज्ञानोपदेश किया गया है ।

संख्या ४९ बी. अगाध बोध, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी, अग्रवाल, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा ।

आदि—अथ अगाध बोध ग्रंथ ॥ ऐसा ज्ञान कथूं रे अवधू । बूझै विरला कोई ॥ ब्रह्मा वरुण कुवेर कुलंदर । ईस न जानै सोई ॥ उत्तर दक्षिण पूरब पछिम । करौ च्यारि चक्र मेला । चव दै लोक जीति गुरु गम सूं । करूं ब्रह्म सूं मेला ॥ २ ॥ पैसिपयाल सेस कूं नाथूं । दस ग्यारह पीर मेलूं । बैकुंठा सूं गरुड हंकारूं । ऐसी रामति षेलूं ॥ ३ ॥ तजि आचार विचार आठ तजि । नौ सूं नेह न बांधूं ॥ भूगोवल पर पांव न धारूं । सुरति गगन कूं साधू ॥ ४ ॥ छंद रसन पाषंड छिन वै किनहु न पाया मरमां ॥ सहज समाधि राम गुन रमता । मैं जाइ वसूं वा घरमां ॥ ५ ॥ काजी पंडित पीर अवालिया । मुनि जन सहस अठ्यासी ॥ याही सूं हरि अगम अगोचर । अलष पुरुष अविनासी ॥ ६ ॥ च्यारि वेद अरू नौ व्याकरणां । अष्टादस पुराणां ॥ चवदा विद्या सुणि सवद मैं । निरभै प्रान समांनां ॥ ७ ॥ राजा परजा जग सूं कढूं । सुर तेंतीस संघारौ ॥ ससि अरिभान पगां तलि पेलूं । विनकर अंबर फारौं ॥ ८ ॥

मध्य—सालिगराम सहज में सेऊं । फिर ब्रह्मा सूं तोरूं ॥ संकर सेती निपट बिगारूं । महाविष्णु सौं जोरूं ॥ ९ ॥ निराकार कै परचै वोलूं ॥ अनभै पद आराधूं ॥ ग्यान दिग्यान मिल्या धुनि मांहि । ऐसी सेवा साधूं ॥ सागर सात सहज में सोषूं । मेर सिषर सूं ढाऊं ॥ काली ऊन धोऊ विन पानी । तायर रंग चढ़ाऊं ॥ नौ सै नदी कूंप मैं सीचूं । चौंष्टि जोगणि बुलाऊं ॥ निरमल नीर जतन करि राखूं । बावन वीर पिलाऊं ॥१२॥ वंकस नालि उपाडि जड़ांसूं । और नइ लामैं रोपूं ॥ कहै कबीर ऐसी विचारै । ताघट सकल समोपूं ॥ १३ ॥ नामैं वारा नां मैं पारा । नामैं मंझ न नीरा ॥ षालिक हम मै हम षालिक मैं । यूं गर का बकबीरा ॥ १४ ॥ पाँच तत्त गुन तीनि तैं । आगै भगति मुकाम ॥ तह्यां कवीरा रमिरह्या । गोरषदत्त अरू नाम ॥ १५ ॥ सुनि सिषर गढ़ माणिक निवजै ॥ मांहि अमोलिक हीरा ॥ अगाध बोध संपूरण कहीया । यूं कथंत दास कवीरा ॥ १६ ॥ इति अगाध बोध संपूर्ण ॥ गु ॥ ३ ॥

विषय—निर्गुण ब्रह्म का दार्शनिक विवेचन ।

संख्या—४९ सी. अष्टांग योग, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—बांसी, पत्र—७, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ (पुस्तक के एक अंशपर जो इसके बाद लिखा है; यह संवत् है), प्राप्तिस्थना—पुस्तकालय, काशी विश्वविद्यालय ।

आदि—अव गति लागि अगम अपारा, दया धर्म काज धरा सत औतारा । अवगति गति अपार अलेषा, जोग जुगति करि निजघर देषा ॥ अवगतिकी गति वरनि न जाइ, सतगुरु मिलै तौ देय दिपाई । सेस सहस मुख निसि दिन गावै, अस तुति करत

षवरि नहीं पावै ॥ अदगतिकी गति न्यारी, मन बुधि चित तैं दूरि ॥ आप मेटि सतगुरु मिलै, तब पावै दरश हजूरि ॥ १ ॥ जोगी जोग जुगति जो करही, क्रम जोगू सूं भ्रमत फिर ही। फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जाही, क्रम ही क्रम क्रम फल पाहीं। होय न यह क्रम नांम कूं धावै, फिरि जौनी संकट नही आवै। क्रम ही क्रम वंध्यौ संसारा, क्रम ही तै अटक्यौ भौमारा। देह क्रम कू लीयौ बैठाई, मनके क्रम न छूटै भाई। जब लग मन के क्रम न पावै तब लग मन निरमल नहीं होवै तब तन की क्रिया मिटी जाई, जब प्रभु मिलिहै सहज सुभाई। तन क्रिया कूं छोड़ कै, मन की याकूं राषि ॥

मध्य—सति सबद का षोजि करि, गह सतगुरु की साषि ॥ २ ॥ मन की क्रिया सत जो होई, ता समान और नहीं कोई ॥ असंषि जोग करनी है। सारा, तासूं उतरै भौ जल पारा ॥ सति क्रिया ते ज्ञानी भयेऊ, सति क्रिया साहिब मिलि गयेऊ। कबीर सत करनी निरबान है, सो तन मन करि लीन ॥ मन पवना मिलि येक होय, सति सबद करि चीन्ह ॥ ३ ॥ अब मैं अष्टंग जोग जो कहहु, जोग अष्टंग असेषि कूं लहऊ। येक येक कै च्यारि च्यारि लच्छिन जानै साधि जो होय विचछिन ॥ अष्टंग जोग बतास बिचारा, सब मैं येक नांव तत सारा। सो कहिए बिलछान बतीसा, अष्टंग जोग मैं येको दीसा ॥ अष्ट जोग जो पै कोई जानै, सो लछिन बत्तीस पिछानै। कवीर सो भौ सागर कूं तिरै, यह करनी करि सार ॥ सति करनी आसा धरै। सति सबद अधार ॥ ३ ॥ प्रथम ही जोग ग्यान है भाई, जानै सुख परम पदपाई। निरालंभ कै लंभ न कोई, सतगुर इच्छा होय सहोई ॥ क्रम भ्रम तजि सतगुर जानै, भली बुरी कछु मन नहीं आनै ॥

अंत—निरबासी का बास नहीं, कितहू, जंगल वस्ति येक समझित हू। होय निहचंत गहै तत सारा, बाहरि भीतरि अलष अपारा ॥ कबीर एक नाम कूं जानै, दूजा देय बहाय। तीरथ बरत जप तप नहीं, अतम तत्त समाय ॥ ४ ॥ दूजा जोग परतीति बिचारूं, निरमोही होय आया तारूं। होय निरवंध रहै जग माहीं, यह जग कै सुष लागै नाहीं। माता पिता नारि नही भावै, षोजै सबद सबद ल्यौ लावै ॥ होय निरसंक निहचा सूं लागै, अनहद सुनै आतमा जागै। तब हँसा पावै पद निरबाना, छाड़ै हद बेहद समाना ॥ कबीर जो कछु करै विचारिकै, पाप पुनि तैं न्यार। येक सवद कूं जानिकै, जग ब्योहार ॥ ५ ॥ तिजा जोग विवेक कहावै, बिना वबेक कोई पार न पावै। जाकै समाधान सब होई, भली बुरी कहै जौ कोई ॥ समदिष्टि सब ग्यान बिचारै, सब घट भीतर ब्रह्म निहारै। सारगहे सति सबद समाना, और सकल जग मिथ्या जाना। जाकै सति होय घट माहीं, कोई कछू कहो क्रोध मन नाहीं ॥ कबीर जब लग नहीं बबेक मन, तब लग लगै न तीर। तौ भौ सागर ना तिरै, सतगुर कहै कबीर ॥ ६ ॥ चौथा जोग सील कहि दीन्हा, बिना सील सतगुर नहीं चीन्हा। निरमल सोचै सोचि बिचारै, सोचि बिचारि दया धर्म पालै। मन कूं संजम करै सो जानै, पाँचौ पकरि येक घर आवै ॥ सति सबद लषै तत सारा, सति ही तैं उतरै भौ जलपारा। सबद सरों तरि साच बषानै, भावै भली बुरी कोई मांनै। कबीर सील छिमा जब ऊपजै, अलष दिष्टि तब होय। बिना सील

पहौंचै नहीं, कोटि करै जौ कोय ॥ ७ ॥ पांचवां जोग संतोष वषांनां, बिना संतोष बूढ़ै अभिमाना । बे परवाहि अजाची होई, सहज भाव मैं होव सहाई ॥ मानैं नहीं रंक अर राजा, होय अमानन काहू काजा । श्रग नरक बछै नहीं कोई, होय अवंछी साधू सोई । मन असथिर करि पवन समाई, अनहद सवद सुनै चितलाई । कबीर निरमल पवन प्रकास करि, सुषमनि रहै समाय । सति सबद सलेष बिनि, अमर लोक नहीं जाय ॥ ८ ॥ छठवां जोग कहूँ निरबेरा, जासूं जम सूं होय नबेरा । सब घटमांहि येक ही जानै, ताकैं ह्रिदै ब्रह्म गियानै । सुखदाई ही कूं भावै, सुमति होय रम ताकू पावै । कबीर जंगल बस्ती एक सम, मित्र दुष्ट समि येक । दूजा भाव न आनहीं, येक नाम की टेक ॥ ९ ॥ सात बाँस हज जोग है मीता, सहज भाव मैं जम सूं जीता । न्यह प्रपंच प्रेम उपजावै, पांचौं समकरि सहज समावै । निह त्रंगी होय लोभ भुलावैं, तौ भौ सागर मैं बहौरि न आवै । निरसंसीक होय जौ कोई, संसै काल बड़े नहीं सोई । होय त्रलेप कछू नहीं लागै, सति सबद गहि आतम जागै । कबीर जग कूं झूठा जानहीं, सति सबद ततसार । सहजैं पगट राषै, सतगुरु सबद भंडार ॥ १० ॥ आठवां सुनि जोग है नीका, जासू सब जग लागै फीका । सुनि ही सूं सब जग उपराजा, सुनिही माहिं सबद येक साजा । तासूं ल्यौ लावै जौ कोई, अलष लषै फिरि आपै होई । परम पुर सूं ध्यान लगावैं, सुरति निरति लै सुनि समावैं । सहज समाधि परम पद पावा, गगनि मंडल ल्यौ सहजै लावा । ग्यान बिचार बंबेक करि, सील संतोष समाय । नाम गहै निरवार होय, सहज सुनि घर पाय ॥ ११ ॥ कबीर सुनि सनेही होय रहैं, जगतैं होय निरास । सुषसागर मैं घर कीया, सति सबद विसवास ॥ १२ ॥ (अविकल पूर्ण प्रतिलिपि) ॥

विषय—योग अष्टांग कहलाता है । कबीर ने अपनी दृष्टि से इस ग्रंथ में अष्टांग योग का वर्णन किया है । उसके अनुसार योग के आठ अंग इस प्रकार हैः—१–ग्यान, २–परतीति, ३–विवेक, ४–सील, ५–संतोष, ६–समता, ७–सहजभाव, ८–शून्य ।

संख्या ४९ डी. अष्टपदी रमेणी, रचयिता—कबीर, कागज—देशी, पत्र—५, आकार—९ X ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिणाम (अनुष्टुप्)—११९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि० (पुस्तक के अंत के ग्रंथ में दिए हुए संवत् के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा ।

आदि—अथ रमेणी ॥ बड़ी अष्टपदी रमेणी ॥ राग सूहौ ॥ एक विनांनी रच्या विनांनं । सबै अयानं वो आपै जानं ॥ सत रज तम तैं कीन्हीं माया । च्यारि षानि विस्तार उपाया ॥ पंच तत लै कीन्ह वधांनं । पाप पुनि मान अभिमानं ॥ अहंकार कीन्हे माया मोह । संपत्ति विपत्ति दीन्ह सब कोऊ ॥ भले रे पोच अकुल कुलवंता । गुणी निरगुणी धनी धनवंता ॥ भूष पियास अनहित हित कीन्हा । हित चित्त मोर तोर करि लीन्हा ॥ पंच स्वाद लै कीन्हा वंधू । बंधे क्रम वो आहि अवंधू ॥ अवर जीव जंतु जे आही । संकुट सोच वियापै ताही ॥ विद्या अस्तुति मान अभिमानां । यहि झूठै जीव हत्या गियानां ॥ बहुविधि

करि संसार भुलावा । झूठै दोजिग सांच लुकावा । दोहा ॥ माया मोह धन जोवना । यहि वंधे सब लोय । झूठै झूठ वियापिया । कबीर अलष न लषै कोय ॥ १ ॥ झूठनि झूठ सांच करि जानां । झूठनि मैं सब सांच लकानां ॥ धंध वंध कीन्हे बहुतेरा । क्रम बिबरजित रहै न नेरा ॥ षट दरसण आश्रम षट कीन्हा । षटरस षाटि कामरस लीन्हा ॥ च्यारि वेद षट सासत्र बषानै । विद्या अनंत कथै को जानै ॥ तपती करथ व्रत कीन्ही पूजा । धरम नेम दान पुनि दूजा ॥ और अगम कीन्हे व्यौहारा । नहीं गम सूझै वार न पारा ॥ लीला करि करि भेष फिरावा । वोट वहोत कछु कहत न आवा ॥ गहन विंद कछु नहीं सूझै । आयण गोप भयौ आगम बूझै ॥ भूलि परयौ जीव अधिक डराई । रजनी अंध कूप है आई ॥ माया मोहनि मैं भरपूरि । दादुर दामिनि पवना पुरी ॥ तरफै वरषै अषंड धारा । रैनि भामिनी भषा अंधियारा ॥ तिहि बिवोग तजि भये अनाथा । परै निकुंज न पावै पंथा ॥ वेदनि आहि कहुं को मानै । जानि बूझि मै भया अयानै ॥ नट बहू रूप षेलै सब जानै । कल किर गुन ठाकुर मानै ॥ वो षेलै सबही घट मांही । दूसर के षेलै कछु नाहीं ॥ जाकै गुण सोई पै जानै । और को जानै पार अपानै ॥ भलै रे पोच औसर जब आवा । करसि न मान पूरि जन पावा ॥ दान पुनि हम दहुं निरासा । कब लग रहूँ बटारिभ काछा ॥ फिरत फिरत सब चरन तुरानैं । हरि चरित अगम कथै को जानै ॥

मध्य—गुण गंध्रव मुनि अंत न पावा । रह्यौ अलष नग धंधै लावा ॥ इहि बाजि सिव विरंचि भुलाना । और वपरा को किंचित जाना ॥ त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा । राषि राषि सांई इहि पारा ॥ कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई । फल करकीट जन्म बहुताई ॥ ईश्वर जोग षराज बलीना । टर्यौ ध्यान तप षंडन कीन्हा ॥ सिध साधिक उनथैं कहु कोई । मन चित अस्थिर कहु कैसे होई ॥ लीला अगम कथै को पारा । वसौ समीप करहौ निनारा ॥ दोहा ॥ षग षोज पीछे नहीं । तू तत अपरंपार । विन परचै का जानिए । कबीर सब झूठै अहंकार ॥ २ ॥ अलष निरंजन कथै न कोई । निरभै निराकार है सोई ॥ सुनि असथूल रूप नहीं रेषा । दृष्टि अदृष्टि छिप्यौ नहीं पेषा ॥ वरन अवरन कथ्यौ नहीं जाई । सकल अतीत घट रह्यौ समाई ॥ आदि अंत ताहि नहीं मध्ये । कथ्यौ न जाइ आहि अकथे ॥ अपरंपार उपजै नहीं बिनसै । जुगति न जानिए कथिए कैसै ॥ दोहा ॥ जस कथिए तस होत नहीं । जस है तैसा सोई । कहित सुनत सुष उपजै कबीर । अरू परमारथ होई ॥ ३ ॥ जानसि कै नहीं कैसे कथसि अयाना । हम निरगुन तुम सरगुन जाना ॥ मत्ति करि हीन कवन गुन आही । लालच लागि आस रहाहि ॥ गुन अरू ग्यान दोऊ हम हीना । जैसी कछु बुधि विचार तस कीना ॥ हम मतिहीन कछु जुगति न आवै । जे तुम दरवो तौ पूरि जन पावै ॥ तुम्हारे चरन कमल मनराता । गुन निरगुन के तुम निज दाता ॥ जहुवां प्रगट तजावहु जैसा । जस अनभै कथिया तिन ऐसा ॥ वाजै जंत्र नाद धुनि होई । जे वजावै सो औरे कोई ॥ बाजी नाचै कौतिग देषा । जो नचावै सो किनहु न पेषा ॥ ॥ दोहा ॥ आप आप तैं जानिए । है पर नाहीं सोइ ॥ कबीर सुपने केर धन । ज्यू जागत हाथ न होइ ॥ ४ ॥ जिन इहि सुपना फुर करि जाना । और सबै दुष बादि न आना ॥ ग्यान हीन चेतै नहीं सूता । मैं जाग्या बिसहर भै भूता ॥ पारधीवान रहै सुर साधै ।

विषम बान मारे वष बांधै ॥ काल अहेरी सांझ सकारा। सावज ससा सकल संसारा ॥ दावानल अति जरै विकारा। मोया मोह रोकि लै जारा ॥ पवन सुभाइ लोभ अति भइया। जम चरचा चहुं दिसि फिरि गइया ॥ जम के चर चहुं दिसि फिरि लागे। हंस पषेरू अब कहां जाइवे ॥ केस गहेकर निस दिन रहहि। जब धर ऐंचे तब धर चहहीं ॥ कठिन पासि कछु चलै न उपाई। जमद्वारे सीझें जब जाई ॥ सोई त्रास सुमिरां मन गावै। मृग तृष्णा झूठी दिन ध्यावै ॥ मृतकाल किनहुं नहिं देषा। दुषकूं सुष करि सबहीं लेषा। सुष करि मूल न चीन्हसि अभागे। चीन्हैं बिनां रहै दुष लागे ॥ नींव कीट रस नींव पियारा। यूं विष को अमृत कहै संसारा। विषई मृत एकै करि सांनां। जिन चीन्ह्या तिनहि सुष माना ॥ अछत राज दिनह दिन सिराई। इम्रत परहरि करि विष पाई ॥ जानि अजानि जिनैं विष षावा। परै लहरि पुकारै धावा ॥ विष के खाए का गुन होई। जा वेदनि जानै पै सोई ॥ मुरछि मुरछि जीव जरिहै आसा। कांजी अलप बहु षीर विनासा ॥ तिल सुष कारनि दुष असमेरू। चौरासी लष कीनां फेरू ॥ अलप सुष दुष आहि अनंता। मन मैं गल भूल्यौ मैं मंता ॥ दीपक जोति रहै इक संगा। नैन नेह मानूं परै पतंगा ॥ सुष विश्राम कितहु नहीं पावा। परिहरि सांच झूठ दिस धावा ॥ लालचि लागै जनमि सिरावा। अंतकालि दिन आइ तुरावा ॥ जब चेति न देषै कोई। जब लगि है इहु निज तन सोई ॥ जब निज चलि किया पयाना। भयौ अकाज तब फिरि पछिताना ॥ दोहा ॥ मृग तृष्णा दिन दिन ऐसी। अब मोहि कछू न सुहाई। अनेक जतन करि टारिये। कबीर करम पासि नहिं जाई ॥ ५ ॥ रे रे मन बुधिवंत भंडारा। आप आप ही करहु बिचारा ॥ कवन सयान कौन बौराई। किह सुख पईये किह दुषजाई ॥ कवन हरष को विसमय जाना। को अनहित को हित करि माना ॥ कवन सार को आहि असारा। को अनहित को आहि पियारा ॥ कवन सांच कवन है झूठा। कवन करूं को लागै मीठा ॥ किह जरिए किह करिए अनंदा। कवन मुकति को गल मैं फंदा ॥ दोहा ॥ रे रे मन मोहि ब्यौर कहि। हूँ सति पूछूं तोहि। संसै सूल सबै भई कबीर। समझाइ कहि मोहि ॥ ६ ॥ सुनि हंसा मैं कहौं बिचारी। त्रिजुग जोनि सब अधिकारी ॥ मनिषा जनम उत्तम जो पावा। जान्यौ राम तौ सयान कहावा ॥ नहीं चेते तो जन्म गँवावा। परयौ बिहान तब फिरि पछितावा ॥ सुषकर मूल भगति जो जाने। और सबै दुषिया दिन आनै ॥ अमृत केवल राम पियारा। और सबै विष कै भंडारा ॥ हरष आहि जो रमिये रामा। और सबै विसमा के कामा ॥ सार आहि संगति निरवांनां। और सबै असार करि जाना ॥ अनहित आहि सकल संसारा। हित करि जानिए राम पियारा ॥ सांच सोइ जे थिर रहाई। उपजै विनसै क्यूव ह्वै जाई ॥ मीठा सो जो सहजै पावा। अति कलेस तैं करूं कहावा ॥ ना जरीये ना करीये मो मोरा। जहां अनहद तहां राम निहोरा ॥ मुक्ति सोइ जो आपा पर जानै। सो पद कहा जो भरमि भुलानै ॥ दोहा ॥ प्रान नाथ जग जीवना। दुलम राम पियार ॥ सुत सरीर धन परिग्रह कबीर। जियरे तरवर पंषि बसियार ॥ ७ ॥ रे रे जीव अपना दुख संभारा। जिह दुख ब्यापा सब संसारा ॥ माया मोह भूले सब लोई। किंचित लाभ मानक दियौ षोई ॥ मैं मेरी कही बहुत विगूता। जननि जठर जनम का सूता ॥ बहुतैं रूप भेष बहु कीना।

जुरा मरन क्रोध तन षीना ॥ उपजै विनसै जोनि फिराई । सुषकर मूल न पावै चाई ॥ दुष संताप कलेस बहु पावै । सो न मिलै जो जरत बुझावै ॥ जिह हित जीव राषि है भाई । सो अनहित ह्वै जाई विलाई ॥ मोर तोर करि जरै अपारा । मृग तृष्णा झूठी संसारा ॥ माया मोह झूठ रह्यौ लागी । काभयौ इहां का ह्वै है आगी ॥ कछू कछू चेति देषि जीव अवही । मनिषा जन्म न पावै कवही ॥ सार आहि जो संग ही पियारा ॥ जब चेतें तब ही उजियारा ॥ त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता । मनिष जन्म पायौ चितचेता ॥ आत्मा मुरछि मुरछि जरि जाई ॥ पिछलै दुष कहतां न सिराई ॥ सोई त्रास जे जानै हंसा । तौ अजहूं जीव करै संतोषा ॥ भौसागर अति वार न पारा । ता तिरवे का करहु विचारा ॥ जा जलकी आदि अंत न जानिये । ताको डर काहे न मानिये ॥ को केवट को वोहिथ आही । जिह तिरये सो लीजै चाही ॥ समझ विचारि जीव जब देष्या । इहु संसार सुपन करि लेषा ॥ भई बुद्धि कछु ग्यान निहारा । आप आप ही किया विचारा ॥ आपण मैं जो रह्या समाई । नैडै दूरि कथ्यौ नहीं जाई ॥ ताकै चीन्हे परच्यौ पावा । भई समझि तासूं ल्यौ लावा ॥ ॥ दोहा ॥ भाव भगति हिथ वोहिथा । सतगुरु खेवनहार ॥ अलपउदिक जब जानीये । कवीर जव गोपद पुर विकार ॥ ८ ॥ बड़ी अष्टपदी रमेणी सपूर्ण ॥ (अविकल प्रतिलिपि)

विषय—कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन ।

संख्या ४६ ई. बार ग्रंथ, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६ × ४३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ (पुस्तक के एक अंशपर जो इसके बाद लिखा है, यह संवत् है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय काशी, हि० विश्व विद्यालय ।

आदि—कबीर बार बार हरि का गुन गाऊं । गुरु गमि भेद सहर का पाऊं । आदति बार भगत आरंभ, काया मंदर मनसा थंभ । अषंड अहोनि सिसु रषि जाप, अनहद सबद सहज मैं बाप ॥ १ ॥ सोमवार ससि अमृत झिरै, पीवत बेगि तबै निस्तरै । बानी रोक्या रहैं दवार, मन मतवाली पीवन हार ॥ २ ॥ मंगलबारा ल्यौ माहीति, पांच लोग की जानौ रीति । घर छोड़ै अर बाहरि जाय, तापर परा रिसावै राय ॥ ३ ॥ बुद्धवार करि बुद्धि प्रकास, ह्रिदा कंवल मैं हरि का बास । गुर गमि येक दोय सम करै, औंधा पंगज सूधा धरै ॥ ४ ॥ बिरसपति विषीया देहु बहाई, पांचौं देव येक संग लाई । तीनि नदी हैं त्रिकुटी मांहि, अहिनिसि कुसमल धोवै नाय ॥ ५ ॥ सुक्र सुधा लै निस ब्रति चढै, अहिनिसि आप आप सूं रढै ॥ सुरषो पांच राषि लै सबै, दूजी दृष्टि न देषै कबै ॥ ६ ॥ थावर थिर होय घर मैं सोय, जोति दीवटी राषौ जोय । बाहरि भीतरि भया उजास, सकल क्रम का हूवा नास ॥ ७ ॥ जब लग घट मैं दूजी आन, तव लग महल न पावै जान । रमता राम सूं लागै रंग, कहैं कबीर ते निरमल अंग ॥ ८ ॥ संपूर्ण ॥

विषय—इस ग्रंथ में कबीर ने आदित्यवार से लेकर शनिवार तक प्रत्येक वार से आरंभ करते हुए अपना सिद्धांत दर्शाया है ।

विशेष ज्ञातव्य—देखो ककहरा ग्रंथ का विवरण ।

संख्या ४९ यफ. बावनी रमैणी, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—४, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—९०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि० (पुस्तक के अंत में दिए एक सोरठे के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी अग्रवाल, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा।

आदि—॥ बावनी रमेणी लिख्यते ॥ दोहा ॥ बावन अक्षर लोक त्रिय सब कछु इनही मांही ॥ ये सब षिरि षिरि जांहिगे सो अषिर इनही में नाही ॥ १ ॥ तुरक तरीकत जानीए । हींदू वेद पुरान ॥ मन समझन के कारनै । कछू एक पढीए ग्यान ॥ चौपाई ॥ जहां बोलत तहाँ अषिर आवा । जहाँ अबोल तहाँ मन न लगावा ॥ बोल अबोल माँझ है सोई । जो कछु है ताहि लषै न कोई ॥ ३ ॥ वो ऊंकार आदि मैं जाना । लिषिकर मेटै ताहि न मानां ॥ वोऊंकार करै जस कोई । तस लिषि जस मेटवा न होई ॥ ४ ॥ कका कवंल किरणि महिपावा । अरु सरस प्रकास संपट नहिं आवा ॥ अरु जे तहां कुसम रस पावा । अरु जे तहां कुसुम रस पावा ॥ तौ अकह कहैं कहि का समझावा॰।......॥ ५ ॥ षषा इहि षोरिमन आवा । षोरिहि छांडि चहुंदिसि धावा ॥ षसमहि जानि षिमा करि रहे । तौ होई अषै पद लहिए ॥ ६ ॥ गगा गुरू के वचन पिछाना । दूसर बात न धरिये काना ॥ सोइ विहंगम कतहु न जाई ॥ अगह गहै गहि गगन रहाई ॥ ७ ॥

अंत—हहा होइ होत न जानै, जवही होइ तवही मन मानै । है तो सही लहै जे कोई । जब इहु होइ तब वहु न होई ॥ ३८ ॥ लला लै मन लावै । अनंत न जाइपरम सुख पावै । अरु जे तहां प्रेम ल्यौ लावै । तौ अलहि लहि मंझि समावै ॥ ३९ ॥ खखा खपत षिरत नहीं चेते । षपत षपत गए जग केते ॥ अब जुग जानि जोरि मन रहे । तौ जातैं विछुरयौ सो फिरि लहै ॥ ४० ॥ बावन अक्षर जोरया आनि । एक्यौ अक्षर सक्या न वांनि । सतिका सबद कबीरा कहै । पूछौ जाइ कहां मन रहै ॥ ४१ ॥ पंडित लोगनि कौ ब्यौहारा । ग्यानवंत कूं तत्व विचारा ॥ जाकै हिरदै जैसी होई, कहै कबीर लहैगा सोई ॥ ४२ ॥ इति बावनी रमेणी संपूरण ॥ २ ॥

विषय—'क' से लेकर 'ह' तक प्रत्येक अक्षर पर चौपाई रचकर कबीर ने अपनी दार्शनिक विवेचना की है ।

संख्या ४९ जी. बेइली, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—३, आकार—६½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९६२ वि०, प्राप्तिस्थान—लक्ष्मी प्रसाद दुकानदार, स्थान—अगरयाल, डा० जैंत, जि०—मथुरा ।

आदि—अथ वेइलि ॥ हंसा सरवर शरीर में हो रमैयाराम । जगत चोर घर मूसे हो रमैयाराम । जे जागल से भागल हो रमैयाराम । सूतल से गेल विगोय हो रमैयाराम । आजु बसैरवा बियरे हो रमैयाराम । काल्हु बसेरवा दूरि हो रमैयाराम । परेहु विराणे देस हो रमैयाराम । नयन मरहुंगे दूरि ही रमैयाराम । स्रास मथन दधि मथन कियो हो रमैयाराम ।

भवन मथेहु भरि पूरि हो रमइआराम। फिरि के हंसा पाहुन भेल हो रमैयाराम। वेधि निपद निर्वाण हो रमैयाराम। तू हंसा मन मातिक हो रमैयाराम। हटल न मानल मोर हो रमैयाराम। जसरे कियहु तस पायहु हो रमैयाराम। हमर दोष जनि देहु हो रमैयाराम। अगम काटि गम कियहु हो रमैयाराम। सहज कियो वैपार हो रमैयाराम। राम नाम धन वनिज कियो हो रमैयाराम। लाद्यौ वस्तु अमोल हो रमैयाराम। पांच लदनुआं लादि चले हो रमैयाराम। नव वहियां दश गोणि हो रमैयाराम। पाँच लदनुआ हारि परै हो रमैयाराम। षंषड लीन्हो टेरि हो रमैयाराम। शिरधुनि हंसा उडि चलै हो रमैयाराम। सरवर मीत जो हरि हो रमैयाराम। सरवरि जरि धूरि हो रमैयाराम। कहहिं कबीर सुनु संतो हो रमैयाराम। परखि लेहु खरा खोट हो रमैयाराम ॥ १ ॥ भल सुमिरण जहाँ डायो हो रमैयाराम। धोषे कियहु विश्वास हो रमैयाराम। इतौ है वन सोकत हो रमैयाराम। शिरा कियो विश्वास हो रमैयाराम। इतौ है वेद भागवत हो रमैयाराम। गुरु मोहि दिहिल थापि हो रमैयाराम। गोवर कोट उठौल हो रमैयाराम। परिहरि के कहु खेत हो रमैयाराम। बुद्धिवल जहां न पहुंचे हो रमैयाराम। तहवा खोज कैसे होय हो रमैयाराम। सो सुनि मन में धीरज भेल हौ रमैयाराम। मन वढि पर ललजाय हो रमैयाराम। फिर पाछे जनि हेरहु हो रमैयाराम। काल भूत सव आहि हो रमैयाराम। कहहि कबीर सुनु संतौ हो रमैयाराम। मत डींगहू फैलाय हो रमैयाराम ॥ २ ॥ इति वेइलि।

विषय—कबीर के दार्शनिक विचार।

संख्या ४९ यच. बीजक चिन्तामणि, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—१$\frac{1}{2}$, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठाकुर मुलू सिंह जी, स्थान—कुड़ाखर, डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—श्रीगणेशाय नमः॥ अथ कवीर साहब की बीजक चिन्तामणि लिष्यते॥ सत का सवद सुन भाई। फकीरी अदल वादसाई॥ सादो वादगीदीदार सहजु उतर पहली पार॥ १॥ सोहु सवद सुकर प्रीत। ऊनभा आषड़ घर कूं जीत॥ तनकी षवरि कर भाई। जमनाम रस नाइ॥ २॥ सुरति नगर वसती। षूव वेहद उलटि चारि महबूब। सुरति नगर मैं करै सलजाम आत्मा की महल॥ ३॥ अमरी फल सिध मीलय। जा पराष वावा पाव। देह नाम ध्यान धरना आसन अंमर यौं करना॥ ४॥ दादस पवन भाई पीजै। स्वाँस धरी उलटि चरि जीजै॥ तन मन चतङा राषो स्वास। यवीध कारौ वेहद वास॥५॥ दोउ नैन का करिवाण। भुंकी उलटि चटि कुवान। सहज परस पद निरवान। जासौं मीटै आवा जान॥ ६॥ परवत छिय द्वीया जान। करले त्रैवेणी असनान॥ ता मध्या गवका वाजार। अवर न देषि दोय पहार॥ ७॥ तामध षड़ा कुदर झड़ा। जाकी जोति अगम अपार। लगेह नौलष तारा। फल करणी कोट जरी या मूल॥ ८॥ जाकूं देष नाना भूल। सतगुरु सब्द कहा॥ निज मूल माया भरम की टाटी। अंदर देषना नहीं साँची॥ ९॥ नीपजै नीर बिन मोती। चंद सूर की जोती॥ झलक झिलमली नारी॥ जा मध अलष

इक्यारी। जैसे गुलजार की क्यारी। मानु प्रेम की झारी ॥ १० ॥ राम तहाँ सह राजा। सै हिज पलटा काजा ॥ ११ ॥ मुजराराम कूं दीजै। अरस कां गैर लीजै ॥ ताला करम का खोया। दीप क नामा का जोया ॥ १२ ॥

मध्य—जोगी जुगति सुजीव। प्याला प्रेम का पीव ॥ महोला पीव कूं दीजै। तन मन वारना कीजै ॥ पड़ी है प्रेम की फाँसी। मनुवा गगन का वासी ॥ १३ ॥ विन तांत वाज तुर। पछम सहज उगे सुर ॥ भवरा सुगद का पासा। कीया है गीगन में वासा ॥ १४ ॥ ज्या का चोलना लाल उन मुनी भरा जो गरदम ताल ॥ तन मन सौं पढ़ै जै सीस। साहिव वसै नेनौ वीच ॥ १५ ॥ उलटि श्याम घर आई। वादलगीगन मै छाया। ईम्रत वूंद झर लाया ॥ १६ ॥ अजब दीदार कूं पाशा। दीरया सहज कलोय। दीरय सहज उमगेनीर। ना वीच चले चौंसठ सीर ॥ १७ ॥

अंत—हंसा आनि वैठे तीर। निसदिन जुगे मोहवतै हीर ॥ पाया है प्रेम का प्रारा ॥ नहीं है नैन सूं नारा ॥ १८ ॥ कीया है सूर्ति सूं सनेह। वीन वादल वरसै मेह ॥ इम्रत वूंद नहिं काल। त्रुकुटि सेज पलक लाल ॥ १९ ॥ चिंतामणी चीत मनवास। ऐह गति लीये कोई जनदास ॥ कहै कबीर अनहद घरका षेल। एह अगम घरका मेला ॥ २० ॥ साषी ॥ राम नैन में रमि रह्या। मरम न जानैं कोइ। जासूं सत गुरु मिलि रह्या। ताकूं मालम होइ ॥ २१ ॥ जोति अषंडत झिलमील। विन वाती विन तेल ॥ साधु पोहचै सुरते, उरि पंथ का षेल ॥ २२ ॥ झटा रोपागेविका, दो प्रवल की सीधि। साधु षेल नट कला वर्त द्रिष्ट मु वाधि ॥ २३ ॥ बीजक वीत वतावही। जो धन गुपता होइ। सवद वात व ब्रह्म कूं, बूझै विरला कोइ ॥ २४ ॥ इति श्री वीजक चिंतामणि संपूर्ण ॥

विषय—सुरति तथा अनहद शब्द की महत्ता का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की अविकल रूप से नकल कर दी गई है।

संख्या ४९ आई. विप्रमतीसी, रचयित—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—४, आकार—५ × ३½ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—हरिकृष्णजी वर्मा, स्थान व डा०—छाता, जि०—मथुरा।

आदि—॥ अथ विप्रमतीसी ॥ सुनहु सवन मिलि विप्रमतीसी। हरि बिन बूढे नावभरीसी। ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर मह जगत पतिग्रह आनै। जे सिरजा तेहि नहि पहिचानै। कर्म भर्म लै बैठि बखानै। ग्रहण अमावस सायर दूजा। स्वोस्तिक पात प्रयोजन पूजा। प्रेम कनक मुष अंतरवासा। आहुति सत्य होम कै आशा। उत्तम कुल कलि मांह कहावै। फिरि फिरि मध्यम कर्म करावै। सुत दारामिलि जूठो खाई। हरि भक्तन के छूति कराही। मती भ्रष्ट जम लोकहि जाहीं। कर्म अशौच उच्छिष्टा खाहीं। नहाय खोरि उत्तम होइ आवै, विष्णु भक्त देषे दुष पावै। स्वार्थ लागि जे रहे वे क़ाजा। नाम लेत पावक ज्यौं डाढा। राम कृष्ण कै छोडिन्ह आशा। पढि गुणि भये कृतम कै दासा। कर्म पढ़ै कर्महि कंह धावै। जे पूछेतेहि कर्म दृढावै। निः कर्मा को निंदा कीजै। कर्म करै

ताही चित दीजै। ऐसी भक्ति हृदया मंह लावै। हिरनाकश को पंथ चलावै। देखहु स्मृति केर प्रगासा। अभ्यंतर भये कृतम के दासा। जाकै पूजै पाप न उडे। नाम सुमरणी भव महं बूडे। पाप पुण्य के हाथहि पासा। मारि जगत को कीन्ह विनाशा। ई वहि बैकुंठ वहि कहावै। इगृही जारै उगृही मांडे। बैठा ते घर साहु कहावै। भीतर भेद मुस मनुआं लखावै। ऐसी विधि सुर विप्र भणीजै। नाम लेत पिचास न दीजै। बूडिगये नहि आयु सम्हारा। उंच नीच कहुँ काहि जोहारा। उंच नीच है मध्यम वाणी। एकै पवन एक है पाणी। एकै मठिया एक कुम्हारा। एक सवन के सिर जन हारा। एक चाक सब चित्र वनाया। नाद विंदु के मध्य समाया। व्यापी एक सकल की गोती॥ नाम धरैं क्या कहिये भूती। राक्षस करणी देव कहावै। वाद करै गोपाल न भावै। हंस देह तजि नयरा होई। ताकर जाति लहहुं दहुं कोई। श्वेत स्याम की राता पियरा। अवर्ण वर्ण की लता सियरा। हिंदू तुरक की बूढा वारा। नारि पुरुष मिलि करहु बिचारा। कहिये काहि कहा नहि माना। दास कबीर सोइ पै जाना ॥ साषी॥ वहा है वही जात है कर गहैं चहुं ओर। जौ कहा नहीं मानै तौ दे धक्का दुइ ओर ॥ १ ॥ इति विप्रमतीसी सम्पूर्णम् भवेत ॥

विषय – कबीर का उपदेश वर्णन।

संख्या ४९ जे. बिरहुली, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८, पूण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १६६२ वि०, प्राप्तिस्थान—लक्ष्मी प्रसाद दुकानदार, स्थान—अगरयाल, डा०—जैंत, जि०—मथुरा।

आदि—॥ अथ विरहुली ॥ आदि अंत न होते विरहुली। नहि जर पल्लव पेड विरहुली। निशिवासर नहीं होते विरहुली। पवन पानी नहीं मूल विरहुली। ब्रह्मादिक सनकादिक विरहुली। कथि गय योग अपार विरहुली। मास असाढे शीतलि विरहुली। वो इन सातो वीज विरहुली। निति कोडहिं निति छिचाहें विरहुली। निति नव पल्लव पेड़ विरहुली। छिछि लि रहलतिंहु लोक विरहुली। फुलवाएक भल फूलतु विरहुली। फूलि रहल संसार विरहुली। सो फूल वंदहि भक्त जना विरहुली। वंदि के राउर वाहिं विरहुली। सो फुल लोढहि संत जना विरहुली। डंसिगेल वैतर सांप विरहुली। विषहर मंत्र न मानै विरहुली। गारूड बोले अपार विरहुली। विष के कियारी तूं वोयहुं विरहुली। लोढत का पछिताहु विरहुली। जन्म जन्म यम अंतर विरहुली। फल एक कनइल डारि विरहुली। कहहिं कवीर संच पावहु विरहुली। जौं फल चाखहु मोर विरहुली ॥ १ ॥ इति विरहुली ॥

विषय—कबीर का उपदेश वर्णन।

संख्या ४९ के. चाचर, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—३, आकार—४½ × २½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० किरोड़ी सिंह, स्थान—वाटी, डा०—राल, जि०—मथुरा।

आदि—अथ चाचर ॥ जारहु जगका नेह राम न वौराहो । जामहं सोक संताप समझु मन वौराहो । बिना नेव का देव धरामन वौराहो । विन कह गिल को ईट समझु मन वौराहो । काल वूत की हस्ति निमन वौराहो । चित्र रचेऊ जगदीश समझु मन वौराहो । तन धन सोक्या गर्व वसीमन वौराही । भस्म क्रमी जाकौ साज समझु मन वौराहो । काम अंध गजवशि परैउ मन वौराहो । अंकुश सहिगौ सीस समुझ मन वौराहो । मर्कट मूठी स्वाद के मन वौराहो । लीन्हों भुजा पसारि समझु मन वौराहो । छूटन की संशय परी मन वौराहो । घर घर नाचय द्वार समझु मन वौराहो । उंच नीच जानै नाहीं मन वौराहो । घर घर खाय ढुंडाय समुझु मन वौराहो । ज्यौ सुगुना नलनी गह्यौ मन वौराहो । ऐसोभ्रम विचार समझु मन वौराहो । पढ़ै गुणै का कीजिये मन वौराहो । अंत विलइया समुझु मन वौराहो । सूने घर का पाहुना मन वौराहो । ज्यौ आवै त्यौं जाय समुझु मन वौराहो । × × नहाने को तीरथ घना मन वौराहो । पूजन को बहु देव समुझु मन वौराहो । विनु पानी नल वूढ़िहौ मन वौराहो । तुम टेकेहु राग जहाज समुझु मन वौराहो । कहहि कवीर जग भ्रमिया मन वौराहो । तुम छांडहु हरिको सेव समुझु मन वौराहो ॥ १ ॥

मध्य—खेलंती माया मोहनी जिन्ह जेर कियो संसार । रच्यो रंग तीनि चंदरी सूघरि पहिरयौ आप । शोभा अद्भुत रूप ताकी महिमा वर्णि न जाय । चंद्र वदनि मृगलोचनि माया वुंदिका दियो उघारि । जती सती सब मोरिया हो गज गति वाकी चालि । नारद के मुख मंडि के लीन्ही वसन छिनाय । गर्व गहेली गर्व से उलटि चली मुसकाय । शिव सन ब्रह्मा दौरि कै दोनों पकरि न जाय । फगुवा लीन्ह छिलाइ के बहुरि दियो छिटिकाय । अनहद ध्वनि बाजा बजै श्रवण सुनत भव चाव । खेल निहारा खेलि है बहुरि न ऐसी दाव । अग्यान ढाल आगै दियो टारे टरत न पाव । खेलनिहारा खेलिही जै सीवा की दाव । सुरनर मुनि औ देवता गोरषदत्त ओवे आस । सनक सनंदन और की केतिक वात । छिलकत थोथे प्रेम के धरि कि चिकारी गात । कैलियो बशि आपनै फिरि फिरि चितवत जात । ग्यान गाइ लै रोपिया निरगुण दियो है साथ । शिव सन ब्रह्मा ले न कह्यौ है और की केतिक वात । एक ओर सुर नर मुनी ठाढ़े एक अकेली आप । दृष्टि परे उन्हि काहु न छाड्यौ कै लियौ एक धाय । जेते थे तेते लियो हैं घुंघट मांहि समोय । कज्जल वाकै रेख वाहै अदग गयानहि कीय । इंद्र कृष्ण द्वारे खड़े लोचन ललचि नचाय । कहहिं कवीर ते ऊवरे हो जाहि न मोह समाय ॥ २ ॥ इति चाचर ॥ पूर्ण प्रतिलिपि ॥

विषय—कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन ।

संख्या ४९ यल. गुरमहिमा, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—बांसी, पत्र—२, आकार—८×६$\frac{३}{२}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—१७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ और १८४९ के बीच [यह ग्रंथ दो ग्रंथों के बीच का है । पहला ग्रंथ 'अमर मूल' है जिसका लि० का० सं० १८४७ है और तीसरा (जनम पत्रिका) है जिसका लि० का० सं० १८४९ है ।], प्राप्तिस्थान—हिंदू विश्वविद्यालय, काशी ।

आदि—गुर का सरण लीजै भाई। जाते जीव नरक ना जाई॥ गुर मुष होये प्रेम पद पावै। चोरासो में बोहोर नहीं आवै॥ गुर पद सेव बीरला कोई। जापे दया साहेब की होइ॥ गुर बीना मुकती नाही पावै भाई। नरक ओधम षवासा पाई॥ गुर की कृपा कटे जम पासी। बीलम न होये मीला अबीनासी॥ गुर बीन कोनह नाही पायौ ग्याना। ज्युंथो था भुस छडे कीसाना॥ गुर महेमा सुषदेव जो पाई। चढी बीवान बेकुठे ही जाई॥ गुर बिन पढ जो वेद पुरानां। ताकुं नाहीं मीले भगवाना॥ गुर सेवा जो करे सुभाग्या। जीन माया मोंह सकल भ्रम ताग्या॥ गुर की नाव चढे सो प्रानी। षेये उतारे सतगुर ग्यानी॥ तीरथ ब्रत और बप पूजा। गुर बीना दाता ओर नाहीं दूजा॥ नो नाथ चोरासी सीधा। गुर का चरन सेव गो वंदा॥ गुर बीना प्रेत जनम सो पावै। बरस सहंसर आब रहावै। गुर बीना भ्रम न छूटै भाई। कोरी उपाव कथे चतुराई॥ गुर बीना दान पुन जो करई। मीथा होये कबह नाही फलही॥ गुर बीना होम जग जो साधे। ओ रमण दस पातीग बाँधै॥

मध्य—सतगुर मीले तो आगम बतावे। जम की आच बहोर नाही आवे॥ गुर के चरन सदा चीत दीजे। जीवन जनम सुफल करो लीजे॥ गुर के चरण सदा चीत जाणो। कहा भुलो तु चत्र सुजाणां॥ गुर भगता मम आतप सोई। वाके हीरदे रह समोई॥ गुर मुष ग्यान लै चेतो भाई, मीनषा जनम बोहोर नाहीं पाई॥ सुष संपती आपनी नाही प्रानी। समझी देषी तु नीहचे जानी॥ चोबीस रूप हरी आप ही धरीया। गुरू सेवा हरी आप ही करिया॥ गरू की नंदा सुने जो काना। ताकु नीहचे नरक नीदाना॥ दसवां अस गुरु कू दीजै। जीवन जनम सुफल करी लीजे॥ गुर मुख प्रानी काही न होजे। हरदे नाम सुधारस पीजे॥ गुर सीठी चढी ऊपर जाई। सुष सागर में रहो समाई॥ आपने मुष गुर नींद्रा करे। सुकर स्वान जनम सो धरे॥ ना गुसा करे मुकत की आसा। कैते पावै मुकुती निवासा॥ और सुकर देह सो पावै। सतगुर बीना मुकती नहिं जावे॥ गवरा संकर और गनेसा। उननी लेना गुरकु उपदेसा॥ सो वरस गुर सेवा कीन्ही। नारद दछ धु कुं दीन्ही॥ सतगुर मिलै परम सुषदाई। जनम जनम के दुषनसाई॥ जब गुरु किन्हा अटल अभीनासी। सुर नर मुनि सब सेवा जाकी॥ भौ जल नदी या अगम अपारा। गुर बीना कैते उतरै पारा॥ गुर बिना आतम कैसे जाने। सुष सागर केसे पहचाने॥ भगती पदारथ कैसे पावै। गुर बीना कौन जो राह बतावै॥ गुर मष नामदेव रई दासा। गुर महेमा उनहूँ परगासा। तेतीस कोटी देवत पुरारी। गुर बीना भुले सकल आचारी॥ गुर बीन अमलष चौरासी। जनम आनेक नरक का बासी॥ गुर बीना पसु जनम सो पावै। फिर फिर गरभ बास में आवै॥ गुर वेमुष सोही दुष पावै। जनमे जनम सोही भरकावै॥ गुर के चरन सदा चित दीजै। जीवन जनम सुफल करी लीजै॥ गुर से वे सो चतुर सुजाना। गुर पर तर कोई और न आना॥ गुर की सेवा मुकती जिन पाई। बहौर न हंसा भौजल आई॥ कबीर सतगुर दीन दयाल है। जिन दीया मुकती का धाम॥ मनसा वाचा क्रमना। सेवो सतगुर नाम॥ कबीर सत सबद के परतरे। देवे कू कछू नाही॥ कहा लगु रस मोषीये। होस रही मन माही॥ मन दीयो

औ रछन दीयो । दीयो सकल सरीर ॥ अब देवे में कहा रह्यो । यों कहे सत कवीर ॥ येती गुर महीमा संपूरन सही, स कवीर जी साँची कही ॥

विषय—इसमें गुरु की महिमा का वर्णन है ।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ में लिपिकाल का कोई ठीक संवत् नहीं दिया है । इसके पहले 'अमर मूल' ग्रंथ है जिसका लिपिकाल सं० १८४७ है और आगे 'जनम पत्रिका रमेनी' है जिसका लिपिकाल संवत १८४९ है । इससे मालूम होता है कि यह ग्रंथ इन दोनों संवतों के बीच का लिपिबद्ध है ।

संख्या—४९ एम. हिंडोल, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—३, आकार—६ × ३ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—हरिकृष्ण जी वर्म्मा, स्थान व डा०—छाता, जिला—मथुरा ।

आदि—॥ अथ हिंडोल ॥ भ्रमहि डोलना जामै सब जग झूलै आय । पाप पुण्य के खंभ दोऊ माया माहि । (न) लोभ मर आ विषय भवरा काम कीलाषन । शुभ अशुभ बनाय डांडी गह्यौ दोनो पाणी । थह कर्म पटुली बैठी के को कौन झूलै आनि । झूलै तौ ब्रह्मा दत्त शिव झूलै तौ सुरपति इंद्र । झूलै तो नारद सारद झूलै तौ व्यास फणिंद्र । झूलै तौ गण गंधर्व मुनि झूलै तो सूरज चंद्र । आपु निर्गुण सगुण होइ झूलिया गोविंद ॥ छौ चारि चौदह सात एकईस तीनि लोक वनाय । खानि वापि खोजि देषहु स्थिर कोइ न रहाय । खंड ब्रह्मंड खोजि षट दरशन छूटत कतहूं नाहिं । साधु संत विचारि देषहु जिव निस्तारि कहं जाय । जहं रैनि दिवस नहीं चंद सूरय तत्व पल्लव नाहिं । काल अकाल प्रलय नहि तहं संत विरलै जाहिं ॥ ताकै हांके बिछुडे वहुकला वीते भूमि परै भूलाय । साधु संत खोजि देखहु वहुरि न उलटि समाय । यहिं झूलवै की भौ नहीं जौ होहिं संत सुजान । कहहिं कवीर सत सकृत मिलै तो वहुरि न झूलै आन ॥ १ ॥ वहु विधि चित्र वनाय केहरो रची क्रीड़ा रासी । जेहि झूलवे की इच्छा नहीं अस वुद्धि है केहि पास । झूलत झूलत वहु कल्प वीते मन नहिं छोड़त आस । मचो रहत हिंडोल अहर निशि चार युग चौमास ।

मध्य—कबहुंक उंचे कवहुंक नीचे स्वर्ग भूतल लै जाय । अति भ्रमत फिरत हिंडोल वाहो नेह न होय ठहराय । डरपत हों यह झूलवे की राखु हो जादवराय । कहे कबीर गोपाल विनती शरण हरि के पाय ॥ २ ॥ लोभ मोह के खंभ दोऊ मन से रची हिंडोल । झूलहि जीव जहान जहालौं कतहूं न देखि थिति ठौर । चतुर झूलहिं चतुराइया झूलहि राजा शेष । चांद सूर्य दुइ झूलहिं उनहूँ न भेल उपदेश । लक्ष चौरासी जीव झूलहि रवि सुत धरियाध्यान । कोटिकल्प युग वीतल अजहूं न माने हारि । धरती आकाश दुई झूलहि झूलै तौ पवना नीर । देह धरै हरि झूलही देखही हंस कबीर ॥ ३ ॥ इति हिंडोल ॥

विषय—कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन ।

संख्या ४९ एन. इकतार की रमैणी, रचयिता—कबीर दास, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—१०½ × ६¾ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० अयोध्या प्रसाद जी मुखिया, स्थान—फुलरई, डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशायनमः॥ इकतार की रमणी लिषते॥ भाजे इकतार भीम मत भूलै। है इकतार सवन को दूलै॥ विन इक तारक सौपत वरता। थेक पीवा विन सवही अन्नथा॥ १॥ राम राम कहै भक्ति दिढ़ावै। विन ऐकतार राम कहँ पावै॥ भगवत गीता पूरन उचारै। अनभो आरथ कर निरधारै॥ वेद पढै पढि अरथ वतावे। विन एकतार थाह नहिं पावै॥ २॥ विन अंकुर वीज नहिं ऊगै। विन इकतार हंस कहाँ पूगै॥ विन इकतार भक्ति कहँ कीजै। गुरु परताप प्रेम रस पीजै॥ ३॥ भटकत फिरै वस्तु नहिं लाधै। विन इकतार वहुत वकवादै। ररंकार तह अनहद गाजै। तापर इकतार विराजै॥ ४॥ व्यान उदान पवन लै बाँधै। इंगला पिंगला सुषमन साधै। अरद उरद तहँ सुरति लगावै। विन इकतार पीर नहीं पावै॥ वेद पुरान साम्र ले सोधै। अरथ करै कर मन पर मोधै॥ ५॥ वेद तहाँ लगह आकरा। केवल ब्रह्म वेद सुन पारा॥ षट दरसन कोई नहिं देषा। स्याईकतार सुरत सुपेषा॥ ६॥

मध्य—माया ब्रह्म कोई संगी। तहाँ अटल राज करै अभंगी। जिनकूं गुरू इकतार लषाया। पहुँचै धाम वहुरि नहिं आया॥ ७॥ जैसें सलता सिद्धि समाई। असहंसा सवद मिल जाई॥ है इकतार सजीवन बूटी। विन इकतार वात सव झूटी॥ ८॥ वात कहूं तो कोई न मानै। जिन देषा सोई भल जानै॥ पूरन भक्ति प्रगट जब आई। जिन इकतार कूं लिषा वनाई॥ ९॥ षिर अषीर सो दौ उसैं न्यारा। है इकतार सक आधारा॥ है सव पूरनजि स्यान आवै। वैठि निरंतर नाद बजावै॥ १०॥

अंत—जप तप धरम अनेक दिढ़ावै। विन इकतार मोछ कहँ पावै॥ जपतप व्रत षीनहुँ जवै। विन इकतार मुक्ति नहिं पाई॥ ११॥ कहै कबीर सुनि भ्रमनि भाई। है इकतार जो हंस सहाई॥ साषी॥ सतगुरू सु साचा रहै। सुरत्ति करै इकतार। कहै कबीर धरम दास सौं। हंसा पावै लोक मझार॥ १२॥ इति इकतार की रामणे संपूरन॥ श्री गणेशायनमः॥

विनय—इकतार की महिमा का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की अविकल रूप से प्रतिलिपि कर दी गई है।

संख्या ४९ ओ. जनम पत्रिका प्रकास रमेनी, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—बाँसी, पत्र—१६, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८४६ वि०, प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हि० वि० वि०, काशी।

आदि—नीज समरथ महापुरुष की दया॥ कबीर धरमदास की दया॥ सब गुरौं की दया॥ लिषतं ग्रंथ जनम पत्र का प्रकाश रमेणी। अगम अगोचर प्रेम प्रकास। कहे

कबीर पुरुष के दास । जा दिन अलंकार कछु नाहीं । होता आयो आप गुसांई ॥ वा पुरूषा में नीक समाया । भुव भामा बीच सुत जनमाया । पुरष पीता ओर सकती माता । कहे कबीर सुनौ सब भ्राता ॥ मात पिता सबहीन के वेही । जानेगा कोई परम सनेही ॥ आवो अवधु मेरे बंधु । भाषु मात पिता की संधु ॥ तब की कथा सुने फले ऐसा । पावे भगती सब मीटे अंदेसा ॥ जेसे जन मह मारा उतपानी । जिनकी बरनी सुनाउं भिनी वानी ॥ सब मिली आवो अरथा वानी । जनम पत्रीका कथु रमेनी ॥ आवो ब्रह्मा बिसन महेसा । करो चरित्र जिन धारो ऐसा ॥ आवो राजा दस अवतारा । रूप धरे घरी कियो संचारा । आवो कछ सीस टके थंभु । तो डीसी षट रचो आरंभु ॥ आवो मछ दुज बेद छुडाया । संषासुर कूं भारी बुहाया ॥

अंत—जप तप नाम तपकेता । अषर सुगती थावे तेता । तीरथ बत्तीस ओर जायगा उत्री । सबहनि ओट अषर की पकरी ॥ अषर आप आपही भया । तामी निकसी सुंदर माया ॥ ताके पाप पुनी दोई वारा । तासु पसर रहो जाला ॥ अषीर बिना जल नाही सूझे । सोही मूढा जो अषर नाही बुझे ॥ फर फर करे जल की पूजा । सोही मूढ जो अषर नाही सूझा ॥ नीरगुन सरगन मारग दोई । भिनी भिनी में भाषै सोई ॥ दगा घोष ओर सती समधी । तामे कछू न राषी बांधी ॥ कह भाई काहु अभाई । हम तो थी तैसी ही गाई ॥ जीहा नही मेरी प्रतीती । धरम राये जीहा करे फर्जीती ॥ जो कोइ धाती अंघाती पीछाने । सो पावेगा पद नीरबाना ॥ जनम बोध और जनन पत्रीका । बरनी सुनाऊ आदी समता ॥ सबद सजीवन कर हो परचे । परम हंस हो यहो नीहचे ॥ मेपर पंच कबु नाहीं गांऊ । निरगुन भगती वज़ीर कहाऊ ॥ दंगा अषर ना कथु । परमारथ की सीर । मैं पालेमा नाहीं कथु, नाम धरा कबीर ॥ ये ही जनम बोध । जनम पत्रीका रमेनी, संपूरन सही । जो देषे सो लिषो । मम दोष नाहीं लिषी गुसांई जी साहेब संतोष दास जी हथ अषरी ॥ लिष दया करी सीष रामदास के ताई ॥ लिपीनी नते चत्र मासौ रहा रघदास के ॥ बगबावडी छत्री में वठा ॥ मती सावण सुधी असटमी सुक्रवार संवत् १८४९ ॥

विषय—देवी-देवताओं, ऋषि-महर्षियों और संत-साधुओं को बुलाकर जन्म पत्रिका के विषय में दार्शनिक विवेचन किया है ।

विशेष ज्ञातव्य—इस ग्रंथ के कर्त्ता कबीरदास हैं । इसका रचनाकाल नहीं दिया है । लिपिकाल संवत् १८४९ वि० है । सब देवी-देवताओं, ऋषि-महर्षियों और संत-साधुओं को आह्वान करके कबीरने अपनी दार्शनिक विवेचना सुनाई है ।

संख्या ४९ पी. कबीर भेद, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—बांसी, पत्र—१४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ (पुस्तक में इसके बाद लिखे एक अंश पर यह संवत् दिया है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हिं० विश्वविद्यालय, काशी ।

आदि—कबीर भेद संदेश जिनौं नहीं पावा। पसू भये पापी जन भग भावा। जिनि नहीं पाया काय बिचारं। सो कबहूं न उतरै भौ जल पारं ॥ जिनि काया का मरम न पाई। मुकति षोवतै गये सिराई। तन मन षोज जिन्हौं नहीं कीना। ताकूं मारग जम नहीं दीना। कायाभेद जिनि तन मन पाया। ताकै काल निकट नहीं आया। जौ यह चंचल पवन जौ होई। निकसै जुगति भुलावै सोई। कायाभेद न जानही। गली गली कण हार। हंस हसनी का भेद न जानै। क्यौं उतरै भौ पार ॥ १ ॥ कायाभेद जो जानै अंगा। ताकै काल न आवै संगा। कनक कामनी रहे उरझाई। कैसे काया विचारहि पाई। यौ नहीं पावै काया ठिकाना। कैसै करि हैं अगम पयाना। काया को नहीं जानै भेंदा। ताकू काल करत है षेदा। स्यन काया करम या अंता। सोई जानौ निरमल संता। कायाभेद न समझै बांनी। ताकी काल करत हैं झांनी। जिनि काया मैं जान्या ष्याला। ताकूं छेरि न सकई काला। काल घात करि सवन रूवावै। कैसे काया विचारहि पावै। मूल रहे जहाँ सिरजन हारा। षोजि मूल निज करौ बिचारा। नहीं तहां पावक पवन अकासा। नहीं तहां मदर मेर क विलासा। ऐसा भेद रहै वही पासा। डाल मूल फल फूल निवासा। नहीं आकास नहीं तहां धरनी। नहीं तहां बेद जो ब्रह्मा बरनी। आरंभ जुग के कहूं विचारा। च्यारि पुत्र जाकै मसियारा। नाम कहूं का राषौ गोई। सब जुग त्रेता द्वापर होई। वै तौ तीन्यौं भ्रम भुलांनै। सति सबद कलऊ पहचांनै। ऐसा पुरूष सति कीन विचारा। सबद रूप नारी औतारा। नर नारायण कीना कैसा। हद वेहद गगनि होई पैसा। कीया बुधि वल तेज उपाई। पल मैं रची सिष्टि दुनियाई। स्वे जो पानी पवन अकासा। रचे मेर मंदिर क बिलासा। रची पहुमी जरती नौ षंडा। रचे मेरमंडल ब्रह्मंडा। रचे बेद कतेब बहौ ग्याना। रचे ऊरम तहां जोति ठहराना। रचे रसगुन रवि ससितारा। रच्यौ मधि तहां रतन भंडारा। तहाँ रहे जोगी जोग अपारा। रची प्रथमी भूला संसारा। सारी सृष्टि बनाय कै, पूरन कीया सरीर। आरंभ जुग परदा लिये षेले, सतगुर कहै कबीर ॥ २ ॥ कामिनि कनक दोऊ जोरावर, यन राषौ विसवास। जो यन कै बिसवास भुलानै, तिनकूं जमकी फांस ॥ ११ ॥ बाना देषि सबै सिर नावैं, भेद परष नहीं भारी। बहौतन कै गुरवा भै निकसै, गैंद भये कण हारी ॥ १२ ॥ बाना जस भेद तस होई, तौ बहौतै सुष पावै। ताकी काल करै सिवकाई, फिरि फिरि सीस नवावै ॥ १३ ॥ ताकै गुर कबीर हैं, करै भेद सूं मेल। ताकी काल करै सिवकाई, स्व जताकर चेल ॥ १४ ॥ नहीं तौ जग मैं बहौत हैं, सौंति बाक जौं कहिये। कहै कबीर सुनौ भाई साधौ, देषि विचारै रहीये ॥ १५ ॥ प्रगट कहैं माने नहीं, गुपत न मानै कोय। सहना दुरधो प्यार मैं, को कहि वैरि होय ॥ १६ ॥ काकूं गहि भरि रोइये, काकूं व्यापै पीर। उरलै आवै कंठ लग, फिरि भजि जाहि अधीर ॥ १७ ॥

अंत—दीपक जरै समंद में, पंछी रहै तहां झूरि। विरह के माते झुकि रहे, मरत विसूरि बिसूरि ॥ ३१ ॥ आव पतंग निसंक जरि, फिरि फिरि वोट न लोह। जौ चाहौ पीव आपनौ, सनमुष होय जीव देह ॥ ३२ ॥ बिरहनि जरती देषिकैं, सतगुरु पहौंचे आय। प्रेम बूंद सूं छरकि कै, तन मन लीया समाय ॥ ३३ ॥

विषय—इसमें कबीर दास ने काया के संबंध में अपने सिद्धांत प्रकट किए हैं।

विशेष ज्ञातव्य—देखो ककहरा ग्रंथ का विवरण पत्र।

संख्या ४९ क्यू. कबीर मंगल, रचयिता—कबीरदास (काशी), कागज—देशी, पत्र—१, आकार—८½ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बाबू निरंजन लाल, स्थान व डा०—सादाबाद, जि०—मथुरा।

आदि—ॐ सब मिलायो संसार। भमर उडि जायगो॥ तेरी भक्ति विना भगवान। जन्म पछितायगो ॥ १ ॥ कहाँ सुं आयो जीव कहाँ चली जायगो ॥ जीवित करि लै पहिचानि मूंआ कहाँ पायगो ॥ २ ॥ सतलोक सूं आयोजीव त्रिगुण में समायगो ॥ भूलि गयो वह देश माया लिपटायगयो ॥ ३ ॥ नहिं तेरो गाम न ठाम नहीं पुर पटना। सबही बटोऊ लोग नहीं कोऊ अपना ॥ ४ ॥ दास कबीर का मंगल हंसा गाइये ॥ हंस चलै सतलोक बहुरि नहिं आइये ॥ ५ ॥ घडि एक विलमो राज नगर के राजवी। ऐसो मवासो छांडि उदासी क्यों हुए ॥ ६ ॥ काया करत पुकार जंगल वीच क्यूं धरी ॥ पहिलै कियौ है सनेह आव क्यूं प्रहरी ॥ सबहि बटाऊ लोग सजनी तोसूं कहूं ॥ मान सरोवर के हंस तेरी ढिग नारहूं ॥ ३ ॥

मध्य—चलै अगम के देश काल देषै जरै ॥ भक्त प्रेम के होद हंस क्रीडा करै ॥४॥ तहाँ दिवस नहिं दिया डोसर को ॥ कहत दास कबीर चतुर जन पारषो ॥ ५ ॥ पानी सों पिंड रचाय सो घट पैदा किया ॥ पंछी पंजर माहे रे नेवास किया ॥ १ ॥ आगे औघट घाट विकट पाणी भरयौ ॥ पापी डूबे मांही संत तीरी निसरै ॥ १ ॥ जम के हाथ में जाल गुप्त लिए फिरै ॥ पापी उलझि मांहिं, संत को कहा करै ॥ २ ॥ अकल्ल कमाड अडाय भगुल भागल जडी ॥ सांकर जडी है व्यजोज करि गाढि परि ॥ ३ ॥ तहाँ मति सोवैं अचेत षता नहि पायगो ॥ पाँच चोर गढ मांहि गाढि मुसि जायगो ॥ ४ ॥

अंत—अगम सो कहत कवीर सुनौ मेरी आरसी ॥ सब जग चलै हम साणु पढंता पारसी ॥ ५ ॥ इति श्री कबीर मंगल संपूर्ण ॥ १ ॥ लिषी लक्ष्मीदास जी कू ॥ (संपूर्ण उद्धृत) ॥

विषय—जीवन का दार्शनिक विवेचन।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ में प्रतिपादित विचारों से मालूम होता है कि यह ग्रंथ कबीर की ही कृति है, किंतु भाषा कुछ सदेहजनक है। इसकी भाषा 'व्रजभाषा' और पंजाबी मिश्रित है। इसका प्रस्तुत प्रति में कोई समय नहीं दिया है। रचना यद्यपि छोटी है पर विचारों की दृष्टि से उत्तम है।

संख्या ४९ आर. नवपदी रमेनी, रचयिता—कबीर, कागज—बाँसी, पत्र—१०, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—११२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ वि० (पुस्तक के एक अंश पर जो इसके बाद लिखा गया है यह संवत् है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हि० वि० वि०, काशी।

आदि—॥ राम कबीर ॥ एक बिना नीरच्या विनानं । सवै अपाना आप सयानं ॥ सतरज तमतैं कीनी माया । च्यारि बानि विस्तार उपाया ॥ पाँच तत लै कीन विधानं । पाप पुनि मान अभिमानं ॥ अहंकार करि माया मोहू । सपति बिपति दीन सब काहू ॥ भलौ रे दोच अकुल कुलवंता । गुन निरगुन निधि नां धनवंता ॥ भूष पियास अनहित कीन्हा । हित चित मोर तोर कै लीन्हा ॥ पाँच तलै कीना बंधू । बधै करम वै आहै अवंधू ॥ और जीव जंत्र जो आही । संकट सोच न व्यापै ताही ॥ अस्तुति निंद्रा मान अभिमानं । झूठ जीव रहत्भौ गियानं ॥ बहौ विधि करि संसार भुलावा । झूठे दो जग साँच लुकावा ॥ माया मांह धन जोबनां । यह बंधे संबंधे सब लोभ । झूठे मूठ वियापीया । कबीर अलषन लेष कोय ॥

अंत—अपना औगुन कहत न पारा । यहै अभाग जौ तुम न संभारा ॥ सतगुर मिलै न मन थिर मन रश्रावा । जा बिछुरै तै बड दुष पावा ॥ मेघ न वरषै जाय उदासा । तऊ न सारंग सागर आसा । जा लहर भरयौ ताहि नहीं भावै । के मरि जाय कै वहै पिवावै ॥ मिला राम मनि पुरई आसा । जा विसुरै तैं सकल निरासा ॥ मैं रनिरासी जब निधि पाई । राम नाम जीव जाग्या जाई । ज्यौं नलनी कै नीर अधारा । छिन विछुरै तौ रबि परिजारा । नाम बिना जीव बहौ दुष पावै । मन पंछी जग अधिक जरावै । माघ मास रुति परै तुसारा । भया बसंत तब बाग सँवारा । अपना रंग सूं कोई राता । मधकर बास लेय मैं मंता ॥ बन कोकिला नाद गहगहाना । रुति बसंत सबकै मनमाना । बिहानी रजनी जग प्रति भईया । विनि पिय मिलै कलपटर गइया । आतमा चेति जीव जाग्या जाई । बाजी झूठ राम निधि पाई । भया दयाल वाजैं निति वाजा । सहजैं राम नाम मन रांचा ॥ जरत जरत जल पाईया । सुषक सागर मूल । गुर परताप कबीर की । मिटि गई सलै सूल ॥ ९ ॥

विषय—माया, आत्मा, परमात्मा, गुरु, सत, रज, तम, पाप, पुण्य, मान और अभिमान आदि पर दार्शनिक विचार प्रकट किये गए हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—देखो ककहरा के विवरण पत्र में विशेष ज्ञातव्य ।

संख्या ४९ यस. पंचमुद्रा, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—बाँसी, पत्र—१०, आकार ६ × ४३ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ वि० (पुस्तक के एक अंश पर जो इसके बाद है यह संवत् दिया है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, काशी हि० विश्व विद्यालय ।

आदि—॥ लिषते पाँच मुद्रा ॥ मुद्रा चांचरी थां नराकासं । धूसरी भ्यास तहां देर्षाये प्रकासं । तन मन चेतनि तहां प्रवास । नहां बहौ देषीये जोति प्रकासं । त्रिमता काम धेनित होई । वह अम्रित कूं सरवैं सोई । पहौप प्रकास तहां बिजरी रेषा । ऐसा घ्याल अकास मैं देषा । आर कत बरन श्रुनि का भाऊ । ग्यान जोगी तहां देषीया चाऊ ॥ १ ॥ मुद्रा भूचरी नासिका थानं । तहां देषीये उतंग बिंद का ध्यानं । यंद्री जिभ्यां तत विचारं ।

तहाँ देषीये बीजरी चमकारं । तहां देषीये बहौ रतन मोती हीरा । सोहूं आतम बसै तहां पीरा । षन सुष थान मैं कीया मेला । ग्यान जोगी तहां कीया षेला ॥ २ ॥ मुद्रा चाचरी थान राकासं । मन बुद्धि हित चित्त भया हुलासं ॥ च्यत चेतनि झिल मली रेषा । भ्यासा लीलंबर पवन कूं पेषा । जहां सूरजि कोटि प्रकास का तेजं । झीणा महल तहां सुषमना सेजं । तहां मन मगन भया आनंदा । ग्यान जोगी तहां पूरण चंदा ॥ ३ ॥ मुद्रा अगोचरी सुनम आकासं । जग झूठा तजि भया उदासं । त्रं त्रं नाद जो उठै तरंगा । चिन चिनी किन किनी किंनरी बैना । गर्जैनि संधि तहां अनहद बैना । तहां मन भवंर विलंब्या भोगी ॥ सांच भया निज ग्यान जोगी ॥ ४ ॥

अंत—चांचरि मुद्रा मारग पाँच असथानं । उनमनि मुद्रा तहां निरजन का ध्यानं । सोहूँ कहीये ब्रह्म गियान । पवन करै अम्रत पान । सो अम्रित कोई बिरला पीवै । सोई साधू जुगै जुग जीवै । ना सो आवै ना सो जाय । अषंड मंडल में रह्या समाय । ताकू जुरा मरण काल नहीं आवै । आप सूं मिलै आप कहावै । कहैं कबीर यह ग्यान ततसार । यह मारग सति सांच निरवारं । कहै कबीर समझाय कै । हंस उतारै पारं । येना सुषमना सथूल । पंचमी महा अदभूत । आतमां अन भै बानी पांच मुद्रा संपूरन ।

विषय—कबीर ने पंच मुद्रा पर अपने सिद्धांत प्रकट किये हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—देखो 'ककहरा' के विवरण पत्र में विशेष ज्ञातव्य का स्तंभ ।

संख्या ४९ टी. शब्द, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—७२, आकार—६½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९६२ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० मोतीराम जी, स्थान—पलसों, डा०—गोवर्द्धन, जि०—मथुरा ।

आदि—राम तेरी माया दुंद वजावै । गति मति वाकी समझि परै नहि सुर नर मुनिहि नचावै । काह सिमर तेरे शरवा वढा यूं फूल अनूपम मांणी । केते चात्रिक लागि रही है चाखत रूआ उडानी । काह खजूर वड़ाई तेरो फल कोई नहिं पावै । ग्रीष्म रितु जब आई तुलानी तेरो छाया काम न आवै । अपनै चतुर और कौ सिषवै कनक कामिनि सयानी । कहहिं कवीर सुनहु हो संतौ रामचरन रितु मानी ॥ १ ॥

अंत—झूठहि जनि पतियाहु हो सुन संत सुजान । तेरे घट ही में ठग पूर है मति षोवहु अपाना । झूठे का मंडान है धरती असमाना । दशहु दिशा वाकै फंद हैं जिव घेरे आना । योग जप तप संयमा तीरथ व्रत दाना । नौधा वेद किते वहे झूठे का वाना । काहू के शब्दै पुरै काहू करामाती । मान बडाई ले रहा हिंदू तुरक दी जाती । वात वेवते असमान के मुद्दत नियराणी । वहुत खुदी दिल राखते बूडे विनु पानी । कहहिं कबीर कासौं कहों सकलो जग अंधा । सांचे सो भागा फिरै झूठे का वंदा ॥ १३ ॥ इति शब्द ॥

विषय—कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन ।

संख्या ४९ यू. सतपदी रमैनी, रचयिता- कबीर (काशी), कागज—बाँसी, पत्र—३, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१,

पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ (पुस्तक के एक अंश पर जो इसके बाद लिखा है यह संवत् दिया है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हिंदू विश्व विद्यालय, काशी।

आदि—कहन सुनन कूं जिह जुग कीन्हा। जुग भुलान सो किनहूं न चीन्हा। सतरज तम तैं कीन्ही माया। आपा मधे आप छिपाया। ते तौ आहि अनंत स्वरूपा। गुन पालौं विसतार अनूपा। साषा तत तहां कुसुम गियानं। फल सो लागि राम का नामं। सदा अचेत चेत जीव पंछी। हरि तरवर करि वास। झूठे जुग जिनि भूलिसिजीवरा। ये कहन सुनन की आस ॥ १ ॥ सूक विरछ तै जगत उपाया। समझि न परै विषम तोरी माया ॥ साषा तीनि पत्र जुग च्यारी। फल दोय पाप पुनि अधिकारी। स्वाद अनेक कथा नहीं जाई। कीया चिरत सो मन में नाही। ये तौ आहिन निरा निरंजन। आदि अंति नहीं आन। कहन सुनन कूं कीन्ह जुग। कबीर आपै आप लुकान ॥ २ ॥ जिहि नटवै नटसारी साजी। जे षिलै सो दीसै बाजी। मो बपुरा की जो गति मीठी। स्यौ बिरंचि नारद नहीं दीठी ॥ आदि अंत ल्यौ लीन भये हैं। सहज जानि संतोषि रहे हैं। सहजै राम नाम ल्यौ लाई। राम नाम करि भगति उपाई। राम नाम जिन काम न माना। तिन तौ निज सरूप पहचाना ॥ निज सरूप निरंजना, निराकार अपरंपार। राम नाम ल्यौ लायसि जीवरा, मति भूलै बिस्तार ॥ ३ ॥ करि विस्तार जुग धंधै लाया। अंध काया तैं पुरष उपाया ॥ जिनि जैसी मनसा तिन तैसा भाऊ। तिनकूं तैसा किया उपाऊ। ते तौ माया मोह भुलांनां। षसम राम जो किनहूं न जाना। जिन जान्या सो त्रिमल अंगा। नहीं जान्या सो भये भुजंगा। ता मुष विष आवै बिष जाई। बिषीया विष मैं रह्या समाई। माता जगत भूत सुधि नाहीं। भ्रम भूला नर आवैं जाहीं। जानि बूझि चेतै नहीं अंधा। क्रम बिकार क्रम के फंदा। क्रम को वांध्यौ जीवरा। अहि निसि आवै जाय। मनषा देही पायकैं। कबीर अब काहे डहकाय ॥ ४ ॥ अब करि अहि चेति जीव अन्धा। तजि प्रकीरति भजि गोव्यंदा। उदर कूप तजो ग्रभ बासा। रहु रे जीव नाम की आसा। जग जीवनि जैसैं लहरि तरंगा। छिन सुष कूं भूलसि बहौ संगा। भगति कौ हीन जीवन कछू नाहीं। भ्रम भूलै नर आवै जाहीं। भगति हीन अस जीवना, जा मन मरन भौ काल। आश्रम अनेक धरि जीवरा, बिनि सतगुर नहीं उबार ॥ ५ ॥ सोई उपाव करि यह दुष जाई। ये सब परहरि विषै संगाई। माया मोह जरै जग आगी। ता संग जीसि कौन रस लागी। त्राहि त्राहि करि हम जो पुकारा। साध संगति मिलि करौ बिचारा। रे रे जीव नही विसरांमां। सब दुख जारन राम कौ नामा। राम नाम संसार में सारा। राम नाम भौ तारन हारा। सुम्रति वेद सवै सुन्या, नहीं आवै क्रित काज। जैसे कुंडल वनित मुष, नक विन सोभित राज ॥ ६ ॥ अविगहि राम नाम अविनासी। हरि तजि जन कितहू नहीं जासी। जहां जाय तहां होय पतंगा। अब जिनि जरै समझि विष संगा। चोखा राम नाम मन लीना। कीटी भ्रंग भिनि नहीं कीना। मन भावै अति लहरि बिकारा। नहीं गमि सूझै कछू वार न पारा। भौ सागर अथाह जल, तामै बोहथ नाम आधार। कहैं कबीर सतगुर मिलै, गोपद षुर बिस्तार ॥ ७ ॥ (सम्पूर्ण प्रतिलिपि)।

विषय—जगत, जग जीवन, माया, जुग, कर्म आदि का विवेचन। जीव का निस्तार सतगुरु के प्रताप से राम की भक्ति और राम भजन से ही होता है, इसका वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—देखो 'ककहरा' के विवरण पत्र में विशेष ज्ञातव्य का स्तंभ।

संख्या ४९ व्ही. षट् दरशनसार, रचतिया—कबीर (काशी), कागज—बांसी, पत्र—३, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१७४७ वि० (पुस्तक में इसके बाद लिखे एक अंश पर यह संवत् दिया है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हिंदू विश्व-विद्यालय, काशी।

आदि—काहे कू नाव धरावै भाई, विनि सतगुर सब जाहि नसाई। परमहंस संन्यासी ऐसा। जाकैं बैरी मित्र दोऊ जन जैसा। भगवां भेष करै मन माही। ब्रह्म अगनि पर जारै। कऊवा होय करक नही बैठै। सतगुर सबद संभारै। मान सरोवर निरमल न्हावै। तव जाय हंस परमगति पावै ॥ १ ॥ ब्रंह्मन सो जो ब्रह्म बिचारै। काम क्रोध की छोति निवारै। निरमल कला निरंतर न्हावै। वाहरि अंधा लोग दिषावै। अंतर ध्यान करै षट् क्रमां। तब जाय नांव कहावै ब्रह्मां ॥ २ ॥ बैसनौ सोई जाकै अंतर माला। माहै निरति बजावै ताला ॥ अंतर प्रीति निरंतर राषैं। रसना राम रसायन चाषैं ॥ विषै विकार रती नहीं भावै। तब जाय बैस्नौ नाम कहावै ॥ ३ ॥ मुलां सो जो मन कूं मारै। आन जीव गलि करद न सारै। विसमल करै न मुरदा षावै। तब जाय मुलां नांव धरावै ॥ ४ ॥ दरद बंद दरबेस कहावै। ब्रह्म अगनि की भाहि उठावै। कुकड़ी बकरी कबहूं न मारै। सब सूरति मैं आप बिचारै। पीव पीव करै पीव चित लावै। तब असली दरबेस कहावै ॥ ५ ॥ जोगी सो जो जुगति बिचारै। ग्यांन षडग लै दुंदरमारैं। भैरों भगतिर गतनहीं पूजा। सुरा पान की छोति न दूजा। पांचौं चेला जुगति नचावै। अजपा जपै अलष कूं धावै ॥ आपा धरै न आप कहावै। तव जाय जोगी नांव धरावै ॥ ६ ॥ कहैं कबीर बिचारि कैं। षट दरसन सुनिसार। जिहि करनी साहिब मिलै। सो मारग अगम अपार ॥ ७ ॥ (पूर्ण प्रतिलिपि)।

विषय—इसमें कबीर ने परमहंस, सन्यासी, ब्राह्मण, वैष्णव, मुल्ला, दरबेस और योगियों के संबंध में अपने सिद्ध त प्रकट किये हैं।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ की अविकल रूप से प्रतिलिपि की गई है। विशेष देखो 'ककहरा' का विशेष ज्ञातव्य का स्तंभ।

संख्या ४९ डब्ल्यू. सोलह कला (तिथि), रचयिता—कबीर (काशी), कागज—बांसी, पत्र—२, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ वि० (पुस्तक के एक अंश पर जो इसके बाद लिखा है यह संवत् दिया है), प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।

आदि—कबीर मावस मनमैं गरब न करना, गुर परतापा दूतर तरना ॥ १ ॥ पडिवा प्रीति पीव सूं लागी, संसा मिट्या तब संक्या भागी ॥ २ ॥ दोयज बाहरि भीतर होई, अंतर रहता जोगी सोई ॥ ३ ॥ तीजै तीनि गुणां तै न्यारा, जो जानै सो गुरू हमारा ॥ ४ ॥ चौथै चित चेतनि सूं लागा, मन का धोषा सवही भागा ॥ ५ ॥ पांचौ मिलि गुर पूरा पाया, जौनी संकट वहौरि न आया ॥ ६ ॥ छठैं छोति करौ मति कोई। व्यापक ब्रह्म सकल घट सोई ॥ ७ ॥ सातैं सुरति सुधारस पीजै, निरभैं नाव धनी का लीजै ॥ ८ ॥ आठैं अण भैं लेहू बिचारी, सब घट पुरष नहीं कोई नारी ॥ ९ ॥ नौमी नैनां देष्या नाथा, तब हरि हीरा आया हाथा ॥ १० ॥ दसमी दसौं दिसा मति धावो, सहजै सहजै मन बिलमावो ॥ ११ ॥ ग्यारसि आवा गमन न होई, निहचै राम रमौ सब कोई ॥ १२ ॥ बारसि बावा वोलै वोही, जीवत मुकति प्राण सुध होई ॥ १३ ॥ तेरसि तनकी तपति बुझाई, अटल भया हरि सूं ल्यौलाई ॥ १४ ॥ चौदिसि चंचल निहचल हुवा कीना, हरि आया आगै है होय लीना ॥ १५ ॥ पून्यौं प्रेम पिया म पियाला पीया, सिर कै साटै साहिब लीया ॥१६॥ सोलह कला संपूर भई, सुनौ संतौ कबीर जी कही ॥ १७ ॥ संपूर्ण ॥

विषय—अमावस से आरंभ करते हुए पूर्णमासी तक कबीर ने प्रत्येक तिथि पर अपना सिद्धान्त प्रकट किया है।

विशेष ज्ञातव्य—देखो ककहरा का विशेष ज्ञातव्य का स्तंभ।

संख्या ४९ यक्स. वसंत, रचयिता—कबीर (काशी), कागज—देशी, पत्र—७, आकार—४½ × २½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—४९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० नत्थन मिश्र, स्थान—वरचावली, डा०—कोसी, जि०—मथुरा।

आदि—अथ वसंत ॥ शिव काशी कैसे भई तोहारी। अजहुहां शिव देखु विचारी। चोवा चंदन अगर पान। घर घर सुमृत होइ पुराण। वहु विधि भवन लागु भोग। ऐसो नगर कोलाहल करत लोग। वहु विधि प्रजा लोग तोर। तेहि कारण चित्त ढीढ मोर। सुनिकै शंकर भयऊ क्रोध। ऐसे काहु न कहल मोहि। सुरनर मुनि जाकें धरहिं ध्यान। तूंअ वालक कछु कहै न जान। हमरा बल कब कइहै ज्ञान। तुम्हरा को समझावै आन। जेहि जाहि मनसे रहल आय। जिव को मरण कहु कहां समाय। ताकर जौ कछु होय अकाज। ताहि दोष नहि साहेव लाज। हर हर्षित अस कहत भेव। जहां हम तहां दोसर न केव। दिना चारि मन धरहु धीर। जस देख हि तस कहहि कबीर ॥ १ ॥

मध्य—कर पल्लौं केवल खेले नारि। पंडित होय सो करो विचारि। कपरा न पहिरे रहे उघारि। निर्जिव सोधनि अति पियारि। उलटी पलटी वाजु तार। काहू सुख दे काहू उवार। कहे कवीर दासनि के दास। काहु सुख दे काहु उदास ॥ ८ ॥

अंत—मैं आयउं मेहतर मिलन तोहि। रितु वसंत पहिराऊ मोहि। लम्मी पुरिया पाइ क्षीण। सूत पुराण खूटा तीन। सरलागे तेहि तिनि से साठि। कसनी बहत्तर लागु ताहि। खुर खुर खुर खुर चलै नारि। वैठि जोलहदी आसन मारि। ऊपर

नचनी करै कलोल । करिगह मे दुई चलै गोड । पांच पचीसौं दसौं द्वार । सखी पांच तहां रचलि धमरर । रंग विरंगी पहिरि चीर । हरिके चरण धरि गावै कबीर ॥ १२ ॥ × × × इति वसंत ॥

विषय—कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन ।

संख्या ४९ वाई. ककहरा, रचयिता—कबीर, कागज—बाँसी, पत्र—११, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—७५, खंडित, रूप—पुराना, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ वि०, प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस ।

आदि— × × × ऊंकार करै जस कोई, तास लिष्या मेटना न होई ॥ ४ ॥ कका कंवल क्रिनि मैं पावा, ससि विगास संपुट नहीं आवा । अरु जो तहां कुस्म रस पावा, तौ अकहि कहा कहि का समझावा ॥ ५ ॥ षषा यहीं षोरि मन आवा, षोरिह छांडि दसौ दिसि धावा । षसमहिं जानि षिमा करि रहैं, तौ होय न षेव अषै पद लहै ॥ ६ ॥ गगा गुरु के बचन पिछाना, दूसरी बात न सुनीयें काना । सोई बिहगम कितहू न जाय, अगह गहे तल गगनि समाय ॥ ७ ॥

मध्य—फफा विनि फूला होई, ता फल फंक लहै जौ कोई । दूनी तलफै फंक विचारैं, ताकी फंक सबै तन फारै ॥ २६ ॥ बबा वेदहि बंद मिलावै, बंदहि बंद बिछुर न पावै । वंदा होय वंदगी गहै, वंदा होय सबैं वद लहै ॥ २७ ॥ भभा भिदही भेद न पावा, अरि भै भानि भरोसा आवा । जो भीतरि सो बाहरि जानै, भयो भेद भोपति पहिचानै ॥ २८ ॥ ममा मूल गहै मन मानै, मरमी होय समर महि जानै । जुगति जानि मन कूं बिलमावै, मन गहि मगन परम पद पावै ॥ २९ ॥

अंत—हहा होई होत न जानै, जन होय तब ही मन मानै । होत सही जानै जौ कोई, जब यह होई तब वह नहीं होई ॥ ३९ ॥ षषा षिरत षपत नहीं चेतै, षपत षपत गये जुग केते । अब जुग जानि जोरि मन रहै, जहां तै बिछुरया सो थिर लहै ॥ ४० ॥ बावन अछिर जोरया आनि, येकों आछिर सक्या व जानि । सति का सवद कबीर जी कहै, बूझौ जाय कहा मन रहै ॥ ४१ ॥

विषय—कबीर ने इस ग्रंथ में 'क' से लेकर 'ह' तक प्रत्येक व्यंजन से आरंभ करते हुए अपने सिद्धांतों का निरूपण किया है ।

विशेष ज्ञातव्य—पत्र संख्या ८१ में पुस्तक लिखने का संवत् १७४७ वि० दिया हुआ है । एक ही हस्तलेख में कबीर की कई रचनाएँ दी हुई हैं । ग्रंथ पूर्ण नहीं है । कुछ पत्रे आदि और अंत के नष्ट हो गये हैं । इसलिये समस्त हस्तलेख के पूर्ण होने का समय अविदित है; परंतु रेखता के समाप्त होने का संवत् दिया हुआ है । रेखता के पहले ककहरा, बार ग्रंथ, सोलह कला (तिथि), अष्टांग योग, षटदर्शनसार, कबीरभेद, पंचमुद्रा, रमैनी,

ग्रंथ हैं जिससे अनुमान होता है कि इनका लिपिकाल यही संवत् अथवा इससे पहिले है। पदावली रेखता के बाद लिखी गई है।

संख्या ४९ जेड. रेखता, रचयिता—कबीर, कागज—बाँसी, पत्र—२०, आकार—६ X ४१/२ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४७ ई०, प्राप्तिस्थान—पुस्तकालय, हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस।

आदि—राम का नाम मैं भेद भारी बन्या, राम का नाम तिहूं लोक साजा॥ जहां संत आरति करैं बैनु ताली धरैं, ढोल नीसान मृदंग बाजा॥ संत सांचा भया नाम ने जा गह्या, सुनिके डंड ब्रह्मंड गाजा॥ कहैं कबीर श्रबग अबिगति मिल्या, भजै भगवंत सो संत साँचा॥ ध्यान का धनक साधि मुकति मैं दान मैं, ग्यान कै बान मैं मंत मारा॥ सबद की चोट की घाव का दीसै नहीं, लोभ अर मोह अहंकार डारा॥ भगति का भेष की सेस महमां करै, सेस कै सीस पर ध्यान धारै॥ कंवल कूं छेदि कै ब्रह्म कूं भेदि के, काम दल जीति के क्रोध मारै॥ पदम आसन करै पवन पचै धरै, सुनि के महल मैं मदन जारै॥ कहैं कबीर कोई संत जन महरमी, करम की रेख पर भेष भारै॥ कोटि रबि चंद ससि भान दीपग जलै, चंद अर शूर घर येक आया॥ पानी अपानि का ग्रंथ वद वदि बन्या, भेदि षट चक्र बिनि जीभ गाया॥ पैठि पाताल स्यौ सकति सनमुष भई, ब्रह्म की अगनि पर तनताया॥

मध्य—कहर की नजरि दिल बीच सूं दूरि करि, मिहरि की नजरि बिनि पता तू षाहिगा॥ नेकी कूं यादि करि बदी कूं दूरि धरि, हस्तकी छांड़ि तैं भिस्ति कूं जायगा॥ मका करि मर्दाना करि दिलहाकावा करि, लाल को लाली बिनि षाष मैं समायगा॥ कहैं कबीर बंदै औजूद की षबरि करि, काल्या या क्या ले जहिगा॥ मैं तुझैं समझावता हूं बेमन गंवार माला फेरि मन की॥ मन ही का मनिका करि डोरा करि दिल करो जन संभारि देषि षव र करि तन की॥ हाकिमी जोर है जुवाब नहीं आवैगा, बिनतीरजा षुदाय कबीर जन जनकी॥ ततकी तसवी फेरि दिल म्यानैं सिदक मैं गुसल करि ज्यौं अलह मानैं॥ काम क्रोध कूं विसमल करि करद करि ग्यानै॥ हक है सोहलाल है और षुरदनी मुरदार करि जानै। जोर करै मसकी नहीं डंडे, यह तौ बंदे वंदगी साहबनही मानै॥ जिसक कौफ सूं जीव सव तिरि चलै नही कछू छानै॥ कलम कारी षोजा षुदाय हरफसानी आप लिषि जानै। पंच पीर निवाजयौ सजो बषत पहचानै॥ कहै कबीर वंदै भिस्ति है हजूर, जो कोई साहिब की वंदगी करि जानै॥

अंत—अजव ष्याल ष्याली ने षाषं का सवारा है। षाष ही की धरनि आकास रच्या षाष ही का, षाष ही चंद सूर षाष तैं उजारा है॥ षाष ही का देवल लै षाष सूं सुधारा है। कहैं कबीर भावै सो चेति देषौ, सवै चरित्र षाष ही का॥ क्या षूव ष्याल ष्याली ने षाष का सुधारा है॥ पोथी लिखितं रामदास कबीर का वालक सम्वत १७४७ वर्षे पोस

सुदि ७ ॥ सुक्रवार प्रेमदास की पोथी कबीर कूवै लिषी भींवतलाई की पालि । सबद चैंकस राषीयौ सदा पोथी पास राषीयौ । कवीर सबद सोषि ह्रिदै धरै । ताहि सबद सुष देय ॥ ग्यान बिचार बिबेष बिनि कछू न लाह लिय ॥ १ ॥

विषय—मन, दिल, बुद्धि, बंदा, मूरख आदि को संबोधन कर एवं सांसारिक बुराइयों का वर्णन करके परमात्मा के शुद्ध रूप का भजन करने के लिए कहा गया है ।

संख्या ५०. सुदामा चरित्र, रचयिता—कल्यान, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—६२ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२७, खंडित, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भोलानाथ जी, ग्राम—कारब, डा०—राया, जिला—मथुरा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ राम ही राम रट्यौ न घट्यौ कवहू मन सोच (? भयोन) भयो री ॥ सात समंज बिराजत के कवि जज्ञ हू दान में नाहिं कियोरी ॥ मानस देह धरी कछु धर्म कूं सो हमतें कछु नाहिं भयोरी ॥ वोलि "कल्यान" सुदामा की वाम ही काजु करी हरी की हम चोरी ॥ १ ॥ एक दिना गुरु आयसु दे हम इंधन कूं वन माहि पठाये ॥ मोहि चना गुर माता दये अव कृष्ण कहें वट वांटो रे भाये ॥ तवही तन मेंघ महावन छीतम भूष लगे जव मैं कुटकाये ॥ बोले कल्यान प्रभू कर आइकें तेही दरिद्री ये चोर चवाये ॥ २ ॥ ता दिन ते यह सूल भयो तिय मांगत ही सगरो दिन जाई ॥ पा दिन आजु दयानिधि आजु लौं पेट भरयौ किधौं रोटि न खाई ॥ भूलि गयो तबहो ते सवै सुधि आछि करी विधि रंत कृपाई ॥ सागर भूष मरें जुग में भया पेट दरिद्र परयौ खल दाई ॥ ३ ॥ सो हारि के सगरा जुग की पिया रास करी हमरा घर मांही ॥ देषौं सवै दुनिया में सिलो सोहें ऐसो वालक हू कोऊ नाहीं ॥ जाऊ कल्यान प्रभू सूं कहों तुम भारी भली करि नाथ कृपाई ॥ वांटि दरिद्र वरावरी दीजिये मेरे ही का भऊसार कुठाई ॥ ४ ॥ नाजु जुरें तो जुरें नहीं नोन ही साग जुरे तो जुरे नहीं हांडी ॥ का करिये जु तये के करायतों पोवत रोटि पषी षरीषांडी ॥ षाटहू टूटि कल्यान गई अब नाहिनें छानि में फूस न डाडी ॥ फाटि गये तन के कपरा अव जाहु जु द्वारिका होति है भांडी ॥ ५ ॥

मध्य—सेवा हू नाहिनही तुम्हरी पिय मोहू पैं आधु घरी हू ते आधी ॥ भूष लगे डिगि जात है देह जू एकहू वार अघाई नषाई ॥ जा विरिया लगि मांगिले आवत जा विरिया लगि जाइ न साधी ॥ दास कल्यान षदावत तातहि पेट दरिद्र परयौ अपराधी ॥ ६ ॥ आलस तो जिय को बडो बैरी है उद्यम मित्र सदा जुग पारौं ॥ सोचत है मन मांहि कहा द्विज हैं हरि नित्तही ऊठि सवारौं ॥ कंचन में रचना पुर की अव मित्र कल्यान कहा जु निहारौ ॥ पांडे गनेस मनाइ करो सिद्धि द्वारिका वेगिहि आजु सिधारो ॥ ७ ॥ काहेकू काम दह्यौ महादेव ने काहें कू अरजुन पांडौ उधारौं ॥ लाष के मंदिर भीम हलाइ कहे पुरुषारथ है जुग सारौं ॥ लंकाहू दग्ध करी हनुमान ने साइर कूदि कल्यान गिल्यारौ ॥ देषों घौं ऐसे चली जग में भैया पापी दरिद्र किनू नहीं मारौ ॥ ८ ॥ प्रात ही उठि पराई आस करै जे जुग माहि कहा जू ॥ दुर्बल देह कुचील उराहनो डोलत सारो ही धौंस

विहाजू ॥ तोउंजुरे नहीं छाकहूलाइक जानत हौं यह जीवो वृथा जू ॥ तातें कल्यान कहो क्यों न पांडे सु द्वारिका जाइके होत भला जू ॥ ९ ॥ वै जदुनाथ अनाथ के नाथ कहा उनपै मैं जांचन जाऊं ॥ साथ ही साथ पढ़े चटसार में कृष्ण वड़ी सभा जान न पाऊं ॥ डोलों सही मद लावत तो त्रिया कापे मैं जाइके हंत हराऊं ॥ लाष हमारें ही है जु कल्यान जू सेरेक नाज मैं मांगि ले आऊं ॥ १० ॥ काहे करो कर कांपै ही जाउ जु होइ लिषी हमरे जु विधाता । सिरजे दुष कूं सुष पावहि क्यों हम से वन के विरलै जग दाता ॥ कीजिये आस कल्यान प्रभू ही की मेटे सवै मन के पछिताता ॥ द्वारिका थैली धरी गिनि के कहा सोवन सोर करै अधिराता ॥ ११ ॥ मांगन हू कूं षदावती ना पिय काहेकु ऊठत हौ जु रिसाई ॥ मित्त को वित्त तो दोइ नही कछु मांगे ते जहां है दुविधाई ॥ साँच कल्यान कहौं द्विज सू अब कोई मनो विच कृष्ण सुनाई ॥ जाइ मिलाप करों हरि सू तुम मांगो मती उनही की दुहाई ॥ १२ ॥ भेंट कू नारि कहा लेके जाऊं जू कृष्ण बड़े कहिये अधिकारी । वे अव वात कहा तें पढै तव है अब तों कोऊ कोतुक भारी ॥ वीनि वनाई के आछे अषंडित तीनि मुठी दिये तुंदल नारी ॥ दास कल्यान जतन सों बांधि के फाटि सी चादर में अटकारी ॥ १३ ॥ हो पिया वात प्रसंग भलो सकुचावो मती त्रिया ने समझायो ॥ जानत हौं जदुनाथ अनाथ कहा कहूं काम सों में फल पायो ॥ अव तों अपराध छिमा करिये जु कल्यान कहा कहू और वनायो ॥ दीनदयाल दया करिये प्रभु चोरि चना अव चामर लायो ॥ १४ ॥ आजु भलो तिथि वार भलो पियचंद भलो शुभदाइक जी को ॥ जोग नछत्र वन्यो वल तारा को जोगिनि राहु महा रवि नीको ॥ आछो वन्यो सुर मित्र हि आइके दास कल्यान कहे तव ही को । सोन देषें भले ह्वै द्विज आवत पुस्तक काष विराजत टीको ॥ १५ ॥ मारग में मन मांहि कहैं द्विज कैसै कैधौं कृष्ण पिछानेंगे मोही ॥ छप्पन कोटिक जादव नाथ हैं भूलि गयों नचि-नारि हैं सोई ॥ एनो पिछानी अकोरन की जिनकी फिरे देसन मांझ जु दोही ॥ दास कल्यान अनाथ को नाथ हैं जानेहूं होति मिलेगो मोही ॥ १६ ॥ घनाक्षरी ॥ भागरील पोर को सों राम हो जु जाने भाई कैसै धौं गोपाल मोसों मिलेंगे कंगाल को ॥ जाके दरबार छरीदार हैं पियादे ठाढे भूलि गयो राज काज मोसे सिरिजाल को ॥ अवलों उवाहनो अभागो भागों वैसे ही नाही नाहीं नाहो वे मिलेंगे मो हवाल को ॥ दीन बंधु दीनानाथ जानि के पुरानी प्रीति दौरि के मिलेंगे किधौं मों सों कंगाल को ॥ १७ ॥ साहस को बांधि अरु सोचत ही भारी द्विज गये द्वारिका महल देषे नंदलाल के ॥ आवत सुदामा देषे उठे अति आदर सों हंसि के मिले हैं हरि भरे अंक माल से ॥ भेंटि के जु वार वार दिये हरि आदर जू सुंदरी सकल पाइ परी मित्र लाल के ॥ झारत सुदामा जी के लै कै पटपीत पांइ, अवगति कीन प्रभु आपु तो निहालि के ॥ १८ ॥ सवैया ॥ बैठि प्रजंक सुदामा विराजत आठों महा पटरानि जु आई ॥ पाइ पषारत आछे अंगोछन पौन करै कोऊ सीतलताई ॥ धूपरू दीप संजोइ सवै विधि वासु अनेक दई महकाई ॥ अग्रपदारथ लैके कल्यान जू आरति साजि के रुकमनि लाई ॥ १९ ॥ अति आदर देषि भयो दुचितो द्विज भोर परी हरि की सारी भामा ॥ गालिव गर्ग व गोतम अंगिरा व्यास वसिष्ट परासुर नामा ॥ अंतर जामि जू जानि गये तव ही जु कल्यान हंसे घनस्यामा ॥ × × × प्राप्त ग्रंथ की पूर्ण प्रतिलिपि

विषय—सुदामा की कथा बड़े मार्मिक ढंग से वर्णन की गई है।

संख्या ५१. जल भेद, रचयिता—कल्यान राइ, कागज—स्याल कोटी, पत्र—१७, आकार—१०×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—५१२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—रामप्रसाद जी वैश्य, पुरानी बस्ती, जतीपुरा, मथुरा।

आदि—अब प्रथम श्री कल्यान राय जी मंगलाचरन दोइ श्लोक करिकें श्री ठाकुर जी कों ओर श्री आचार्य जी महाप्रभून कों नमस्कार करत हें ॥ भावितं विविधै भावैः प्रेष्ठ भावितयामहु भावये राधा कृष्णं भावितु भाव भावुकः यद्वाक्यी यूष भावनां ई भवोद्भवः भावये तानिजाचार्य्य पदो भावोय लब्धये ॥ अर्थ ॥ श्री कृष्ण जो हे सो केवल प्रेम भक्ति के भाव सो प्रसन्न होत हैं ॥ और भाँति प्रसन्न नाहीं होत हे ॥ और श्री कृष्ण हे तिनमें विविध प्रकार के भाव हे सो कहत हें ॥ पुत्र भाव सख्य भाव पति भाव वैर भाव ॥ ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम सबते परे सो भाव और नाना प्रकार के भाव हे जिनको जेसो भाव होइ ॥ तिनको ताही भाँति सो मनोरथ सिद्ध करत हे ॥ तामे सब भावन ते श्रेष्ठ भाव कहत हे ॥ जामे सब ते रस बहोत हे ॥ भाव ये राधा कृष्ण जहाँ आदि श्री वृन्दावन हे ॥ तहाँ श्री ठाकुर जी और श्री स्वामिनी जी परम सौभाग्यमान सदा विराजत हे ॥ तहाँ नाना प्रकार की लीला करत हें ॥ सो भाव तो सबते ऊँचो है ॥ परन्तु ऊँचो अधिकार होइ ॥ तिनको मनोरथ सिद्ध होत है ॥

अंत—हस्त सों श्री ठाकुर जी की सेवा करत हें ॥ ओर पग करिकें श्री ठाकुर जी के तीर्थ हे ॥ तहाँ जात हे ॥ सो या प्रकार सब इंद्री श्री ठाकुर जी में विनयोग करत हे ॥ ताते श्री प्रभू जी आप प्रसन्न होइ ॥ सो परम फल रूप अपनो दर्शन करावत हें ॥ सो या प्रकार जल भेद में इकीस श्लोक हे ॥ ताको निरूपन श्री कल्यान राय जी किए हें ॥ ताते या ग्रंथ में वैष्णव को बड़ी सिक्षा हे ओर प्रेम भक्ति की रीति हू हे ॥ ताते यह ग्रंथ परम रस रूप हे ॥ याको भाव तादृसी वैष्णव होइ ॥ तिनही सों मिलि के करिए ॥ तो तत्काल फल की सिद्धि होइ ॥ और मिथ्या भासन वैष्णव को न करनो ॥ और मिथ्या क्रिया हू न करनो ॥ ओर मिथ्या ध्यान हू न करनो ॥ यामें लौकिक अलौकिक कछू हू सिद्ध नाहीं हे ॥ ओर तादसी वैष्णव विना यह ग्रंथ काहू कों देनों नाहीं ॥ याको भाव नित्य नेम सों हृदय में विचारनो ॥ इति श्री वल्लभाचार्य्यजी कृत जलभेद ताकी टीका श्री कल्यान रायजी कृत सम्पूर्णम् ॥

विषय—मनसा वाचा कर्मणा तथा सब ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेंद्रियों द्वारा किस प्रकार भगवद् आराधना करनी चाहिए, इसी का विस्तार पूर्वक पुष्टिमार्ग सिद्धान्तों के अनुसार वर्णन किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—कल्याण राय का यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। पद संग्रहों में इनके गीत बहुत मिलते हैं ये उच्चकोटि के कवि थे। यह पहिले पहल ही ज्ञात होता है कि

इन्होंने गद्य में भी कोई ग्रंथ लिखा है। ये बड़े भक्त थे। इनकी निधि (सेव्य ठाकुर जी) अब भी जयपुर राज्य के अन्तर्गत है जिसकी बड़ी मान्यता है।

संख्या ५२. सुदामा चरित्र, रचयिता—कमलानंद, कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—६ X ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—८०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मनोहरलाल पाठक, स्थान व डा०—श्री बलदेव, जि० मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः कहत त्रिया समुझाय दीन को बंधु हरि ॥ निसि वासर याही गयो तुम जन्म गंवायो। मन मलीन तन छीन सदा दारिद्र रह छायो ॥ दुष की रासि जु भुंजते बीति गये पन चारि। सुष कबहू पायो न पिया कहत सुदामा नारि ॥ दीनको बंधु हरि ॥ १ ॥ अरी नारि दुराचार स्वारथ अपनो करि जानै। पतिव्रता जो होइ न कबहू दरिद्रहि मानै ॥ दान पुन्य कीनो नहीं अपनो कियो न होय ॥ विषै परायो देषि तुम काहे मरो तिय रोय ॥ दीन के बंधु हरि ॥ २ ॥ द्वारावती लग जाति कहा पिय तुम्हरो लागे। जिनके हरि सो मीत कहा घर घर कन मांगै ॥ कन मांगत लज्जा नहीं विन आदर की भीष ॥ तातै कंथ पधारो हरि पै सुनो हमारी सीष ॥ ३ ॥ तबै सुदामा कह्यो वधू एक मंत्र सुनाऊं। मित्र इष्ट गुरु बंधु गेह रीते क्यों जाऊं ॥ मन ही मन सोचत रह्यो मिलन कहा लै जाऊं ॥ फटि वस्तर कुचिल अंग है सनमुष जात लजाऊं ॥ ४ ॥ दीन के बंधु हरि ॥ धन बिन धरम न होय बेद विन यज्ञ अचारा। स्वजन कुटुम्ब परिवार विना धन गति व्यवहारा ॥ धन विन धीरज ना रहे धीरज विन सतजाय ॥ तातै कंथ पधारो हरि पै कहा रहें सिरनाय ॥ ५ ॥ कै मोहि चीन्हे नाहि किधौं पहिचानि न होइ। कै मोहि देषि लजाइ कहा तैं गति मति षोई ॥ बूझै उत्तर न आइहै तब रहि हो अरराय ॥ कै उठि अति मलीन देषि कै कछुक दिवावो जाय ॥ ६ ॥ तबै त्रिया कन छांटि भेंट तंदुल करि दीने। नैन रहे जल पूरि चलत परनाम जु कीने ॥ मन ही मन सोचत चलै द्वारावति समुहाय ॥ जादो सभा प्रवीन अधिक है कहा कहोंगो जाय ॥ ७ ॥ दीन के बंधु हरि ॥ ७ ॥ जो कहुं जाय दरिद्र कहा घर संपति आवै। त्रिया करै अभिलाष सोच मन में दुष पावै ॥ मन ही मन सोचत चलो मारग गयो सिराय। करि स्नान तिलक दै मस्तग नगरी पहुँचे जाय। दीन को बंधु हरि ॥ तव हलधर कर जोरि कृष्ण को आपु वताए। कछू हमारे भाग्य सुदामा मिलने आए। सभा उठी महराय के पट पांवडे संजोय। भीतर भवन आरति सजी आनंद मंगल होय ॥ दीन के बंधु हरि ॥ चलै सुदामा लैन दूरि तै भुजा पसारै। भाग हमारे जगे वहुत चरनन पग धारै। सनमुष सव तन हेरि के रज लीनी पट झारि ॥ बूझत कुसल क्षेम मंदिर की भुज प्रसन्न भए चारि। दीन के बंधु हरि ॥ कोमल कर सो चरचिकपत पाना सो ढारे। अतिश्रम भयो हे पंथ चलत मारग के हारे ॥ बहुत कृपा हम पर करी दरसन दीनो आइ ॥ होत दीन जदुनाथ भगत पर आनंद उर न समाइ ॥ आगे परि हरि चले पांवडे परत बहुत विधि। अष्ट सिद्धि नवनिधि मुकति दरवार षरीरिधि ॥ सिंहासन बैठारि कै करी आरति आनि ॥ दीनबंधु बृद सांचो किये सषा पुरातन जानि ॥ तबै सुदामा कह्यो मोहि

धोषै जनि जानौ । दुरवासा अरु गरग भृगु व्यासहि मति मानौ ॥ अंतरजामी जानि के दीनी कथा चलाय । संदीपन के हमहू सुदामा पढै एक संग जाय ॥ अजहु दारु षवरि जबै गुरु विनही पठाए । गुरु माता दिये चना छोरि तुम आप चवाए ॥ जब बन में आंधी उठी रहै रैन करि बास ॥ ऐसी क्षुधा मेघ अति वरषै कठिन सही तन त्रास ॥ ९ ॥ चले लकरिया वांधि पहरि इक रैन रही जब । आय आंगन में षरे बोल आवै नहि मुषतब । विन आज्ञा डारै नहीं गुरु सेवा जिय जानि ॥ तत्र के विछुरे हमहु सुदामा अवहि मिले हो आनि ॥ १० ॥ दीन के बंधु हरि ॥ षट रस व्यंजन साजि करी बहु भांति रसोई । बहुत दिनन की कलप आज इंद्रिन की षोई ॥ कोमल कर सों चररि करि पट प्रसन्न वैठारि ॥ जदुपत करते षवावत विरी रुकुमनि करत बयारि ॥ ११ ॥ दीन के बंधु हरि ॥ अजहूं होहु दयाल कछुक जो भावी दीनो । हम पै रहे छिपाय कछुक जो पलमा कीनो ॥ तंदुल लियो छिनाइ के मुष दीने छिटकाय ॥ तीजि मुठि भरन जव लागे रमा गह्यो कर आय ॥ १२ ॥ भीतर भवन पधरि सवन को चरन छुवाए । जादो कुल के विप्र सुदामा बाहिर आए ॥ चलत कृष्ण विनती करी जिन विसरो द्विजराज ॥ द्वारावती पधारत रहियो करी हमारे काज ॥ १९ ॥ तवै सुदामा चलै पैंड दस बाहिर आए । घरहि कहा ले जाऊं षरच हम कछू न पाए ॥ मनि मानिक हीरा घने कछू न दियो हरिमोय ॥ हा हा कृष्ण पठावत रीतो कहा वनि आइ तोय ॥ २० ॥ हरि हे चतुर सुजान परम गुन सील के आगर । माया दई न मोहि कृपा कीन्ही हरि नागर ॥ माया कलह की रासि है धरै त्रिगुण विपरीत ॥ जाके जाय चैन नही ताकू यह माया की रीति ॥ २१ ॥ दीन के बंधु हरि ॥ काम क्रोध मदलोभ सकल माया तै होइ । ज्ञान ध्यान तप धरम सकल माया तै होई ॥ माया कलह की रासि है । सुर मुनि रहै लुभाय ॥ दुष की षानि जानि के केवल कृपा करी जदुराइ ॥ २२ ॥ दीन के बंधु हरि ॥ शंष चक्र गदा पदम कंठ बैजंती माला । राजत कुंडल लोल जगमगे नैन विसाला ॥ अंग अंग छबि सुमिरि के मन में करत हुलास ॥ आयो निकट सुदामा पुर के देषे अटा अवास ॥ २३ ॥ कैधों भूल्यो पंथ किधौं द्वारावति आयो । कै मेरो पीछो तक्यो ठौर कहुं जु छिनाय ॥ छिनक उठै छिन बैठि के लषत ठिकानौ ठौर ॥ षवर परै नहीं चौद्ध महलन की द्वारावति किधौं ओर ॥ २४ ॥ देषि त्रिया तव कहै भवन आपने पधारो । कहा सूषे से बदन सोच मन ही जु बिचारो ॥ भीतर भवन पधारिये करहु सकल सुषरासि । जाय जु देषै विभौ आपनो पांय पलोटे दास ॥ २५ ॥ मैं हरि मंदिर लष्यो मोहि रुकमनि बौरावे, दीन दुषारी जानि तवै हंसि मोहि षिजावै ॥ ए हरि मंदिर राजही तुम हो रुकमनि रानि । रूपरासि कहा मोहि दुरावहु मैं जुलई पहचानि ॥ २६ ॥ तबै त्रिया कर गह्यो ठगोरी तुम कछु षाई । करो हमारी हंसी किधों हमसां चतुराई ॥ त्रिया हंसै मन मैं चषै सकुच रहे जिय मांहि ॥ षवर परै नहि चोध महलन की कहो कहा कै जाहि ॥ २७ ॥ तवै त्रिया कर गह्यो जवै अति भूल्यो जानो । ड्यौढ़ि पौरि लंघाय महल भीतर गह आन्यो ॥ मगन भयो तब देषि के अन्न वसन वहु भाँति ॥ वन गये सजन सारथी रथ पर जटित नगन की पाँति ॥ २८ ॥ मन गह्यो माया छुटी कृष्ण चरन चित लाग्यो । अंतर उपज्यो ज्ञान कछुक सोवत सों जाग्यो ॥ इतनी बात कहा कहों वेद पुरातन साषि । जे जे पतित चरन तकि आए

तिनहि लियो प्रभु राषि ॥ २९ ॥ चरित सुदामा कहै ताहि दुष निकट नहिं आवै ॥ अरथ धरम अरु काम मोक्ष चारों फल पावै ॥ ३० ॥ दीन बंधु विरदावली प्रगट भए हिय माहि ॥ कमलानंद विमल जस गावहि चरन कमल की छांहि ॥ ३१ ॥ दीन के बंधु हरि ॥ इति श्री सुदामा चरित सपूर्ण ॥—पूर्ण प्रतिलिपि

विषय—सुदामा चरित्र का वर्णन किया गया है ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत सुदामा चरित्र एक स्वतंत्र रचना है । समग्र ग्रंथ की प्रतिलिपि कर दी गई है । ग्रंथ के कागज और लिपि को देखकर इसकी प्राचीनता का आभास मिलता है । ग्रंथ स्वामी का कहना है कि यह कृति उनके परबाबा की है जिनको मरे लगभग १००-१५० वर्ष हो गए । स्वयं ग्रंथकर्ता ने रचना का कोई संवत् नहीं दिया है ।

संख्या ५३. शब्दावली, रचयिता—श्री केशवदास जी (झामदास की कुटिया, जिला, सुल्तानपुर), कागज—देशी, पत्र—१४, आकार—८$\frac{1}{2}$ × ६$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) —१४, परिमाण (अनुष्टुप्)– ११६, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि देवनागरी, रचनाकाल–सं० १६०० वि० के लगभग, लिपिकाल—सं० १६८८ वि०, प्राप्तिस्थान—राम कृष्ण जी, स्थान—अहुरी, डा०—शाहमऊ, जि०—रायबरेली ।

आदि—॥ साखी ॥ भजन सही गुरुग्यान के रामनाम निहकाम । केशव सतगुरु झामपद सकल कलप गुण धाम ॥ शब्द ॥ भजुमन रामनाम लवलाई ॥ सुगम सुमारग पाप पराई ॥ छूटे दुरमति कर्म कलाई ॥ १ ॥ जवन कहत करतब्य करत विमिलाई ॥ गुरुपद पंकज दृढ़ सेवकाई ॥ २ ॥ असमत दायक भजु रघुराई ॥ गगन महलपर सुरति बसाई ॥३॥ जन केशव भवसिंधु सुखाई । भवन विराजत गुर ठकुराई ॥ ४ ॥ साखी ॥ गहुमन सत गुर नाम पद बैठि गगन के द्वार ॥ केशव राम प्रताव ते कीरति जगत पसार ॥ १ ॥

अंत—होरी—अलखलाल जहँ खेलत होरी ॥ सुरति सुंहागिल तहाँ चलोरी ॥ बाजत बीना किंगरी भेरी ॥ बिन रसनां सुर मधुर उठोरी ॥ मुरली के गान तान सुनिभोरी गात सिथिल मन कछुन रुचोरी ॥ १ ॥ झारि विकार कियो यक ठोरी । ब्रह्म अगिनि भरि लेसहु होरी ॥ फिरत पवन तहाँ भसम उड़ोरी । रहिगै शब्द निरन्तर पूरी ॥ २ ॥ निरलाज के भूषण लाज उतारी ॥ सील के सेदुर माँग सवारी ॥ सतगुर बचन मुकुर मन जोरी ॥ प्रेम के अंजन नयन भरयोरी ॥ ३ ॥ गगन चली विच खेल करोरी ॥ पारि ब्रह्म तह पकरि परोरी ॥ हिलिमिलि कैदि बिलास भयोरी ॥ जुग जुग आसा पूरि रहयोरी ॥ ४ ॥ फैलि सुगंध किसीफति रूरी ॥ सकल भुवन भरि रहिये पूरी ॥ सतगुर कृपा झाम जेहि हेरी ॥ रामप्रसाद खेलै हरि होरी ॥ ५ ॥

विषय—इस ग्रंथ में श्री बाबा केशवदास जी ने प्रथम श्री गुरुजी तथा रामनाम की वंदना की है । पश्चात् श्री रामनाम की महिमा, अनहद शब्द की महिमा, भजन की विधि, भक्ति भाव की महिमा, ज्ञानयोग की महत्ता, सत्संग की महिमा, भक्तों की महिमा आदि का वर्णन किया है ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री बाबा केशवदास जी का जन्म श्री झामदास जी की कुटी, जिला सुल्तानपुर में सं० १८४० वि० के लगभग हुआ था और आप वहीं गृहस्थाश्रम में रहकर घर का काम काज करते थे। युवावस्था में आप श्री झामदास जी के शिष्य हुए और उक्त महात्मा जी ने आपको ईश्वर के भजन की विधि बताई। तब से आजीवन ईश्वर का भजन करते रहे। आपके १५ दोहे और २० पद (भजन) मिले हैं। आपका देहावसान दीर्घायु प्राप्त होने पर लगभग १९०० वि० के आसपास हुआ। आप उपरोक्त कुटी के दूसरे महन्त हुए हैं। आपकी समाधि भी उसी कुटी पर बनी है।

संख्या ५४ ए. क्रिया शोधन की गायत्री, रचयिता—खड्गदास, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—७½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—कैथी, प्राप्तिस्थान—बख्शी अद्याचरन जी, स्थान—चतुर्वेदी लायब्रेरी के निकट, मैनपुरी।

आदि—॥ क्रिया सोधन की गायत्री ॥ ब्रह्म गायत्री अजपाजाप मध्यै ॥ सोहंग आपुकी मध्यै ॥ निकाया संतोष प्रान पुरुष औसुमिरन पोष ॥ सुमिरौ सार सवदु निरवांन॥ त्रिकुटी संजम अजपा ध्यांनु ॥ द्वादश मध्ये सुरति समोई ॥ अंदाल याक याक मनुहोई ॥ ईला पिंगला सुषमनि तार ॥ चढ़ौ विहंभगम वारंवार ॥ साहजई आवै सहजई जाइ ॥ जाकौ षंमकालु नहिं षाइ। ऐसे जीव ब्रह्म गति होइ। डारै करम सहजई षोइ। ब्रह्म अगिनि अंतर प्रजारि। घट के वीच विकार निवारि॥ असत घात कौ यह तन अंग ॥ ना नांवां वानी सवदु तरंग। का मध्यैनि सो करौ सनेह ॥ काया कंचन संद्र देह ॥ नौगुन तारि त्रिगुन संजोगा ॥ जुगति जनेऊ ब्रह्म महाँ विराज सतगुरु सबद बनाये ॥ सषा तजि पाषंड सवै आचारा ॥ सार सबद कौ करौ विचार। ब्रह्म गायत्री सुमिरौ लोई तव न्यैहौ केवल ब्राह्मन होई ॥ सारौ मनी करौ मनु थीर उपजै सुमति वुधि गँभीरा ॥ कियेउ मिनि-यपल पल महराई ॥ छिमा नीर सौं देइ वहाई ॥

अंत—अस त्रिसुनां सम करि देइ। ब्रह्म यज्य कौ मारग लेइ ॥ ब्रह्म गायत्री गुरु अस्थान। प्रघट होइ घट ब्रह्म ज्ञान ॥ ब्रह्म गायत्री है निजु मूल। प्रान पुरुष कबहूँ मति भूल ॥ करुना सिंधु विप्र कौं दीन। खरगदास तप अजपा कीन ॥ इति ॥ (पूर्ण प्रतिलिपि)

विषय—अजपा जाप तथा सोहं ज्ञान का वर्णन।

संख्या ५४ बी. शब्द रेखता, रचयिता—खड्गदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—७½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—कैथी, प्राप्तिस्थान—वख्शी अद्याचरण जी, स्थान—चतुर्वेदी लायब्रेरी के निकट, मैनपुरी।

आदि—॥ सवदु रेषता ॥ संति पद संति नहचै तंत निरधार है पारतैं ब्रह्म निर्वान धाया। अम्बर की देह विदेह धरि जगत गुर अंस कहत या जगत आया ॥ मुनिरुप सनकादिका ब्रह्म, निजु यादि काजादि को भेद द्विज को लषाया ॥ कादि जम फंद मतिमंद

जगजीव को मेंटि दुष दुंद बानी सुनाया ॥ सवद वांनी सहित सत निजु है वही पुरिष दुज सौं कही प्रभु गति वरनिये मूल गाया। पिंड ब्रह्मंड सब षंड की वार्ता दया करि विप्र कौ असीं पिआया ॥ तिलक द्वादस दिये ए सति का फूलीये केस सनकादि का सीस सोहा ॥ त्रैगुन गाँठि कौतग निजु कंध मैं कोटि ससि भानु बहुरूप मोहा ॥ रतन उरमाल निजु काठ कंठी वनी भेल सो चरन प्रभु आइषर ज्ञान गति धोवती ॥ अंग में सोहती मुनिन कौं मोहती विप्र के हृदै में सब दुवार ॥ पौहौ पंटनांवासिअ आपु अविनासी काटि जम फाँसी तंतु न्यारा। निहचै तंतु निरवान निहचैं अछिर ग्यानु निज हृदे मौ ध्यानु दिज ने विचारा ॥ हम आपु ही आपु दैं सबद कौ जापु सवु काटि तन पापु कीनों उजेरा। सवद की टैक दिज हृदे में एक हव सृष्टि की देष जनुभजो मेरा ॥ सील संतोष लौ लगनि औरु सुमति घट विप्र के हृदे म्यै छिमो भारी ॥ खरगदास सुनु अंस निरवान नेहचै अच्छिर ॥ षोजिकै बूझि घर में बिचारी ॥

अंत—सांति नाम की भगति निजु नाम निहचै अछिर। प्रेम प्रतीति द्विज भेद पाया ॥ आपु करतार मुनि रूप धरि साहिब यादि कौ सवदु द्विज कौ लषाया ॥ सवद गति लषि परी विप्र घट में धरी क्रिया सतगुरु करी सबदु दीनें। निजु नाम निर्वान सतलोक तैं ह्यां आई औ अंस के हेत विप्र ने पाइयै। अंस के हेत जनु आइचीनां ॥ अंस सहित जानि कैं परषि परै पहचानिये ॥ निरगुन भगति कौ कुलफ षोला ॥ त्रैलोक में धाम औ नाम सब काल के समझि कै जीव सबु जगत भूला ॥ षंड इकईस के पार तै साहिव ल्याइ औ नाम निजु मुकति भूला ॥ फैलु वट परि आरजु विसतारिऐ ॥ सकति के तेज सबु भारु झेला ॥ पौहौ पेटना वासिअ आपु अबिनासी माया विसतारि कैं गुपित षेला ॥ षेलि न्यारो भया अमर घरम्यै रहौ डोल अडोल प्रभु अचल अंग ॥ सवद गति रूप सव स्वाम्यै लष पारै रंग बहुरंग सब जीव संग ॥ निगम चारौ कह्यै काल के गुन लह्यै निगम का कांनिकुल कानि भारी ॥ त्रैदेव समुझाइया जीव वसम्यै करे सवदगति पार निरवान न्यारी ॥ निगमवार की परमगति पारकी साहिनाम की आरतो पुरुष गामैं षरगदास प्रतीति निजुनाम सौं नेहु वरु वरनि कौं विप्र यौं मुनि सुनम्यैं ॥ इति शब्द रेखता ॥—पूर्ण प्रतिलिपि

विषय—शब्द की महिमा का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की प्रतिलिपि कर दी गई है।

संख्या ५४ सी. शब्द रेखता, रचयिता—खड्गदास, कागज—देशी, पत्र—५, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—८०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—कैथी, प्राप्तिस्थान—मुं० गौरीशंकरजी, स्थान—सेमरा, डा०—भदावर, जिला—मैनपुरी।

आदि—॥ सवदु रेखता ॥ संत का सवदु निरवांन निहचै, अंक्षर नामु औरु यों मुनिन वर्नि गाया ॥ दुव परो देह विदेह धरि अंघ्रि की जगत गुरु जगत म्यैं आपु आया ॥ उत्तरा षंड ब्रह्मंड तै धाइ औ वृछिना देस प्रभु आइ छाया ॥ आई मुनि रुप सब भूप रही किये विप्र सुदेस न्यैद्रसु पाया ॥ आपुही संतु निहचै तंत की वार्ता व्रनि क्यौं पंथु निर्वान

न्यारा ।। सात पाताल सात सर्ग के वाहिस्यै सुनि वे सुनि के सवदु पारा। सुनिवे सुनं जहाँ सवद की भूमिका सत सुक्रित विग्यान ग्यानी गाता। तहां ते आपु मुनि रूप धरि आई औ परम गुर जगत कीन्यौ विहाना। निरगुना भगति निूवन्यै ह्यै अछिरा चारि वेद तैं भेदु न्यारा। कल कोषि नाल तैं नांमु निरवान है पुरिष ज्यों त्रिध घर आपुवारा ।। आपु अविनासी अकटी जम फाँसी असकल घटवासीअ तंतु सोधा ।। प्राषेपरै ह्यै पाँनि क्यौं त्रिषिय सुजानि कैं विप्र की सुरति मनु आइ बोधा ।। निजु नाम की आरती परम गति पार की त्रिप क्यौअं ।। मी प्रभु आइ विराजा ।। सील संतोष लौलगन घर देषि क्यौ ईसरि स्यौपिलाया ।। संतगुर सतगुर आपु मुनि रुप धरि विप्र कौ भेद न्यै ह्वै तंत गाया ।। षूंगदास करु आस निूवांन की सवद के रूप करतारु आया ।।

अंत–सांति नाम की भगति न जानूं सुन्यै ह्वैअ अंक्षिर। परम प्रतीति द्रिम भेदु पाया ।। आपुकतार मुनि रूप धरि साहिवाया ।। सबद गति लष परी त्रिपघट म्यैं धरी ।। क्या सतगुरु करी सबदु दीनें ।। निजु नाम निूवान सत लोक तैं स्योहि ल्याई ।। औ अंस के तोय विप्रन्यै पाइ औ। अंश के कहत जनु आइ चीनां। अंस हित जनि कौ परपि परैं। पैंहचानि कैं निरगुन भगति कौ कुलफु खोला ।। त्रैलोक्य म्ये धाम औरु नाम सब काल के समझि क्यै जीव सबु जगत भूला ।। × × ×

विषय––शब्द, निर्वाण, अक्षर, ब्रह्म और शरीरादि का वर्णन।

संख्या ५४ डी. शब्द रमेनी, रचयिता—खड्गदास, कागज—देशी, पत्र––१२, आकार—१०½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)––११, परिमाण (अनुष्टुप्)––३९६, पूर्ण, रूप––प्राचीन, पद्य, लिपि––नागरी, प्राप्तिस्थान––मु० गौरीशंकर जी, स्थान––सेमरा, डा०––भदान, जि०––मैनपुरी।

आदि––श्री गणेशायनमः ।। सवदु मुकति रम्यैनी लिष्यते ।। सतगुरु सबदु करयौ अनुसार। प्रषत ताइ होइ जनुपार ।। जागे भागि भये सुष म्यैनां। द्रिज स्यौ कहत अमीरस व्यैना ।। द्रिज सुरजन सुरजन द्रिज नारी। सतगुरु म्यैह्यै मा कहत बिचारी ।। म्यैहमा अम्र लोक की गाऊं ।। प्रंम तंत के भेद बताऊं ।। प्रंम तंतु है सबके पारा। चौऊदह तवक सुनितै न्यारा ।। प्रंम तंतु नहिं वेद पुरानां ।। देषौ निूषि जिमि असमाना ।। लोचत मुनि ब्रह्मादिक देव। त्रिई देवनु न्यै लह्यौ न भेव ।। प्रेम तंत की म्यैह्यैमां न्यारी। जानत नाहिं सकल संसारी ।। गाया संसार कालुवट मारा। चैऊदह जमन्यै जारु पसारया ।। विनु सतगुर कोहू मरमु न जाना। परम तत्तु न्यारौ निर्वाना ।। सपत पताल धरनि आकासा। लागी जिअनु स्वग की आसा ।। सात सुंनिम्यैं सात विलासी। आग्यै तिन्यै वस्यौ अविनासी ।। छुवै वे सुनि मुकति गति गांमी। पूरन परम तंतु निजु नांमीं ।। वाघर के वरन्यै व्यवहारू। परम हंस जहँ करत विहारू ।। काया माया वा घर नाहीं। असी रया अम्रप्र माहीं ।। सुष साग्र म्यै करि असनाना। निरमल दृष्टि पुरिष कौ ध्याना ।।

अंत––द्रिज सुनि लै सबदु हमारारे। पिंड ब्रह्मांड सवद की रचना ।। पूरि रह्यो इकतारा रे ।। वेद पुरांन काल की लीला। सवद सरूपी न्यारा रे ।। आवत जात लख्यो

नहिं जाई। सबदु रहै निरधार रे ॥ सब घट प्रघट बोलत वानी॥ इकइस षंड पसारारे॥ आग्यै गुपित अगोचर म्हैमां अमरलोक दुआरारे ॥ अमर पुरिषु अमर घर बासा। जगमग है उजिआरारे॥ कर्म न भर्म मोह नहिं माया। ब्रहु धरू अगम अपारारे॥ वाकौ नांउ सुदेस सम्हारौ मनतनम्थै निजुवारारे ॥ षूगदास द्वापर की लीला। ग्रन्थै पुरिष तुम्हारारे ॥ इति ॥

विषय—परमतत्व तथा अमरलोक की अलौकिकता का वर्णन।

संख्या ५४ ई. शब्द सुमिरन कौ मंत्र, रचयिता—खड्गदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—७½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—कैथी, प्राप्तिस्थान—बख्शी आद्याचरण जी, चतुर्वेदी लायब्रेरी के निकट, मैनपुरी।

आदि—॥ सवदु सुमिरन कौ मंत्र॥ मूल सवद कौ सुमिरनु सार। जीतौ इंद्री मैंटि विकार ॥ षट कर्मनु है मारगु दूरि। सब रहे प्रेम धुनि पूरि॥ ये सब भाँति निरगुन गति गाई। सतगुरु चरननु सीस नवाई ॥ सुमिरैं निहचै तंती निजुनाम ॥ सतगति मौज मुकति कौ धामु। संत पुरिष कौ सुमिरन कीन। सुमिरौ सुरति सबद लौलीन ॥ पाँचों मुद्रा पाँचों भेद। इनते सतगुरु नाम अछेद ॥ सुरति सबद में रहै समाई। मनु औरु सुरति डुगिल नहिं जाई ॥ षोजो तनु मनु अपनी देहा। जामैं बोलै सबदु विदेहा ॥ सवद सरूप रुप निरवान। सुमिरौ सवदु हृदै धरि ध्यान॥ पिंड ब्रह्मंड षंड के पार। सवद सरूपी पुरिष निनार॥ सुमिरो नाम निरंतर सोइ। जो निजुनाम परम पदु होइ॥ संति नाम स्यौ करौ सनेह। फिरि न धरौ भौसागर देह ॥ यदि नांमु सत सुक्रितु जानि। अजपा करौ हृदय मैं ठानि॥

अंत—दैअ धर्म सौं करि परतीति। तजे कर्म सब कुल की नीति॥ सबतैं वड़ौ भगति कौ भाउ। सत गति मौ जमुकति कौ दाउ॥ सबतैं वड़ौ भगति संजोग। सुमिरन करौ करै मिटै सब रोग॥ अक्षर अक्षर निजु नाम अगाध। सुमिरन सुदेस यह पनु साधि करूनासिध वतावैं भेव। षरगदास सुमिरनु सुरदेव॥ इति॥—संपूर्ण प्रतिलिपि

विषय—मूल शब्द के स्मरण का फल।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की नकल कर दी गई है।

संख्या ५५ ए. शृंगार छन्दावली, रचयिता—किशोरीलाल, कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६०, पूर्ण, रूप—पुराना, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रतनलाल जी शर्मा, स्थान व डाकघर—अछलदा, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ मंगलाचरण॥ जाकी तैं गही है वाँह ताकी सी कहैं हैं सब, ताही की किसोरी लाल विरद सराहैं लोग। तोहि विष्णु संग हेरि गरल भरयोइ शेष, सैया भो सरल सुख दैया सैन कीवे जोग॥ जहाँ जहाँ पाँवतैं धरत आनि लक्ष्मि जू, तहाँ तहाँ छिन ही में छार होत रोग सोग। तासैं कर जोरि दोऊ वन्दन करत होऊं,

देओ मातु मोऊ कों दयाल है अनन्द भोग ॥ १ ॥ वसन्त ॥ आवत वसन्त वहै मारुत सुमन्द मन्द, गन्धित सघन वन मोदित घनेरो है । केवरो कदम्ब अम्ब बागन नगीच सोंधे, कंचन भवन बीच सुखद वसेरो है ॥ मोती मनि मानिक नखत दीप जाल जोति, दीपै निसि असल जुन्हैया को उजेरो है ॥ एक पै किशोरी लाल विनुवर अंगना के । सांच ही सकल जग अंगना अंधेरो है ॥ २ ॥

अंत—॥ कवित्त ॥ लोरि लोरि जघन अनंद अंग बोरि बोरि, गोरि गोरि गंग की तरंगनि तरत हों । स्वरग निसैनी सुख दैनी जे किशोरी लाल, त्रिवली त्रिवेनी वीचि वीच विचरत हौं ॥ आनि उर उरज निसंक पुनि पुनि पानि, परसि परसि ध्यान शंभु को धरत हौं । हौं तो है सुचित नित मुक्ति मिलिवे को युक्ति, नीके तरु नीके तन वन में करत हौं ॥ ९९ ॥ मैन मद माते केलि मन्दिर किशोरी लाल, राजैं परिजंक शोभ साजैं विपरीति की । रूंदि रूंदि अंगनि उरोजनि सरोज मुखी, कूदि सी परनि ओट झीने पट पीत की ॥ हीय की हुंकार सिसकार रसना सों मिलि, सोहैं झनकार वरकिंकिनी सहीत की । बाजत बधाई मानो सुखद सुहाई आज, प्रथम समागम के एवज के जीत की ॥ १०१ ॥ इति श्रृंगार कवित्ताः ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—श्रृंगार विषयक एक सौ कवित्तों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री किशोरी लाल का यह 'श्रृंगार छंदावली' नामक ग्रंथ मिला है । संभव है भर्तृहरि की तरह नीति तथा वैराग्य शतक भी इन्होंने लिखे हों । रचयिता के विषय में ग्रंथ से कुछ पता नहीं चलता ।

संख्या ५५ बी. वैराग्य छन्दावली, रचयिता—किशोरी लाल, कागज—देशी, पत्र—८, आकार—८ × ५३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रतनलाल जी शर्मा, स्थान व डा०—अछलदा, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ वैराग्य कवि० ॥ कवित्त ॥ तात विन्दु डारन को कारन जो केलि रस, सोई गर्भ धारन को हेतु मातु केरो है । तीय सुत वन्धु औ कुटुम्बी सगे संगी सबै, स्वारथ के काज जोरयो नेहहू घनेरो है ॥ जाल सपने के आइ तू फँस्यो किशोरी लाल, सोच जगमाहिं साँचो हितू कौन तेरो है । सोवत अचेत मोह नींद में समोयो कहा, चेतरे बटोही मूढ़ ह्वै गयो सवेरो है ॥ १ ॥ दास और दासी ढोरैं आस पास ठाढ़े चौर, तात माता भ्रात को कुटुम्बहू घनेरो है । सुंदर सुवाम संग कंचन भवन वीच, आवत न मीच ताही छिन लौं वसेरो है ॥ भूलिहू न देहैं साथ स्वारथी किशोरी लाल, फूकि है इकंत जाय अंत तन तेरो है । सोवत अचेत मोह नींद में समोयो कहा, चेत रे वटोही मूढ़ ह्वै गयो सवेरो है ।

अंत - ॥ सवैया ॥ सुंदर भौन वने वनके जहँ चंद दिवाकर दीप जरें । सोवन भूमि की सेज विछी झरना जल पीवन काज झरें ॥ खाइवे कों फल वृक्ष लगे विजना वहि पौन

सँताप हरें । जाहु निशंक किशोरी तुहू तहँ योगी मुनी हरि ध्यान धरें ॥ ३६ ॥ कवित्त ॥ ममता के फंद भगवन्त के भजन विन, समय अमूल्य निज व्यर्थ तुम खोउगे । विछुरत प्रान जानि भूषन वसन वर, वाहन विलोकि फेरि वार वार रोउगे । बुद्धि को विचार तवै आइहै न काम कछू, हाय हाय ही कै सवही सौं हाथ धोउगे । त्यागी धन धाम मोह क्यों न तो किशोरी लाल, एक दिन आखर दुनी तें दूरि होउगे ॥ ३७ ॥ आनंद मँगन होय गंग की तरंग धोय, अंगनि अनंत पाप पुंजनि कों धूरिकै, अचल हिमाचल चटानि बैठि नीचे वटा, चंद्रचूर ध्यान में चहुंधा चित चूरि कै ॥ शेष लुप्त × × ×

विषय—योग संबंधी छंदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—श्री किशोरी लाल रचित वैराग्य 'छंदावली' नामक ग्रंथ खंडित है, ३७ छंद मात्र मिले हैं । यदि भर्तृहरि के अनुकरण पर रचयिता ने अपना ग्रंथ लिखा होगा तो अभी नीति शतक और इस ग्रंथ के ६३ छन्द मिलने शेष हैं ।

संख्या ५६. सुधा०, रचयिता—लाल जी रंगखान, कागज—मूँजी, पत्र—३३, आकार—७ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—६१२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८४७ वि० = १७९० ई०, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, मालिक, गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—छाय छित राषी जित तित कौं कदम्बन कै, कलित कालिन्दी कूलफल फूल आम है । पुंज गुंज भौंर झौंर सौरभ समीर सीरो । रंगषान सुष को सरूप रूप याम है । तरुन तपत तन तेरो सुकुमार अति, घरीक विरमि कैं निवारिये जू घाम है । लसत ललाम छाम परम आराम कैयो, विधना आराम रच्यो मानो काम धाम है ॥

मध्य—सावन के आवन बसावन विरह व्याधि, अति ही रिसावन ह्वै पंचवान विरचैं । भेज्यो ना संदेस इत उत को अंदेस यह, कहावे हमेस परदेस सवसे चिरचैं । रंगखान कुंजन में केकी कूक हूक लूक, कोयल कुहूक करै करेजे किरचैं । दादुर दरेरन दबावै देह दामनि ये, पपीहा पी पुकारें जी जारे लौन मिरचै ॥

अंत—जस कवित्त—सुजस कै आगे चन्द कालमा तैं जानियत, तेज आगे भासकर साँझ पहचानिये ॥ सिंधुरन आगैं सैल अचल ही ते जानियत । हय आगे पौन परसे ते उर मानिये ॥ कर आगे सुरतर जड़ ही जानियत, वैन आगे सुधापान कीये चित आनिये ॥ भूपन के भूप हो अनूप परताप रूप, रंगखान रावरे यौं बरन वषानिये ॥ दोहा ॥ असल नाव है लालजी, ललन अरुन पुनि येह । मुसलमान के जानिवे रंगखान कहि देह ॥ संवत एकै आठ सत चौके बादी जानि । मास असाढ़ जु दोजे वदि, बासर रवि पहिचानि ॥

विषय—नायक-नायिका भेद वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—आश्रयदाता—"महेन्द्र प्रतापसिंह कहै रंगखान ऐसे, नीति रीति रावरी सी आप में बषानै हैं ॥" × × × "कूरम सवाई माधो सिंह के प्रताप सिंह, अति ही प्रवीनों पांचों भाव ही उमंग है ॥"

संख्या ५७. दिन नापने का कायदा, रचयिता—लेखराजसिंह (न० खुशहाली, मैनपुरी), काग़ज—देशी, पत्र—१, आकार—६½ × ६¾ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२, रूप—प्राचीन, पद्य-गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मोहरमान जी, स्थान—गढ़सान, डा०—उरावर, जि०—मैनपुरी।

आदि—दिन नापने का कायदा लिख्यते ॥ एकईस अंगुर को तिनका लीजै। ताय लजाय पुनि छाया कीजै ॥ लचत लचत छाय सम होई। ताहि नापि देखि पुनि सोई॥ जै अंगुल शेष पुनि तिनुका देखो। तितनी घड़ी पल दिन को लेखो ॥ दूसरा कायदा ॥ तीनि अंगुल को तिनका ल्याई। तिनकी छाया नापि पुनि जाई ॥ छाया में तीनि जोरि पुनि दीजै। चौसठि में भागु तासु को लीजै ॥ लब्धि घड़ पल दिन की जान ॥ यह जोतिष को है परमान ॥ तीसरा कायदा ॥ देह पगनु की छाह में, छै अरु देहु मिलाय। इकईसा सोमें भाग दे, लब्ध घड़ी पलताय ॥ चौथा कायदा ॥ सात आंगुर को तिनका लीजै। छाया तासु जोरि पुनि दीजै ॥ ताको भागु दीजिये ऐसें। मैं जो कहूं मानिये तैसें ॥ कन्या[६] मीन[१२] क्वार चैत है जाको। मेष[१] सिंह[४] भादौं है जाको ॥ एक सौ ववालीस कहैं हम ताको। एक सौ पैंतीस लिखै हम ताको ॥

अंत—सूर्य की राशि जिस राशि को होय तनकी लग्न को जो अंक होइ सो राहु जिस राशि के होइ सो मंगल जिस राशि के होइ इने सबको इकट्ठे जोड़े और ३ को भागु देइ शेष वचै तौ पुरष और एक वचै तौ कन्या ॥ लग्न भौम रवि राहु के, जोरों अंक सम्हारि। भागु तीनि को दीजिये, लब्धि करौ तैयार ॥ पूरा शेष में पुर्षकहि, ऊना स्त्रीन। लेखराज ऐसे कहैं, यह ज्योतिष परमान ॥

विषय—ज्योतिष मतानुसार दिन नापने तथा लड़का-लड़की किसका जन्म हुआ है, यह जानने का नियम बतलाया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—इस छोटे से ग्रंथ में रचयिता ने ज्योतिष मतानुसार दिन नापने के कई नियमों का उल्लेख किया है। आरम्भ में नियम पद्य में लिखे हैं, फिर गद्य में उदाहरण देकर उन नियमों को क्रमानुसार समझा दिया है। इसके पश्चात् एक श्लोक संस्कृत का देकर उसकी टीका गद्य में की गई है और पुनः इसी भाव को दो दोहों में प्रकाशित करके ग्रंथ की समाप्ति कर दी है।

संख्या ५८. गोगुहार, रचयिता—माधव कवि, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—८ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—९६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० चोबसिंह जी, स्थान—छीछामई, डाकघर—शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ पोथी गोगुहार लिख्यते ॥ विनय करत माधव सुनो, गो हित सबसों प्रात। या जग में यश पाइहों, सुख परलोकहु भ्रात ॥ १ ॥ चक्रवर्ति राजा सवै, बुधजन सकल समाज। मौलाना पादरि जती, कष्ट हरौ द्विज राज ॥ २ ॥

तृण ले मुख मृदु वचन कहि, वाँज वाँज डकराय ॥ तोहू अब कोउ सुनत नहिं, निठुर पुत्र भे हाय ॥ ३ ॥ गो ब्राह्मण पालक अहहु, तुम सब भारत वीर। नाम गुपाल गुपाल को, अति प्रिय लागत धीर ॥ ४ ॥ माता तारति है सबै, तुम नहिं जानत भ्रात। चर्म देह चर्णहि रखे, कृषी दुग्ध विख्यात ॥ ५ ॥

अंत—जेठ सुक्वार की धूप सही, तुम छांह गही वह ठाढ़ किये ॥ हम भूसहि खाय के काम कियो रस अन्न सबै तुम छीन लिए ॥ मोहि मात सो मात कही तुमने नहिं वंधु सनेह हमेसु दिए ॥ कर्तें तव काम यु वासु गई सुख भोग के रक्त कसाई दिए ।.३॥ × × त्रण खाय के क्षीर दियो तुम को तव लौं मम मातु के प्राण रहे। जब क्षीर घट्यो अरु वृद्ध भई मुख में नही एकहु दात कहे। तबहीं तुम वाह्मन सोंपि दई उहि जाइ कसाई के ठाढ़ किए। कर्तें तव काम० ॥५॥ × × हम सीतरु नींद में राति चले तुम चालत गाड़ी में सोइ लिए। वहु वोझ अकूत दियो तिहि में तव ठाड़ रहे जलपान किए॥ मम कंध जुआ न उतारयो तहूं चढ़ि ठाढ़ रहे जह वास किए। कर्तें तव काम० ॥ ७ ॥ मम चाम सो खेत सिचाइ करौ अरु गोवर सों घर लीपि लिए। मो मातु को दानु पिता पै करौ वैतरनि उतारन विप्र दिए। कई उपकार किए हमने तव वृद्ध पिता कछु क्षीर दिए। कर्तें तव काम० ॥ ८ ॥ × × ×

विषय—गोवत्स की करुण कथा उन्हीं के मुख से सबके समक्ष वर्णन कराई गई है।

विशेष ज्ञातव्य—इस छोटे से ग्रंथ में माधव कवि ने दोहों और सवैयों में गोवत्स की हीनावस्था का वर्णन उन्हीं के मुख से कराया है। उसमें कवि ने गौओं और उनके बच्चों द्वारा जनता पर किये गये अनेकों अहसानों का वर्णन कराके अनेक उपालंभ दिलाये हैं। अन्त में अपनी रक्षा की प्रार्थना भी की है।

संख्या ५९. मथुरेश जी की भावना, रचयिता—माधो रामजी, कागज—स्यालकोटी, पत्र—५० आकार—१३ × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२७०, पूर्ण, रूप—नवीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—जमना प्रसाद जी ब्राह्मण, इमलीवाले, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः। अथ मथुरेश जी के घर की वर्षोत्सव की भावना लिख्यते ॥ प्रात काल सेवा की चिंता राखि के उठनों। प्रथम माला यज्ञोपवीत संभारनो। श्री प्रभु जी को स्मरण करनो ॥ श्री आचार्य जी महाप्रभू जी ॥ श्रीमद् गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी। तदनन्तर अपने निज गुरुन को तथा सातों स्वरूपन को नाम लेनो। ता पाछें देह कृत करि दन्त धावन करनो। पाछें मुख सुद्धार्थ वीड़ा खानों। पाछें तेल लगाय के स्नान करनो। तदनन्तर अंगोछा पहिर के अपरस के धोती उपरना पहिरनो ॥ पाँछे आसन पर बैठ के तिलक करनो ॥ तहाँ जागमेव नति चक्रां क्रां कित्त सदा तिष्ठेतिः ॥ इति निबन्ध वाक्यात् ॥ संख चक्रादि कंधायैं मृदा पूजां गमेवतत् ॥ तुलसी काष्ट जा माला तिलकं लिंग मेवतत् ॥ इति निबन्ध वाक्यात् ॥ ललाट विषे पद्म श्री गोपी वल्लभी ॥ वीच वीच में पद्म चार २ टेढ़े। छुद्र एक। और वाम भुजा विषें संख उर्द्ध देस विसें चक्र ॥१॥

अंत-- श्रावण सुदी १५ राखी को उत्सव तादिन मंदिर तथांसि जा मन्दिर में चंदौवा बिछवाई सब भारी साज बिछे॥ गादी तकियान की सुपेदी अजरी मंगला आरती पीछे अभ्यंग कसूभी तनियाँ सूधन कसूभी॥ हरी केसरी तीन रंग की काछनी पीताम्बर ओढ़े॥ केसरी ठाटे वस्त्र॥ हीरा को मुकुट हीरा की एक जोड़ी को सिंगार॥ श्री गोपी वल्लभ भोग उत्सव की रीत सों होय भद्रा सांझ को होय तो सवारे राखी बंधे॥ संध्या भोग के संग उत्सव को भोग आवे। राखी बँधे। सो तब संख नाद झालर घंटा वजे॥ दरसन को किवार खोल कें राखी बाँधे। पहिले तिलक करि अक्षत लगाय वाड़ा॥ धरि राखी बाँधे। पहिले जेंमने श्री हस्त में बाँधनी। टेरा दे धूप दीप करनो। उत्सव को भोग धरिये। तामें मोहन थार तथा गुल पापड़ी दही सधानां वासौदी फल फलारी विलसारु जो बनि आवे सो भोग धर तुलसी पंचाक्षर सों चरणार विन्द में धरनी॥ सामिग्री सर्व वस्तु में समरपनी॥ संखोदिक करिये। राजभोग उत्सव की रीत सों धरीये। पाछें हिंडोरा झूल कें सिंगार बड़ो करनो। उलट पहेरें। कसूमल उपरना ओढें। पवित्रा सब सिंगार के संग के वड़े होय। राखी होय सो बधे ही पोढ़े। हिंडोरा जा रीत सो उघारो रहे है। ता रीत को सिज्या पासे खांड की कटोरी तथा केसरी सुपेद रहे। राखी के दिन नगार खानो बैठे। राखी को भोग धरिके वस्त्र होय सो इतने रंगनो विचारिके। श्री अंग के वस्त्र होय। और पलना के ओढवे की चादर होय। मुख वस्त्र होय। इतने वस्त्र सिज्या के रंग के जन्माष्टमी के लीये सब सिद्धि करि राखिये। राखी भोग धरि सब जने मिलि के बाल भोग में जायकें जन्माष्टमी को सामिग्री सिद्धि करिबे को आरंम्भ करनो। पहिले राजभोग को चूल्हा लीपनो वासन सब मांज राखनो। एक कढ़ाई में घी राखे। पहिले भटी लीपि कोरी हरदी को चौक पूरि कढ़ाई चढ़ावनो। कुम कुम सों चौक पूरिबे। जो बाल भोगिया को तिलक करिये। पाछे आपस में तिलक करनो। पाछें प्रथम गूंझा को कूर भूजनों। और महाभोग की सामिग्री के लिये चूल्हा पूजनो। कुम कुम अक्षत लगावनो। भादो १ व वा ३ ताई जा दिन वृस रासि को चन्द्रमा आछो होय। सो तादिन हिंडोरा विजय होय। जो साँझ को भद्रा होय तो। ग्वाल पीछे विजय होय। और जो सवारे भद्रा होय तो साँझ को झूल के विजय करनो। सो ता दिन कसूँभी पाग पिछोरा हरे ठाटे वस्त्र। और सुवर्ण को एक जोड़ी को हल कों सिंगार होय। पाछे संध्या आरती ताईं और सब नित्य की रीति ता पाछें हिंडोरा में चारि पद गोविन्द स्वामी के गाये जाँय। और पाँच मो पद यह गाइये। 'सरस हिंडोरना माई झूलत गोकुल चन्द'। सो या पद की जब एक तुक रहे। सो तब वेणु वेत्र धरि थारी में चून को दीवला धरि मुठीया चारि वारि कें आरती करनो। पाछे राई नोन करिकें न्योछावर करिकें हाथ धोय सब जने वेणु वेत्र वजे करि सब जने परिक्रमा ५ करनो। पाँछे दण्डवत करि श्री प्रभु जी को सिंघासन पर पधराबनो॥ सो ता पाँछे पोढ़िबे ताईं सब नित्य की रीति। इति श्री माधोराये जी कृत श्री मथुरेश जी की भावना सम्पूर्णम्।

विषय—वल्लभ संप्रदाय में ७ ठाकुर जी हैं। उनमें से एक मथुरेश जी हैं। उनकी मूर्ति कोटा में है। जिस प्रकार नित्य मथुरेश की सेवा पूजा होती है उसकी सब विधि

इसमें वर्णित है और वर्ष भर के त्योहार जिस प्रकार मनाए जाते हैं तथा जिस प्रकार उन दिनों ठाकुर सेवा होती है उसका भी विवरण इसमें आ गया है।

प्रातः कालसे लेकर सन्ध्या तक का नित्य-कर्म, पत्र १–१० तक। ग्रहण मनाने के नियम, जन्माष्टमी, राधाष्टमी दान-एकादशी, वामन-द्वादशी, श्री जगन्नाथ महाराज का उत्सव, १०–२१ तक। दशहरा, सरद पूर्णिमा, धन तेरस, रूप चौदस, दिवारी, अन्नकूट, भाई दूज, गोपाष्टमी, देव प्रबोधिनी एकादशी, २२—३२ तक। गोसांई जी का जन्म उत्सव, बसन्त पंचमी, होरी डाढ़ी, श्री नाथ जी का पाठ उत्सव, फागुन सुदी ७ श्री मथुरेश उत्सव, फागुन सुदी ११ कुंज एकादशी, होली, डोल, चैत्र बदी द्वितीया नवसंवत्सर रामनौमी, वैसाख बदी १२ महाप्रभुजी की जयन्ती, अक्षय तृतिया, नरसिंह चतुर्दशी, ३३–४३ तक। जेष्ठ सुदी १० श्री यमुना जी का उत्सव, ज्येष्ठ सुदी १५ स्नान यात्रा, आसाढ़ सुदी २ रथयात्रा, आसाढ़ सुदी ६ देवशयनी, श्रावण वदी १श्रावण सुदी ३ श्री ठकुरानी जी का उत्सव, श्रावण सुदी ५ नागपंचमी, पवित्रा एकादशी, रक्षाबंधन, ४४–५० तक।

विशेष ज्ञातव्य - लेखक के विषय में कोई बात ज्ञात नहीं है; परन्तु ये पुष्टिमार्ग के वैष्णव थे यह स्पष्ट है।

संख्या ६०. शकुन विचार, रचयिता—महादेव जोसी, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० ख्यालीराम गर्ग, स्थान—मीतपुरा, डा०—फरिहा, जि०—मैनपुरी।

प्रारंभ—कार्तिक तेरस मेघा दीसै। तो निश्चय अषाढ़ वरसइ॥ मार्गसिर की पाँचो जाणी। तो श्रावण वरसइ अमृत पाणी॥ पोस मास की दशमी अधौटी। तौ भाद्रव वरसै घणघोटो॥ माह मास की अचला सातिय दीसइ। तउ महिल सहोदर डंतो कुरमार वरीसइ॥ चारिमास व्यौरौ विधि सारी। ऐ तिथि यों सोचि विचारी॥ आषा तीज अहो ध्यांजइ करजलीस होइ। महादेव जोसी इमि कह गोहूँ गेरौ जोइ॥ होली होवै पतीरे तिथे एक वार होवे तो। कुलांऽरु मांना विचांजइ आठिम रोहिण होइऽकइ फाल्गुण रोली षऽइ। कइ श्रावण दुहछो होइ॥

अंत—(आषाढ़ वदि अमावस्यइ चिह्न नक्षेत्राह विचार) कार्तिक सोम का कहै, रोहिणी करै सुगाल॥ जइ आवेगी मृग शिर निश्चय पड़इ अकाल॥ चैत्र मास व्याहौ तिथि सारी। पांचमि सातमि नवमि उजाला॥ तइ चित्रासु पूनिम बूढ़इ ता जाणे समाक उगरभ विणठइ॥ संवत्सर को वासो॥ आवर्त्त के कुम्भकारः सावर्त्तके सितपालिकः। पुष्करे ग्राम कूटंच द्रुवणे मालिको भवेत्॥ १॥ संक्रातौ ग्रहणे वापी; यदि पर्वणि जायते। ततो हस्त पूज्यं ते पंचम्यां वीतदा भवेत्॥ २॥…… [शेष लुप्त

विषय—कुछ प्रमुख अवसरों पर होनेवाले शुभाशुभ शकुनों के फल।

विशेष ज्ञातव्य—ऐसा ज्ञात होता है कि किसी महादेव जोशी नामक सज्जन ने इस विषय पर कोई पुस्तक रची होगी जिसकी नकल किसी पंडित ने अपने लाभार्थ की

है । परन्तु पुस्तक हिंदी में ही नहीं है उसमें कहीं-कहीं संस्कृत के श्लोक भी पाये जाते हैं । इससे यह संदेह होता है कि इसमें कहीं विविध स्थलों से विषय लेकर संग्रह तो नहीं कर लिया गया है। पुस्तक आद्यंत से खंडित है ।

संख्या ६१. वृत्त दीपिका, रचयिता—मातादीन शुक्ल, कागज—देशी, पत्र—१८, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८९९ = १८४२ ई०, प्राप्तिस्थान—पं० बैजनाथ जी शर्मा, स्थान व डा०—जसवन्तनगर, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ लिख्यते वृत्त दीपिका ॥ नमामितावदी ॥ शानत्वाँ सुरंकु शलम्मुदेस सर्प्प प्रभुतारापरस्वगणंढक्कयासह ॥ १ ॥ पिङ्गलादि निवन्धेषु संकेतम्वीक्ष्य सूक्ष्मतः ॥ छन्दसांसुख वोधाय क्रियेते वृत्त दीपिका ॥ २ ॥ पादः श्लोक चतुर्थांशो वृतन्तु वृत्ति ॥ छन्दसी स्यान्मा चातुकला चाथ विरामो विरतिर्यति ॥ ३ ॥ अनुस्वारा विसर्गाढ्यं संयोगादि गतंगुढ दोर्घाक्षर मपिज्ञेयं पादान्त स्थम्विकल्पतः ॥ ४ ॥ एक मात्रो लघु प्रोक्त क्वचिद्ध्रस्वादि पूर्वकः ॥ विन्द्वर्द्ध विन्दु युकूचापितद्वदोकार संयुतः ॥ ५ ॥ ॥ भाषा टीका ॥ श्लोक चतुर्थांश को पाद अथवा चरण कहत हैं ॥ जहाँ वर्णनि को क्रम लघु गुरु को एक सम मिलै तो वर्ण वृत्ति कहत नाहिं मात्रिक छन्द कह्यो जात ॥ अनुस्वार विसर्गादि दैकै संयोगिन वर्णनि की द्वै मात्रा जानव अरु चरण के अन्त को अक्षर पढ़न के अनुसार लघु दीर्घ कहव ॥ एक मात्रा लघु कही जात है ॥

अंत—ग्रह ९ ग्रहे ९ भ ८ भू १ युक्ते वर्षे पौष सितेतरे पक्षे कुहु तिथौ सूर्य्ये निर्मिता वृत्त दीपिका ॥ ११६ ॥ ममादौ मङ्गल श्लोके एकै काक्षर कान्त रात् वाचनीयं क्रमान्नाम जातिर्हेशोपि भाषया ॥ ११७ ॥ इति संक्षेपतो वृत्त प्रस्तार संख्या नष्टो द्दिष्ट मेरु पताका मर्कटी प्रकारः ॥ इति मातृ दतकृता वृत्ति दीपिका शुभ मस्त्वग्रे संपूर्णम् शुभम् ॥

			२	१	१
			३	२	१
		४	१	३	१
		५	३	४	१
	६	१	६	४	१
	७	४	१०	६	१
८	१	१०	११	७	१

भाषाटीका

१ ३ ५	१ २ ३ ४ ८
३ । ३ २	। । । । ।
२ ८	

यह वृत्ति दीपिका नामक ग्रंथ सम्वत् १८९९ महिना पौष पाष आँधर मावसा को निर्मित भया जानव ॥ जदि ग्रंथ कर्त्ता नाम विषय जिज्ञासा राखव तो पुस्तक आदि मंगल कौ श्लोक बाँचिये एक एक आरंभ कइ अक्षर छोड़त जात तो कहा मिल्यो मातादीन सुकुल देश प्रतापगढ़ ॥ याहि में नाम जाति अरू देश को लेखा पाय लीन ॥ इति श्री वृत्ति दीपिका ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—गण भेद, लघुगुरु विचार, छन्दभेद एवम् छन्दों के सोदाहरण लक्षण और प्रस्तारादि का संक्षेप वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता ने मूल ग्रंथ संस्कृत में रचा है। कहीं-कहीं संकेतात्मक भाषा टीका भी है। ग्रंथ का रचनाकाल पौष कृष्ण ३० सं० १८९९ वि० है। रचयिता श्री मातादीन हैं। जाति तथा देश का नाम इन्होंने मंगलाचरण के दोहे में दिया है।

संख्या ६२. रक्षावली, रचयिता—मिश्र, कागज—देशी, पत्र—१३, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—२०५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामदयाल जी, स्थान—कंथरी, डा०—शिकोहाबाद, मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ गणपति जगवन्दित अखिल मख मण्डित, सकल वेद पण्डित शुभ मङ्गल सुखदाई है। बुद्धि शील सागर गुण आगर अति सै उदार, परम कृपाल तीनि लोक यश छाई है ॥ सकल काम सिद्धि होत सुमिरन के किये जाके दूरि होत दुख सब एते दुषदाई है। दीन जानि मोहि पर विलोकहु करुणा निधान, रक्ष रक्ष श्री गणेश जी ही सहाई है ॥ १ ॥ परम प्रकाश तेज मण्डित नभ मण्डल में, खंडित तिमिरादि अन्धकार समुदाई है। किन्नर गंधर्व मनुज ऋषि मुनि ब्रह्मादि, देव पूजित त्रैकाल भक्ति अधिक अधिकाई है। सकल रोग दूरि होत सुमिरन ते विरद तेरो, वेद औ पुराण शास्त्र तीनों यश गाइ है। दीन जानि मोहि पर विलोकहु करुणानिधान, रक्ष रक्ष सूर्य देवता सहाई है ॥२॥ परम सुख सदन पर्व सर्वरी शवदनि, देव निज जन भय हरणि विश्व जननि वेद गाई है। सुर नर ऋषिगण मुनीश विधि हरिहर, देवई तेरो पद सरोज सेइ पावत प्रभुताई है। अखिल दुःख दूरि करणि सकल पाप संहरणि, जन पराध क्षमा करणि निज विरद बड़ाई है। दीन जानि मोहि पर विलोकहु त्रैलोक्य जननि, रक्ष रक्ष अष्टभुजा जी सहाई है ॥ ३ ॥

अंत—कलियुग युग क्षीण जानि कल्की होय, म्लेछन मह धन करि थपि हो धर्म सेतु समुदाई है ॥ होय हैं सत्य युग सकल धर्म की प्रवृत्ति होंय, है निज निज वर्णाश्रम सुविवेक दृढ़ताई है ॥ हे हो पतित पावन अखिल काम प्रद दीन वन्धु आ, भौतव शरण देहु भक्ति सुखदाई है। दीन जानि मोहि पर विलोकहु करुणानिधान, रक्षि रक्षि राक्ष कल्की देवता सुहाई है ॥ २४ ॥ शंकर उदार शरणागत प्रतिपाल प्रभु, भक्तन के दुख दूरि हेत पैज दृढ़ताई है। मंगल मय मंगल प्रद गणपति अषिल, विघ्न दूरि करहु देहु मंगल यो पढय मनलाई है ॥ अष्ट भुजा अष्ट बाहु ते विशेष रक्ष रक्ष, माता के विरद सून प्रीति अधिकाई है। न पालिबो को दानी जग जाहिर निधान तोसी, रक्षि रक्षि कल्की देवता

सहाई है ॥ २५ ॥ दोहा ॥ वाग्देवता प्रसाद ते, विमल हृदय बुधि चित्त । तत्व संख्य रक्षावली, प्रगट्यो सिद्ध कवित्त ॥ १ ॥ इति श्री मन्मिश्र वंसावतंश विरचित रक्षावली समाप्तम् ॥

विषय—रक्षा के निमित्त कल्की आदि देवों से विनय की गई है ।

संख्या ६३. फूल चिंतनी, रचयिता—मिठ्ठू लाल, कागज—पुराना देशी, पत्र—४, आकार—८ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० जुगल किसोर, स्थान व डा०—जगसोरा, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गनेशाय नमः अथ फूल चिंतनी लिषते श्री किवित ॥ श्री गनुनाइक और सदासिव जु गुरु के पद या दिसभामारौ ॥ संतनु की रज सीस धरौं अब देव अदेवन कों अनुसारौ ॥ तीरथ कोटि सबै मिलि कै तुम देहु कृपा करि ज्ञान विचारौ ॥ जो करि है तु सुदि सिव कौ रौतो मिट्ठू लाल उर षेल उचारो ॥ श्री फूल चिंतनी लिषते ॥ सुनौ सषी पिय ना जगे, लगी मिलन की आस । विरहाअगिनि तर दाहयतु है, वैठि पलिका पास ॥ २ ॥ पिया विदेसी रम गये, घरु अगना न सुहाई । सत्यानासिनि कूवरी, तिन राषे भरमाई ॥ ३ ॥ सुनि अवला तू मस्त है, नहीं बेस की बेर । श्री फलु से छाती, पिये कियौ भइ ढेर ॥ ४ ॥ सुनौ सषि अब कहति हौं, भए विदेसी स्यामु । देह सूषि दूवरि भई, नैन भये वादाम ॥ ५ ॥ चलौ सषी पिय कौ लषे, वन जोगी अवधूत । भसम रमाये अंग, वाग लगाओ नूत ॥ ६ ॥ हम तलफति पिय दरस को, भुज फरकति दिन रैन ॥ जामिनि डरपति पिय विनु, दरसन को दोऊ नैन ॥ ७ ॥ सषी समझु मैं कहतु हौं, विरह जो वाल के वैन । जरदज मिंहदी सी भई, तन मैं नेकु न चैन ॥ ८ ॥ रंग महल में जहाँ गइ, ना सोइ चढ़ि सेज । केससि रंग में डरि हौं, जो पाऊ पिय नेज ॥ ९ ॥ सुनो सषी अति रंजु हों अब जोवन के जोर । विरह जो वाल मै तो गरी, ना सोई चढि सेज ॥१०॥ पिय विनु सूनी सेज है, नहीं सहेली संग । सूषि देह दूवरि भई, नहीं चिरौंजी रंग ॥ ११ ॥ नैना फरकत दरस को, कुच तलफति है दोहि । जोवन जोड़ा दाष सों, नैन मरेंगे रोई ॥ १२ ॥ सुधि आवत पिअ दरस की, विलषत है दोऊ नैन । सूषि छुहारो सी भये, मुष आवत नहीं बैन ॥ १३ ॥ जबै विदेसी हो गये, पिआ निरमोहि जानि । यामिनि अब तौ भेजिहौ, पीते साल मषान ॥१४॥ जबै दयारि कांछ हि रहै, हटकरि हमसों टेक । करहा करे है री मैं मरी, लगी न ओषदि एक ॥ १५ ॥ वंसी वट के निकट ही सीतल पट की छांह । राधा प्यारी पानुसी, पन घट जमुना माहि ॥ १६ ॥ जोवन माती मद भरी, चंचल अवला जानि । हिये सिपारी, सीयरी, कान लई पहैचानि ॥ १७ ॥ झटकि छवीलै छैल, अटकी बेर कुवेर । कहे गुजरी सषिनु सों, षाई कै मरै कनेर ॥ १८ ॥ पिया परदेसी है गये, नैन मेरे दोऊ रोइ । वेरि लगाई बहुत दिना, सुनौ सषी अब सोई ॥ १९ ॥ जब सुधि आवत स्याम की, सो गति कहिये न जाइ । ने सु डरपति मै सैज पै, सीसे चु पछिताइ ॥ २० ॥ सवै सषी मिलि के गई, देषन वाग वहार । वाग सरौ के विरच तर, लै गये चीर मुरारि ॥ २१ ॥ दधि बेचन कै

ग्वालिनी, गई जबै वह छोर । अचरु झटकौ लाल ने, जा गूलरि की ओर ॥२२॥ विरहा अगिनि मै दह रही, पिय विनु मोहि न चंग । ककरौढा ओषधि दइ, सो नहिं लागति अंग ॥२३॥ हम सो बर जोरी करी, गये कूबरी गेह । करीत वई तबै रमि गये, हमसो टूटो नेह ॥ २४ ॥ मधुवन जाई समारियौ, हम वौ जैहे हरषाइ । गुडी सौतनि कूबरी, जादू करै चलाई ॥२५॥ पीपा ने जो से है गये, ओषधि लेऊ मंगाइ । वेदनि तन की जायगी संषा हली षाइ ॥२६॥ एक गूजरी ने तबै, पडे मारै रसवान । जमासेज की नरि ही छिन-छिन निकसत प्रान ॥२७॥ पति परदेसी है गये, चलि सषि ढूंढै जाइ । बाग लषरा के विषैं, तहां रहैंगे छाइ ॥ २८ ॥ हमें छांड़ि के रमि गये, जवतै पिय परदेस । कियौ न निवारी ता दिना, जा दिन उदर प्रवेस ।। २९ ।। विधि ने मसूषत लिषे, केहि देइ अब दोस । बिरह अगिनि तर दह रही, मरुआ मरै मसोस ।। ३० ॥ जवै विदेसी आई है, मंगल करौं सहाई । षेरि मना उन दिना, जवहीं सेज रमाइ ॥ ३१ ॥ ऊधौ तुम ले आइहौ, वेई परि रम्भ मुरारि । मेरे प्रान अकवन वसै, देषे नैन निहारि ॥ ३२ ॥ इति फूल चिंतनी संपूर्ण ॥

विषय—श्री कृष्ण विरह वर्णन । प्रत्येक दोहे में विरह वर्णन के साथ साथ एक फूल का नाम आया है ।

संख्या ६४. मोतीलाल के गीत, रचयिता—मोती लाल, कागज—बाँसी, पत्र—१५, आकार—९×७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८४, खंडित, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामलाल जी, स्थान—सकरवा, डा०—गोवर्धन, जि०—मथुरा ।

आदि—॥ राग नट ॥ हौ जु गई ती नन्द भवन में, मोहन खड़े कुंज के द्वार ॥ देखि नटिलो धाय हटिलो, आय मिले उर पर भुज धार । पान में पान लपेट कुचलिनो, चुम्ब अधर रस पीनो । मोती लाल प्रभु रसीकर सागर, नागर सब सुख दीनो ॥

अंत—चले हँसत हसावत करत वात, उर आनंद मन में न समात । उडगन में सोहत उडराज, ब्रज बाँधी है प्रेम की पाज । विद्या ता वरनतु नहिं एक, यह लोचन किंऊ न दिए अनेक । नहिं दिन रैन कोट सकोट, गावत कछु निरखत भरत पोट । यह लीला सुने सुनाय गाय, ताके जनम जनम के दुख जाय । श्री वल्लभ धरन सरनहिं पाय, तहा दास वलिहारी जाय । जाको वेद रटत हैं नेति नेति, ताको हँस हँस बालन गुलचा देत । राधा जु को वल्लभ हिय को हार । मोती लाल प्रभु व्रज वितवे बहार । × × ×

विषय—निम्नलिखित विषयों का वर्णनः—

(१) रास विलास । (२) उत्सव अनेक प्रकार के । (३) गोपियों के आमोद प्रमोद । (४) फाग और होरी ।

संख्या ६५. भागवत महापुराण, रचयिता—मुकुन्ददास, कागज—मूँजी, पत्र—१४०, आकार—११×१० इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४११, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० केदारनाथ जी ज्योतिषी, मारूगली, मथुरा ।

आदि - ॥ श्री राधा माधो जयति ॥ दोहा ॥ रसिक भूप वल्लभ प्रभू श्री विट्ठल सुख रूप ॥ हृदे कूप अनुरूप रस उरल्यो वह अनूप ॥ ज्ञानी प्रियव्रत को चरित चप (?) पहिले ध्याय । राज भोग करि मुक्ति पुनि भयो ज्ञान को पाय ॥ २ ॥ राजोवाचय ॥ अहो महामुनि प्रिय व्रत नाम । महा भागवत आत्माराम ॥ बांधि कर्म में हरिही भुलावे । ताघर में सो क्यों मन लावै ॥ निश्चै प्रियव्रत से असंग जे । घर में रति करिबेन उचित तें ॥ सुखी भए हरि पद छाया तर । चाहे नहीं कुटुम्ब हिते नर ॥ तिय सुत धरनि माह अटक्यो जो । हरि में अति मति लाय छुट्यो सो ॥ मेरे यह सन्देह महामुनि । ताको आप दूरि कीजे पुनि ॥

अंत—आत्मा परमात्मा निर्णै जो ॥ नाव चढ़्यो सब संग सुन्यो सो ॥ ता पाछे हय ग्राव मारि करि । उठे विधिहि देवे दल्याय हरि ॥ पुनि सो सत्यव्रत जो भूप । ज्ञान वहुरि विज्ञान सरूप ॥ यही कल्प में हरि प्रसाद करि । वैवस्त मनु भयो भूप वर । सत्यव्रत तिम अवतार चरित्र । सुनत होय नर निपट पवित्र ॥ जो येहि औतारहि नित गावै । पूर्ण होइ उत्तम गति पावै ॥ सूते विधि मुख वेद गिरे जे । असुर मारि जिन ताहि दिए ते ॥ कह्यौ तत्व सत्य व्रत भूपहिं । नवति हों ता माया तिमि रूपहि ॥ दोहा ॥ श्री वल्लभ करि प्रभु कृपा, मुकुन्द दास निज जान । अगम कियो निपटे सुगम अष्टम स्कंध बखान । इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कंधे पारमहंस्या संहिताया वैयासिक्यां भाषा मुकुन्द दास जी कृते चतुर्विंशों अध्याय समाप्तं ॥ सम्पूर्णं ॥ शुभमस्तु ॥

विषय—भागवत महापुराण का अनुवाद ।

विशेष ज्ञातव्य—भागवत के हिन्दी में कई अनुवाद हुए है । बीसों की संख्या होगी । परन्तु जहां तक मेरी जानकारी है, मुकुन्ददास के भागवत का हाल अभी किसी को मालूम नहीं है । खोज में इनका यह पहला ही ग्रंथ है । विवरण में एक मुकुन्ददास का जिक्र है वह शाहजादा सलीम जहांगीर के आश्रय में थे । संवत् १६७२ के करीब वर्तमान थे । उनकी कोक भाषा की दो प्रतियां मिली हैं, (दे० १९०९-११ ई०, सं० १८३ ए, १८३ बी) । यह मुकुन्ददास इन भागवत के रचयिता से भिन्न हैं अथवा अभिन्न यह कुछ नहीं कहा जा सकता । अनुवादक के विषय में कोई बात ग्रंथ में नहीं मिलती ।

संख्या ६६. कवि विनोद नाथ भाषा निदान चिकित्सा, रचयिता—मुनिमान जी (बीकानेर), कागज—देशी, पत्र—९९, आकार—९ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्) -२४७५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७४५ वि० = १६८८ ई०, लिपिकाल—सं० १८७६ वि०, प्राप्तिस्थान—कुँवर महताब सिंह, रियासत चंदवारा, पो०—मानिकपुर, जि० – मथुरा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ कवित्त ॥ उदि उदोत जगमगि रह्यो चित्र भानु ऐसेई प्रताप आदि ऋषभ कहति हैं । ताको प्रतिविम्ब देषि भगवान रूप लेषि, ताहिन मों पाय पेषि मंगल चहति है ॥ ऐसी करौ दया सोंहि ग्रंथ करौं टोहि टोहि, धरौ ध्यान तव तोहि उमग गहति है । बीचन विघन अछर सरल दोऊ नर पढै जोऊ सोऊ सुष को लहति है ॥१॥

|| दोहा || परम पुरुष परगट त्रिभुवन रवि सम वीर ॥ रोग हरण सब सुष करण उदधि जेम गंभीर ॥ २ ॥ सेवत जाके चरण युग ताको रिधि सिधि देय ॥ जो ध्यावै मन में सदा मंगल ताहि करेइ ॥ ३ || गण पतिदाता बुद्धि कौ तातै कहियै तोहि ।। यह वीनती आपनी सरल बुद्धि द्यौ मोंहि ॥ ४ ॥ गुरु प्रसाद भाषा करि समुझ सकै सबु कोई || औषध रोग निदान कछुक विनोद यह होई ॥ ५ ॥ बढ़ घट अछर होइ जो पंडित करियो शुद्ध ॥ रचना मेरी देषि के करौ न कोई विरुद्ध || ६ ॥ वानी अगम अनेक रस कह्यौ न जाइ जगमाहिं ॥ गुरू विन प्रगट न होइ सब गुर बिन अछर नाहि || ७ ॥ संस्कृत अरथ न जानइ सकत न पूरी होई || ताकै बुद्धि परकास को भाषा कीनी होई ॥ ८ ॥ संवत् सतरह सै समैं पैतालै वैशाष ॥ शुक्ल पक्ष पांचीस दिनै सोमवार वैभाष ॥ ९ ॥ और ग्रंथ सब मंथन करि भाषा करौ बषान ॥ काढा औषध चूर्ण गुटि प्रगट करै मुनिमान || १० || भट्टारक जिनचंद गुर सव गछ को सरदार ॥ खरतर गछ महिमा निलौं सब जन को सुषकार ॥ ११ ॥ जाकौ गछ वासी प्रगट वाचक सुम्मति मोर ॥ ताकौ शिष्य मुनिमान जी वासी वीकानेर || १२ ॥ कीयौ ग्रंथ लाहौर में उपजी बुधि की वृद्धि ॥ जौन राषे कंठ में सो होवै परसिद्ध ॥ १३ ॥ अथ चार चरण चिकित्सा के कथन ॥ दोहा || चार चरण हैं वैद्य के द्रव्य चिकित्सक जान || सेवक रोगी एक सम रहै सदा सावधान ॥ १४ ॥ अथ भग्न नेत्र लक्षण || दोहा ॥ अधिक ताप बल स्पृति घट श्वास मोह प्रलाप || भग्न नेत्र भ्रम कंप वहुता को छोड़ो आप ॥ १० ॥ कही न जाइ ताकी क्रिया करै जु मुरुष कोइ ॥ कदा चिकित्सा वैद्य की ताकी सिद्धि न होइ ॥ ११ ॥ अथ चिकित्सा || दोहा ॥ सैंधा पीपल जुग्म करि कीजै अंजन नैन || चिकित्सा याकी यह कहि बड़े पुरुष के बैन || १२ ॥ इति भग्न नेत्र चिकित्सा ॥ अथ अंगतु ज्वर कथन ॥ दोहा ।। अभिचार अभिघात पुनि अभिषंग अरू अभिसाप || ए अंग तू कू ज्वर कहै होइ इन्ही सै तास ॥ ४३ ॥ अथ लक्षण ॥ मंत्र यंत्र के योग तैं कहिये सो अभिचार || चोट लगे तै होत है सो अभिघात विचार || ४४ || काम भूष कै जोर तैं सो कहिये अभिचार षग || गुरु ब्राह्मण सिद्ध वृद्ध ते अभिशापन के संग ॥४५॥ अथ चिकित्सा ॥ अभिचारा साप तैं करहु चिकित्सा देह ॥ दान अतिथि होमादि जय करिये ज्वर को एह || ४६ || भूत ज्वर जाकै ह्वै जल से चन मंत्र योग || अरू भय जाहि दिषाइये वंधन मारण जोग ॥ ४७ ॥ दुर्गन्ध औषध सै ह्वै सुगंध द्रव्य से जाइ । क्रोध किये तैं होइ ज्वर मिष्ट वचन कहजाइ ॥४८॥ इति चिकित्सा ॥ × × तिय पुस्तक द्वय एक संग राषौ जो तन प्राण ॥ मूरष दूषण जानि यहु पंडित भूषण मान ॥२३॥ × × रोग हरण तातैं अधिक लोभ छांडिकै देहु ॥ वंधै सुजसु संसार में परमेव सुष को गेहु ॥ २५ ॥ इति श्री खरतर गछीय वाचनाचार्य्य वर्य्य धुर्य्य श्री सुमति मेरूत गणित छिष्य मुनिमान जी कृत कवि विनोदनाथ भाषा निदान चिकित्सा पत्थ्यापत्थ सप्तम षंड समाप्तं || सम्वत् १८७६ साके १७४१ मार शिर कृष्ण त्रयोदशी वुधवासरे लिषितं ब्रह्म मूर्ति पंडित मांधाता पठितव्यं कुमर साहिव चंद्रहंसजी

विषय—१—चिकित्सा के चार चरण, नाड़ी लक्षण, रोग ज्ञान, रोग लक्षण, रोग चिकित्सा तथा औषधि, २—चूर्ण प्रकरण, ३—गुटिका प्रकरण, ४—अवलेह प्रकरण, ५—रसायन प्रकरण।

विशेष ज्ञातव्य—यह वैद्यक का एक उत्तम ग्रंथ है। ग्रंथ के आदि में जो कवित्त दिया है उसमें 'ऋषभ' शब्द आया है जिसका अर्थ ऋषभदेव से भी हो सकता है। इससे यह मालूम होता है कि लेखक जैनी है। कहीं कहीं 'जिन' शब्द भी आया है। रचयिता ने अपना गुरु का परिचय और ग्रंथ निर्माण काल आदि दिया है।

संख्या ६७. कृष्ण मंगल, रचयिता—नन्ददास जी, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० वेदनिधि जी शास्त्री, स्थान—इटावा (ब्रह्मप्रेस), जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ अथ श्री कृष्ण मंगल लिख्यते॥ छन्द॥ जनमे श्री कृष्ण मुरारि भक्त हित कारने। मथुरा लियो अवतार गोकुल झूलै पालने। तिथि अष्टमी बुधवार भादौं वदि की करी। रोहिणी नक्षत्र आधी रात जनम लियो शुभ घरी॥ धनि देवकी वसुदेव जहाँ प्रभु अवतरे। धन्य यशोदा बाबा नन्द महा घर पग धरे॥ धन्य धन्य सुर नर मुनि सब जय जय करैं। दुंदुभि वजत अकाश सुमन वर्षा करैं॥ ब्रजवासी गोरस भरि करि ल्यावहीं। दधिकाँदौं बाबा नन्द सुकींच मचावही॥ वाजत ताल मृदंग बीन अरू बाँसुरी। निरतत गोपी ग्वाल चरणचित चावरी। यशु मति चीर पहिराय नौरंग भई ग्वालिनी। सुंदर वदन निहारि चकृत भई भामिनी॥ श्री बलभद्रजी के वीर असुर दल खंडना। भक्त वत्सल महाराज यादव कुल मंडना॥ शंकर धरत है ध्यान सुगोद खिलावहीं। सो मुख चूमति माइ सुपलना झुलावहीं। श्री नंददास सनेह चरण चित ल्यावही। हरिगुण मंगल गाय गोविंद गुण गावहीं॥ इति श्री कृष्ण मंगल॥ संपूर्णम्॥ श्री रस्तु॥

विषय—श्री कृष्ण जन्मोत्सव का संक्षिप्त वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त पुस्तक की अविकल रूप से नकल कर दी गई है।

संख्या ६८. भजन महाभारत उद्योग पर्व, रचयिता—नौवतिराय, कागज—देशी, पत्र—१८, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० धूरीलाल जी, स्थान—वलीपुर, डा०—उरावर, जि०—मैनपुरी।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः॥ अथ भजन महाभारत उद्योग पर्व लिष्यते॥ भजन देवी जी का॥ मैं तुम शरण शारदा माई॥ चारि भुजा केहरि असवारी शोभा वरणि न जाई॥ कर मैं खप्पर खर्ग विराजै त्रिभुवन मैं तुम्हरी फिरत धुआई॥ १॥ मैं तुम शरण शारदा माई॥ दुष्ट दलनि आरिष्ट निवारणि सकल सृष्टि उपजाई। तुमहीं आदि शक्ति जगदंबा महिमा वेद पुरातन गाई॥ २॥ मैं तुम शरण शारदा माई॥ रिद्धि सिद्धि नव निद्धि की दाता सुर मुनि करत बड़ाई। ब्रह्मा विष्णु तुमहि नित ध्यावैं शिव शंकर रहे ध्यान लगाई॥ मैं तुम शरण शारदा माई॥ नौवति राय कहै कर जोरे मो कौं होउ सहाई। पूरन ब्रह्म मनोरथ मेरो जानति ना कछु भजन उपाई॥ ४॥

अंत—दिरजोधन अब करी है चढ़ाई। सौ बंधव कुरूपति के संगै चले हैं रथ दौराई। भीष्म करण द्रोण दूसासन विकरण चलो वहुत हित पाई ॥ १ ॥ दिर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ शकुनी शल्य और ऋतुवर्मा द्रोणी चले हर्षाई ॥ सो दत्त भगदत्त हलम्बुज नृप कलिंग नहिं देर लगाई ॥ २ ॥ दिर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ बाहलीक गंगाधर चलि भय अपनी सैन सजाई। साजि चलो कम्बोज जयद्रथ दुरद दुमन कौ संग लिवाई ॥ ३ ॥ दिर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ साठि हजार चले सजि राजा नाम न वरनो जाई। ग्यारह छोहनि दल सव चलि भौ रहे निशान गगन में छाई ॥ ४ ॥ दिर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ बाजत संग जुझाऊ बाजा बादर से घहराई। सूखे सागर औसरिता जल बड़े-बड़े सहर मजे भहराई ॥ ५ ॥ दिर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ डोली धरनि सेस अकुलाने भार सहो ना जाई। परवत टूटि फूटि भय बारू गर्द रही महि मंडल छाई ॥ ६ ॥ दुर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ सूझिन परै भयो अँधयारो रवि नहिं देत देखाई ॥ धावत रथ फहरात पताका पहुँचे सव कुरु खेत मैं जाई ॥ ७ ॥ दिर जोधन अब करी है चढ़ाई ॥ कुरुक्षेत्र के पूरब धाई तम्बू दये लगवाई। नौवतिराय परोदल सिगरो दिरजोधन की आयसु पाई ॥ ८ ॥
॥ इति श्री भजन उद्योग पर्व समाप्तम् ॥

विषय—महाभारत उद्योग पर्व सम्बन्धी कुछ भजन।

संख्या ६९ ए. प्रबोध रस सुधा सागर अथवा सुधा रस या सुधासर, रचयिता—नवीन कवि (वृंदावन), कागज—देशी, आकार १३ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६१६, सवैया या कवित्त, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८९५ वि० = १८३८ ई०, लिपिकाल—सं० १९१० वि० = १८५३ ई०, प्राप्तिस्थान—पंडित मया शंकर जी याज्ञिक, अधिकारी, गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—मंगलाचरण ॥ दोहा ॥ नवीन कौ—जुगल चरन बन्दन करौं, सब देवन समुदाय। ज्यों हाथी के षोज में, सब कौ षोज समाय ॥ प्रेम मगन विहरै विपन, राधा नन्द किसोर। दोऊन के मुष चन्द्र के, दोऊन नैन चकोर ॥ सवैया देव जू कौ—सराहैं सुरासुर सिद्ध समाज जिन्हैं लषि लाज मरैं रति मार। महामुद मंगल संग लसैं विलसैं भव भार निवाहन हार ॥ विराजे त्रिलोक लुनाई की ओक सुदेव मनोहर रूप अपार ॥ सदा दुलही वृषभान सुता दिन दूलह श्री ब्रजराज कुमार ॥ सवैया मतिराम कौ—गुच्छन के अवतंस लसैं सिर पच्छन अच्छ किरीट बनायौ। पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लब सौ मतिराम सुहायौ ॥ गुंजन के उर मंजुल हार निकुंजनि ते कढ़ि बाहर आयौ। आज कौ रूप लषै ब्रजराज कौ आज ही आँखिन कौ फल पायौ ॥

अंत—कवित्त आशीर्वाद कौ—मंगल उमंग ब्रजभूमि श्री बृन्दावन मंगल धूम पौर पौरन छई रहै। ब्रज की निकुंजन अलीन पुंज गुंजन नवीन नित मंगल की रचना भई रहै ॥ मंगल रसिक जन मंडल सखीन इ मैं जमुना किनारे धुनि मंगल नई रहै। मोहन मुकुट मोद मंगल सदाई माँग ललित लड़ेती जू की मंगल मई रहै ॥ संवत तिथिवार दोहा ॥

प्रभु[१] सिधि[८] कवि रस[९] तत्व[५] गिन, संवत सर अवरेस। अर्जुन शुक्ला पंचमी, सोम सुधासर लेख ॥ इति श्री नवीन विरचितायाम सुधारस नाम ग्रंथ कविनाम वंध दानलीला ग्रंथ सम्पूर्ण प्रसंग षष्ठमोतरंग ॥ इति श्री मनि महाराजाधिराज अतिजान बलवान छितकंत बरार वंश शिरमौर श्री जसवंत सिंह जी मालवेन्द्र बहादुर चित्त बिलास हित आग्या प्रति नवीन कृत प्राचीन कवि समूह वानी सम्पूर्णं ॥ पोथी लिखायतं श्री पुरोहित जी श्री हरसुख सिंह जी हस्ताक्षर तेजा सिपाही के मिती श्रावन बदी १३ संवत् १९१० ।

विषय—१-श्रृंगार वर्णन। २-ब्रजरस रीति। ३-विभिन्न कवियों द्वारा राज समाज का वर्णन। ४-नीति। ५-भक्ति। ६-दानलीला। इस ग्रंथ में २६९ दोहा, २२९५ सवैया और कवित्त, ३५ छप्पय, ३ कुंडलिया, १० बरवै, ४ चौपाई हैं। निम्नलिखित कवियों की रचनाएँ उदाहरण स्वरूप आई हैं:—तुलसी, सूर, उदय, रसरूप, महाकवि, प्रवीन, नागर, किशोर, बदन, मनोहर, रसरंग, चिन्तामन, बंसी, ग्वाल, बलभद्र, आलम, भूधर, दलपति, वृन्द, देव, ईश्वर, शम्भू, श्रीपति, श्रीधर, सदासुख, नवीन, सन्तन, चैन, ठाकुर, त्रिलोक, जगदीश, जनार्दन, जगन्नाथ, जालम, वीर, लाल, रूप, माधुरी, तोष, प्रवीन बैनी, सेवक, कुन्दन, कलन, सरलतीफ, अनन्त, नन्द, दत्त, प्रताप, प्रसिद्ध, मधुप, मकरन्द, भरमी, ओपी, कुलपति, जगन, अंगन, कनक, शुभ, रास, रस आनन्द, गोप, भूषन, सुख, पुंज, मंडन, सुन्दर, भूप, सुजान, बिहारी, बनवारी, करन, सेनापति, गुणनिधि, गुपाल, राजू, रसखान, रंगखान, मनबोध, वंसीधर, गुमान, मुबारक, ठाकुर, घनआनन्द, प्राणनाथ, निवाज, ईस, बिहारी, दिनेस, झपट, कृष्ण, पर्वत, सूरज, नरोत्तमदास, घनस्याम, परमेश्वर, बेनी, रहीम, नहजन, नहचन्द, सदानन्द, नेही, गिरधर, इन्द्र, मंडन, मुरली, सुखदेव, सखीसुख, अमरेस, सुभचन्द, सम, गुनधरि, केशव, हरि, भल्ल, मनराज, बलराम, भीम, दौलत, मतिराम, रंगरस, धुरन्धर, रघुनाथ, गुमान, नरबीन, कल्यान, कल्यान (द्वितीय), हरिदास, भगवन्त, भंजन, देव परमेश्वर, नारायन, बिहारी लाल, नन्दन, नीलकंठ, कविराज, द्विज, पंडित, सरस्वत, अभिमन्यु, नरसिंह, पुरुषोत्तम, सावन्त, भगवान, पदमाकर, राजिया, चतुर शिरोमनि, राम, समीरन, बैताल, चन्द, नृप शंभु, प्रिया, दूलह, कासिव, सूरत, दयानिधि, मुकुन्द, मुरलीधर, महबूब, खूबचन्द, ठाकुर, दीन, शिवनाथ, हरिवंशी, लीलाधर, बल्लभ रसिक, प्रियदास, पुखी, मोती, नवल, स्वरूप, सोभ, शेखर, सुमेर, गंगधार, गंगाधर, वन्दन, जीवन, नन्दन, लाला, इंछा, प्रानसुख, तोषनिधि, लालहि, बोधा, राम, कृष्ण आदि। कुल २५७ कवियों की कविता इसमें है। कवि ने अन्त में एक ही नामधारी अनेक कवियों का कुछ परिचय भी दिया है।

विशेष ज्ञातव्य—गोपाल सिंह 'नवीन' जाति के कायस्थ और वृन्दावन निवासी थे जयपुर के 'ईश कवि' इनके गुरू थे:—"श्री गुरू ईश प्रवीन कृपा करि दीन को छाप नवीन की दीनी।" मालवेन्द्र महाराज जसवन्त सिंह तथा उनके पुत्र देवेन्द्र के ये आश्रित रहे। कुछ समय तक ग्वालियर में भी रहे। इस कवि ने सुधासागर, सरसरस, नेहनिदान, रंगतरंग नामक चार ग्रंथ बनाए। प्रस्तुत ग्रंथ इनका सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण है। इसमें रसों का वर्णन उत्तम है और २५७ कवियों की कविता आयी है। अंत में एक दान

लीला लिखी है जिसमें अनेक कवियों के नाम सार्थक होकर आए हैं। ग्रंथ स्वामी पं० मयाशंकर जी याज्ञिक इस विषय में एक लेख सन् १९२५ के साहित्य समालोचक पृष्ठ २२० (अंक जुलाई, श्रावण, विक्रम १९८२) में लिख चुके हैं। विवरण के लिये वह देखा जा सकता है।

संख्या ६९ बी. सुधासर, रचयिता—नवीन, कागज—मूँजी, पत्र—१९७, आकार—७३/४ × ५३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—८६६२, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८९५ = १८३८ ई०, लिपिकाल—सं० १८९६ वि० = १८३९ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री लालराम जी जनरल मर्चेन्ट्स, छत्ता बाजार, मथुरा।

आदि—स्याम की प्रभासिनी तू काम की अभासिनी तूँ नेह रंग चासनी तूँ आनन्द विकासिनी ॥ कोटि अघ नासिनी तू रस की निवासिनी तूँ। मौज की मवासिनी तू केलि कल हासिनी ॥ जमुना अपार जस पुंजन नवीन नित कुंजन के कंज तट सुमन सुवासिनी ॥ सब सुख रासिनी तूँ प्रेम की प्रकासिनी तूँ पासनी प्रिया की वृंदा विपिन विलासिनी ॥ नंद गोपराज सुनि और ब्रज ओप आज तेरे पुत्र भयो भैया पुन्य फल जाप कौं ॥ ब्रह्म रिष द्वार बहु देवता विमानन से छायो सुरलोक गीत वेद के अलाप कौं। घर घर सम्पति अपार बढ़ी देखियत हम पै न कीयो जात वर्णन प्रताप कौं ॥ "नागर" यों बेर बेर ग्वाल कहे टेर टेर तेरो घर मानव परमेश्वर के बाप कौं ॥

अंत—सूखो तृन चरै तासों दूध दधि लीजियत, हरो तृन चरै जीव दियें उबरात है। मांखी चुनै मांकरीऔर मांकरी चिरैया चुगे चिरैयाँ चुगे ते बाज बाँधे ही मरत है। "निपट" निरंजन अनेक रस भोगी नर—एक रस काजैं देखौ रसना हरत है। साहिब की साहिबी······न्याय के करन हारे न्याय ही करत हैं ॥ सागर कौ जल खार कियो पुनि कंटक पेड़ गुलाब कौ कीनो। मित्रन माँझ वियोग रच्यो पय पान विष धरै कौ पुनि दीनो। पंडित लोग दरिद्र किये सब मूढ़न के धन धाम नवीनो ॥ अंकित अंक सुधा वरषै विध या विधने······॥ प्रभ[१] सिधि[८] कविरस[९] तत्व[५] गिन संवत सर अवरेषि। अर्जुन सुकला पंचिमी सोम सुधा सर लेष ॥

विषय—१—ब्रज रस रीति वर्णन, २—राज समाज निर्णय, ३—नीति आचार का निरूपण, ४—देव स्तुति एवं भक्ति पक्ष का प्रतिपादन, ५—शान्त, करुण आदि नव रसों का वर्णन, ६—विभिन्न कवियों की वाणी, ७—कवियों के नामों में ही राधाकृष्ण की दानलीला,* ८—गोपियों और कृष्ण के प्रश्नोत्तर (एक मात्र नवीन की रचना)। ९—विविध जानवरों और पक्षियों की लड़ाई का वर्णन। १०—वीर रस के उदाहरण स्वरूप रचनाओं का संग्रह। प्रस्तुत ग्रंथ के संग्रह कर्त्ता नवीन हैं। उन्होंने इसमें निम्नलिखित प्राचीन कवियों की कृतियाँ

---

* टिप्पणी—इस प्रबंध में वर्णित तो है दानलीला, पर यह अनेक कवियों के नामों को लेकर रची गई है जिसमें कवियों के नाम द्वयर्थक होकर आए हैं।

उदाहरण स्वरूप दी हैं जो किसी अंश तक अलभ्य हैं:—नागरीदास, नागर, ठाकुर, आनन्द घन, रसखान, कृष्णराम, दयादेव, वंशीधर, मान, सूरत, जगन्नाथ भट्ट, देवजू, रघुराय, वीर, ईस जू, गंग, वैरिसाल, बिहारीलाल, पदमाकर, वृन्द, आलम, चैन, रामकृष्ण, मुबारक, रघुनाथ, गोप, सामन्त, हरिकवि, हृदयेस, हठी, सोभ, सिवनाथ, कासीराम, लाल, ग्वाल प्राचीन, मल्ल, बोध, चतुर, राजाराम, नेही, घासीराम, हरदा, बैनी-प्रवीन, प्रेम जू, अमरेस, हरिकवि, रसरास, मंडन (जयपुरवाले), लीलाधर, दुजचन्द, किशोर, परवत, ईस जू, चिन्तामनि, दयानिधि, तोष, प्रहलाद, भीम, गुपाल, श्रीपति, भूषन, गोरेलाल, सुकदेव, गंगाधर, कासीराम, मुकुन्द, रसिक गोविन्द, सखीसुख, कालिदास, श्री गोविंद, सुजान, तुलसीदास, बोधाराय, निपट, सेनापति, कान्ह आदि।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत कवि के गुरू जयपुर निवासी 'ईस' कवि थे। ये एक प्रख्यात कवि हो गए हैं। अपने इस बहुमूल्य ग्रंथ में इन्होंने बीसों ज्ञात और अज्ञात कवियों की रचनाएँ उद्धृत की हैं जिनकी सूची विवरणपत्र में दे दी गई है।

संख्या ७० ए. मंगल गीता, रचयिता—श्री नेवल सिंह जी, कागज—देशी, पत्र—९, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१९८८ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० परमेश्वरदत्त जी, स्थान—जगदीसवापुर, डा०—इन्हौना, जि०—रायबरेली।

आदि—मंगल– श्री गणपति पद पंकज प्रथम प्रथम मनावौं हे ललना ॥ संत चरण शिर नाइ रामयश गावौं हे ॥ ललना ॥ १ ॥ जब-जब निशिचर अधम अनीति पसारहि हे ॥ ललना ॥ तब तब राम कृपाल विविध तन धारहि हे ॥ ललना ॥ हरहिं देव मुनि पीर अधर्म नेवारहिं हे ॥ ललना ॥ थापहिं श्रुति मरयाद सुयश विस्तारहिं हे ॥ ललना ॥ त्रेता युग एक बार सुनहु जब आयो है ॥ ललना ॥ भयो दशानन राज पाप महि छायो है ॥ ललना ॥

अंत—गाफिल न हो करले भजन हरवक्त हरदम राम का। जब तक तेरा दो चार दिन कायम है चोला चाम का। करता है बातें ज्ञान की छूटी नहीं दिल से खुदी। शिकवा मुझे हरदम यही तेरी तबीयत खाम का। जिसने दिया जामा बशर उसको न भूल ऐ बेखबर। मायल हो अब उसकी तरफ कायल हो इस इलजाम का॥

विषय—यह ग्रंथ श्री नेवलसिंह जी का निर्मित किया हुआ अत्यन्त श्रेष्ठ और माधुर्य गुण से पूर्ण है। इसमें प्रथम श्री गणेश जी तथा संतों के चरणों की चंदना करके रामजन्म मंगल-गीत में विस्तृत रूप से वर्णन किया है, अर्थात् ४४ पदों में उक्त गीत गाया गया है। इसमें श्री रामचन्द्र जी के जन्म का कारण, देवताओं का पृथ्वी के सहित श्री विष्णु भगवान की विनती करना और औतार होने का वरदान पाना, यथा समय चारों भाइयों का उत्पन्न होना तथा विविध प्रकार की लीला करना आदि का वर्णन किया है। तत्पश्चात् श्री रामचन्द्र की शोभा के वर्णन में पद रचे गए हैं जिनमें जनकपुर में जाने के समय की शोभा का वर्णन है। पुनः श्री सीताराम के विवाह का मंगल गाया है। विवाह

की विधि का विस्तृत वर्णन मंगल में किया है। इसके पश्चात् श्री नेवलसिंह जी ने श्री रामचन्द्र जी और सीता जी एवं श्री कृष्ण जी तथा राधिका जी के प्रेम का वर्णन विविध राग रागिनियों यथा होली, धमार, वसंत आदि में किया है। अंत में उर्दू भाषा के रेखते लिखे हैं जो गजल के ढंग पर हैं। भाषा माधुर्य तथा प्रसाद गुण पूर्ण है। सांगीत के पद इसमें उत्तम हैं।

विशेष ज्ञातव्य—आपके निवास स्थान तथा जन्मभूमि आदि के विषय में बहुत खोज करने पर भी कोई बात निश्चय पूर्वक नहीं ज्ञात हो सकी। केवल इतना ज्ञात है कि आप क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे। समय का भी ठीक निश्चय नहीं हो सका, परन्तु पुस्तकों की भाषा से ज्ञात होता है कि १९वीं शताब्दी में आपका जन्म हुआ होगा। भाषा परिमार्जित शुद्ध ब्रजभाषा है। काव्य साधारण श्रेणी का है। 'मंगल गीता' में गीत आदि अधिक लिखे गये हैं। कुछ रेखता भी पाये जाते हैं। आप वैष्णव धर्मावलंबी ज्ञात होते हैं; क्योंकि श्री रामचन्द्र जी तथा उनके भाइयों के विषय में आपने मंगल गीत (सोहर) बनाए हैं। एक पद तो इतना बड़ा है कि संक्षेप रूप में संपूर्ण रामायण की कथा उसमें आ गई है। इससे अधिक इस विषय में ज्ञात नहीं है। आपकी रचित दो पुस्तकें प्राप्त हुई हैं, (१) मंगल गीता, (२) शब्दावली। दोनों ही पुस्तकें उत्तम हैं और उनमें भक्ति का वर्णन है।

संख्या ७० बी. शब्दावली, रचयिता—श्री नेवलसिंह जी, कागज—देशी, पत्र—४५, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—५६०, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, लिपिकाल—सं० १९८८ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० परमेश्वर दत्त जी, स्थान—जगदिसवापुर, डा०—इन्हौना, जि० - रायबरेली।

आदि—सुमिरौं श्री गणपति अभिराम। शंकर सुत आकर मंगलमुद सकल सिद्धि-प्रद जाको नाम॥ एक रदन गज वदन, सदन शुभ, विमल बुद्धि विद्या के धाम॥ ध्यावत नर पावत अभिमत फल लहत सकल सुख सकृत प्रनाम॥ गिरि नन्दनि नन्दन जग-वंदन पूरन करन सकल मन काम॥ वन्दनीय त्रैलोक-विनायक, दायक सकल विश्व विश्राम॥ सकल श्रृष्टि वर इष्ट वरद वर, वेद पुरान विदित गुन ग्राम। यह अभीष्ट वर देहु "नेवल" कहँ कृपा दृष्टि चितवैं जेहि राम॥

अंत—निज आश्रम रचना विचित्र लखि कहे बचन उचारि। किन यह रच्यो रतन मय मन्दिर मेरी कुटी उजारि॥ कीधौं बास कियो वासव महि सुंदर सदन सँवारि। रिधि सिधि निधि सब विधि पूरन किधौं धनद भुवन अनुहारि॥ सुनि पति की बानी मंदिर सों बोली नारि पुकारि॥ आवहु पति दुर्लभ भोगहु सुख दुसह विपत्ति बिसारि॥ यह चरित्र दारिद दव-वारिद संसृत अहि उर गारि। जय गायक अभिमत फल दायक "नेवल" सदा बलिहारि॥ × × ×

विषय—इस ग्रंथ में पदों का संग्रह है। ये पद विनय पत्रिका तथा सूर सागर से बहुत मिलते जुलते हैं। भाषा इनकी शुद्ध तथा परिमार्जित है। कुछ नवीनता की झलक

अवश्य दिखाई देती है। परन्तु माधुर्य तथा प्रसाद गुण से ओत प्रोत है। इसमें प्रथम श्री गणेश जी की वंदना की गई है, पश्चात् श्री रामचन्द्र जी की महिमा का वर्णन है। रामनाम की महिमा श्री राम जी से अधिक कही गई है। स्थान स्थान पर श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द की कथा, उनके और गोपिकाओं के प्रेम, सुदामा जी के द्वारिका गमन तथा श्री कृष्ण की कृपा आदि के वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट एवं मनोहर हैं। ईश्वर की भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का भी वर्णन है। विशेष रूप से भक्ति पर ही अधिक जोर दिया गया है।

संख्या ७१. गुरु महातम, रचयिता—श्री पहलवानदास जी (भीखीपुर, जि०—रायबरेली), कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—७½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—६७२, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, रचनाकाल—१८५२ वि०, लिपिकाल—सं० १६३५ वि०, प्राप्तिस्थान—श्रीमहन्त चन्द्रभूषण दास जी, स्थान—उमापुर, डा०—मीरमऊ, जि०—बाराबंकी।

आदि—सोरठा—गुरुपद नावो सीस सुधि बुधि दाता ज्ञान के। सब ईसन के ईस पहलवान दास बंदै सरन ॥ चारि वेद महलीक पद सेवत कल्यान मै। कबहुँ परै नहिं फीक दिढ़ मानै परतीत सो ॥ सतगुरु तुम समस्त श्रुति भाषत चारिहु जुगन ॥ देहु नाम सत कहत पहलवान दास विनती करै ॥ चौपाई ॥ बंदौं प्रथम चरन महिदेवा। लोकहु वेद विदित सो सेवा ॥ विप्र चरन सेवा मन लावै। मनोकामना सो फल पावै ॥ बंदो आदि जोति मन लाई। श्रिष्टि सवारनि त्रिभुअन माई ॥ बंदो तोहि ज्ञान वरदानी। रसना बैठि सुधारहु बानी ॥

अन्त—॥ सोरठा ॥ जो गुर लागहि कान सत्ति नाम सत ध्यान तजि। अवर बतावहि ज्ञान परम पाप तेहि होइ प्रभु ॥ भूरि मनुज संसार कृपा सिंधु तव भक्ति बिनु। नाचहि तिरगुन जार मल सागर सवता सुहित ॥ दोहा ॥ गुर प्रसाद गुर कीरति गुर मूरति कर ध्यान ॥ पहलवानदास गुरु वंदना करै सकल कल्यान ॥ कातिक शुक्ला सतिमी भार्गव दिन कहि दीन। संवत अठारह सै बावन गुरु महातम कीन ॥

विषय—यह ग्रंथ श्री महात्मा पहलवान दास जी का पाँचवाँ ग्रंथ है। जैसा इसका नाम है उसी के अनुसार इस ग्रंथ भर में गुरु-पद का ही माहात्म्य वर्णित है। प्रथम गुरू की वंदना की गई है। पुनः ब्राह्मणों की वंदना, गंगाजी, व्यास जी, विष्णु, महेश आदि देवताओं की वँदनाएँ हैं। पश्चात् भक्तों की वंदनाएँ श्री मलिक मुहम्मद जायसी की तरह की हैं। गुरू की महिमा, सतगुरू के लक्षण, बिगुड़ा के दोष, ईश्वर महत्ता को अंग, अन्य देवताओं के पूजन को अंग, नाम महिमा, भक्त और भक्ति की महिमा, सिद्धों के लक्षण, काशी नरेश का इतिहास, गुरू महात्म्य के विषय में नारद जी की कथा, भजन और कीर्ति आदि का बहुत ही उत्तम और सजीव भाषा में वर्णन किया है। भाषा प्रसाद गुण पूर्ण है। ग्रामीण भाषा के शब्द अधिक हैं।

विशेष ज्ञातव्य—श्री महात्मा पहलवान दास जी भारद्वाज गोत्रीय सरयूपारीय ब्राह्मण (मचैयाँ पाँडे) थे। पिता का नाम दुजई पांडे था। जन्मभूमि बल्दूपांडे का पुरवा,

जिला सुल्तानपुर में थी; परन्तु किसी सम्बन्ध से भीखीपुर (रस्ता मऊ के निकट, जिला रायबरेली) में रहते थे। बाल्यावस्था की दशा तो विदित नहीं है; परन्तु युवावस्था में ये किसी पल्टन में नौकर थे। इनका शरीर बहुत ऊँचा था। बलवान् भी बहुत थे। विवाह जायस के निकट किसी गाँव में हुआ था। पुत्र आदि संतान नहीं थी। इन्होंने श्री सिद्धा दास जी से मंत्रोपदेश लिया था और १२ वर्षतक नित्य ४ कोस जाकर एवं दिन भर उनकी सेवा कर तब घर वापस आते थे। गुरु ने सब भजन की रीति बताकर इन्हें पहलवान दास को पदवी दी और अपने स्थान पर ही स्थिर होकर भजन करने की आज्ञा दी। ये सिद्ध महात्मा थे। इनकी सिद्धि की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। स्थानाभाव से उन्हें यहाँ नहीं देते। ये पढ़े नहीं थे केवल अनुभव से कविता करते थे। इनकी पलकें नीचे तक लटकी रहती थीं। जबानी कविता बोलते जाते थे। किसी बिहारीलाल ने इनके ग्रंथों को लिखा है। इनके बनाये हुए ये ग्रंथ हैं:—१—उपखान विवेक, २—विरहसार, ३—मुक्तायन, ४—अरिल्ल, ५—गुरु महात्म्य, ६—फुटकर।

संख्या ७२ ए. छठी के पद, रचयिता—परमानंद (गोकुल), कागज—देशी, पत्र—९, आकार—१२ X ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—हरिचरण गोसाईं, स्थान—रिठौरी, डा०—बरसाना, जि०—मथुरा।

आदि - ॥ अथ छठी के पद लिष्यते ॥ राग सारंग ॥ मंगल घोस छठी को आयो ॥ आनन्दे व्रजराज जसोदा, मनहुँ अधन धन पायो ॥ १ ॥ कुँवर न्हवाइ जसोदा रानी, कुल देवी के पाय परायो ॥ बहु प्रकार विंजन धरि आगें, सब विधि भलो मनायो ॥ २ ॥ सब व्रजनारि बधावन आईं, सुत को तिलक करायो ॥ जय जयकार होत गोकुल में, परमानन्द जस गायो ॥ ३ ॥

अंत—गोद लिए गोपाल जसोदा, पूजत छठो मुदित मन प्यारी ॥ बडडे बार सनेह चुचाते, चूमत मुष दे दे चुचकारी ॥ कुल देवता मनाइ सबन कूं, बरन बरन पहरावत सारी ॥ गोपी ग्वाल हरष गोकल के नाचत हँसत दे दे कर तारी ॥ कंचन थार आरती सजि सजि, ले आई सब व्रजनारी ॥ वारी लाल पर रिषी केस प्रभु, हरषि नंद नव निधि टारी।

विषय—बच्चा होने के छठवें दिन छठी का उत्सव होता है। इसमें सब कुटुंबी लोग एकत्र होते हैं और तरह तरह के बने हुए व्यंजनों का उपभोग करते हैं। शिशु को आशीर्वाद देते हैं। कहावत है कि क्या तुमने मेरी छठी का भात खाया है, अर्थात् क्या तुम मुझसे उम्र में और गुणों में बढ़कर हो। भगवान् कृष्ण की छठी का वर्णन इसमें बड़ा ही सजीव किया गया है। भावों की सरलता और कोमलता सराहनीय है।

विशेष ज्ञातव्य—कृष्ण की छठी का वर्णन प्रस्तुत पद संग्रह में अच्छा है। परमानंद के अतिरिक्त दो तीन पद ऋषिकेश और कल्यान द्वारा निर्मित हैं। संग्रह की उपयोगिता इससे बहुत बढ़ जाती है कि एक ही जगह और एक ही विषय पर अष्टछाप के एक प्रमुख कवि (परमानन्द) के गीत इसमें संगृहीत हैं।

संख्या ७२ बी. पद परमानंद जी के या परमानंद सागर, रचयिता—परमानंद (गोकुल), कागज—देशी, पत्र—२४०, आकार—९ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१२०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० फतेहराम जी, स्थान और डा०—नंदग्राम, मथुरा।

आदि—चरन कमल बंदौ जगदीश जे गोधन संग धाए। जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उरलाए। जे पद कमल युधिष्ठिर पूजित राजसूय में चलि आये। जे पद कमल पितामह भीषम भारत में देखन पाये। जे पद कमल संभु चतुरानन हृदय कमल अंतरे राखे। जे पद कमल रमा उर भूषन वेद भागवत मुनि भाखे। जे पद कमल लोक त्रै पावन बलि राजा के पीठ धरै॥ ते पद कमल दास परमानंद गावत प्रेम पियूष भरै॥ १॥ गावति गोपी मधु मृदु बानी। जाके भवन वसत त्रिभुवन पति राजा नंद जसोदा रानी। गावत वेद भारति गावत गावत नारदादि मुनि ज्ञानी। गावत गंधर्व काल सिव गोकुलनाथ महातम जानी। गावत चतुरानन जगनाइक गावत सेस सहस मुषरास। मन क्रम वचन प्रीति पद अंबुज अब गावत परमानंद दास॥ २॥ राग गौरी॥ मोहन नंदराइ कुमार। प्रगट ब्रह्म निकुंज नाइक भक्त हेत अवतार। प्रथम चरन सरोज वंदित स्याम घन गोपाल। मकर कुंडल गंड मंडित चारू नैन विसाल। बलराम सहित विनोद लीला सेष संकर हेत। दास परमानंद स्वामी वेद बोलत नेत॥ ३॥ अथ जनम समय॥ राग सारंग॥ भादौ की रैनि अँधियारी। गरजत गगन दामिनि कौधति गोकुल चलै मुरारी। सेस सहस फनि बूंदनि वारन सेत छत्र सिर तान्यौ॥ वसुदेव अंक मध्य जग जीवन कहा करैगो पान्यौ। यमुना थाह भई तिहि औसर आवत जात न जान्यौ। आनंद भयौ दास परमानंद देव मुनिन मन मान्यौ॥ १॥

मध्य—गो चारण समय॥ सारंग॥ मइया गाय चरावन जैहौं। तू कहै नंद महर बाबा सौं बड़ो भयौ न डरैहौं। श्री दामा आदि सखा सब अपनै औ दाऊ संग लैहौं। दह्यौ भात कावरि संग लैहौं भूषनि लागै खैहौं। वंसीबट की सीतल छैया खेलत अति सुख पैहौं। परमानंद तव साथ खेलहू जौ जमुना जल न्हैहौं॥ १॥ × × × दान लीला॥ न जैहौ माई वेचन दह्यौ। नंद गोप को कुँवर लाड़िलो वन में दाठि रह्यौ॥ इह सब भेद सखी अपनी सौं चंद्रावली कह्यौ॥ मांगत दान अटपटी बातें अंचर रबकि गह्यौ॥ रावरि जाइ उराहन देहौं अब लगु बहुत सह्यौ॥ परमानंद कहे सुनि भामिनि बहुते पुन्य लह्यौ॥६॥

अंत—विरह वर्णन॥ ऊधो भये विदेशी माधौ। जब तें व्रज तजि गये मधुपरि वहाँ न प्रेम अब आधौ। वे जादो पति हम बन चारी कैसे बने सगाई। जो घुंघुची सोने संग तोली इतनिये बहुत बड़ाई। अब वह सुरति जबहि आवति है वृंदावन द्रुमराजी। जमुना पुलिन समीर सुसीतल रास केलि तव साजी। परमानंद प्रीति गोपिनि की नैनन में अरुझाई। बिनु गोपाल गोकुल के वासी निमिष कलप समजाई १४५॥ × × × असावरी॥ प्रीति तो कमल नयन सों कीजै। संपति विपति परै प्रति पालै कृपा अवलोकनि जीजै। परम उदार चतुर चिंतामनि सुमिरन सेवा मानौ। हस्त कमल छाया राखे अंतर गत की जानौ। वेद भागवत ही जसु गायौ कीयो भगत को भायौ। परमानंद इंद्र को वैभव

विप्र सुदामा पायौ ॥ १३ ॥ × × × राग कानड़ो ॥ मोहि भावै देवाधि देवा । सुंदर स्याम कमल दल लोचन गो........ × × × ॥ अपूर्ण ॥

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ का नाम तो 'पद परमानंद जी के' है; किंतु ग्रंथ स्वामी के कहने से यही "परमानंद सागर" है। यही सही जान भी पड़ता है, क्योंकि सूर सागर की तरह यह विस्तृत रचना भी पदों में है जो भागवत दशम स्कंध की क्रमबद्ध कथा है। यद्यपि अंत का पद अपूर्ण है तो भी ग्रंथ पूर्ण ही जान पड़ता है; क्योंकि अन्त में कवि ने अपनी दीनता के वचन कहे हैं जिससे यह जान पड़ता है कि ग्रंथ अब समाप्त हो गया है। रचनाकाल तथा लिपिकाल का पता नहीं है।

संख्या ७३. भागवत षष्टम और सप्तम स्कन्ध, रचयिता—परशुराम, कागज–देशी, पत्र—५२, आकार—१० × ६३/४ इंच, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०४०, पूर्ण, रूप-प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० अयोध्या प्रसाद जी बौहरे, स्थान व पो०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा।

आदि—॥ श्री रामजी सहाई ॥ सिद्धि श्री गनेसाय नमः ॥ श्री सरसुती नमः ॥ ॥ दोहा ॥ सागर सुत रिपु तासु सुत, तासुत सुमिरौं नाम। तापति पति दारा सहित, भजिए निसि दिन जाम १॥ परस राम वरनी कथा, भाषा अर्थ विलास। फुनि (?) मंडित श्रौना भगत, विप्र चरन को दास ॥ २ ॥ × × षष्टे को आरंभ करि, कहन लगे सुषदेव।

उनइस अध्या भागवत, पारीछत सौं भेव ॥ × × X चौपाई ॥ गंगा सागर और त्रिवैनी। तीरथ जो बैकुंठ नसैनी ॥ देव ऋषी सुर सुर गुरू नाना। सवन सुनै भागवत पुराना ॥

अंत—चौपाई—भक्त पुत्र उपजै प्रहलाद। सुनत त्रिया मानैं अहलाद ॥ प्रभु की भक्ति प्रेम सौं करिहै। तासौं सप्त गोत्र उद्धरि है ॥ इतनौ ऋषि दीन्ह्यां बरदाना। तब दिति मन उपज्यौ ग्याना ॥ नमसकार करि परिक्रमा कीन्हीं। इतनी पति सो अज्ञा लीन्हीं ॥ दोहा—श्री नरसिंघ अवतार धरि, हिरनाकुश उदर विदार। तिलक कियौ प्रहलाद कौ, भक्त वछल करतार ॥ इति श्री भागवत महापुराने ॥ सप्तम स्कन्धे भक्त वरननौ ॥ नाम षोड्षमौअध्याय ॥ १६ ॥ श्री गन्यते नमः ॥ अस्कन्धे सप्तम ॥ संपूरन समाप्त ॥ लिषितं श्री कुँवर भगवान सिंघने ॥

विषय—॥ षष्टमो स्कंध ॥

॥ सप्तमो स्कंध ॥

संख्या ७४ ए. नाथ लीला, रचयिता—परसुराम, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—७५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा। दाता—लाला रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, मथुरा।

आदि—॥ अथ श्री नाथ लीला लिष्यते ॥ दोहा ॥ भगति भंडारो जामि के आय मिले सब नाथ। परसराम प्रसिद्ध नाम सोई भेंटे भरि भरि बाथ ॥ परसा परम समाधि में आय

मिले बहुनाथ । दिव्य नाथ ए सति करि तू सुमरि सुमंगल साथ ॥ १ ॥ श्री बद्रीनाथ अनाथ के नाथा । मथुरा नाथ भए ब्रजनाथा ॥ २ ॥ गोकल नाथ गोवरधन नाथा । नारा नाथ बिंद्रावन नाथा ।। ३ ।। कासीनाथ अजोध्यानाथा । सीतानाथ सति रघुनाथा ॥ ४ ॥ श्री जगन्नाथ सिवनाथ सुनाथा । कृपानाथ श्री कोरवनाथा ॥ ५ ॥ मायानाथ मल्याचल नाथा । मनसानाथ भए मननाथा ॥ ६ ॥ श्री जगन्नाथ जै नीलगिर नाथा । प्राणनाथ परसोत्तम नाथा ॥ ७ ॥ अद्भुतनाथ सुदीर्घ नाथा । दीनानाथ दयाकरि नाथा ॥ ८ ॥ अमितनाथ पुंडरीक नाथा । सुरतिनाथ सोइ रुतनाथा ॥ ९ ॥ रंगनाथ रामेसुर नाथा । रतन नाथ रिधि सिधि के नाथा ॥ १० ॥ अनंतनाथ अचलेसुर नाथा । नेमनाथ श्री गोरषनाथा ॥ ११ ॥ सोमनाथ सुंदर सुषनाथा । भावनाथ भुवनेस्वर नाथा ॥ १२ ॥ जादूनाथ द्वारिके नाथा । बालनाथ जै गोपीनाथा ॥ १३ ॥ अकलनाथ त्रिभुवन के नाथा ॥ सकलनाथ नव षंड के नाथा ॥ १४ ॥ धर्मनाथ धरणीधर नाथा । चतुरनाथ चिंतामणि नाथा ॥ १५ ॥ सुरतरु नाथ सुमंगलनाथा । षेचरनाथ पुरंदर नाथा ॥ १६ ॥ पवननाथ पाणी के नाथा । जीवनाथ चेतनि चित्तनाथा ॥ १७ ॥ बुद्धिनाथ वाणीवर नाथा । ब्रह्मनाथ नित्त सिंभुनाथा ॥ १८ ॥ आदिनाथ अंबरधर नाथा । अमरनाथ ब्रह्मण्ड के नाथा ॥ १९ ॥ श्री विष्णुनाथ विसुंभर नाथा । रमानाथ वैकुंठ के नाथा ॥ २० ॥ श्री हरिनाथ सति श्रीनाथा । श्रीधरनाथ सकल के नाथा ॥ २१ ॥ सिंभुनाथ सर्वेसुर नाथा । नित्योनाथ निरंजन नाथा ॥ २२ ॥ विद्यानाथ विचार के नाथा ॥ ज्ञाननाथ वैरागर नाथा ॥ २३ ॥ जोगनाथ जप तप के नाथा । जुगतिनाथ तीरथ व्रतनाथा ॥ २४ ॥ षटगुणनाथ प्रकृति के नाथा ॥ अषई नाथ सकल गुणनाथा ॥ २५ ॥ आत्मनाथ अषंडित नाथा । आगमनाथ अगोचर नाथा ॥ २६ ॥ अभैनाथ नाथे निज नाथा । अजरनाथ आगैं अतिनाथा ॥ २७ ॥ जोतिनाथ जोगी जस नाथा । सहज नाथ आगैं सति नाथा ॥ २८ ॥ निर्मलनाथ निरालंब नाथा । निहचलनाथ निरंतर नाथा ॥ २९ ॥ निर्गुण नाथ सुसर्गुण नाथा । सर्वनाथ समपूरण नाथा ॥ ३० ॥ परमनाथ अपरंपरनाथा । परसराम प्रभु अविगति नाथा ॥ ३१ ॥ अतिवल नाथ सकल कुलनाथा । कलानाथ हरिकेवलनाथा ॥ ३२ ॥ भगति भंडारौ जाणि करि आइ मिले सब नाथ । परसराम परसिध नाम सोइ भरि भरि भेंटे नाथ ॥ ३३ ॥ सर्वनाथ को नाथ हरि परसराम भजि सोई ॥ मन वंछित फल पाइये फिरि आवागमन न होई ॥ ३४ ॥ ३ ॥ इति श्रीनाथ लीला संपूर्णम् ॥

विषय—नाथ लोगों के नाम गिनाये गए हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—देखिए "सांच निषेध लीला" का विवरण पत्र ।

संख्या ७४ बी. पदावली, रचयिता—स्वामी परसराम, कागज—देशी, पत्र—७५, आकार—११½ × ८½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२६६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरीप्रचारिणी सभा । दाता—ला० रामगोपाल अगरवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, मथुरा ।

आदि—॥ राग ललित ॥ गोविंद मैं वंदीजन तेरा । प्रातसमै उठि मोहन गाऊं तौ मन मानै मेरा ॥ टेक ॥ कर्तम करम भरम कुल करणी ताकी नाहिन आसा ॥ १ ॥ करूं

पुकार द्वार सिर नाऊं गाऊं ब्रह्म विधाता ।। परसराम जन करत वीनती सुणि प्रभु अविगत नाथा ।। २ ।। जो जन हरि सुमिरण व्रतधारी । सो क्यों डरै दास दुविधा तैं जाकै राम महाबल भारी ।। टेक ।। त्रियनारी अहंकार आप बलि पति देषत सुत मान उतारी । राष्यो जतन जाणि जग ऊपर दीसे धू अधिकारी ॥ १ ॥ नरसिंघ रूप धरयौ हरि प्रगटै हिरण्याकुस मारयौ उरफारी ॥ हरि सुमिरत द्रोपति पतिराषी प्रगटी प्रीति पुकारी ॥ २ ॥ रावण रंक कियो जिन छिन में अनुज सहित सब सेन सहारी । परसुराम प्रभु थापि वभीषण निरभै लंक दिषारी ॥ ४ ॥ २ ॥

अंत—अवधू उलट्यो मेर चढ्यौ मन मेरा सूनि जोति धुनि लागी ॥ अणभै सवद बजावै विणकर सोई सुरता अनुरागी ॥ टेक ॥ चढ़ि असमान अषाडा देषैं सोई निरभै बैरागी ॥ १ ॥ रहैं अकलप कलपतर सों मिलि कलपि मरैं नहीं सोई ॥ निहचल रहै सदा सोई परसा आवागमण न होई ॥ २ ॥ ६४ ॥ राग गौड़ी ॥ भाई रे का हिंदू का मुसलमान जो राम रहीम ना जाणा रे ।। हारि गए नर जनम वादि जो हरि हिरदै न समाणा रे ॥ टेक ॥ जठरा अगनि जरत जिन राष्यो गरभ संकट गवाणा रे ॥ तिहि औसर तिनि तज्यौ न तोकूं तैं काहे सु भुलाणा रे ॥ १ ॥ भांडे बहुत कुमारा एकैं जिनि यह जगत घडाणा रे ॥ यह न समझि जिन किनहु सिरजे सो साहिव न पिछाणा रे ॥ २ ॥ भाई रे हक हलालनिआदर दोऊ हरषि हराम कमाणां रे ॥ भिस्ति गई दुरि हाथ न आई हो जग सो मन माना रे ॥ ३ ॥ पंथ अनेक नयर उर धर ज्यौं सबका एक विकाणां रे ॥ परसराम व्यापक प्रभु वपुधरि हरि सबको सुरताणां रे ॥ ४ ॥ ६५ ॥

विषय—उपदेश तथा परमात्मा की अनन्य भक्ति ।

संख्या—७४ सी. रोग रथ नाम लीला निधि, रचयिता—परसराम, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—११३/४ × ८१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—५६२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा । दाता—ला० रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, मथुरा ।

आदि—श्री परसराम जी रोगरथ नाम लीला निधि लिषते ॥ ओंकार अपार उरि उतरे अंतर षोय । अतरजामी परसराम व्यापक सब में सोय ॥१॥ इत उत कहां न उत्त उरि जो अंतर प्रीत न होई । अंतरजामी परसराम सब लषै जो अंतर होई ॥ २ ॥ वै तारक वै तरत्र सब वे पालक प्रतिपाल । वार विण पार विसासु है इतवत सोई आल ॥ ३ ॥ उत्तम सु ऊपरि उदै और वैसां न सहाइ ॥ उचांण उच्च उडांण उड़ि आवत उभै पाइ नाहीं काय ॥ ४ ॥ ऊर विण ऽत वुत वै समीप वैसु वैसे के वैसै । दोसर एक उपमा अपार ऊप उपति अप जैसे ॥ ५ ॥ उपमा अधिक उजास अति उदै उग्र स उजियारा ॥ उरवसी सुरग उत्रायण वुर क्रम अद्भूत उदारा ॥ ६ ॥ उग्रे सांवर उपइन्द्र वुपापति इष्षे रिषि उदीरणो । एक वेर उवारि सोई सान इन्द्र कर्म्म उज्जीरणो ॥ ७ ॥ एक अकेला एक रस एकभाय एकतार ॥ एकाएकी एक ही एक सकल इकसार ॥ ८ ॥

अंत—हरि अनंत दरसन हरि अनंत परि। हरि अनंत संतोष हरि अनंत हरि ॥१॥ हरि अनंत औसर हरि अनंत राइ। हरि अनंत आचरज कछू कह्यो न जाइ ॥ २ ॥ हरि अनंत व्यापीक हरि अनंत ब्रह्म। हरि अनंत करणी हरी अनंत करम ॥ ३ ॥ हरि अनंत तरवर हरि अनंत फल। हरि अनंत छाया हरि अनंत छल ॥ ४ ॥ हरि अनंत मूल हरि अनंत सार ॥ हरि अनंत बीजं हरि अनंत विस्तार ॥ ५ ॥ हरि अनंत अस्थूल हरि अनंत आकार। हरि अनंत कर्म कर हरि अनंत निराकार ॥ ६ ॥ × × × हरि अगणित नाम अनंत के गाए जे गाए गये ॥ अंत न आवे परसराम और अमित यों ही रहे ॥ १४ ॥ ॥ विश्राम ॥ २८ ॥ पद ॥ ३७५ ॥ इति श्री नांवलीला निधि संपूर्णम् ॥

विषय—परमतत्व का दार्शनिक विवेचन।

विशेष ज्ञातव्य—यह कृति एक किसी स्वामी परसराम की है। जिस हस्तलेख में प्रस्तुत ग्रंथ है वह बहुत बड़ा है और सारा का सारा इन्हीं (रचयिता) की रचनाओं से भरा पड़ा है। इन्होंने अपना परिचय नहीं दिया है, किंतु रचना से मालूम पड़ता है कि यह रचना १००।२०० वर्ष की पुरानी है। रचना के अध्ययन से लेखक निर्गुण और सगुण पंथी दोनों विदित होता है। हस्तलेख में अनेक निर्गुण पंथी रचनाओं के विषय में ठीक-ठीक पता चल सकता है; क्योंकि मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इसकी बहुतेरी रचनाएँ उन रचनाओं में मिल गई हैं। उदाहरण के लिये 'विप्रमतीसी' रचना ली जा सकती है जो कबीर के नाम से भी प्रचलित है।

संख्या ७४ डी. सांच निषेध लीला, रचयिता—परसुराम, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—११२, पूर्ण, रूप—पुराना, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरीप्रचारिणी सभा। दाता—ला० रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, मथुरा।

आदि—अथ सांच निषेध लीला लिष्यते ॥ राग मारू ॥ हार जो अनहार जो सब हार जो। जो हरि विण जन्म पदारथ हार्यौ ॥ १ ॥ बीत्यौ अन बीत्यौ सब बीत्यो। जो हरि विन जन्म वादि ही बीत्यौ ॥ २ ॥ षोयो अनषोयो सब षोयो। जो नर औतार भगति बिन षोयो ॥ ३ ॥ गयो अण गयो सब गयो। जो हरि विन निर्फल वहि गयो ॥ ४ ॥ षोई अण षोई सब षोई। जो नर देह नांव विण षोई ॥ ५ ॥ छोड्यौ अण छोड्यौ सब छोड्यौ। जो हरि नांव हीण करि छोड्यौ ॥ ६ ॥ षारो अन षारो सब षारो। जो हरि अमृत लागै मनि षारो ॥ ७ ॥ नाही अन नाहीं सब नाहीं। जो अपणू मन अपणै बस नाहीं ॥ ८ ॥ भूखौ अण भूषौ सब भूषौ। जो हरि बिण मन भरमत अति भूषौ ॥ ९ ॥ भर्म्यो अण भर्म्यो सब भर्म्यो। जो हरि परिहरि अपणूं मन भर्म्यो ॥ १० ॥ भूल्यो अन भूल्यो सब भूल्यो। जो मन हरि सुमिरण तैं भूल्यो ॥ ११ ॥ बूड्यौ अण बूड्यौ सब बूड्यौ। जो हरि नांव हीण भौजल मन बूड्यौ ॥ १२ ॥

अंत—देवा अण देवा सव देवा। जो जाण्यौ हरि देवन को देवा ॥ १०१ ॥ सेवग अण सेवग सवसेवग। जो जाण्यौ हरि सेवग को सेवक ॥ १०२ ॥ तरवर अण तरवर सव तरवर। जो जाण्यौ हरि तरवर कौ तरवर ॥ १०३ ॥ छाया अण छाया सव छाया। जाकै हरि तरवर की छाया ॥ १०४ ॥ दाता अण दाता सव दाता। जो जाण्यौ हरि दाता कौ दाता ॥ १०५ ॥ भुगता अण भुगता सव भुगता। जो जाण्यौ हरि भुगता कौ भुगता ॥ १०६ ॥ भोगी अण भोगी सव भोगी। जो जाण्यौ हरि भोगि को भोगी ॥ १०७ ॥ जोगी अण जोगी सव जोगी। जो जाण्यौ हरि जोगि को जोगी ॥ १०८ ॥ ईसुर अण ईसुर सव ईसुर। जो जाण्यौ हरि ईश्वर को ईश्वर ॥ १०९ ॥ ब्रह्मा अण ब्रह्मा सव ब्रह्मा। जो जाण्यौ हरि ब्रह्मा को ब्रह्मा ॥ ११० ॥ राजा अण राजा सव राजा। जो जाण्यौ हरि राजा को राजा ॥ १११ ॥ मंगल अण मंगल सव मंगल। जो जाणै हरि मंगल कौ मंगल ॥११२॥ हरि मंगल मंगल सदा मंगल निधि मंगल चार। परसराम मंगल सकल हरिमंगल हरण बिकार ॥ ११३ ॥ इति श्री सांच निषेध लीला संपूर्ण ॥

विषय—संसार में जो कुछ भी मनुष्य करता है वह यदि बिना परमात्मा के स्मरण किए किया है तो झूठ है और यदि वह परमात्मा को स्मरण करके कार्य सम्पादन करता है तो ठीक और सत्य है।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त हस्तलेख में स्वामी परशुराम की ही रचनाएँ हैं। कविता अधिकाँश निखरी हुई रूप में है। 'पद' और 'जोड़े' तो बहुत ही अनूठे हैं। 'पदों' में उद्धव और गोपी संवाद तथा 'जोडौं' में 'दस औतार कौ जोडौ', 'रघुनाथ चरित्र कौ जोडौ', 'श्री कृष्ण चरित्र को जोडौ', 'श्रृंगार को जोडौ, 'सुदामा कौ जोडौ' और 'द्रौपदी को जोडौ' बहुत उत्तम बने हैं। रचयिता निर्गुणवादी तथा सगुणवादी दोनो है।

संख्या ७४ ई. हरि लीला, रचयिता—परसराम, कागज—ऐशी, पत्र—८, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—३५०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा। दाता—सेठ रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, जि०—मथुरा।

आदि—अथ हरिलीला लिष्यते ॥ राग गौड़ी ॥ सत्य सुकरि हरि हरि भजै और तजैं सकल जंजाल। गुरु सेवा हरिभजन विण, परसराम सोइ काल ॥ १ ॥ परसराम हरि गुरु विना जीवन जनम हराम ॥ गुरु सेवा हरि सरण बिनु नहीं कहूँ विश्राम ॥ २ ॥ गुरु सेवा हरि भजन तैं उपजै प्रेम वियास ॥ परसराम तब पाइये भाव भगति वेसास ॥ ३ ॥ श्रीगुरु शति शति हरि दासा। जिनकैं भाव भगति वेसासा ॥ ४ ॥ हरि की भगति करैं हरि गावैं। हरि गुरु ग्यान ध्यान ल्यौ लावैं ॥ ५ ॥ हरि गुर लीण रहे जग न्यारा। हरि गुरु प्रेम नेम निज सारा ॥ ६ ॥ हरिगुरु संगि जीव जव लागैं। हरि गुरु कर लकुट भयौ भौ थागे ॥ ७ ॥ हरि पावक लागत अघ जारै। हरि गुरु सकल आपदा टारै ॥ ८ ॥ हरिगुरु चरण सरण जव लीना। गुर तिमर हरण हरि दीपक दीना ॥ ९ ॥

हरि औतारनि कौ हरि आगर । हरि निज नांव नांव कौ सागर ॥ १ ॥ हरि सागर मैं सकल पसारा । निर्गुण गुण जाकौ व्यौहारा ॥ २ ॥ हरि व्यौहार विचारैं कोई । तौ हरि सहज समावै सोई ॥ ३ ॥ सोई भागवत भगत अधिकारी । हरि कीरति लागै जेहि प्यारी ॥ ४ ॥ हरि कीरति जाकै मनमानै । सोइ हरनाम महातम जानैं ॥ ५ ॥ हरि लीला सुमिरै सुमिरावै । सो हरि संग सदा सुख पावै ॥ ६ ॥ सुमिरै सुनै सुधारस पीवै । सोइ हरि संग सदाजिन जीवै ॥ ७ ॥ सति सति सुमिरै हरि नामा । ता जन कौ हरि मैं विश्रामा ॥ ८ ॥ हरि विश्राम अषिल अविनासी । जण अस्थिर हरि चरण निवासी ॥ ६ ॥ हरि सुमिरै हरि ही सम सोई । हरि हरि भगति भेद नहीं कोई ॥ १० ॥ हरि है अज अजपा हरि जापा । हरि है तहाँ पुन्नि नहीं पापा ॥ ११ ॥ पाप पुन्य हरि कूं नहीं परसै । परसा प्रेम रूष जन दरसै ॥ १२ ॥ दरस परस जन परसराम हरि अम्रत भरि पीव ॥ ता हरि कूं जिन वीसरै अब होइ रहौ हरि जीव ॥ १३ ॥ हरि रस पीवै प्रेम सौं तन मन प्राण समोई ॥ परसराम ता दास की सरण रह्यां सुष होइ ॥ १४ ॥ जो हरि सौं मिलि हरि भजै हूं ताकी वलि जाऊं ॥ परसराम जन सति करि जहाँ हरि तहाँ हरि नाऊँ ॥ १५ ॥ विश्राम ॥ २६ ॥ ॥ ४२० ॥ इति श्री हरिलीला संपूर्णम् ॥

विषय—हरि की लीला का दार्शनिक विवेचन ।

संख्या ७४ यफ. लीला समझनी, रचयिता—परसुराम, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, का० ना० प्र० सभा । दाता—सेठ रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, जि०—मथुरा ।

आदि—श्री लीला समझनी लिष्यते ॥ रागगौड ॥ कैसो कठिन ठगौरीथारी । देख्यौ चरित महाछल भारी ॥ १ ॥ वड आरंभ जौ औसर साध्या । ज्यों नलनी सूवा गहि बांध्या ॥ २ ॥ छूटि न सकै अकल कल लाई । निर्गुण गुण मैं सब उरझाई ॥ ३ ॥ उरझि पुरझि कोई लहै न पारा । सुरकी लागि वह्यो संसारा ॥४॥ वहि गये वाजि माहि समाया । अविगत नाथ न दीपक पाया ॥ ५ ॥ दीपक छांडि अंधारै धावै । वस्तु अगह क्यौं गहणी आवै ॥ ६ ॥ गहणी वस्तु न आइये । पणि जन कियो विचारि ॥ ७ ॥ अंध अचेतन आस वासि । चाले रतन विसारि ॥ ८ ॥ राम सहाई भजे नहीं भूलै । षाई हलाहल सुषकूं फूलै ॥ १ ॥ सुषलामै जौ मुक्तति होई । तव दुष दुक्रित व्यापै नहीं कोई ॥ २ ॥ रहै अकलप कलप गुण गावै । सोई निजदास राम फल पावै ॥ ३ ॥ फल पाया तै निर्फल नाहीं । राषै सुफल सुमंदिर माहीं ॥ ४ ॥ सो फल वसैं सु मंदिर सांचा । सोन वसै तव लग घर काचा ॥ ५ ॥ काचे मंदिर काल रहाई । सदा पुकारै पीड न जाई ॥ ६ ॥ पीड़ मिटै जो हरि भजैं तन मन आस गंवाई ॥ छूटि जात मैं तैं सवै तव ताकूं काल न षाई ॥ ७ ॥

अंत—करि विश्राम मन मनहि डुलावै । देषि अरिष्टि न पूठा आवै ॥ १ ॥ आवण जाण जगत भरमाया । मन मनसा मिलि पंथ चलाया ॥ २ ॥ चलै न अचल न पंथ न देहं । को आवैं को जाइ सुकेहं ॥ ३ ॥ केहां जाइ कहौ भू कोई । जात न दीसै रहैं न सोई

॥ ४ ॥ सोइ रहै तजै निज देही । यह अंदेस कहा वस नेही ॥ ५ ॥ आंवण जाणा झूठी आसा । उपजै षपैं रूप कौ नासा ॥ ६ ॥ ब्रह्म वृक्ष मैं सब वसैं, डालमूल विस्तारि । परसराम भगति कथा कोई जाणै जाणन हारि ॥ ७ ॥ विश्राम ॥ ७ ॥ ५० ॥ ८ ॥ इति समझनी लीला संपूर्णम् ॥ शुभं ॥

विषय—विश्व प्रपंच को समझाने का दार्शनिक प्रयत्न ।

विशेष ज्ञातव्य—देखो सांचनिषेध लीला के विवरण पत्र में 'विशेष ज्ञातव्य' का स्तंभ । प्रस्तुत रचना में छः छः चौपाई के बाद एक दोहा का क्रम रक्खा गया है ।

संख्या ७४ जी. नक्षत्र लीला, रचयिता—परसुराम (राजस्थान संभवतः), कागज—देशी, पत्र—६, आकार—१२×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्रातिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, का० ना० प्र० सभा । दाता—सेठ रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, जि०—मथुरा ।

श्री नक्षत्र लीला लिष्यते ॥ राग गौड ॥ परसा आसन भजन की जब लगि आसा और । हरि नांव कहां वसै हेत विण जो लहै न निर्मल ठौर ॥ १ ॥ आसा अविगति नाथ की दूजि आस निवारि । परसुराम या असुनि जुहरि अमृत नांव संभारी ॥ २ ॥ असुनि अमृत नांव संभारै । और सकल निर्मल करि डारै ॥ ३ ॥ आगम निगम आस अघधारा । आंवण जाण जगत व्यौहारा ॥ ४ ॥ यौं वपुधर अफलगये बहुप्राणी । ज्यौं अहलक कोउनि पूलि विलाणीं ॥ ५ ॥ अग्य असुर जड़ पल्लव षारै । अपवलि आवत जात विकारे ॥ ६ ॥ चित्रा चिंता हरण सबूरी । चित्त गयौ चारौ दिस पूरी ॥ १ ॥ चाषि लियो चित्त चढ्यौ चितारैं । हरि की चरचा चार विचारै ॥ २ ॥ सोई चेतनि चित्त की चतुराई । जु चरित्र विसारि चितारै लाई ॥ ३ ॥ ज्यौं चात्रिग चितवत चित दीने । त्यौं चिहन धरैं चित चौरैं चीन्हें ॥ ४ ॥ ज्यौं चंद चरित चंदोर पसारी । पैं चित चकोर कै प्रीति सुन्यारी ॥ ५ ॥ चाहि अगनि ताकू नहीं जारैं । जिनि कीनूं चक्र चक्रधर सारैं ॥ ६ ॥ चरण गवण चलि चाहि न काई । चंदन भयो रहे सुषदाई ॥ ७ ॥

अंत—अभै अभीच भया भय नाहीं । और सकल भरमत मैं माही ॥ १ ॥ सिद्ध जोग सबको सिरदारा । जाकै उदै सकल उजियारा ॥ २ ॥ सोइ तिमिर कार हरि जोतिग जोई । कलस सिद्धि साधन है सोई ॥ ३ ॥ ऐसो निज जोति अंतर उर धारैं । तौ विघन विकार भार हरि टारैं ॥ ४ ॥ आनंद कंद साधन सुषकारी । सोइ महामुहूर्त मंगल सुष-कारी ॥ ५ ॥ पल में पलक वहै अति ताता । अविगति अकल सकल सुषदाता ॥ ६ ॥ रहे त्रिवंधन वंधानि आवै । मुक्त रहै कोई इकजन पावै ॥ ७ ॥ जाकै परमहंस गति राजै । नीर षीर टारण बलग्राजै ॥ ८ ॥ जो महाविज्ञ पंडित विष्याता । सोइ लहै अमीच भौतिरि वडग्याता ॥ ९ ॥ निर्भै पद निर्वाण निर्मोही । रच्छया फल दाइक है वोही ॥ १० ॥ सोइ फलदायक जोइसी सुदिन सु मुहुरत साधि । परसराम प्रभु अभै वर जोग जुगति आराधि ॥ ११ ॥ १५० ॥ विश्राम ॥ २८ ॥ इति श्री नषित्र लीला । संपूर्णम् ॥

विषय—नक्षत्रों पर दार्शनिक विचार ।

संख्या ७४ यच. निज रूप लीला, रचयिता—परसुराम, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा। दाता—लाला रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, मथुरा।

आदि—अथ श्री निज रूप लीला लिषते ॥ जाहि चिंतत चिंता मिटै। सोई निज रूप निरूपि ॥ परसराम हरि भजन विन। भर्मे जिन भै रूपि ॥ १ ॥ सुमरि सुमरि मन हरि निर्भारा। हरि सुष सिंधु वार नही पारा ॥ २ ॥ व्यापक ब्रह्म सकर्म तै न्यारा। मर्मै रहित रमित रंकारा ॥ ३ ॥ हरि निजरूप निरूपि पिछाणी। जाहि चिंतत चिंता की हाणी ॥ ४ ॥ अषिल अनंत अमर नहीं मरे। नां सरीर नाना तन धरै ॥ ५ ॥ जनम रहित जनमैं नहीं मरै। बिनां मीच मरि मरि औतरैं ॥ ६ ॥ जरा मरण तन तात न मात। अभै रूप राजित जुग जात ॥ ७ ॥ अवर वरण न दीसैं रूप। सोभा विन वनि रहे अनूप ॥ ८ ॥ बाल न ब्रिध सदा इकतार। अंतर जामी परम उदार ॥ ९ ॥

अंत—साषी सकल विसु असुरादि। जो सुपोत पाई प्रहलादि ॥ ४ ॥ सुनत व्यास सुक कहत विचारी। हरि भजो तात मन मोह निवारि ॥ ५ ॥ मन क्रम वचन कहत हौं तोही। हरि समान सम्रथ नहीं कोई ॥ ६ ॥ हरि भगत हेत वपु धरि औतरै। हरि परम पवित्र पतित उद्धरै ॥ ७ ॥ असरण सरण सत्ति हरि नाऊं। हरि दीन बंधु ताकी बलिजाऊं ॥ ८ ॥ हरि निजरूप निरन्तर आहि। गावै सुणै परम पद ताही ॥ ९ ॥ निज लीला सुमिरण जो करैं। तौ पुनरपि जनमि न सो वपु धरैं ॥ १० ॥ रहैं अकलप कलपि नहीं मरैं। श्रवणि सुणैं सीषैं ब्रत धरैं ॥ ११ ॥ हरि सुमिरण निर्मल निर्वाण। जा घट वसैं सति सोइ प्राण ॥ १२ ॥ परसराम प्रभु विण सव कांच। श्री हरि व्यास देव हरि सांच ॥ १३ ॥ जाके हिरदै हरि वसैं हरि आरत रतिवंत। परसराम असरण सरण सति भगत भगवंत ॥ १५ ॥ विश्राम ॥ १९ ॥ ४ ॥ पद ॥ २६१ ॥ इति श्री निज रूप लीला संपूरणम् ॥

विषय—परमात्मा के स्वरूप का दार्शनिक विवेचन।

संख्या ७४ आई. श्री निर्वाण लीला, रचयिता —परसुराम (राजस्थान संभवतः) कागज—देशी, पत्र—२, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—८६, पूर्ण, रूप - प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा। दाता—सेठ रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम की धर्मशाला, सादाबाद, जि०—मथुरा।

आदि—॥ श्री निर्वाण लीला लिष्यते ॥ राग मारू ॥ परसराम को आदरै कर्म भर्म वेकाम। सदा सहाइक जीव कौ, सुमरिए केवल राम ॥ १ ॥ रामहि रमूं राम रमि जीऊं, अमृत नांव महारस पीऊं ॥ २ ॥ निरमल जस रसना रचिगाऊं। राम भजन भारी सुष पाऊं ॥ ३ ॥ सम्रथ राम सजीवनि मेरी, दरिया वाढि परूं नहीं सेरी ॥ ४ ॥ सेरी सेरा मेरी मेरा। कर्म उपाई राम नहिं वेरा ॥ ५ ॥ कर्म उपाई करूं नहीं कोई। जा कीयां हरि मिलन

न होई ॥ ६ ॥ वेद पुराण सुम्रति पढि जोई। हरि विण पारि न पहुंच्या कोई ॥ ७ ॥ विद्या वेद पढ़े जग फूले। कथणी कथि सुमिरण ते भूले ॥ ८ ॥ आपण भर्मे जग भर्माया। अफल गये फल राम न खाया ॥ ९ ॥ तप तीरथ व्रत लै बिसासा। वेद उपाइ पुन्नि की आसा ॥ १० ॥ आसा पकि फिरि जनम गँवाया। मन थिर राषि न प्रेम समाया ॥ ११ ॥

अंत—दुवध्या भरयौ कही नहीं मानै। सगुरौ साध संति करि जानैं ॥ १ ॥ धनि वे साधु जु राम उपासी। हरि सौं मिलि जग साथि उदासी ॥ २ ॥ तिनकी चरणि सरणि जो रहिए। तौ अभै अमोलिक हरि फल लहिए ॥ ३ ॥ कर्म उपाय किया कछु नाहीं। जौ पै साध समागम नाहीं ॥ ४ ॥ कर्म भर्म फिर रीता आवै। साध सबद षोजै तौ पावै ॥ ५ ॥ साध सवद आसंक्या तूटै। जांमण मरण मिटै भ्रम छूटै ॥ ६ ॥ आवा गवण लषैं सुष पावै। गर्भ वास फिरि बहुरि न आवै ॥ ७ ॥ जाहि कर्म कारण की होई। हरि तजि भरमि मरे मति कोई ॥ ८ ॥ कोई जाणै काहू कछू भावै। मेरे जिय सांची यह आवै ॥ ९ ॥ ऐसो राम अकल अविनासी। ताकौ दास पड़ै क्यौं फांसी ॥ १० ॥ हरि दरिया में मुक्ता षेलै। राम सुमिरि दुविध्या अव षेले ॥ ११ ॥ दुविध्या धरैं सुराम न पावैं। यों ही फिरि फिरि जनम गुमावैं ॥१२॥ पूरण ब्रह्म एक हरि सोई। परसराम जाणै जन कोई ॥१३॥ कोई जाणै जनम हरि भजन की। बांधि लई जिन टेक। मनसा वाचा परसराम प्रेरक सबको एक ॥१४॥ विश्राम ॥१४॥९॥१११॥ इति श्री निर्वाण लीला सपूरणं शुभं ॥७॥

विषय—संसार से अलग होकर भगवद् भक्ति करने का उपदेश।

संख्या ७४ जे. तिथि लीला, रचयिता—परसुराम (राजस्थान संभवतः), कागज—देशी, पत्र—१, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, दाता—सेठ रामगोपाल जी अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, जि०—मथुरा।

आदि—॥ श्री तिथि लीला लिष्यते ॥ राग भैरू ॥ सुध सुधारस अम्रत झरै। पीवै सू जीवैं दूजा मरै ॥ १ ॥ बोलै सतगुरु सवद विचारी। पंद्रह तिथि षोजो निजसारी ॥ २ ॥ मावस मैंतै दोऊ डारी। मन मंगल अंतर लै सारी ॥ वाहरि निकसि करै जिन वात। दिढ़ करि मतौ मिलै ज्यौं तात ॥ २ ॥ पडिवा परम तंत ल्यौलाई। मनकू पकरि प्रेम रस पाई ॥ पीवत पीवत होई उजास। सुष मैं रहैं मरैं नहीं दास ॥ ३ ॥ दोजि दीन होई सुमरै राम। दुविध्या तजै भजैं निज राम ॥ ४ ॥

मध्य—अठमि अकल सकल मैं बसै। काल रूप धरि सबकूं डसै। काल कवल का जाणै भेव। ता जनि संग रमैं हरि देव ॥ १० ॥ नौमी नरहर नांव मंझार। हरि परिहरि जिन रचे विकार ॥ बोलै ब्रह्म सत्य करि मानौ। आगम निगम नित्त करि जानी ॥ ११ ॥ दसमी देही भीतर देव। अंतर अवगति वसै अभेव ॥ ताहि देव सौं करौ पिछाणी। वाहरि भीतरि एकै जाणी ॥१२॥ एकादसी अकल कौ अंगा। तासौं हित करि कीजै संगा। जरा न व्यापै काल न षाई। एक राम रमि सहज समाई ॥१३॥ × × × चौउदसि चीन्हि अगम

पुर ठौर । तहां करि विश्राम तजै दिस वौर । चेतन होई चरण हरि गहे । तौ गुरु प्रसाद जुग जुग थिर रहे ॥ १६ ॥ पून्यूं परम जोति परकास । अंतर दीपक अकाल उजास ॥ तासौं मिलि कीजै आनंद । प्रसराम प्रभु पूरण चंद ॥ १७ ॥ पून्यौ पूरौ परसराम नषसिष व्यापक एक । चंदन दूजौ देषिइत तिथि मत आन अनेक ॥ १८ ॥ पद ॥ इति श्री तिथि लीला संपूर्णम् ॥

विषय—तिथियों पर लेखक ने अपना दार्शनिक मत प्रकट किया है ।

संख्या ७४ के. वार लीला, रचयिता—परसुराम (राजस्थान संभवतः), कागज—देशी, पत्र—७, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा । दाता—सेठ रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, जि०—मथुरा ।

आदि—श्री वार लीला लिषते ॥ राग गौड ॥ वार वार निज राम समारूं । रतन जनम भ्रम वाद न हारूं ॥ १ ॥ हित सौं श्रवण सुधारस पीऊं । निस दिन सुमरि सुमरी ॥ २ ॥ यह नित नेम प्रेम उर धारूं । निज जीवन रघुनाथ संभारूं ॥ ३ ॥ हरि सुष सिंधु अतिर तौ तिरिए । जौ सत संग सरण अनुसरिए ॥ ४ ॥ सत संगति सौं मिलि रहौं आदि अंत विश्राम ॥ जनमि जनमि याही रहौ जु सदा संभारूं राम ॥ ५ ॥ विश्राम ॥ १ ॥

अंत—समझि सनिश्चर तन मन माहीं । वाहरि निकसि गया सुष नाहीं ॥ १ ॥ दुष सुष सोक पोच संसारा । तातै निकसि रहै जो नारा ॥ २ ॥ वार वार तनु धरै न आवै । श्री गुरु शरण सदा सुष पावै ॥ ३ ॥ रहै निरंतर धरि वेसासा । परसराम अगम की आसा ॥ ४ ॥ राम अगम सौं गम करौ बूडौ जिन वेकाम । परसराम प्रभु राम विण नहीं कहूं विश्राम ॥ ५ ॥ विश्राम ॥ ८ ॥ ४० ॥ १० ॥ इति श्री वार लीला संपूर्णं ॥

विषय—सात वारों पर दार्शनिक विवेचन ।

संख्या ७४ यल. श्री वावनी लीला, रचयिता—परसुराम, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—१२ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—८६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा । दाता—सेठ रामगोपाल अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, जिला—मथुरा ।

आदि—श्री वावन लीला लिष्यते ॥ राग गौड़ ॥ श्री गुरु दीपक उर धरैं तव होय प्रकट प्रकास । अक्षर परचौ प्रेम करी ज्यौं सकल तिमिर को नास ॥ १ ॥ सत संगति संग अनुसरैं रहैं सदा निरभार ॥ वावन पढै वनाय करि, वदि सोइ आकार ॥ २ ॥ चौपाई ॥ वोत होई जो वैसा होई । वैसा वोपद और न कोई ॥ ३ ॥ वोस्यां प्यास कहो किन जाई । जो वै हरि सुषसिंधु उर न समाई ॥४॥ उद्दिम जो उर होई उजारा । तो उदित उभैं वर दुरैं अंधारा ॥५॥ उमगि संभारि उजागरि सोई । उनमें मिलि उनही सा होई ॥ ६ ॥ अंतर

अगम अगोचर देवा । अवगति अकल अनंत अभेवा ॥७॥ अविहर अजर अमर अविनासी । आनंद अचल मूल अषिलासी ॥ ८ ॥ × × × टट्टा टेव जो टेक न छूटै । तौ मिटै कुटै व जगत तैं तूटैं ॥ १ ॥ तौ कटै कष्ट भौ संकट न आवै । रहै निकट रटि सरणि समावै ॥ २ ॥ ठठा ठवकि करै मन पूरा । समझि सुठौर रहै जग झूठा ॥ ३ ॥ और ठौर ठीक परै न कोई । तौ हरि भजि ठोर ठिकाणू सोई ॥ ४ ॥ डडा डिग्या ठौर नहीं काई । होइ अडिग सुमिरण कर भाई ॥ ५ ॥ डिगडिग गये बहुत मित नाहीं । ग्रसै काल बूडे भौ मांहीं ॥ ६ ॥ ढढा ढहि ढूंढै ढिग ढोहै । राषि अढर ढरकाइ न षोवै ॥ ७ ॥ ढौरी ढरकि ढुकि रस पीवै । तौ ढवकि न मरै सहज सुष जीवै ॥ ८ ॥ णणां रवण कुवांणि न ठाणे । अविड पद उर पिछाणैं ॥ ९ ॥ भौ रिण जीत उरिण घर पावै । तौ वहु रिण ष्वारि रिणाई आवै ॥ १० ॥ जगत उरिण आरिणि में करि अगण अणी कौ पूर । अनुग सहित रावण हतै सोई राणौ रिण सूर ॥ ११ ॥ विश्राम ॥ ४ ॥

अंत—सोई जाणै सोई जाणै सारा । फूटै संगि मिलि वहै न भारा ॥ १ ॥ विद्या सोई पढ़ै उर आणै । ब्रह्म अगम ताकी गति जाणै ॥ २ ॥ पंडित होई तन मन सुधि पावैं इहां आइ कहां जाइ समावै ॥ ३ ॥ जाणै जो मन को विश्रामा । परसाजन सुमिरैं सोइ रामा ॥ ४ ॥ राम सभारैं सब तजैं आदि अंत फल मूल । परसराम जन ता सरणी जो निराकार निर्मूल ॥ ५ ॥ विश्राम ॥ ९ ॥ ८५ ॥ इति श्री वावनी लीला संपूर्णम् ॥

विषय—वर्णमाला के बावन अक्षरों में से प्रत्येक अक्षर पर कविता की गई है जिसमें ईश्वर ज्ञान का उपदेश दिया है ।

संख्या ७४ यम. विप्रमतीसी, रचयिता—परसुराम, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—११½ × ८½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२५, परिमाण (अनुष्टुप्)—९४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा । दाता—ला० रामगोपाल जी अग्रवाल, मोतीराम धर्मशाला, सादाबाद, मथुरा ।

आदि—श्री विप्र मतीसी लीला लिष्यते ॥ राग मारू॥ सबको सुणियोविप्रमतीसी । हरि विन वूढ़े नाव भरीसी ॥ १ ॥ बांमण छै पणि ब्रह्म न जाणै । घर में जगत पतिग्रह आणै ॥ २ ॥ जिन सिरजे ताकू न पिछाणै । करम भरम कू वैठि वषाणै ॥ ३ ॥ गहण अमावस था चर दूजा । सूत गया तग प्रोजन पूजा ॥ ४ ॥ प्रेत कनक मुष अन्तरिवासा । सती अऊत होम की आसा ॥ ५ ॥ कुल उत्तम कलिमांहि कहावै । फिरि फिरि मद्धम करम कमावै ॥ ६ ॥ आनदेव पूजैं सिर नावै । उंच जाति कुल छिन लावै ॥ ७ ॥ कर्म असौच उचिष्ठा षांही । मतै भिष्ट जमलोकहि जाहीं ॥ ८ ॥ सदा निमायल उदरहि भरही । महा प्रसाद की निंदा करही ॥ ९ ॥ दाई उपाई करि लियो न्हालैं । झूठ सांच करि लरिका पालैं ॥ १० ॥ सुत दारा की जूठणी षाही । हरि भगतनि का छोति कराही ॥ ११ ॥ न्हाई धोइ उत्तम होइ आवै । विष्णु भगत देष्या दुष पावै ॥ १२ ॥ स्वारथ लगि फिरैं वै काजै । राम सुण्यां पावक ज्यौं दाढ़ैं ॥ राम कृष्ण की छोड़ी आसा ॥ १४ ॥ पढ़ि गुणि भए

करम के दासा ।। १४ ।। सीषैं करम करम संग धावैं । जो बूझैं ताहि करम दृढ़ावै ।।१५।। निहकर्मी की निंद्या कीजै । कर्म करै ताकू मन दीजै ।। १६ ।। हृदय भगत भगवंतनि आवै । हिरण्याकुस को पंथ चलावै ।। १७ ।। देषौ मत्ति को जौ परकासा । बिनाभास करतम का वासा ।। १८ ।। ताकूं पूजा पाप न ऊडै । नाव सभरणी भौ मैं बूढै ।। १९ ।। पाप पुन्य के हाथां पासा । मारि जगत को कियो नासा ।। २० ।। राक्षस करणी देव कहावै । बाद करैं गोपालन गावै ।। २१ ।। ज्यौं वहनी कुल वहन कहावै । वा घर मंडण वा घरहि जरावैं ।। २२ ।। ज्यौ वइस्य ग्रह साह कहावै । भीतरि भेद मुसैं न लषावै ।। २३ ।। ऐसी विधि सुर विप्र भणीजै । भगति विमुष सुपचास मैं दीजै ।। २४ ।। अंध भए आयौ न संभारै । ऊंच नीच कहि कहि निज हारैं ।। २५ ।। ऊंच नीच मद्धिम सो वाणी । एकै पवन एक ही पाणी ।। २६ ।। एकै माटी एक कुम्हारा । एकै सवका सिरजन हारा ।। २७ ।। एक चाक सव चित्र वणाया । नाद मधि कैं विंद समाया ।। २८ ।। अंतरजामी विप्रक सूहा । ताहि विचारौ करि मन सूधा ।। २९ ।। व्यापक एक सकल को गोती । तौ नांव कहा धरि कीजै छोती ।। ३० ।। हंस देह तजि न्यारा होई । ताकी जाति कहौ धूं कोई ।। ३१ ।। विणस गया पाछेका कहिए । ऊंच नीच को मरम न लहिए ।। ३२ ।। नारी पुरिष किं बूढा वाला । तुरक कि हिंदू करौ सभाला ।। ३३ ।। स्याह सुपेत कि राता पीला । अवरण वरण की ताता सीला ।। ३४ ।। अगम अगोचर कहत न आवै । अपणै अपणै सहज समावै ।। ३५ ।। समझि न परै कही को मानै । परसादास होइ सोइ जानै ।।३६।। इति विप्रमतीसी सपूर्णम् शुभम् ।। १२ ।।

विषय—सांसारिक मनुष्यों के उलटे रिवाज, उलटे कर्म तथा उलटी भक्ति भावनाओं पर मार्मिक चोटें कर ज्ञानोपदेश किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—यह "विप्रमतीसी" पहिले भी विवृत हो चुकी है और कबीर कृत मानी गई है। इस बार यह परसुराम स्वामी की रचना के रूप में मिली है जो उन्हीं की रचनाओं के एक वृहद् हस्तलेख में है। मैंने इसका इसलिए विवरण लिया है कि इसका कबीर कृत "विप्रमतीसी" से मिलान किया जाकर ठीक बात मालूम कर ली जाय।

संख्या ७५. एकादशी महात्म्य भाषा, रचयिता—प्रवीनराय (श्री वलभद्रपुर), कागज—देशी, पत्र—१२३, आकार—$8\frac{1}{2} \times 5\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८८१ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० होतीलाल जी वैद्य, स्थान व डा०—श्री बलदेव, जि०—मथुरा।

आदि—श्री रेवती रमणो जयति ।। अथ श्री विष्णु एकादशी महात्म्य की भाषा प्रवीन राय कृत लिष्यते ।। दोहरा ।। जयति रेवती रमण प्रभु दवन दुष्ट दुष ताप । विघन हरन असरणं सरन जग में उदित प्रताप ।। १ ।। ध्यावत जन आवत सरण जिनै देत नव निद्धि । अव सवराय प्रवीन कै करौ मनोरथ सिद्धि ।। २ ।। पंडा श्री बलदेव के शौभरि रिषि के अंस । तिनमें परम उदारकुल जगन्नाथ को वंस ।। ३ ।। भये प्रतापी परम सव

जगन्नाथ के नंद । पंडा श्री हरिसुष अधिक जिनमें भारि विलंद ।।४।। तीनि पुत्र जिनके उदित सीलवंत जसवंत ।। लघु हरनारायणरु वलदेव दास वलवंत ।।५।। सवतें बड़े उदार मन दया कृष्ण गुण खानि । जग कौ परमारथ करत वैदिक जोतिस जानि ।। ६ ।। × × × जिनि मोंसो इक दिन कहि सहज बात सुषमानि । केवल परमारथहि कौ स्वारथ जामैं जानि ।। १२ ।। एकदसी महात्म्य की भाषा रचौ सहेत । मिश्र सुजीवाराम के कथा वाँचिवे हेत ।।१३।। × × × संवत सत अष्टादसहि इक्यासी रवि दीन । कार्तिक सुक्का सप्तमी भाषा स्वतः प्रवीन ।।१५ ।। × × युधिष्ठिर उवाच ।। हे श्री कृष्ण सदा सुषकारी । तुमरे वचन अमृत सहसारी । सित पषि वैसाषी अभिरामा । एकदसी मोहनी नामा ।। १ ।। ताकौ परम महात्म्य गायौ । सो मैं सुनि अति आनंद पायौ ।। जेष्ठमास पषि कृष्ण सुहाये । तामधि एकादसि जो आवै ।। २ ।। ताकौ परम महातम गावौ । विधि विधान सव मोहि वतावो ।। कहा नाम किमि देव मनावै । कैसो पुन्य कहा फल पावै ।।३।। कहिये कथा ओघ अघहारी । हे पुरुषोत्तम कृष्ण मुरारी ।। श्री भगवान उवाच ।। भली कथा तैं पूंछी मोही । नृप को जग पुनीत सम तोही ।।४।। जेष्ठ प्रथम ही पक्ष मझारी । अपरा नाम एकादसि भारी ।। महापाप उपपापन षोवै । ब्रह्म हत्यादिक ओघनि धोवै ।। ५ ।। जो नर अपरा सेवै कोई । प्रापति जग प्रसिद्धिता होई ।। × × × यामैं मन संदेह न करनो । यह व्रत नृपति महा अघहरनौ । जो नर पढत सुनत हरषावै । सत गोदान पुन्य फल पावै ।। २५ ।। कृष्ण युधिष्ठिर सों कह दीनी । सु मैं जथामति भाषा कीनी ।। दोहरा ।। कथा ब्रह्मांड पुरान की, कहि व्यास मुनि साषि । कवि प्रवीन भाषा करी, दया कृष्ण उर राषि ।।२६।। इति श्री ब्रह्मांड पुराणांतरगत जेष्ठ कृष्णा अपरानाम एकादसी महात्म्य प्रवीनराय कृत समाप्त ।। १३ ।। × × × दोहा ।। भविष्योत्तरमु पुरान में कहि व्यास मुनि साषि । कवि प्रवीन भाषा करी दया कृष्ण उर राषि ।। ४१ ।। सवैय्या ।। सीलता सत्य सवीलता साहस सुंदरता सुघराइ निकेत हैं ।। ओज उदारता माधुरिता अति धीरज धर्म सुजान सचेत हैं ।। श्री वलदेव जू सौं सदा प्रीति अनीति कौ त्याग सुनीति ही लेत हैं ।। ऐसे प्रवीन गुनीन के गाहक श्री दया कृष्ण सवै सुष देत है ।। ४२ ।। कवित्त ।। मोज मन दिसि तैं घटा लौं उमडति देषि सुकवि प्रवीनउ के हिय हुलसति हैं ।। धाम के हुरवा अपार जस घोर सालि भिक्षुकनि ऊपर घुमडि वरसाते हैं ।। दान तेज तड़िता तैं अरक जवा से समदर वर दुर्ज्जन दरिद्र जरि जाते हैं ।। पंडा हर सुष सुत बड़भागी दया कृष्ण तेरे कर वारि दससान दरसाते हैं ।। २ ।। इति श्री भविष्योत्तर पुराणांतरगत कार्तिक मासे शुक्ल पक्षे देव प्रवोधिनी नाम एकादशी महात्म्य भाषा प्रवीन राय कृत समाप्तः ।। २४ ।। शुभ मस्तु ।। कल्यान रस्तु ।। संवत १८८१ ।। मिति माघ कृष्ण पंचमी चन्द्रवार कौ समाप्त भई ।। दोहा ।। मिश्र भारति तैं पढ़ी वृंदा विपिन मंझार । भाषा रची प्रवीन कवि निजमति के अनुसार ।। १ ।। श्री

विषय—संस्कृत के एकादशी माहात्म्य की भाषा में कविता बद्ध रचना ।

विशेष ज्ञातव्य—एकादशी माहात्म्य श्री पं० होतीलाल जी वैद्य, श्री बल्देव जी के पास मिली है । इसके रचनेवाले प्रवीन राय हैं जिन्होंने पंडा श्री दयाकृष्ण के कहने पर इसको रचा है । ग्रंथ के पढ़ने से इतना और ज्ञात होता है कि प्रवीनराय ने एकादशी

माहात्म्य संस्कृत में किसी मिश्र भारती से वृन्दावन में पढ़ा था। इसके अलावा लेखक के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं हुआ।

संख्या ७६. मदनाष्टक, रचयिता—पठान मिश्र, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चतुर्वेदी उमराव सिंह जी पाण्डेय 'विशारद', टाईपिस्ट, कलेक्टरी, कचहरी, मैनपुरी।

आदि—॥ अथ पठान मिश्र कृत श्लोक लिष्यते ॥ निसि सरदनिसीथे चाँद की रोसनाई। सघन वन निकुंजे कान्ह वंसी वजाई ॥ सुगति पति सुनिद्रा सा सांद्रयाँ छोड़ि भागी। मदन सिरसि भूयः क्यावला आगि लागी ॥ १ ॥ हर नयन हुतास ज्वालथा जो जलाया। रतिनयन जलोघैः षाक बाकी वहाया। तदपि दहति चित्तं मांम को क्यौं करौंगी ॥ मदन० ॥ २ ॥ मम षल वचनीयं लाल ज्वल्ला वदी सों ॥ रमति रहसि वाला या अला पून की सों ॥ मम मनु चित्त रंजन प्रेम तासों नु रागी ॥ मदन० ॥ ३ ॥ तव वदनम पस्ये ब्रह्म की चोप वाढ़ी ॥ मुष कमलं विभूत्यै चंद्र तै कांति बाढ़ी ॥ परम वदन रंभा देषतें मोहि भागी ॥ मदन० ॥ ४ ॥ मम मनसि नितांतं आय कै वासुकीया ॥ तन मन धन मेरा मान सों छीनि लीया ॥ इति चतुर मृगाछी देषतें मोहि भागी ॥ मदन० ॥ ५ ॥

अंत—हिम रितु रति धां मैं रति लेटी अकेली ॥ उठति विरह ज्वाला क्या करौंगी सहेली ॥ चक्रत नयन वाला निद्रयात्यक्त आगी ॥ मदन० ॥ ६ ॥ नलिन कुमुद धौठे देष आसमान छाया ॥ पथिक जन विहीने जुलम केता जनाया ॥ इति बदति पठानी जंग लौं बीच भागी ॥ मदन० ॥ ७ ॥ तरुनि जुवति जोहे देषि बूढ़ा भुलाना ॥ मधुकर दिव सादौ तूं भया भी देवाना ॥ रुचिर राविकलोयं जो हुवा दुष भागी ॥ मदन० ॥ ८ ॥ त्रिभुवन पति भार्ज्जा ताहि क्यौं तूं लपाया ॥ सकल कुल विनासी नास क्यौं ना वचाया ॥ इति वदति सुकांता रावना मंद भागी ॥ मदन सिरसि भूयः क्या वला आगि लागि ॥९॥ पूर्ण प्रतिलिपि)

विषय—विरह श्रृंगार वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त अष्टक की नकल अविकल रूप से कर दी गई है।

संख्या ७७ ए. ज्ञान सतसई, रचयिता—प्रभुदयाल (सिरसागंज), कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० जुगल किशोर जी, स्थान व पो०—जगसौरा, जि०—इटावा।

आदि—मित्र कुटिल अरु क्रूर त्रिय, सुत विभचारी जोइ। कहा सार संसार मैं, आयु विताई रोइ ॥ सुजन मित्र अरु चतुरत्रय, सुत सपूत जो तात। भाग्य तुल्य प्रभु की कृपा, तव ये सुष सरसात ॥ विनु रंचक अघ के कियै, दूषण लगै न गात। धर्मपुत्र के झूठ जिमि, गली अंगुली तात ॥ जैसे पावक किरच गिनि, ऐसें ही पाप विचार। लगत नैंक

पुनि वढ़त बहु, भल अनभल जरि छार ॥ चंदन और वमूर कछु, जिन उर नाहिं निचार । अग्नि अभलहू भक्ष ही, ऐसें ही अघ निरधार । धारि सुजन सिर दोखिता, कुटिल हृदय हरखात । सुचलन अगन लागही, मूरिष फिरि पछितात ॥ ईश्वर के सब जीव हैं, इन्हैं न मारिये तात । काम क्रोध मद भंजि करि, मुदित रहउ दिन रात ॥ कामिहि दीजै ज्ञान गुण, गुनि जिय पछितात । हमहुँ हलाहल होंहिंगे, जिमि पयरस अहिगात ॥

मध्य—सुहृद मित्र अरु दीन की, दीन्हीं कानि विसार । मन भावत सोई करत नर, भल अनभलन विचार ॥ साधु संत लषि जरि मरैं, नहीं दान सनमान । गनिकन मुष जोवत फिरहिं, अधरामृत करि पान ॥ कही सुनी मुष और की, नहीं मानिबे जोग । निकसित वात असत्य जब, बुरे कहैं सब लोग ॥ नहिं जानत द्विज साधु कहँ, परमारथ परमोध । निंद्रा करि तनु गारहीं, मूरिष निपट अबोध ॥ जो अति सरल सुभाव चित, हिय विच कपट न स्यान । तिन कहँ दूखण हारजो, मूरिष अंति अज्ञान ॥ सरल चालिवो जगत में, अति कौ भलौ न होइ । जिमि तरु सीधे कटि गये, टेढ़िन परिहर सोइ ॥ पर स्वारत तनु परिहरहिं, सहत कस्ट परहेत । तिनकौ जीवन धन्य है, सबही कौं सुष देत ॥

अंत—पुकँ कहत पुल के सुतन, ज्ञान विराग विचार । न्यकहि निरासा इहु भजे काम क्रोध वट मार ॥ सीकह तैसी जन लगै, जगे पाप समुदाइ । ताकहँ तेता राज हुइ भजे चले बिसि आइ ॥ रा कहते राचे हृदइ, ज्ञान विराग विवेक । मके कहत मुख मोरि करि, भले काम तजि टेक ॥ क्रीट मुकुट सिर राजहीं, उर मौतिन की माल । स्याम वरण छबि हृदय धरि, भजिए दसरथ लाल ॥ ज्ञान सतसई सरस सुभ, रची सुखद संसार । सज्जन जन पढ़ि हैं मुदित, छमि मम दोस अपार ॥ ज्ञान सतसही मोदमन, पढ़हिं जे चित्त दिढ़ाइ । भव दुर्घट वंकट विकट, ता विच नाहिं ठगाइ ॥ हाथ जोरि प्रणवहुँ सवहि, कवि पंडित समुदाय । प्रभुदयाल की भूल छमि, लीजै सुद्ध बनाय ॥ मारग सिर सुदि पंचमी, चंद्रवार शुभ ठीक । करी समापति सतसई, ललित चित्त रमनीक ॥ इति श्री ज्ञान सतसई ॥ प्रभूदाल कृत ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—ज्ञानोपदेश तथा नीति संबंधी दोहों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—अनुसंधान से पता चला है कि प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता प्रभुदयाल जाति के गुलहरे महाजन (कलार) थे। उनका रचनाकाल प्रायः बीसवीं शताब्दी के आदि में पड़ता है। वे कवि और गायक दोनों ही थे। उनके बनाए हुए कवित्त और सवैया बहुधा भाट लोगों को भी कंठस्थ हो गये थे। उन्होंने श्रृंगार, हास्य आदि प्रायः सभी रसों पर कुछ न कुछ रचना की है। ये समाज की गतिविधि के अनुरूप अपने को बदला करते थे। जब हाथरस की नौटंकी का जोर बढ़ा तो उसी काल में नल-दमयन्ती नामक एक नौटंकी का ग्रंथ लिखा। यह अपनी भाषा बड़ी ही सरल और सुबोध रखते थे। प्रस्तुत ग्रंथ में एक ही छंद, 'दोहे' का प्रयोग किया गया है। इसका रचनाकाल लिखा तो है; परन्तु संवत् का वर्णन नहीं किया है।

संख्या ७७ बी. ज्ञान सतसई, रचयिता—प्रभुदयाल (सिरसागंज), कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बैजनाथ जी, स्थान व डा०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा।

आदि—......चन्दन और बमूर कछु, जिन उरनाहिं विचार। अग्नि अभक्षहु भक्ष ही, ऐसें ही अघ निरधार ॥ धारि सुजन सिर दोषिता, कुटिल हृदय हरषात। सुचलन अगन ही लागहीं, मूरिख फिरि पछितात ॥ ईस्वर के सब जीव हैं, इन्हैं न मारिये तात। काम क्रोध मद भंजि करि, मुदित रहउ दिन रात ॥ कामिहि दीजै ज्ञान गुण, गुण गुनि जिय पछितात। हमहुँ हलाहल होंहिंगे, जिमि पयरस अहिगात ॥ भूलि ज्ञान की बात कछु, इनहिंन कहिये तात। कामी क्रोधी कुटिल सठ, चुगिल कुचाली गात ॥ जे विखई जड़ जीव जग, तिनहिं देत जो ज्ञान। अति अजान भए ज्ञान तजि, मूरिष तजहिन बान ॥ असन बसन दै संत कौं, यथाशक्ति चित ल्याइ। सेवन करि रघुवीर पद, भव संकट मिटि जाइ ॥ राधारमण गुपाल भजि, परिहरि सोच सरीर। सोच विमोचन दुख हरण, सब समरथ जदुवीर ॥ पिता बंधु अरु सुहृद हित, तजहु न कबहूँ तात। वचन पालि सिरधारि सिख, मुदित रहहु दिन रात ॥ अपने हित के हेत पर, जीवहि करत विनास। रौरव नर्कहिं जाहिं खल, पावहिं दारूण त्रास ॥ जे जड़ भक्षहिं जीव कहँ, करि भंजन वे पीर। अंग भंग लहि अवतरहिं, रोवत होत अधीर ॥ क्रीट मुकुट सिर राजही, उर मौतिन की माल। स्याम वरण छबि हृदय धरि, भजिये दसरथ लाल ॥ ज्ञान सतसही सरस सुभ, रची सुखद संसार। सज्जन जन पढ़िहैं मुदित, छमि मम दोष अपार ॥ ज्ञान सतसई मोदमन, पढ़हिं जे चित्त दृढ़ाय। भव दुर्घट वंकट विकट, ता विच नाहिं ठगाय ॥ हाथ जोरि प्रणवहुँ सबहिं, कवि पंडित समुदाय। प्रभूद्याल की भूल छमि, लीजै सुद्ध बनाय ॥ मारग सिर सुभ पंचिमी, चंद्रवार सुभ ठीक। करी समापति सतसई, ललित चित्त रमनीक ॥ इति श्री ज्ञान सतसई ॥ ॥ प्रभुद्याल कृत ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—ज्ञान और भक्ति संबंधी कुछ दोहों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ के अंत में 'मारग सिर सुदि पंचमी चन्द्रवार' ही दिया है, संवत् नहीं।

संख्या ७७ सी. ज्ञान सतसई, रचयिता—प्रभुदयाल (सिरसागंज, मैनपुरी), कागज—देशी, पत्र—३, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी, स्थान—बनकटी, डा०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा।

आदि—चंदन और बमूर कछु, जिन उर नाहिं विचार। अग्नि अभक्षहु भक्ष ही, ऐसे अघ निरधार ॥ धारि सुजन सिर दोखिता, कुटिल हृदय हरखात। सुचलन अगन ही लागहीं, मूरिष फिरि पछितात ॥ ईस्वर के सब जीव हैं, इन्हैं न मारिए तात। काम क्रोध मद भंजि करि, मुदित रहउ दिन रात ॥ कामिहि दीजै ज्ञानगुण, गुण गुनि जिय पछितात।

हमहुँ हलाहल होंहिगे, जिमि पयरस अहिगात ॥ भूलि ज्ञान की बात कछु, इनहिं न कहिये तात ॥ कामी क्रोधी कुटिल सठ, चुगिल कुचाली गात ॥ जे विखई जड़ जीव जग, तिनहिं देत जो ज्ञान। अति अज्ञान भये ज्ञान तजि, मूरषि तजहि न बान ॥ कोटि सत्रु कह करि सकैं, जिन घर पति वृत नारि। काम कोध मद मोह तजि, लहत अछत फल चारि ॥

मध्य—बुधि विद्या गुण ज्ञान सुचि, नेम धर्म छुटि जात। जिन उर बसहि अनंग अहि, जियत नर्क बिच जात ॥ लोभ मोह मत्सर मदन, तजियै कठिन कराल। ज्ञानदीप प्रगटाइ उर, भजियै मदन गुपाल ॥ संगति करिये सुजन संग, नित प्रति बढ़इ अनंद। शुक्ल पक्ष लागत बढ़इ, जिमि द्वितीया कर चन्द ॥ कुटिल मनुज संगति कियैं, गुण अवगुण हुइ जात। जैसे सरिता सिंधु मिलि सोचि समुझि पछितात ॥ गनिकन संग तन खीसिकिय, धन तजि लगी न देर। दीन भए डोलत फिरैं, ध्रग जीवन तिन केर ॥ मधुर वचन दृग सील लखि, सत्रु मित्रहू होइ। चुम्बक अगलगि लोह जिमि, मिलत कठिनता खोइ ॥

अंत—क्रीट मुकुट सिर राजही, उर मोतिन की माल। स्याम वरण छवि हृदय धरि, भजिए दसरथ लाल ॥ ज्ञान सतसई सरस सुभ, रची सुखद संसार। सज्जन जन पढ़िहै मुदित, छमि मम दोष अपार ॥ ज्ञान सतसई मोदमन, पढ़इ जो चित्त दृढ़ाइ। भव दुर्वंट बंकट विकट, ताविच नांहिं ठगाइ ॥ हाथ जोरि प्रणवहु सबहि, कवि पंडित समुदाइ। प्रभुद्याल की भूल छमि, लीजै सुद्ध बनाइ ॥ मारग सिर सुदि पंचमी, चंद्रवार शुभ ठीक। करी समापति सतसई, ललित चित्त रमनीक ॥ इति श्री ज्ञान सतसई प्रभूद्याल ॥ कृत समाप्तम् शुभं ॥

विषय—ज्ञान संबंधी दोहों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ का दूसरा नाम दोहावली है। इसके रचयिता प्रभुदयाल आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवियों में से थे। ग्रंथ किस संवत् में रचा गया इसका पता नहीं चलता। केवल महीना, पक्ष और तिथि एवं वार का उल्लेख है।

संख्या ७७ डी. कवित्त विरह, रचयिता—प्रभुदयाल (सिरसागंज, मैनपुरी), कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बैजनाथ जी शर्मा, स्थान व डा०—जसवंत नगर, इटावा।

आदि—॥ कवित्त विरह ॥ तजि है ग्रहवास बनवास ही उपवास करैं, धारैं वृत मौन औ भवूति हू रमाइ है। पहिरैं गल सेली अलबेली भुजमेली हम, पूरैं धुनि संगी औ अलखहू जगाइ है। लहै करमाल वृज बाल प्रभूद्याल हारि, एक चित्त धारि सार गोविंद गुण गाइ है। एक ही अँदेस ऊधौ जाहि कहौ कृष्ण जी सौं, इतनी वृज बाला मृगछाला कह पाइ है ॥ १ ॥ जमुना जल लै ग्रह कौ डगरी न जरी मृदु मूरति की धजरी। बरही सिर पक्ष रहे लसि कैं उर मोहन माल रही सजिरी। प्रभूद्याल चितैमन मोहि लियो मन मोहन रूप गयो रमिरी। भृकुटी धनु ऊपर नैंन धरे सर विधि कै अंग कियो झिंझरी ॥ २ ॥

अंत—तुम जाहि बटोही कहौ हरि सौं मघवा विरहा वपुले चढ़ि धायो। वरसैं दृग स्याम महाधुनि सैं निसि वासर तासु को अंत न पायो। स्वाँस समीर प्रचंड चलै प्रभू

ग्वाल विना हरि सोर मचायो। जलदी प्रभु दौरि गुहारि लगौ मघवा बृज व्याहत फेरि वहायो ॥ तुम इन्द्र को जाय विध्वंस कियो गिरि थापि कैं तासु कौ भोजन खायो। अवधारि हिये पिछली रिस कौं मघवा विरहावनि कोप जनायो। घन नैनन नीर गिरैं ऽ.भूग्वाल विथातन गर्जि महातम छायो। जलदी प्रभु दौरि गुहार लगौ मघवा बृज व्याहत फेरि वहायो ॥ विन देखहि चैन पड़े न हमैं निशिवासर नाम रटैं गुणगाई। कबसें विछुरे सुधि हू न लई फिरि भेजो सँदेस न पाती पठाई। प्रभूग्वाल कहैं सो कहा करिये अस मूरिष मित्र महा दुखदाई। दमदै जिय कौं अपनाय लियो अव ऐसी धरी उर में निठुराई ॥ प्रीति की रीति हती जब तो कर जोरि निहोरि कैं आवत धाई। अव तौ वह वानि निदान तजी जो धरी प्रभुग्वाल महा कठिनाई। मूरिख मित्र सों जोर कहा दिनहूँ दिन प्रीति की रीति घटाई। दमदै कर मित्र लियो मन मोर भये चित चोर न देत दिखाई ॥ इति विरह कवित्त ॥

विषय—विरह संबंधी कुछ छंदों का संग्रह।

संख्या ७८. आत्म विचार (प्रकाश), रचयिता—रघुवर दास, पत्र—३५, आकार—१०½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—७३३, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाल—१८०३ वि०, लिपिकाल—१८८० वि०, प्राप्तिस्थान—ठा० रामचरण सिंह, स्थान—विलारा, डा०—विसावर, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गुरू विंद जी सहाय ॥ अथ आत्म विचार ग्रंथ लिप्यते ॥ मंगला चरन के दो० ॥ तीन सु अवस्था जड़ है चैतन्य तासौ होइ। नमो नमो तेहि ब्रह्म कौ विघन न व्यापै कोई ॥ १ ॥ गुरू गोविंद सिरु नाइके सव संतन प्रणाम। मन वच काय करत हौं देहु मंगल सुषधाम ॥ २ ॥ चौपा० ॥ अहंममत्त जन्य कीन्हो दूर। हिरदै ग्रंथ मरम नर मूर ॥ ऊंच नीच भेद कछु नाहीं। जीवन मुक्त विचरै जगमांहीं ॥ ३ ॥ आपरु ब्रह्म एक करि जान्यो। सवद ब्रह्म उर निहचै आनौ ॥ गुरू कौ नित्य प्रणाम करीजै। मन वच काय विघन सव छीजै ॥ ४ ॥ दोहा ॥ गुरु गोविंद संतन विना, कछू न सूझये सोइ। कृपा करत हैं दीन पर सव कारज सिद्ध होय ॥ ५ ॥ श्रुति स्मृति सिद्धांत कौं सबको मतो विचार। भिन्न भिन्न करि कहत हौं निश्चै वुद्धि निहार ॥ ८ ॥ प्रथमहि या ग्रंथ में अनुवंध चारि विचारि ॥ विषै प्रयोजन संबंध ये चतुर्थ ममोष्य निज सार ॥ ९ ॥

अंत—अथ ग्रंथ समाप्त करिय है ॥ दोहा ॥ मोमे कछु बुद्धि नहीं वरन्यौ ग्रंथ पुनि तास ॥ गुरू गोविंद संतन दया कह्यौ बुद्धि विलास ॥१०॥ × × × वेदांत के श्रवण करि भयो आत्मा ज्ञान ॥ जब जान्यौ हौं ब्रह्म हौं गयो मिलन अभिमान ॥१४॥ × × × रघुवर दास कहत है सुनियौ संत सुजान। मैं कता उर मानिहै सो कवि मूढ़ अजान ॥ १६ ॥ × × × मास भादव जानिये सुकल पक्ष निरधार। तादिन ग्रंथ पूरण भयौ द्वितिये सोमवार ॥ १८ ॥ संवत अठारसह गुण हन्ते सव संतन विश्राम। भूल चूक सब वकसियौ वारवार प्रणाम ॥ १९ ॥ इति श्री आत्म प्रकाश ग्रंथ शिष्य अनभै स्वरूप निरूपण रघुवरदास कथ्यते षष्टमो षंड संपूर्ण समाप्त ॥ ६ ॥ शुभ मस्तु कल्याणमस्तु ॥ श्री जानकी वल्लभाय नमः ॥

विषय—१–प्रथम खंड गुरू शिष्य संवाद, पत्र १—५ तक।
२–द्वितीय खंड श्रवणषट निरूपण, ,, ६—९ तक।
३–तृ० खंड पंचकोश त्रय अवस्था, ,, ९—१६ तक।
४–च० खंड समष्टि विष्टि निध्यासननिरूपण, ,, १६—२२ तक।
५–पं० खंड साक्षात् स्वरूप निरूपण, ,, २२—३० तक।
६–ष० खंड शिष्य अनभै स्वरूप निरूपण, ,, ३०—३५ तक।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ वेदांत विषय पर एक उच्चकोटि की रचना है। यह दोहा चौपाइयों में है। 'सुंदर विलास' के साथ, जिसका लिपिकाल संवत् १८८० है, यह एक हस्तलेख में है। अतः इसका भी लिपिकाल वही समझना चाहिए।

संख्या ७९. सीधान्त पाँच मात्रा, रचयिता—राघवानन्द स्वामी, कागज—बाँसी, पत्र—८, आकार—६ X ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१५, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—महात्मा रामशरणदास जी, हनुमान जी मन्दिर, दानघाटी, गोवर्धन, मथुरा।

आदि—श्रीमते रामानुजाये नमः॥ ॐ सत सब्द करी सतजुग व्रता॥ हसता वीणा सतगुरु करता॥ सतगुरू करते बुध अपार॥ कंठ सरस्वती धरो समार॥ चन्द्र सुरज जमी असमान॥ तारा मण्डल भये प्रकास॥ पवन पानी धरे सो जुग जुग जीव॥ जोगी आस जीह भारी॥ द्रो द्री कल जीतो जोगी राषो हाथ॥ ननतास काये कही हाथ॥ देष्या चाह जग व्योहार॥ आवुन जोगी यह झनकार॥ सुन गगन मध धुजा फराई॥ पुछो सवद भयो प्रकासा॥ सुन लो सीधो सब्द को बासा॥ सनक सनन्दन सनत्कुमार॥ जोग चलायो अपरमपार॥ प्रेम सुन सनकादिक चारू गुरू भाई॥ डंडकमंडल योग चलायो॥ योग चलायो लोका पार। सतगुरु सादि कर मता सादु॥ योगेसुर मनम धारल धीर। मुज को आडवंद वजर कोपीन॥ ईस विधि जोगी इन्द्रीजीत। मुज को जनेऊ बनो लर तीन॥ काया प्रवीन वीस वारा पाती। नदुवा दस तीलक छाया। राज देषत रूप सकल भय भाजै तुलसी की माला। हाथ सुमरणी रोम रोम योगे सुर वरणी कान श्रवणी जंत्र टेढ़ी मुद्रा योगे सुर कंकालन झंपे नीद्रा सीरपर चोटी जटा बधाये॥ ये बीध योगी भभूत चढ़ाये॥ भभुत रमय अंग अपार॥ कटन योस कर सींगार॥ अनंत षोजी जीव वादी मरे अहंकारी के पीड पड़ सतगुरू मीले तो दुष दालीद्र दुर करे ज्ञान गोस्टी की वात कवीर गोरष की वीती सेली सीगीनाद कान की मुद्रा करवीरन (? कबीर) गोरष कु जीतो योगी जंगम से वड़ा सन्यासी दुखे सईन वैराग सरस है जोन जानसे वसंत जस असथानी मैदानी मंकानी है सलानी गाछा वाछा न दीनी वासा ताल वावड़ी कुवा वाछा आसन कर श्री सम्प्रदाचारी श्री गुरू रामानन्द जी नीमानंद जी माधवाचारी विष्णु स्वामी चार संप्रदा वामन दुवारा भेष के उपर भेष षेचरी करतो गुरु की आण सुगरा होय तो सबद कु माने नुगरा होय तो उपर चाल चाल तो षट दरसन मैं मो काला श्री राघवानन्द स्वामी उचरते

श्री रामानन्द स्वामी सुनंते ॥ ई श्री राघवानन्द स्वामी की सीधांत पाच मात्रा संपुरणं ॥ ॐ अवधू कोन् के पुत्र कोन के नाती कोन संग ले वढ़ो पाती कोन सवद परसादी पावो कोन सुमर बैकुठ जावो || ॐ अवधु ब्रह्मा के पुत्र विष्णु के नाती साद संगत ले बढ़ो पाती || गुरू सबद परसादी पाउरा मसमरी वैकुंठा जाउ || इति श्री गुरू रामानुज स्वामी का परसादी वीज मंत्र सम्पुरणं ॥ ॐ अवदु कोन को षाल कोन के कंधे अलष पुरस वैठे आराधे आपनी षाल को मरम न पाया कोन सवद सुवांग मर नीचवी छाई ॐ अवदु म्रग की षाल ब्रह्मा के काधे बाग की षाल माहादेव के काधे अलष पुरस वेठे आराधे अपनी षाल मषा षरमाई सतगुरू के सवद से वांग मरनी चवी छाई ॥ आठवा गंमर को मगछाला तापर वेठे त्रीकुटी वाला त्रीकुटी वाला धर ध्यान अलष पुरस को सुमरना षंड षंडतार भर भरतार माथ वज्र को टोप ईतनासी का चलाया जब जोगी अवधुत कहाया मृगछाल मुखनासका नेत्र सीग चारू षुरी पुछ अखंड पढ़ मंत्र म्रगछाला वीछा वसो जोगी × × ×

विषय—स्वामी राघवानंद जी के पाँच आध्यात्मिक सिद्धान्तों का वर्णन और गुरु रामानुज स्वामी का परसादी वीज मंत्र।

विशेष ज्ञातव्य—इन साधु जी के पास संस्कृत के निम्नलिखित ग्रंथ भी हैं:—१—वैकुंठ गद्य, २—लक्ष्मण कवच (सुदर्शन संहिता से), ३—रंग गद्य (रामानुजकृत), ४—विष्णुशत नाम (नारदकृत), ५—शरणागत गद्य (रामानुज कृत)। प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता स्वामी राघवानन्द प्रतीत होते हैं। सन्त सम्प्रदाय के और पुरुषों के भी नाम इसमें आए हैं। उनसे कुछ तात्पर्य निकाला जा सके तो ग्रंथ की विशेषता बढ़ेगी। गोवर्द्धन की दानघाटी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। कहा जाता है, भगवान कृष्ण ने गोपियों से इसी स्थान पर दधि-दान लिया था। यहाँ गोवर्द्धन की परिक्रमा १४ मील की लोग प्रारंभ करते हैं। पास ही में एक हनुमान जी का मंदिर है। यहाँ पहिले कोई रामानुज सम्प्रदाय के विद्वान साधु रह चुके हैं। अब उनका एक शिष्य रहता है जो विशेष पढ़ा लिखा भी नहीं है। भिक्षा वृत्ति पर निर्वाह करता है। यहाँ कहा जाता है और भी हस्तलिखित ग्रंथ थे, पर वे सब भरतपुर राज्य के किसी मंदिर में चले गए हैं।

संख्या ८० ए. प्रभु सुजस पचीसी, रचयिता—रामदास, कागज—देशी, पत्र—८, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मवासी लाल जी, स्थान—सड़ामई, डा०—फिरोजाबाद, जि०—आगरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ।। अथ प्रभु सुजस पचीसी लिष्यते || करि जतनन हारे गोप हा हा पुकारे, सरन हरि हमारे राधिका प्रिय प्यारे। दुसह दुःख निवारौ दीन ह्वै वैन भाषे, निजुजन हितकारी नाग तै नंद राषे ॥ १ ॥ जिहि सरवर वर्षा सात सात सौं छाय भारी, तदपि रिषि सभागे की षुली नाहिं तारी। तिय रत नहि आगैं राषि सद्भाव कीन्हौं, रतिपति अपराधी कौं अभै दान दीन्हौं ॥ २ ॥ निजु सुत कृत संका हेत ब्रह्मा न पायौ, सदय हृदय मध्ये राधिका नाह ध्यायौ। सुपद सुजन काजै हंस रूपी सिधायौ,

चित विषय विवेकै ज्ञान गाढ़ौ गहायौ ॥ ३ ॥ गिरि सिषिर ढहायौ ज्वाल माला जरायौ, तन बहुत न ताकौ ताप नाहीं सतायौ । नरहरि धरि रूपै षम्भ कौ फारि गाजै, कनिक कसिप मारयो दास प्रह्लाद काजै ॥ ४ ॥

अंत—अगनित अघ कीन्हें झूंठिं सों आयुगारी । सपनेहु नहिं धायौ स्याम स्यामा विहारी ॥ मदन समय धोषै सूनु के स्वामि जापी परपदहि पठायौ जो अजा मेल पापी ॥ २२ ॥ विहसत मुष देषै रूप सौं डीठ लागी । मलय जतन लेप्यो कूवरी प्रीति पागी ॥ पट झटकत ताकें चित्त की वृत्ति चीन्हीं । अभिलिषत वरै दै रूप की रासि कीन्हीं ॥ २३ ॥ विजय सुत वधू के गर्भ में अर्भ राजै । तिहि दहन निमित्त द्रोन कौ सून साजै । कुल विनसन काजै ब्रह्म अस्त्रै पठायो । हरि धरि जन लाजैं चक्र सौं सो चलायौ ॥ २४ ॥ सुनत श्रवन कौने यौन भायौ सुहायौ । जन मन मुदकारी मालिनी छंद गायो ॥ हृदय हर्षि आज्ञा ईस की सीस लीन्हीं । प्रभु सुजस पचीसी राम के दास कीन्हीं ॥ २५ ॥ इति श्री रामदास विरचिते प्रभु सुजस ॥ पच्चीसी ग्रंथ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—विविध उदाहरणों द्वारा भगवान् के विविध सुयश वर्णन ।

संख्या ८० बी. प्रभु सुजस पचीसी, रचयिता—रामदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६$\frac{1}{2}$ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बच्चूलाल जी अध्यापक, स्थान व डा०—कुरावली, जि०—मैनपुरी ।

आदि—अथ प्रभु सुजस पचीसी लिख्यते ॥ करि जतन निहारे, गोप हा हा पुकारे ॥ सरन हरि हमारे, राधिका पीय प्यारे ॥ दुसह दुःख निवारो दीन है वैन भाषै ॥ निजजन हितकारी नाग गे नंद राषे ॥ १ ॥ जिहि सरवर वरसा सात सों छाय भारी, तदपि रिषि सभागे की खुली नाहिं तारी ॥ तिपरत नहिं आगे राषि सद्भाव कीनौ, रति पति अपराधी की उभय दान दीनौ ॥ २ ॥ निज सुत कृत संका हेत वृह्मा न पायौ, सदय हृदय मध्य राधिका नाहिं ध्यायौ ॥ सुपद सुजन काजै हंस रूपी ध्यायो, चित्त विषय विवेक ज्ञान गा ढीग हरयो ॥ ३ ॥ गिर सिषि रिढि हायौ ज्वाल माला जलाओ, तन बहुत ताको ताप नहीं सतायो ॥ नर हरि धरि रूपी खंभ को फरि गाजै, कनक कसिप मान्यो दास प्रहलाद कीजैं ॥ ४ ॥ निरत करत विचारे विप्र राजा प्रवीनै, दिन सकल विताते पाठ पूजाहि कीनै ॥ चल दरसन दीन्है संग लै भक्ति भारी, जनमन अभिलाष सिद्धि कारी मुरारी ॥ ५ ॥ द्रुपद नृपति कन्या हा हरे हे पुकारी, उर अजिर विहारी लाज राषो हमारी । धरि पटुमय रूपे अंतु है नाहि ताको, विपति हरन नेता सहै पेकजा को ॥ ६ ॥ छः द्रुत विलः करत सोच विचारत, भारती सुमिरि सुंदर नंद कुमार ही ॥ तिहि समये गज छंद पयो जहाँ, हरि कृपा तिहिपान वचे तहाँ ॥ ७ ॥ रिपुन मारन कारन सोत की सरन, जानि कपोल की वधिक व्याल सुजान ॥ संघ औ जुगति जान निहार हरीढ़ औ ॥ ८ ॥ वरषि वृष्टि पुरंदर जो रहे, मूसला धार सौ चुहैवै रहै । सरन गोपिय गोपाल वै भये, गिरि उठाय वचाय हरि लिये ॥ ९ ॥ सकल गोपिय गोप दुखी भए, सविष वार पिये जड़ ह्वै गये ॥ अमृत वृष्टि निहारि

जिवाइये, सकुल कालिय नाम भगाइये ॥ १० ॥ स्वागताछंदः—संष चूड़ वध कारि मुरारी, वीर रत्न वरको अवहारी। गोप प्रान गन को रखवारे, स्याम सो जपति नंद दुलारे ॥ ११ ॥ सुद्ध कुद्ध जुतं जुद्ध तिहारौ, ह्वै कृपाल यह वैन उचारो ॥ कान्ह कोप कर ग्राह विदाओ। दीन जान गजराज उवाओ ॥ १२ ॥ छंद मालिनी—सहसनि सम वीते अंध कूप वासी, नृप नृपति उधाओ दिव्य देहादि मासी। प्रन तजन सनेही स्याम ते और को है, जिहि विरद वड़ाई सर्वदा सत्य सोहे ॥ १३ ॥ बरहरवै की चाह में चित्त दीन्हौ, सिर कर धरिवे कौ आसु आराम कीन्हौ। हरि गरितनया को नाथ लीन्हो वचाई, सकुन तन प्रजा और जोग माया भुलाही ॥ १४ ॥ अहह जगत स्वामी धर्म पालो हमारो, समुद सुवन पापी हेत नासै विचारौ। सुनिसि प्रति प्रवानी के समाधान ताको, पतिव्रत हरि लीन्हो कान नैमी सुता को ॥ १५ ॥ नृप कर जोरे दीन वानी बषाने, रिसमय अनुस्वै जासूनुत्रै मोने ॥ रिषि वर दुरवासा अंवरीख सताओ, हरि धरि जन लाजै चक्र चक्रीय पढ़ाओ ॥ १६ ॥ जननि जनक दोऊ बांधि के वंदि दीन्हौ, षट सुत मुनि मारे सभु संकाहि कीन्है ॥ आज सुतहि विनती पै चित्त निसंक कीन्है, अतलुत वल कोपो कंस निर्वंस कीनो ॥ १७ ॥ करि करतार लै गोप गो जाल लै कै, अघ उदर समाने नाहकै कै ॥ अरि असुर संघाओ सर्व संमोह छाये, सुजन दुषदारी भृछृगदं भोलिगाये ॥ १८ ॥ जदपि जननि लीन्है अन्यथा रीति जानै, परहरि निजवानी हस्त कै चक्र लीन्हौ। सुर सुरि सुत कोपै बोल मिथ्या न कीन्हौं ॥ १९ ॥ जदपि जग बांधै ईस ऐसो प्रवीनो, तदपि जननि कीन्हो नेह सो स्वाधीनो। जिन चिर चिर तारे दै भलै भक्ति दानै। तिनिहि जन कछोओ हाथै विकानौ ॥ २० ॥ बल छलन धाये प्रेम ताको निहारै, अपनहु छलि ठारे आज नोजा सुहारै। कहुँ हरि सम भोरो ना सुनै ना निहारै, जहि त्रिभुवन लागी आपुही हारि आयो ॥ २१ ॥ अगनति अघ कीन्है झूठ सो आयु गारी, सपनेहुँ नहिं आयो स्याम स्यामा विहारी। मदन समय धोखे सुनकै स्वामी जायी, परिपदहि पठायो जो अजामेल पापी ॥ २२ ॥ विहसत मुष देषै रूप सौं डीठि लागी, मलयज तन लेथों कूवरी प्रीति पाग्यो। पट झटकत ताके चित्त की वृत्ति चीन्हीं, अभिलषत वरै दै रूप की रासि कीन्हीं ॥२३॥ विजय सुत वधू के गर्भ में अर्भ राजै, तिहि दहन निमित्तं द्रोन कौ सून साजै ॥ कुल विनसन काजैं ब्रह्म अस्त्रै पठायौ, हरि धरि जन लाजै चक्र सौं सो चलायो ॥ २४ ॥ सुनत श्रवन झौंनैं यौ न भायो सुहायो, जन मन मुदकारी मालिनी छंद गायो। हृदय हँसि अग्याईस की सीस लीन्हीं, प्रभु सुजस पचीसी रामकैदास कीन्हीं ॥२५॥ ॥ इति श्री रामदास विरचिते ॥ प्रभु सुजस पचीसी ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥ (पूर्ण प्रतिलिपि)

विषय—भगवान के सुयश का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की प्रतिलिपि कर दी गई है।

संख्या ८१. अद्भुत रामायण, रचयिता—रामजी भट्ट (गंगातटस्थ भोजपुर), कागज—देशी, पत्र—१४८, आकार—१०½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—५६३३, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १८४३ वि०, लिपिकाल—सं० १९१२ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री पं० सतीप्रसाद जी मिश्र, स्थान व डा०—भोगाँव, जि०—मैनपुरी।

आदि—[प्रथम पत्रालुप्त, द्वितीय पत्र से उद्धृत]........नि दुतिये अंगद सामंतै। पुनि सुग्रीव विभीषण दोऊ। जिनकी सर लागत नहिं कोऊ॥ कविवर वाल्मीक को वन्दौं। जिनकी कृपा होत कवि मन्दौ। जिन अद्भुत रामायण गाई। भवसागर की तरनि बनाई॥ गणपति अरू दुर्गादि भवानी। पुनि वन्दौं वानी ठकुरानी॥ १९॥ सेस महेस दिनेसहि वन्दौं। वन्दि वन्दि काटौ भव फन्दू॥ दोहा॥ अव वरणत कवि रामजी, निज कुल को विस्तार। सन्त अनुग्रह करत हैं, जानत सव संसार॥ २०॥ अति अद्भुत रमनीय सुहायो। नगर भोजपुर तिहि वसवायो॥ निकट सुरसरी स्वच्छ विराजै। जलमय ब्रह्म अखंडित राजै॥ २१॥ चारों वरण वहँ वसैं सज्जन। नित प्रति करैं सुरसरि मज्जन॥ विप्र कुलीन वेद व्रतधारी। वसहिं सर्व विद्या अधिकारी॥ २२॥ और वरन सव कर्म प्रवीने। अति उदार कायस्थ कुलीने॥ अतिसय सुषित भोजपुर वासी। सब विधि वनी दूसरी कासी॥ २३॥ गुज्जर वंस शेष से पंडित। मधुसूदन यह नाम अखंडित॥ वसै तहाँ सुर गुरु से दूजे। जिनके चरन नगर सब पूजै॥२४॥ रामदेव तिनके सुत ज्ञानी। किये विदित वानी ठकुरानी॥ गौरी नाथ पुत्र भये तिनके। जगती पर प्रसिद्ध गुन जिनके॥ २५॥ कुल सपूत जैसे दुज रामा। वाचस्पति समान गुणग्रामा॥ तिनके सुत रामजी कवि है। ज्यों अखंड भूमंडल रवि है॥ २६॥ वाल्मीक अद्भुत रची, रामायण ठट्ट। भाषा तिहि की करत है, सुकुवि रामजी भट्ट॥ × × × तीनि[3] चार[4] आठ[8] अरु एका[1]। इन सम्वत कर करउ विवेका॥

अंत—भुजग महामौर संदेह विध्वंस कारी। वरारोह अद्रोह पूर्णावतारी॥ चिंतानंद सुग्यान विग्याण रूपं, गुणातीत गोतीत ब्रह्म स्वरूपं॥ जगथ्यावरं जंगमं भू विलासं। गुनग्राम उदीम भरनां प्रकासं॥ अरिग्राम संग्राम वीरावतारं। कियत वार भू भार विध्वंस कारी॥ जगत त्राणद हंस वंसावतारी। अनाधार आधार भूतं कृपालं। वरेन्यां सरेन्यां सदा भूमि पालं॥ धुना लक्षि सीसाष्य भूभार हारं। महाघोर दैत्येस विध्वंस कारं॥ निजानन्द स्वच्छन्द आनन्द कन्दं। भजा मौवयं भू धरे रामचंद्रं॥ ५॥ ॥ दोहा॥ इहि प्रकार विज्ञप्ति सुनि, भए नम्र रघुनाथ। विंस करे सुरराज मिलि, धरौ माथ पर हाथ॥६॥ भुज पूजी रघुनाथ की, विदा भए सुर वृन्द। राज राज सिंव संगदिय, सैन सहित सानन्द॥ ७॥ समासम् शुभम्॥ इत्यार्षे अद्भुत रामायण जानुकी विजय वाल्मीक कृत॥ तदुनमत रामजी भट्ट विरचितायां लाक्षानन॥ वध वर्णने सप्तमो कांड॥ ॥ मासानां मासोत्तमे मासे आश्वनि॥ मासे द्वितीयाँ॥ २॥ भृगुवासरे॥ संवत् १९१२॥ सालसनि॥ १२६२ लिष्यतं रामलाल॥ कायस्थ कुल श्रेष्ठ रहने वारे मौना॥ उड़ेसर परगनै मुस्तफावाद॥

विषय—वाल्मीकि रचित अद्भुत रामायण का पद्यानुवाद।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक वाल्मीकि रचित अद्भुत रामायण का सार लेकर गुर्जर वंशीय रामजी भट्ट ने विविध छंदों में रची है। इसका विषय जानकी विजय से सम्बद्ध है। जब दाशरथी राम दशानन वध के उपरान्त अयोध्या को लौटकर आ गये तो

किसी दिन वार्तालाप के प्रसंग में लंका विध्वंस एवम् राम विजय पर हर्षोल्लास प्रकाशित हुआ। परंतु जनक नन्दिनी के चन्द्रानन पर मधुर मुसकान की एक रेखा देखकर उनसे इसका कारण पूछा गया इस पर उन्होंने कहा, 'दशशीश रावण पर राम की विजय अत्यन्त साधारण तथा अप्रशंसनीय है। अभी उससे कई गुना शक्तिशाली लक्षानन नामक असुर विजय करने को शेष है। उसपर विजय प्राप्त करने पर ही राम यशस्वी हो सकते हैं—'। इस कथन के आधार पर जो युद्ध हुआ उसी का वर्णन सात कांडों में इस ग्रंथ में किया गया है। इस युद्ध में श्री सीता जी की सहायता से निशाचर हत हुआ। अतः इसी कारण इस विजय को 'जानकी विजय' के नाम से अभिहित किया गया। 'जानकी विजय' नामक एक ग्रंथ शोध में और प्राप्त हुआ है; किंतु प्रस्तुत ग्रंथ उससे सर्वथा भिन्न है। इस ग्रंथ के वर्णन सजीव और रोचक हैं और इसमें वीर रस की प्रधानता है। ग्रंथकार अपने को गुर्जर वंशीय ब्राह्मण मधुसूदन का वंशज बतलाता है। मधुसूदन के पुत्र रामदेव, उसके गौरीनाथ और गौरीनाथ के तनय रामजी भट्ट हुए। इन्हीं रामजी भट्ट ने प्रस्तुत ग्रंथ सं० १८४३ में रचा। इसकी प्रतिलिपि ६९ वर्ष पश्चात् मैनपुरी जिले के मुस्तफाबाद परगना के उड़ेसर नामक ग्राम के निवासी रामलाल कायस्थ कुल श्रेष्ठ ने की। अन्य प्राचीन प्रतिलिपिकारों की भाँति इस प्रति में भी कुछ अशुद्धियाँ हैं।

संख्या ८२. शब्दावली, रचयिता—बाबा रामप्रसाद जी (झामदास को कुटी जि० सुलतानपुर), कागज—देशी, पत्र—२७, आकार—८½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१७, पूर्ण, रूप—उत्तम, पद्य, लिपि—देवनागरी, लिपि-काल—१९७६ वि०, प्राप्तिस्थान—मुं० रामकृष्ण जी, स्थान—अहुरी, डा०—शाहमऊ, जि०—रायबरेली।

आदि—साखी—सतगुर सरनहि आय के, लावा ध्वनि रंकार। रामप्रसाद निर्वान मत, पावा झाम अधार ॥ १ ॥ शब्द ॥ जन के ध्वनि ररंकार, गुरू उपदेश हंस जब पावै। सूरति शब्द संभार। ग्यान तमूर ध्यान की खूंटी। लाग सोहंगम तार ॥ १ ॥ मनुवाँ मगन भयो बस अपने, सुनि अनहद झँकार ॥ पाँच पचीस भर्म के भागे, खुलगे गैव के वार ॥ २ ॥

अंत—॥ होरी ॥ शब्द को रंग बनै, पिया संग खेलौं मैं होरी ॥ बीनो किंगिरी संख सारंगी, ताल मृदंग बजाये ॥ १ ॥ ग्यान विराग भरी पिचकारी, दीन गुरू मोहि आये ॥२॥ साहेब झाम दया सुख सागर। दीन्हेऊँ अलख लखाये ॥ ३ ॥ रामप्रसाद राम रस चाख्यो, आवा गवन मिटाये ॥ ४ ॥

विषय—शब्दावली (रामप्रसाद दासजी कृत) इस शब्दावली में प्रथम श्री रामप्रसाद दास जी ने सतगुरु तथा श्री झामदास जी की वंदना की है। पश्चात् सोहं और ररंकार तथा अनहद ध्वनि का वर्णन किया है। फिर निराकार ईश्वर का वर्णन तथा उसके प्राप्त होने की विधि भी संकेत रूप में लिखी है। इसमें स्थान स्थान पर अनहद ध्वनि का वर्णन है और निराकार ईश्वर का रूप भी ज्योति रूप में वर्णन किया है। ईश्वर का स्मरण

साबुन के समान है जिससे कर्मरूपी मैल छूट जाती है। गुरु के चरणों का ध्यान करने से संपूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। उसी के वचनों को मानकर बार बार स्मरण करना चाहिए। सुरति सुहागिनी शून्य शिखर पर प्रेम की सारी पहनकर चढ़ गई अर्थात् प्रेमपूर्वक सुरति से शून्य में ईश्वर का स्मरण करना उचित है। राम नाम का स्मरण करना ही सब सुखों की जड़ है। कहीं कहीं रामकृष्ण का सगुण रूप का वर्णन किया है। निराकार साकार का सूक्ष्म भेद दिखाया है।

विशेष ज्ञातव्य—॥ श्री रामप्रसाद जी की जीवनी ॥ श्री रामप्रसाद जी का जन्म श्री झामदास जी की कुटी, जिला सुलतानपुर में सं० १८७५ वि० के लगभग बैस क्षत्रिय कुल में श्री झामदास जी के वंश में हुआ था। बाल्यकाल में आपको उचित रीति से शिक्षा दी गई थी और आप हिंदी तथा उर्दू भाषाएँ भली भाँति जानते थे। युवावस्था तक आप गृहस्थाश्रम में रहे। पश्चात् श्री झामदास जी के शिष्य श्री केशवदास जी से मंत्रोपदेश लेकर श्री झामदास जी की कुटी पर ही निवास करने लगे। आपने भी अपने गुरु परम्परा की रीति से जीवन पर्यन्त अखंड भजन किया। शिष्यों तथा लोकोपकार के हेतु आपने कुछ साखी तथा पद भी निर्मित किए हैं। जिनमें से ५६ दोहे और ६९ पद खोज में प्राप्त हुए हैं। आपके दोहों तथा पदों में भी वही विषय तथा भाव हैं जो श्री झामदास जी तथा केशवदास के पदों में हैं; परन्तु कविता के गुणों में और भाषा की उत्तमता तथा प्रौढ़ता में आपके पद उपरोक्त महात्माओं के पदों से बढ़कर हैं। आप पूर्ण ब्रह्मज्ञानी तथा सिद्ध महात्मा हुए हैं। आपका देहावसान दीर्घायु प्राप्त होनेपर सं० १९४० वि० के लगभग होना खोज से निश्चित हुआ है।

संख्या ८३ ए. मनुस्मृति की टीका (मन्वर्थ चंद्रिका), रचयिता—राव कृष्ण, कागज—देशी, पत्र—१३८, आकार—१० × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०७६४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० ज्योती प्रसाद जी मेहरे, स्थान—बाउथ, डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—श्री परमात्मने नमः॥ श्री कृष्णाय नमः॥ १॥ प्रणम्य जगदाधारं, श्रीपति पुरुषोत्तमम्। क्रियते रावकृष्णेन। भाषामन्वर्थ चंद्रिका॥ १॥ अर्थ—एक समय भृगु जी से आदि लेके संपूर्ण महर्षियों ने एकान्त विराजमान श्री महाराज मनुजी के निकट गमन करके उनका यथोचित पूजन करिकें यह वचन बोले॥ भगवन् सर्व वर्णानां यथा वदनु पूर्वशः। अंतर प्रभवाणांच धर्मान्नो वक्तुमर्हसि॥२॥ त्वमेकालस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः। अचिंत्यस्या प्रमेयस्य कार्य तत्वार्थ वित्प्रभो॥ ३॥ अर्थ—कि हे महाराज संपूर्ण वर्णों के अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और वर्णसंकरों के धर्मों को यथावत् क्रम से हम लोगों को उपदेश करने में आप समर्थ हो अर्थात् कृपा करके धर्मशास्त्र का उपदेश कीजिए क्योंकि संपूर्ण वेद अर्थात् ऋग्यजु साम अथर्वण इनके कार्य ज्योतिष्टोमादि याग चांद्रायणादि व्रत और नित्यकृति संध्या वंदनादि इनके यथार्थ प्रयोजन के जानने में आप एक ही हो वह अपौरुषेय वेद अचिन्त्य है, अर्थात् अनेकशा होने के कारण बुद्धि द्वारा कोई

ज्ञान नहीं सक्ता तथा न्याय व्याकरण मीमांसा योग वैशेषिक सांख्य वेदांत और निरुक्ति छंद इनके बिना पढ़े जिनके पदार्थ ज्ञान नहीं होता इसी हेतु अप्रमेय कहते हैं; अर्थात् आपके अतिरिक्त संपूर्ण वेद के यथार्थ अर्थ ज्ञान किसी को नहीं है ॥ ३ ॥

अंत--एकाकी चितंयेन्नित्यं, विविक्ते हित मात्मनः । एकाकी चिंतयानोहि परं, श्रेयोधि गच्छति ॥ २५८ ॥ एषोहितागृहस्थस्य वृति विप्रस्य शाश्वती । स्नातक व्रत कल्पश्च सत्व वृद्धिकरः शुभः ॥ २५९ ॥ अनेन विप्रोवृतेन वर्तयन वेद शास्त्र वित् । व्यपेत कल्मषो नित्यं ब्रह्म लोके महीयते ॥ २६० ॥ अर्थ--निज स्थान में अकेला आत्मा का हित चिंतमन करे अर्थात् वेदांत का अभ्यास करे अकेला अभ्यास करता हुआ परमश्रेय को प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष को पाता है ॥ २५८ ॥ ये गृहस्थ ब्राह्मण की वृति कहे ॥ और कल्प कहे और सत्यगुण का वृद्धि करना प्रशस्त कहा ॥ २५९ ॥ वेद शास्त्र का जानने वाला विप्र इस शास्त्रोक्त आचार से नित्य कर्म अनुष्ठान करता हुआ पाप को नष्टकर ब्रह्मलोक में बड़ाई को पाता है ॥ २६० ॥ इति राव कृष्ण विरचितायां मन्वर्थचन्द्रिका ॥ टीका भाषायां चतुर्थोध्यायः ॥ समाप्तम् शुभम ॥

अहन्य हन्य वेक्षेत कर्मांता न्वाहानिच ॥ आय व्ययौ नियता वाकरान कोश मेवच ॥४१९॥ अर्थ--प्रतिदिन राजा दृष्टादृष्टार्थ कर्मों की निष्पत्ती को देखे और वाहन को भी तथा जमा खर्च और खान खजाना इनको भी प्रतिदिन देखें ॥ एवं सर्वानि मानूराव्यवहारान्स मापयेत् । व्यापोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमांगतिम् ॥ ४२० ॥ इस उक्त प्रकार से ऋणदान व्यवहार को तत्व से निर्णय के अन्ततक पहुँचाता हुआ संपूर्ण पाप को दूर करके स्वर्गादि प्राप्ति रूप उत्कृष्ट गति को पाता है ॥ ४२० ॥

विषय--मनुस्मृति के पहले अध्याय से अष्टम अध्याय तक की भाषा टीका ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में मनुस्मृति की टीका है । इसके टीकाकार कोई 'रावकृष्ण जी' नामक सज्जन हैं । उन्होंने उक्त ग्रंथ की टीका दो भागों—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—में की है । पहले मोटे अक्षरों में श्लोक दो-दो, चार-चार की गणना में उल्लिखित हैं फिर उन्हीं के नीचे उक्त श्लोकों की टीका लिखी गई है । इस भाग में ४२० श्लोकों की व्याख्या हुई है । टीका की भाषा प्रायः आधुनिक और प्राचीनकाल की मिलीजुली खड़ी बोली है । फारसी और अरबी के विशुद्ध एवम् अपभ्रंश शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । कहीं-कहीं व्याकरण की दृष्टि से भाषा चिन्त्य है । क्रियाओं का व्यवहार यथास्थान न होकर इधर उधर हुआ है ।

संख्या ८३ बी. मनुस्मृति की टीका (उत्तरार्द्ध), रचयिता--रावकृष्ण, कागज--देशी, पत्र--४२, आकार--१० X ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--२६, परिमाण (अनुष्टुप्)—३२७६, खंडित, रूप—पुराना, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० ज्योती प्रसाद जी महेरे, स्थान—बाउथ, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः ॥ पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्येवर्त्मनि तिष्ठतोः ॥ संयोगे विप्र योगेच धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतानि ॥ १ ॥ अस्वतंत्रताः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः

स्वैर्दिवानिशे। विषयेषु च संज्जत्यः संस्थाथ्या आत्मनो वशे ॥ २ ॥ पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति योवने। रक्षंति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ॥ ३ ॥ कालेदाता पिता वाच्यो वाच्य श्चानु पयन्पतिः। मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातु रक्षिता ॥ ४ ॥

अर्थ—धर्म मार्ग पर चलनेवाले स्त्री पुरुषों के साथ रहने और अलग रहने के शाश्वत धर्मों को हम कहते हैं उसको सुनों ॥ १ ॥ अपने पति इत्यादि करिकें औरतें सदा स्वाधीन होनी चाहिए और रूप रसादि विषयों में आसक्त को भी अपने वस करनी चाहिए ॥ २ ॥ बाल अवस्था में पिता रक्षा करता है और यौवन में पति रक्षा करता है ॥ तथा स्थविर में पुत्र रक्षण करता है। इस वास्ते स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ विवाह काल में कन्यादान न करनेवाले पिता निंदित होता है। और ऋतुकाल में पति स्त्री के पास गमन न करनेवाला निंदा को पाता है और पति के मरने पर माता को रक्षण न करनेवाला पुत्र निंदित होता है ॥ ४ ॥

अंत—ब्रह्मचारी तु यो श्रीयान्मधु मासं कथं चन। स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रत शेषं समापयेत् ॥१५८॥ विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्चन कुलस्यच ॥ केश कीटाव पन्नंच पिबेछ्ह्म सुवर्चलां ॥ १५९ ॥ अभोज्य मन्न नात्तव्य मात्मनः शुद्धि मिच्छता ॥ अज्ञान भुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशु शोधनैः ॥ १६० ॥ अर्थ—जो ब्रह्मचारी मधुमास को बिना इच्छा से आपत्ति काल में भक्षण करे वह प्रजा पत्य को करके व्रत शेष को समाप्त करें ॥ १५८ ॥ विल्ली काक मूसा कुत्ता नेवला इनके उच्छिष्ट को और केश कीट करके युक्त अन्न को भोजन करके ब्रह्म सुवर्चला के काढ़े को पीवे शुद्ध होने के अर्थ ॥ १५९ ॥ अपने को पवित्र रहने की इच्छा करनेवाला भोजन के अयोग्य अन्न को न भोजन करे ॥ और यदि बिना जाने खाये को वमन करके निकाले वा शोधन द्रव्यों से शोधन करे ॥ १६० ॥ × × × अभक्ष भक्षण में जो प्रायश्चित है उनके यह नाना प्रकार के विधान कहे अब चोरी के दोष दूर करनेवाले वृतों को सुनिये ॥ १६१ ॥ ब्राह्मण अपने जातिवालों ही के धान्य........

विषय—मनुस्मृति के नवें अध्याय से लेकर अंतिम अध्याय तक की भाषा टीका।

संख्या ८४. रसखान संग्रह (अनुमान से) अथवा ककहरा रसखान, रचयिता—रसखान (महावन), कागज—मूँजी, पत्र—२२, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—दुर्गाप्रसाद भट्ट, लाल दरवाजा, मथुरा।

आदि— × × × आये कहा करिकैं कहियो व्रषभान लली सों लला दग जोरत। ता दिन तैं अँसुआन की धार रही नहीं जद्यपि लोग निहोरत। बेगि चलौ रसषान बलाय लौं क्यो अभिमान न भौंह मरोरत। प्यारे पुरंदर होरेन प्यारी अबै पल आधक में व्रज बोरत॥ सखी सखी सो कहति है (अस्पष्ट सवैया) सषी वचन ॥ येक समै इक ग्वाल बधु भई बावरी नैक न अंग सम्हारे॥ माइ अघाइन टौंनन ढूढ़त सासु सियानौ सियानौ पुकारे॥ यौं रसखानि सुसरौ सगरौ व्रज आन के आज उपाय विचारै॥ कोउ न मोहन के करते यह वैरिन बाँसुरिया गहिं डारै॥ एक समै यक ग्वालनि कैं व्रज जीवन षेलत दिस्टि पर्यो

है। बाल प्रवीन सही करि कैं सरकाय के मौरन चीर धरयो है। यौ रस ही रस ही रसखानि सखी अपनो मन भायो करयो है। नन्द के लाड़िले ढांकि दै सीस इहः मेरो गोवर हाथ भरयो है।

अंत--सम्मुख यौन बखानि सकै व्रषभान सुता जु कौ रूप उजारो। है रसषानि तु ग्यानि सम्हारित रैंन निहारि जु रीझन हारो॥ चारु सिदूर कौ लाल रसाल लसै ब्रज बाल कौ भाल टिकारो। गोद में मानौ विराजतु है घनस्याम के सारे कै राम को सारो ॥ १५१ ॥ सास अहौ बरजौ बिटिया जु बिलौके अलोक लगावत है। मोसु कहै जु कहूँ वह बात कहौ यह कौन कहावत है। चाहत काहु कै मु......बढ़यो रसखानि झुके झुक आवत है। जब ते वह ग्वाल गली में नच्यो तबते मोहि नाच नचावत है॥ १५२ ॥ हेरति बार ही बार उतै तुव बावरी बाल कहाँ धौ करेगी। जो कबहुँ रसखान लखै फिरि क्यौं हु न वीर री धीर धरेगी। मानि है काहुं की कानि नहीं जबहु पठगी हरि रंग डरैगी। याते कहूँ सिख मानि भटू यह होनि तेरेई पैर परेगी॥ १५३ ॥ × × ×

विषय--ग्रंथ में राधा कृष्ण तथा अन्यान्य सखियों का श्रृंगार रस पूर्ण वर्णन है। सखियों और कृष्ण का संवाद, पत्र ९--१०। फिर ककारादिक क्रम से 'ह' तक कृष्ण और गोपियों की प्रेमलीला एवं श्रृंगार वर्णन, पत्र ११--३० तक।

विशेष ज्ञातव्य--गत वर्ष गोकुल में पं० मायाशंकर जी याज्ञिक के यहाँ एक उपयोगी रसखान की कविताओं का संग्रह खोज में मिला था। अब यह दूसरा मथुरा में प्राप्त हुआ है। यह पहले से अधिक प्राचीन विदित होता है। रसखान की कविताओं का संग्रह इसमें अकारादि क्रम से किया गया है। यदि यह क्रम रसखान का स्वयं किया हुआ है तो यह महत्वपूर्ण है। श्री मायाशंकर जी के यहाँ मिले हुए संग्रह से इसमें अधिक छंद हैं।

संख्या ८५ ए. रसिक सागर, रचयिता—रसिकदास, कागज—मूँजी, पत्र—५८, आकार—१० × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--११, परिमाण (अनुष्टुप्)--६९८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान—पंडित श्रीरामजी, स्थान--मँगना, डा०--दाऊ जी, मथुरा।

आदि--मनारे ते बहोत बिधि बिगारी, यह लोक पर लोक न साध्यो, बोझ मरी महतारी, मानुष तन निरमोल गमायो--जीती बाजू हारी; बहोरयो दाव न पे हो सठ सब–लोक देत अधिकारी; अबही देख विचार जिय अपने--स्वारथ के संसारी; रसिक दास के दास कोई, श्री वल्लभ पद सिरधारी।

अंत--मना रे तू अजहूँ चेत सबेरो, बड़ी ठोर को नाम धरावत, त्यों त्यो होत घनेरो; पर निद्रा परवाद ईरखा, संचित जिन उरझे रो; इन बातन में कछू न बड़ेगो, जाय गांठ को तेरो; यह संसार स्वारथ को संगी; करे विचार न तेरो, रसिकदास जन टेर कहत है, श्री वल्लभ चरनन चेरो। × × ×

विषय—महात्मा रसिकदास जी के भक्ति और वैराग्यपूर्ण गीतों का चयन।

संख्या ८५ बी. चात्रक लगन, रचयिता--रसिकदास (व्रज), कागज--देशी, पत्र--१०, आकार--१० × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१५, परिमाण (अनुष्टुप्)-४७२, पूर्ण, रूप--नवीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--रामसिंह बाबा, स्थान--मानपुर, डा०--नन्दग्राम, मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः अथ चातक लगन ।। दोहा ।। महामेघ करुना निधि श्री वल्लभ मम नाथ । श्री विट्ठल वर प्राण पति कीने सजन सनाथ ॥ १ ॥ धु रवा धारे सम तनु विद्युत भक्त विलास ।। सरस कीए चातक जना सब रस पूरी आस ।। २ ।। तिनके पद रज भृत्य फल जन्म जन्म प्रति होय । दीन हीन कछु कहत हौं यथा मूढ़ मति रोय ।।३।। अन्य गन्ध छूवे नहीं धरे पति व्रत एक ।। ते निश्चै पद पावहीं चात्रक की सी टेक ।। ४ ।। गिरि कानन गोकुल गवन श्री वल्लभ कुल देव ।। आन नहीं सुपनो सखी यह मन निश्चे टेव ।। ५ ।। करि आसा मरि जाँयगे चले प्रेम के पंथ ।। प्रतज्ञा झूठी परें कविन रचे हे ग्रंथ ।। ६ ।। पावस रटे पपैयरा कोयल रटे बसन्त ।। मै तुमको निसदिन रटूँ ज्या निरमल मन सन्त ।। ७ ॥

देखि अटा चढ़ि चातकी रूप घटा घन पीव । उतकंठा अति प्रेम की भरि आयो उर ग्रीव ।। रोम रोम पुलकित भयो अखियन अँसुवन पात । जाय मिल्यो घनमीतसौं सुफल कीयो सब गात ।। अति उदारता मेघ की उमगि उमगि वर्षाय। चात्रक की पुट चोंच में सब घन नाहिं समाय ।। नव घन की वल्लभ प्रभु प्रगट रूप कल्यान ।। रसिकदास जन जाँच ही निज पद पंकज जान ।। चातक लगन जतन कियो मन अवलंब न काज ।। स्नेही होय सो देखियो निरस दूरि ते भाज ।। लावन अधरामृत कहे नादहि स्पर्शामृत ।। करुणामृत भए पाँच मिलि, पावत निज जन भृत ।। पंचामृत रचपच कियो ओर न इच्छा मोय ।। श्री वल्लभ के दास को दास दास फल होय ।। प्रेम सिंधु प्राणेश जू पेर तजेती पोंहोंच । पंचामृत रस वहि चल्यो मात नहीं लघु चोंच ॥ मरम सनेही प्राणपति श्री वल्लभ कुल देव ॥ रसिकन के मन रमन कूं लघुमति वरनो एव ॥ नहिं पिंगुल नहि छंद बल नहीं कविता को ज्ञान । तोहू कृपा करि देखियो अपनो करिकैं जान ॥ लिखतं मथुरा मांझ पुरी व्यास दास के पास । श्री यमुना के तीर पर लिखन कह्यो हरिदास ॥ नारायण दास वैष्णव इति श्री चात्रक लगन सम्पूर्णम् ॥

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय में नवधा भक्ति तो मानी ही जाती है । इसके सिवाय सैद्धान्तिक रूप से पाँच प्रकार की भक्ति स्वीकार की गई है । उसमें से एक प्रकार की भक्ति संज्ञा 'चातक लगन' की है। जिस प्रकार चातक स्वाति बूँद के लिए विह्वल रहता है उसी तरह भगवान में भक्ति होने से 'चातक लगन' कहलाती है । इसी 'चातक लगन' संज्ञक भक्ति को इस पुस्तक में प्रतिपादित किया है ।

संख्या ८६. ककोरा रामायण, रचयिता – रसिक गुविंद, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—५ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) – ११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि — नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० मोतीसिंह जी, ग्राम—अनोड़ा, डा०—जुगसना, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ ककोरा रामायण को लिष्यते ॥ दोहा ॥ अति उदार सुषसार सुभ राजत सदा अभेव । कमल चरन तारन तरन, जय जय श्री गुरु देव ॥ १ ॥ श्री रघुवर महाराज कौ रस जस परम प्रकास । जथा बुद्धि वरनन करत "रसिक गुविंद" निज दास ॥ २ ॥ कका कृपासिंधु परब्रह्म प्रभु अज अविनासी स्याम । सुरहित कर भुवभार हर प्रगटै रघुकुल राम ॥ ३ ॥ षषा षेलत नृप दसरथ सदन लषन भरत रघुवीर ॥ वाल चरित लषि मात वलि वारति भूषन चीर ॥ ४ ॥ गंगा गौर स्याम जोरी जुगल रूप अनूप सुजान । चढ़त नचावत चपल हय हाथ लिये धनुवान ॥ ५ ॥ घघा मुनि आये गाधिसुत नृप उठि कीन प्रणाम । मो मष पूरन तव सुजस दीजै लछिमन राम ॥ ६ ॥ चचा चकित नृप वानी सुनत गुरु वशिष्ठ समुझाइ । दिये पुत्र तव तारिका मग में मारी जाई ॥ ७ ॥ छछा छांड़त सर मारीच उड्यो पुनि प्रभु हत्यौ सुवाहू । मुनि मष पूरन सुमन सुर बरषत अधिक उछाहू ॥ ८ ॥ जजा जज्ञ जनक के सुनि चले पदरज ऋषि तिय तारि । गये गंग मज्जन कियौ मुनि सब कह्यौ विचारि ॥ ९ ॥ झझा झींकर नाव चढ़ावत न पद प्रभाव डर मानि । पद प्रछालि चढि पार ह्वै गये जनकपुर जानि ॥ १० ॥ टटा टूटत न धनु नृप सब थके गये जहां रघुनंद । धनुष तोरि जग जस लियौ वरषि सुमन सुर वृंद ॥ ११ ॥ ठठा ठाढे रघुवर पहरि कैं वरमाला सिये हत्थ । परसराम आये जहाँ सजि वरात दसरत्थ ॥१२॥ डडा डोम भाट को निधि मिली किये व्याह चहूं भाई । दिये दायज अवधपुर वजे वधाये भाई ॥ १३ ॥ ढढा ढूंढि महूरत साज सजि रामदेन जुवराज । गिरा भ्रमाई मंथरा केकई कीन कुकाज ॥ १४ ॥ णणां राणि नृप सौं वर चहै भरत राज वन राम । गुरु पितु मात प्रनाम करि चले लषन सियराम ॥ १५ ॥ तता तमसा तट आये प्रथम पुनि गुह मिलि रघुराज । पुनि प्रयाग पहुँचे जहां मुनी मिले भरद्वाज ॥ १६ ॥ थथा थोरी वय वहु रूप गुन वन वन करत विलास । वालमीक अश्रिम गये चित्रकूट किये वास ॥ १७ ॥ ददा देषि सिषिर तृण साल करि स्वामी वसै समर्त्थ । नृप तन पतन सुकाज करि चित्रकूट गये भृथ ॥ १८ ॥ धधा धरि सिर प्रभु पद पावरी आवध्र तिये नेम । पुनि प्रभु ऋषि मिलि असुर हति पंचवटी किये छेम ॥ १९ ॥ नना नारि सुपनषा को तहाँ कीन्ह विरूप विचारि । षरदूषन तृसरादि षल हते सहसदस चारि ॥ २० ॥ पपा प्रगट बात रावन सुनी चलि कियो मृग मारीच । रघुवर मृग मारन गये सिय हर ले गयौ नीच ॥ २१ ॥ फफा फिरत सिया ढूंढ़त प्रभू करी गीध गति आप । सवरी के फल पाइ कै हनुमंत सुग्रीव मिलाप ॥२२ ॥ बबा वालि मारि सुग्रीव नृप अंगद कौ जुवराज । हनुमान लंका गये सिय सुधि लायौ साजि ॥ २३ ॥ भभा भालु कपि दल सजि चढ़े मिल्यौ विभीषन भाजि । तरै सेतु निधि वांधिगौ लंक दूत जुवराज ॥ २४ ॥ ममा मारि घटकरन इन्द्रजित रावण सहित समाज । लंक दुहाई राम की दीन्ह वीभीषन राज ॥ २५ ॥ यया यान एक पुष्पक लियौ चढे लषन सियराम । करत स्तुति सव देव मुनि चले अवधपुर धाम ॥ २६ ॥ ररा रघुबर आगम सुनि अवधपुर घर घर घुरत निसान । मिले भरत परिजन प्रजा प्रथमहि गुरु सनमान ॥ २७ ॥ लला लगी सिय सास पद सव असीस दैं ताहि । करहिं निछावरि आरति हरषि निरषि दोऊ भाई ॥ २८ ॥ ववा वह दिन मुहूरत शुभ धरी मुनि वसिष्ठ अभिराम । सब समाज किये वेद

विधि राज तिलक दिये राम ॥ २९ ॥ ससा स्वर्न सिंघासन छत्र जुत सोभित सीताराम। लषन भरत ढोरत चँवर वरषि सुमन सुमन वाम ॥ ३० ॥ —पूर्ण प्रतिलिपि

विषय—'क' से लेकर 'स' तक प्रत्येक अक्षर पर दोहा रचकर संक्षेप से रामायण की कथा वर्णन की गई है।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ को पढ़कर मालूम होता है कि अंत में 'ह' अक्षर तक कथा वर्णन की गई होगी, किंतु 'स' अक्षर तक के दोहों में ही कथा समाप्त हो जाती है। अतः ग्रंथ पूर्ण मालूम पड़ता है। लिपिकाल तथा रचनाकाल का उल्लेख नहीं है।

संख्या ८७ ए. गंगा भक्ति विनोद, रचयिता—रसिक सुंदर (जयपुर), कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—५२/३ × ४३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—५, परिमाण (अनुष्टुप्)—५२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—१९०९ वि० = १८५२ ई० लिपिकाल—सं० १९१० वि० = १८५३ ई०, प्राप्तिस्थान—श्रीमान् पं० तुलसीराम जी पालीवाल, स्थान—शहर नायन, डा०—भदान, जि०—मैनपुरी।

आदि—जै जै श्री गंग ॥ १ ॥ दरसन परस स्नान तैं, नित आनंद अभंग। सुंदर फल सुष दायनी, जै जै जै श्री गंग ॥ २ ॥ इति मंगलाचरन ॥ तुव जलनिधि सोभगा मह्हि, श्री सिव संपति भूरि। क्रत सज्जन श्रुति सार मम, करहु अमंगल दूरि ॥ १ ॥ षल मल हारी दीन दुष, दरसन तुव जल धार। भंजन तरू अग्यान भव, मोहि निधि देहु अपार ॥ २ ॥ कपट दिष्ट मद गवरि जिंह, गंजन तरल तरंग। जग अघहारी सीस सिव, राजहु मुदित अभंग ॥ ३ ॥ सुमिरन तुव तम तरणि जिमि, हरनि अधम जन पाप। रूप सुरार्चित हरहु मम, त्रिविध पाप संताप ॥ ४ ॥ सब सुर तजि तुव सरन हौं, तुम प्रसंन जो नाहिं। कहि दुष रोऊं कौन पै यह चिंता चित माहिं ॥ ५ ॥ राज तजै तुव तट वसै, पियैं न्रप्त ह्वै तोय। सुन्दर वह आनंद सुष, हँसै मुक्त पै सोय ॥ ६ ॥ मृग मद कुच लिप नृप बधू, न्हात मात जव प्रात। दिव्य रूप ह्वै सुरन संग, मृग नंदन बन जात ॥ ७ ॥ सुमिरत आतम सुद्ध ह्वै, मिटत पाप भव ताप। श्रवन प्रिये मो सुष वसौ, अंत काल गँग जाय ॥ ८ ॥ काक जो विचरत नीरजे, निन्दक सुरपुर जोय। जनम मरन दुष हरन तट, भंजहु दुष मम सोय ॥ ९ ॥ वेद भेद नहिं लहत है, मन बुधि कवि नहिं पाइ। सुद्ध निरंतर विमल नित, मोहि देउ लषाइ ॥ १० ॥ दान ध्यान तप जग्य करि, मिलत न हरि पद सोय। देत सहज जो नरन कौं, तो सम औरन कोय ॥ ११ ॥

भव भय भंजन रूप तुव, महिमा कहि कवि कोय। गवरि मान अपमान करि, धरी सीस सिव तोय ॥ १२ ॥ मत्त मूढ़ पापी चुगिल, निदरत जे अघसोय। सो तू काटत सहजही, सोभित रहु जग जोय ॥ १३ ॥ जगहित आई सुरग तैं, हर सिर भरी सलोभ। मात अलौकिक बात यह, होत अलोभिन लोभ ॥ १४ ॥ अंध बधिर गुँग पँगु जड़, विषै ग्रसित नर जोय। सुरन तजे नरकन परे, जिन औषद तुव तोइ ॥ १५ ॥ निरमल तुव जस रद सुचि, जग मगात जग जोय। रटत अमरपुर विमल तम, सगर सुवन गुन तोय ॥१६॥ लघु अघ मेटन के लिये, तीरथ अवनि अनेक। कठिन घोर मल दलन कौं, जग जननी तू

येक ॥ १७ ॥ सदन धरम बुध मुक्तिदा, श्रीजुत तीरथ मुष्य । आडंबर जग तोय तुव, हरहु पाप मम दुष्य ॥ १८ ॥ अनुचर मद मत नृपन कौं, अभिमानी गुन जोइ । छिन मैं मम संकट हरे, मातु अनुग्रह तोय ॥ १९ ॥ जल झकोर लगि पवन बस, झरत प्राग अरविंद । मिलि चंदन कुच सुरतियन, दिपति सुहरि ममफंद ॥ २० ॥ प्रगटी हरिपद नषन तैं, धरी जटा सिव सोय । अधम उधारन येक जग, जग मगात तुव तोय ॥ २१ ॥ को सलिता गिरि तैं कढ़ी, चढ़ी सीस त्रिपुरारि । कहि किन धोये हरि चरन, तुव गुन अगम अपार ॥२२॥ विधि समाधि हरि सयन मैं, निरतत रहौ महेस । किम जग्यादिक मातु तुम, पूरन काम हमेस ॥ २३ ॥ मैं अनाथ पापी दुषी, रोगी त्रसत अग्यात । इन सब दुषिन उपाय तुम, करहु उचित जो मात ॥ २४ ॥ जब तैं तुव जस जगत मै गावत कवि मति धीर । रहे न जमपुर पातकी, भइ सुरपुर मैं भीर ॥ २५ ॥ काम क्रोध जुरतपत लगि, मम अति विकल सरीर । हरहु पीर लगि बात बस, लहर बुन्द कण नीर ॥ २६ ॥ विविधि भुवन ब्रह्मांड जे, कंदुक सम तुम माय । जटाजूट हरदेत छबि, सो मम करहु सहाय ॥ २७ ॥ मुहि त्यारत तीरथ लजैं, धरैं श्रवन सुर हात । हर सब तीरथ सुरन कौं, गरव हरन अघ मात ॥ २८ ॥ जो अघ लषि अधमन तजे, जिन करियैं भरपूर । जिहि त्यारत गुन मातु तुव, कहा कहूं नर कूर ॥ २९ ॥ जिहि त्यारत विसमय वढ़ै, रही लालसा तोय । आयो मैं पापी करहु, सफल मनोरथ सोय ॥ ३० ॥ मिथ्यावादी कुटिल मति, चुगल कुसंगी जोय । कोई जिह मुष नहिं लषैं, जिहि त्यारत धन तोय ॥ ३१ ॥ कियो न दरसन रूप तुव, नैन धन्य नहिं जोय । तिनन सुनी तुव जस कथा, श्रवन सफल नहिं सोय ॥ ३२ ॥ करत विविध अघ नर अधम, तजत सु तुव तट देह । अरचत सुरगन चरन जिह, परम विसद गति लेह ॥ ३३ ॥ मिलत विसद गति करम सुचि, नरक अधम नर जोइ । जिहँ थल तुव जल हरन मल, लहत न दुरगति कोइ ॥ ३४ ॥ सनि पराग मकरंद लगि, जिय विरही जन लेत । तुव तरंग मिलि पवन वह, जग पवित्र कर देत ॥ ३५ ॥ सुर पुर इच्छक विमल तन, कोऊ पर उपगार । मैंन चित्त आधार तुव, मातु तोहि मम भार ॥३६॥ नीच अधम पापी कुटिल, तिन त्यारन तुव टेव । पाप करन की टैव मुहि, छाड़त टेव न देव ॥ ३७ ॥ लहर उठन कर धसन जल, विवर वादि धुनि जोय । हर सिर तांडव निरत तुव, करौ सुमंगल सोय ॥ ३८ ॥ मैं अपने कल्यान हित, दियौ तोहि आभार । जो त्यागै तू मिटत जण, उद्धारन आधार ॥ ३९ ॥ प्रगटी सिव सिर सौं चली, केस गवरि अरधंग । टारत करतैं सोत लषि, जैहो तरल तरंग ॥ ४० ॥ होत पराप्त सवन कौं, देत मनोरथ सोइ । देहु मुक्त सा जोज मुहि, मोजिय चाहत तोइ ॥ ४१ ॥ नर सिर धारत तरणि जिमि, हरष तिमिर सब दुष्ष । अैसी जो तुव मृत्तिका, देहु मातु मोहि सुष्ष ॥ २१ ॥ अन देसी हित नरन कौं, हँसत पुस्य मिस सोय । मधुपन पावन तीर तरू, सषा होहु मम जोय ॥४३॥ कई यग्य कुइ नेम यम, कुइ ध्यावत सुर सोइ । मैं त्राण सम जानत जगत, मात अनुग्रह तोइ ॥ ४४ ॥ सुरहित कारक विविध विधि, सत करमिन जन हेत । निराधार निह करम सुभ, जिन सदगति तुम देत ॥ ४५ ॥ तुव तट तजि भटकत फिरयो, षलन संग चितचींद । है दयाल अब निकट तट, देहु मात सुष नींद ॥ ४६ ॥ मुकट ससी सरकर अभै, कमल

कलस वरदांन। सुकलांवर बाहन मकर, धन्य धरत जे ध्यांन ॥ ४७ ॥ कृपा दृष्टि जग दुष हरैं, विमल प्रकासत ग्यांन। नृप सांतनु सुष दायनी, करहु सुमम कल्यांन ॥ ४८ ॥ विष काली हरि चरन तैं, धोयो तैं निज तोय, लीलत विषधर पाप जग, निरवंधन करि मोय ॥ ४९ ॥ गिरजा सौं सब हारि तन, हारन लगे महेस। हँसी सिवा तोतन चितै, तुम मम हरहु कलेस ॥ ५० ॥ मेटे दुष सब नरन के, हर सिर सोभित गंग। सो मोकौं निरमल करौ, तेरी तरल तरंग ॥ ५१ ॥ मो त्यारन हित फैंट कस, सजि ससि मुकुट विसाल। और अधम गति सुगम है, मो गति कठिन कराल ॥ ५२ ॥ फल स्तुतः ॥ जो कोई बांचै सुनैं, यहै ग्रंथ चितलाइ। सदा सरवदा होइ जय, सुष संपति नर पाइ ॥१॥ गंगा लहरी कठिन अति, समझत पंडित कोय। आवत सबकी समझ मैं, जो नर भाषा होय ॥ २ ॥ जो गंगा लहरी करी, जगंनाथ मति सुद्ध। कछु आसै वाको लियौ, माफक अपनी बुद्ध ॥ ३ ॥ सूधी नर भाषा करी, निज मति के अनुसार। भूल चूक जो होय कछु, पंडित लेहु सुधार ॥ ४ ॥ सुंदर कायस्थ जात है, हरिदासन कौ दास। नायब वषसी फौज कौ, जैपुर नगर निवास ॥ ५ ॥ कातिक मास पुनीत है, उगनीसै नव साल। दिवस दिवाली वार गुरु, प्रगट्यो ग्रंथ रसाल ॥ ६ ॥ बाँचत निरमल होत चित, अरु सरसत मन मोद। सुर तरुवर नर लोक मैं, गंगा भक्ति विनोद ॥ ७ ॥ इति श्री रसिक सुंदर कृत गंगा भक्ति विनोद ॥ संपूर्ण ॥ १ ॥ संवत् १९१० चैत्र शुक्ल पक्षे ॥ १० ॥

विषय—गंगा का गुणानुवाद एवम् स्तुति।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता ने पंडितराज जगन्नाथ के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'गंगालहरी' का भावानुवाद ५२ दोहों में किया है। पश्चात् सात दोहों में ग्रन्थ का निर्माण काल तथा कवि परिचय संबंधी सूचना है। रचयिता रसिक सुंदर जाति का कायस्थ और जैपुर का अधिवासी था। उसने यह ग्रंथ सं० १९०९ वि० में रचा है। इसकी प्रतिलिपि सं० १९१० वि० में की गई है। ग्रंथ का केवल एक दोहा लुप्त हो गया है। शेष समस्त ग्रंथ यहां अविकल रूप में उद्धृत कर दिया गया है।

संख्या ८७ बी. गंगा भक्ति विनोद, रचयिता—रसिक सुंदर (जयपुर), कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १९०९ वि० (१८५२ ई०), प्राप्तिस्थान—श्री पं० डालचन्द्र जी, स्थान व डा०—लखुना, जि०—इटावा।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ गंगा भक्ति विनोद लिष्यते ॥ तुव जलनिधि सोभाग महि, श्री सिव संपति भूरि। कृत सज्जन श्रुतिसार मम, करहु अमंगल दूरि ॥१॥ षल मल हारी दीन दुष, दरसन तुव जल धार। भंजन तरु अग्यांब भव, मोहि निधि देहु अपार ॥ २ ॥ कपट दिष्टि मद गवरि जिह, गंजन तरल तरंग। जग अघहारी सीस सिव, राजहु मुदित अभंग ॥ ३ ॥ सुमिरन तुव तम तरणि जिमि, हरनि अधम जन पाप। रूप सुरार्चित हरहु मम, त्रिविध पाप संताप ॥ ४ ॥ सव सुर तजि तुव सरन हौं, तुम

प्रसंन जो नाहिं । कहि दुष रोऊँ कौन पै, यह चिंता चित मांहि ॥ ५ ॥ राज तजै तुव तट वसै, पियै श्रम है तोय । सुंदर वह आनंद सुष, हँसै मुक्त पै सोय ॥ ६ ॥

अंत—गंगा लहरी कठिन अति, समझत पंडित कोय । आवत सवकी समझ मैं, जो नर भाषा होय ॥ २ ॥ जो गंगा लहरी करी, जगन्नाथ मति सुद्ध । कछू आसै वाकौ लियौ, माफक अपनी बुद्धि ॥ ३ ॥ सूधी नर भाषा करी, निज मति के अनुसार । भूल चूक जो होय कछु, पंडित लेहु सुधार ॥ ४ ॥ सुन्दर कायथ जात है, हरि दासन को दास । नायव वषसी फौज कौ, जैपुर नगर निवास ॥ ५ ॥ कातिक मास पुनीत है, उगनीसै नव साल । दिवस दिवारी वार गुरु, प्रगट्यौ ग्रंथ रसाल ॥ ६ ॥ बांचत निरमल होत चित, अरु सरसत मनमोद । सुरतरुवर नर लोक मैं, गंगा भक्ति विनोद ॥७॥ इति श्री गंगा भक्ति विनोद ॥ रसिक सुंदर कृत ॥ सम्पूर्णम् ॥

विषय—श्री गंगा जी की महत्ता का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत ग्रंथ रसिक सुन्दर कायस्थ ने सं० १९०६ वि० की दिवाली को रचा है । दिवाली उस दिन गुरुवार को पड़ी थी । रचयिता जयपुर निवासी और फौज का नायब बख्शी था । संस्कृत में पंडितराज जगन्नाथ ने शिखरिणी छंदों मैं गंगा लहरी रची जिसका अनुवाद हिन्दी में ग्रंथकर्त्ता ने कुछ घटा बढ़ाकर किया है ।

संख्या ८८. वारहमासी, रचयिता—रतनदास, कागज—देशी, पत्र—५, आकार-६½ × ४ इंच, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भूदेव जी, ग्राम —छौली, डा०—श्री बलदेव, जि० —मथुरा ।

आदि—॥ पदराग वारामासी ॥ श्री रामचरण जी संत जांणि ज्यौं समृथ अवतारी । अंनंत जीव कीन्हा जिन पारी ॥ टेक ॥ फागुण मास फूलि सब सेवग साहिपुरै सब जावै । मिलै संत अरु महंत सवै मिलि गोविंद गुण गावै । एति जग करि है जो भारी । फूल डोल की समय निरषि मम सुष पायौ सारी ॥ तिरि गये अधम नरनारी श्री रामचरणजी संत जाणि ज्यो समृथ अवतारी ॥ १ ॥ चैत चिंता भई दूरि सीत जब सतगुरु को लायौ । रामनाम की लगन लगी जव काल फिरयौ पायौ ॥ मानू जीव सुषसागर न्हायो । भवसागर की धार पार सतगुरुजी लंघवायो । भेव ये जाणै अधिकारी ॥ श्री राम चरण जी संत जाणि ज्यौं समृथ अवतारी ॥ २ ॥ वैसाष बसंती फूल षिलि रहे बन मैं वांणी । ग्यानी ध्यानी मुनि विदेही परमहंस विज्ञानी । सभा है स्वामी की ऐसी । अण भो आतम रूप मगन मन सनकादिक जैसी ॥ निरषि मन सुष पायो भारी ॥ श्री राम ॥ ३ ॥ जेठ जगत की रीतिक स्वामी सबै उठा दीनी । राम नाम की टेक जिज्ञासां निश्चै मन लीनी । दुविध्या निद्या चित्त चीन्ही । सहर उदैपुर जा इक चुगली राणा पै कीन्हीं ॥ दुष्ट की बुद्धि अतिकारी ॥ श्री राम ॥ ४ ॥ आसाढ आसै सुणीं नरपनै डंडिया भिजवाये । स्वामी राव मलिन मन जाणी आप ही उठि धाये । नगर तव छोडीली आये ॥ राजा रण सिंघ सुणी वात तव दरसन मन भाये । अरज करी साहि ल्याई । अचल करैंगे राज अवनि पर उनकी अंसाई ॥ ५ ॥ सांवण मांस स्वाति सूं स्वामी साहि पुरै राजै । अणभो कै उल्हार ग्यान घणसवदां

में गाजै । राव को हिरदो थल भीजै । अगम अग्यान अबोध जचा सो कर्म जाइ छीजै । राव के सत्रु नसि जाई । अचल करेंगे राज अवनि पर उनकी अंसाई ॥ ६ ॥ भाद्रभमास भली विधि रणसिंघ संगति कूं राषे । देसदेस के भावैं जात री तिनसूं यूं भाषै ॥ दरस तुम दीनो मोहि भाई । करो गुरू को दरसन परमगति तुम हमहू पाई ॥ सुणत मन आनंद होई जाई ॥ अचल ॥ ७ ॥ आसोज असाता गई निरप की दुवध्या दुरनासी । भरम करम तम मेटि चिदानंद सूरज पर कासी । नाव रटि ऐसो फलपासी । जनम मरण महा घोर नरक में रणसींघ नहीं आसी ॥ सेवा करि ऐसो फल पाई ॥ अचल ॥८॥ कातिक में कल्याण रूप नृप स्वामी पदपूजी । साहि पुरो किरतारथ कीन्हो कौन पुन्य क्यूंजी । गुरु जी गाथा फुरमावो । हमरामन कौ भेद षेद ये सबही मिटवावो । अन्देसोम्हारै ए भारी ॥ श्रीराम ॥९॥ अगहन आग्या मांनि वचन इक बोले भगवाना । महादेव अरधंगी संग लै यावन विचराना ॥ भूमि लष नमसकार कीन्हौं । गौरी मन मैं भई अंदेसो याहां कोऊ नहिं चीन्हौं । अरज तव सिव जीसूं सारी ॥ श्रीराम ॥ १० ॥ पोस पाछली वातक सिवजी दुरगा समझाई । वरस सहंस दस अंत संत इक विचरत ह्यां आई ॥ नगर पुनि तीरथ होई जाई । देस देस के संत जिग्यासी दरसण फल पाई । वसुधा यह आसाधारी ॥ ११ ॥ श्री रामचरण० ॥ माघ मनोरथ सुफल नरपनैं कथा सांची । सोई निगुरा जीव वात यह जो मानै जो काची ॥ बड़ाई संतन की ऐसी । गावै वेद पुराण गंगप्रति भागीरथ जैसी । ममोषी निति ही उरि-धारी ॥ श्री राम ॥ १२ ॥ श्री रामचरण जी की वारामासी दास रतन गाई । श्रीरामचरण जी की वारामासी दास रतन गाई । श्री परमहंस सुरतेसदेव ये गाथा समझाई ॥ श्रवण सुणि जो नर उरि धारै । चारि पदारथ मिलै तास कूं जग कै नहिं सारै । नांव को ऐसो वनभारी । श्री रामचरण जी संत जाणि ज्यौं समृथ अवतारी ॥ १३ ॥ इति ॥ वारामासी संपूर्णम् ॥ —प्राप्त हस्तलेख की पूर्ण प्रतिलिपि

विषय—राजपूताना साहपुरा में रामचरण नामक संत हुए हैं। उनकी महिमा में रतनदास ने यह बारामासी गाई है । कथा संक्षेप में इस तरह वर्णन की गई है:—

साहपुरा में संत रामचरण की बड़ी महानता थी । दूर दूर से लोग और संत साधू उनके दर्शनार्थ आते थे । जेठ के महीने में उन्होंने जगत के समस्त व्यवहारों को छोड़ दिया और केवल मात्र राम नाम की रटना करने लगे । किसी ने उदैपुर जाकर राणा रणसिंघ से चुगली कर दी । राजा ने स्वामी के पास डंडिया भिजवाये । स्वामी राजा की मलिनता जानकर स्वयं वहां चले गये । राजा लाचार हुए और उनकी सेवा में लग गए । कुछ दिन तक जब उनकी सेवा में ही समय व्यतीत किया तब उनके मन की दुविधा गई । स्वामी जी को एक दिन मालूम हुआ कि उस वन में महादेव पारवती आए हुए हैं तो उन्होंने सबको यह बात बतलाई । महादेव जी ने एक समय पारवती के पूछने पर कहा कि दस सहस्र के अंत में एक संत विचरता हुआ वहाँ आयेगा और फिर वह नगर तीरथ बन जायगा तथा दूर दूर से साधू सन्यासी एवं जिज्ञासु उनके दर्शनार्थ आएँगे ।

संख्या ८९. बारहमासी, रचयिता—रिसालगिरि कागज—देशी, पत्र—१, आकार—१ फी० ७इंच X ७इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) —४६, परिमाण (अनुष्टुप्)— १०४, पूर्ण,

रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि–नागरी, रचनाकाल—सं० १७०४ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद पुरोहित, ग्राम—खेड़ाबुजुर्ग, डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—बारहमासी लिष्यते ॥ वरसाऋतु बैरिनि आइयां। विनु सजन विरह तरसाईयां ॥ बाला जोबन उमर मेरी थोरी, क्या चूक पिया मोहि छोड़ी ॥ मेरी सारस कैसी जोड़ी, करि मोहब्बत पिया ने छोड़ी ॥ पपीहा कहेता पीऊ, जीउ निकसे मेरे बिनु प्यारे ॥ उठी घटा घनघोरि, गगन में छिपि रहे सब तारे ॥ कोइलि करि रही कूक सूष गई अलबेलि नारी ॥ दादुर रहे डहारि। पिया विनु झींगुर झनकारी ॥ दोहा ॥ उमड़ी घटा चहुँओर ते, वरसत करि करि घोर ॥ आसाड मास छाती कूटै बन मै कोहकत मोर ॥ काहु बैरिनि ने बिलमाइयां। बिनु सजन विरह तरसाइयां ॥ १ ॥ जे जोवन है दिन चारि, फिरि वीति जात वहार ॥ वरसन लागे वादर कारे। भरि आये नदिया सब नारे ॥ सावन में मनभावन आली पिया गये परदेस। मेरे मन में ऐसी आवै धरौं जोगन का भेष। अंग भबूत रमाऊं सजनी झोडूं लम्बे केस। घर घर अलष जगाऊं सजनी जौ पै सिद्धि करे गनेस ॥ दोहा ॥ घर घर झूला झूलती करि सोलह सिंगार। हम बैठी मन मारिकै सो कब आवै भरतार ॥ मेरी पिया सों लगन लगइयां। विन सजन विरह तरसाइयां ॥ २ ॥ विनु सजन रैनि अंधियारी चढै मदन फौजलये भारी ॥ सषी सूनी सेज हमारी नैनन से नीर रहे जारी ॥ भादौं गैहे लगभीर पिया परदेस किया वास। सूनी सेज तलफि रहि कामिनि भरदल चौमास ॥ जल थल नदिया भरै नीर सों चातक रहा प्यास। मिलै स्वाति की बूंद सजन सौं लगि रहि रे आस ॥ दोहा ॥ विजुरि चमकै गगन में, वरसत नीर अपार। छजां भीजै कामिनि, सुष सोवै संसार ॥ मेरे ऊपर राम गुसाइयां, विनु सजन विरह तरसाइयां ॥३॥ वदरा इतते उत छाये परदेसी सबै घर आये। नरदान पिंड दिलवाए, फिरि ब्राह्मण नौति जिमाए ॥ कुवांर कराया सजनी आये जानी। जोवन आया धाइ धाइ पति कीन्ही नादानी ॥ दिल का मरम मिलाना कोइ केहतै रसवानी ॥ समुझाया बहु भांति, सजन ने ऐकहु ना मानी ॥ दोहा ॥ देषौ सौजै मौज की करि गए मन की मौज। कूच नगारे दे गये, हांकि विरह की फौज ॥ घर नहीं मेरे साइयाँ विन सजन विरह तरसाइयां ॥ ४ ॥ मेरो दिन दिन जोवन वाढ़े नहीं कटै सजन बिनु जाड़ौ। मैंने कबहुं न पिया को टारो। तजि गए सजन मोहि गाडौ। वरषा गइ सरद ऋतु आइ निरमल भए चंदा। कातिक षिली चांदनी सजनी सुषी नहीं अंधा ॥ चकई से चकवा हुआ न्यारा, साहिब का वंदा सो गति भई हमारी सजनी किसमत का फंदा ॥ दोहा ॥ घर घर दीपक जारि के पिया संग षेलति सारी। हम बैठि मन मारि कै, पिया विनु वाजि हारि ॥ घर आइजा मेरे साइयां ॥ ५ ॥ सषी मूरष कंत हमारे धनियां तजि अंत सिधारे। मेरे सूधे होइ करमा रे, फिरि आनि मिलै पिय प्यारे ॥ अगहन गहनौ गढौ धरौ है सेस फूल माला। किस कौ यह री दिषाऊं सजनी विनु पिया धरूं आला ॥ आवै सजन करौं गल हरवा ज्यौ मैयां औ नंदलाला ॥ मै तो मुदरि बनौ सजन की पीतम नग आला ॥ दोहा ॥ आवै पिया परदेस तें हिलिमिलि काटै रैनि। वेसरि कौ मौडडर करौं संग राषौ दिन रैनि ॥ डारौ बांहियन मैं गल वाहियां विन सजन विरह तरसाइयां ॥ ६ ॥ मोहि पिया विनु सीत सतावै

बिनु सजन नींद नहीं आवै। मोहि जुगसम रैनि बिहावै बिछुरै कोई सजन मिलावै॥ पूस मास ते जात रहे कछु षवरि न पाइ। जोवनु मेरो ढरा जात सषि पिया बिनु माई॥ पांचो सजन करौं गलहरवा डारों गल बाहीं। संकर होंइ सहाइ हमारे घर आवै साई॥ घायल तड़फै नीर बिनु, जल बिनु तड़फे मीन। प्यारी तड़फे पिय बिनु, जोवन होत मलीन॥ दुष दे गए मेरे साइयां बिनु सजन बिरह तरसाइयां॥ ७॥ सषी रितु जाड़े की जाती परदेस पिया फटै छाती। सब सषी आयौ फुरमाती मेरी सूनी सेज कुम्हिलानी॥ माघ मास रितु भोग के सजनी फूले मस्त वसंता। मेरे जीय लागै रहे पिया सौं पीया का जीय कहु अंता॥ पूछौं पंडित जोतिसी कब घर आवै कंथ। जब घर आवै साजन मेरे नौति जिमाऊं संत॥ दोहा॥ माह मास दिन भोग के सो पिया ने छोड़ो संग। सुष औसर दुष दे गये करौ रंग में भंग॥ घर आइजा मेरे साइयां बिनु सजन विरह तरसाइयां॥ ८॥ कर प्रीति मैंने निठुराइ नहीं पाती लिषि कै भिजवाइ। नहीं दीन्हीं आनि दिषाई बिनु सजन नारि मुरझाई॥ जोवनु मेरो होत सवाया देषि देषि न्यारी। फागुन फैंट गुलाल भरैं और रंग भरै झारी॥ काहू सषि मेरे पिया भिजोये भरि भरि पिचकारी॥ बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ गावति नरनारी॥ दोहा॥ कामिनि षेलै कंत सौ घर घर हिलि मिलि फाग। हम विरहुलि तलफें पड़ी रही षाट सों लागि। मेरो रूठौ राम गुसाइयां बिनु सजन विरह तरसाइयां॥ ९॥ सषी फूली सब फूलवारी, भई सेज सिला ते भारी। नहीं आये कुंज बिहारी मरिहौं मैं मारि कटारी॥ चिंता भई चौगुनी सजनी, गई सब चतुराई। पिया रहे परदेस सषी कछु षवरि नहीं पाई॥ चैत मास साजन नहीं आये फूल रही बनराई। षिला गुलाब मोतिओ कलियां राई बेलि छाई॥ दोहा॥ प्रान जाय चह रहे, तजौं न पिया की आस। भूष मरौ दिन साठ लौं सिघ घासु नहीं षात। ठाडी सुंदरि अरज कररहियां बिनु सजन बिरह तरसाइयां॥ १०॥ गरमी बिनु सजन घनेरो फरकन लागे द्दग भुज मेरी। करताने नजर कछु फेरी घर आवै पति नहिं देरी। हुए लाल बन टेसू सवरै गोरी भई कारी। तपै भानु परे धूप लुहै चलै घर सोवति नारी। वरवै सषि सजन नहीं आये यो बोली प्यारी। परदेसिन के बुरे मामले सुन वातै हारी॥ दोहा॥ होत सगुन सुहावन, आगन बोले काग। पिया आवै परदेस तें षुलै हमारे भाग। डारो बहियन में गल वाहियां बिनु सजन बिरह तरसाइयां॥ ११॥ सषी लागे जेठ सुहाए मेरे पीतम को घर लाये। गई अवधि पिया घर आये सब पिछले दुष बिसराए। अठारह वीस गये रोज जब साजन घर आये। वारह दूनी तिथि वार अरतालिस सुहाए। सिरिर रितु सरद बसंत हेमरितु ग्रीषम वषारे॥ छह रितु गई मास भए बारह जब साज आये। सूषे बिरछ लगै विनु पातनि डारें लहराईं॥ रिसाल गिरि उस्ताद मास जब बारह कथि गाये॥ दोहा॥ एक सहस्र[१] सात[७] लौ गावै, संवत चौथी[४] साल। हीरा गी मुरली कहे, गावै रामदयाल॥ १२॥

विषय—वियोग शृंगार वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता कोई रिसाल गिरि हैं। अंत के दोहे से जान पड़ता है कि इनके एक शिष्य रामदयाल ने इस बारह मासी को गाया और किसी हीरा नाम के आदमी ने बांसुरी बजाई। लिपिकाल नहीं दिया है।

संख्या ९०. छींक विचार, रचयिता--सहदेव भड्डरी, कागज—देशी, पत्र--९, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१२, परिमाण (अनुष्टुप्)--११७, पूर्ण, रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान--पं० लक्ष्मी नारायण जी, पटवारी, स्थान व डा०--धनुआँखेड़ा, जि०--इटावा।

आदि--श्री गणेशाय नमः शकुन विचार लिष्यते ॥ चौपाई ॥ प्रथमहिं भाषौं छींक विचारा। सकल शुभाशुभ मति अनुसारा। छींक पीठ की कुशल उचारो, बाई कारज सवै सँवारौ ॥ सन्मुख छींक लड़ाई भासै। छींक दाहिनी द्रव्य विनासै। ऊंची छींक कहै जैकारी, नीची छीक होय भयकारी। अपनी छींक महा दुषदाई, ऐसे छींक विचरो भाई। छींक सूँघनी छल कर लीन्ही, सरदी धांस कही कल हीनी ॥ दोहा ॥ नीची सन्मुख दाहिनी, अपनी छींक असार। बाई ऊँची पीठि की, छींक कहौ सुष (? सार)।

अंत--उठै कछुक निशि गये विचार, पुंगी अक्षत लीन्हें वार। आवै इन वर सुनै सुबोल। शकुना शकुन विचार अमोल। पुंगी अक्षत तोय चढ़ाय। कह भड्डरी निज ग्रह को जाइ। वारस में विचारै ताहिं। तौ फल तत्क्षण मिलै सराहिं ॥ चौपाई ॥ रवि मंगल औ शनि जो वोलै। अग्नि वावला दुख में खेलै। सौम बृहस्पति बुध भृगुवारहि। भोजन तन धन नारि सँवारहिं। दोउ शुभ मिलै महा शुभ भाई। दोऊ अशुभ महा दुखदाई। शुभ अशुभौ मिलि मध्यम भाखैं। शकुनियों बिचार मन राखैं॥इति श्रीसहदेव भड्डर कृत॥ ॥ शकुन विचार ॥ समाप्तम् ॥ शुभम्

विषय--छींक विचार तथा मृग, सर्प एवम् पक्षियों की वाणी द्वारा शकुनाशकुन का विचार।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत पुस्तक भड्डर सहदेव की रचना है। इसमें उनके संबंध में कोई विशेष बात उल्लिखित नहीं है। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में एक जाति ही भड्डरी के नाम से पाई जाती है। इसी जाति का उपनाम जोइषी, जुतषी और ज्योतिषी भी है। कहीं कहीं 'भड्डऋषि' के नाम से भी ग्रंथ मिले हैं। प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता सहदेव भड्डर एवम् भडऋषि के भिन्न और अभिन्न होने के विषय में कुछ कहना कठिन है।

संख्या ९१. रसिक बोध, रचयिता--पं० सीताराम जी कविराय (भेलाई, राज्य तिलोई), कागज--देशी, पत्र--१३, आकार--७½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१४, परिमाण (अनुष्टुप्)--१६६, पूर्ण, रूप--उत्तम, पद्य, लिपि--नागरी, रचनाकाल--सं० १९२५ वि०, लिपिकाल--सं० १९२५ वि०, प्राप्तिस्थान--रामप्रताप सिंह, स्थान--चिलौली, डा०--तिलोई, जि०--रायबरेली।

आदि--श्री गणेशाय नमः दोहा--गणपति अरु भाषा चरन, धरौं शीश रत ध्यान। करौ मनोरथ सिद्धि मम, हरौ विघ्न अज्ञान। बसत तिलोई चक्कवै, कान्ह वंश नृप राज। यज्ञपाल असनाम तेहि, बड़ो गरीब निवाज। तिन कबि सीता राम पर, कीन्ह्यो चारु सनेहु। कह्यो नायका नायकनि, थोरेह मा करि देहु। तिनकी आज्ञा मानिके, तब कवि सीताराम। विरचै ग्रंथ ललाम लघु, रसिक बोध धरि नाम।

अंत—निशाकार को ऋतु वाउल मास। सुदी रवि तिथ्यि दिवा गुर खास, सुवाण[५] जमांक[२] छपाकर[१] अब्द[१]। रच्यो नृप आयसु ते लघु शब्द ॥ दोहा ॥ बहु ग्रन्थन को सार ले, रसिक बोध मैं कीन। जे करि हैं कण्ठाग्रते, होइहैं सुकवि प्रवीन। वासी सीताराम द्विज, बहिरेला शुचि देश। ग्राम मवैया तासु पति, अर्जुनसिंह नरेश ॥

विषय—प्रथम कवि ने गणेश जी और सरस्वती जी की वंदना की है। पश्चात् ग्रंथ निर्माण का कारण यों लिखा है कि तिलोई रियासत में राजा यज्ञपाल सिंह जी बड़े दानी और गरीब निवाज थे। उन्होंने मुझे आज्ञादी कि नायक नायिका के भेदों को थोड़े में वर्णन करो। उन्हीं की आज्ञानुसार यह ग्रंथ 'रसिक बोध' लिखता हूँ।

ग्रंथ में कवि के कथनानुसार नायिका भेद वर्णन किया गया है और तदनुसार इसमें नायिका, नायक, संचारीभाव, स्थायीभाव, आलंबन, उद्दीपन, हाव, भाव इत्यादि का वर्णन संक्षेप में किया है।

विशेष ज्ञातव्य—श्री सीताराम कवि का जन्म मवैया (वहरेला) वलीपुर, जिला बाराबंकी में सं० १८६५ वि० के लगभग सरयूपारीण ब्राह्मण, धौंकलराम उपाध्याय के यहाँ हुआ था। पिता ने इनके पठन पाठन की ओर विशेष ध्यान दिया और इन्हें संस्कृत व्याकरण की उत्तम शिक्षा दिलाई। पश्चात् इन्होंने संस्कृत और हिन्दी साहित्य का पूर्ण रीति से अध्ययन किया। लगभग ४० वर्ष की अवस्था में तिलोई आये। यहाँ के तत्कालीन राजा श्री शंकर सिंह ने आपका बड़ा आदर किया और भेलाई ग्राम के पास आपको ५१ बीघा मुआफी और बाग आदि देकर बसाया। ये तिलोई दरबार में अंत समय तक रहे। यहाँ के राजाओं की वंशावली इन्होंने विविध प्रकार के छंदों में लिखी है। इनकी कविता उत्तम है। कहीं-कहीं पर छन्द पद्माकर की कविता के टक्कर के हैं। भाषा ओज गुण पूर्ण अवधी है। आपकी बनाई हुई तीन पुस्तकें मैंने देखी हैं:—१—काव्य कल्पतरु, २—नायका भेद, ३—सरल पिंगल। तीनों पुस्तकें उत्तम हैं। आपका शरीरांत सं० १९५५ वि० के आस पास हुआ।

संख्या ९२ ए. भक्त विरुदावली, रचयिता—सिवलाल, कागज—देशी, पत्र—१६, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—९६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० महादेव प्रसाद जी, स्थान व डा०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ सोरठा ॥ सुमिरौं प्रथम गनेस, विघन विनासन दुष हरन। सुमिरत मिटत कलेस, आनँद मंगल सुष करन ॥ १ ॥ सुमिरौं उमा महेस, नाम निरन्तर जपत ही। रहत न अघ लवलेश, शिव शिव शिव कहत हो ॥२॥ बँदतु है पदकंज, आदि सरस्वति मातु के। सुमति देति सुष पुंज, लिषे भाल विधि जगत के ॥ ३ ॥ सुमिरौं सीताराम, सहसुजान निजहक्त ही। भजि लेहु आठहु जाम, राम राम रटना सही ॥ ४ ॥ ॥ दोहा ॥ बजरंग बाला सुमिरि कै। कथा करौ अनुसार। राम रतन सुंदर कथा। राम नाम है सार। तामैं प्रथमहि लिषतु है, भक्त विरुदवलि नाम। भक्त वछल समरथ प्रभू, सुषनिधि सीताराम।

अंत—मनी राम ने नाम सम्हारे। पुत्र जियौ भए सुष अधिकारे॥ रामहि नरसी भक्त तुम्हारा। रामहिं हुंडो दई सकारा॥ रामहि साहु भये तिहि हेतू। रथ चढ़ि आये कृपा निकेतू॥ राम कृपा नरसी पर कीना। हुंड वरसि प्रभूअ दीना॥ राम राम गुन तुलसी गाए। राम के चरनन ध्यान लगाए। सूरदास जी हरि गुन गाए राम कृष्ण के चरित सुहाए॥ राम के गुन नाभा जी गाए। भक्तमाल प्रभु उनही बुलाए॥ रामानंद तिलोचन स्वामी। राम प्रभू के अंतरजामी॥ राम को सुमिरै जैदेव पाई। राम कृपा करि छाटे भाई॥ माधोदास जु जानै आवा। जगन्नाथ सकला तऊ ठावा॥ राम कौ सरन वलव गहौ पाई। राम निवेरौ कीनो जाई॥ अग्रदास जी हरि गुन गाए। ध्यान मंजरी उनहिं बनाए॥ रामनाम नारद गुन गामै। हरषिकै करतल बीन बजामैं॥ जानि कै दास कृपा सुनि कीजै। राम के चरननि रति मोहि दीजै॥ भक्त विरुदावलि सुख की रासी। सुनतहि श्रवन कटौ जम फाँसी॥ कहै सिवलाल दास कौ दासा। देहु भक्ति प्रभु निज पुर वासा॥ इति श्री भ० वि० समाप्तम्॥ शुभम्॥ राम राम राम राम

विषय—भगवान् और भक्तों की विरुदावलि का वर्णन।

संख्या ९२ बी. भक्त विरुदावलि, रचयिता—सिवलाल, कागज—देशी, पत्र—८, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९२३ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी, स्थान—सिसियाट, डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ सोरठा॥ सुमिरों प्रथम गनेस, विघन विनासन दुष हरन। सुमिरत मिटत कलेस, आनंद मंगल सुष करन॥ १॥ सुमिरौं उमा महेस, नाम निरंतर जपत ही। रहतन अघलवलेश, शिव शिव शिव कहत ही॥ २॥ वंदतु है पद कंज, आदि सरस्वति मातु के। सुमति देति सुष पुंज, लिपै भाल विच जगत के॥३॥ सुमिरौं सीताराम, सन्त सुजान निज हस्त ही। भजि लेहु आठहु जाम, राम राम रटना सही॥ ४॥ दोहा बजरंग॥ बजरंग वाला सुमिरि कैं, कथा करौं अनुसार। राम रतन सुंदर कथा, राम नाम है सार॥ ५॥ तामैं प्रथमहि लिषतु हौं, भक्त विरुदावलि नाम। भक्त वछल समरथ प्रभू, सुषनिधि सीताराम॥ ६॥

अंत—रामहिं नरसी भक्त उबारा। रामहिं हुंडी दई सकारा॥ रामहिं साहु भये तिहि हेतू। रथ चढ़ि आये कृपा निकेतू॥ राम कृपा नरसी पर कीना। हुंडवरसि प्रभुअ दीना॥ राम राम गुन तुलसी गाये। राम के चरननु ध्यान लगाये॥ सूरदास जी हरि गुन गाये। राम कृष्ण के चरित सुहाये॥ राम के गुन नाभा जी गाये। भक्त मान प्रभु उनहिं बुलाये॥ रामानन्द तिलोचन स्वामी। राम प्रभू के अंतरजामी॥ राम कौ सरन बल नगरौ आई। राम निवैरो कीनों जाई॥ अग्रदास जी हरि गुन गाये। ध्यान मंजरी उनही बनाई॥ राम राम नारद गुन मैं। हर्षे कै करतल बीन बजामैं॥ जानि कैं दास कृपा मुनि कीजै। राम के चरननु रति मोहि दीजै॥ भक्त विरुदावली सुष की रासी। सुनतहि श्रवन करौं जम फाँसी॥ कहै सिवलाल दास कौ दासा। देहि भक्ति प्रभु निज पुर वासा॥

॥ इति श्री राम राम राम ॥ मिती माघ सुदी १३ ॥ संवत् १६२३ ॥ लिषी श्री जीवाराम मौजा धरवार के में ॥

विषय—श्री राम नाम की महिमा, राम की भक्तवत्सलता और भक्ति माहात्म्य वर्णन ।

संख्या ९३. संत सरन, रचयिता—शिवनारायन, कागज—देशी, पत्र—३८, आकार—७ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—कैथी, प्राप्तिस्थान—पं० लाड़िली प्रसाद, ग्राम—धरवार, डा०—बलरई, जिला—इटावा ।

आदि—॥ संतसरन ॥ सब्द ग्रंथा संत उपदेस, प्रथमे आरंम्ह होत सही । तीना वंनी संत वचन परवना संत संत सही एका ॥ दोहा ॥ छाडी चलो घर आपना, आवागमन की राहा । सीव नरायेन आपना, सभ संतन कीन्हा ॥ दोहा ॥ १ ॥ पठै गुनै समुझै वुझै, ऐही संत उपदेसा । सीव नरायन कहि दियो, चले अपना देसा ॥ दोहा ॥ २ ॥ सोरठा ॥ नीती नीती करत अनन्द, सोभा अपनो पाई कै । छुटत सकल सभ फंद, जो चलै सभै मिलाइ कै ॥ सोरठा ॥ सभै मिलावै मिली चलै, भेद भाव गुनयो ता समुझी वूझी सभ अमल करै, समदरसी सोई संता ॥

अंत—चौरासी से वाची परै, निरषी परषी निरधार । तषत मा कान विचार है, निरगुन सगुन ते पार ॥ तजहु दोसरी आसा, नींदा मृथा नष्ट होई । तेहीमो भ्रम फांसा, अजहु छाडु नीर जो भई ॥ आगु पाछु पछिता है, कछु गरीब होई सो करै । संत सुमंत सुभाय, एह सम ग्रीथा वसी रही ॥ सुनी सुनी संता सदेस, पढ़ी गुनी बूझो विचारही । देस भेस उपदेस, पाई देषी परचारी है ॥ पढ़ै गुनै समुझैं बुझै, एही संत उपदेसा । सीवनरायन संत होई । अमल करै निज देसा ॥ पद ॥ सतगुर वानी सब्द उपदेस सम पूरन भई स सही संत बचन परवन सही ॥

विषय—पंथ संबंधी उपदेश ।

संख्या ९४. रामजन्म, रचयिता—सोहन, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौधरी शंकर लाल जी, स्थान व डा०—मलाजनी, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ रामजन्म ॥ दादरा कव्वाली ॥ जन्मे कौशिल्या के लाल रघुवर चरित दिखानेवाले । नौमी चैत्र शुक्ल गुरुवार, प्रगटे अंश सहित सुतवारि । दशरथ मन भयो मोद अपार, उत्सव दान करानेवाले ॥ १ ॥ आये वशिष्ट गुरुधाम, सबके बतलाये गुण ग्राम । लक्ष्मण भरत शत्रुहन राम हैं सब सुयश बढ़ानेवाले ॥जन्मे कौशिल्या० ॥ २ ॥ विश्वामित्र खवरि ये पाय, पहुँचे अवध पुरी में जाय । नृप से माँगी लिये दोउ भाय लक्ष्मण राम कहानेवाले ॥ जन्मे० ॥ ३ ॥ विद्या सिखलाई मुनि सारी, मग राक्षसी

ताड़िका मारी ॥ फिरि तो करी यज्ञ की त्यारी तहँ दोउ बने रखानेवाले ॥ जन्मे० ॥ ४ ॥ बढ़ता धुआँ देख उस बीच, आये सकल निशाचर नीच ॥ फेंका दंडक वन मारींच निश्चर आरण्य नसानेवाले ॥ जन्मे० ॥ ५ ॥ बन में शिला इक भारी, थी वह गौतम ऋषि की नारी उसको चरण छुआकर तारी सुर पुर धाम पाठाने वाले ॥ जन्मे० ॥ ६ ॥

अंत—लक्ष्मण बोले कड़ी जबान, दीन्हां रघुनन्दन ने ज्ञान । वो अवतार प्रभू का जान धनु दै वन को जानेवाले ॥ जन्मे० ॥ १५ ॥ पाती दशरथ को पहुँचाई, व्याहन चले बरात सजाई ॥ यक घर व्याहे चारों भाई मन में मोद बढ़ानेवाले ॥ जन्मे० ॥ १६ ॥ दशरथ जनक से माँगि बिदाई, घरको चले बिदा कराई । पहुँचे अवधपुरी में आई । पुरबासी सुख पानेवाले ॥ जन्मे० ॥ १७ ॥ सूक्षम धनुष यज्ञ है यार, वरणत चरण शेष गए हार । मैं क्या जानूं मूढ़ गँवार वो खुद कथन करानेवाले ॥ जन्मे० ॥ १८ ॥ शंकर जनकी करत सहाय, सोहन कथकर छंद बनाय । यमुना संग में रहे गवाय युग युग साथ दिलानेवाले ॥ जन्मे कौशल्या के लाल । रघुबर चरित दिखानेवाले ॥ १९ ॥ इति ॥

विषय—राम जन्म की कथा का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में रामजन्म का वर्णन है । इसके रचयिता ने अपना नाम सोहन और अपने साथी गवैये का नाम यमुना बतलाया है । इनके एवं रचनाकाल के संबंध में कुछ पता नहीं चलता ।

संख्या ६५ ए. भक्त उपदेशनी, रचयिता—सुखसखी, कागज—देशी, पत्र—१८, आकार—५½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८७, पूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० उमाशंकर जी द्विवेदी, आयुर्वेदाचार्य, पुराना शहर, वृन्दावन, जि०—मथुरा ।

आदि—अथ भक्त उपदेशनी लिख्यते ॥ दोहा ॥ श्री गुरुचरण प्रताप तै कहौं भक्त उपदेश । जैसे मंगल रूप निधि रसिक नरेश नरेश ॥ १ ॥ चारि चिन्ह हरिभक्त के प्रगट दिखाई देत । क्षमा दया अरु दीनता पर औगन ढक लेत ॥ २ ॥ जप तप ब्रत हरि ना मिलै करौं जतन सब कोय । सांची भक्ति सों हरि मिलै, खरौ अपुनपौ खाइ ॥ ३ ॥ ज्ञान उपदेश ॥ गई वस्तु सोचत नहिं, आगम चिंतत नाहिं । वितु बाढ़ै वृत सूर है सो ग्याता जगमांहि ॥ ४ ॥ सदा एक रस रहत है सुख दुष दोऊ त्यागि । सो ज्ञानी संसार में मिलै पूरवै भाग ॥ ५ ॥

अंत—॥ काल उपदेश ॥ काल व्याल ज्यौं डसि रहे क्यौं सोवै दिन वादि । एक लाड़िली लाल के चरण कमल आराधि ॥ ६२ ॥ काल करोती कर्म पर जो चेतै तो चेत । पल पल तेरी आयु कौ विदरै नान्ही रेत ॥ ६३ ॥ यह जो मन उपदेशनी वांचि विचारै कोय । ताकै घट मैं अटकि है जा घट कपट न होय ॥ ६४ ॥ यह विवेक हिय धरि रहौ दोऊ प्रीतम लषी नैन । कह्यौ 'सुख सखी' सुन्यौ महा सुखद है वैन ॥ ६५ ॥ ॥ इति श्री मन उपदेशनी संपूर्णम् ॥

विषय—निम्न लिखित विषयों पर उपदेशात्मक वर्णनः—

१—ज्ञान उपदेश ।
२—वैराग्य उपदेश ।
३—गुरु उपदेश ।
४—संत उपदेश ।
५—नाम उपदेश ।
६—भाव उपदेश ।
७—साँच उपदेश ।
८—पन उपदेश ।
९—लाज उपदेश ।
१०—मूरख उपदेश ।
११—दुष्ट उपदेश ।
१२—झूठ उपदेश ।
१३—कपटी वर्णन ।
१४—निर्मल वर्णन ।
१५—निंदा वर्णन ।
१६—लोभ वर्णन ।
१७—काम उपदेश वर्णन ।
१८—मोह उपदेश ।
१९—गर्व उपदेश ।
२०—अपराध वर्णन ।
२१—क्रोध उपदेश ।
२२—साकत वर्णन ।
२३—माया वर्णन ।
२४—धीरज वर्णन ।
२५—आजीवि वर्णन ।
२६—सत्संग वर्णन ।
२७—क्षमा वर्णन ।
२८—प्रेम उपदेश ।
२९ काल उपदेश ।

संख्या ९५ बी. बिहार बत्तीसी, रचयिता—सुखसखी, कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—५½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ट)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—नया, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान - पं० उमाशंकर जी द्विवेदी, आयुर्वेदाचार्य, पुराना शहर, वृन्दावन, जि०—मथुरा ।

आदि—अथ बिहार बत्तीसी लिष्यते ॥ दोहा ॥ नमो नमो श्री गुरु चरन शरनहि वढ़ौ प्रताप । श्री प्रेम रूप प्रगटत भये श्री कृष्णदास हरि आप ॥ १ ॥ करौं कृपा कछु जस कहौं यह अक्षर रस रूप । भावत नाव जो नेह की, जो समझे सुषरूप ॥ २ ॥ कहा कहूं छबि युगल की, मोपै कही न जाय । ज्यौं सागर पानी अधिक, चिरिया चोंच समाय ॥ ३ ॥ खरी माधुरी युगल की निरषि हियौ हुलसाय । श्री हरिगुरु संत कृपा करै, तब ही जानी जाय ॥ ४ ॥ गौर श्याम हिय में बसौ छिन छिन नव अनुराग । निशिवासर निरषत रहे, ताही के बड़भाग ॥ ५ ॥ घमडि रहे घनसार सुप वैठे युगल किसोर । लिये कटोरा प्रेम कौ, सषि छिरकत चहुँओर ॥ ६ ॥ निपट अटपटी बात है यहे युगल रस केलि । निरषि निरषि सुष रसिक जन रहे नैननि में झेलि ॥ ७ ॥

अंत—सब सुप सार विहार है निरखत विरलै कोय । रसिक सजाति संग मिली हिय कै नैननि जोय ॥ ३२ ॥ जो जन है रस रूप कौ अधर सुधारस पान । महाभाव आनंद में निशिदिन जात न जान ॥ ३३ ॥ सब रस है अनुराग कौ मिलन गात सौं गात । श्याम रंग सारी सरस लहंगा लाल सुहात ॥ ३४ ॥ तुमसौं हा हा खात हौं, सुनौ रसिक कर जोर । राखौ चरन कमलतर अहो प्रिया शिर मौर ॥ ३५ ॥ विहार वतीसी हरि मिलन

दरसैं युगल किशोर। 'सुख सखि' दुहुनि सिंगार करि मिलै रसिक शिरमौर ॥ ३६ ॥ मैं गायौ सबही सुजस हरि लीला गुनगान। निज आरत मेरी यहै सुनौ रसिक मन जान ॥ ३७ ॥ इति श्री विहार बत्तीसी सम्पूर्णम्।

विषय—राधाकृष्ण के विहार संबंधी वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—'विहार बत्तीसी' बत्तीस दोहों की एक छोटी सी रचना है। इसमें राधाकृष्ण के विहार संबंधी दोहे बड़े मार्मिक और भावमय हैं। पुस्तक में रचयिता का तथा सन् संवत् का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

संख्या ९६. रामचरित्र, रचयिता—सुन्दरदास (रामपुरी ?), कागज—देशी, पत्र—७, आकार—८ X ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—९८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९२५ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० शंकर देव जी, स्थान—भैंसा, डा०—कोसी खुर्द, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः अथ राम चरित्र लिख्यते। ओंम नमो नमो नमस्कार गुसाई। घटघट व्यापक जल थल माहीं ॥ १ ॥ एक ब्रह्म दूजो कोई नाहीं। तेरी कला सकल जगमांही ॥ २ ॥ पारब्रह्म पूरण पैदाकर। नारायण नृसिंग नटनागर ॥ ३ ॥ अरुष पुरुष अवगति अविनासी। तेरी मांड सकल पैदासी ॥ ४ ॥ सुरतेतीसूं रिषि अभ्यासी। नौ जोगेसुर सिद्धि चौरासी ॥ ५ ॥ हुकमी बंदा रहै सब ठाढा। कर जोरे करुना कर गाढ़ा ॥ ६ ॥ ब्रह्मा इन्द्र देव अरु दाना। वै तो हैं हरि के उर ग्याना ॥ ७ ॥ बडे बडे दिगपाल कहावैं। तेरा दिया सब कोई पावै ॥ ८ ॥ राम सुमिर मन मेरा भाई। बार बार कहूं तो समझाई ॥ ९ ॥ गुरू उपदेस सुनो देकाना। राम सुमिर मन मूढ दिवाना ॥ १० ॥ रामहि सब दुख भंजन हारा। रामहि महासुष के दातारा ॥ ११ ॥

अंत—रामहि की संभू सुधिपाई। रामहि कीरति बेदो गाई ॥ ५ ॥ रामहि कूं पाडुगलैहि बारे। रामहि को बिसवास लै धारैं ॥ ६ ॥ रामहि कौ करवत ले कासी। रामहि कौं मन फिरै उदासी ॥ ७ ॥ राम कहा सो होय निसतारा। राम चरन सेव नित प्यारा ॥ ८ ॥ रामहि गरीब निवाज कहावैं। रामहि भक्ति प्रताप बढ़ावैं ॥ ९ ॥ रामहि कहासू सरबस मिलई। रामकथा यह जुग जुग चलई ॥ १० ॥ रामायन मथ माषन काढ़ा। रामहि जस जुगाजुग बाढ़ा ॥ ११ ॥ रामहि चित्त अचित्त आनंदा। रामकहाय मिटि जाय दुषदंदा ॥ १२ ॥ रामचरित्र जै मन लावै। जोनि संकट बहुरि नहिं पावै ॥ १३ ॥ रामचरित्र कानौं सुनै। ताकी सदा राम सू बने ॥ १४ ॥ रामरस पीवै और कू प्यावै। 'सुन्दरदास' रामगुन गावै ॥ १५ ॥ रामचरित्र पढ़ै सवैरा। जन्मे मरै न बारो बारा ॥ १६ ॥ रामपुरी में मेराबासा। गुरू 'फालसुष' सुन्दरदासा ॥ १७ ॥ इति श्री रामचरित्र संपूर्णम् ॥

विषय—राम माहात्म्य वर्णन। प्रत्येक चौपाई का आरंभ राम शब्द से किया गया है तथा यह दर्शाया है कि राम ही सर्व व्यापक है एवं एक मात्र उसी के ध्यान से मुक्ति होती है।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ से ज्ञात होता है कि रचयिता निर्गुण संप्रदाय का है। ग्रंथ में जितने भक्तों के नाम गिनाये गये हैं वे सब निर्गुण पंथी हैं जैसे कबीर, नामदेव, रैदास आदि। ग्रंथकार ने अपना परिचय तो दिया है, किंतु ग्रंथ निर्माण का समय नहीं दिया। इनका नाम सुन्दरदास है। गुरु का नाम कालूसुष तथा रहने का स्थान रामपुरी लिखा है। शायद अयोध्या को रामपुरी बतलाया है।

संख्या ९७ ए. ग्रंथ चिंतावणि बोध, रचयिता—सूरतराम, पत्र—२, आकार—६३/४ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—१७, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भूदेव जी, स्थान—छौली, डा०—श्रीबलदेव जि०—मथुरा।

आदि—इंद्रजाइ इंद्रासन छांड़ी। इंद्राणी तब फिरै भआडी॥ अपणूं स्वारथ सबै मिटाई। राम नाम जप ल्यौरे भाई॥ १९॥ अपणी अपणी करिहैं अंधा। गाल बजाइ फुलावै कंधा॥ जमकै द्वारै पकडि मंगाई। राम नाम जपि ल्यौ रे भाई॥ २०॥ लालच लोभ कदै नहिं छूटै। मांही बारै ज्यूं त्यूं लूटै॥ ज्यूं मूंसे पर तकत विलाई। राम नाम जपि ल्यौ रे भाई॥ २१॥ ऐसे मूढ़ हरामी गंधा। निस सोवै दिन करिहै धंधा॥ जम पडे सिर करत बड़ाई। राम नाम जपि ल्यौ रे भाई॥ २२॥ जम के द्वारि पडै वोहो मारा। कहो तहाँ कुण करै संभारा॥ अपणी भुक्तै करी कुमाई। रामनाम जपि ल्यौ रे भाई॥ २३॥ जीव पुकारै बहु दुष पावै। सुकृत होइ तो ताहि छुड़ावै। भजन किया जम द्वार न जाई। राम नाम जपि ल्यौ रे भाई॥ २४॥

अंत—॥ दोहा॥ चिंतावणि यह बोध जू सुणत सकल सिधि होई। सूरतराम जो हरि भजै परम सुखी वै सोई॥ १॥ सूरतराम सब जग कलै कहा देव औतार। रहदी सतगुरु को सबद रामनाम तत्तसार॥ २॥ इति ग्रंथ चिंतावणि बोध संपूर्णम्॥ दूहा ४॥ चौपाई॥ २४॥ सरव॥ २८॥ ग्रंथ॥ २॥ —संपूर्ण प्रतिलिपि।

विषय—भगवान् को न भजकर सांसारिक सुखों में लिप्त होने के विरुद्ध चेतावनी दी गई है।

विशेष ज्ञातव्य- प्रस्तुत ग्रंथ अपूर्ण है। सारे ग्रंथ में २४ चौपाई और ४ दोहे हैं जिनमें से १८ चौपाइयां प्रारंभ की लुप्त हो गई हैं। समाप्ति पर इस ग्रंथ को (संभवतः रचयिता का) दूसरा ग्रंथ माना है। इससे जान पड़ता है कि इस ह० लि० गुटके के आरंभ में एक दूसरा ग्रंथ भी लिपिबद्ध था जो नष्ट हो गया है। ग्रंथकर्त्ता ने न तो अपने विषय में ज्यादा जानकारी दी है और न निर्माण काल ही दिया है। लेखक निर्गुणपंथी है। गुरु के शब्द को और रामनाम को ही केवल तत्व का सार समझता है एवं यही प्रायः निर्गुण पंथियों का चिह्न है। रचना भी निर्गुण पंथियों की सी है। लिपिकाल नहीं दिया है।

संख्या ९७ बी. ककावत्तीसी, रचयिता—सूरतराम, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—६३/४ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण,

रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भूदेव जी, ग्राम—छौली, डा०—श्री बलदेव, जि०—मथुरा।

आदि—॥ अथ ग्रंथ कका वत्तीसी लिख्यते ॥ स्तुति ॥ प्रथम राम रमती तत्त जू सतगुरू सबही संत। जन सूरतराम बंदन करै वारूं वार अनंत ॥ दोहा ॥ सत्तगुरू कूं नित वंदना, निमस्कार नित राम। सव संतन की महरि ग्रंथ करूं कका वतीसी नाम ॥१ कका कृपा करी गुरूदेव जी लियो सरणगति मोहि। दियो भजन निज ब्रह्म को सान्या कारज सोइ ॥ २ ॥ षषा षूव भयो मन भजन मधि दुंदरता गई भागि। और दिसा चित्त नां चलै रह्यौ चरण मन लागि ॥ ३ ॥ गंगा ग्यान भयो परकास तव हरि सरवगि दरसाइ। षाली कहूं दीसै नहीं सचराचर मधि पाइ ॥ ४ ॥

अंत—ससा सतगुरु करि दया, कियो जीव कूं पार। ऐसे गुरु कूं कीजिये, वंदन वारूं वार ॥ ३१ ॥ हाहा हरिगुरु महरि करि दई बुद्धि यह माहि। यह ग्रंथ सुपि हरि भजै ताकौ कारज सहजै होइ ॥ ३२ ॥ कका बत्तीसी ग्रंथ मधि भाष्यौ सुमरण सार। बाँचि बिचारै जो कोई। जन सूरतराम होइ पार ॥ ३३ ॥ इति ग्रंथ कका वतीसी सपूर्णम् ॥ दूहा ॥ ३३ ॥ ग्रंथ ॥ ३ ॥

विषय—'क' से 'ह' तक प्रत्येक अक्षर पर एक-एक दोहा रचा गया है जिनमें भक्ति विषयक उपदेश किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रंथ पूर्ण है और इस हस्त लिखित गुटके में लेखक का तीसरा ग्रंथ है। विशेष के लिये "चिंतावण बोध" का विवरण पत्र द्रष्टव्य।

संख्या ९७ सी. पद वधावणां, रचयिता—सूरतराम, पत्र—४, आकार—६½ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—३५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भूदेव शर्मा, ग्राम—छौली, डा०—श्री बलदेव, जि०—मथुरा।

आदि—पदराग वधावणां ॥ आजि आंगणिये म्हारै जै जै कारा। संत पधान्या म्हारा बाला रे ॥ टेर ॥ भाव भगति की केसरि गारूं। ले ले अंग लगाऊँ म्हारा बाला रे ॥ १ ॥ सुरति निरति सूं सेवा साजूं। प्रीति का पिलंग बिछाऊं म्हारा बाला रे ॥२॥ आनंद मंगल बधावा गाऊं, घड़ी घड़ी बलि जाऊं म्हारा बाला रे ॥३॥ साधू सेवन पर भगति पावे। जनम मरन बहुरि ना आवै ॥४॥ संत ज सम्रथ वेद जगावै। भगत परम पद पावै ॥ ५ ॥ जन सूरत राम की याही वीनती। चरणा में चित्त राषौ म्हारा वाल्हा रे ॥ ६ ॥ पद ॥१॥ संत मिलाप अकव होसी। विछड़त वोहो दुष होसी म्हारा वाल्हा रे ॥ टेक ॥

दरसण जाती निति प्रति पाती। संत चरण रज ल्याती म्हारा वाल्हा रे ॥ १ ॥ भाई भाई नैंण जऊ भोजोऊं। पीव मिलण कव होसी म्हारा वाल्हा रे ॥ २ ॥ सीत चरणाम्रत घोलि जपीजै। प्रेम रसिक उरि सालै म्हारा वाला रे ॥ ३ ॥ अणभै चरचा छोल जकरता। वै मुर्षा हिरदै भ्यासै म्हारा बाला रे ॥ ४ ॥ वार वार मैं पोषज देता। अंग सीतल करि

डार्‍यौ म्हारा बाला रे ॥ ५ ॥ जन सूरतराम अब कैसे भूलूं राम रस गुरू पाया म्हारा वाल्हा रे ॥ ६ ॥ पद ॥ २ ॥

अंत—॥ दोहा ॥ सुष का सागर राम है दुष का भंजन हार। राम चरण तजिये नहीं, भजिये बारं बार ॥ १ ॥ राम भजन गुरू वंदगी, येही जग में सार। जन सूरतराम सांची कहै तिरता लगै न वार ॥ २ ॥ राम ॥

विषय—गुरु की स्तुति की गई है।

संख्या ९८. जैमिनि अश्वमेध, रचयिता—सुवंसराइ, कागज—विचौंदी, पत्र—११०, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—३५२०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७४९ वि० = १६९२ ई०, लिपिकाल—वि०—१७८१ = १७२४ ई०, प्राप्तिस्थान—जमनाप्रसाद, इमलीवाले ब्राह्मण, गोकुल, मथुरा।

आदि— × × × ......प्रभाकर कौ जानियै। है अह्न गुसाईं पुत्र तिनके जु नरसिंह गाइये। विठलदास मथुरादास ने भुव दै जु दहनी आइये ॥ दोहरा ॥ गोवर्धन तिनके तनुज भए गदाधर जान; चरन कमल गोविन्द के मधुकर ह्वै लीयो ध्यान। उपज्यो तिनके बुद्धि लघु सुवंस राइ इति नाम, जैमुनि भाषा तब करी कृपा करी जब स्याम इन्दु[१] दीप[७] अरु वेद[४] निधि[९], संवत कियो प्रकास। शुक्ल पक्ष मधु मास नहिं भौमवार शुभ ग्यास।

अंत—॥ दोहरा ॥ सत्रह सै उनचास मैं माधव मास वसन्त; पूरन भा वुधि बारि कौ भई समापत अन्त ॥ चौपाही ॥ कहत सुवंस कथा सो गावै; सो वैकुण्ठ लोक पद पावै; जो नर याहि कहे अरु सुने, अरु नीके धर मन में गुने, तन ते सबही पाप बहावै, मुक्तिरूप फल सो नर पावै ॥ दोहरा ॥ बहुत कष्ट करि यह करि लई सबन रुचिर मान। सुनै साधु जो चित्त दे हित करि करै बषान ॥ इति श्री महाभारथ अश्वमेध के पर्वन जैमुनि कृते फल स्तुति वर्णन नाम सप्तम षष्टतमो अध्याय। संवत् १७८१ वर्षे कार्तिक सुदी १५ बुधौ ॥ लिषतं अनीराइ दीषत सनोढ़िया। पठनार्थ मीर नूर्दीन ॥ शुभम् ॥

विषय—महाभारत में जैमिनि अश्वमेध का यह पद्य में अनुवाद है। इसमें पांडवों के अश्वमेध का वर्णन है। १—जन्मेजय और जैमिनी संवाद, यज्ञ प्रारंभ, भीमसेन प्रवेश, अश्वहरण, पत्र—१—१३। २—वृषकेतु के उपदेश, योवनाश्व विजय, यौवनाश्व और युधिष्ठिर का मिलाप, धर्म्म निरूपण, भीमसेन का आगमन, श्री कृष्ण का नगर प्रवेश, पत्र—१४—२४। ३—खारल अश्व हरण, सत्यभामा उपदेश, नीलध्वज विजय, अश्वशिला की मुक्ति हंसध्वज पयान, सुधन्वा युद्ध, सुधन्वा वध, सुरथ वध, हंसध्वज मिलाप, अश्व-का स्त्री राज्य में प्रवेश, मणिपुर दर्शन, पत्र—२५—४४। ४—वृषकेतु और साल्व, हंस ध्वज मूर्छा, बभ्रुवाहन युद्ध, रामचन्द्र राज्य अभिषेक, सीता लक्ष्मण संवाद, सीता परित्याग, लवकुश का आख्यान, लव-मूर्छा, लक्ष्मण आगमन, लक्ष्मण-मूर्छा, राम अयोध्या प्राप्ति, पत्र—४५–५६। ५—पुण्डरीक पाताल आगमन, कुन्ती स्वप्न दर्शन, बभ्रुवाहन

विजय, ताम्रध्वज युद्ध, मोरध्वज और ताम्रध्वज की नगर प्राप्ति, मोरध्वज की कथा, धर्मराज्य वर्णन, वीर वर्म उपाख्यान, चंद्रहंस–उपाख्यान, हंसद्वज उपाख्यान, पत्र—५७–८९। ६—अश्वमेध यज्ञ चन्द्रहास और श्री कृष्ण मिलाप, ऋषि आगमन इत्यादि, पत्र—९०—१११।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रंथ खोज में सर्व प्रथम आया प्रतीत होता है। विवरण में सुवंसराइ का उल्लेख नहीं है। ग्रंथ अपूर्ण है, इससे रचयिता के संबन्ध में सम्पूर्ण विवरण ज्ञात नहीं हो सकता। कवि ने अपना परिचय प्रारंभ में दिया जिसका उद्धरण दे दिया है। सुवंसराय गोस्वामी मालूम होते हैं। इनके पिता का नाम गदाधर और बाबा का नाम गोवर्द्धन है। कहाँ के रहनेवाले थे, इसका पता नहीं। रचनाकाल जो सन् १६९२ है ग्रंथ में दो जगह आया है। लिपिकाल भी बहुत पुराना है, सन् १७२४। शायद हिन्दी कविता में जैमिनी अश्वमेध का पहले पहल इन्होंने ही अनुवाद किया है। छन्द दोहा, चौपाई हैं जिनका १७वीं सदी में अधिक प्रचार था। सबसे महत्व की बात इस ग्रंथ के विषय में यह है कि यह एक मुसलमान मीर नूरदीन के पढ़ने के लिये लिखा गया, जैसा कि समाप्ति पर उल्लेख है—"लिषतं अनीराइ दीषत (दीक्षित) सनोढ़िया। पठनार्थ मीर नूर्दीन" इससे प्रकट होता है कि मुसलमान भी हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथ बड़े चाव से पढ़ते थे।

संख्या ९९. दत्त सतोत्र (दत्तस्तोत्र), रचयिता—श्री सुक्राचार्य, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री वासुदेव शरण जी, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा, जि०—मथुरा।

आदि—अथ दत्त स्तोत्र लिष्यते ॥ जटा जूट विभूत भूषन। नष चष अषंडितं ॥ विसरिजन व देह लीला। सोहं दत्त डिगम्बर ॥ १ ॥ मुकुट केस वसेप वनिता। बचन श्रीमुष अमृतं ॥ समृथं सब जोग सम्रथ। सोहं दत्त डिगंबरं ॥ २ ॥ अल्पबक्ता सुल्पनिद्रा भोजनं सुषस्मं ॥ उदर पात्र निमिष मात्र। सोहं दत्त दिगम्वरं ॥ ३ ॥ भेष टेक विभेष वित्रक। लोम लविधि न लिप्तं ॥ गिगन रूप निराम निहचै। मोहे दत्त दिगम्वरं ॥ ४ ॥ सिंघ रूप निसंक निरभै। निडर निसि दिन उभ (? न) मनि ॥ जोति रूप प्रकाश पूरन। सोहं दत्त दिगम्वरं ॥ ५ ॥ वीतरागी नरग त्यागी। लक्षतक्ष समागमं ॥ एकाएकी मि(?नि) रापेषी। सोहं दत्त दिगम्वरं ॥ ६ ॥ उग्रतेज अंकूर नूरं। सूरबीर पराक्रमं ॥ अगम अनहद अपार वाणी। सोहं दत्त दिगंवरं ॥७॥ सत सील संतोष धारण। सुमरणं सति विचारणं ॥ संसार भौ जल तिरण तारण। सोहं दत्त दिगम्बरं ॥ ८ ॥ बाघंबरं नपटबरं चीताबरं पीताम्बरं ॥ पहरै पाट पटंबरं। तल धरती ऊपर अम्बरं ॥ सोहं दत्त दिगम्बरं ॥ १० ॥ इति श्री सुक्राचार्य विरचिते दत्त सतोत्र संपूर्ण ॥ इति श्रव गोटिको संपूर्ण ॥ श्रव गोटिके की संख्या वाणी हजार ॥ १००० ॥ शुभं भवेत ॥ सोरठा ॥ संवत संख्या जान। अष्टादश अठतीस पुनि ॥ भाद्रवमास बषान। सुकल पछ तिथि पंचमी ॥ १ ॥ सुकरवार ॥ दोहा ॥

हरि पुरुष प्रगट भये। निरगुन भगति उजीर ॥ तिनकै पंथ में वृक्त जन। से सेवा संत सुधीर ॥ १ ॥ जास सिष जग में प्रगट। अमर पुरुष गुरदेव ॥ तास सिष सुषराम है। लिषि जो पोथी एव ॥ २ ॥ लिषतं नगर नवलगढ़ में वांचै विचारै तिनकूं राम राम ॥ कटि कूबर कर वेगड़ी। नीचा मुष अरनैन। इन सबकां पोथी लिषी। नीकारषीयौसैन ॥१॥

विषय—दत्त की स्तुति वर्णन।

संख्या १०० ए. तुरसीदास के पद, रचयिता—तुरसी दास, कागज—देशी, पत्र—१४, आकार—९ X ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि० [हस्तलेख के अंत में सुक्राचार्य कृत दत्त स्तोत्र में दिए गए एक सोरठे के आधार पर], प्राप्तिस्थान—(पूरा पता) श्रीयुत वासुदेव शरण जी क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा, जिला—मथुरा।

आदि—अथ पद लिष्यते ॥ राग गौड़ी ॥ ताहि मैं गाऊं गाऊ। गाइ गाइ सच पांऊ ॥ टेक ॥ पतित उधारन दूतरतारन नरक निवारन रे ॥ कलि विष टारन कलंक उतारन कारज सारन रे ॥ १ ॥ सब सुष पूरा है भरपूरा। निरमल नूरा रे ॥ जाकै वाजै तूरा सदा हजूरा। आनंद मूरारे ॥ २ ॥ अंतर जामी सबका स्वामी। सबसिर नामी रे ॥ तारन तिरन प्रेम सुष निधि। है निहकामी रे ॥ ३ ॥ प्रेम प्रकासा पूरन आसा। भंजन त्रासा रे ॥ तुरसीदासा दे विस्वासा। राषै पासा रे ॥ ४ ॥ १ ॥

गलता नमता कब आवैगा। तब प्रानी सच पावैगा ॥ टेक ॥ पांचौ इन्द्री का बल छूटै। मनवा उलटि समावैगा। माया मोह भरम का बादल। परदा सबै विलावैगा ॥ १ ॥ चार विचार मिटै जीव केरा। आपा परं विसरावैगा ॥ २ ॥ जन तुरसी सुष सागर मांही। मिलि करि मंगल गावैगा ॥ ३ ॥ २ ॥

अंत—रे नर काहे कू करत पती। वारू के मंदिर बैठि बावरे। चलत न बेर रती ॥ टेक ॥ मैं मेरी करि करम बँधावत। समझत नांहि रती ॥ बारू के मंदिर बैठि बावरे। बाँधत पार कती ॥ १ ॥ सुतदारा धनधाम बनावत। मानत फूल किती ॥ आवत अवधि सिरावत रतन तन। चीन्हत नहीं सुगती ॥ २ ॥ राज विलास सिंघासन आसन। छाँडि सकल विपति ॥ इहि बिपति सूं लागि स्वाग नर। बहुत गये अगति ॥ ३ ॥ जिह सिरज्यौ ताह फेरि समझ भजि। रचहि निरति सुरति ॥ जन तुरसी जन्म मरन भव छूटै। सुमरत प्रान पती ॥ ४ ॥ २ ॥ पद ॥ ५९ ॥ राग ॥ १९ ॥ इति श्री तुरसीदास जी की वाणी पुटकर संपूर्ण ॥

विषय—निर्गुण मतानुसार भगवान् की भक्ति तथा उपदेश वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ का नाम 'गो० तुलसी साहब के पद' हैं, किन्तु पदों में आनेवाला नाम तुरसीदास तथा जन तुरसी है। मेरे समझ में इस ग्रंथ का नाम 'तुरसी दास के पद' होना चाहिए जिससे पदों में आनेवाले नाम के साथ भी संबंध निभ जाता है। लिपिकर्ता ने ही शायद भूल से ऐसा कर दिया हो जो कि प्रायः उनके द्वारा होता रहता है। ग्रंथ में रचना का समय नहीं दिया है।

संख्या १०० बी. ग्रंथ चौषरी, रचयिता—तुरसीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि० (हस्तलेख के अंत में दिए गए एक सोरठे के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा, जि०—मथुरा।

आदि—अथ ग्रंथ चौषरी ॥ गुरु परसाद अकलि प्रवांनी। वैसनौ तनी जौ चाल बषानी ॥ जौ यह अषिर करै विचारा। जो चीन्हे सो उतरै पारा ॥ १ ॥ प्रथमै विसरै माया मोह। विसरै प्रीति वैरता द्रोह ॥ विसरै ममता मान बढ़ाई। विसरै हरि विन बुरी भलाई ॥ २ ॥ विसरै माया गरब गुमान। बिसरै खुदी गरब गुमान ॥ विसरै परपंच वाद विबादं। विसरै षटरस इंद्री स्वादं ॥ ३ ॥ विसरै काम क्रोध का संग। विसरै पुछिंद् विषै का रंग ॥ विसरै पाषंड कपट सुभाव। विसरै रूप रंग रस चाव ॥ ४ ॥ विसरै हंसन बकन की वानी। विसरै कलह कलपना कांनि ॥ विचरै सत संगति महि। कीरत करै अघाइ ॥ ५ ॥ सोइ परम निज वैष्णव ॥ सो पति कूं विसरिन जाइ ॥ ६ ॥ १ ॥ साहै राम नाम ततसार। साहे समता ग्यान बिचार ॥ साहे बुद्धि विवेक प्रकास। साहै भाव न गति विस्वास ॥ १ ॥ साहै जत सत सील संतोष। साहै दया धरम तजि दोष ॥ साहै निज करनी आधार। साहै नांव निरंजन सार ॥ २ ॥ साहै दीन गरीबी ग्यान। साहै दिढकरि धीरज ध्यान ॥ साहै निरति सुरति मन पवन। साहै निज निरमल निज चरन ॥ ३ ॥ साहै परमारथ तजि स्वार्थ। साहे अर्थ पेलि सव अनर्थ ॥ साहै सांच झूठ छिटकाई। साहे प्रेम प्रीति निजध्याइ ॥ ४ ॥ साहै निजतत्त निरमला। साहै ऐ मत सार ॥ सोइ परमनिवैष्णौ। कनलै कूकस डार ॥ ५ ॥ २ ॥ नकरै तीर्थ बरत की आसा। न करै जप तप आन उपासा ॥ न करै पाथर पूजा सेवा। न करै हरि बिन विधि न षेवा ॥ १ ॥ न करै व्यभिचारी का संग। न करै कामिनी कनक कुसंग ॥ न करै दुख बनिज व्यौपार। न करै सिष साषा परवार ॥ २ ॥ न करै आसन घर घर वारं। न करै पढ़ि गुनि बहु विस्तारं ॥ न करै प्रवरती सूं नेह। सो भगता मै पाइ न षेह ॥ ३ ॥ न करै निद्यापर उपहासी ॥ न करै प्रीति बिना अविनासी ॥ न करै किस सूं वैर न भाव। न करै हरि बिनु आन ऊपाव ॥ ४ ॥ प्रीति करै निज देव सूं। मन का भरम नसाइ। सोई परम निज वैष्णौ। जन तुलसी बलि जाइ ॥ ५ ॥ ३ ॥ आरति सूं हरि नांव उचारै। आरति सूं निजरूप निहारै ॥ आरति सूं अनभै रस पीवै। आरति सूं मरि वहुरि न जीवै ॥ १ ॥ आरति सूं निरमल जस गावै। आरति सूं निज तत्त दरसावै। आरति सूं चीन्हे पदसोई। ता चीन्हे फिरि जनम न होई ॥ २ ॥ आरति सूं पति सूं मन लावै। आदि अंत मधि रामहि धावै ॥ आरति सूं पेषै पद सुंदर। जाके दरस मिटै दुष दुंदर ॥ ३ ॥ आरति सूं सेवा करै। तन मन आतम लाइ ॥ सोई परम निज बैष्णौ। निरमल मांहि समाई ॥ ४ ॥ ऐसी करनी जो करै। सो निज हरि की देह। तुरसी जा मन मरन कर। मानै सकल सनेह ॥ ५ ॥ ४ ॥ इति ग्रंथ चौषरी सपूर्ण ॥

विषय—निर्गुण मत के ढंग पर परम वैष्णव की विवेचना।

संख्या १०० सी. करनी सार जोग ग्रंथ, रचयिता—तुरसीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ X ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि० (हस्तलेख के अंत में दिए गए एक सोरठे के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा, जि०—मथुरा।

आदि—करनी सार ग्रंथः—दुलभ जोग संग्राम कठिन षंडे का धारं। थाके संकर सेस और जीव कहा विचारं॥ १॥ सुर नर मुनि जन पीर रहे भव जल उरवारं। गुर गम ग्यान विचारि गहै विरला जन पारं॥ २॥ समदृष्टि सम भाय रहै निर वैर निरासं। सो जन उतरै पारि काल नहीं करै विनासं॥ ३॥ जाकै सत्र मित्र नहीं संग दूजो कोई। सदा रहै निरबंध साध जन कहिए सोई॥ ४॥ नहीं किसी सूं नेह देह का सुष नहीं चाहै। सीत उष्ण सिर सहै आदि अंत ऐसी निरवाहै॥ ५॥ घर बन दोऊ रीति रचै नहीं इन सूं भाई। कनकामणि त्यागि; रहै उनमन ल्यौ लाई॥ ६॥ ऐसी रहनि रहै तास कूं लै पहिचानि। कहै सांच रहै कांच सौंई प्रहरी ए प्रानी॥ ७॥ सबद सरोतर कहै मिथ्या नहीं मुष सूं बोलै। षोजे पद निरवान काहे कू बन बन डोलै॥ ८॥ आसा तृष्णा छांड़ि तजै सब जग व्यौहारं। रहे निरंतर लागि सोइ जोगी तत्त सारं॥ ९॥ काया कूं बसि करै मौह तजि ममता मारै। ऐसा अवधू जानि काल भै दूरि निवारै॥ १०॥ निरधन रहै उदास नहीं संग दूजा भावै। ऐ कलमल अबीहंसोई अवधूत कहावै॥ ११॥ नहीं आगली चाहि पीछें संसा नहीं कोई। रमै सोंगी परबान देवगति कहीयै सोई॥ १२॥ निंदहू वंदहू कोइ नहीं किस ही सूं वैर न भावं। सब देषे सम भाय जिसा रंक तस रावं॥ १३॥ आमन स्थिर करै हाटै नहीं घर घर द्वारं। इजगर की गति गहै पावै अकल्प अहारं॥१४॥ चंचल मेल्है मारि उलटि इम्रत रस पीवै। ऐसा अवधू जानि मरै नहीं जुग जुग जीवै॥ १५॥ लाल चलो भनि वारि आत्मा अस्थल आवै। तहाँ वाजै अनहद तूर नरका दरसन पावै॥ १६॥ कूवा बाइ निवांण करै नहीं बाड़ी बागं। आसण मढी मसाण तजै सब बाद विवादं॥ १७॥ तंत मंत ओषद जड़ी बूटी नहीं जानै। अवगति बिन आराधि झूठ सबहिं करि मानै॥ १८॥ परिहरि बाद विबाद तजै सबहनि का साथं। चकमक ज्वाला झारि करै नहीं जीव की घातं॥ १९॥ स्वाद सकल संग तजै षाटा मीठा अर षारा। इंद्री भोगन देय सोइ जोगी मन सारा॥ २०॥ इला पिंगला फेरि पछिम कू उलटा ध्यावै। भंवर गुफा कै घाट पीवै इमृत सच पावै॥ २१॥ अमृत पीवै अघाइ तपत सब तन की जाई। थकित होइ तामांहि जा सकै बाप न माई॥२२॥ परिहरि पांच पचीस दोइ तजि एक पिछानै। सतगुरू के प्रसाद इसी गति विरला जानै॥ २३॥ तजै दुष अरू सुष गमन में औसन लावै। तहाँ देखे निज नूर मगन ताहि मांहि समावै॥ २४॥ दोहा॥ इहनिजग्यान विचारि के। उनमन रटै समाइ॥ तुरसीदास अंतर नहीं। भगति होइ हरि आइ॥ २५॥ करनी सार जोग ग्रंथ संपूर्ण॥ २॥

विषय—जोगी बनने के विषय पर दार्शनिक विवेचना जो कबीर के विचारों से मेल रखती है।

संख्या १०० डी. साध सुलक्षन जोग ग्रंथ, रचयिता—गो० तुरसीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि० (हस्तलेख के अंत में दिए एक सोरठे के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा, जि०—मथुरा।

आदि—साध सुलक्षन जोग ग्रंथ ।। साधू जन संसार में। रमें सुभाइ सुभाइ ।। काहू के रंग ना लिपै। अपनै रंग रहाइ ।। १ ।। मुष बानी सूं सबद चवै। कुसवद कहै न काइ ।। सील सवूरि साहि करि, चलै एक ही भाइ ।। २ ।। निरपष निरदावै रहै। वरते सदा विचार ।। काम क्रोध अहंकार का। संग न करै लगार ।। ३ ।। दया मया हिरदै रहै। सदा सुमति सूं मेल ।। हरद हारिका नांव लै। मन अरमन सा मेल ।। ४ ।। पर निंधा भावै नहीं। परपंच पल न सुहाइ ।। पर आत्म सूं प्रीति करि। परचै बिलबै ध्याइ ।।५।। विषइमृत भंजन मही। भिनि भिनि करि लेष ।। विष त्यागै इम्रत गहै। ऐसा काज करेय ।।६।। अल्प अहारी अल्प तुय। अलपही निंद्रा नेह ।। अलपरमन रमैं जुगति सूं। ऐसा सवद करेह ।। ७ ।। आदू मारग आदि मत। आदू गहै विचार ।। आदि अंत रटिबो करै। निराकार निजसार ।। ८ ।। करम तजै करता भजै। करै न जग की कान ।। काया नगरी षोजि कै। करता लेहु पिछानि ।। ९ ।। षिरे षपै सोना भजै। अबिनासी सूं नेह ।। देहतणां सुष त्यागि कै। होइ रहै सम षेह ।। १० ।। होइ रहै सम षेह लौं। तन मन आपा जारि ।। आरति सूं आतम महि। राम रमै इकतार ।। ११ ।। मुष जु आन ऊचरै नहीं। परपंच सुनै न कानि ।। उभै लोइ ना उलटि कैं। धुनि मैं राषै ध्यान ।। १२ ।। कोउ निंदो बदों कोउ। करो न आदर भाव ।। कहुवां चित्त न लागही। हरि भजिबे को चाव ।। १३ ।। सुषदिस कबहु न पग धरै, दुष न देषि मुरझाइ ।। दुष सुष द्वै समान करि। समता सूं निरताइ ।। १४ ।। समि जुलोष्ट सम कंचना। समि जु मान अपमान ।। सीत उष्ण समकरि गिनै। सम चौरासी जान ।। १५ ।। सम जु धूप सम छाँह रो। समपानी सम पाल ।। सम सेत फटिक ममोतियां। सम कंकर सम लाल ।। १६ ।। सम मन पवनां तन मही। निरति सुरति समान ।। नाद विंद सम करि भजै। पूरण परम निधान ।। १७ ।। परापरिसूं रचि रह्या। साध सुलक्षन वेह ।। तुरसी ऐसा संतजन। प्रतछि प्रभु की देह ।। १८ ।। इति साध सुलछिन जोग ग्रंथ संपूर्ण ।। ग्रंथ ।। ३ ।।

विषय—साधुओं के सुलक्षणों के विषय में निर्गुणमतानुसार उपदेश।

संख्या १०० ई. तुरसीदास की वाणी, रचयिता—तुरसीदास, कागज—देशी, पत्र—१८, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८३८ वि० (हस्तलेख के

अंत में दिए गए एक सोरठे के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्री वासुदेव शरण जी, क्यूरेटर, म्युजियम, मथुरा, जि०—मथुरा।

आरंभ—अथ गुसांई जी श्री तुरसीदास जी की फुटकर वांणी लिष्यतें ।। अथ श्री गुरूदेव जी कौ परिकरन ।। वंदन व ध्यान ।। नमो नमो निजानंद मय। निरालंब निजदेव ॥ निराकार निराधार प्रभु। अबगति अलष अभेव ।। गुरू पद रज वंदन जु करि। संत जनहु की सेव ।। तुरसी ऐसे सुमिरि के। जन्म सुफल करि लेव ।। २ ।। नमो नमो निरंजन नाय। निरगुणराइ नमोनमः ।। नमो नमो ग्यानरूपाइ। गुरू देवाइ नमो नमः ॥ २ ॥ १ ॥ ॥ श्री गुरू स्तुस्ति महिमा निधान ।। गुरू दाता महामोछिका। गुर मसतक का मौर। तुरसी गुरू सम को नहीं। पुज्य जगत में और ॥ १ ॥

अंत—।। पीव पीछाननी कौ परिकरन ।। कीया काहू का नहीं। थप्या न काहू जाइ ।। तुरसी उथप्या ना परै। सो पीव हमारा आइ ।। १ ।। तुरसी छिति के बोझ कौ। ताहि नहीं तुछभार ।। निरंतर न्यारा रहे। सो निजकंत हमार ।। २ ।। तुरसी पानी में बूढ़ै नहीं। पावक सकै न दाहि ।। पवन उड़ाया ना उड़ै। सो पीव हमारा आहि ।। ३ ।। तुरसी छिपै नहीं आकास में। गुन इंद्री सूं न्यार। मनु वुधि चित्त अहंके परै। सो निज कंत हमार ।। ४ ।। × × × तुरसी कृतम जहां लौं। मन न पतिआय ।। उपत षपत कै परै पीव। ताहि लै सौंपि काइ ॥ २२ ।। तुरसी ता ऊपर अवर। दूजा नाहिं कोइ ॥ तेज पुंज समूथ धणी इष्ट हमारा सोइ ॥ २३ ।। ३१८ ।। १८ ॥ संपूर्ण ।।

विषय—१—बंदन ध्यधान, श्री गुरु स्तुति महिमा विधान, पत्र—१ तक। २—गुरु कृपा उपदेस समूथाई कौ, परिकरन, पत्र—२ तक। ३—गुरु कल्पतरुवत विधान, गुरु कामधेनुवत विधान, भगति को परिकरन अथवा परम मंगल विधान, सुमरन विधान, पत्र—५-६ तक। ४—दास विधान, पत्र—७ तक। ५—निहक्रमी पतिवरता को परिकरन, पत्र—९ तक। ६—सील कौ परिकरन, पत्र—११ तक। ७—भय को परिकरन, पत्र—११ तक। ८—विनती कौ अंग, पत्र—१३ तक। ९—सजिवनि को परिकरन, पत्र—१४ तक। १०—पारिष को परिकरन, जीवन मृतक को परिकरन, पत्र—१५ तक। ११—दया निरवैरता कौ परिकरन, पत्र—१६ तक। १२—सुंदरि कौ परिकरन,, पीव पिछाननी को परिकरन, पत्र—१७ तक।

संख्या १८० यफ. तत्वगुन भेद जोग ग्रंथ, रचयिता—तुरसीदास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८३८ वि० (हस्तलेख के अंत में दिये एक सोरठे के आधार पर), प्राप्तिस्थान—श्रीयुत वासुदेव शरण जी साहब, क्यूरेटर, म्यूजियम, मथुरा, जि०—मथुरा।

आदि—तत्वगुन भेद जोग ग्रंथ ॥ राम नाम तत सार। सुमिरि अभिअंतर प्रानी ॥ भरम करम निवार। समझि सतगुरु की बानि ॥ १ ॥ काल जाल जंजाल। लागि तन मन मति षोवै ॥ भरम निसा में पैसि। मुग्ध मूरष मति सोवै ॥ २ ॥ वुधि विवेक प्रकास।

उलटि तहाँ करै निवासा ॥ सब घट सिरजन हार । यूं परिहरि पर आसा ॥ ३ ॥ भए अनन अनंत । सेव सब आन जु त्यागि ॥ गरब गुमान गुदार । दीन होइ निसुदिन जागी ॥ ४ ॥ धर्ती तना गुनसाहि । स्वाद स्वार्थ जु निवारि ॥ प्रमार्थ प्रतीति सुमति । सब हिरदै धारी । दुषी सुषी समान । द्रोह काहू नहीं कीजै । निरि बैरी निति रहै । सुमिरि कै लाहा लीजै ॥ ६ ॥ दया मया संतोष सील । सहनता जु गहीये ॥ बुरी भली मुषतैं जु भूलि कबहुं नहीं कहिए ॥ ७ ॥ कोऊ निंदौ नितही जु । कोऊ बंदौ भल पाई ॥ दोऊ समकरि सुमरिये । सकल भवन पतिराइ ॥ ८ ॥ ज्यूं जल दिन अरुराति । चलत पल अटकै नहीं ॥ ऐसे गवन करि थिर मिलिए । सुषसागर मांहि ॥ ९ ॥ कहूं अटकिये नाहीं । रटिये नित हरिनामा ॥ नांव बिना जो करिये । सो तुरसी वेकामा ॥ १० ॥ सबही कूं सुष देय । दुष दीजै नलगारा ॥ ज्यूं जलमांहि घोष । अंति न्यारे का न्यारा ॥ ११ ॥ काम क्रोध अहंकार । लागि पलहु न रहिए ॥ संत नदी जु सभाइ । जाइ सुष सिंधु जु मिलिये ॥ १२ ॥ कहा निरगुन श्रगुण कहा । सकल ही समै करि लीजै ॥ अनिनर गत सहाइ । स्वादसे कछू न कीजै ॥ १३ ॥ कहा षटा कहा मीठा । कहामधुर कहा षारा । सवहि हिरसि निवारि । अग्नि जिमि करै अहारा ॥ १४ ॥ बुरा भला नहीं कहिए । लहिए सो भोजन कीजै ॥ अत्स अग्नि बुझाइ । सदा साई सुमरीजै ॥ १५ ॥ मन वच क्रम सुनि वीर । इह जुगत दिढ़ कर साहि ॥ तौ तिरत न लागै बार । पावै परचै सुधताई ॥ १६ ॥ मन मनसा जमनाइ । समाइ प्रेम पद मांहि ॥ बाइतनौ गहिमत । अनंत कहूं रचिये नांहीं ॥ १७ ॥ कहां रंक कहां राव । काहू का आसक्त न होइये ॥ बा इतनी गति स्याहि । सकल तजि निरबंध रहिए ॥ १८ ॥ कनक कामणी त्यागि । सुष संपति सब षोई ॥ षोये बिना संताप । जन्म जन्मांतर होई ॥ १९ ॥ मानि हमारि सीष । राम अभिअंतर गाई ॥ पांचि पसीचौ त्यागि । जागि जगपति सिर नाई ॥२०॥ ज्यूं सब में आकास । बाहरि भीतरि इकसार ॥ ऐसे प्रभु को पेषि बहुत । कहा करै बिचार ॥ २१ ॥ अवगति अपरंपार । अडिग अविनासी देवा ॥ रह्या दसौ दिसि पूरि । पलटि परिचै करि सेवा ॥२२॥ बाहरि भीतरि एक । एक सवहीन में जानी ॥ अर्ध उर्ध मधि एक । कहीं सूं रचि ग्यानी ॥२३॥ सबही मत औगाहि । सारमत तोहि सुनाया ॥ ऐसी करणी करै तौ । बहौरि न काया ॥ २४ ॥ दोहा ॥ काया कबहु न धारई । बहौरि न जगु आइ ॥ तुरसी सुष सागर मही । रहिए सदा समाहि ॥ २५ ॥ इति तत्व गुन भेद जोग ग्रंथ संपूर्ण ॥ ग्रंथ ॥ ४ ॥

विषय—मोक्ष प्राप्ति के लिये निर्गुण मतानुसार उपदेश किया गया है, जैसे, समदृष्टि रखकर शील, संतोष को प्राप्त कर और इंद्रियों को दमनकर रामभजन करना चाहिए आदि ।

संख्या १०० जी. तुरसी बानी (अनुमान से), रचयिता—तुरसीदास, कागज—देशी, पत्र—२०२, आकार—१० X ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्) ४९३६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७४५ वि०= १६८८ ई०, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, मालिक मंदिर गोकुलनाथ जी, गोकुल, मथुरा ।

आदि—× × × । दोहा ॥ नहिं कनकस्यौ बैरता, जदपि कसै सुनार । कान कंठ पहिरन कौ और न कोऊ बिचार ॥ मीठी महास्वारथ भरी, मनहिं सुहाती बात ॥ तुरसी सुष भाषै नहीं । सो गुरु त्रिभुवन तात ॥ राषी या संसार की, भाषी नहीं कबीर ॥ कहि कहि वचन विराट के, तोरे भ्रम जंजीर ॥ बाहर मीठा बोलना, माही करवा सोइ ॥ तुरसी सो सत गुरु नहीं । मतिर पतीजो कोइ ॥

अंत—तुरसी ज्यो कुछ बादरी, राष्या चन्द छिपाइ । ऐसी दुरत बास्नाए, मत कोऊ पति आइ ॥ तुछ बास्ना तुछ अविन, करि मान्य जु नाँहि । तुरसी मिले उपाधि के, काल झाल होई जाँहि ॥ मन जीवे तों लो जीवे, उर बास्ना अनेक ॥ तुरसी मन मृतग भए, रहे एक का एक ॥ चौपाई ॥ काया कसो उग्र तप धरौ ॥ देही करि जीवत ही मरौ ॥ तुरसी जीवत मरै न मन ॥ तो लौं न मिटत बास्ना तन ॥ साषी ॥ निरमूरत होय मन कौ, तब बास्ना मिटाय । तुरसी उरै मिटै नहीं, कसै कसे यह काइ ॥ × × ×

विषय—वेदान्त और अध्यात्म शास्त्र का अत्यन्त विलक्षण ग्रंथ है:—१—गुरू शिष्य सम्मिलित विधान, गुरू ज्ञान ।। ग्रंथ-महिमा ॥ तुरसी गुरू प्रसाद शास्त्र मत, आत्म अनभौ जानि । सिद्ध साधिक सबकी कृपा, यामे सबै प्रमान ॥ चौपाई ॥ अनन्त शास्त्र अनन्त बानी । अनन्त कथा रिषि मुनिन वषानी ॥ तुरसी यामे सबको सार । हमनीकैं कीयो निरधार ॥ याही मैं भागवत को सार भूत है सोइ । याही वाशिष्ठ मत बूझे विरला कोइ ॥ याही में श्रुति स्मृति कौ, सार भूत सब ग्यान । याही में पुराणनि कौ, धर्म्म समूह अमान ॥ विद्या तीनों लोक की, और कहौं कहाँ लौ आन ॥ तुरसी यामे हैं सही, सबको सुधि विज्ञान ॥ तुरसी याही माही भक्ति है, प्रेम पावनी सोइ । याही मैं वैराग है, षोजि लेइ जो कोइ ॥ याही माही जोग है, जोगनि जीवनि मूरि । याही माही ग्यान है, करन द्वैत निरमूर ॥ वेदान्त सिद्धान्त को, सब सन्तन कौ सार । तुरसी यामे है सही, सबकी अर्थ विचार ॥ तुरसी याही मैं आषे जु हम, अधिकारी प्रति धर्म । उत्तम ज्ञान मध्य को भक्ति, कनिष्ट कौ शुभ कर्म ॥ २—ज्ञान का अधिकारी, स्तुति महिमा, कर्म मिश्र भक्ति, योग, वैराग, ज्ञान, भक्ति, सारभक्ति, श्रवन विधान, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चना, वन्दन, दास विधान, सखीभाव, नैवेद्य, प्रेमभक्ति; विरह को परिकरण, ब्रह्मज्ञान, परिचय, रस, हैरान, लय आदि के प्रकरण । ३—निहकर्मी, पतिव्रता, चेतावनी. मनप्रकरण, सूक्ष्ममार्ग, जन्म, माया, गुणत्रय, त्रिगुण, लिंग भेद इत्यादि इत्यादि ।

विशेष ज्ञातव्य—इस हस्तलेख में 'इतिहास समुचय' नामक ग्रंथ भी लिपिबद्ध है जो उसी कलम और स्याही से लिखा हुआ है जो प्रस्तुत ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ है । उसकी पुष्पिका इस प्रकार है:—"इति श्री महाभारते इतिहास समुच्चये ॥ तेंतीसमों अध्याय ॥ ३३ ॥ इति श्री महाभारथे संपूर्ण समाप्त ॥ समत् १७४५ वृषे मास कार्तिक सुदि ७ बार सनी वासरे ॥ नगर गंधार सुथाने सुभमस्तु लिषतं स्वामी जी श्री श्री श्री श्री १०८ उधोदास जी को सिष्य स्वामी जी श्री श्री श्री श्री १०८ श्री श्री लालदास को सिष्य तुरसीदास बाँचे जिसको राम राम ॥"

संख्या १८१. मल्ल अषारौ, रचयिता—तुलसीदास, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—६३⁄४ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०९, पूर्ण, रूप—प्राचीन—पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामकिशोर जी, स्थान—घरेला, डा०—फरै, जि०—मथुरा।

आदि—अथ मल अषारो लिष्यते ॥ गोकुल नाथा गोपीन साथा। षेलत व्रज की षोरी हो ॥ सषा सहित दस मध्य विराजें। हरि हलधर की जोरी हो ॥ सुनि गोकल गोपाल जन्म लियो कंस काल भय भीते हो ॥ बोहो विधि करत उपाव छलन को। छल बल जात न जीते हो ॥ बानी भेद विचारि तुरत ही। निकट अक्रूर बुलाये हो ॥ हसि करि कह्यो देस ईतने मेरें। काज न कबहुँ आये हो ॥ जब डरप सकुचों सुफलक सुत। राज रजाईस पाउ हो ॥ गोकुउ जाय नन्द जी को ढोटा। छल बल कर आउ हो ॥ राम कीसन दोउ बीर कहावें। भेद न जानत कोऊ हो ॥ घरी एक मल अषारे लाऊँ। सषा सहित वे दोउ हो ॥

अंत—त्रिया भेद चण्डोर पछारयौ भेद न जानत कोऊ हो ॥ जै जै करत नग्र के वासी। जीत स्याम की होई हो ॥ श्री कृष्न के संग है कंस पछारयो। कालिन्दी ठठ आन्यो हो ॥ तुलसी पत्र नौत मामा कु भानज नौतौ दीनौ हो ॥ तुरत ही वसुदेव बंदि छुड़ाई उठ देवो उर लीजै हो ॥ उग्रसेन कु राज तिलक दियो आपनौ चौर ढुरायौ हो ॥ बैठे स्याम स्यंघासन गरजत घर घर बजत बधाई हो ॥ दीयोदन कृपा करि जनकों सन्तन के सुषदाई हो ॥ सो या लीला पढ़े सुनावै अति पुनीत बड़ भागी हो ॥ तुलसीदास रनजीत झाँपे चरन कवल अनुरागी हो ॥ इति श्री मल्ल अषारौ संपूर्ण ॥ शुभं मस्तु ॥

विषय—श्री कृष्ण की बाल्यकालीन वीरता और उनके द्वारा दुष्ट राक्षसों का संहार होना। कंस का कृष्ण को उत्सव के बहाने मथुरा बुलाना, कंस के राक्षसों से उनकी छेड़ छाड़ और उनका एक-एक राक्षस को मारना। अन्त में कृष्ण का कंस के अखाड़े में कुबलय और चण्डूर सदृश राक्षसों का बध करना, यही कथा भागवत के आधार पर वर्णित है।

संख्या १८२ ए. कृष्ण परीक्षा, रचयिता—उदय, कागज—देशी, पत्र—१५, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मनोहरलाल जी अध्यापक, अ० प्रा० स्कूल, श्री वलदेव, जि०—मथुरा।

आदि—× × × ....। मैं अबलौं ऐसी कोऊ नहि नारि बिहारी ॥ ग्वारन सूं हांसी करै फांसी सी डारै। वांकी सी बोलनि कहै बहु भांति हंसावै ॥ हंसे हंसावै और सों गावै गुमराइ ॥ चंचल छलवल चातुरी आतुरी अताई ॥ ४४ ॥ लाजन काहू की करै सिर धरै दहेंडी ॥ गोरस गुण बेचति फिरै आंषिन में पैंडि ॥ ४५ ॥ आठ सात सजनी वनी संग लिये डोलैं ॥ फूलन के मिस सघन वन पीतम तक तोलैं ॥ ४६ ॥

लाइ कहूँ ते वांसूरी वन वन बेनु बजावे । गाय वजाथ नचाय चितवत ताहि रिझावै ।।४७।। गिने न वेर कुवेर कू जित तित उठि धावै ॥ ना जानूं कहा करति है सवराति गमावै ।।४८।। ताकी पन परतीति की कछु गति परति न जानी ।। को पावै नर निपट छल कपट सयानी ।। ४९ ॥

अंत—राधा राधा कहत वन नंद नंद पुकारयो ।। इतने में राधा तहाँ नर वेष बिगारयो ।। भई सुरति ही भामिनि निजरूप बनायो ॥ आई अव सुनि सामरे निज नाम सुनायो ॥ सुनत वोल षोले पलक दृग देषि सिराये ।। वरसन के विछुरे मनो सजन मन भाए ॥ मिले कंठ सो कंठ उठि गल सू गल वांही ॥ दृग आंसू आनंद के वैठे इकठाई ॥ × × × प्रीति परीक्ष्या कृष्ण की राधे तव लीनी ॥ उदै उक्ति जेती सू मति सो वरनन कीनी ॥ जो गावै सीषै गुणै सहज रस रीति ॥ उदै होइ उर में तवै पूर्ण प्रेम प्रतीति ॥ इति श्रीकृष्ण परीक्ष्या संपूर्णम् ॥

विषय—एक दिन राधा ने ग्वालिये का रूप धारण कर श्री कृष्ण की परीक्षा लेने का विचार किया । तदनुसार रात्रि के समय इस रूप में वन के एक कुंज में श्री कृष्ण के पास गईं । वहां राधा की बड़ी निंदा की और कहा, वह दुराचारिणी राधा आपके योग्य नहीं है । हाँ, बड़े गोप की एक कुमारी अवश्य आपके योग्य है । इस तरह उस गोप कुमारी की श्रीकृष्ण के आगे बड़ी प्रशंसा की । श्री कृष्ण को यह बहुत बुरा लगा । अतः उस छद्मवेशी गोप की बड़ी निंदा की । राधा की बड़ी प्रशंसा कर उन्हें अपनी इष्ट देवी माना तथा राधा के ध्यान में तल्लीन हो गए । यह देखकर उस गोप ने उलाहने के रूप में कहा कि यदि ऐसी इष्ट तुम्हें वह राधा है तो ध्यान से ही उसे बुलाइये । निदान श्री कृष्ण ने राधा का ध्यान किया । उनकी ध्यानाकृति को देखकर राधा छिपी न रह सकीं और अपना छद्मवेश परित्यागकर श्री कृष्ण से आनंद पूर्वक मिलीं ।

विशेष ज्ञातव्य—यह हस्तलिखित ग्रंथ कम से कम १०० वर्ष पहले का लिखा हुआ प्रतीत होता है । आरंभ के ३ पत्र खंडित हो गए हैं । ग्रंथ पढ़ने से काव्य का सा आनंद आता है; किंतु लिपिकर्ता ने जहाँ तहाँ लिखने में बहुत सी भूलें की हैं । ग्रंथ का लिखने का समय ज्ञात न हो सका ।

संख्या १०२ बी. उदै ग्रंथावली, रचयिता—उदयराम, कागज—बाँसी, पत्र—६९, आकार—६½ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—७५२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—वि० १८५२ = १७९५ ई०, प्राप्तिस्थान—पं० इन्द्रमिश्र जी, मु०—ब्रह्मपुरी, डा०—कोसीकलाँ, जि०—मथुरा ।

आदि—श्रीरामजी ॥ अथ कृष्ण प्रतीत परीक्षा लिष्यते ॥ करहु कृपा करुणा निधे राधे व्रजरानी ॥ बरनऊ प्रीति प्रतीत कों करिके मतस्यानी ।। अन्धकार अग्यान तम तब सबै सिरानौ ॥ उदैं भयो उर चन्द ज्यों नंद नंदनि मानौ ।। येक समय श्री राधिका इछा उर धारी ।। लैन परीक्षा कान्ह की मन माँहि विचारी ॥ विन परचै परतीत की कछु रीत न होई ।। बिना कपट परतीत कौ पावै नहीं कोई ॥

अंत—अति सुकुमार स्याम तन सुन्दर पीत वसन मन मोहे ॥ नव घन मनहुँ दामिनी दुरि दुवि देषि देषि छवि छोहे ॥ कोटि काम लावण्य स्याम तन सोभा अमित अमानौ ॥ सो छवि बसौ उदै उर अन्तर गिरधर रूप रमानौ ॥ यह लीला गिरधर गुपाल की, वाल विनोद बिलासी ॥ सो या सुनें गुनें अरू सीषैं सो सांचो व्रजवासी ॥ दोहा ॥ संवत अठारह वामना सुदि कार्तिक बुधवार । भयो उदै उर ते जबै, यह लीला अवतार ॥ इति श्री उदैराम कृतौ दामोदर लीला संपूर्ण ॥

विषय—इसमें उदय कवि के तीन ग्रंथ हैं । तीनों ही में नन्ददास की कविता का सा रसास्वादन मिलता है । ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं :—१—प्रतीत परीक्षा । २—राम करुना । ३—दान लीला । पहले में राधा का कृष्ण के प्रेम की परीक्षा करना, दूसरे में लक्ष्मण को शक्ति वाण लगने से राम का विलाप और हनुमान का संजीवन बूटी लाकर उन्हें सचेत करना तथा तीसरे में श्री कृष्ण की दान लीला वर्णित है ।

विशेष ज्ञातव्य—उदय कवि अष्टछाप के कवि नन्ददास की कोटि के हैं । उनकी कविता बहुत ही सुबोध, सरल, सरस और मधुर है । कालिदास त्रिवेदी के पुत्र से ये उदय सर्वथा भिन्न हैं । इनका जीवनकाल आधुनिक है । अभी तक इन्हें दूलह का पिता माना जाता था, पर यह भ्रम है । रचनाकाल विक्रमी १८५२ ठहरता है । पं० मयाशंकरजी का कहना है कि एक गुटका जिसमें उदय के १३-१४ ग्रंथ थे उन्हें गोवर्द्धन में मिला था । उसमें कवि ने अपना स्थान व्रजभूमि के अन्तर्गत बतलाया है । यह सत्य प्रतीत होता है । कृष्ण भक्ति सम्बन्धी इनकी कविता अधिक पाई जाती है ।

संख्या १०२ सी. चीर हरन लीला, रचयिता—उदय, कागज—बाँसी, पत्र—१७, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३११, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—वि० १८७४ = १८१७ ई०, प्राप्तिस्थान—रमन पटवारी, स्थान—पसौली, डा०—तरोली, मथुरा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः अथ चीर हरन लीला लिख्यते ॥ एक दिना ब्रज नारि निरषि जमुना में न्हाती ॥ ताक लगा गोपाल करी तिनसों छल छाती ॥ चीर चुराये जाय जब सब की नजर बचाय ॥ काहू नै जानी नहीं चढ़ै कदम पर जाय ॥ सिरोमनि ठगन के ॥ मगन ह्वै रही नगन नीर तन की गम नांही ॥ उछरत बूड़त तिरत फिरत चक ज्यो चकवाई॥ अति चंचल द्रग चाहनी जोबन रूप नवीन ॥ करत केलि जल में मानौं काम रूपिनी मीन ॥ मगन मन गोपिका ॥

अंत—हँस हँसाय सुष पाय न्हाय सरात अमानी ॥ अपने अपने घर गई निडर काहु न जानी ॥ यह लीला क्रीड़ा सहित ग्वाल वाल जल माल ॥ बसहु उदै उर में सदा चीर चोर नन्द लाल ॥ करत सब ष्याल जी ॥ हे वृषभान कुमार कहौ व्रज कुमारे ॥ मो मन वृन्दाबन बसौ करै नित नयो निबारे ॥ राज व्रजराज को ॥ इति श्री चीर हरन लीला संपूर्ण ॥ शुभम् भूयात् ॥ मिती ज्येष्ठ सुदि १० संवत् १८७४ ॥

विषय—इसमें दो पुस्तकें हैं:—(१) चीर हरण लीला और (२) देवी स्तुति। प्रथम में कृष्ण की चीर हरण लीला है जो उदय कवि कृत है। दूसरी खुसाल कवि कृत देवी की स्तुति है जो खोज में नवीन है तथा जिसकी कविता सुंदर है।

विशेष ज्ञातव्य—उदय एक प्रतिभाशाली कवि हो गए हैं। ये दूलह के पुत्र से भिन्न हैं। इनकी कविता नन्ददास से भी उत्तम समझी जाती है।

संख्या १०२ डी. हनुमान नाटक, रचयिता—उदय, कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—६½ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—४६५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकरजी याज्ञिक, गोकुलनाथ मन्दिर के अधिकारी, गोकुल, मथुरा।

आदि—अथ हनुमान नाटक लिख्यते ॥ पवन पुत्र कों बोलि खोलि मुद्रिका गहाई ॥ जनक सुता के हात जाय दीजो यह भाई ॥ सीता की सुधि लैन कूँ चलै महा बलवान् ॥ पाय रजायसु राम की हरिष चले हनुमान ॥ रजायस राम की ॥ महावीर बलवान तीर सागर के आयो ॥ किल किलात गल गर्ज तर्जि गिरि गगन उड़ायो ॥

अंत—आनन्दें सब लोग सोग सागर तै छूटे। नैना नन्द प्रभाव प्रेम पुर उर तै छुट्यो ॥ अहिरावण के राज की रजनी गई विहाय। सैना सब वर कमल केसी षुले राम रवि पाय ॥ कुँवर ये कौन के ॥ जामवन्त सुग्रीव विभीषन सबही भाषै। धनि धनि पवन कुमार प्राण ते सबके राषै ॥ भयो न भावत भोर, रामचन्द्र चाहत "उदय" ॥ कपि कुल कुमुद चकोर, अहहिं कुँवरये कौन के ॥ इति

विषय—रावण का लड़का अहिरावण पिता की मंत्रणा से रात्रि में राम लक्ष्मण को शिविर से हरण कर पाताल लोक ले गया और वहाँ उन्हें देवी के मंदिर में ठहराकर वलि देने की तैयारी में लग गया। वह राम लक्ष्मण की वलि देवी को देना चाहता था। राम की सेना में बड़ी खलबली मची। चारों ओर हा-हा कार मच गया। अन्त में हनुमान ने पता लगाने का बीड़ा उठाया। खोजते-खोजते वह पाताल लोक की उस देवी के मंदिर में जा पहुँचा। देवी को पैर के नीचे दाब कर स्वयं मूर्ति के स्थान पर बैठ गया। ज्योंही अहिरावण वलि की सामग्री ले कर आया। त्योंही उसको युद्ध में मार डाला और राम लक्ष्मण को उठाकर वापस लंका में ले आया। राम सेना में फिर आनन्द छा गया।

विशेष ज्ञातव्य—उदय कवि के विषय में पूर्व विवरण पत्रों में लिखा जा चुका है। ये एक अच्छे कवि तथा भक्त हो गए हैं।

संख्या १०३ ए. सिद्धांत के पद, रचयिता—वंशी अली (वृन्दावन), कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—१० × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८७२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री राधावल्लभ जी का मंदिर, वृन्दावन, मथुरा।

आदि—मंगलराग जय जय श्री प्रद्युम्न गुसाईं नन्दना, श्री कृष्णावत कृष प्रगट कुल चन्दना। श्री वंशी अलि नाम सुयश जग विस्तरयौ, सकल श्रम तिनको सार श्री राधा हिय धरयो। हिय धरयो राधा नाम नित प्रति सबनि को उपदेसियो, कर्म बन्धन काटि के निज प्रेम को अति दृढ़ कियो। राधा विमुख जे मूढ़ जन तिनको जो संसय खण्डना, जय जय श्री प्रद्युम्न गुसाईं नन्दना ॥ १ ॥ जय जय श्री वंशी अली वंश उदय कियो, जगत विषय सुख छाड़ि नित्य सुख मन दियो।

अंत—ललिता बिनु क्यों राधा पैये, कुँवर प्रान जीवन करूणा बिन राधा कैसे दुलरैये। जाकी सुयश सरस ललिता विनु कैसे के भव ताप मिटैये, जाको नाम कुँवर वंसी रस विन गाये कैसे के अघैये। राग आसावरी ॥ रसिकन कुँवरि रसिक लालन चित, नव किशोर जीवन धन श्यामा श्याम को भावतो लालन वित। मुहीं चुही दिन रैन न जानत मानो निमिष भगवती तकित, ललिता वंशी अलि अधिकारि निकुंज महल स्वामिनि सेवत नित। इति श्री सिद्धान्त के पद संपूर्णम्।

विषय—सम्प्रदाय के आचार्य श्री प्रद्युम्न जी की वन्दना, राधा तथा ललितादि सखियों का प्रेम, स्तुति और भक्ति पूर्ण लीलाएँ। राधा और युगल स्वरूप की आराधना एवं आराधना के साम्प्रदायिक सिद्धान्त।

विशेष ज्ञातव्य—इस सम्प्रदाय के ग्रंथों की विशेषता यह है कि उनकी कविता बड़ी ही सरस तथा मधुर है।

संख्या १०३ बी. राधा तिलाता, रचयिता—वंशी अलि, कागज—देशी, पत्र—२२, आकार—१० × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—६११, खडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मुन्सिफ श्याम सुन्दर अग्रवाल, म्यूनिसिपल दफ्तर के पास, मथुरा।

आदि—अथ श्री राधा तिलाता जायते ॥ जय जय श्री ललिता ललित जुगल आनन्दनी, जीवन प्रान समान सुकीरति नन्दनी। दम्पति की मति रति मति जुग धन स्वामिनि, निज सम्पत्ति नित विलपति गुन अभिरामिनि। अभिराम गुन वरनत थके मति कवि कथा कैसे लहे, जाके प्रसाद प्रभाव लषि जिय लालहू मूको रहे। सेवा विविध विधि चातुरी गुन कहि सकत नहिं राधिका, दासी जन नित पोषनी प्रिय सहचरी सुख साधिका।

अंत—सब तत्वन को सार सु जुगल बिहार है, ताहू को परसारि की कीरति सुकुवार है। ताहू हिय को आनन्द परम ललिता लली, तापद भजन सजन निजु मति अति भली। दुरगम भजन ललिता कुँवर राधा कृपा ते पाइए, नहिं और साधन तहाँ कोउ जहाँ चित चेत लगाइए। हौ मन्द मति वंशी विषय रति दीन जानि कृपा करौ, जय श्री ललिता भजन वृषभान नन्दिनी मम हृदय निर्भर (? निर्झर) भरौ। × × ×

विषय—इसमें राधा मोहन के जुगल स्वरूप का बड़ा ही मनोहारी, सजीव और रसपूर्ण वर्णन है। साथ ही साथ वृन्दावन की महिमा का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

विशेष ज्ञातव्य--खोज में ग्रंथ सर्वथा नवीन प्रतीत होता है। इसके विषय में आवश्यक विवरण प्राप्त नहीं होता, पर ग्रंथ की रचना सुन्दर है। वृन्दावन के सखी अथवा चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का ग्रंथ प्रतीत होता है; क्योंकि राधा के स्वरूप को इस रूप में माननेवाले चैतन्य प्रभु के अनुयायी ही हैं।

संख्या १०४ ए. विनय शतक, रचयिता—जन विक्रम, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—६ X ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--पं० बाबूराम जी नम्बरदार, स्थान--नटावली, डा०--करहल, मैनपुरी।

आदि--श्री गणेशाय नमः॥ अथ विनय शतक लिख्यते॥ दोहा॥ श्री रघुवर असरन सरन, हरन सकल भव पीर। जन विक्रम मंगल करन, जय जय श्री रघुबीर॥ १॥ प्रनत पाल द्विज वंश मनि, नंदलाल छबि भौन। दीन बंधु राषन विरदु, तो समान जम कौन॥ २॥ हौं श्रवनन जसु सुन श्रुतन, अधम उधारन वांन। मेरे कारज करहुगे, निज अपनौं जन जांन॥ ३॥ सोरठा॥ मच्छ सुच्छ धरि रूप, दल दानव वल संष सुर। किय सनाथ सुर भूप, श्रुत ल्याये पावन जगत॥ ४॥ बंदौं कच्छप रूप प्रभु, हौ अधार संसार। भुवन चौदहौ कौ धरै, आप पीठ पर भार॥ ५॥ हन्यौ हुमकि हिरनाक्ष कौ, डाढ़ा रैढ़ि ढहाढ़। प्रनत पाल दासन सुहित, लई मेदिनी वाढ़॥ ६॥

अंत--पवन पूत के नषन कौ, कौन दीजिये तूल। दुष्ट जनन के दलन कौ, ज्यों हरि के दस सूल॥ ९२॥ औंन सुता पति जस सरस, मुकता मुकती भौंन। श्रौंन करत जन विनय कौ, पौंन छौंन के श्रौंन॥ ९३॥ सोहत मुष हनुमान कौ, असन अरुन सौ जानि। जाके अंतर अंतरित, राम कथा गुनगान॥ ९४॥ सटपटात भंजन दुवन, कट कटात जव दंत। किल किलात षल पलभलत, जय दुरंत हनुमंत॥ ९५॥ पवन नंद की नासिका, अरिन नासिका स्वांस। षगपति चंचु प्रकासिका, षलन त्रास का वास॥ ९६॥ नजर प्रभंजन पूत की, जन मन रंजन जान। है जहाज परवान इमि, अरिदल दहन कृसान॥९७॥ पिंग रंग वजरंग के, लोचन मोचन त्रास। जन रोचन सोचन समन, विलष विरोचन प्रास॥ ९८॥ अछछ दलन के अछछ के, पछछ मलछ छमवंत। गुरु अनंत प्रभु संत के, सोहत सोभावंत॥ ९९॥ सुवरन मय जय पट्ट बड़, रघुनाइक जस जाल। लिषि विरंचि सोहत सुहमि, पवन पूत कौ भाल॥ १००॥ हरि हित येकादस सुहित, भयौ अंजनी लाल। मारि सत्रु महि करहि गौ, हरिदासन प्रतिपाल॥ १०१॥ इति श्री विनै सतक समाप्तम्॥ ॥ शुभम्॥

विषय--विभिन्न अवतारों की भिन्न भिन्न प्रार्थनाएँ और हनुमान संबंधी विनय के दोहे।

संख्या १०४ बी. विनय शतक, रचयिता--जन विक्रम (बुंदेलखंड), कागज--देशी. पत्र--१६, आकार--८ X ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१४, परिमाण (अनुष्टुप्)-

२२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० दौलतराम जी, स्थान—कोसोन, पो०—मारौल, जि०—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री विनय शतक ग्रंथ लिष्यते ॥ दोहा ॥ श्री रघुवर असरन सरन, हरन सकल भव पीर। जन विक्रम मंगल करन, जय जय श्री रघुवीर ॥१॥ प्रनत पाल जदुवंस मनि, नंदलाल छवि भौन। दीन वंधु राषन विरद, तो समान जग कौन ॥ २ ॥ हौ श्रवनन जसु सुन श्रुतन, अधम उधारन वान। मेरे कारज करहुगे—निज अपनौ जन जान ॥ ३ ॥ सोरठा ॥ मक्ष सुक्ष धरि रूप, दल दानव वल संषसुर। किय सनाथ सुर भूप, श्रुत ल्याये पावन जगत ॥ ४ ॥ वंदौं कक्षप रूप प्रभु, हौ अधार संसार। भवन चौदहौ कौं धरैं, आप पीठ पर भार ॥ ५ ॥ हन्यो हुमकि हिरनाक्ष कौं, डाढारै डिढ़ डाढ़। प्रनत पाल दासन सुहित, लई मेदिनी काढ़ ॥ ६ ॥ धनि हरि रूप वराह, जे हठि ल्याये मेदिनी। कीनी सुस्ट सुराह, मारि दुष्ट फारयो उदर ॥ ७ ॥

अंत—पवन नंद की नासिका, अरिन नासिका स्वाँस। षगपति चुंच प्रकासिका, षलन त्रास का वास ॥ ९५ ॥ नासा पवन कुमार की, आसा पूरन वेस। स्वाँसा कलप क्रसान सम, वासा सुभग सुदेस ॥ ९६ ॥ नजरि प्रभंजन पूत की, जन मन रंजन जान। है जहाज पर वान इमि, अरिदल दहन क्रसान ॥ ९७ ॥ पिंग रंग बजरंग के, लोचन मोचन त्रास। जन रोचन सोचन समन, विलष विरोचन ग्रास ॥ ९८ ॥ अच्छ दलन के अच्छ के, पच्छ मलच्छ पर्वत। गुरू अनंत प्रभु संत के, सोहत सोभावंत ॥ ९९ ॥ सुवरन मय जय पट्टवत, रघुनाइक जस जाल। लिषि विरंचि सोहत सुइमि, पवन पूत कौ भाल ॥ १०० ॥ हरि हित एकादस सुहित, भयौ अंजनी लाल। मारि सत्रु महि करहिगौ, भयौ दासन प्रतिपाल ॥ १०१ ॥ इति श्री विनय शतक ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—भक्ति संबन्धी सौ दोहों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ भक्ति तथा विनय संबंधी सौ छंदों का संग्रह है। इसके रचयितादि के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं होता है। समस्त ग्रंथ दोहों में लिखा गया है। ग्रंथारंभ में एक आध सोरठा भी दिया गया है। ध्यान पूर्वक देखने पर एक सोरठा मध्य में भी मिलता है जो संभवतः रचयिता के विषय में संकेत करता जान पड़ता है। वह सोरठा यह है:—"मेरे कुल को राज, सो प्रभु तेरोई दयो। प्रनत पाल धरि लाज, विक्रम अव तेरो भयो ॥" उक्त सोरठा स्पष्ट ही प्रगट करता है कि ग्रंथकार राजवंश का है और 'विक्रम' उसका नाम है। विक्रम साहि उप० विक्रमाजीत या विक्रमादित्य चरखारी (बुंदेलखंड) नरेश (राज्यकाल १७८२ ई०—१८२९ ई०) विजय बहादुर उपाधि खुमान, भोजराज, प्रताप आदि कवियों के आश्रयदाता एवं स्वयं एक अच्छे कवि थे।

संख्या १०५. बुढ़ीया लीला, रचयिता—वीरभद्र, कागज—बाँसी, पत्र—१४, आकार—१० × ६$\frac{१}{२}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४१, खंडित,

पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० मोहर सिंह जाट, स्थान—रार, डा०—बरसाना, मथुरा।

आदि— × × × यह कहि तू सोयो जाइ अटारी ॥ मोकु काहू दीयो दुख भारी ॥ घर में आवन को अकुलायो ॥ मे तो ईंटन मारि भजायो ॥ अरे भली भई पहले सुधि पाई ॥ नातर दगा बड़ी ही खाई ॥ अरी निगोड़ी तें घर षोयो ॥ कब में कह्यो कब जाय सोयो ॥ सुनि मेरी बेरनि महतारी ॥ एसी बाट कहां ते पारी ॥ मोकों ते द्वार न खोल्यो ॥ निसा अंध्यारी भटकत डोल्यो ॥ कोऊ ओर कपट करि आयो ॥ खोने मेरी सेज सुवायो ॥ तूं तो ठगी नन्द के पूत ॥ स्वारथ साधि गयो वह दूत ॥

अंत—करैं परस्पर हास विलास ॥ सुख पायो मन भयो हुलास ॥ रस में झीले चारयो जाम ॥ भोर भये घर आये स्याम ॥ बुढ़िया सुनें पूत विललाई ॥ उठि कें द्वार उघारयो जाई ॥ हरि जू की बात सबे यह जानी ॥ तब बहरयो मूड़ मारि अभिमानी ॥ मात पूत मिलि करैं लड़ाई ॥ हरि जू की बात भली बनि आई ॥ ये हरि गोपिन के सुख दाई ॥ ब्रज में करत विहार सदाई ॥ नवल किसोर सुन्दर सुखदाई ॥ रसमें लीन कीये ब्रजवासी ॥ यह लीला अति प्रेम विलासी ॥ वीरभद्र मन मोद प्रकासी ॥ इति बुढ़ीया लीला सम्पूर्णम् ॥ श्री रस्तु ॥ कल्यान सस्तु ॥

विषय—मथुरा जिले की ठेठ देहाती बोली में यह कविता है। इसमें श्रीकृष्ण का बुढ़िया बनना, ब्रज वधुओं के बीच में बैठकर सिखावन देना, उनकी गार्हस्थिक तथा पारिवारिक समस्याओं का सुनना, उन्हें सुलझाने का उपाय बतलाना, ब्रज युवतियों के बीच कई प्रकार की लीलाएँ करना, अन्त में उनके साथ नटखटी एवं हँसी मजाक करना, ब्रज बालाओं को कृष्ण के बनावटी रूप का पता चल जाना और कृष्ण को आड़े हाथों लेना आदि बातों का बड़ा मनोरंजक वर्णन है।

विशेष ज्ञातव्य—खोज में यह बुढ़िया लीला पहले पहल प्राप्त हुई है। इसमें हास्यरस भक्ति से परिपूर्ण है। भाषा ठेठ ब्रज के देहातों की है। इसको बहुधा होली आदि उत्सवों में नगाड़े पर बजाकर गाते हैं। मैंने अपने सामने कुछ लोगों को बुलाकर इसे गवाया भी और देखा कि वे इसे गाते गाते बड़े मस्त हो जाते हैं। नगाड़े पर उनका कलनाद और भी खिलता था। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति प्राचीन ज्ञात तो होती है पर समय का पता नहीं।

संख्या १०६. पुरातन कथा, रचयिता—ब्रजवासी दास, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० छोटेलाल जी, स्थान—भाऊपुरा, डा०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ पुरातन कथा लिख्यते ॥ चौपाई ॥ पौढ़ीं लाल कहत महतारी। कहौं कथा इक श्रवणन प्यारी ॥ हर्षे यह सुमिरन बनवारी। पौढ़ि गये

हँसि देत हूंकारी ॥ नगर एक रमणीक सुहावन। नाम अवध अति सुंदर पावन ॥ बड़े महल तहँ अगम अटारी। सुंदर विशद चारु गढ़ चारी ॥ बहुत गली पुर बीच सुहाई। रहे सदा सब सुगंध सिंचाई ॥ भाँति भाँति बहु हाठ बजारू। अति सुन्दर जनु विश्व सिंगारू ॥ तहाँ नृपति दशरथ रजधानी। तिनके नारि तीनि पटरानी ॥ कौशिल्या केकयी सुमित्रा। तिन जन्मे सुत चारि पवित्रा ॥ राम भरत लषन रिपुहंता। चारों अति सुंदर गुणवंता ॥ तिनमें एक रामव्रत धारी। अति सुंदर जन के हितकारी ॥ विश्वामित्र एक ऋषिराई। तिनहिं सतावैं निशिचर आई ॥ तिन नृप सों द्वै सुत लिए मांग। अपनी रक्षा के हित लागी ॥ दोहा ॥ राम लषण ऋषि लै गए, दनुज हेत तिन जाय। ऋषि दीनी विद्या बहुत, तिनको अति सुख पाय ॥

अंत—॥ छन्द ॥ संदेह जननी मन भयो हरि चौंकि धौं काहे पर्यौ। कहुँ दीठि खेलन में लगी, धौं स्वप्न में कान्हर डर्यो। बहु भाँति देव मनाय पढ़ि पढ़ि मंत्र दोष निवारई। लै पियति पानी वारि पुनि पुनि राई लोंन उतारई ॥ दोहा ॥ साँझलि ते विरुझाय हारि, करी चन्द्र हित आरि। झिझकि उठ्यो धौं ताहिते, रह्यो सुरति उरधारि ॥ सोरठा ॥ बड़ भागिनि नँद नारि, महिमा वेद न कहि सकैं। हरि को वदन निहारि, विसरावति त्रय ताप दुख ॥ इति श्री व्रजवासी दास कृत ॥ पुरातन कथा संपूर्णम् ॥ शुभम् ॥

विषय—माता यशोदा द्वारा श्याम को रामावतार की कथा सुनाना।

संख्या १०७. भागवत महात्म, रचयिता—यमुनादास, कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १९०४ वि० (संभवतः), प्राप्तिस्थान—दुर्गा प्रसाद ब्रह्म भट्ट, लालदरवाजा, मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ दोहरा ॥ श्री ब्रजमोहन......मोहिनी चरण कमल धर माथ। भक्तिदान मैया चहै सब कुछ तुम्हरे पास ॥ श्री नाम देव जी जन्म सोहर पद पंकज लीन। ब्रज मोहन भगवान की निस दिन सेवा कीन ॥ श्री गुरू रामदास कोच दिना करके बारम्बार। महातम भाषा तव कियो श्री नाम के द्वार ॥ चौपाई ॥ श्री रामदास को दास कहावै। श्री ब्रजमोहन मन में ध्यावे ॥ इष्ट भागवत जाको भाव। सुनो संक्षेप तुम चित लगाव ॥ यमनादास की वेनती संत, सुनो निरमोह मोह। भाषा महातम मइ करो, जे तुम आज्ञा होइ ॥ श्री नाम देव के कुल में प्रगट्यो जमनादास। महातम भाषा तिन कीयो श्री कृष्ण चरन धर आस ॥

अंत—॥ दोहा ॥ मेरी मत कछु से नहीं, संतोचत रस जान। अक्षर शुद्ध बिचारके, थाको करों हो मान्य ॥ उनी सऊ चौथ संवत मकर मास शुभ। इनमें अक्षर बहोत लीजे शुद्ध बिचार के ॥ बहावल पुर के बीच भाषा महात्म में कीयों। सुनो सन्त जगदीश पुर, सुकल पक्ष पूरन भयो ॥ मो मे कुछ बड़हे नहीं, श्री गुरू रामदास को ध्यान। महातम भाषा पूरन कियो, नहीं हृदे अभिमान ॥ इति श्री पद्मपुराण उत्तर खण्डे श्री मद् भागवत निरूपणं षष्टो ध्यायः ॥

विषय---पद्म पुराण के आधार पर भागवत माहात्म्य का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य---और कई लोगों के भी भागवत माहात्म्य खोज में मिले हैं, पर यमुनादास जी का यह माहात्म्य सर्व प्रथम प्राप्त हुआ है। यह बहुत ही जीर्ण शीर्ण दशा तथा अशुद्ध लिपि में है। निर्माण काल दिया तो है परन्तु स्पष्ट नहीं होता। संभवतः संवत् १९०४ है। यमुनादास प्रसिद्ध भक्त नामदेव के कुल में पैदा हुए। उनके गुरू रामदास थे। बहावलपुर के बीच जगदीशपुर में ग्रंथ समाप्त हुआ है।

———

तृतीय परिशिष्ट

अज्ञातनामा रचयिताओं की कृतियों के उद्धरण

तृतीय परिशिष्ट

अज्ञातनामा रचयिताओं की कृतियों के उद्धरण

संख्या १०८. पदावली (अनुमान से), रचयिता—अष्टछाप आदि, कागज—सन का, पत्र—८३, आकार—९ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४१, खंडित, रूप—प्राचीन, (दीमक लगी), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—गुलजारी लाल अग्रवाल, स्थान—आंजनो, डा०—छाता, जि०—मथुरा ।

आदि—पांसा खेलत हैं पिय प्यारी ॥ पहिलो दांव परो स्यामा को पीत पिछोरी हारी । अबकी बेर पीय मुरली लगाओ तो खेलौं तुम संग भारी ॥ १ ॥ परमानन्द दास को ठाकुर जीती वृषभान दुलारी ॥ बैठे हरि राधा संग कुंज भवन अपने रंग, कर मुरली अधर धरे सारंग मुख गाई ॥ १ ॥ अति ही सुजान सकल कला गुन धान, जान बूझ एक तान चूक के बजाई ॥ प्यारी जब गहो बीन सकल कला गुन प्रवीन, अति नवीन रुप सहत वुही तान सुनाई ॥ वल्लभ गिरधरन लाल रीझ दई अंक माल, कहत भले जू भले सुंदर सुखदाई ॥ २ ॥

अंत—सोधे भीनो झगा झीनो गाती लपट रह्यो स्याम अंगन सो ॥ कटि धोवती सोवनी छबि सो ठाडे री लाल त्रिभंगन सो ॥ १ ॥ पीत पाग पर मोर चंद्का कुसुम गुछा फवित रंगन सो ॥ विन मालन सोहे माल मालती मन मोहो गोवर्धन ने चपल दृगन सो ॥ २ ॥ आज अति राजत नन्द किसोर ॥ सिर पर कुल्लह ही टिपारो सोभित, धरै परवौवा मोर ॥ मल काछ कटि बाधे फेंटा सरस सुगंध हु छोर ॥ बलि बलि सुन्दर वदन कमल पर रसिक प्रान चित चोर ॥ स्याम अंग सोभित हेतनियां (?) ॥ पाग दुपेंची सीस विराजत नख सिख अभूषन बनी ठनियां ॥ १ ॥ धेन चराय सखन संग आवत जसोदा लेत है कनिया ॥ परमानन्द दास को ठाकुर श्री वृखभान सुत उर मनिया ॥ अपूर्ण ॥

विषय—(१) श्यामाश्याम के आमोद प्रमोद संबंधी गीत, पारस्परिक प्रेम क्रीड़ाएँ । (२) गोचारण के गीत । (३) श्री कृष्णचन्द्र की शोभा और शृंगार के पद । (४) मुरली मनोहर की मुरली संबंधी गीत ।

इसमें अष्टछाप कवियों की कृतियों का आंशिक संग्रह है । विशेषतया कुम्भनदास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंद स्वामी के पद अधिक हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—अष्टछाप के कवियों का यह संग्रह मूल्यवान है । इसमें ऐसे बहुत से गीत होने की संभावना है जो अनुपलब्ध हैं । संग्रह की प्रस्तुत-प्रति में लिपिकाल आदि कुछ नहीं पड़ा है ।

संख्या १०९. आचार्य्य जी की बधाई, कागज—मूँजी, पत्र—१८, आकार—९ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—भगत मनीराम जी वैश्य, स्थान—आन्योर, डा० गोवर्धन, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः श्री आचार्य जी की बधाई लिख्यते॥ आज बधाई मंगल चार, गावत मंगल गीत जुवति जन नव सत साज सिंगार। मंगल कनक कलस सुभ मंगल, बाधी बन्दन वार। मंगल मोतिन चौक पुराए, पंच शब्द गृह द्वार। घर घर मंगल महा महोछव, श्री वल्लभ अवतार। हरि जीवन प्रभु जाय पुरूष, श्री लछिमन भूप कुमार।

अंत—श्री लछमनि गृह नव निधि आई, अद्भुत सोभा वरनि न जाई। कंचन कलस धुजा फहराई, दीप दान धरि जुगत कराई। बनाई जुगक्त धरी दीप माला जोति फेली गगन लों, धेनु धन गृह बसन भूषन देत कंकन नगन लों। मुदित जुरिं नर नारि देत असीस चले घर घरन जु, दास जन के हेत प्रगटे फेरि गिरवर धरन जु। × × ×

विषय—वल्लभाचार्य्य पुष्टिमार्ग के संस्थापक थे। इस संप्रदाय के अनुयायी इन्हें भगवान् से किसी प्रकार कम नहीं मानते। इनका जन्मोत्सव पुष्टि मार्ग के सभी प्रमुख एवं छोटे मंदिरों में धूमधाम से मनाया जाता है। वर्ष गाँठ के दिन विशेष गीत गाए जाते हैं जिनका सम्बंध मुख्यतः इन्हीं (आचार्य जी) से रहता है। प्रस्तुत संग्रह में निम्नलिखित रचयिताओं के पद आये हैं:—हरिजीवन, गोपालदास, आसकरन, मुरारीदास, स्यामदास इत्यादि।

संख्या ११०. आचार्य जी की वंसावली, कागज—बाँसी, पत्र—१९, आकार—२८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—४०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३२८, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पण्डित केदारनाथ जी ज्योतिषी, मारूँ गली, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः॥ अथ श्री आचार्य जी महाप्रभु जी की वंसावली संमत् १५३५ सो लेके वंसावली लिख्यते॥ श्री आचार्य महाप्रभु जी को जन्म चैत्र वदि ११ कों॥ चैत्र सुदि १। श्री गोकुल चंद जी श्री अनुरूध जी के लाल जी बड़े श्री बालकृष्ण जी के परिवार में संमत् १७८३॥ चैत्र सुदी २। १ श्री द्वारिकानाथ जी भावना वारे संमत् १७५१। १ श्री मदसुदन जी संमत् १६३४ बड़े श्री जदुनाथ जी के लाल जी श्री गुंसाई जी के नाती चैत्र सुदि ३। १ श्री पुरुषोत्तम जी श्री जदुनाथ जी के भाई सम्मत् १८१४। १ बड़े श्री रघुनाथ जी के लाल जी श्री जसोदानंदन जी सं० १६४८। १ श्री गिरधर जी बड़े श्री दामोदर जी के लाल जी श्री हरिराय जी की गोद बैठे समत १७४५॥

अंत—इति श्री फागुन महिना के जन्म दिवस तथा उत्सव सम्पूर्ण अथ श्री गोपी-वर्द्धन नाथ जी श्री महाप्रभू जी के सेव्य श्री गिरिराज में प्रगट भये ॥ सात स्वरूप प्रगट होइके भूतल पे विराजे हें सो लिखियत हें ॥ १—श्री मदन मोहन जी घर के ठाकुर सो वैष्णव के माथे नाहीं पधराये है। १—श्री गोकुलनाथ जी सुसरार ते पधारे हे सो वैष्णव के माथे नहीं पधराये है ॥ १—श्री विट्ठलेस राय जी श्री गुसांई जी के प्रागट्य समे प्राप्ति भये हें सो श्री स्वामिनी जी श्री जमुना जी सों पधारे हें सो वैष्णव के ऊपर नाहीं पधराये है ॥ १—श्री नटवर जी श्री मथुरेस जी के संग प्रगट भये हें सो श्री महाप्रभु जी ने श्री गुसाईं जी कों खेलिबे को दीये हें सो वैष्णव के माथे नहीं पधराए है ॥ १—श्री बालकृष्ण जी श्री महाप्रभु जी को श्री जमुना जी में प्राप्ति भये हें तासूं वैष्णव के माथे नहीं पधराये हें ॥ १—श्री आचार्य जी के सेवक दामोदर दास सो श्री महाप्रभु जी के संग रहते इनके ऊपर सेव्य स्वरूप नहीं ॥ २—कृष्णदास मेघन श्री आचार्य्य जी महाप्रभु के संग रहते उनके ऊपर सेव्य स्वरूप नांही ॥ ४—श्री मथुरेस जी पद्मनाभदास तथा पारवती तथा रघुनाथदास सो ठाकुर अब कोटा में श्री प्रभु जी महाराज के माथे विराजे हें ॥ × ×

विषय—महाप्रभु वल्लभाचार्य्य की तथा उनके वंशजों की वंशावली दी गई है जिसमें उनकी जन्म तिथियाँ भी दी हुई हैं।

विशेष ज्ञातव्य—महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के वीर्य से उत्पन्न सब सन्तान वैष्णवों के लिये भगवान् कृष्ण के समान पूज्य हैं। उनका होना भगवान् के अंश का प्रागट्य समझा जाता है और उनका मरना भगवान् की लीलामें सम्मिलित होना माना जाता है। इसीलिये गोसाइयों की जहाँ-जहाँ समाधि बनी रहती है, वहाँ-वहाँ लिखा रहता है:—अमुक महाराज भगवान् की लीला में पधारे। मैंने जतीपुरा में सैकड़ों स्मारक चिन्ह इन गोसाईं वंशजों के बने देखे, उन सब पर लिखा है—लीला में पधारे। मतलब यह कि मृत्यु को ये भगवान् की लीला में शामिल होना मानते हैं। इस वंशावली का वैष्णव लोग नियम से प्रतिदिन पाठ करते हैं। कहते हैं पुजरानी में इसका प्रकाशन भी हो चुका है।

संख्या १११. अमर वैद्यक, कागज—देसी, पत्र—१६, आकार—५½ × ३½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बाबू मनोहर लाल जी, मौजा—बरोस, डा०—खनोली, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः श्री अमर वैद्यक लिष्यते ॥ ओषद आनै का दिन ॥ चन्द्र सूर्ज ग्रहन कातिक के अमावस दुतिया, सुकल नौमी के पुषकर मूलकर दुआदसी पुष एकादशी, माघ सुकुल सतमी, फालगुन अमावस, चैत भती न न ना पुनवासी, वैसाष न न ना छै भी ती ची; जेठ पुनवासी अष्टमी, आसाढ़ सुकुल दसमी पुनवासी; सांवन सक्ती स्त तिरोदसी; आश्विन सुकुल नौमी। एही दिन औषद लावै।

अंत—मुंडी के जड़ का रस सीसी में रखे। बिहने मरदन करै। तौ सपेद वर स्याह होइ। मुंडो का मैदा करै जहा दरद होय तहाँ मरदन करै दरद मिटि जाय। इति

मुंडिका कल्प संपूरनं ॥ इति अमर वैदक समपूर्न भए ॥ जो देष्या सो लिष्या मम दोष नहीं देव । पंडित जन्न सुजन से वीनती मेरी उरयु अछर ले लेहु ॥ वैसाष मासे सुकुल पछे तिथि १० सुक्रवासरे ॥ राम राम ॥

विषय——इस ग्रंथ में आश्चर्यजनक ओषधियों के प्रयोग दिये हैं जिनके सेवन से मनुष्य के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने का दावा है। पुस्तक के दो खंड हैं:—— १—प्रथम खंड के नाम का पता न लग सका। इसमें भी ओषधियाँ और उनके प्रयोग हैं। २——दूसरा खंड मुंडी कल्प है। इसमें मुंडी कोई ओषधि है। जिसके नाना प्रयोग लिखे हैं।

विशेष ज्ञातव्य——इस ग्रंथ में ओषधियों के लाने की विधि, उनके नाम तथा प्रयोग की बातें हैं। ग्रंथ शुद्ध नहीं लिखा गया है। औषधियों के नामों में बहुत अशुद्धियाँ हैं तथा ठीक ठीक पढ़ने में नहीं आता। लेखक ने अपना नाम और निर्माण काल नहीं लिखा है। लिपिकाल भी अज्ञात है।

संख्या ११२. अम्बिका स्तोत्र, कागज—देशी, पत्र—८, आकार—५ × ३$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—१८५३ वि०, प्राप्तिस्थान—बोहरे रोशनलाल, स्थान व डाकघर—सुरीर, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ छंद मोतीदाम ॥ श्री भवानी जी नमः ॥ सदापूर्ण ब्रह्माणी अंबा विराजै। कला सोल सै चंद्रमा शीस छाजै ॥ महादुष्ट ने दैत्य नागात्र भाजै। भजो श्री भवानी सदा जै सदा जै ॥ १ ॥ सहू देवता स्वर्ग थी नित्य आवै। नमै पाय अंबा तणै मन्य भावै ॥ घणी रत्तने पुष्प ल्यावी वधावै। भजो श्री भवानी सदा जै सदा जै ॥ २ ॥ वेणी नाग जेवो सदा शीश सोहै। भवानी भजो दुःष दालिद्र षोये ॥ भजो श्री भवानी० ॥ ३ ॥

अंत—मुनै छै भरोसो भवानी न मारो। तमे भाजस्यौ दुःष दारिद्र भारो ॥ महा सत्रु नै ते सदा दुरि निवारो। भजो श्री भवानी० ॥ १८ ॥ भणै सांभलै तेह नापाप नासे। रहै अंविका तेहने नित्य पासै ॥ भणै सांभलै तेह ना पाप नासै। रहै अंविका तेहने नित्य पासै ॥ घणी प्रेम थी अंवना छंद गास्यै। भजो श्री भवानी० ॥ १९ ॥ इति श्री अंविका स्तोत्र भवानी छंद समाप्त ॥ शुभं भूयात् ॥ लिषतं सेवाराम विरामण संवत् १८५३ का मिति फाल्गुन शुक्ल ॥ ४ ॥ बुधवार ॥

विषय—भगवती अंबिका की स्तुति की गई है।

संख्या ११३. अनुगीता, कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—१० × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—७८०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं०—रामदत्त जी शर्म्मा, स्थान—बम्हनीपुर, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री महाभारत भाषा ॥ आश्वमेधिक पर्व ॥ अनुगीता ॥ ॥ पर्वाध्याय ॥ जन्मेजय उवाच ॥ महात्मा वासुदेव और अर्जुन से उस सभा में क्या वार्तालाप हुआ सो कहिये ॥ वैशंपायन उवाच ॥ महावीर अर्जुन पैतृक राज्य लाभ करके वासुदेव के साथ उस सभा में विहार करने लगे। अनन्तर एकदा वह सज्जनगण के सहित इच्छा से उस सभा के एक प्रदेश में उपस्थित होके उसकी शोभा देखते हुए अर्जुन वासुदेव से बोले, मधुसूदन युद्धकाल में हमने तुम्हारा महात्म्य सम्यक् जाना तुम्हारी विश्वमूर्ति भी निरीक्षण किया ॥

अंत—गंगानदी गण को ॥ सागर जलाशयों के ॥ विष्णुदेव ॥ दानव ॥ भूत ॥ ॥ पिशाच ॥ उरग ॥ राक्षस ॥ नर ॥ किन्नर ॥ औयक्ष संयुक्त समस्त जगत के औ गार्हस्थ्य सब आश्रमों के आद्य हैं ॥ प्रकृति समस्ते की आदि अन्त है ॥ सूर्यास्त दिवस का ॥ सूर्योदय रात्रि का ॥ सुख दुख का ॥ दुख सुख का ॥ क्षय संचित का ॥ पतन उन्नति का ॥ वियोग संयोग का औ मरण जीवित का ॥ अन्त स्वरूप हैं ॥ स्थावर या जंगम कोई चिरस्थायी नहीं है। उत्पन्न मात्र का ध्वंस होता है ॥ दान ॥ यज्ञ ॥ तपस्या ॥ व्रत औ नियम का फल भी कालक्रम से नष्ट होता है ॥ परन्तु ज्ञान का कदापि ध्वंस होता नहीं ॥ प्रशान्त चित्त ॥ जितेन्द्रिय ॥ अहङ्काररहीन महात्मा लोग उस ज्ञान के प्रभाव ही से सर्व पाप मुक्त होते हैं ॥ इति चौंतीसवाँ अध्याय ॥ इति अनुगीता पर्वाध्याय समाप्त ॥

विषय—महाभारत के आश्वमेधिक पर्व अनुगीता का अनुवाद।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ महाभारत के अश्वमेध पर्व के अंतर्गत अनुगीता का हिंदी अनुवाद है। अनुवाद का नाम और उसके संबंध की अन्य बातें अज्ञात हैं। इसके अतिरिक्त उसका रचनाकाल भी अविदित है। अर्जुन ने वासुदेव भगवान् से प्रश्न किया कि मैं आपके द्वारा किए गए युद्धकालीन उपदेश को, जो गीता के नाम से प्रसिद्ध है, विस्मृत कर चुका हूँ। अब उसकी पुनरावृत्ति कर मुझे कृत्य-कृत्य कीजिये। इसपर भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया कि मेरा ब्रह्मपद दिलानेवाला वह धर्म का निगूढ़ तत्व तुमने विस्मृत कर दिया, अतएव तुम अति निर्बोध और श्रद्धा शून्य हो। अब वह सब हमारे स्मृति पथ में भी नहीं। फिर भी हम ब्रह्मज्ञान प्रापक इतिहास कहते हैं। इससे तुमको श्रेष्ठ गति प्राप्त होगी। यही इतिहास इस ग्रंथ का विषय है और क्योंकि गीता के पीछे यह उपदेश हुआ है इसलिये इसका नाम अनुगीता पड़ा है।

संख्या ११४ आसन को मंत्र, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—८½ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्री नारायण जी, स्थान—भाड़री, डा०—शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः ॥ आसन को मंत्र ॥ इति ॥ गुरसठ गुरसठ गुरानीर गुर साइक। संकों गुर लखमी गुर तंत मंत। गुर अरबै निरंजन गुरु बिन होम जापु नहिं क़ीजै गुरु विन संज्ञा दिया न दीजै गुरु विद्या गुरू नायक पास गुरू की विद्या मेरे पास

गुरै मनाऊं बड़ी वासे वाना चुकों सिंगी पूएं खवऊं रोकों हिस्सों द्वार काल कुट्ट विष मंजऊं मनाऊं करतार'जाइ सलाइ वनिक वसें वहुतक फूल से उती चढ़े दोना मरुओं सोना जारि रत्नों फूल बहुत फुलवारि ।

अंत—बहुत फूल लै वंदों जांउ आठौं नागिन जोगी कर बड़े नाग की पूजा करों पहिले पूजूं सारद माई । दूजे पूजूं गुरू के पांई ॥ तिन ने दीनी बुद्धि बताई ॥ चलौ कुंज के द्वारे चलिए डाल पाल कौ नांउ जो लीजै बैठक दीजै २ छल होइ तो वैठो रहिये विसुहोइ तौ खेलिये राजा वासुक की आन ॥ इति ॥

विषय—विष उतारते समय का आसन मंत्र ।

संख्या ११५. आश्रय के पद, रचयिता—अष्टछाप (व्रजभूमि), कागज—बाँसी, पत्र—२६, आकार—९ X ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४५६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री बिहारी लाल जी, नई गोकुल, मथुरा ।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ अथ आश्रय के पद लिख्यते ॥राग विहागरो॥ भूलि जिन जाय मन अनत मेरो । रहूँ निसि दिवस श्री वल्लभाधीश पद, कमल सो लागि विन मोल को चेरो । अन्य संबंध अधिक डरपत रहौं, सकल साधन हू ते करि निबेरो । देह निज ग्रेह यह लोक परलोक लों, भजो श्री तल चरण छाँड़ि उरझेरो । इतनी माँगत महाराज करि जोरि कें, जैसो हूँ तेसो अब कहाउँ तेरो । रसिक सिर कर धरो भव दुख पर हरो, करो करूना अब मोइ निबेरो ।

अंत—॥ राग विहागरो ॥ गोकुल सब गोपाल उपासी । जो गाहक साधन के ऊधो, सो सब बसत ईसपुर कासी । जदपि हरि हम तजी अनाथ करि, तदपि न छाँड़त रति करि जासी । अपनी सीतलता नहिं छाड़त जद्यपि विधु राहु है ग्रासी । कहि अपराध जोग लिखि पठयो, प्रेम भजन में करत उदासी । परमानंद ऐसी को विरहन, माँगे मुक्ति छाँड़ि गुन रासी । × × ×

विषय—भगवान कृष्ण से आश्रय पाने के प्रार्थना संबंधी गीतों का संग्रह है ।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रह अच्छा है । एक विषय के पद ही इसमें संगृहीत हैं । सूरदास के पद अधिक हैं ।

संख्या ११६. अष्टछाप संग्रह (अनुमान से), रचयिता—अष्टसखा आदि, कागज—बाँसी, पत्र—१९३, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४५९, खंडित, रूप—प्राचीन (सजिल्द), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री पं० देवकीनंदन जी, स्थान—चन्द्रसरोवर, डा०—गोवर्धन, मथुरा ।

आदि—अथ हिंडोरा के पद लिख्यते ॥ ॥ राग मलार ॥ हिंडोरे माई कुसुमनी भाती बनाई नवल किसोर मुरलीधर मुरली ढिग राधा सुषदाई ॥ १ ॥ छाई रहे जीत तीत ते बादर बिच दामनी अधिकाई ॥ दादुर मोर पपैया बोले नाना नाना बूँद सुहाई

॥ २ ॥ झोटा देत सकल व्रज सुंदरी त्रिविध पवन सुखदाई॥ चत्रभुज प्रभु गिरधारन हिंडोरे झूले यह छबी बरनी न जाई ॥ ३ ॥ फूल को हिंडोरा बन्यो फूल रही जमुना माई ॥ फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना ॥ सखी चहु ओर फूली फूल्यो बन सघना ॥ नन्द दास प्रभु फूले फूले फिरे मगना ॥ २ ॥

अंत--रागमलार ॥ सुरंग चुनरी देहो लाल मेरी सुरंग चुनरी ॥ मदन मोहन पिय झगरो किन बदो सु अानो पीतपट लेहो ॥ तुम व्रजराज कुमार कौन को डर हो कहा करोगी गेह ॥ गोविन्द प्रभु पिय वेगी चल अब चहूँ दिसतें आयो मेह ॥ तुम देखो माइ रथ वेठे व्रजनाथ ॥ संकरषन के संग विराजत गोप सखा लीए साथ ॥ १ ॥ एक ओर राधा जुवनी सब छत्र चवर ललीता हाथ ॥ विविध भाँती श्री गोवर्धन धारी कृष्णदास को कीए सनाथ ॥

विषय--१--हिंडोरा, बारहमासी, जन्माष्टमी, पलना, उखल ढाढ़ी, राधाअष्टमी, वामन जी, दसहरा, रास उत्सव, सांझी आदि के गीत, पत्र १--३३ तक ।

२—दीप मालिका, गोवर्धन पूजा, गोवर्धन धारण, इन्द्रकोप, हरि प्रबोध, राधा कृष्ण के आमोद-प्रमोद, रुक्मिणी विवाह,	पत्र	३४—५८	तक ।
३—गुसाईं जी का जन्मोत्सव,	पत्र	५९—९३	तक ।
४—बसन्त के गीत,	पत्र	९४—१००	तक ।
५—धमार गीत,	पत्र	१०१—१५२	तक ।
६—डोल उत्सव के पद,	पत्र	१५३—१५७	तक ।
७—रामनवमी, नरसिंह चतुर्दशी आदि के गीत,	पत्र	१५८—१९७	तक ।

—(अपूर्ण)

निम्नलिखित रचयिताओं के गीत इसमें आए हैं:—चतुर्भुजदास, नन्ददास, परमानन्द, सूरदास, कृष्णदास, विष्णुदास, गोविन्द, विट्ठल, जादवेन्द्र, गदाधर, कुम्भनदास, रसिक, माधोदास, रघुनाथ, नरसैया (इनके पद गुजराती में हैं), विट्ठल गिरधर, छीत स्वामी, केसोदास, पुरुषोत्तम, मनोहरदास, जन भगवान, गोपालदास, हरिजीवन, नागरिया, अग्रदास, रामदास, ब्रजपति, कृष्णजीवन लछिराम, मदनमोहन, आसकरन, ब्यास स्वामिनी, तुलसीदास, प्रह्लाद, हरिदास, रामदास, पद्मनाभ इत्यादि ।

संख्या ११७. औषधि संग्रह, कागज—देशी, पत्र—८५, आकार—९$\frac{3}{4}$ × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२७२०, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्रीमान् पं० द्वारिका प्रसाद जी, स्थान व पो०—वकेवर, जि०—इटावा ।

आदि—........जाहि बालक के दोष ताको विधि ॥ मौरसी को जर गहिन मो लेइ बालक के गले बाँधै सब उपद्रव जाहि और आक को दूध हरा सोंठि गाइकै घीव सम मिलावै बालक के अंग लेपन करै सम दोष जाहिं ॥ दाँत होत बालक दुषपावै ताकी विधि ॥ दुधी की जर बैरी की जर संष हूली की जर तीनों बालक के गरे में बाँधै सर्व दोष जाहिं ॥

॥ कीरा परै आदमी के पाप सोता की विधि ॥ ताते जल सों धोवै ताको कै करू तेल लगावै नीको होइ ॥ घी बहुत होइ ताकी विधि ॥ ब्रह्म दंडी जरलै बाँधै थांभै मौ घीव बहुत होइ ॥ दूध बहुत होइ ताकी विधि ॥ विह को देषै तौ रोग जाहि और विधि एक लुवच को लोह चुन गले बाँधै ॥

अंत—॥ अथ स्तंभन ॥ अवरा की जर चूर्ण कीजै अवरा के रस के पुट ७ षाड घृत मधु सो खाई तौ असीबरस का मनुष होइ से स्त्री सो भोग करै स्तंभन होइ ॥ अथवा ॥ कवाछ कै जारि अवरा कै जरि दाष मयनसिल पिसितरवाला वै स्तंभन होइ ॥ अथवा ॥ विदारी कंद के चूर्ण विदारी कंद के रस के से पल करै दिन ७ मधु घृत × × ×

विषय—बालकों, स्त्रियों और पुरुषों के अनेक रोगों की औषधियाँ नाड़ी आदि परीक्षाएँ तथा अनेक रोगों की उत्पत्ति, लक्षण एवं चिकित्सादि का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ आद्यन्त तथा मध्य से खंडित है। अतएव उसके रचयितादि का पता नहीं है और न यही ज्ञात होता है कि उसको रचा हुआ कितना समय हुआ। इसमें बालकों, स्त्रियों एवं पुरुषों के अनेक रोगों का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में एक-एक रोग पर कई-कई औषधियाँ दी गई हैं और ग्रंथांत में अनेक प्रकार के काढ़े, शर्बत, चटनी तथा चूर्णों के नुसखे, उनके बनाने की विधि एवं प्रयोग और लाभों का वर्णन किया गया है।

संख्या ११८. औषधि संग्रह, कागज—देशी, पत्र—१४८, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४४०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुबर दयाल जी अध्यापक, स्थान व डा०—जसवंत नगर, जि०—इटावा।

आदि—..........गुर में कुटकी मोथा ल्यावै। ताहि नीम की छाल मिलावै॥ सौंठि इन्द्र जौ परवर पान। चंदन डारै वेद सुजान॥ विधि सौं काढ़ौ औटि उतारै। पीपर चूरण तामैं घिसि डारै॥ यह अमृताष्टक काढ़ो आइ। पित्त कफ ज्वर यासों जाइ॥ ॥ पित्त कफ को ॥ दो० ॥ परवर चंदन मुर्हरही कुटकी पाट गिलोइ। पित्त कफ ज्वर दाहा मिटै। कंडू डारे पोइ॥ ॥ अथ पित्त ज्वरा ॥ स्याम सजा दो तीन फल, नीम सु परवत पात। इनके काढ़े सों तुरत पित्त ज्वरा जरि जात॥ अथ एक तरा ॥ लंका उत्तर कोन में, कुमुद नाम कपि आइ। ताके सुमिर न करत ही, तुरत इकतरा जाइ॥

अंत—अथ पंच क्षीर ॥ वर ऊमर पीपर बहुरि, पारस पाकरसो सुध क्षीर। ....॥ पाकर सुधा छीर तरू कहे पाँचऊ ठौर। पारस पीपर वैद कहत हैं और॥ तुचा क्षीर तरू पांच कौ, सतल बन हरसाइ। अरू वंदक या सों बहुरि, जौन दोष मिटि जइ॥ अथ दस मूली विधि ॥ दोइ कटाइ गुरूषुरू, अरनी अरूस लोन। दोइ व सारे वैल अरु, पडर अरु कुम्हार॥ यह दस मूल कही वही, याकौ क्वाथ वनाइ। रोग प्रसूता मिटत है, वात प्रसूता जाइ॥ अथ पंच नोंन॥ सांभरि षारो वडगरौ, सैंधौ सोचर साच।

लौन एक दो तीनि ये, चारि कहे अरू पाँच ॥ अथ षार ।। जवाषार साजी बहुरि, दोइ वात ये षार । षार जहां तहँ दोइ है, यह जानौं निरधार ॥ अथ वैंदक क्रिया ।। पीपरि वाइ विरंग गुर धना सहितं ये डारि । गुर में करौ सतावरि वलोकु हौ डाजान असगंध सौंफ प्र......

विषय—प्रयोग में आनेवाले अनेक रोगों के काढ़े, लेप, रस, चूर्ण, तैल, क्षार पाक तथा औषधियों के नुसखे, अनुपान, प्रयोग और लाभों का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ आदि, मध्य और अंत से खंडित है । अतएव उसके रचयितादि के संबंध की ज्ञातव्य बातों का कुछ भी पता नहीं चलता । इसमें अनेक रोगों के निदान एवं चिकित्साओं का वर्णन है । प्रायः मानवीय शरीर के अंग प्रत्यंगों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । बालक, युवक और वृद्ध अवस्था के स्त्री पुरुषों के रोगों के अनेक नुसखे दिये गए हैं । वैद्यक में जो शब्द कोई विशेष अर्थ के बोधक हैं उनकी भी व्याख्या कर दी गई है । ग्रंथ के अंतिम भाग में अनेक औषधियों के पृथक्-पृथक् गुण और लाभ भी लिखे गए हैं । इसके आगे का न जाने कितना अंश लुप्त हो गया है, पता नहीं चलता । पंच लवण और पंचक्षार जैसे वैद्यक में आनेवाले और प्रायः पारिभाषिक ढंग पर प्रयोग में आनेवाले शब्दों की व्याख्या भी ग्रंथकार ने कर दी है । ग्रंथ की लिपि सदोष है ।

संख्या ११९. औषधि संग्रह, कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—१० × ६३⁄४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८६४, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० डालचन्द जी शर्मा, स्थान व डा०–लखुना, जि०–इटावा ।

आदि—.........२२ ॥ इति नासिका परिक्षा ॥ आरक्ता दशना यस्य, स्यास्युः प्रात पंतिवा । खंजनप्रतिमा वापि सगतायुः प्रचक्षते ॥ २३ ।। इति दन्त परीक्षा ॥ आरुंधती ध्रुवश्चैव विष्मोस्त्रिणि पदानिच, आयुर्हीनं न पश्यंति चतुर्थीं मातृ मंडले ॥ २४ ॥ ॥ अथ सेतु वा विधि ॥ सोमल षार चन्दन पिलावै सेहुवाजाय ॥ अथवा ॥ हरिताल टंक २ वकुची टंक ९ हरिदी टंक ४ सरसिव टंक ९ कप पानी पीसि लावै दिन ३ सेहुवा षाजु जाइ ॥ अथ षाजु ॥ घृत सेर ऽ॥ मयन सिल टं० ५ पक्क करब लाइब षाजुजाइ ॥ अथ हड़षाली आंवानि बुवकायनि शिरसि जामुनि सहिजन एरंड सभम की जरि एरंड के सुनगा सरि सब सौंठि बड़ी मँगरैला गोमूत्र धतूरा के पात तेल में अवटि तात कै लावै हडु खाली जाइ ॥

अंत—॥ अथ पेट पीड़ा के ॥ कुचिला घृत सों पीसि पियै पेट पीरा जाय ॥अथवा॥ अँवरा धनियाँ पुरानी षाँड़ पियै दिन ३ पेट पीरा जाय ॥ अथवा ।। असगंध की जरि हरदी हींगु सम कर षाइ दिन ३ हृदय शूल जाइ ।। अथ मस्तक पीरा के ॥ सोठि पुराना गुड़ सो नास दीजै मस्तक पीड़ा जाइ ॥ अथवा ॥ तितलौकी कै पात किंवा बीज नास दीजै मस्तक पीरा जाइ ।। अथवा ॥ रोहू कै पीत मरिच सौं नास दीजै मस्तक पीरा जाइ ॥ अथ अर्द्ध कपारी कै ॥ छेरी कै दूध सोंठि थारी घसि दीजै अर्द्ध कपारी जाइ ॥ अथ कुत्ता काटै कै ॥ लहसुन मरिचि पीपरि वच गोदुग्ध सों पीसि तात करि लावै विष जाइ ॥ अथ वीछी मारे कै ॥ जीरा सैंधव घृत सों पीसि तात करि पियै विछि...........

विषय—सेहुवा, पीनस, नहसुर तथा पेट पीड़ादि के चुटकुले और पुष्टीकरण आदि की कुछ औषधियों के नुसखों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रंथ वैद्यक शास्त्र से संबन्ध रखता है । इसमें कुछ रोगों के उपचार के लिये बहुत छोटे-छोटे तथा कम दामों में सुलभ चुटकुलों का संग्रह है । कुछ नुस्खे बड़े-बड़े भी लिखे गए हैं । एक-एक रोग के लिये कई-कई नुस्खे लिखे गए हैं । ग्रंथ आद्यन्त से खण्डित है और बीच के कुछ पत्रे भी लुप्त हो गए हैं । संग्रहकर्त्ता के नामादि का कोई विवरण इसमें नहीं मिलता ।

संख्या १२०. औषधियाँ, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—७०४, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० गौरीशंकर जी, स्थान—मड़ेपुरा, डा०—बड़ेपुरा, जि०—इटावा ।

आदि—॥ अथ हरतार मारे की विधि ॥ लीला थोथा ऽ१ हरतार ऽ॥ धूप देइ मंजक ऽ१ सुपक ऽ१ ई दोउ एक में करै षल करै कुकुरौंधा के पात तें गाइ के मूत सौं गोली बाँधै प्रमांन रती भरि एक गोली नित षाय औ गोली रगरि कै लगावै तौ सपेद कोढ़ जाय ॥ अथ जरांकुश बनाइबै की विधि ॥ तबकी हरतार टं० १२ लीला थोथा टं० ५ घोंघा का चून टं० ५ तीनिउ औषधैं बूकि निनारी करक मैर उव धिकुवारि के रसते षल करकौ पहर २ तबै औषध सरवा धरव ऊपर सरवादै कैलेसिकै सुषाइकै आँच देव पहर ५ वा ६ सेराने काढि लेव षाय कै प्रमान रती २ औ सिषरनि भातु पथुदेव सर्वताइ जूड़ी जाइ ॥ अथ रामरस मारै कै विधि ॥ माहुर टं० ५ हरतार टं० ५ पारा टं० ५ अजैपार टं० ५ सहतु टं० ५ ई सव एकत्र करै षल करै जामे कपर छन होय निवू का गदी के रस से षल करै पहर चारि मिरिच प्रमान गोली बाँधै तेहि के अनोपान निवू के रस अंजन करै सर्व विषजाइ गाइके छाछ सौं षाइ तौ जलंधर जाय गौ घृत सों नासु दीजै तौ सर्ब दोष जाय निंबुआ के रस सों देइ तौ भूत ज्वर जाय ॥

अंत—॥ संषिषासु मिलि ॥ मारै कै विधि ॥ सुमिलि संषिया १। औ सुमिल थैली मां डारि कै तौ भाटा के भीतर भरै तौ ठंढीलगावै ॥ सो पकु भाटा ल्यावै वाड़ातेहि मा सुमिल लगाइकै फिरि भाटा कै ठेठी देय फिरि गोला माटी का वनाइ कै तेहि कै भीतर राषै आँच देय पहर २ तौ मरि जाय ॥ तेहि के अनोपान—पान के साथ षाइ चाउँर ४ ताईं जूड़ी जाइ ॥ परमेह जाय ॥ गाय दूध सौं षाय रती १ परमेह के दोष जाय वंद होइ औ गोला एक दिन राषि कै फोरै ॥ अथ दूसरी सुमिलि मारै की वि० ॥ सुमिल संषिया १ सो लै कै...............

विषय—धातुओं को शोधना और रस बनाना। उनके अनुपान पथ्य और उपयोगादि का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ आद्यन्त के कई पत्रों के नष्ट हो जाने से खण्डित है। रचयिता के विषय में भी कुछ जानकारी उससे नहीं होती है। ग्रंथ का विषय धातुओं को मारने की विधि तथा रसों के बनाने के प्रकार से सम्बन्धित है। औषधि तैयार होनेपर उसके अनुपान और प्रयोगादि का भी वर्णन कर दिया गया है। परन्तु ग्रंथ के पत्रे आपस में बुरी तरह चिपक गये हैं।

संख्या १२१. बधाई गीत सार, रचयिता—अष्टछाप आदि, कागज—मूंजी, पत्र—२३२, आकार—१० × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—४१७६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकर लाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—॥ आसावरी ॥ रतन खचित कोरी पालनो हलरावत हाल रों दे भुलावत; वदन विलोकत बार बार बलैया लेत जनम सुफल करि लेखत महरि मुदित मन सुष पावत। जग जीवन जायो हे जसोदा धन्य कूंखि यो कहेत हे गोप बधू मिलि मंगल गावत। गिरिधर कल्यान नन्दराय फूले फिरत अति आनन्दित कछू सुधों न आवत। यह नित नेम जसोदा जू मेरे तिहारो लाल लड्यावन को, प्रात समै पालने झुलाऊँ सकट भजन जस गावन को। नाचत कृष्ण नचावत गोपी सच सों ताल बजावन को; आसकरन प्रभु मोहन नागर निरषि वदन सचुपावन को।

अंत—राग आसावरी श्री विट्ठलनाथ पालने झूलें माय अक्का जू झुलावे हो; निरखि निरखि मुख कमल मनोहर आनंद उर न समावै हो। कबहूँक सुरंग खिलोना ले ले बहु विधि रंग खिलावै हो, निरखि निरखि मुसक्यात साँवरो द्वै दतियाँ दरसावै हो। सहेज तिलक मृग मद लिलाट पर कठुला कंठ बनावै हो, माधोदास चरनन को सेवक द्वार सदा गुन गावै हो। पालने झूलत वल्लभ राई। प्रेम विवस गावत दुलरावत मुदित इ लम्बा माई ॥ अंग अंग प्रति अमृत माधुरी नख सिख भेख बनाई। सुन्दर स्याम कमल दल लोचन सोभा कही न जाई ॥ मारग पुष्टि प्रकास करन कों प्रगट भए भुव आई। श्री वल्लभ चरणार विन्द पर दास रसिक बलि जाई ॥ × × ×

विषय—बाल लीलाएँ,	पत्र	१—२८	तक।
राधा जी के गीत,	पत्र	२९—५३	तक।
पालना झुलावन, चन्द्रावली सखी की बधाई,	पत्र	५४—६३	तक।
दान लीला के पद,	पत्र	६४—६५	तक।
वामनावतार, साँझी उत्सव के गीत, करघा के गीत,	पत्र	६६—११५	तक।
आचार्य वल्लभ के जन्म दिन की बधाई,	पत्र	११६—१७०	तक।
गुसाईं विट्ठलनाथ जी के जन्म दिन के बधाई के गीत,	पत्र	१७१—२१३	तक।

रामनवमी की बधाई के पद, पत्र २१४—२३२ तक ।

(अपूर्ण)

निम्नलिखित भक्त रचयिताओं के गीत ग्रंथ में आये हैं । रेखांकित कवियों के पद संग्रह में अधिक हैं:—अष्टछाप, कल्यान, आसकरन, रसिक प्रीतम, दास गोपाल, श्री विट्ठल, गोविन्द प्रभु, रघुनाथदास, रामदास, कृष्णदास, धोंधी, किशोरीदास, व्यास रसिक, श्री विट्ठल गिरधर, रसिक निधि, रसिक सिरोमनि, गरीबदास, तानसेन, कृष्णजीवन लछिराम, माधौदास, हरिनारायन स्यामदास, हरिजीवन, गिरिधर, सगुनदास, वल्लभदास, विष्णुदास, पद्मनाभ, मानिकचंद, प्रेमदास, मोहनदास, केसवदास, व्रजपति, जन भगवान, द्वारकेस, नारायणदास, हरिदास, रामकृष्ण, वगधरिदास, तुलसीदास, गोविन्ददास आदि ।

विशेष ज्ञातव्य—यह गीतों का एक बड़ा संग्रह है जो बहुत उपयोगी प्रतीत होता है । विषय तो प्रायः वही है जो सूरदास प्रभृति पद रचयिताओं का है, पर इसमें कई एक कवि ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में हम कुछ विशेष नहीं जानते । इस संग्रह में प्रधानतः वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों के ही गीत हैं । अष्टछाप, विट्ठल गिरधर, गोपालदास, रसिक निधि, रसिक सिरोमनि, सगुनदास और विष्णुदास के गीत अधिक हैं ।

संख्या १२२. बधाई सागर (अनुमानिक), कागज—मूँजी, पत्र—१२२, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ६$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३५१, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुल नाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—वल्लभ प्रगटे भाग्य हमारे । भयो मनोरथ मन को चीत्यो रुकमिनि लाल तिहारे ॥ कहि न जात अंग अंग की सोभा उमड़ी रंग की धारे । श्री गोकुलपति की या छबि ऊपर विन्द्रावन अपने यों वारे ॥ आज जनम दिन वल्लभ लाल । तेल फुलेल चुपरि सिदोसो न्हाये रसिक रसाल ॥ केसर रंग धोवती उपरना कंठ मोतिन की माल । आलतो को सुख देखि विन्दावन भक्त जनम प्रतपाल । मंगल मंगल अेक छत राजे । घर घर मंगल दसोदिस मंगल, मंगल जहाँ तहाँ छाजे ॥ मंगल भक्ति भाव सब मंगल मंगल सहित समाजे । वल्लभदास प्रभु मंगल प्रगट्यो मंगल गोकुल गाजे ॥

अंत—आजु बधाई मंगलचार । गावत मंगल गीत जुवति जन बसत साज सिंगार ॥ मंगल कनक कलस सुभ मंगल बाँधी वन्दनवार । मंगल मोतिन चौक पुराए पंच सब्द ग्रह द्वार ॥ घर घर मंगल महामहोछो श्रीवल्लभ अवतार । हरि जीवन श्री जग्य पुरुष श्री लछमन भूप कुमार ॥ श्री वल्लभवर प्रगट भये व्रज सब छत्र छये । रसिकन मन उल्लास बढ्यो अति आनन्द ठाठ ठये ॥ घर घर मंगल होत बधाई जित तित रंग नये । सब मन प्रगट विलास रासरत तन त्रैताप गए ॥ गोपीजन व्योहार बीज ले फिरि करि खेल बये । कृपावन्त लछिमन सुत श्री भट वरनत रन्नात लये ॥ × × ×

विषय—१—महामहोत्सव अर्थात् गोकुलनाथ की जयन्ती
दिवस की बधाइयाँ, पत्र ३४—५४ तक।
२—वल्लभाचार्य की जयन्ती के गीत, पत्र ५५—७८ तक।
३—गुसांई जी का कीर्तन, पत्र ७९—८१ तक।
४—आचार्य महाप्रभु जी की पुनः बधाई, पत्र ८२—११८ तक।

निम्नलिखित भक्त कवियों के गीत संगृहीत हैं:—सूरदास, हरिदास, वल्लभदास, विष्णुदास कृष्णदास, विन्द्रावनचन्द, श्री विट्ठल, गोपालदास, बिहारीदास, श्री विट्ठल गिरिधर मानिक चंद, नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, भगवानदास, माधोदास, परमानन्द, गोविन्द प्रभु, आसकरन, रघुनाथ, सगुनदास, रसिक शिरोमनि, हरिजीवन, चरनदास, आदि।

रेखांकित पद रचयिताओं के गीत अधिक मात्रा में हैं।

विशेष ज्ञातव्य—ब्रज के भक्त कवियों के गीतों का यह संग्रह भी अत्यन्त उपयोगी है। इसमें उन्हीं गीतों का संग्रह है जो महाप्रभु वल्लभाचार्य या उनके उत्तराधिकारियों के जन्मोत्सव के अवसर पर गाए जाते हैं। ये मधुर तथा आनन्द-रस दायक हैं। संग्रह में २४ से अधिक पद-रचयिताओं के पद संगृहीत हैं। बहुत से ऐसे भी पद हैं जो और जगह प्राप्त नहीं हो सकते। गीत बहुत लम्बे नहीं हैं वरन छोटे मधुर और भावपूर्ण हैं। वल्लभदास, विट्ठल गिरधर उर्फ गंगाबाई, सगुनदास, वृन्दावनचन्द, माधोदास, मानिकचन्द प्रभृति के पद विशेष उल्लेखनीय हैं।

संख्या १२३. बधाईसार (अनुमानिक), कागज—मूँजी, पत्र—११, आकार—१०×६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४३, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मायाशंकर जी याज्ञिक, अधिकारी मंदिर गोकुलनाथ जी, गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—राग देव गधार। आज जगती पर जै जै कार। प्रगट भये श्री वल्लभ पुरुषोत्तम वदन अग्नि अवतार॥ धन दीन मास एकादशी कृष्ण पक्ष गुरुवार। श्री मुख वाक्य कलेवर सुन्दर धर्यो जग मोहन मार॥ सोभावन्त आत्मिक अंग जिनके प्रगट करन विस्तार। दुन्दुभी देव बजावत गावत सुर बधु मंगलचार॥ पुष्ट प्रकास करेहे भुवपर जन हित जगत पुकार। आनन्द उमग्यो लोक तिहुँपुर पुरजन गिरधर बलिहार॥

अंत—रागदेव गंधार॥ नौमी चैत की उजियारी। दसरथ के गृह जनम लियो है मुदित अजोध्या नारी॥ रामलषन रिपुदमन भरत लषि भूतल प्रगटे चारी। ललित विसाल कमल दल लोचन मोचन दुख सुखकारी॥ मनमथ मथन अमित छबि जलरुह नील वरन तन भारी॥ पीत वसन दामिनि दुति विलसत दसन लसन सित भारी॥ कठुला कंठ रतन मन बघना घट भृकुटी गति न्यारी। घुटरुन चलत हरत सबको मन तुलसिदास बलिहारी॥ × × ×

विषय—वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, गोस्वामी गोकुलनाथ तथा वल्लभ सम्प्रदाय के महापुरुषों की जयन्तियों पर एवं रामनवमी, राधाष्टमी, कृष्णाष्टमी आदि अवसरों पर गाए जानेवाले बधाई के गीतों का संग्रह है। निम्नलिखित पद रचयिताओं के पद इसमें हैं:—

१—गिरधर, २—ब्रजपति, ३—रसिक प्रियतम, ४—रामदास, ५—विष्णुदास, ६—व्यास स्वामिनी इत्यादि ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में सिर्फ वही गीत आए हैं जो वल्लभ सम्प्रदाय के महान् पुरुषों तथा भगवदीय अवतारों की जयन्तियों पर गाए जाते हैं ।

संख्या १२४. बारह खड़ी, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—१० × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—११, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बाबूराम मिश्र, स्थान—धरवार, डा०—बलरई, जिला—इटावा ।

आदि—विलषि वीलष राजा तो जो रामैं राम के वन : सीया लषमण रामजी नीरपत तजत राती कू प्रान : भभा भरत तो नानेर गयी अर नहीं बात मैंमुली: तेल कुंड नीरपइगना राषी षीघीसैं सुली: मंमा मित्र कागद लिषी दीयो, वाचो भरत विचारी: अवद पुरी मैं आइकैः नीरप अंगज कीयो उधारः जजा जननी सुषही अरतु कुटल केकई मातः दासी को आदर कीयो दइ सत्रुघन लातः ररा रामैं बिना मै ना करः अवदी पुरी को राजः लला लाजै या भरत जीः चत्र कोट निजधाम : राम आदर सबको कियो : सारा मिलै तमामः वावा हा चालो रघनाथ जी : मै करसु वनवासः भरत समानी को नहीं, जामती होइ उदास;

अंत—ससा सरब रिषिमुनी सुमीलराः अरभली करी कीयो पररः लंकापति सीया हरीः भयो कुबुदी छायः षषा षल वन काटी रामजी लाये सीया आय; अवदपुरी मैं आइकैः कीयो नंदगाव में जापः स स सखन कू उपदेस देः चाले वठी वीवाणः भेज रायवन कुमारनः प्रीती भरत की जाणीः हाहा हरषी मीलत राजी हुवः × × ×

विषय—वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर पर दोहा रचकर संक्षेप में रामचरित्र वर्णित किया गया है ।

संख्या १२५. बारह खड़ी, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० प्रभुदयाल जी शर्मा, संपादक—सनाढ्य जीवन, इटावा ।

आदि—कका कृस्न रूप जपो मन माहिं । जनम जनम की बाधा कटि जाहिं ॥ कृस्न नाम सब संतन गावो । दोषिम के मन महिं नहिं आवो ॥ १ ॥ षषा षेलि घरी ऐहि चारि । अन्तकाल होहि भै भारि ॥ ताते त्यागो माया मोह हँकारी । भाजौ श्री कृष्ण मुरारी ॥ २ ॥ गग्गा गुरु स्वाद जेहि लागा । भ्रम्म भैउ सब भागा ॥ समुझो समझि एहि वोर ॥ नहिं हैंगे मन तोरो डोर ॥ ३ ॥ घघा घर कांच है भाई । घरि उदित छिनहिं बिलाई ॥ जिहि माया है रंग पतंगी । जिहि चालि चलै कुरंगी ॥ ४ ॥

अंत—छछा छिमा सील द्व्य नहीं मानी । हरि सों विमुष भयौ महा अभिमानी ॥ जोगु जुगति कछु मरमु न पावा । तीरथ वृत हरि जा नहिं गावा ॥ जजा जोग भोग सब जग माहीं । एकहि भूपनु मो सो र सो नाहिं ॥ .... [शेष लुप्त]

विषय—क्रम पूर्वक प्रत्येक व्यंजन अक्षर पर कविता करके ज्ञानोपदेश वर्णन किया गया है ।

संख्या १२६. बारहमासी, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—७½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० राधाकृष्ण जी शर्मा, स्थान—व्यारीभटपुरा, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—॥ श्री ॥ असाढ़ आसापूरण करियो करो कृष्ण फेरी । काली घटा गगन चढ़ि आई चलै पवन सीरी ॥ मेहा वरसै विजुरी तड़कै धीरज नहिं धरता । विना नीर जैसें मीन तड़फता सुषिया दुष भरता ॥ पिया गये परदेस सखी जन लागि रही आसा । करौ दान साजन घर आवैं आयौ चौमासा ॥ १ ॥ सामन समझि परी मन मेरे आमिगे वलमा । याही उमंग साजनीया भूषण लाल जरदर रमा ॥ आंगन मेरे गढया हिंडौला झूलैं सब सषियाँ । सादी करौं सजन घर आवैं होय रस की वतियाँ ॥ जोवन षोलि धरूं उन आगें अन्तर नहिं रखना । करौ० २ । भादौं गहरै गँभीर पिया मेरे नहिं आए माई । सूनी सेज तड़फि रही कामिनि विरह विथा छाई ॥ वरसे मेह कोहोकि रहे मोर दादुर प्यौ बोली । रैंनि अँधेरी कछु नहिं सूझै डरै जीय मेरी ॥ ....। करौ० ॥ ३ ॥

अंत—पूस पिया परदेस गये कछु षवरैं नहिं आई । पूछूं पंडित और जोतिसी कहाँ रहें साईं ॥ निवा करूं नित्य सिर नाऊं महादेव गौरा । संभू सहाय करियौ हंपै पूरण अभिलाषा ॥ करौ० ॥ ७ ॥ माह महीना भोगी कहियै जिसपर बनि आमैं । तोसक तकिया गिलम गेंदुआ पीया कंठ लगामैं ॥ हिल मिल रहौं रैनि गुजरि गई सजनी रूम रूम राजी । जिसको लिषा सोही सुष पावै और नहीं साथी ॥ करौ० ॥ ८ ॥ सरदी गयी गरम ऋतु आई वसंत की व्यारी । हाथ में लाल गुलाल फेंट में रंग भरी झारी ॥ किसू सुघड़ ने पिया भिंगोये कोई आपु भींगी ।................[शेष लुप्त]

विषय—किसी वियोगिनी की ऋतुओं एवं मासों के क्रम से विरह व्यथा का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ अन्त से खंडित है । प्रायः साढ़े तीन मास का वर्णन छूट गया है । शेष भाग प्रस्तुत विवरण पत्र में अविकल रूप से उद्धृत कर दिया गया है । इसके रचयिता के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है ।

संख्या १२७. बारहमासी, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी मिश्र, स्थान—खेड़ा, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ प्रथम महीना अषाढ़ लागा वर्षा ऋतु आई ॥ प्रीतम मेरे श्याम सलोने पाती भिजवाई ॥ कहौ वे कैसे नहिं आए । ऐसे चतुर सुजान स्याम कुविजा ने विरमाए । डारि गल जादू की फाँसी । श्री राधा गोपी त्याग करी घरबारी

कुबिजासी ॥ १ ॥ सामन में मन भयान हमतो दामन सों लागी । जबते तिलातिल प्रीति बढ़ी हरि अब काहे त्यागी ॥ सुनि तुम ऊधौ मेरी सों, लाज सरम कित गई प्रीति जब कीनों चेरी सों । यही मोहि आवति हैं हाँसी श्री राधा० ॥ २ ॥ भादौं रैन अँध्यारी बोली प्रीतम की प्यारी । अन्न न भावे नींद न आवै सरद गरम नारी ॥ मिटावै संकट कोऊधों जेसे कुटिल कुजाति श्याम को जानति ही । सूधो मारि गयो विरह की गाँसी ॥ श्रीराधा० ॥ ३ ॥

अंत—फागुन फीकौ लगै रैन दिन भोय रही विष में पाती । वाँचतरवै सखी एक यों वोली रिस में लगे अब शाह करन चोरी ॥ हमरे जियत कंथ खेलहि वांदी संग होरी । खवरि मेरी लीजै केलासी ॥ श्री राधा० ॥ ९ ॥ चैत चित्त में जरों वरों मैं गिरती कुइया में । कहिये मदन गुपाल रंग कुबिजा कूं लै आमैं ॥ कछु इन वातनि कौ डरना हम गोपी दर्शन की प्यासी ॥ और नहीं करना खवरि अब लीजै वनवासी ॥ श्रीराधा० ॥ १० ॥ लागत ही वैसाख साख सवही के घर आई । ऊधों जी ने आपु कृष्ण कों ऐसें समुझाई ॥ पैज तुम इक नाहक ही रोपी । हाड़ मांस गलि गए । वावरी है गई.........[शेष लुप्त]

विषय—बारह महीनों के क्रम से व्रज वनिताओं की (कृष्ण के वियोग में) विरह वेदना का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ अपूर्ण है । इसके अन्त में वैशाख का कुछ अंश और समस्त ज्येष्ठ का वर्णन लुप्त हो गया है । कुछ बारहमासियों के रचयिता बारह महीनों के बदले तेरहवें लौंद के महीने का भी वर्णन किया करते हैं । यदि इस ग्रंथ के रचयिता ने भी ऐसा ही किया हो तो लौंद का वर्णन भी लुप्त हो गया है । शेष अंश ग्रंथ का अविकल रूप से उद्धृत कर दिया गया है ।

संख्या १२८. बारहमासी, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्यामलाल जी शर्मा, स्थान—इंधौजा, डा०—इकदिल, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ वारामासी लिष्यते ॥ वचन केकई माँगयो, दशरथ अज्ञा दीन । रामचन्द्र वन को चले, राज भरत को दीन ॥ १ ॥ चैत हिरना लषौ हरि ने चाप लै ठाड़े भए । तुम रहौ लछिमन जानकी नौ आप मृगा मारन चले ॥ वन वीच विछुरत ताहिरना देषि कै छिपि जातु है । धनुवान तानैं फिरतु रघुवर छलौं कर जातु है ॥ २ ॥ दोहा ॥कहत वात जब जानकी, सतलछिमन वलवीर । हिरनानै छल सौ कियौ, देष्यौ प्रभु रनधीर ॥ वैसाष वन वन फिरत लछिमन राम को देषन चले । दसकन्ध मन में कहन लागौ अवै छलवल है भले ॥ लछिमन उसांसी लेत है श्री राम को कहँ पाइये । बन वीच सूनी जानकी मन कौन विधि समुझाइये ।

अंत—जाइ कहीं दरवार में उठा लेउ मोहि पाँउ । राम सप्त करिकैं कहै, सिया हारि घर जाउँ ॥ फागुन में हर फाग है घिमसान लंका में मचे । भटरू वीर लछिमन तीर

तानै वरनी सौ वरनी ॥ अनी दसकंध के सुत मंद वै जव पैंचिकैं सकती हनी । सुग्रीव सै रघुवीर बोले कोई सजीवन ल्याइयो । पवन सुत निरसंक दल मै फेरतात जिवाइयो ॥ पवन सुत निरसंक दल यै फेर तात जिवाइयो ॥ दसकंध वोलो गरजि कै मैं आज तपसी मारिहौं ॥ हनिमंत नलनील सब छार करकर डारि हौ ॥ रघुवीर ने जव तीर तानै छोड राउनपै दयौ । राम सै हठ होड़ ठानी असुर सुरपुर कौ गयौ ॥ दोहा ॥ जाय हतौ सुग्रीम कौ, तारा कौ अभिमान । राज विभीषन को दयौ, दास आपनो जान ॥ असुर मारि सीता लई, सबहि सुरन सुष दीन । मगन मस्त देषत षड़े, राज अवधपुर कीन ॥ १२ ॥ इति श्री वारामासी ॥ संपूर्णम् ॥ शुभम् ॥

विषय—महीनों के क्रम से संक्षिप्त रामचरित्र वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता ने न अपना नाम ही लिखा है और न रचनाकाल आदि ही दिया है । इसमें वर्ष के बारह महीनों के क्रम से संक्षिप्त रामचरित अंकित कर दिया गया है ।

संख्या १२६. बारहमासी कीर्तन सागर, रचयिता—अष्टछाप आदि, कागज—बांसी, पत्र—२०१, आकार—१६$\frac{1}{2}$ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४८७८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८२४ वि० = १७६७ ई०, प्राप्तिस्थान—पंडित भूदेव शर्मा, गंगा जी का मन्दिर, छाता, पो०—छाता, जि०—मथुरा ।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ॥ श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ अथ वारहमास के उत्सव लिख्यते ॥ प्रथम जन्माष्टमी की बधाई लिख्यते ॥ रागदेव गंधार ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ॥ × × × जन्मफल मानत जसोदा माय ॥ जब नंदलाल धुर धुसर वपु रहित कंठ लगाय ॥ गोद बैठि गहि चुवक मनोहर बात कहत तुतराय ॥ अत आनंद प्रेम पुलक तन सुष चूंवत न अघाय ॥ अरत चित्र वदन विलोकि वदन विधु पुन पुन लेत बलाय ॥ परमानंद मोद छिन छिन को मोपै वरनि न जाय ॥ आज नन्दराय के पूत भयो । करो वधायो मन को भायो उर को सूल गयो ॥ मंगलचार करत भवनन में आइ सकल ब्रज बाल । गावत आइ गीत गोपी सब नाचत आए ग्वाल ।

अंत—राग सारंग सब ग्वालिन मिल मंगल गायो ॥ राषी बांधत मात जसोदा मोतिन चौक पुरानो । विप्रन देत असीष सबन को प्रण ॐकार मंत्र पढ़ायो ॥ नंद देत दक्षना गायन संग मंगल चारु पढ़ायो ॥ सामन सुदि पून्यो को सुभदिन रोरी तिलक बनायो ॥ पान मिठाई नारिकेल फल सोना हाथ धरायो ॥ नव भूषन नव बसन जसोदा सबहिन को पहरायो ॥ देत असीस सकल ब्रजनारी चिरुजीवो जसो तन भायो ॥ याही भांति सलोनो तुमको गिरधर नित नित आयो ॥ जन्मघोस निश्चरु आयो हे घोष विचित्र बनायो ॥ ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरि मृदंग बजायो ॥ लीला जनम हरन कर महरी जू के परमानन्द जस गायो ॥ इति श्री बारहमासी के कीर्तन तथा वर्षोत्सव के पद सम्पूरन ॥ राषी पवित्रा ॥ श्री श्री श्री श्री ॥ लिषतम लिष दीनी श्री गोकुल जी मध्ये लिषैया रघुनाथदास ने जो बाँचे जाकू श्री कृष्ण जै गोपाल सं० १८२५ श्री ॥

विषय—पद संख्या	विषय	पत्रसंख्या
१२५	जन्माष्टमी की बधाई,	१—२०
४	छटी नाल छेदन,	२१—२२
३६	पालना, ढाढ़ी, दसटोन,	२३—२५
३०	नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णबेध, बाललीला आदि के गीत,	२६—२८
९२	माटीखाना, राधा को बधाई, राधा का पालना, ढ़ाढ़ी दानलीला, वामनजी के गीत,	२९—४६
७६	सांझी, महातम, नवविलास, करखारास, अन्तर्ध्यान, धनतेरस, रूप चतुर्दशी,	४७—५८
४९	दीपमालिका, हठरी, कान्ह-जागरण, गोवर्द्धन पूजा, गाय को खिलाना, अन्नकूट का उत्सव, सरसलीला, इन्द्रकोप, भाईदोज, गोपाष्टमी, देव प्रबोधनी, ब्याह,	५९—६५
१४१	गुसाईंजी के संबंधके पद,	६६—८३
२७२	बसन्त, धमार, फूलडोल, फूल मण्डली,	८४—१४२
१३८	राम जन्मोत्सव, आचार्य जी के पद, अक्षय तृतीया, नरसिंह जी, यात्रा के पद,	१४३—१६१
८८	मलार के गीत,	१६२—१६७
२०४	हिंडोरा, पवित्रा, राखी के गीत,	१६८—२००

अष्टछाप, कल्यान, आसकरन, वृन्दावनचन्द, रसिक प्रीतम, विट्ठल गिरधर, व्रजपति, गोपालदास, श्री भट, पुरुषोत्तम, हरिदास, व्यास मदनमोहन, माधवदास, सुघरराय, जगन्नाथ, कविराय, जनमथुरा, सगुनदास, विष्णुदास, मानिकचंद, विट्ठल विपुल, विट्ठल, अगरदास, तुलसीदास, अमरदास, रामदास, श्रीपति, व्यास स्वामिनी, मुरारीदास, कृष्ण-जीवन लछिराम, गजाधर, ब्रह्मदास, जनहरिया, हरिनारायण, बालमुकुन्द, ब्रजभूषण, हितहरिवंस, ऋषिकेश, जनमाधो, धोंधी, कन्हरदास, हरिनारायण स्यामदास।

संख्या १३०. बारहमासी रसखान, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—६½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० नारंगीलाल जी, स्थान—भदेसरा, डा०—सिरसागंज, जि०—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ अथ बारहमासी रसखान लिख्यते ॥ कवित्त ॥ अषाढ़ में छाई घटा घनघोर वन दादुर सोर मचावत हुइ हैं। चहुँओर से वादर गरजि रहे कहुँ मोरल शब्द सुनावत हुइ हैं॥ धीरज से धरि ध्यान सखी रसखान हमारी को गावत हुई हैं। अब काहे को सोच करूँ मैं सखी मेरे अबहूँ तो पिउ घर आवत हुइ हैं॥ १॥

सावन आयो सनीनो लगी तव पीउ की सखी मोहि याद है आई। ऐसे पिया मोरे रहिहैं विदेस तो हमसे सही नहिं जैहै जुदाई ॥ अपनो सखी दुख कासों कहौं तव रोवत थी फिरि जिहि मनै आई। सोती एक दिना चिपटाइ कै सेज पै सोऊ पिया संग सोइ न पाई ॥ २ ॥ भादौं में देषि कैं कारी घटा सवके तो पिया परदेसी घर आये। मेरी रोवत रोवत रैन कटै अरु छाती फटै पलिंगा के विछाये। अब लेउ खवरि मेरी जल्दी पिया नहिं विरहा लेव मन देत जराये। उन विन को मिल देही सखी अवहीं हम देती हैं सारी सुखाये ॥ ३ ॥

अंत—चैत में लंघिन वोय करै और छोड़ पिया विनु सेज को सोइवो। माने नहीं मन मेरो सखी नहिं आवत नींद अरु आवत रुइवो ॥ वेदन होत है एक घड़ी इस सोच के मारे जहँ आँसु को चुइवो। प्यारे विना हम भुम्म परी धिरकार हुआ उन्हैं सेज को छुइवो ॥ १० ॥ वैसाष में मेरी जहै अरमान रही पिय सेज पै संग न लेटी। खुलि जाते तो भाग मेरे सजनी बनि जाती जैसे काहू राजा की बेटी ॥ यह तौ सखी जग जानत है काहू लेख लिखी ब्रह्मा की न मेटी। और सखी मैं कहाँ लौं कहौं मैं तो कर्म की होगी में जन्म की हेटी ॥ ११ ॥ जेठ में गरमी वितीत भई अरु हाँकत पंखा मैं होत दुखारी। अब लौं अकेली मैं ए......................

विषय—बारह महीनों के अनुक्रम से किसी सखी का अपनी सखी से विरहावस्था का वर्णन करना।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक में किसी वियोगिनी ने अपनी वियोगावस्था का वर्णन वर्ष के सभी मासों के अनुक्रम से किया है। भाषा में कहीं कहीं शैथिल्य है। रचयिता का नाम ज्ञात न हो सका। अन्त के कुछ पन्ने फट गये हैं। इसमें विप्रलंभ श्रृंगार का वर्णन है।

संख्या १३१. भगवद्गीता भाषा टीका, कागज—देशी, पत्र—३८, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६००, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौ० बुद्धूसिंह जी, स्थान व डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य प्रति कहत हैं ॥ हे आचार्य्य पाँडु पुत्रन की सेना अति गरिष्ठ देषहु ॥ अरू द्रुपद कौ पुत्र ॥ धृष्टद्युम्न तुम्हारे शिष्य अर्जुन रची है। व्यूढ़ चक्राकार के ॥ श्लोक ॥ अत्र शूरा महेश्वासा भीमार्जुन समायुधि। युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथ ॥ ५ ॥ टीका ॥ संजय कहत है यह कथा ॥ महेश्वासा ॥ वितीर्ण धनुष शूरवीर क्षत्री या संग्राम के विषैं ॥ भीमार्जुन सरीषे और कौन कौन ॥ राजा युयुधान ॥ राजा विराट ॥ राजा द्रुपद ॥ समस्त रथ के विषैं आरूढ़ भए हैं ॥ × × × ॥ श्लोक ॥ युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान्। सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथा ॥ ७ ॥ इतने समस्त राजा कुरुक्षेत्र के विषैं चढ़े हैं ॥ सुभद्रा कौ पुत्र अभिमन्यु द्रोपदी कौ पुत्र पाँचाल समस्त रथारूढ़ भये ॥ ७ ॥

अंत—आत्मज्ञान बिना संसार न मिटै ॥ तुम कहत हो भक्तिताप्रसाद तें पावै। आत्मज्ञान के अन्तर भूत भक्ति है जैसें काष्ठ तें रसोई होहि तो अगिनि भिन्न नाहीं काष्ठ के

अंतर भूत है जैसे ग्यान भक्ति के अंतर भूत है ॥ यह वेद पुराण आचार्य सर्व के संमत है ॥ कदाचि कोऊ आपनी पंडिताई केवल गीता विचारे तो गीता के अंतर ततु हे सो कहूँ न पावै ॥ गुरू क्रिपा अमृत बिना सोई दृष्टांत करि कहत हैं जे कोऊ समुद्र कौं अंजुली करि छांड़े अरू निगलो चाहें तो हाथ न आवे ॥ लहरिन में बूझे अर्जुन जुद्ध करि २ याह समझे ॥ इति श्री भगवद्गीता संबोधिनी ॥ कार्तीक टीका अष्टादशो ॥ ध्याय संपूर्ण ॥

विषय—श्री भगवद्गीता की टीका ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक श्री मद्भगवद्गीता की टीका है । टीकाकार कौन हैं, पता नहीं । कब की टीका की हुई है यह भी ज्ञात नहीं । गद्य की शैली प्राचीन है । व्याकरण की त्रुटि यत्र तत्र पाई जाती है ।

संख्या १३२. भगवद्गीता, कागज—देशी, पत्र—९४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—३३६६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बद्रीसिंह जी, स्थान—सालिगपुरा, डा०—जसवंत नगर, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ श्री मद्भगवद्गीता ग्रंथ प्रारंभ ॥ धृतराष्ट्रोवाच ॥ धर्म क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः । मामकाः पाण्डवाश्चैव, किम कुर्वत संजयः ॥ १ ॥ हे संजय, पुण्यभूमि कुरुक्षेत्र में युद्ध करने के लिये एकत्र होकर कें मेरे अरू पाँडवन के पुत्रों ने क्या किया ? ॥ संजय उवाच ॥ दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं, व्यूढं दुर्योधनस्तदा । आचार्य मुप सङ्गम्य, राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ व्यूह बनाइ कर खड़ी भई पाँडवनि की सेना को देखकर राजा दुर्योधन आचार्य द्रोणाचार्य के पास जाइकैं ऐसे बोले ।

अंत—तच्च संस्मृत्य संस्मृत्यरूपमत्यद्भुतं हरेः । विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामिच पुनः पुनः ॥ और हे राजन् कृष्ण के गुप्त अद्भुत रूप को फिर स्मरण आइ जाने पर मोहि बड़ा आश्चर्य होत है अरू मैं बारम्बार आनन्दित हो रहा हों ॥ ७७ ॥ यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्री विंजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्ममः ॥ ७८ ॥ अब मेरा यह दृढ़ निश्चय है गया है कि जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान हैं जहाँ धनुषधारी अर्जुन हैं वहीं राजलक्ष्मी है वहीं विजय है और वहीं भारी उन्नति और वहाँ हीं न्याय है ॥ इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ॥ ब्रह्म विद्यायाँ योग शास्त्रे ॥ श्री कृष्णार्जुन संवादे ॥ संन्यास योगो ॥ नामाष्टादशी ॥ ऽध्यायः ॥ समाप्तम् शुभम् ॥ राम राम राम ॥

विषय—श्री मद्भगवद्गीता की भाषा टीका ।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता के नामादि का परिचय नहीं मिलता । टीका साधारण कोटि की है । अर्थ समझने के लिये उपयोगी है ।

संख्या १३३. भगवद्गीता संबोधिनी वार्ता, कागज—बाँसी, पत्र—८४, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२८, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६७५, खंडित, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० कृष्ण बिहारी जी, स्थान—अजनौरा, डा०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा ।

आदि—..............प्रवीण चलत भए ॥ श्लोक ॥ अपर्याप्तं तदस्माकं वलं भीष्माभि रक्षितं । पर्याप्तं त्विदमेतेषां वलं भीभाभि रक्षितं ॥ ११ ॥ राजा दुर्योधन कहत हे हमारी सेना यो है ताकों भीष्म रक्षा करतु है सो भीष्म महावली हैं यातैं पाँडवनु परि कृपा करत है तातैं हमारी सेना अपूर्णहीन है ॥ याकारणतें ॥ श्लोक ॥ अयनेषुच सर्वेषु यथा भागमवस्थिता । भीष्ममेवाभि रक्षंतु भवंतः सर्वएवहि ॥ १२ ॥ टीका ॥ राजा दुर्योधन अपनी सेना प्रति कहतु है तुम समस्त राजा जहाँ तहाँ ठाड़े हौ तहाँ तहाँ भीष्म की रक्षा करौ ॥

अंत—॥ श्लोक ॥ तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूप मत्यद्भुतं हरेः । विस्मयो मे महान् राजन्, हृष्यामिच पुनः पुनः ॥ ७७ ॥ टीका ॥ ता अद्भुत विस्वरूप कों सुमिरि सुमिरि विस्मै होत हों अरू वार वार पुलकि रोमांच होत हौं ॥ श्लोक ॥ यत्र योगेश्वरः कृष्ण, यत्र पार्थो धनुर्द्धरः । तत्र श्री विंजया भूति, ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥ टीका ॥ तातैं तू भी गीता अर्थ अरु विश्व रूप सुमिरि करि कृतार्थ होह पुत्रन की जीवने की तथा राज्य की आस छाँड़ि सो क्यों जा सेंना में योगेश्वर कृष्ण हैं अरू अर्जुन से धनकधारी हैं तहाँ ही तूं विजै जाणि वहां ही लक्षिमि ईस्वर ता न्यति व्यभूति सोभा संपति निश्चै करि सर्वजाणी ॥ इति श्री भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म ॥ विद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन ॥ संवादे सन्यास योगोनाम ॥ मष्टादशोध्याय ॥ १८ ॥

विषय—श्रीमद्भगवद्गीता का हिंदी अनुवाद ।

विशेष ज्ञातव्य—टीकाकार का पता नहीं है । समस्त टीका हिन्दी गद्य में है । शैली प्राचीन पंडिताऊ ढंग की है । लिखने में अशुद्धियाँ भी हुई हैं । टीका सरल और सुबोध है ।

संख्या १३४. भजन अभिमन्यु की लड़ाई के, कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२७०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० धूरीलाल जी, स्थान—वलीपुर, डा०—उरावर, ज़ि०—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ ओं भगवते नमः ॥ अथ भजन अभिमन्य की लड़ाई ॥ ॥ दोहा ॥ अल्पबुद्धि मति हीन हूँ, सब भक्तन को दास । अब मैं कछु भारथ कहूँ, कथा करौ परकास ॥ १ ॥ दिरजोधन पाती भिजवाई । दिरजोधन पाती भिजवाई पांडु सभा में आई । है कोई जोधा मेरे दल में चक्राव्यूह की को लड़ैगो लड़ाई ॥ १ ॥ दिरजोधन पाती भिजवाई ॥ गुरु द्रोणा चक्राव्यूह रचौ है उनकी यह प्रभुताई ॥ जल्दी करौ समर की त्यारी जानि परै तुम्हारी मनुसाई ॥ २ ॥ दिरजोधन पाती भिजवाई ॥ नहीं तो जीत पत्र लिखि भेजो धर्मराज हौ बलदाई ॥ फिरि करी बनवास जाय तुम ऐसो लिखत दिरजोधन राई ॥ ३ ॥ दिरजोधन पाती भिजवाई ॥

अंत—अब अभिमन्तु कीन्ह यह करनी ॥ अब अभिमन्नु कीन्ह यह करनी सैना काटि गेरी धरनी । तब रवि सुत ने क्रोध करो है करन कुमर से ह्वै रही वरनी ॥ १ ॥ अब अभिमन्तु कीन्ह यह करनी ॥ पाँच वान जो कुमर ने छोड़े कर्णहिदे तकि के मारे ॥ तब अभिमन्यु क्रोध अति कीन्हों तुरंग स्वारथी गेरे धरनी ॥ २ ॥ अब अभिमन्तु कीन्ह यह करनी ॥ भयो विरथ जब कर्ण सो क्षत्री गुरू द्रोण तब उरझाने ॥ भूरीश्रुवा क्रोध कर आये महामारू लगी कुमर पै परनी ॥ ३ ॥ अब अभिमन्यु कीन्ह यह करनी ॥ अस्वस्थामा कृपा ने घेरो दूसासन से भई वरनी ॥ छोटेलाल आस दरसन की कुमरवान रन वीच कतरनी ॥ ४ ॥ देषी दुम्हारी अधर्म लड़ाई ॥ देषी तुम्हारी अधर्म लड़ाई अभिमन्यु कहैं वनराई ॥ हम अकिले तुम वीर हजारन गुरु करन से धनुप कटाई ॥ १ ॥ देषी तुम्हारी अधर्म लड़ाई ॥ या कहि कुमर शक्ति जो फैंकी करन हिदे तकि के मारी ॥ मुर्छित कियो कर्ण सो छत्री पारथ पुत्र महा वलिदाई ॥

विषय—अभिमन्यु का चक्राव्यूह भेदन वर्णन ।

संख्या १३५. भजनादि संग्रह, कागज—देशी, पत्र—४८, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८८०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामसनेही जी, स्थान—घरवार, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—········कौनी देस वसैया ये वनचर मोरा । किहिकर पुत्र किहिकर तुम पाइक कौनी कुमर पठाए । अंजनी पुत्र राम के पाइक लछिमन कुअर पठाए ॥ कहाँ वाटैं राम कहाँ वाटैं लछिमन कहाँ सैं मुंद्रका लै आए । वन ही में राम वन ही में लछिमन वन ही सैं मुद्रका लै आए ॥ ········जानुकी माता तू धरौ धीरा राम दल साजि कै लै ऐहौं ॥ संग रघुवर के संग रघुवर के जैहौं विप्रनि संग······। ······काह कहौ करूनानिधि गहि पद चरन सासुननदिन के ॥ ······ लै कछु पान दान जदुनंदन मोल विकाने सत्यभमरिन कै । तिन्हैं छोड़ि मतिमंद अभागी का हम करव नारि घर रहि कैं ॥ जरिवरि तरि मैं झारि विछायो औरु विछौना कुसुम कलिन के । तापर सैन सेज प्रभु करिहै········जि परिकै ॥ तुलसिदास प्रभु आस चरन की हारि के चरन पर रहव चित धरिकै ॥

अंत—सीतापति रामचंद्र रघुपति रघुराई । रसना रसनाम लेत संतनि कौं दरस देत, विहँसत मुषचंद मंद सुन्दर सुषदाई ॥ दसन चमक चतुर चाल श्रैन वैन द्रग विसाल, भ्रकुटी मनु अनल पाई नासिका सुहाई ॥ केसरि कौ तिलकु भाल मानौ रवि प्रातकाल, श्रवन कुंडिल झलमलात रति पति छवि छाई ॥ मौतिन की कंठ माल तारागन उर विसाल मानों—गिरि सिषिर फोरि सुरसरि धसि आई ॥ सुर नर मुनि सकल देव विरंचि करत सेव कीरति, ब्रह्मांड षंड तीनि लोक छाई ॥ सामरौ त्रिभंग अंग काछैं कटि अति निषंग, मानौ माया की मूरति आपुही बनि आई ॥ सषा सहित सरजु तीर ठाढ़े रघुवंश वीर, हरषि निरषि तुलसीदास चरनन वलि जाई ॥ × × ×

विषय—राम और कृष्णपर विविध कवियों के भजनों और पदादि का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ आद्यन्त से खंडित है। राम और कृष्ण के संबंध के तुलसी, सूर, मीरा तथा माधोदास आदि के पद संगृहीत हैं। संग्रह कर्त्ता का नामादि का पता नहीं।

संख्या १३६. भजन मनोरंजनी, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—५७६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मुं० बच्चन लाल जी, स्थान—चकवा खुर्द, डा०—बसरेहा, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ अथ भजन मनोरंजनी लिष्यते॥ ऐसो सिय रघुवीर भरोसो। वारि न वोरि सको प्रहलादहि पावक नहिं जरौ सो॥ गिरि ऊपर से डारि दियो है भूमि परे उबरो सो। ऐसी हिरनाकुश प्रहलाद भक्ति सों हठिकर वैर करो सो॥ मारी चहै दास नर हरि कौ आपहि दुष्ट मरौसो। ऐसे लंकाजारि अंजनी नंदन देखत पुर सगरो सो॥ ताके मध्य विभीषण को गृह राम कृष्ण उबरो सो॥ रावण सभा कठिन प्रण अंगद हिय धरि हरि सुमिरो सो॥ मेघनाथ से कोटिन योधा टारे पग न टरौ सो॥ ऐसो०॥ द्रुपद सुता को चीर दुसासन राज सभा पकरौ सो॥ खेंचत खेंचत भुजबल हारे नेक न अंग उघरो सो॥ ऐसो०॥ मह भारत भँवरी के अंडा छोहनि दल बढुरो सो॥ राम नाम जब पक्षी टेरयो घंटा टूटि परौ सो॥ ऐसो०॥ मीरा कै मारन को खातिर दीन्हों जहर खरौ सो॥ राम कृपा से अमृत होइगो हँसि हँसि पान करौ सो॥ ऐसो०॥

अंत—राम सुमिरि लै सुमिरन करलै को जाने कलकी। रैनि अँधेरी निर्मल चन्दा जोति जगै झलकी॥ धीरे धीरे पाप कटत है होति मुक्ति तन की। कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी करि बातैं छल की॥ भवसागर के त्रास कठिन हैं थाह नहीं जलकी। धर्मी धर्मी पार उतरिगे डूबे अधम जनकी॥ कहत कबीर सुनो भइ साधो काया मंडल की। भजि भगवान आन नहिं कोई आशा रघुवर की॥ × × ×

विषय—तुलसी और कबीर आदि के भक्ति संबंधी कुछ गीतों का संग्रह।

विशेषज्ञातव्य—इस ग्रंथ में महात्मा तुलसीदास तथा कबीरदास जैसे कुछ भक्त कवियों के भजन संगृहीत हैं। इसके मध्य और अंत का कुछ भाग लुप्त हो गया है। संग्रह-कर्त्ता के नामादि का कुछ पता नहीं चलता।

संख्या १३७ ए. भजन प्रभाती, कागज—देशी, पत्र—१४, आकार—६¾×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठाकुर शेरसिंह जी साहब, जमींदार मौजा मैयामई, डा०—शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः॥ अथ प्रभाती भजन लिष्यते॥ सीतापति रामचन्द्र

रघुपति रघुराई ॥ टेक ॥ रसना रसनाम लेत संतन को दरस देत विहँसत मुखमन्द मन्द सुन्दर सुखदाई ॥ केसर को तिलक भाल मानों रवि प्रातकाल श्रवण कुंडल झिल मिलात रतिपति छवि छाई ॥ मोतिन की गलमाल तारा उडगण विशाल मानो गिढ़ि शिखिर फोरि सरपर विहाई ॥ दर्शन चमित चतुर चाल नैनामृत सम विशाल अरुन नैन भृकुटी भाल नासिका सुहाई ॥ सुरसरि के तीर नीर विहरत रघुवंश वीर तुलसीदास हरषि निरषि चरनन रजपाई ॥ सीतापति रामचंद्र रघुपति रघुराई ॥

अंत—आलस भरे नैन सकल सोभा की खानी। गोपीजन सिथिल भई चितवत सब ठाढ़ी ॥ नैनकर चकोर वंद वचन प्रीति बाढ़ी। माता जलझारी लै कमल मुखपर वारेउ ॥ नीर जूर परम करत अलसह विसारेउ। सखा द्वार ठाड़े सव टेरत हैं बन को। यमुना तट चलहु कान वारन गौअन धन कौ रै ॥ सरफ सहित जे भोजन कुछ कीन्हेउ। सूरश्याम हलधर संग सखा को ले लीन्हो ॥ प्रभाती ॥ आज हरि रैन उनींदे आये ॥ टेक ॥ अंजन अधर लला महावर नैन तंबोल खवाये ॥ विनुगुन माल विराजत उर पर चंदन रेख लगाये ॥ आज हरि नैन उनींदे आये। मगन देह सिर पाग लटपटी जावक रंग रंगाये ॥ हृदय सुभग नखरेख विराजत कंचन पीठ वनाये। सूरदास प्रभु यही अचंभौ तीन तिलक कहाँ पाये ॥ आज० ॥

विषय—प्रातःकाल सोकर उठते समय रामचन्द्र जी महाराज को जगाने के लिये गाई जानेवाली प्रभातियों का संग्रह।

संख्या १३७ बी. भजन प्रभाती, कागज—देशी, पत्र—५७, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—११९७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० सीताराम जी, स्थान—भीखनपुर, डा०—वरनाहल, जि०—मैनपुरी।

आदि—॥ अथ प्रभाती लि०॥ प्रभाती १ सीतापति रामचन्द्र रघुपति रघुराई ॥टेक॥ रसना रस नाम लेत संतन को दरस देत विहसत मुखमन्द मन्द सुन्दर सुखदाई ॥ केसर को तिलक भाल मानों रवि प्रातकाल श्रवण कुंडल झिल मिलात रति पति छवि छाई ॥ मोतिन की गलमाल तारा डड़गण विशाल मानों, गिर शिखर फोरि सर पर विहाई ॥ दर्शन चमित चतुर चाल नैनामृत सम विशाल, अरुन नैन भृकुटी भाल नासिका सुहाई ॥ सुरसरि के तीर नीर विहरत रघुवंश वीर तुलसीदास हरषि चरनन रजपाई ॥

अंत—॥ प्रभाती ॥ आज हरि रैन उनीदे आये। अंजन अधर लला महावर नैन तवोल खवाये ॥ विनगुन माल विराजत उर पर चंदन रेख लगाये ॥ आज हरि नैन उनीदे आये ॥ मगन देह सिर पाग लटपटी जावक रंग रंगाये ॥ हृदय सुभग नख रेख विराजत कंचन पीठ वनाये। सूरदास प्रभु यही अचम्भो तीन तिलख कहाँ पाये ॥ आज हरि नैन उनीदे आये ॥ भजन रंगत मस्वानी ॥ रघुवर बांध्यो वसंती चीर। सूरज के तीर अयोध्या नगरी खेलत है चारों वीर। रघुवर बाँधौ वसंती चीर ॥ १ ॥ चरन छुये से पाखान उड़त

हैं तारी गौतम अहिल्या नारि । रघुवर बांधौ वसंती० ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ नील कमल कर धनुष विराजै कोमल मात शरोर रघुवर बांधौ बसन्ती० ॥ ३ ॥ तुलसीदास आसा रघुवर की धन्य वाण रणधीर ॥ रघुवर बांधौ० ॥ ४ ॥ ठाकुरदास की करो सहाई तेरो पायक है रघुवीर ॥ रघुबर बांधौ० ॥ ५ ॥

विषय—विविध कवियों द्वारा रचित कविताओं का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत रचना में किसी भक्त ने सूर, तुलसी, मीरा और रामदास आदि की रची प्रभातियों का संग्रह किया है । संग्रहकार का परिचय ज्ञात नहीं है ।

संख्या १३८. भजन रामायणादि, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—९१२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लज्जारामजी शर्मा, स्थान—लदपुरा, डा०—जसवन्तनगर, जि०—इटावा ।

आदि—मुनि साथ चले रघुनाथ लखन लषन लघुभाई । पहिले जाइ ताड़िकै मारयौ असुर समूह नसाई ॥ मुनि मन हरषि लषन रघुवर लषि, मानो उर आनन्द न समाइ लषन ॥ १ ॥ मुनिवर से वोले रघुराई यज्ञ करौ तुम जाई । मुनिवर यज्ञ करन जव लागे तव धायो मारीच रिसाई ॥ लखन रघुवर ॥ २ ॥ मारा वान राम उर ताके शत योजन उड़िजाई । विश्वामित्र देखि हरषाने तव फूलन की झरलाई ॥ लखन लघु० ॥ ३ ॥......नि रामचलो मिथिलापुर धनुष यज्ञ लषि आई । राम लषन संग लैकै महीपति रौरै पहुँचे जनकपुर जाई ॥ लखन लघु० ॥ ४, ३५ ॥

अंत—वृन्दावन कुँवर कन्हाई आजु लीन्हें भीर ग्वाल वालन की घेरि लियो समुदाई वृन्दावन की कुंज गलिन में छीनि छीनि दधि खाई ॥ कोऊ सषी कहूँ जान न पावै गहि वहियाँ वैठाई । काहु की चुँदरी गहि फान्यौ काहू की धरै कलाई ॥ कहा न मानै नंदमहरकौ वरवस करै ढिठाई । सूरदास वलिजाउँ चरनन की, तिन मोहि लियो अपनाई ॥ २० ॥ रंगु चुवे गुलाबी नैंनों से । काजर दिहे नैन की कुरवा वोलै मधुरे वैनों से ॥ वेंदी भाल जराऊ टीका झलक दिखावै एनों से । सारी पहरि अंगन वाढ़ी ठाढ़ी पियहि बुलावै सैनों से ॥ सूरस्याम याही रस अटके रसिया मोहन चैनों से ॥ २१ ॥ वलिहारी तेरी चितवनिया की । होत भोर तोका मोती में..........

विषय—रामायण तथा भागवत और कुछ अन्य रसात्मक गीतों का संग्रह ।

संख्या १३९. भजनसागर, कागज—देशी, पत्र—४८, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५८४, खंडित, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौधरी मिश्रीलालजी, स्थान व पो०—वैदपुरा, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ भजन सागर लिख्यते ॥ भजु दशरथ नन्दन

जनक लली, जनकलली रघुनाथ वली ॥ टेक ॥ ऋषि के संग जनकपुर आये, पुष्प बिछावत गलिय गली ॥ १ ॥ तोड़े धनुष भूप सब हारे राय जनक की भली भली ॥२॥ पूजति गौरि मनावति शंकर वर पायो रघुनाथ वली ॥ ३ ॥ फूली कुँवरि फिरति आँगन में वरमाला पहिराय चली ॥ ४ ॥ पहिने कुँवर राय दशरथ के मंगल गावत पुर की अली ॥ ५ ॥ तुलसीदास प्रभु की छबि निरखत हृदय वसौ मेरे येहि भली ॥ ६ ॥ भजन ॥ दशरथ नन्दन सियारामा ॥ टेक ॥ दूर्वादल नील मणि राजत मेघवर्ण प्रभुघन श्यामा ॥ १ ॥ संग सषा सरयू तट विहरत धनुष धरे प्रभु कर वामा ॥ २ ॥ क्रीट मुकुट कानन कुंडल छबि निरखि लजित कोटिक कामा ॥ ३ । जन हरि आनन्द रूप निहारे रसना गावत गुणग्रामा ॥ ४ ॥

अंत—॥ भजन ॥ खेलत हैं पिया प्यारी सँण खेलत हैं पिया प्यारी ॥ रत्न जटित चौकी पर ढारत हँसत करत किलकारी ॥ टेक ॥ पहिले दाव परौ रामा को पीत पिछौरी हारी ॥ अबकी वेर पिया मुरली लगावो तौ खेलौं गिरिधारी ॥ १ ॥ जानत हौ छल बल कर छूटो कहौ लाल हरि हारी ॥ परमानंद दास के ठाकुर जीती वृषभानु दुलारी ॥ २ ॥ ॥ भजन ॥ राम की प्रसादी पावैं पवनसुत राम की प्रसादी पावैं ॥ टेक ॥ खाटे मीठे और चरपरे रुचि रुचि भोग लगावैं। लै लै नाम सकल······ [शेष लुप्त]

विषय—विविध भक्त कवियों के रचित भजनों का संग्रह।

विशेषज्ञातव्य—यह एक संग्रह ग्रन्थ है। इसमें सुप्रसिद्ध अष्टछाप कवियों तथा महात्मा तुलसीदासजी, नरहर दास जी और मीराबाई जैसे कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं। संग्रहकर्ता ने अपने नाम धामादि का कुछ परिचय नहीं दिया है। ग्रंथ का अंतिम भाग लुप्त हो गया है।

संख्या १४०. भजन सागर, कागज—देशी, पत्र—३४, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५३६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौ०—बुद्धूसिंह जी, स्थान व डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—कृपानिधान जानि प्रान पति संग विपिन हुइ आवैंगी। पिया के चरन पैर दावोंगी श्रम हुइवाउ डुलावोंगी ॥ बिहँसे कोटि गुनी सुनि मारग संग चलै सुष पावोंगी। तुलसीदास धनि धनि यह जीवन फिर नैन दिखावैगी ॥ १ ॥ संपूर्ण ॥ लागा नेह जानकी वरसै सीआ रघुवर सै ॥ आठ सिद्धि नव निद्धि सीआवर काम नहीं मोहि चारौ फरसै ॥ फहर फहर फहरात पितंबर प्रीति लगी मोहि दशरथ सुत सै ॥ अग्रदास की याही विनती प्रीति लगी मोहि सारंग धरसै ॥ सोरठि ॥ लाज वैरिन भई सषी मोहि लाज वैरिन भई ॥ कठिन छाती स्याम विछुरे विहरि क्यों न गई ॥ जमुना तीर कदम कौ पिड़वा कदमतर तर गई ॥ सून गाछ कदम की देषी मन विरोगित भई ॥

अंत—कहीं देषोरी घनस्यामा ॥ नंद बबाकेरी धेनु चरावै बाँचत वेद पुराना ॥ वट में मोहन मुरली वजावत लगत प्रेम रसवाना ॥ १ ॥ कंस रजा केरी निकरी ग्वालिनी

भरि जमुना जल जाना ॥ घट पर मोहन रारि मचावत कोटिन करत वहाना ॥२॥ पीताम्बर कटि कछनी काँछ कुंडल छलकत काना ॥ सौमुरी मूरति पर तिलक विराजत इनहीं सौं मोरा कामा ॥ ३ ॥ सूर साधु कै दरसन दीनै हरि रीझै मेरो प्राना ॥ मोर मुकुट मकराकृत कुंडिल मष मुरली को वाना ॥ ४ ॥ जो प्रभू मेरी ओर निहारो ॥ टेक ॥ लीन कुलीन सबही हूं करत हूँ साँझ किनोन सकारो ॥ गुन चाहो सो एकहु नाहीं मैं अपराधी भारौ ॥ चहिंयत नाहिं सुमति सम्पति कछु फक्त इक नाम तिहारौ ॥ काम क्रोध मद लोभ मोह सें इनसें करि देउ न्यारो ॥ लोभ मोह की नदी वहति है करिलेउ नाम सहारौ ॥ और अधम सव एक पला में एक पला में न्यारो ॥ नाम सुनों तव तुम पर आयो ऐसो विरुद तिहारौ ॥ तुलसीदास भजौ भगवानैं सब सन्तनि कौ प्यारौ ॥ × × ×

विषय—राम और कृष्ण के संबंध में कुछ भक्ति विषयक पदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में सूर, तुलसी, मीरा और भीखा आदि भक्त कवियों के पद संगृहीत हैं। राम विषयक अधिक और कृष्ण विषयक कम पद हैं। संग्रहकार के विषय में कुछ पता नहीं चलता ।

संख्या १४१. भजन संग्रह, कागज—देशी, पत्र—६४, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—७६८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बाबूरामजी, स्थान—बीरई, डा०उरावर, जि०—मैनपुरी ।

आदि—.........धनुष जरा औ सेत बाँधि रतनाकर सागर न्हासी ॥ चीर पर पाइल घाइल माइल पंचवटी अघनासी ॥३॥ गिरे नाल पर पंठ विराजै षरै ताल अघनासी ॥ गोबरधन गोकुल वृन्दावन वीच मंडल चौरासी ॥ हरिद्वार हरि पुरी जो नर विहरै कलम् कैलासी ॥ नाराइन हरि गुप्त तलै आहिंग लाज मैं जासी ॥ इतना ध्यान तुम धारौ कान्हरा सहज करै जम फाँसी ॥ ४ ॥ संपूर्ण ॥ नाथ सराना पीआजैयो सुनु सैंयां हमरे हो। सुनु दसकंध दंत तृन गहि कैलै परिवार सिधारौ ॥ परम पुनीत जानकी लैकै कलि कलंक निजु तारौ ॥ गहि दससीस चरन तर राषौ तजिमन कुटिल अधीरा। मैटैंगे अपराध महाप्रभु कृपासिंधु रनधीरा ॥ १ ॥

अंत—॥ चंचरीक ॥ देषो रघुवर समाज आजु छवि बनी। गयौ सवार सरजू पार षेलन समगन सिकार, आवत मन सषन कहत निज-निज करनी ॥ अनुज संग हरित रंग वसन लसित सुभग अंग चीरा, सिर जटित कलित कलँगी मन कनी ॥ रंग रंग के कुरंग भूषित मानों नीक जंघ लंकता लषि अंग अंग अंक को भनी ॥ धनुष कंध कटि निषंग आयुस महुजन निषंगनीअ तुरंग संग रामचंद्र जूहनी ॥ २ ॥ चंचल मगु चपल चलत छम छम नहिं पीठ हलति थिरकत थिरि हरनि जितति मारे कामिनी ॥ [शेष लुप्त]

विषय—रामचन्द्र जी के बाल समाज की शोभा, शिकार और उनके चरित्रों का वर्णन ।

विशेषज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में तुलसीदास और सूरदास आदि कुछ कवियों के गीत संगृहीत हैं । सूरदास के गीत प्रायः कृष्ण चरित्र पर हैं । इसके अतिरिक्त कुछ रचनाएँ आधुनिक कवियों की भी हैं । संग्रह की प्रस्तुत प्रति आदि अंत से खंडित है ।

संख्या १४२. भजन संग्रह, कागज देशी, पत्र—१६, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—५२८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बद्रीसिंह जी, स्थान—सालिगपुरा, डा०—जसवंतपुर, जि०—इटावा ।

आदि—पनघट पर बाँह मरोरी श्याम जदुराई । नंदलाल सब ग्वाल के नायक नागर श्याम कन्हाई ॥ बाजु औ बन्द हारकर कंगन, मति तोरहु नरम कलाई ॥ श्याम० ॥ ॥ १ ॥ मैं वारी हारी कुंजनि लौं तुम चाहो तरुणाई । तुम ब्रज नारि नयन रस डोलत हँसि बोलत कुँवर कन्हाई ॥ श्याम० ॥ २ ॥ इतनी सुनि वृषभान नन्दिनी रोम रोम भरि आई । ताही समै बोले जदुनन्दन बहियाँ गहि नेह लगाई ॥ श्या० ॥ ३ ॥ कौल करार भयो पनघट पर, बाँह गही जदुराई । औरी लाल भजु श्याम ललित छवि लै गोहन कुंजन जाई ॥ ॥ श्याम जदुराई ॥ ४ ॥ २ ॥

अंत—॥ ठुमरी राग पीलू ॥ गोरी सखी निरखि गात मुसिक्याती ॥ टेक ॥ करें कठिन कठिन कुच जोवन कसे कठिन बँद जाती ॥ १ ॥ गोरे तनपै स्यामल चादर कारी घटा मनो जाती ॥ २ ॥ मृग नैनी भूषन बरसाने चली हंसगति जाती ॥ ३ ॥ दुर्गा प्रसाद स्याम जुत सोहै लखि रतिरूप लजाती ॥४॥ भजन राग जंगल झंझोटी ॥ कपटी मन काहे भुलान रहे गिरिजापति के नहिं चरण गहै । वरदानी सदा श्रुतिवे··········

विषय—विविध कवियों के रचे कुछ गीतों का संग्रह ।

विशेषज्ञातव्य—ग्रंथ आद्यन्त से खंडित है । उसमें विविध कवियों के विविध विषय संबन्धी गीतों का संग्रह है । अनेक गीतों में रचयिता की छाप है और अनेक में नहीं । श्रृंगार, प्रेम भक्ति तथा दैन्य आदि अनेक विषयक छन्द संगृहीत हैं । संग्रहकर्त्ता कौन है तथा उसने कब संग्रह किया, इन बातों के संबंध में कुछ पता नहीं चलता ।

संख्या १४३. भजनावली, कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं०श्री रामजी दुबे स्थान—चौबिया, डा०—खास, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ भजन लि० ॥ अवगढ़ फिरि हौ राम दुहाई ॥टेक॥ त्रिया जाति बुद्धि की ओछी उनहु की करत बड़ाई । कटक सहित हम बाँधि लै आवें तपसी दोउ भाई ॥ २ ॥ कंचन कोट देखि मति भूली सात समुद्र सी खाई । अंजनि पुत्र महाबल बीरा सोने की लंक जराई ॥ ६ ॥ बीस भुजा दस मस्तक हमरे सौ योजन चकलाई ।

सखालाख रखवार हमारे कुंभकर्ण बल भाई ॥ ४ ॥ कटक जोरि के पार उतरिहैं दलबल सिंहा भाई । तुलसीदास रघुवर जी के शरणा लंक विभीषण पाई ॥ ५ ॥ १ ॥ रामचरण सुखदाई भजौ रें मन रामचरण सुखदाई ॥ टेक ॥ जिन चरणनि सों निकसि सुरसरी शंकर जटा समाई । जटा शंकर की नाम धरयो है त्रिभुवन तारन आई ॥ १ ॥

अंत—कपि की चौकी आई साधो भाई कपि की चौकी आई ॥ चलियो वेगि विलम नहीं कीजै, सीख सवनि मिलि पाई ॥ टेक ॥ बड़े बड़े योधा हैं कपि ध्वज के रहत महल पर छाई । चारि पहर के चारि पहरुआ चौकस रहियो भाई ॥ १ ॥ ना काहू का करत भरोसा ना काहू पति आई । तुलसीदास हनुमान भरोसो सुख पौंढ़े रघुराई ॥ २ ॥ नौमी के दिन नौवति वाजै सुत कौशलया जायोरी ॥ सात घड़ी दिन बीति गयौ तव सखियन मंगल गायोरी ॥ टेक ॥ अति आनंद अवधपुर घर घर भयो सवन मन भायोरी ॥ शुभ नक्षत्र शुभ घरी महूरत मंगल कलश बनायोरी ॥१॥ जय जय करत सुरपुर में पुष्प वृष्टि झर लायोरी । कंचन थार भरि मुतियन के चंदन चौक पुरायोरी ॥ २ ॥ धन्य यह वंश भयो रघुकुल को ॥

(शेष लुप्त)

विषय—राम और कृष्ण संबंधी कुछ गीतों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में तुलसी, सूर, मीरा और चन्द्रसखी इत्यादि भक्त कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं । समस्त गीत प्रायः राम एवम् कृष्ण विषयक हैं । ग्रंथ का अंतिम भाग लुप्त हो गया है । संग्रहकार के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होता ।

संख्या १४४. भक्ति प्रशंसा भाषा, कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—६$\frac{3}{2}$ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९६, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—भगत मनीराम जी वैश्य, स्थान—आन्दोर, डा०—गोवर्धन, जि०—मथुरा ।

आदि—...दर्शनं वैष्णवानां च देवावांच्छति नित्यशः न वैष्णवात्परः पुतो विश्लेषु निषिलेषु च ॥ टीका ॥ वैष्णवन को दरसन देवता हू प्रतिदिन चाहत है । वैष्णवन ते दूसरो या जगत में कोई पवित्र नहीं है । गरुड़ पुराणे श्री समीपे तिष्टते यस्यं घ्नन्ति कालोपि वैष्णवा । गछते परमं स्थानं यद्यपि ब्रह्म हा भवेत ॥ जाके मरण समय वैष्णव पास बैठे होइ सो उनकूँ ब्रह्महत्या हू होइ सो वो वैकुण्ठ कूँ ही जात है ऐसो जो पुरुष हे सो सबरे कुल कूँ पवित्र करत है तिनकी भगवद् भक्ति रहित बड़े प्रतिष्ठा वालों कों हूँ वैष्णव के संग ते पवित्र करत हैं ।

अंत—अपकीट भगानां सर्व यां मुक्ति दायकः मुक्ति क्षेत्र मिदं प्रोक्तं वैष्णव द्वेषी विंना आगम में कहा हे मुक्ति क्षेत्र अर्थात सप्त पुरी एक वैष्णव ध्वेसि कों छोड़ि कीट पतंग को भी मुक्ति देता हे अर्थात् सव भगवद् भक्त के द्वेष करन वाले की मुक्ति नहीं होति हें । भविष्य पुराणे सर्व भूत दया युक्तं वैष्णव द्वेष्टि यो नरः स चांडालो महापापी रौरवं नरकं व्रजेत । भविष्य पुराण में कह्यो है जो पुरुष सर्वप्राणी मात्र के ऊपर दया करत है जो पुरुष

सर्व प्राणी मात्र के ऊपर दया करत है और तिनको जो कोई द्वेष करत हैं सो महापापी चाण्डाल रौरव नरक में जात है ॥ गीतायां अध्याये ॥ तपस्विभ्योधि को योगी ज्ञानिभ्योपि मनोधिकं कुर्मिभ्यश्वाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन श्रद्धावान्भजंते यो मां समें युक्त तमोमतः श्री गीता जी में भगवान कहे हैं जो तपस्वी ज्ञानी ओते कर्म योगी अधिक हे और योगी ते हमारे भक्त अधिक हैं ॥ इति भक्ति प्रशंसा ॥

विषय—वैष्णव और भगवद्भक्ति की विवेचना एवं समर्थन सब धर्म्म ग्रंथ गीता भविष्यपुराण, गरुड़ पुराण आदि द्वारा किया गया है।

संख्या १४५ ए. भरथरी चरित्र, कागज—देशी, पत्र—१३, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—२९३, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामनारायण जी, स्थान व डा०—जसराना, जि०—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ श्री भरथरी राजा का चरित्र लिख्यते ॥ इन्द्र के नाती भये। गन्धर्व सैन के पुत्र। भाई विक्रमाजीत के मैनावन्ती भैन ॥ चौपाई ॥ जा दिन जनमें हैं राजा भरथरी वाजे हैं तबल निसान। हरे हरे गोवर मँगाय कैं अँगना वेदी लिपाय ॥ मोतिन चौक पुराय कैं कंचन कलस धराय। सुवर सहेली बुलाय कैं गावैं मगल चार। कासी तें पंडित बुलावतीं चंदन चौकी विछाय ॥ ब्रह्मा वाँचन वेदन मुल्ला हरफ किताब। नाम तो निकला है भरतरी करम लिखा है बाला जोग ॥ वारों जारों वोरे वेद को पुत्रै दोष लगाय। कंचन देवोंगी दच्छिना लौटि धरौं इसका नाम ॥

अंत—कलि में अमर हो जाओ राजा भरतरी जी, बाल रानी ते दिन श्याम देसनो राजा महराज ॥ जोगी होके सैयां रमि चले, मैं जोगिनि तेरे साथ। तेरे चलैं तिय नावनैं, जोग पूरा न होय। चलना परै दिन रैनि को, रहना विकट उजार। जाय उतरेंगे काहू नगर में, धूनी देइंगे जलाइ। ओही नगर का जो राजा आवै जोगी के पास ॥ तुमको बनावै पटरानियां हमको डारेगा मार। दुविधा में दोऊ गए, माया मिलि न राम। तेरी तेरी संगति ना बनै··············॥

विषय—राजा भरथरी के योग धारण, रानी से संवाद तथा उसके साथ चलनेके हठ इत्यादि का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ का अन्तिम भाग लुप्त हो गया है। ग्रंथ कर्त्ता, उसका निवास स्थान तथा उसकी जाति पाँति का कुछ भी पता नहीं है और न रचनाकाल का ही कोई उल्लेख किया है।

संख्या १४५ बी. भरथरी चरित्र, पत्र—१०, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—३२५, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—कीठौत, डा०—सिरसागंज, मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ भरतरी चरित्र लिख्यते ॥ इन्द्र के नाती भए, गन्धर्वसेन के पुत्र । भाई विक्रम जीत के, मैनावंती भैन ॥ चौपाई ॥ जा दिन जनमें हैं राजा भरथरी वाजे हैं तबल निसान । हरे हरे गोबर मँगाय कैं अँगना वेदी लिपाय ॥ मोतिन चौक पुराय कैं कंचन कलस धराय । सुघर सहेली बुलाय कैं गावैं मंगल चार ॥ कासी ते पंडित बुलावती, चंदन चौकी बिछाव । ब्रह्मा बाँचन वेदन मुल्ला हरफ किताब ॥ नाम तो निकला है भरथरी करम लिखा है वाला जोग । चारों जारों वोरे वेद को पुत्रै दोष लगाय ॥ कंचन देवोंगी दच्छिना लौटि धरौ इसका नाम ॥

अंत—पटकाय करि समझावती सुनो राजा महराज ज्ञान गुरु का बतायदो नहिं मुद्रिका लेउँगी छिनाय ॥ कौन गुरु के तुम बालका किन दियो ऐसा ज्ञान । शब्द गुरु के हम बालका, गोरख दै गये ज्ञान ॥ मरियो तेरे गुरू गोरख जी जिन दीया ऐसा ज्ञान ॥ गुरु को गाली तिया मत देवै करि डारे भसमंत ॥ गुरु गूंगा गुरु वावला गुरु है देवक देन । गुरुसे चेला अति बड़ा करता गुरुन की सेव ॥ गुरु वसैंगे काशी में चेला वसैंगे प्राग । अपने गुरू कों यों झुकैं जैसे कुआ झुकै पनिहारि ॥ बड़े बड़ाई रानी ना करैं बड़े न वोलैं वोल । हीरा मनिसों यों कहे लाखन उनका मोल ॥ पुत्र कहै भिक्षा डारि दै जोग अमर हो जाय । कलि में अमर हो जा भरथरी ॥..............................(अपूर्ण) ।

विषय—राजा भरथरी की उत्पत्ति एवं बाल्यावस्था, विवाह और योग में दीक्षित होने का वर्णन ।

संख्या १४६. भर्तृहरि शतक की टीका, कागज—देशी, पत्र—२६, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—७७०, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लल्लूमल जी शर्मा, स्थान—बाउथ, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—...............शिरः शार्वं स्वर्गात्पतित शिरसस्तत्क्षिति धरम् । मही ध्रादुत्तुङ्गा दवनि मवने श्चापि जलधिम् ॥ अधो गंगा सेयं पदुमुपगता स्तोक मथवा । विवेक भ्रष्टानां भवति विनि पातः शतमुखः ॥ १० ॥ गंगा स्वर्ग से शिवजी के सीस पर गिरीं वहाँ से पर्वतपर और पर्वत से पृथ्वी पर और पृथ्वी से समुद्र में गिरीं ॥ इस क्रम सें नीचे ही गिरती गईं और स्वल्प भी होती गईं तैसें ही विवेक भ्रष्ट लोग भी सर्वदा गिरते ही जाते हैं ॥ शक्यो वारयितु जलेन हुत भुक्, छत्रेण सूर्यातपो । नागेन्द्रो निशितां कुशने समदो, दंडेन गोगर्दभौ ॥ व्यधिर्भेषज सदग्रहै श्च विविधैर्मन्त्र प्रयोगै विषम् ॥ सर्व स्यौषधमस्ति शास्त्र विहितं मूर्खस्यनास्त्यौषधम् ॥ ११ ॥

अंत—को लाभो गुणि सङ्गमः किमि सुखं प्राज्ञे तरैः सङ्गति । काहानीः समय च्युतिर्निपुणता का धर्मं तत्त्वेरतिः ॥ कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानु व्रता किं धनं । विद्या किं सुखम प्रवास गमनं राज्यं किमाज्ञा फलं ॥ १०४ ॥ लाभ क्या है ॥ गुणियों की संगति ॥ दुःख क्या है ॥ मूर्खों का संग ॥ हानि क्या है ॥ समय पर चूकना ॥ निपुणता

क्या है ॥ धर्म में रति होना ॥ शूर कौन है ॥ जिसने इन्द्रियों को वस में किया ॥ स्त्री कौन अच्छी है ॥ जो अनुकूल हो ॥ धन क्या है ॥ विध ॥ सुख क्या है ॥ प्रवास में न होना ॥ राज्य क्या है ॥ अपनी आज्ञा का चलना ॥ १०४ ॥ माली कुसम स्येम······[शेष लुप्त]

विषय—भर्तृहरि शतक की टीका।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के आदि और अंत के पत्रे खंडित हैं। टीकाकार के नाम आदि का पता ग्रंथ से नहीं चलता। इसमें नीति शतक की ही टीका है।

संख्या १४७. भवानी अष्टक, कागज—देशी, पत्र—७, आकार—५ × ३१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८५३ = १७९६ ई०, प्राप्तिस्थान—वोहरे रोशन लाल, स्थान व डा०—सुरीर, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ भवानी अष्टक लिष्यते ॥ वुधि विमल करणी विवुध वरणी उपरमणी नीरषये ॥ वरदेणि वाला पद्म परवाला मंत्रमाला निरषये ॥ थरिथान थंभा अति अचंभा उपरंभा भलकती ॥ भजिए भवानी जगत जानी राजराणी सुरसुती ॥ १ ॥ सुरराज सेवत देष देवत पद्म पेक्षत आसनं ॥ सुषदाय सुरति मायमुरती दुष दुरन निवारणं ॥ तिहुँ लोक तारक विघन निवारक ध्वराधारक धरपती ॥ भजिये भवानी जातजानी राजराणी० ॥ २ ॥

अंत—चक्र चालण झटक झालण गरव गालण गंजणी। वीरदांव धारणभान मारण दरिद्र दारण भंजणी ॥ चीर चीये चेडीषलां पंडी मेटत मंडी मलकती। भजिये भवानी जगत जानी राजरानी सुरसुती ॥ ८ ॥ कविकर अष्टक टालक सटक पीसण पीसटक कीजिये मणि मोल मंडित पढ़ै पंडित आइ अषंडित देषिये ॥ दयासुर देवी नित्त नवेली युगपती। भज भवानी जगत जानी राजराणी सुरसती ॥ ९ ॥ इति श्री भवानी अष्टक संपूर्णम् ॥ श्रीरस्तु संवत् १८५३ का ॥

विषय—भवानी की स्तुति में ८ पद कहे गये हैं।

संख्या १४८. भिक्षुक गीत, कागज—देशी, पत्र—३०, आकार—६३/४ × ४३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० वासुदेव जी, ग्राम और डा०—अकोरा, जि०—मथुरा।

आदि— × × × महा अनरथ अरथ करि गहे। सो भवसिंधु आयते वहै ॥ ३१ ॥ तातें दूजो नहिं मतिमंद। परे दुःख में अति आनंद। देव पित्र रिषि भूत सहाई। पुत्र कलत्र आप हित भाई ॥ ३२ ॥ धनहि पाय जो इनहीं पोषे। औरति हूँ कौं नहीं संतोषैं। सो सव त्यागि नरक में जावै। तहां मूढ़ नाना दुष पावै ॥ ३३ ॥ सो तन धन में वृथा गमायो भव दुखते नहिं आप बचायो। जाप पाय वुध ऐसी करै। जातैं वहुरि जनमै ने मरै ॥ ३४ ॥ सो नर तन में वृथा गमायो। छोड्यो अर्थ अनर्थ उपायौ। वयवल आयु सकल मम गये। नषसिष वृध अंग सब भये ॥ ३५ ॥

अंत—ताते उधव मन वचन करम। सकल द्वैत कौं जानौ भरम। सबतें मनकौं निग्रह करौ। निश्चल करि मम चरणनि धरौ॥ ११५॥ याही कौं कहियतु है जोग। जाकरि हौवै मैम संजोग। अरु जे या गाथा को धारै। सुने सुनावै सदा विचारै॥ ११६॥ तिनके निकट द्वन्द नहि आवै। अंतकाल मम चरणनि पावै॥ तातें याको सदा विचारो। मेरो वल अंतर गत धारो॥ ११७॥ दोहा॥ यह उद्धव तोसों कह्यो मम संजम दृढ़ ज्ञान। अव भाषतु हौं सांषि कौं सुनत मिटै ज्यौं आंन॥ ११८॥ इति श्री भागवते महा पुराणे एकादश स्कंदे श्री भगवत उद्धव सम्बादे भाषायां भिक्षुकगीत कथनं नाम त्रय वीसमों ऽध्यायः॥ २३॥

विषय—श्रीकृष्ण का उद्धव को ज्ञानोपदेश।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ अपूर्ण है। ग्रंथकर्त्ता ने अपना नाम नहीं दिया है। शायद जैसा कि अन्त के दोहे से जान पड़ता है रचना और आगे तक की गई है अतः वहीं अन्त में ग्रंथकार का नाम होना संभव है। लिपिकाल और रचनाकाल का भी पता नहीं।

संख्या १४९. चतुश्लोकी की टीका, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—६½ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—६५६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बाबा किशोरीदास, स्थान—चिकसौरी, डा०—बरसाना, जि०—मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः॥ अथ चतुश्लोकी की टीका लिख्यते॥ पहिले श्री आचार्य जी महाप्रभू श्री ठाकुर जी पास ही सब लीला को भोग करत हैं॥ ओर कोई या संसार में लीला को भाव जानत न हतो॥ सो श्री ठाकुर जी के मन में इच्छा भई॥ जो मेरी लीला बिना जीव मेरे निकट नहीं आवेंगे॥ ओर लीला के अनुभव कराइवे में तो एक श्री आचार्य जी सामर्थ हे॥ सो इनको प्रागट्य पृथवी पर होइ॥ तब यह सब कार्य सिद्ध होइ॥ यह श्री नाथ जी अपने मन में विचारे॥ सो श्री आचार्य जी सब जानि गए जो मोकों जीवन के उद्धरण निमित्त पृथ्वीपर प्रगट होइबे को श्री नाथ जी के मन में आई तो भली॥ पाछे श्री नाथ जी हसत श्री आचार्य जी की गोद में पधारे॥ ता समे हँसि के श्री नाथ जी बोले जो तुम पृथ्वी पर जाइके जीवजे दैवी हैं॥

अंत—या भाँति श्री गुसांई जी कहे हैं॥ ताते वैष्णव हो निरन्तर चतुश्लोकी को पाठ तुम जीव बुद्धि तें छोड़ो मति जानियो॥ सब सास्त्र पुराण वेद ताको मथि के माखन रूपी चार श्लोक श्री आचार्य्य जी कहे हैं॥ याही ते ऊपरि कहि आए॥ जो इतनो कार्य पूर्ण पुरुषोत्तम बिना न होइ॥ तातें श्री आचार्य जी के वचन में रंचक हू संदेह न करनो॥ काहे ते सन्देह जहाँ जीव कों भयो तहाँ फल को नास भयो॥ सन्देह हे सो आसुर भाव हे ओर विश्वास हे सो भगवद् भाव हे॥ तातें वैष्णव को सन्देह कबहूँ ना राखनो॥ ओर अपने मन में श्री आचार्य जी के वचन को दृढ़ विश्वास राखनो॥ यह वैष्णव को धर्म है॥ ताते वैष्णव को विवेक संयुक्त रहे॥ यह श्री गुसांई जी अपने वैष्णव को कृपा करि सिक्षा

दिए ॥ ताते वैष्णव को याते अधिक भाव राखनो ॥ काहेते ॥ यामे श्री गुसाईं जी के दोऊ जनेन के वचन मिले है ॥ ताते यह ग्रंथ को निरन्तर पाठ करनो ॥ यह टीका भली भाँति सों सम्पूर्ण भई ॥ इति श्री वल्लभाचार्य जी विरचितं चतुश्लोकी टीका सम्पूर्ण ॥

विषय—पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार चतुः श्लोकी भागवत के अर्थ की विस्तृत विवेचना और उसका महत्व वर्णन किया गया है ।

विशेषज्ञातव्य—श्री वल्लभाचार्य जी ने चतुः श्लोकी भागवत बनाई है । अर्थात् चार श्लोकों में ही भागवत का सारांश कह डाला है । उस पर ब्रजभाषा गद्य में किसी ने यह टीका की है । टीकाकार का नाम अज्ञात है ।

संख्या १५० ए. चीर हरण लीला, कागज—बाँसी, पत्र—१३, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४००, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० गन्धर्व सिंह जी, स्थान—गढ़ीदान सहाय, डा०—शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ चीर हरण लीला लिख्यते ॥ चौपाई ॥ भवन रवन सवहिन विसरायौ । ब्रज जुवतिन हरिसौं मनलायौ ॥ यहै वासना सव है मनमाना ॥ होय गुपाल हमारो स्वामी सुजान ॥ यहै वासना करि उर ध्यायौ । हरि के चरनन चित ल्यायौ ॥ षटदस सहस नृपन की कन्या । करन लगीं तप हरि हित धन्या ॥ गहति कृपा जुत तपकौं साधैं । छाढि दई सब भोग उपाधैं ॥ प्रातकाल जमुना जल न्हाहीं । प्रहर प्रपत रहैं जल माहीं ॥ जपैं उमापति हरि वृषकेतू ॥ सुन्दर स्याम कृष्ण पति हेतू ॥ शीत भीत मन में नहिं ल्यायैं । नैन मूंदि कै कान लगावै ॥ बार बार यह कहैं मनाई । हमवर पावैं कुँवर कन्हाई ॥ जलतें वह निकसि सव आईं । पुजहिं गोपेश्वर सव जाईं ॥

अंत—अव तपकरि तुम मति तन गारौ । मैं तुमतें क्षण होत न न्यारौ ॥ करसों परसि सवन सुष दीन्हौं । विरह ताप तनकौ हरि लीनो ॥ विदा करी हँसि नंद के लाला । निज निज सदन गईं ब्रजवाला ॥ गोपिन उर अति हर्ष बढ़ायौ । मन मन कहत कृष्ण वर पायौ ॥ ब्रजवासी जनके सुषदाई । आये अपने सदन कन्हाई ॥ दोहा ॥ इहि विधि ब्रज सुन्दरिन कौ, हित करि सुन्दर स्याम । ब्रज विलास विलसत विविध, सकल कला अभिराम ॥ सोरठा ॥ सुन्दर घन सुख रास सव, विधि करि सबके सुषद । नित नव करत विलास, मुदित सकल ब्रजलोक लखि ॥ इति श्री चीर हरण लीला ॥ समाप्तम् ॥

विषय—ब्रज वनिताओं की तपस्या और उसके फल का वर्णन । चीर हरण का रहस्य और गोपियों की मनोवांछाओं के फलित होने का वर्णन ।

विशेषज्ञातव्य—पुस्तक सुन्दर बाँसी कागज पर है, परंतु इतनी जीर्ण शीर्ण है कि छूते ही फटने लगती है । ऐसा जान पड़ता है कि वरसात में किसी चूनेवाले मकान में रही है जिससे उसका अगला भाग पानी में पड़ा रहने के कारण गल गया है । पानी से वह

अबतक चिह्नित है। कितने ही पृष्ठों के किनारे गलकर छन गये हैं जिससे उतने भाग के शब्द ही लुप्त हो गए हैं।

संख्या १५० बी. चीर हरण लीला, कागज—देशी, पत्र--१३, आकार--८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५० पूर्ण, रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--पं० नेकरामजी शर्मा, स्थान--उरमुरा, डा०--शिकोहाबाद, जि०—मैनपुरी।

आदि--श्री गणेशाय नमः॥ अथ चीर हरण लीला लिष्यते॥ चौपाई॥ वृन्दावन खन सवहीन विसरायो। व्रज जुवतिन हरि सों मन ल्यायो॥ यहै वासना सबके हृदय समाना। होय गोपाल हमारो स्वामी, यहै वासना करि उर ध्यायो। हरि के चरनन कमल महि मन ल्यायो॥ षटदश सहस·········कन्या। करन लगीं तप हरि हित धन्या॥ रहति कृपा जुत तप कौं साधें। छाढि दई सब भोग उपाधें॥ प्रातकाल जमुना जल न्हाहीं। प्रहर प्रयत रहैं जलमाहीं॥ जपैं उमापति हरि व्रज केतू। सुन्दर स्याम कृष्णपति हेतू॥ शीत भीत मन में नहिं ल्यावै। नैन मूँदि कैं ध्यान लगावै॥

अंत—विदा करीं हँसि नँद के लाला। निज-निज सदन गई व्रजवाला॥ गोपिन उर अति हर्ष बढ़ायौ। मन मन कहति कृष्ण वर पायौ॥ ब्रजवासी जन के सुखदाई। आये अपने सदन कन्हाई॥ दोहा॥ इहि विधि व्रज सुंदरनि कौं, हित करि सुंदर स्याम। व्रज विलास विलसत विविध, सकल कला अभिराम॥ सोरठा॥ सुन्दर घन सुख बास, सब विधि करि सबके सुखद। जित नव करत विलास, मुदित सकल व्रजलोक लखि॥ ॥ इति श्री चीर हरण लीला समाप्तम्॥ शुभम्॥

विषय – श्री कृष्ण द्वारा व्रज वनिताओं के वस्त्रापहरण का वर्णन।

विशेषज्ञातव्य—ग्रंथ में रचयितादि के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया है। इसमें मात्रादि संबन्धी कुछ अशुद्धियाँ भी हैं। यह इतना जीर्ण हो गया है कि इसके उलटने पलटने में भी पन्ने फट जाने की आशंका रहती है। कई पत्रों में उनके किनारे और बीच के कुछ अंश फट गये हैं। अतएव वहाँ के शब्द लुप्त हो गए हैं। कहीं-कहीं तो शब्दों को अनुमान से जाना जाता है और कहीं-कहीं उनका अनुमान लगाना भी कठिन हो जाता है।

संख्या १५१. दधिलीला, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार – ८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—११२, खंडित, रूप – प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौधरी मातादीनजी, स्थान व डा०—लखुना, जि०—इटावा।

आदि—॥ दोहा॥ गाय वैंच दधि वहु दिना, विना दिये मोहि दान। ध्वाई वावा नंद की, आजु न दैहों जान॥ ७॥ उठि वोली इक ग्वालिनी, करि सतरौहैं नैन। तुम दानी कव ते भए, गाय चराई धैन॥ ८॥ कवित्त॥ काहे को माँगत दान लला हमसौं तुम रीति कहा नई ठानी। छाछ को दान सुनौं नहिं कानन भये तुम आजु नये हरि दानी॥ वाप चरावत गाय रहैं अरु आप करी कवतैं रजधानी। अवलौं कोई नाहिं भयो वृज में

तुम दानी भए हमने अब जानी ॥ ९ ॥ दोहा ॥ सुनि ग्वालिन के बचन तब, मोहन उठे रिसाय। फुरवाऊँ तेरी माटुकी, जाउ घरै सिसियाय ॥ १० ॥

अंत—॥ दोहा ॥ लाज कुटुम की छाँड़ि कै, हमपै राखो प्यार। जाकी भय मानत रहैं, सबरो जग संसार ॥ २८ ॥ कहै कान सों ग्वालिनी, चितवो अपनी ओर। हमतो रूप सुरूप हैं, तुम कारे सरबोर ॥ २९ ॥ छंद ॥ हम तो गुण रूप के सागर हैं, लखि होत हमैं शशि माद उजारी। हमरें उरहार जवाहर के, तुम्हरे उर माल हैं गुंजनवारी ॥ तुम्हरे सिर मोरन के पखवा, हमरे सिर स्यामल सुंदर सारी। हमसों नहिं जोग बने तुमसों तन सोहति कामरि कारी ॥ ३० ॥ दोहा ॥ हमरो तो यह तनु घड़ा, भरे रूप रस जाहि। अपने मुँह माहूँ लखौ, हम लायक तुम नाहिं ॥ ३१ ॥ कृष्ण वाक्य ॥ कारे बिन पल एकहू। रह्यो न तुम पै जाय। कहौ कहा अब ग्वालिनी, कारो रंग कराय ॥ ३२ ॥ छंद ॥ कारो तुम्हारो सीस सारी दूरि दक्षिग देस की। वैनी गुथी है भाल में, लटदावैं कारे केसकी ॥ भृकुटी, तुम्हारी स्याह धनकारी हैं बनी पलक में ॥ लीला गुदो है अंग में कारी हैं बुन्दी पलक में ॥ कारे तुम्हारे काम के तारे हैं दोऊ नैन मैं। कारो ही काजर......... [शेष लुप्त]

विषय—श्री कृष्ण की दधि लीला का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक किसने और कब बनाई है, पता नहीं चलता। यह आद्यंत से खण्डित है।

संख्या १५२. दंगवै पुराण, कागज—देशी, पत्र—२३, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—४७३, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९०९ वि० = १८५२ ई०, प्राप्तिस्थान—चौधरी मातादीन जी, स्थान व डा०—लखुना, जि०—इटावा।

आदि—···रिषि मन में तब कीन्हीं आसा। आसन चलि कैं गए इन्द्रासा ॥ गए इन्द्रपुर लागि न वारा। तेतीस कोटि तहँ देव जुहारा ॥ निरषे इन्द्र सुरिषि दुर्वासा। मन आनंद भयो परम हुलासा ॥ उठि परनाम दंडवत कीन्हा। भलै गुसाईं दरसन दीन्हा ॥ सिंघासन पर बैठारे राजा। बहु सुष भयो जुराज समाजा ॥ आजु पवित्र भयो इन्द्रासा। जो तुम विजय कीन्ह दुर्वासा ॥ आजु विस्नुजनु संकर आवा। आजु राजु हम निश्चै पावा ॥ ॥ दोहा ॥ छोरि केस पुरंदरा, रिषि के झारे पाँइ। आइसु देहु गुसाईं, कौन काज यहँ आइ ॥ चौरही ॥ बहु तप कीन्ह आत्मा उदासा। साधि इन्द्री रहे वनवासा ॥ अम्रत भोजन हमकौं देहू। इन्द्रिन सौं हम वाचा करहू ॥

अंत—गरुड़ अम्रत लै लै छिरकन लागे। कृष्ण कृष्ण करि उठि सब जागे ॥ चोटन काहू की फिरि देहा। ·परे घाउ जनु तीरनि मेहा ॥ सबकी विदा कीन्ह हकराई। जो जहँ बसै वहां सो जाई ॥ अष्टकुली गये नाग पताला। देव सबै बैकुंठ सिधारा ॥ चंद सूर जो गये अकासा। निरालंबु गये जम पासा ॥ हनिमत वीर सिषंडै गयऊ। अपने लोकै सब कोउ गयऊ ॥ पंडव जैता पुरहि सिधाये। आपुन कृष्ण द्वारिकहि आए ॥ दंगीराइ लये

बुलवाई । तुरंग एकु तव दियौ मँगाई ॥ घोरा चढ़ि तब पहुँचे जाई । सुनइर पटन नगरहि जाई ॥ दोहा ॥ कहैं भीम सुनु स्वामी, अंतकाल महिपाल । गुरु वौग्राहर कृष्ण भूपति राषी गोपाल ॥ चौ० ॥ पंडव जीति जयतपुर आए । कृष्ण द्वारिका जाय सिधाए ॥ जो जह कथा सुनहिं चितुलाई । ताकौ पापु दूरि छय जाई ॥ पंडव भारत सुनैं पुराना । ताको है गंगा अस्नाना ॥ इति श्री महाभारथे महापुराणे ॥ दंगवै पर्भ समापता ॥ सुभंमस्तु ॥ मि० सावन सुदि ९ नौमी संवत् १९०९ वि० ।

विषय—दुर्वासा ऋषि का स्वर्ग को जाना, भोजनादि के पश्चात् नृत्य देखना, तिलोत्तमा का ऋषि को पशुतुल्य गायनादि के रसों से अपरिचित समझ सुरदेव से विदा माँगना, ऋषि का उसे शाप देना, उसका दिन में घोड़ी और रात में स्त्री होना एवं पृथ्वी पर आ जाना, परपट्टन के राजा दंगवै का उसे ग्रहण करना और अपने पास रखना, नारद का कृष्ण को घोड़ी की बड़ाई कर ग्रहण करने का आदेश देना, कृष्ण का प्रयत्न और दंगवै से घोड़ी देने की प्रार्थना करना, उसका अस्वीकार करना; कृष्ण को क्रोध, राजा का भयभीत होकर इतस्ततः रक्षार्थ भ्रमण, कहीं भी शरण न पाना, रानी सुभद्रा की सहायता से भीम के पास पहुँचना और शरणागत को अभयदान का वचन मिलना, युद्ध की दोनों ओर की तैयारी, पांडवों का कौरवों से सहायता माँगना और पाना, जोरदार युद्ध का होना, आठों वज्रों का जुड़ जाना, अप्सरा का शाप मुक्त होकर आकाश को उड़ जाना, अंत में पारस्परिक पश्चात्ताप और युद्ध में जूझे योद्धाओं को सुधा पिलाकर जीवित किया जाना । अपने अपने स्थानों को सबका प्रस्थान और कथा पठन-पाठन का फल एवं कथा की समाप्ति ।

विशेष ज्ञातव्य—इस पुस्तक का नाम 'दंगवै पुराण' रखा गया है और इसका विषय महाभारत पुराण से संबद्ध बताया जाता है। एक प्रसिद्ध जनश्रुति न जाने कब से चली आई है, 'स्त्री न हुई दंग की घोड़ी हुई' । इसकी व्याख्या के ही लिये मानों इस ग्रंथ की रचना की गई है । दंग जम्बूद्वीप स्थित सुनपुर-पट्टन नामक किसी राज्य का राजा था । तिलोत्तमा नाम्नी इन्द्र के अखाड़े की एक अप्सरा दुर्वासा ऋषि के शाप से पृथ्वीपर घोड़ी बनकर स्वर्ग से उतरी और घूमती फिरती दंग राजा के यहाँ पहुँची । राजा ने उसे अपने पास रख लिया । बाद में श्री कृष्ण के साथ अप्सरा के लिये बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ ।

५ संख्या १५३. दशमलव दीपिका, कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—८ × ५१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १९३३ = १८७६ ई०, प्राप्तिस्थान—पं० बाबूराम जी शर्मा, स्थान—धरवार, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ दशमवलव दीपिका लि० ॥ भिन्न का शब्दी अर्थ तोड़ा गया है और भिन्न से टुकड़े वा टूटे हुए भाग लेते हैं जैसा जो एक अंक को तोड़कर उसके पाँच टुकड़े बराबर के करें तो हरएक टुकड़ा पंचमांश एक अर्थात् पाँचवाँ भाग होगा और यह पंचमांश एक भिन्न अर्थात् एक का टुकड़ा है इसी प्रकार और जानो जो एक

रुपये के बराबर सोलह टुकड़े करें और उसमें से तुम चार ऐसे ऐसे टुकड़े ले लो तो तुम्हारे पास सोलहवें टुकड़े चार अर्थात् $\frac{४}{१६}$ एक रुपये के होंगे और यह रुपये की एक कसर अर्थात् टुकड़ा है ॥

अंत—प्रश्न				उत्तर
१—३ आने ९ पाई को	दशमलव में		लाओ	.२३४३७५
२—१२ आने ४ पाई को	,,		,,	.७७०८८
३—१४ आने ० पाई को	,,		,,	.८७५
४—० आने ९ पाई को	,,		,,	.०४६८७
५—३५ सेर ९ छ० को मन के	,,		,,	.८८९०६
६—१४ सेर ८ छ० को मन के	,,		,,	.३६२५०
७—० सेर १२ छ० को मन के द० में	,,		,,	.०१८७५
८—३ विस्वा १५ विस्वाँसी को बीघे के	,,		,,	.०१८७५०
९—१७ तथा १८ तथा	तथा	तथा	तथा	.८९५०
१०—० १४ तथा	तथा	तथा	तथा	.०३५०
११—१७ गट्ठों को जरीब के दशमलव में लाओ तथा				.८५
१२—२५ तथा	तथा	तथा	तथा	.१०७५

॥ मि० माघ सुदी ९ सं० १९३३ वि० ॥ इति ॥ द० नेतराम विद्यार्थी ॥

विषय—भिन्न शब्द का अर्थ, दशमलव योग, दशमलव अंतर, गुणन, भाग, साधारण भिन्न में लाना, साधारण भिन्न को दशमलव में लाने की रीति तथा नक़द और वजन और पैमानों के दशमलव में लाने की रीति।

विशेष ज्ञातव्य—यह पुस्तक गणित से संबंध रखती है। इसमें दशमलव भिन्न पर विचार किया गया है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इसके प्रतिलिपि कर्ता नेतराम विद्यार्थी हैं।

संख्या १५४. देवीअष्टक, कागज—देशी, पत्र—१, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० सीताराम जी, स्थान—खेड़ा, डा०—धनुवाँ, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशायनमः॥ अथ देवी अष्टक लिष्यते ॥ माया जगजानी जगत वषानी त्रिलोकी को सेवंती। संकर सेई ब्रह्मा मानी सेस नाग मुख बोलंती ॥ अरवर देवी परवत जानी धुन्ध काल सो जीतंती। मधु कीटक मारे वालि सताये साहव के सिर सोवंती जसरथ भूले सरवन मारे अंधाअंधी जोवंती। वलि सताये वान सों मारे रामचंद्र को जानंती ॥ सुग्रीव विडारे वन में डारे लछिमन को तू जानंती। काया दीनो बाग रषायो फेरि तपस्या आवंती ॥ जलनंद से राजा कहिये नीर सलंब पानी में सिल उतरावंती। जामवंत अंगद से जोधा नारद हुकुम करावंती ॥ संषा सुर मारि कहाँ ते ल्याये चालि चलै तू मैमंती। उद्गाचल अस्तल कहिये तेरो वाना सुरै मिलावंती ॥

अंत—अरजुन नै सेई छत्र चढ़ायो उनको सत तू राषंती। दुरजोधन राजा भूले गर्व सों उनको मत तू झारंती ॥ दुरजोधन राजा मदमातो द्रोपताचीर बढ़ावंती। सिसुपाल चँदेले कंकन बाँधो बहुरि नहीं वा छोरंती ॥ रुक मंगद से राजा बाचाहारे साहिब के रथ साजंती। अंवरीक पिया में दरसे द्वारामती बसावंती ॥ कछ मछ वाराह जानैं बावन रूप धरावंती। सबल करन कंचन नू बरसे पारारिष से ल्यावंती ॥ गजग्राह छुड़ाये स्वाँसा उपजी रोसराह मिलावंती ॥ जल मै थल में तूही साथ भवानी ज्योति में ज्योति मिलावन्ती ॥ ॥ इति ॥ देवी अस्तुति संपूर्णम् ॥ समाप्तम् ॥

विषय—श्री देवी जी की स्तुति।

संख्या १५५. धमारसागर (अनुमान से), रचयिता—अष्टछाप आदि, कागज—देशी, पत्र—१४३, आकार—१३ × १० इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्) १२८१८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—हरिदेवजी के मन्दिर के अधिष्ठाता, आनंद भवन पुस्तकालय, गोवर्द्धन, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ अथ धमार लिख्यते ॥ बरसाने की गोपी फगवा माँगन आई ॥ कीयो है जुहार नंद जू भीतर भवन बुलाई ॥ येक नाचत यक गावत येक बजावत तारी ॥ काहे मोहन राइ दुरि रहे मई यह दिवावत गारी ॥ अरघ देत व्रज रानी धनि जू भाग हमारे ॥ प्रीतम सजन कुल वधू देखे दरस तुम्हारे ॥ सुनहु कुँवर मेरी राधा अबही जिन मुखमाड़ौं ॥ जीवत कुँवर सषन सहित जिन पिचकाई छाड़ौ ॥ केसर बहुत अरगजा कित मोहन पर डारौ ॥ सीत लगै कोमल तनु मही चित्त विचारो। अम्बर ऊपर दै रही दोऊ माता दुहू ओरी ॥ वर्जत भरत कुमकुमा निर्दय नवल किशोरी ॥

अंत—आई रितु चहुँ दिस फूले द्रुम कानन कोकिला समूहनि गावति बसन्तहिं ॥ मधुप गुंजारत मिलत सप्त सुर भयो हुलास तन मन सब जनतहिं। मिले रसिक जन उमगि भरे रस नाहिंन पावत मन्मथ सुष अन्तहिं। कुम्भनदास स्वामिनी चतुरवर इहि रस मिलि गिरिधर वर कन्तहि ॥ राग वसन्त ॥ चलि बहत मंद सुगंध सीतल मलयज समीरे ॥ तव पथ निहायत है·········हरि सूरि जाती रे ॥ कुंज कुंज अलि गुंज कूजत मग पिक कीरे ॥ तव बरन समस्याम सुन्दर धरत पट पीरे ॥ दास कूम्भनि प्रभु करत तन बहु जतन सीरे ॥ तव मिलन हित लागि गिरिधर हैं अति अधीरे ॥ × × ×

विषय—(१) निम्नलिखित पद-रचयिताओं के गीत इस संग्रह में आए हैं। नागरीदास जी के पदों की अधिकता है:—

अष्टछाप, नागरीदास, विहारिनदास, गदाधर, रसिकराइ, जगन्नाथ, कविराइ, मोहनदास, कल्यान, मदनमोहन, आसकरन, कृष्णजीवन लछिराम, हितहरिबंस, जनहरिया परसुराम, दामोदर, जगन्नाथ, गोकुलेस, माधुरी, जगन्नाथ, व्यास, मुरारीदास, विट्ठलविपुल, हरिदास, आसकरन, सदानन्दहित, जनदयाल, व्रजपति, सहचरी, विष्णुदास इत्यादि।

(२) इसमें वही गीत मुख्यतया संगृहीत हैं जो होरी के अवसर पर गाए जाते हैं। ऐसे गीतों को पारिभाषिक भाषा में धमार कहते हैं।

विशेष ज्ञातव्य--यह संग्रह आकार प्रकार में बड़ा है। होरी फाग के अधिक पद हैं। खोज में इतना बड़ा संग्रह-ग्रंथ प्रथम बार ही प्राप्त हुआ है। सन्–संवत् का उल्लेख नहीं है।

संख्या १५६. धमारसंग्रह, कागज--बाँसी, पत्र--२०४, आकार--१० × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१८, परिमाण (अनुष्टुप्)--२१९६, खंडित,रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--कन्हैयालाल रहसधारी, स्थान--मगुर्रा, डा०--गोवर्धन, मथुरा।

आदि--श्री कृष्णायनमः॥ अथ धमार के पद लिख्यते॥ खिलावन आवेंगी ब्रजनारी॥ जागो लाल चिरैयां बोली कहें जसुदा महेंतारी॥ ओट्यो दूध पान करि मोहन वेगि करो अश्नान गुपाल॥ करि सिंगार नवल वानिक वनि फेंटनि भरो गुलाल॥ यह सुनि दीन वचन जननी के लालन मनहिं विचारी॥ ब्रजपति तबहिं चौंकि उठ बैठे कित मोरी पिचकारी॥ ३॥ राग विभास॥ होरी नंद लाल सो हो तो खेलोई खेलो॥ गारी दे दे भरो भराऊ जग अब लोक सकेलो॥ नाचो उघारि गाऊं बजाऊं पतिव्रत पाइन पेलो॥ कृष्ण जीवन लछीराम के प्रभु को गरे माल गूजरी मेलो॥

अंत--राग गौरी॥ गोरी गोरी गुजरिया भोरी सी तेही मोहे नन्दलाल॥ खेलत में हो हो जु मंत्र पढि डारयो तेजु गुलाल॥ तेरी सों घें सनी अंगिया उरजन पर ओर कटि लहेंगा लाल॥ उघरि जात कबहूँक चलत जे हरि ढिंग ऐड़ी लाल॥ सकल त्रियन में यो राजत है ज्यों मुकतन में लाल॥ दास चत्रभुज को प्रभु मोरयो अधर सुधा रंगलाल॥

विषय--बसन्त पंचमी के पश्चात् वैष्णव मन्दिरों में बसन्त, धमार और होरी के गीतों का गायन प्रारंभ हो जाता है। इन रागों तथा इन्हीं से संबंधित रागिनियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के गीत नहीं गाये जाते, ऐसा नियम है। प्रस्तुत संग्रह में अष्टछाप कवियों तथा अन्य भक्त कवियों के रचे एकमात्र धमार गीतों का संग्रह है। इनमें प्रायः होरी और फाग उत्सवों का वर्णन है। राधाकृष्ण एवं ब्रज वनिताओं की शृंगारात्मक क्रीड़ाएँ मनोहर रूप से वर्णित हैं। अष्टछाप के सभी कवियों के अतिरिक्त निम्नलिखित पद-रचयिताओं की भी कृतियाँ इस संग्रह में आई हैं:--१--ब्रजपति २--कृष्णजीवन लछिराम ३--रामदास ४--विष्णुदास ५--माधौदास ६--रसिक शिरोमणि ७--जगन्नाथ कविराय ८--व्यास स्वामिनी ९--विट्ठल गिरधर १०--रूपहित ११--वृन्दावन हित १२--लाड़िली सखी इत्यादि।

विशेष ज्ञातव्य--पदों का यह संग्रह बहुत बड़ा है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक मात्र धमार गीतों का ही संग्रह है। सन्–संवत् का उल्लेख नहीं है।

संख्या १५७. धनवन्तरि शतक, कागज--देशी, पत्र--३, आकार--८ × ६ इञ्च, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--९, परिमाण (अनुष्टुप्)--४२, खंडित, रूप--प्राचीन, गद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--पं० रायकृष्ण जी शर्मा, स्थान--धरवार, डा०--जसवंत नगर, जि०--इटावा।

आदि--॥ अथ श्री धन्वन्तरि शतक लिख्यते ॥ अभ्रक कै अभ्रक कुष्मा आनि कै विनुब माफिक देइ जव फूलि जाइ तब कपरा मा पोटरी बाँधै कोई वर्तन्ने मा पानी भरि कै वह पोटरा मलै जो पानी मा झरि जाइ सो निकारि कै डोडे दार के रस मा खल करै दिन ३ सो निकारि कै टिकरी वाँधि सुखाइ कै सेरका मा धरि कै पाँच सेर कंडा म.फिक देइ फिरि निकारि कै हुर हुर के रसमा खल करै दिन १ फिरि वही तरह सुखाइ कै पाँच सेर कंडा मा फूंकि देइ तव तुलसी के रसमा खल करै दिन एक फिरि फूँकै सहिजन के रसमा दिन १ घीउ कुवारि के रसमा दिन १ गोमूत्र मा दिन १ अरनी के रसमा दिन एक घोड़े के मूत्र मा दिन १ गो दुग्ध मा दिन १ यहि माफिक खल करै फूंकै जेतरी आंच देइ तैसी किंमति जानव ॥ जव गुड़ की माफिक रंगु होइ तव आधी रत्ती पान मा खाइ तौ काम वँधै ॥ कुष्ट जाइ ॥ भूख लगै ॥ वावुसीर भगंदर जाइ वहुत गुण करै ॥ जैसे रोग तैसे अनूपान है ॥

अंत--॥ अथ योगेश्वर चूर्णम् ॥ पारापै १ ताव की हरताल पै १ ईंगुर पैसा १ सोना मषी पैसा भरि मुरदा शंख पै १ लौंग पै १ मरिच पै १ सौंठी पै० १ पीपरि पै० १ पीपरामूल सो खाइ तौ सन्निपात जाइ ॥ अफीम सौं षाइ तो कफ मिटै ॥ लहसुन सौं खाइ तौ मिरगी जाइ ॥ वायु भिरंग सौं खाइ तौ सर्व वायु जाय ॥ इति योगेश्वर चूर्णम्॥

विषय--अभ्रक तथा सिंगरफ बनाने की विधि और योगेश्वर चूर्णका नुसखा एवं लाभ वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य--इस पुस्तक में दीमक लग गई है। वहाँ के अक्षर नष्ट हो गये हैं। जो नमूनों में (०) इस चिन्ह से चिन्हित हैं। इस ग्रंथ के आदि में 'धनवन्तरि शतक' नाम लिखा गया है, किन्तु इसमें शतक शब्द सार्थक नहीं होता। केवल तीन औषधियाँ लिखी गई हैं। ग्रंथ की समाप्ति भी इससे विदित नहीं होती। शायद नकल करते समय अगला भाग नकल ही नहीं किया गया।

संख्या १५८. धरम समाधी, कागज--देशी, पत्र--८, आकार--६ × ४$\frac{३}{४}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--६, परिमाण (अनुष्टुप्)--१८०, खंडित, रूप--प्राचीन, गद्य, लिपि--कैथी, प्राप्तिस्थान--पं० प्रभुदयाल जी शर्मा, सम्पादक, सनाढ्यजीवन, इटावा।

आदि--सिद्धि श्री गनेस जी सिद्धं ॥ श्री रामजी ॥ श्री गनेस जीया नमः ॥ ॥ अथ धरम समाधी लीषते ॥ और बड़े संतवादी हे। राम और साचै बोलत हे ॥ आर मै बड़ौ चंक पौराज देवौ ॥ और राजनु कौ नात सुनै ॥ १ ॥ पहिले बलिराजा ॥ नलधोय राजा ॥ मानधाता सुये सव राजा ॥ जुगनि जुगनि वरतं सुराजा रजानु जुधिष्ठिल के ॥ राजा समान और राजा केउ नहीं ॥ २ ॥ तव ऐसे वचन नारद जी के सुनि कै तव धरमराइ ने कही ॥ जुधिष्ठिल वो देखने की बड़ा सरधा भई और बड़ी इच्छा भई ॥ तब अपने मन में विचारि कैं कहन लागे कौन समान पधारि कैं राजा जुधिष्ठिल कौं देषै ॥ तव चंडाल के सरूप धरि हथिनापुर आइ ॥ तब राजा कौ नगर देषन लागे ॥ जो देषै तो कान ग्रह मैं दुषी दलिद्री कोउ नहीं ॥ तामै चारों वरन देषे ॥

अंत—॥ चंडाल उवाचै ॥ कै सुनो राजा शास्त्र विषै राजा कौ धान्य व्राने को होत है नाहीं ॥ ४८ ॥ सुनते हम तुम्हारौ भोजन नहीं करेंगे ॥ तव ऐसो वचन सुनि कै राजा कहेत है ॥ राजा उवाच ॥ अहो श्री गुसाईं जी ॥ ४९ ॥ हमारे अठासी बृजऐ ब्राह्मन नित भोजन करत हैं और दानु लेत हैं सो तुम काहे ते भोजन नहीं करत सो कहो तब तीतु कहतु है ॥ चंडाल उवाचै ॥ कै सुनो राजा लोभ सौ तुम्हारे जेंवतु है और राजा वे लोभ के वस हैं सो या भाँति भोजन करत है ॥ ६७ ॥ और राजा कौ अंसु विषसमान है ॥ जे राजा कौ धनु षात हैं ते पुत्र कौ माँसु खात हैं तासै हम राजा कौ अंसु नहीं खात हैं जैसे सव नदी समुद्र में जाइ मिले हैं ॥ ६२ ॥ तैसें सव पापु राजा के घर जातु है ॥ और जो ब्रह्मन राजा के पतिग्रह लेत है ॥ श्री ॥ ते सवा लाष गायत्री जपतु है ॥ तब सुष होत है ॥६३॥

—[शेष लुप्त]

विषय—संस्कृत के धर्मसंवाद का गद्यानुवाद ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ का अनुवादक कौन है और इसका अनुवाद कब हुआ, इसका कुछ भी परिचय ग्रंथ में नहीं दिया गया है । अब तक इस ग्रंथ के जितने अनुवाद मिले हैं वे सब प्रायः पद्य में हैं । यह गद्य में है ।

संख्या १५९. धरमसिंह, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९३३ (१८७६ ई०), प्राप्तिस्थान—पं० बाबूराम शर्मा, स्थान—धरवार, डा०—बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ धरमसिंह स्योवंशपुर के लम्बरदार का वृत्तान्त ॥ जो संसार में धर्म को सोच और परिणाम विचार काम करते और विपत्ति में डूबे हुए लोगों वा दुखियों का अपने तन मन से भला चाहते और करते हैं उनसे परमेश्वर प्रसन्न रहता है इसीसे उनका परलोक सुधरता और संपति और संतान बढ़ती है इस बात का दृष्टान्त देने के लिए एक धर्मात्मा भले मनुष्य की कथा जैसी की हमारे जानने में आई है लिखते हैं। कहते हैं कि अगले समय में धरमसिंह नाम ठाकुर जिले चैनपुर परगने धर्मराज के स्यो वंशपुर गाँव का रहनेवाला और वहीं का जमींदार था वह बड़ा भलामानुष बहुत सुन्दर सच्चानामी और दयावान था ॥ इस कारण सब लोग उसका जस गाते थे उसकी प्रजा बड़े सुख चैन से रहती और सब लोग उसकी बात मानते और अड़ोस पड़ोस के जमींदार अपने झगड़े निवटाने के लिये उसे पंच ठहराते थे ।

अंत—जितने पट्टीदार ज्ञानी और भले मानुष थे प्रसन्न हुए और धरमसिंह के इस धर्म और जस को सराहने लगे कि तुमने भला विचार किया परमेश्वर की कृपा से आपका कल्याण होगा और जस भी अधिक होगा ॥ जब धरमसिंह ने जाना कि यह बात सबको अच्छी लगी हीरा मिश्र का गाँव मोल लेना ठीक विचार उस गाँव को मोल ले उसके दाम हीरामिश्र को दे उस गाँव पर बलवन्त सिंह का काबू करा दिया । वह मिश्र भी सच्चा

भलामानुष था उसने कभी किसी रीति का छल और अनीत न की जब उसने कभी किसी रीति का छल और अनीत न की जव उसने अपने दाम पाये उसी समय वलवन्त सिंह को अपना गाँव सौंपकर अलग हो गया फिर तो बलवन्तसिंह वहाँ सुख से आनन्द में रहने लगा। जव कभी अपने काम काज में संदेह होता अपने स्वामी धरमसिंह से पूछता और जैसा वह बतलाता वैसा ही करता॥ इति धरमसिंह का॥ वृत्तान्त समाप्तं॥ शुभम्॥ द० नेतराम॥ मि० श्रावण वदी १ संवत् १९३३ जोलाय॥ सन् १८७६ ईसवी॥

विषय—धरमसिंह की सत्यता मितव्ययता और सद्व्यवहार संबंधी तीन कथाओं का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता तथा रचनाकाल का पता ग्रंथ से नहीं चलता है।

संख्या १६०. दिलबहलाव, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—लाला सूरजदीन महाजन, स्थान लदपुरा, डा०—जसवन्तनगर, जि०—इटावा।

आदि—..............गजल॥ १॥ चढ़े हैं हम बहार का सामाँ किए हुए। दागों से अपने दिलको गुलिस्ताँ किए हुए॥ हर सब्जताके वाग मुहब्बत हो तेरा। आँखों से अपने वारिश वाराँ किये हुए॥ दिखलादो हमको शाम में तुम सुबह की बहार। आओ जो रुखे जुल्फे परेशाँ किए हुए॥ खूने जिगर पिलाके मुहब्बत में मेरी जान। है दिल को अपने लाले वदखशां किए हुए॥ यह शौक है सुनूं तेरी वंशी को मन में हम॥ मुद्दत हुई है सैर वियावाँ किये हुए। × × × × किया आवता वहुस्न की है देखो तो अजीज। गुलशन में गुल है चाक गरेवाँ किये हुए॥ १॥

अंत—॥ पद गजलानन्द॥ कोई कहता है या रहमान कोई कहता है गिरिधारी। गरज के गुलशन में हस्ती तूने खूब करी है गुलकारी॥ पिया जो इश्क का प्याला कि लाला हो कि मतवाला। जिगर पर दाग खा बैठा लगी तेरी छबि प्यारी॥ २॥ तेरी सूरति को जब देखा हुवा हैरान आईना। तेरे हर तार काकुल में है सम्बुल को गिरफ्तारी॥ ३॥ न पाया एक सा नकशा जो देखा वज्म हस्ती को। कभी नौरोज रोशन है कभी है रात अँधियारी॥ ४॥ ये गुलशन जो है हस्ती का वुलदी और पस्ती का। चमन है खुदपरस्ती का यहाँ लाजिम है हुशियारी॥ ५॥ कोई गुल की तरह खुदा कोई बुलबुल सिफनाले। झलकता है यहाँ सव में तेरा रंग तरहदारी॥ ६॥ किसी पर है कोई मायल कोई अवरूका है घायल। कोई करता है यहाँ धंधा किसी का नाज वरदारी॥ ७॥ सुनों श्री नन्द के लाला मये उल्फत का दो प्याला। कि दरजा हो मेरा आला भरोसा है मुझे भारी॥ ८॥ आजिज हूं मैं शरन आया तेरे चरणों में चित लाया। तुही मन को मेरे भाया मेरी सुन अर्ज गिरिधारी॥ कोई कहता०॥ ९॥ दोहा॥ लगत भली विछुरत वुरी, जलो वलो यह रीति। किन सुख पायोरी सखी, परदेसी की प्रीति॥ १॥ इति दिल वहलाव॥ सम्पूर्णम्॥ शुभम्

विषय—गजलों, ख्यालों, भजनों और ठुमरियों आदि कुछ गीतों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रहकर्ता के नामादि का कुछ भी पता ग्रंथ से नहीं चलता है।

संख्या १६१. दोहरा बहुदेसी, कागज—मूँजी, पत्र—२०, आकार—१०×६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—६०५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—वि० १८८३ = सन् १८२६ ई०, प्रातिस्थान—पं० मयाशंकर याज्ञिक, अधिकारी श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—॥ अथ दोहरा लिष्यते ॥ कह कुबेर कह कलपतरु कामधेनु किह काम, जो जाको पालन करै सोई ताको राम। तीन लोक च्योदा भुवन भोजन पुजवति सोइ, सो प्रभु देखो नन्द के माखन माँखन रोइ। प्रीत न कीजे देह धरि काहूँ सो जगदीस, जो कीजे तो दीजिए तन मन अरु धनसीस। प्रीत रीति की कठिन है जानि करै सबु कोइ, मनि मानिक जहँ वेचिए सुघर जौहरी होइ। वँद वादे रीझे हितू वद ही कहत सुजान, वंद ही सौ वीको लगे सागर साह कमान। पट झटकत हटकौ नहीं भुजबल थको सरीर, तुलसी घरौ सुग्यार हौ वसन रूप रघुवीर।

अंत—जो मृजाद चलिए सदा, सो मृजाद ठहराइ, जो जल उमगे पारि ते, सो रहीम वहि जाइ। अनुचित उचित रहीम कहि, फवत बढ़ेन के जोर, सो ससि के रस भोग तें, पचवत आग चकोर। रहिमन अँसुआ वाहिरे वृथा जनावति येहि, जाको घर ते काढ़िये क्यों न भेद कहि देइ। मान सरोवर ही मिलौ, हंसन मुक्ता भोग, सफरी भरे रहीम ये, विपुल वलाकिन जोग। इति बहु देसी दोहरा समाप्ता मिती कातिक वदि २ भोमे संवतु १८८३ मु० दिलीप नगर लिखतं॥

विषय—नीति, सदाचार, भक्ति, शृंगार; सम्बन्धी रहीम, तुलसी, विहारी, रसखान जमाल आदि कवियों के स्फुट दोहों का संग्रह॥

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में बहुत से प्राचीन कवियों द्वारा निर्मित फुटकर दोहे संगृहीत हैं। कहना चाहिए कि विहारी, रहीम, रसनिधि, जमाल और तुलसी के दोहों की यह पंचरत्नी खिचड़ी है। सम्भव है इसमें कुछ ऐसे दोहे भी हों जो अद्यावधि अलभ्य हों। संकलन कर्ता का नाम विदित नहीं हुआ।

संख्या १६२ ए. द्वादश महावाक्य विचार, कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—६×४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लालता प्रसाद जी ओझा, स्थान—इटावा, मुहल्ला—छपैटी, इटावा।

आदि—श्री गणेशायनमः॥ अथ द्वादश महावाक्य विचार॥ परमात्मा कौं कीजै परनाम। जाकी महिमा चिदघन राम॥ चारि वेद षट् शास्त्र कहे। अपनी महिमा में निर्मये॥ मीमांसा वैसेसिक कहिए। पुन्य न्याय पातंजलि लहिए॥ सांख्य और वेदान्त वखाने। षट शास्त्र षटदर्शन जाने॥ शक्ति अनंत मंत्र अविनासी। वनमाली सोयं परकासी॥ प्रथम मीमांसा भेद॥ मीमांसा प्रतिपादय कर्म। विन करनी सब बातें भर्म्म॥ देही वीच

करै सो पावे । मीमांसा एसे ठहरावे ॥ विनवोए फल कैसे षाइ । विन षाए कोई न अघाइ सुभकर्मन को सुभ फल लागे । जे नर मूढ़ ते कर्मनु त्यागे ॥ जे नर असुभ कर्म लपटाइ । जैमनि कहे अंत पछिताइ ॥ द्वितीय वैशेषिक भेद ॥ वैशेषिक शुभ समय बतावे । समय विना कछु हाथ न आवै ॥ जैसे कछु बोवे किरसान । समय बिना होवै फल आन ॥ समय विना होवै फल आनि ॥ समय करावै............

अंत—चिदाकास में पावे आपु । भूले आप साथ ही जापु ॥ अति रहस्य कहि प्रकार सुनायौ । जो गुरु मुखवाके मन भायो ॥ सुने सुनाये समझ न परे । जबलौं गुरुकी सरन न परै ॥ महादुषित जो रोगी होइ । औषदि वात दीप की कोइ ॥ वात सुनैं दुख कैसें जाइ । जव लगि वह औषधि नहिं षाइ ॥ × × × हिम जाने अंजाने पानी । सार विचार सार मति ज्ञानी ॥ ज्ञान अभिमान उतारे धोइ । सहजा नंदे ज्ञानी होइ ॥ जोरि कहे अज्ञानी दुषी । ते ज्ञानी काहे का सुषी ॥ एक येन अद्वैत वषाने । यह नीतो नाहीं कछु माने ॥ केवल अज अक्रिय अविनासी । सोहं वली सर्व परकासी ॥ दोय सौ एक चौपाई करी । अर्थ विवेक जानियो सही ॥ इति श्री चारि वेद षटशास्त्र ॥ सारा सार विचार ॥ द्वादश महावाक्य ॥ समाप्तम् ॥

विषय—वेद शास्त्रों के सार स्वरूप तत्वंमसादि द्वादश महावाक्यों की संक्षिप्त व्याख्या ।

विशेष ज्ञातव्य—चारों वेद छहों शास्त्रों के सार 'तत्वमसादि' बारह महावाक्य माने गये हैं, उन्ही की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत ग्रंथ में की गई है । ग्रन्थ के रचयिता के संबन्ध में कुछ भी विवरण इस ग्रंथ में नहीं मिलता । ग्रंथ बहुत ही जीर्ण अवस्था में है ।

[टिप्पणी—ग्रंथ का रचयिता 'वली' (बलिराम) है, जैसा कि अन्त में दिया है ।]

संख्या १६२ बी. द्वादश महा वाक्य विचार, कागज—देशी, पत्र—९, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—सुन्दरदास शर्म्मा, स्थान व डा०—मढ़ेपुरा, जि०—इटावा ।

आदि—श्री गणेशायनमः । षटशास्त्र वेद द्वादश महावाक्य का विचार ॥ परमातमा को कीजै परनाम । जाकी महिमा चिद्घन राम ॥ चारि वेद षट शास्त्र कहे । अपनी महिमा में निर्मये ॥ मीमांसा वैसेसिक कहिये । पुन्य न्याय पातँजलि लहिये ॥ सांख्य और वेदांत वखाने । षट शास्त्र दर्शन जाने ॥ शक्ति अनंत मंत्र अविनासी । वन माली सोयं परकासी ॥ ॥ प्रथम मीमांसा भेद ॥ मीमांसा प्रतिपादै कर्म्म । विन करनी सब बातें भर्म्म ॥ देही वीच करै सो पावै । मीमांसा ए ठहरावै ॥

अंत—यह उपदेस पूरन गुरु करै, सुमति शिष्य चित लै धरै । सोहं हंसो अजपा जाप । अहर्निश जपे पहिचाने आप ॥ उर्द्ध स्वाँस सोहं ले आवै । अधः स्वांस हंसों ले गावै ॥ जब मन या साधन सों लागै । सहजै विषय वासना भागै ॥ × × ×

हिम जाने अनजाने पानी। सार विचार सार मति ज्ञानी ॥ ज्ञान अभिमान उतारै धोय। सहजा नँदे ज्ञानी होय ॥ जोरि कहे अज्ञानी दुषी। तो ज्ञानी काहे का सुषी ॥ एक येन अद्वैत वषाने। यहनीतो नाहीं कछु माने ॥ केवल अज अक्रिय अविनासी ॥ सोहं 'वर्ला' सर्वं परकासी ॥ दोय सो एक चौपाई करी। अर्थ विवेक जानियो सही ॥ इति श्री चारि वेद षट शास्त्र ॥ सारासार विचार ॥ द्वादश महावाक्य ॥ विचार ॥ समाप्तम् ॥

विषय—वेद शास्त्र सम्मत द्वादश महावाक्यों की व्याख्या।

विशेषज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता के संबन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं, उसमें वेद और शास्त्रों के सार स्वरूप द्वादश महावाक्यों की व्याख्या की गई है। इस छोटी सी पुस्तकके बीच के दो पत्रे लुप्त हो गये हैं।

संख्या १६३. गीत गुटका, कागज—मूँजी, पत्र—८८, आकार—६½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—६१४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल जी समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—राधे देखि वन की बात। रितु बसंत अनन्त मुकलित कुसुम ओर फल पात ॥ बैन धुनि नन्दलाल बोली सुनिय क्यों अरसात। करत कत विलम्ब भामिनि व्रथा अवसर जात ॥ लाल मर्कत मनि छबि लौ तुम जु कंचन गात। बनी श्री हित हरिवंश जोरी उभय गुन मात ॥ राग गौंड़ ॥ हौं बलिजाऊँ नागरी स्याम। ऐसे ही रंग करौ निशिवासर वृन्दा विपिन कुटी अभिराम ॥ हास विलास सुरत रस सींजन पशुपति दग्ध जिवावत काम। जै श्री हित हरि वंस लोल लोचन अलि करहुन सकल सफल सुखधाम ॥

अंत—जगे निसि दम्पति रूप लुभाने। आलस भरे उनींदे लोचन अंग अनंग लड़ाने ॥ राजत चन्द चकोर विलोकनि बतियनि नेह वषाने। जै श्री रूपलाल हित सहचरि निरखत नैन सिराने ॥ रामकली ॥ प्रथम ही भाव कुभाव विचारे। मन तूँ नव किसोर सहचरि वपु हित गुन कृपा निहारे ॥ भूषन वसन प्रसाद स्वामिनी पुलकि पुलकि अंगधारे। जै श्री रूप लाल हित लालित त्रिभंगी रंगी रस विस्तारे ॥ दोहा ॥ जो लोइन जल जेह सो, सदा पषारे कोइ। तो वह मूरति प्रेम की सहज निहारे सोइ ॥ प्रेम पीय पियु प्रेम हे अन्तर रंचक नाहिं। लाल रूप हित नैंन द्वै चितवनि एक समाहिं ॥ हित वन में उज्वल सरस चाह सरोवर जाइ। मन मराल हित रूप के मुक्ता लेहि चुगाइ ॥ औसरु चूको जिनि कोऊ दुर्लभ मानुष देहु। भजन भाव हित चित धरो कानन वसो कि गेह ॥ × × ×

विषय—हित हरिवंश कृत राधा कृष्ण की भक्ति और शृंगार,	पत्र १—३३
राधा कृष्ण का प्रेम, हरिदास कृत गीत,	पत्र ३४—६२
विट्ठल विपुल, रूपलाल, बिहारीदास, आदि के भक्ति पूर्ण गीत,	पत्र ६३—८६

विशेषज्ञातव्य—हित हरिवंश जी बाद (मथुरा जिले) गाँव के निवासी थे। संस्कृत के बहुत बड़े पंडित थे। इन्होंने राधावल्लभ संप्रदाय की स्थापना की जो अब भी

यहाँ फल फूल रहा है। वैष्णव लोग इन्हें कृष्ण की वंशी का अवतार समझते हैं। इनके चौरासी पदों की बड़ी ख्याति है। वही पद तथा कुछ और इस संग्रह में आये हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवियों का पदसाहित्य के अन्तर्गत एक अलग ही स्थान है। जिसमें बीसों कवि हैं। कई एक तो बड़े प्रतिभाशाली हैं। हिन्दीवालों का ध्यान अभी इस ओर नहीं गया है। अष्टछाप कवियों के समकक्ष ही इन्हें भी समझना चाहिए। इस संग्रह में हित हरिवंश जी के उत्तराधिकारी तथा अनुयायियों के पद हैं। आशा की जाती है कि इनका तथा अन्य कवियों का जो इनके दल के थे पता चलेगा। कोसी के एक मन्दिर में जो संग्रह ग्रंथ उपलब्ध हुआ था उसमें भी हित हरिवंश के सम्प्रदाय के कवियों के पदों की बहुलता थी। इन कवियों की संख्या ३० अथवा ४० के लगभग है और चाचा वृन्दावन हित भी इन्हीं के सम्प्रदाय के हैं, जिनकी क्रांति मचादेनेवाली रचनाएँ गतवर्ष मिली थीं।

संख्या १६४. गुप्तरस टीका, कागज--मूँजी, पत्र—२७, आकार—६३/४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)—२९३, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० केशवदेव जी, स्थान व डा०—माठ, मथुरा।

आदि--श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथगुप्त रस टीका सहित लिख्यते। अस्मदीय पदार्थाना भोगः कार्यस्त्वयै वहि अन्यथा मार्ग मर्यादा नङ्‌: क्षत्यं भोज लोचन। इनकी कृपा रूप जल ते उत्पन्न भयो जो भाव रूप अंकुर ताकरिकें ताके भाव को वर्णन करत हों सो आप श्री गुसाईं जी के चरण पल्लवन कों नमस्कार करि बर्नन करत हों। इतरोप योग संकादन दहन सुतप्त मन्तरसमाकम स्वांगी कृति नव जलदैः शिशिरय गोपीजन प्राणं अपने जो दास तिनपै दया करि ताके परवस जो श्रीमत प्रभु चरन सो प्रिया प्रियकौ जो परस्पर रस सो आपने की यो है काहेते जो परस्पर आपत समाज को मध्यपाती हैं याते कृपा करि ता भाव को प्रकाश करत हैं।

अंत—अयं मनोरथोऽन्यत्र भविता नैव पूर्वकः नान्याछ्री गोकुलाधीश ज्ञात्वा· प्यन्योन भावितः अब श्री प्रभुचरन आज्ञा करत है जो इनके समाज में स्थिति जो मैं ताने या मनोरथ कौ अनुभव कीयो है। मनोरथ जो मन कौ रथ अभिलाष जैसें जैसे मन दौरत है तेसे अभिलाष अपने इष्टकौं प्राप्त होत है यह और कोऊ नहीं करिवे कों समर्थ है। याते आगे हूँ कोउ कौ योग्य नहीं है होयगी। लक्ष्मी को हूँ यह मनोरथ दुर्लभ है। याके पूर्न करिबे की सामर्थ्य श्री गोकुलाधीश बिना काहू की नहीं। × × ×

विषय—वल्लभ संप्रदाय के किसी आचार्य ने 'गुप्तरस' नामक ग्रंथ संस्कृत में लिखा है। इसमें सगुण भक्ति के विशेष गहन और गूढ़ भावों पर वल्लभ संप्रदाय के दृष्टि विन्दु के अनुसार योग्यतापूर्वक विचार किया है। उसी ग्रंथ का प्रस्तुत ग्रंथ भाषा भाष्य है।

विशेषज्ञातव्य—टीकाकार का पता ग्रंथ से नहीं चलता है और न रचनाकाल और लिपिकाल ही दिए हैं।

संख्या १६५. गोकुलेश जी की घर की सेवा, कागज—देशी, पत्र—४६, आकार—११ × ८ इंच, पंक्ति प्रतिपृष्ठ—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५४०, पूर्ण, रूप—

प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ।। श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ।। अथ श्री गोकुलनाथजी के घर की सेवा लिष्यते ।। अथ जन्माष्टमी की विधि निरणय लिख्यते ।। जो सुर्योदय समै सप्तमी होय । तब न करे । जो दूसरे दिन व्रत करे । जो दुसरे दिन अष्टमी न होय तो पहिले ही करे । दूसरे दिन होय तो विद्धा ही करे । पहिले दिन नवमी होय दूसरे दिन बटे तो दूसरे दिन करे । दूसरे दिन होय तो पहिली करे । वामन जयन्ती । एकादशी द्वादशी दोऊ सो श्रवण स्पर्स हिय तो व्रत ।। १ ।। एक ही एकादशी को होय ।। जो श्रवण द्वादशी में होय तो एकादशी को स्पर्स न करे ।। जो व्रत २ होय जो एकादशी में श्रवण होय और द्वादशी में मध्यान में दूसरे दिन होय तो हू व्रत पहिले दिन । जो दूसरे दिन मध्यान में दूसरे दिन होय तो हूँ व्रत पहिले दिन ।।

अन्त—भादो बदी ७।। श्री गोबर्द्धनेस जी को उत्सवको अभ्यंग स्नान कराय अंग वस्त्र कर सिंगार करिये कुलहं पीरी हरदी या पिछोड़ा सारी पीरी हरदिया किनारीकी श्री गोपीवल्लभ में सेव पसाइवी घी बूरा मेल कें राजभोग में जो नित्त धरत हें ।। सो विसेस दारदार छरिय ।। लतीन कूटा बड़ी वना की पापड़ बड़ा भीजे गोपी वल्लभ मेवा वर बूँदी छूटी सकल पारा राज भोग की आरती मोती की होय । न्योछावर करिए सैन भोग साथ अनस खड़ी डूधरनो । पूरी भुज्यो साक सोंठ की बुकनी में लोन मिलाय हींग को बयार धर धरनो । इतनो सेन भोग साथ धरनो । और सैन भोग ताईं सब नित्य की रीति ।। इति श्री गोकुलेश जी के घर की सेवा विधि सम्पूर्णम् ।। अगहनबदी ६ को लालजो गोकुलनाथ को उत्सव ।। वागा वस्त्र लाल ।। तथा पीरी राज भोग में नित्य धरत हैं । सो तामे विसेस सेव के लडुवा और सेन ताईं सब नित्य की रीति ।।

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों के यहाँ ठाकुर जी की सेवा अलग अलग ढंग से होती थी । प्रस्तुत ग्रंथ में गोसाईं गोकुल नाथ जी के घर में जिस प्रकार बाल ठाकुर स्वरूप की सेवा होती थी और वर्ष भर के बीच जिन जिन विधियों द्वारा त्योहार मनाए जाते थे एवं जिस प्रकार विभिन्न प्रकार से अर्चन, पूजा भोग आदि का अलग-अलग त्योहारों में अलग अलग प्रकारसे विधान था, उसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । १—वामन जयन्ती, राखी, नित्य ठाकुर सेवा की विधि, पत्र १९ तक । २—वर्षोत्सव की सेवा विधि, भादों बदी ८ श्री जन्माष्टमी, दान एकादशी, वामन द्वादशी (भादों सुदी १२), कुँआर सुदी प्रतिपदा और अष्टमी, विजयादशमी को रासोत्सव (कुआँर १५), कार्तिक बदी ७, ११, १३, रूप चौदश, दिवाली, भाई दूज गोपाष्टमी, अक्षय नवमी, देवप्रबोधिनी, ब्रजोत्सव त्रयोदशी, (अगहन बदी १३), श्री गोसांई जी को उत्सव (पौष कृष्ण ९), गुसोत्सव (पौष सुदी ८), पत्र—१०—२९ । संक्रांति, वसन्त पंचमी, माघ सुदी ६ का उत्सव, माघ १५ को होरी ढाढी का उत्सव, फागुन बदी ७ श्री जी को उत्सव, फागुन बदी १३ विट्ठलेश जी को उत्सव, मुकुट काछनी और फेंट में गुलाल भरने के उत्सव

(क्रमशः फाल्गुन बदी ११), होलिकोत्सव, डोल संवत्सर का उत्सव, रामनवमी, मेष की संक्रान्ति, श्री आचार्य महाप्रभून को उत्सव (वैशाख बदी ११), अक्षय् त्रितीया, वैशाख सुदी ४, नरसिंह चतुर्दशी, जेठ दशहरा, स्नान यात्रा का उत्सव (जेष्ठ सुदी १५), आषाढ़ बदी २ को श्री गोकुलनाथ जी का विवाहोत्सव वर्षा और हिंडोरों के बहुत से उत्सव श्रावण सुदी ३ को श्री ठकुरानी का उत्सव श्रावणी ग्रहण की सम्पूर्ण विधि और उस दिन की ठाकुर सेवा, पत्र ३०—४६ तक।

विशेष ज्ञातव्य—खोज में यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। कारण समस्त ग्रंथ गद्य में है। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों के पास बहुत से व्रजभाषा गद्य के हस्तलिखित ग्रंथ हैं जो खोज में प्राप्त हो रहे हैं। इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने बीसों ग्रंथ लिखे हैं और वे सभी अप्रकाशित हैं। मुझे तो इस गद्य का विस्तार देखने से कभी कभी आश्चर्य होने लगता है। प्रस्तुत ग्रंथ में यह दिखलाया गया है कि ठाकुर जी की नित्य सेवा और विशेष-विशेष अवसरों पर की सेवा वल्लभ सम्प्रदाय के एक प्रमुख उत्तराधिकारी, श्री गोकुलनाथजी के घर किस प्रकार होती थी। ग्रंथ पढ़ने से बड़ा ही मनोरंजन होता है। भाषा बड़ी मधुर बोलचाल की और परिष्कृत है। इस सम्प्रदाय में गद्य के विशाल लेखक हरिराय जी माने जाते हैं जो कविता में कई उपनामों से आते हैं। कहा नहीं जा सकता, इस ग्रंथ के निर्माणकर्त्ता वही थे अथवा अन्य कोई है। हाँ, हुए वह गोकुलनाथ जी के बाद हैं।

संख्या १६६. गोकुल जी के उपदेश, कागज—मूँजी, पत्र—९, आकार—९ × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८९, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—अमोलकराम, स्थान—द्योसेरस, डा०—गोवर्धन, जि०—मथुरा।

आदि—एक समै पुष्टि मार्गीय सिद्धान्त श्री गोकुलनाथ जी श्री गुसाई जी सो पूँछे तब श्री गुसाईं जी चाचा हरिवंश जी तथा नागजी भट आदि भगवदीयन के अर्थ श्री गोकुल नाथ प्रति आपुने पुष्टि मार्ग को सिद्धान्त आपु श्री मुख सों कहे सो सुनि के चाचा हरिवंस जी तथा नागजी भट आदि अनेक रंग भगवदीय अपनें मन में बहोत ही प्रसन्न भये पीछे श्री गोकुलनाथजी अपनी वैठक पधारे सो श्री गुसाईं जी के बचनामृत को अनुसन्धान अपने मन में करत हैं तासमें श्री गोकुलनाथ जी के सेवक कल्याण भट ने आयकें श्रीगोकुल नाथ जी को दंडोत कीयो। परि श्री गोकुलनाथ जी बोले नाहीं आपु ते। पुष्टिमार्ग के रस में मग्न हें अनुभव करत हें तब कल्याण भट तो हाथ जोरि के ठाढ़ो होइ रह्यो पीछे च्यारि घड़ी में श्री गोकुलनाथ जी ऊँची दृष्टि करिकें कल्याण भट की ओर देखे तव कल्यान भट ने फिरि दंडोत करी तब श्री गोकुलनाथ जी आप श्री मुख सों कल्याण भट को कहें जो तुम कब के आये हो।

अंत—अब श्री गोकुलनाथ जी आप कल्याण भट प्रति कहे हैं वैष्णव को दस मो प्रकार कहत हें जो भगवदीय कों श्री ठाकुर जी की सेवा काहू के भरोसें न राखनी॥ आपुने माथे सेवा स्वरूप विराजत होय तिनकी सेवा आपु ही करे॥ उत्सवानित्यादिक

समयानुसार अपने वित्त अनुसार वस्त्राभरण तथा सामग्री सब भाँति भाँति के मनोरथ सहित प्रसन्न होईकें करनी श्री ठाकुर जी के इहाँ नित्य नौतन उत्सव मांगुल्य जानि प्रसन्न रहनो अमंगल उदासी कबहूँ न रहनो। और जो सामग्री जा उत्सव में अपने मन्दिर की रीति कही है सोई सब यथा सक्ति प्रीति पूर्वक करनों जो द्रव्य कौ सौकर्य्य आछो होय तो श्री ठाकुर जी के कार्य्य में कृपणता करनी नहीं। ओर भगवद सेवा करिकें श्रीठाकुरजी सों कछु मांगनो नाहीं या रीति सों निष्काम होय॥

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख उत्तराधिकारी गोकुलनाथ जी ने कल्याण भट (जिनके पद बहुत से प्राचीन संग्रहों में मिल रहे हैं) को अपने सम्प्रदाय विषयक जो उपदेश दिए उन्हीं का इसमें संग्रह है।

संख्या १६७. गीत संग्रह, कागज—स्यालकोटी, पत्र—४५, आकार—१० × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—८४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९३९ = १७८२ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री मयाशंकर याज्ञिक, अधिकारी श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर गोकुल, मथुरा।

आदि—मंगल आरती इह विधि कीजे। मंगल नैन निरखि सुख लीजे। मंगल आरती मंगल थार। मंगल राधे श्री मदन गुपाल॥ वारि स्याम छबि मंगल रासि। मंगल जोति मंगल प्रकास। मंगल संख निसान बजावै। मंगल द्रुम पोहोप बरषावै॥ मंगल सखी सब मंगल गामें। मंगल मुखी दरसन कूँ आमें। मंगल नन्द जसोदा रानी। गोद खिलावै सारंग पानी। मंगल व्रज चौरासी कोस। मंगल हरि गुण गावै जोइ। मंगल मथुरा अद्भुत रूप। मंगल केसव देव सरूप। मंगल जमुना श्री विसराति। मंगल बन उपवन की कान्ति॥ मंगल गोवरधन हर देव। मंगल नदी सुर संकेत।

अंत—आसावरी। व्रजरानी आप ही मंगल गावै। आज लाल को जनम दिवस है मोतियन चौक पुरावै॥ गाँव गाँव ते ग्याति आपनी गोपिन न्योति बुलावै। नाम करन कों गर्ग परासर जिनपै वेद पढ़ावै॥ अपने लाल पर करि नौछावर जन परमानंद पावै। आजु बधाई है बरसानै। कुँवरि किशोरी जनमत ही सब लोक बजे सहदाने॥ नन्द कह्यो वृषभान राय सों, और बात को माने। तेरै भले भलौ सबही को, आन कहा हूँ बखानै॥ छैल छबीले माल रंगीले, हरद दही लपटानै। भूषन बसन विविध विधि पहिरै गिनत न राजा रानै॥ या कन्या के आगे कोटिक वेटिन कौ अब मानै। नाचत गावत प्रमुदित वरनत नर नारिन कौ पहिचानै॥ व्यास रसिक तन मन फूलै नीरस सबै खिसानै॥

विषय—१—मंगलाचरण, रामराय रचित। २—बसन्त में व्रज और वृन्दाबन की श्री, राधा कृष्ण का विहार, वन कुंजों का वर्णन। इस प्रकरण में हित हरिवंस, कृष्ण, नंददास, भगवान हित रामराय, हितदयाल आदि के निर्मित गीत हैं। ३—बरसाने और नन्दग्राम की सुन्दर होरी का वर्णन, नन्ददास, जनमाधौ, श्रीविट्ठलगिरधर, गदाधर, रामराय, हितभगवान, सिरोमनि, लालदास, मुरारीदास, जगन्नाथ, माधुरी सहचरी, जयराम दयास खी, नरहरिया, सुखसागर आदि के बनाए गीत हैं। ४—फूलडोल का वर्णन, केशवदास,

विट्ठलविपुल, कुंभनदास, रसिक, मुरलीमनोहर आदि द्वारा रचित गीत । ५—रामजन्म की बधाई । जन सोभू, तुलसीदास, अग्रदास, गोविंददास आदि के पद । ६—हिंडोलना । गदाधर, रसिक कुँवरि, हित हरिजी, श्री हरिदास, मधुसूदन, सूरदास आदि के पद । ७—कृष्ण जन्म और राधाजन्म की बधाई । व्यास, रसिक, गोपालदास आदि के गीत । ८—किशोरदास कृत ढाढ़ी भेजने के दस्तूर का वर्णन । ९–राधिका का विवाह सूरदासकृत ।

विशेष ज्ञातव्य—अन्य पद संग्रहों के सदृश प्रस्तुत पद संग्रह भी अच्छा है । संग्रहकाल १७८२ ई० है । वल्लभ सम्प्रदाय के गवैयों के पद इसमें विशेषतया नहीं हैं पर हित हरिवंश जी के अनुयायियों के गीत प्रचुरता से हैं । स्मरण रखना चाहिए कि योग्यता और पद निर्माण के विस्तार में हित संप्रदाय के कवि कुछ कम नहीं हैं । मथुरा जिले की खोज में इनके विशालकाय संग्रह प्राप्त हुए हैं । अष्टछाप के कारण वल्लभ संप्रदाय के कवियों की प्रसिद्धि हो गई पर हित जी के अनुयायी अब भी पूरी तरह प्रकाश में नहीं आए हैं । लोगों का ख्याल है कि उनकी कविता अष्टछाप के कवियों के समान उत्कृष्ट नहीं है पर बात ऐसी नहीं है । उनकी भी रचनाएँ अष्टछाप कवियों के समान ही है । इस विषय पर किसी ने खोज करने का कष्ट नहीं उठाया, इसीसे अभी इस ओर अन्धकार है ।

संख्या १६८. गीत संग्रह (अनुमान से), कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—५१८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—गोकुल बिहारी का मन्दिर, मु०—बल्लभपुर, डा०—गोकुल, मथुरा ।

आदि—|| राग नट ॥ तेरी मोहन को मन हर लीयो ॥ नैन चिते इन चपल नैनसों ना जाने कहा कीयो || बैठे कुंज के द्वार तुव पथ जीवत भर भरलेत हीयो ॥ गोविन्द प्रभू को प्रेम कहाँ लो वरनों, तो बिन जात न जीयो || बसो मेरे नैनन ही में जोरी ।। नव दूलह ब्रजराज लाडलो दुलहन राधा गोरी ।। सीस सेहरो गज मोतिन को हरख निरख मनमोरी ।। हित हरिवंस देत नोछावर चिरजीवो यह जोरी ।।

अंत—दूल्हो बनि आयो सुन्दर दुलहनि सों नेह लगायो ।। रतन जड़ित को सीस सेहरो गज मोतिन सो बनायो ।। बागो लाल सुनहरी छापो···········विरचायो ।। रामदास प्रभू चढ़िगो ही परसक को भलो मनायो ।। लाल न नाहे री काहू के बस के ।। बावरी भई री उनसों मन अरुझावे वे तो सदा अपुने रस के ।। १ ।। निरख परख देख जिय को भरम गयो कामिनी वृन्दन के मन ससके ।। तदप कछू मोहिनी गोविन्द प्रभू, जुवती सभा में विदत जस के ।। २ ।।

विषय—(१) राधा कृष्ण का प्रेम और श्रृंगार । (२) कृष्ण के विवाहोत्सव के गीत । (३) गोवर्धन पूजा और इन्द्र के कोप सम्बन्धी गीत । (४) बसन्तोत्सव के पद । (५) स्फुट क्रमहीन गीत । अष्टसखाओं के सिवाय रामदास, विष्णुदास, इन्द्रमणि, कल्यान, धोंधी, विट्ठल गिरधर, हित हरिवंश, प्रभृति पद रचयिताओं के गीत इस संग्रह में सम्मिलित हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पद संग्रह साधारणतया अच्छा है। इसमें कई अनुपलब्ध गीतों का चयन है।

संख्या १६९. गीतसंग्रह (अनुमान से), कागज—मूँजी, पत्र—१७९, आकार—१० × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१८१, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथजी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—रागईमन। हिंडोरे झूलत हैं पिय प्यारी, तेसीय रितु पावस सुखदायक, तेसीय भुंहि हरियारी। तेसीय घन गरजत तेसिय दामिन, कोधति फुँही परत सुखकारी। अवला अति सुकुवाँर डरत जिय पुलकि भरत अकवारी। मदन गोपाल तमाल स्याम तन कनक वेलि सुकुमारी। गिरधर लाल रसिक राधा पर गोविन्द बलि बलिहारी॥

अंत—प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की श्री वृषभान गोपकें आइ। अदभुत रूप देखि व्रज वनिता रीझे लेत बलाइ॥ नहीं कवल नहीं सचीर सारद उपमा उर न समाइ। जाने प्रगट भए ब्रज भूखन धन्य पिता धनि माइ॥ जुग जुग राज करो दोऊ जन इत तुम उत नन्दराइ। उनकुँ मदन मोहन इत राधा सूरदास बलिजाइ॥ राग सारंग॥ आज रावल में होत बधाइ। श्री वृषभान राय घर प्रगटी, राधा जू सुखदाइ॥ मंगल साजि सकल पुर बनिता घर घर ते सब आइ। कनक फूल वारति कर कामिनी निरखि परम सुखपाइ॥ बन्दी जन गावत हैं द्वारे उचित अनन्त दिखाइ। दास गजाधर को तुम दीजे माला तिलक पहिराइ।

विषय—राधा कृष्ण के श्रृंगार सम्बन्धी गीत, पत्र, १—१९ तक।
राधा कृष्ण सम्बन्धी मलार और हिंडोरा आदि
श्रावण के उत्सव, पत्र २०—३४ तक।
राधा कृष्ण के जन्मोत्सव की बधाइयाँ और
बाल लीलाएँ, पत्र ३५—१७२ तक।

अष्टसखा, रामदास, माधौदास, दास गजाधर, श्री विट्ठल गिरधर, गोविन्दप्रभू, रामराय, रसिकराय, हितहरिवंस, व्यास स्वामिनी, कृष्णजीवन, पीय बिहारी, जनभगवान, धरमदास, रसिक प्रीतम, हरिदास, हरिनारायन, स्यामदास इत्यादि के गीत इसमें आए हैं।

संख्या १७०. गीत संग्रह, रचयिता—भक्त कवि गण, कागज—मूँजी, पत्र—१०४, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७१२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी जी, श्रीगोकुल नाथ जी का मन्दिर, गोकुल।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः॥ अथ श्री आचार्य जी बधाई लिख्यते॥ राग गंधार॥ आनन्द भयो लछमन नन्द कुमार। भुव पर प्रगट भये पुरुषोत्तम, जीव किए अधार। करनी साधन सूद ढहोई के, किए जो अंगीकार। कृष्णदास श्री हरि की

लीला, जाने जानन हार। बधाई को दिन मंगल आजु। गावत गीत मुदित बनिता सब पूरे मन के काज। श्री लछ ग्रह महामहोछो बाँधी बंधनवार। प्रगटे ज्ञग्य पुरुषोत्तम श्री वल्लभ द्विज तनुंधार।

अंत--चंदन पहरि आय हरि बैठे कालिन्दी के कूल। सघन कुंज द्रुम चहुँ फूले ललित लता के मूल। कुंदमाल श्री कंठ बनी ओर विचि विचि विविध भाँति के फूल। रुचिर प्रवाह वहत जमुना मध्य तरुन रहे हैं फूल। नाचत गावत बैन बजावत सकल सखा लीने सब संग। गोविन्द प्रभू पिय की छबि निरखत होत नैंन गति पंग। अक्षय तृतीया अक्षय सुख निधि पिय को पिया चढ़ावत चन्दन। तबहीं पिय सिंगारी नारी अरगजा घोरि सुघर नन्दनन्दन। लें दर्पन निरखतु जु परस्पर रिझ रिझ रही जो वन्दन। नन्ददास प्रभु पिय रस भींजे जवतीन सुखद विरह दुख कन्दन।

विषय--वल्लभाचार्य जी के जन्म दिवस की बधाई,	पत्र	१--२१ ।
गुसाईं विट्ठलनाथ जी की बधाई,	पत्र	२२--२६ ।
गोकुलनाथजी का जन्म दिन और उस उत्सव के गीत,	पत्र	३०--३८ ।
मलार और राधा कृष्ण का विहार,	पत्र	३९--४५ ।
हिंडोरा और फूल डोल का वर्णन, अक्षय तृतीया और रक्षा बंधन के पद,	पत्र	४६--६८ ।
कृष्ण भगवान् की बाल लीलाएँ,	पत्र	६९--१०२ ।

निम्नलिखित भक्तों के गीत आए हैं:--रसिकराइ, श्री विट्ठल गिरधर, श्री भट, गोपालदास, विष्णुदास, माधोदास, मानिकचन्द, सगुनदास, बृजपति, नन्दराय, वल्लभछीत स्वामी, चतुरभुज, भगवानदास, कृष्णदास, गोविन्दप्रभु, गोकुलदास, वृन्दावनचन्द, व्यास स्वामिनी धोंधी, सूरदास, हितहरिवंश, नागरीदास, कुम्भनदास, रामदास, रसिक प्रीतम, तानसेन, हरिदास, गजाधर प्रसाद, धर्म्मदास, जगन्नाथ, रघुनन्दन, कल्याण, सहचरी, मदनमोहन, सुघरराइ, परमानन्द, हितदामोदर, आसकरन, भगवान् हितरामराय, स्यामदास, तुलसी दास, अगरदास, रामलाल इत्यादि भक्त कवियों की रचनाएँ इसमें आई हैं।

विशेष ज्ञातव्य--ग्रंथ कितना उपयोगी है, यह कहना आवश्यक नहीं है। विषय से ही प्रकट हो जाता है।

संख्या १७१. गीत संग्रह, कागज—देशी, पत्र—७६, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८२४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ला० सूर्यनारायण जी, स्थान व डा०—अजीतमल, जि०—इटावा।

आदि--॥ गीत संग्रह ॥ ···············इस कदर तेरे रुख सारों पर जोवन है। जिस कदर फलक पर फूल रहा रोशन है॥ क्या मदन की आमद वदन में नाजुक पन है। मखमली मुलायम शिकम जिस्म कुंदन है॥ क्या सदा से काली लट नागिन लटकाली।

घूँघट की ओट ॥ २ ॥ कानों में तेरे करन फूल वाला है। रुख झूम झूम झुमकोंने चूम डाला है ॥ वेंदी वेसर नौरतन गले माला है। अक्सरे जहाँ जोवन का उजियाला है। क्या अजव नाज अन्दाज चाल मतवाली ॥ घूँघट की ओट ॥ ३ ॥ क्या वर्ड़ी परी सी तेरी पेशानी है। वह अदा तेरी है जहाँ की मनमानी है ॥ हकताला की कदर मेहरवानी है। वन्दिश गनेश परसाद शेरख्वाही है ॥ छवि दिखाके तवियत वे शुमार उलझाली ॥ घूँघट की ओट कर चोट मोहनी डाली ॥ ४ ॥

अंत—बूझत श्याम कौन तू गोरो। कहाँ रहति काकी है बेटी, देखि नहीं कबहूँ वृजखोरी ॥ काहे को हम वृजतन आवत, खेलत रहत आपने पोरी ॥ सुनत रहत श्रवणन नँद ढोटा करत रहत माखन की चोरी ॥ तुम्हारा कहा चुराय हम लीन्हों खेलन चलो संग मिलि जोरी ॥ सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि वातन भोरि राधिका गोरी ॥ दोहा ॥ सत्य वचन आधीनता, परतिय मातु समान। इतने पर हरि ना मिलैं, तुलसी झूंठ जवान। मन मोहन रूप धरे वरसाने चले वनि के लिलहारी ॥ वृषभानु के द्वारे अवाजदई, तुमलील गोदाओ सवै वृजनारी ॥ राधे अवाज सुनी श्री कृष्ण की लीन वुलाय पठावनहारी ॥ लै आवो वुलाय हमारे इतै, इक आई है आज नई लिलहारी ॥ उन जाय जवाव दियो श्री कृष्ण सों तुमहिं वुलावत राधिका प्यारी। अपने कर सों कर साथ लिये जहँ········

(शेष लुप्त)

विषय—विविध रचयिताओं के विविध विषय सम्पन्न कुछ गीतों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में प्रधान रूप से शृंगार रस प्रधान गीतों का ही संग्रह है। इसके अतिरिक्त ज्ञान, उपदेश आदि के भी गीत हैं। संग्रहकर्ता ने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया है। अंत तथा मध्य के बहुत से पन्ने लुप्त हैं। संग्रहकर्ता का समय भी अज्ञात है।

संख्या १७२. गीत सागर (अनुमान से), रचयिता—(अष्टछाप प्रभृति), कागज—मूंजी, पत्र—११०, आकार—१०$\frac{३}{४}$ × ९ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२१०८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल मथुरा।

आदि—॥ रागमारूँ ॥ कौन देस ते आयो बनचर कौन देस ते आयो। कहाँ ते राम कहाँ ते लछमन, कहाँ यह मुद्रिका पायो। हो हनुमान राम जू को सेवक, तिहारी सुधि लेन पठायो ॥ रावन मारि ले जाऊँ तुमको, राम आग्या नहिं पायो। तुम जिन जिय डरपो मेरी माता, जोर राम दल आयो। सूर प्रभु रामन कुल खोयो, सोवत सिंघ जगायो ॥

अंत—॥ राग विहागरो ॥ कुंज भमन में मंगलचार। नव दुलहिन वृषभान नन्दिनी नव दूल्हा ब्रजराज कुँवार ॥ नये नये पुष्प कुंजन के तोरे नव पलव के वन्दनवार। चोरी कदम खंड के वंसी वट सघन लता मण्डफ विस्तार ॥ करत वेद धुनि विप्र मधुप गन कोकिल त्रिय गावत गुनसार, दीनी भूरिदास परमानन्द प्रेम भक्त रतनन को हार।

जुगलवर आवत हैं गठ जोरे। संग शोभित वृखभान नन्दिनी ललितादिक त्रिन तोरे॥ सीस सेहरो बन्यो लाल के निरखि हँसति मुख मोरे। निरखि बलि जाइ गदाधर छवि न बढ़ी कछु थोरे॥ × × ×

विषय—(१) रामचन्द्र तथा विजयादशमी के गीत। सूरदास, रसिकप्रभु, हरिनारायण, स्यामदास, आसकरन, कृष्णदास प्रभृति के पद इसमें आए हैं, पत्र १–१२ तक। (२) अन्नकूट उत्सव एवं गोवर्द्धन लीला। सूरदास, केसोदास, विट्ठल गिरधर, परमानन्द दास, आसकरन के पद, पत्र १२–२७ तक। (३) गोवर्द्धन पूजा का वर्णन। लालदास, अष्टछाप, श्री विट्ठल गिरधर, गोविन्द, हरिदास, कल्याण, केशव, हीरापति के गीत, पत्र २८–३९ तक। (४) गाय चरावन, ग्वालबाल संग खेल। अष्टछापकृत, पत्र ४०–४२ तक। (५) जागरण और प्रभात। मालिका विट्ठल गिरधर, अष्टछाप, रसिक प्रभु, इत्यादि के पद, पत्र ४३–५६ तक। (६) रूप चौदश का कीर्तन। अष्टछाप, विट्ठल गिरधर आदि के पद, अन्नकूट के पद (अष्टछाप), विष्णुदास, गोविन्द प्रभु, मानदास, आसकरन, ब्रह्मदास, हरिनारायण, स्यामदास, ब्रजपति के पद : गोचारण का कीर्तन (अष्टछाप), श्री विट्ठल गिरिधरन, आसकरन, रामदास के पद। रामविलास का वर्णन, विष्णुदास, गजाधर मिश्र, पत्र ५७–११० तक।

विशेष ज्ञातव्य—यह गीतों का संग्रह उपयोगी प्रतीत होता है। इसमें सहस्रों गीत संगृहीत हैं। इसमें लालदास, केशवदास, हीरापति आदि कुछ ऐसे कवियों के गीत हैं जिनके विषय में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसमें केशवदास तथा ब्रह्मदास के भी पद हैं। क्या यह केशवदास ओरछा के तथा ब्रह्मदास बीरबल हैं? निश्चित रूप से कहना कठिन है। ब्रह्मदास के कई पद इन संग्रहों में आते हैं। मैंने श्री मयाशंकरजी याज्ञिक से पूछा तो वे इन ब्रह्मदास को बीरबल ही मानते हैं और केशवदास को कोई दूसरा, ओरछा के महाकवि से भिन्न। उनका मत है कि अकबरी दरबार में तानसेन के साथ रहीम और बीरबल ने भी गीत बनाए हैं और कुछ गीत उन्हें प्राप्त भी हुए हैं। यह बात विचारणीय है।

संख्या १७३, गीत मंजूषा (अनुमान से), कागज—मूँजी, पत्र—१२१, आकार—१०×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४४०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकर लाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—पुजबो हो साधनन्द मेरे मन की। करो हो ब्याह नैन भरि देखों दुलहिन अपने ललन की। कब देखोंगी मोर धरे सिर पनरथ बदन छरक रन की॥ अति उछंग लाल घोरी चढ़ि ओढ़ सिर चँवर ढुरन की। राई नोन उतारि दुहुँ करि दृष्टि न लगे दुरजन की॥ परमानन्द बलि बलि जोरी पर सुन्दर स्याम ललन की। प्रगटे प्राची दिसि पूरन चन्द। प्रगट भए श्री वल्लभ ग्रह सुर नर मुनि भयो अनन्द। अद्भुत रूप अलौकिक महिमा जननी तात यो भाखें॥ छीत स्वामी गिरधरन श्री विट्ठल लोक वेद मत राखे॥

अंत—आज अजुध्या मंगल चार। मंगल कलस माल तोरन वन्दीजन गावत सब द्वार॥ दशरथ कौसिल्या केकेई बैठे आई मन्दिर। रघुपति भरत शत्रुहन लछिमन थोरो धीर उदार॥ एक नाचे एक करत कुलाहल पाईन नूपुर को झंकार। परमानन्द प्रभु मन मोहन प्रगटे असुर संहार। आज अजुध्या प्रगटे राम। दशरथ वंस उद्यो कुल दीपक सिव विरंच मन भयो विश्राम॥ घर घर तोरन वन्दन माला मोतिन चौक पुरे निज धाम। परमानन्द दास तिहि अवसर वंदिजन को देखत राम।

विषय—ब्याह के गीतः—सूरदास, परमानन्द आदि अष्टछाप के कवि। बधाई के गीतः—रसिक, विष्णुदास, पद्मनाभ, मानिकचन्द, छीतस्वामी, गोपालदास, सगुनदास, ब्रजपति, नन्दराय, देवीदास, जनमथुरा, गिरधर, विट्ठलनाथ, चतुर्भुज, भगवानदास, माधौ, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, विट्ठलगिरधर, गोविन्द प्रभु, पत्र १—४६ तक। (२) वल्लभाचार्य का अवतार होना, संवत्सर और उत्सव आदि का वर्णन, बृन्दावन चन्द के गीत, मुरारीदास, हरिदास, वल्लभदास, विष्णुदास, गोपालदास, पत्र ४७—६० तक। (४) वल्लभावतार की बधाई और महोत्सवः—वल्लभदास, धर्मदास, बृन्दावनचन्द, हरिदास, गोविन्ददास, पत्र ६१—७२ तक। (५) होलिकोत्सव के गीतः—परमानन्द, गोविन्दप्रभु, वल्लभदास, बृन्दावन, गोपालदास, जनहरिदास, चतुरभुज, सूरदास, विट्ठल गिरधर, जगन्नाथ, हितहरिवंस, नन्ददास, मदनमोहन। कृष्णजन्म की बधाईः—नारायणदास, किशोरीदास, सूरदास, ब्रजपति, परमानन्द, व्यास, कमलनयन, श्री विट्ठल गिरधर, नन्ददास, हरिनारायन, स्यामदास, रसिक प्रीतम, चतुर्भुजदास, भगवानहित रामराय, जगन्नाथ कविराय, कल्यान। बाललीला तथा श्रृंगारः—श्री विट्ठल गिरधर, अष्टछाप, जनहरिया, कुम्भनदास, केसोजन, परमानन्द, विष्णुदास, रघुनाथदास, आसकरन, रामदास, रसिक प्रीतम, हरिनारायण, स्यामदास, तुलसीदास, इत्यादि भक्त कवियों के तत्सम्बन्धी गीत, पत्र ७३—१२२।

विशेष ज्ञातव्य—यह अष्टछाप का एक उपयोगी संग्रह है। इसमें अन्य बीसों भक्त और विख्यात कवियों के गीत संगृहीत हैं। इन कवियों में से बहुतों के विषय में अभी हमारा ज्ञान अधूरा है। प्रायः सभी कवियों के नाम छाँटकर दे दिए गए हैं। इनमें मानिकचन्द, देवीदास, जनमथुरा, माधौ, मुरारीदास, केसोजन आदि के गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। संग्रह उपयोगी है। यह देखने में बहुत प्राचीन ज्ञात होता है। सन् संवत् इसमें कोई नहीं पड़ा है। यह ब्रज के एक सबसे प्राचीन संग्रह का है। कृष्णभक्ति और सेवा के पदों के अतिरिक्त इसमें रामभक्ति के भी पद हैं और वह भी कृष्ण भक्त कवियों के रचे हुए। उत्सवों के गीतों का ही इसमें बाहुल्य है।

संख्या १७४. गीतमालिका (अनुमान से), रचयिता—अष्टछाप आदि, कागज—बाँसी, पत्र—३१, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्) ४३४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—खेमचन्द्र जी, स्थान—पाली, डा०—अड़ींग, मथुरा।

आदि—अपने बाल गोपाले रानी पालने झुलावै। बारम्बार निहारि कमल मुख, प्रमुदित मंगल गावैं। लटकन भाल भृकुटी मिसि बिंदुका, कठुला कंठ बनावै॥ सद्य माँखन मधु सानि अधिक रुचि, अँगुरिन केहु चखावै॥ कबहुँक सुरंग खिलौना लें लें नाना भाँति खिलावैं॥ देखि देखि मुसक्याय साँवरो, द्वै दतिया दरसावैं॥ सादर कमोद चकोर जानो, जननि रूप सुधा-रस प्यावैं॥ चतुरभुज प्रभु कृष्ण चन्द्र को, हँसि कंठ कंठ लगावै॥

अंत—राग कानरो सब तजि भजिय युवतिन सुखदायक। मरकत रत्न लाल गिरिधर पिय, हारावलि में करि मध्य नायक॥ यह जियजानि विधाता मिलयो, सुनि सुन्दर तेरे तन लायक॥ कृष्णदास प्रभु रसिक मुकुट मनि, गुन निधान मुरली कल गायक॥ जो रस गोपीन लीनो घूँट। मदन गोपाल निकट करि पाए, प्रेम काम की लूट॥ देखत रूप ठगोरी लाई, लज्जा गई सब छूट॥ परमानन्द प्रभु वेद सागर की मरजादा गई टूट॥

विषय—निम्नलिखित भक्त कवियों के शृंगार एवं भक्ति रस पूर्ण गीतों का इसमें संग्रह हैः—१—चतुरभुज २—गोविन्द ३—परमानन्द, ४—केसव, ५—सूरदास, ६—छीत, ७—सगुनदास, ८—हरिजीवन, ९—विष्णुदास, १०—लालदास, ११—कुंभनदास, १२—कृष्णदास, १३—मानिकचन्द, १४—श्री विट्ठल, १५—रघुनाथदास, १६—गदाधर प्रसाद, १७—जगन्नाथ माधो। १८-गोपालदास, १९–हरिवंसहित, २०—हरिदास, २१—मानदास, २२—लीलाधर, २३—कल्यान, २४—रामकृष्ण इत्यादि।

संख्या १७५. हृदयसर्वस्व, कागज—मूँजी, पत्र—८, आकार—१०×७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—९४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्याम सुन्दर अग्रवाल एम० ए०, मुन्सिफ, महावन, म्युनिसिपल आफिस के पास, मथुरा।

आदि—अथ हृदयसर्वस्व लिख्यते॥ दोहा॥ रुचिर धाम वृन्दा विपिन पुर वृषभान उदार। जामे गहवर पाटिका तामें नित्य बिहार॥ सेज सुदेस विराजहीं तहाँ चलनि नहिं होय। कुँवर रूप रस माधुरी लाल थकित रह जोय॥ खान पान सुधि नैक नहिं सखी करत सब काज। अंगनि ही में सब समे सज्याही को राज॥ श्री वृषभानु कुमारि अति नाम कुँवरि नँद नन्द। बूड़े रहत विहार में सहचरि आनन्द कन्द॥ सेष सदा श्री राधिका सेवक नन्द कुमार। दूजे सेवक सहचरी सेवा विपिन बिहार॥

अंत—हँस हँस कंठ लगाय है, मोको मेरी जीव। आपुन खण्डित वीटिका देहैं मोहि अमीव॥ कवित्त—राधा मम वैन प्रान राधा सुख सम्पति है, राधा मुख कमल मेरे हिये आधार है। धर्म्म पूज्य इष्ट मित्र लोक वेद राधा ही, राधा को नाम मेरो रसना उचार है। राधा बिन जानो जोपे और कहा कहौं तोपे, मन मोहि लाख लाख लाख कलगार है। राधा ही साधन फल सिद्धि वंशी राधा ही, मेरे मन चाहि राधा पान को उगार है॥ इति श्री हृदय सर्वस्व सम्पूर्णम्।

विषय—राधा कृष्ण का एक दूसरे के प्रति प्रेम और भक्ति का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ अपने ढंग का अनूठा है । कविता में माधुर्य और सरसता है। रचयिता आदि का पता नहीं चला ।

संख्या १७६. ज्ञानबत्तीसी, कागज—देशी, पत्र—९, आकार—५½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०, पूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० उमाशंकर जी द्विवेदी, आयुर्वेदाचार्य, पुराना शहर, वृन्दावन, जि०—मथुरा ।

आदि—अथ ज्ञानबत्तीसी लिष्यते ॥ दोहा ॥ श्री गुरु चरण प्रनाम करि, वरणौं ज्ञान वतीस । पाऊँ युगल किशोर पद, तू मम जीवन ईश ॥ १ ॥ कालकर्म छोड़त नहीं करौं जतन कोऊ कोटि । ताके कछु भंगन सकै, जिन लीनी हरि की ओटि ॥ २ ॥ खबरदार होइ चालियौ ज्यौं चालै सब साधु । जरामूल खोइ देत है, संतन को अपराधु ॥ ३ ॥ भूले गर्व न कीजिये, जो पावै धन कोरि । माया हरिकी जानि कै खरचै पाइन जोरि ॥ ४ ॥ घर घर कबहुँ न डोलिए वैठि रह्यौ एकांत । भजन भावना कीजिये नीरौ आवत अन्त ॥ ५ ॥ मुनुष देह कौ पाइकै मति खोवै तू वादि । सोवत वैठत उठत मैं प्रभुजी करिलै याद ॥ ६ ॥

अंत—रे मन साँची बात सौं जगमानत है रोस । जो कबहूँ झूठी कहै तो हरि काढत है दोस ॥ ३१ ॥ संसारी स्वारथ भरयौ मात पिता सुत कंत । तजि दै ना तौ सबनि सौं मतिय विगारै अंत ॥ ३२ ॥ हरि शरणा गति जिन लहि धनि वे सांवत सूर । आन शरन कायर सवै नहिं दीखै कहूँ नूर ॥ ३३ ॥ 'ज्ञान वतीसी' यह कही अपनौ मन समुझाइ । यही हेत दूजो नहि सुख सिंगारहि गाइ ॥३४॥ इति श्री ज्ञानवत्तीसी संपूर्णम् ॥

विषय—ज्ञान संबंधी दोहे ।

विशेष ज्ञातव्य—'ज्ञानवत्तीसी' जैसा नाम से जान पड़ता है, एक उपदेशात्मक ग्रंथ है । इस विषय की यह एक उच्च रचना है । पुस्तक में कोई सन्-संवत् तथा रचयिता का उल्लेख नहीं है । ज्ञान विषयक केवल बत्तीस दोहे कहे गए हैं जिससे इसका नाम ज्ञान बत्तीसी पड़ा । दोहा संख्या २२ में अंत का पद यों है:—"ताते 'हित' जू गाइले छाँडि विषय की आस" इसमें "हित जू" आया है । शायद यही लेखक का नाम हो, परन्तु साथ ही यह श्री हितहरिवंश जी के लिये भी प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है ।

संख्या १७७. झगड़ा संग्रह, कागज—देशी, पत्र—१६, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्रीरामजी, स्थान—असरोही, डा०—करहल, जि०—मैनपुरी ।

आदि—सिंगार धरी सिर मटकी, चली वनज को मथुरा नगरी ॥ दखिनी चीर वन्यो अनमोलौ । जरद किनारी सूहौ चोलौ ॥ लाल रंग सौं एवस कीया । तुझे रूप साहब ने दीया ॥ तेरी कथना कथूँ सिंगार की वाकीं पलकैं भवैं कटीली । नैना बने कटीलौ सार

की ॥ चन्द्रावलि गुजरी कहाँ गमाई लंगर आरसी ॥ २ ॥ गूजरी को वचन ॥ कान्हरे गौ चरावै वन में गेलै । आय अचानक घूँघट षोलै ॥ च्यों दई मारे कैसे वोलै । भली भाँति का देखा भारथै ॥ महर लिया जसुमति ने पारथा त्योहि पवन लगी दिन चार की ॥ भरो पेट तो लगी अघाई । छांड़ि कान्ह हमसे चतुराई ॥ तेरी सषियाँ करब विचारसी छाँड़ि दै अचरा जान दे घर को नाहि सुहावै तेरी पारसी । नंदक नंदा दूजो जड़ाऊ मेरी आरसी ॥ ३ ॥

अंत—लोहा पुनि कहै सोना तू बड़ा पापी । दुनियाँदार वीच भये फिरो प्रतापी ॥ हमसौं फिरि जोत वीज वोवैं किसाना । उपजै तव अन्न होवै निधाना ॥ उपजै अरिष्ट होय समयाधारी । अन्न खात तव सुहात नथ औ बारी ॥ तुमकौं हम ठौंकि ठांकि गाढ़ैं लगावैं । गहना सिंगार और हारहू वनावैं ॥ हमरौ झिलम जो कोऊ पहिरै अंग में । मारत वर वीर घाव जुरत जंग में ॥ सनमुख संग्राम हार सहै हमारी । ताको ताजीम देत कृष्ण मुरारी ॥ एते सम्वाद कई वरसैं वीती । मानैं ना कोई हठि हार जीती ॥ गरुड़ चढ़े कृष्ण आए किया निवेरा । सो नाव लोह दोउ अंग है मेरा ॥ महावीर धीर तपसी दोऊ । जाके घर देन लोह सोना दोऊ ॥ कहैं वेश चोखे यह वात वीन कै । सो नाव लोह दोऊ सिरे दीन के ॥ इति झगड़ा संग्रह समाप्त ॥

विषय—कृष्ण-चन्द्रावली, सोना-रत्ती और सोने-लोहे का झगड़ा ।

विशेष ज्ञातव्य—इस ग्रंथ में तीन संवाद दिये गये हैं । पहले संवाद का केवल एक पद्य नहीं है, शेष सब है । प्रत्येक संवाद अपने अपने ढंग का निराला है और प्रत्येक की शैली से उसके रचयिता भी पृथक-पृथक जान पड़ते हैं । पहले संवाद में शेष दो संवादों की अपेक्षा स्वाभाविकता अधिक है । तीनों संवादों में कथनोपकथन विवाद लिए हुए हैं, अतः किसी ने इसी साम्य को देखकर इनका एक साथ संकलन कर दिया है । ये संवाद हास्यरस के अंतर्गत आते हैं ।

संख्या १७८. जनकपुर ज्योंनार, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० पूरनमल जी शर्मा, स्थान—वैजुआ, डा०—अराँव, जि०—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ जनकपुर ज्यौंनार लिख्यते ॥ दोहा ॥ गुरु अनुसासन पाय प्रभु, तोरयो धनुष अनूप । जनक सुता पाई सुखद, जिहि को विमल स्वरूप ॥ १ ॥ जय जय कार सकल जग छाई । घर घर पुनि वजइ वधाई ॥ जनक हर्ष नहिं हृदय समाई । रन वासन में तिय मंगल गाई ॥ २ ॥ सतानंद की अज्ञा पाई । दूत अजुध्या दीन पठाई ॥ सकल समाचार ता दीन सुनाई । लावो वेगि वरात चढ़ाई ॥ ३ ॥ दोनों सुत वहँ अहैं तुम्हारे । या छोटेहु जांइ पधारे । चारौ को जइ व्याहु रचायौ । मन चीतो सुष सम्पति पाऔ ॥ ४ ॥ सजवाई वरात चले रघुराई । सोभा वरणि कीन्ह नहिं जाई ॥ विविध वाजने वाजै वहुरंगा । वाँके छैल वराती संगा ॥ ५ ॥

अंत—जनक कह्यो दशरथ सों जाई। कछु सेवा नाहिन बनि पाई ॥ सब अपराध छमो रघुराजू। बार बार मोहि आवहि लाजू। दशरथ कहि यों वचन सुनाई। उचित तुम्हैं अहै यह भाई ॥ तुमने जितो सुख हमको दयौ। आजु तलकि नहिं कबहुँ भँयौ ॥ लक्ष्मी सुता अहैं तुम्हारी, अलभ्य लाभ यह पायौ चारी ॥ आज्ञा देहु अवै घर जाहीं, माण जोहत हुइ हैं सब वाहीं ॥ कैसे कहौं जनक यह वोले। प्रेम पगे मधु सों अनमोले ॥ राम राम करि चले बराती। लीने अपने सबै सँघाती ॥ भाटन जीते दीन्ह सुनाई। सम्पति बहु उनने पाई ॥ घर घर अवध में बजै बँधाई। दीप मालिका सी दई सजाई ॥ रानी सुनि कैं सब धाईं। वधुन पाइ अति आनन्द मनाहीं ॥ विधु वदनी बहु मंगल गावैं, मुँह दिखावनि कौ दौड़ी आवैं ॥ शेष रहे सब ठिकहू कीन्हे। वरनि सकैं नहिं नेकु न वीने। सभी लेखनी इतनी कहिकैं। सीताराम प्रेम में बहि कें ॥ दोहा ॥ धनुष जग्य के वादि को, दीनों हाल सुनाय। तामैं बड़ि ज्यौंनार को, वरणन समुझौ भाय ॥ इति ॥ श्री जनकपुर ज्यौंनार ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—धनुषयज्ञ के पश्चात् रामादि के विवाह, बारात, अगवानी, जनवासा और ज्योंनारादि का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—रचयिता का परिचय तथा रचनाकालादि का विवरण ग्रंथ में नहीं दिया है। रचना साधारण है।

संख्या १७९. जमना जी के गीत, रचयिता—अष्टछाप (ब्रज मंडल), कागज—बाँसी, पत्र—१८, आकार—७ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)-४८९, पूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री पन्नालाल जी, स्थान—सकरवा, डा०—गोवर्धन, जि०—मथुरा।

आदि—रामकली—गुण अपार एक मुख कहाँ लौं कहिए। तजो साधन भजो नाम श्री जमुना जी को, लाल गिरिधरन वरन वही पैये। परम पुनीत प्रीत की रीति सब जानि के, दृढ़ करि चरन कमलन जू गहिये। छीत स्वामी गिरधरन श्री विट्ठल, ऐसी निधि अब छांड़ि कहाँ जो जैये।

अंत—राग रामकली—श्री जमुने के साथ अब फिरत हे नाथ। भक्त के मन के मनोरथ पूरन करत कहाँ लौ, कहिए इनकी बात। विविध सिंगार आभूषन पहिरें, अंग अंग सोभा वरनी जात। दास परमानन्द पाए अब व्रज चन्द, राधे परम ऊदार वहे जु जात।

विषय—रवि तनया यमुना जी की महिमा और स्तुति।

संख्या १८०. कथा संग्रह (महाभारत), कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—१० × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४४०, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बद्री सिंह जी, स्थान—सालिगपुर, डा०—जसवन्त नगर, जि०—इटावा।

आदि—.........॥ अब जीवात्मा स्वर्गगामी हो कें जिस जिस स्थान में अवस्थान करै है सो कहैं हैं ॥ इहाँ पुण्य कर्के देहान्त में चन्द्र सूर्य अथवा नक्षत्र लोक लाभ कर्तें हैं ॥

कर्म क्षय होंने सन्ते पुनः तहाँ सों भ्रष्ट होइ कें मृत्युलोक में जन्म लेत हैं। स्वर्ग में भी उत्तम मध्यम और नीच स्थान कहैं हैं॥ स्वर्गवास करकें भी अपने में अन्य की उत्कृष्ट श्री देखकें ईर्ष्या हौति है॥ ईह गति विषय कह्या देह परिग्रह का विषय अब कहैं हैं॥ इहि लोक में फल भोग बिना कर्म का क्षय होत नाहीं॥ जो जैसा करत हैं तैसा ही फल भोग होता है। आत्मा मन कों अग्रवर्ती करिकैं कार्य में प्रवृत्त होते है॥ शोणित मिश्रित शुक्र स्त्री के गर्भ में प्रविष्ट है कै जीव के कर्मानुसार देहरूप से परिणत होता है॥ अनन्तर जीव वामें प्रविष्ट होता है॥ अति सूक्ष्मता और अलक्ष्यता सें वह कहीं लिप्त नहीं होता है॥

अंत--एकदा प्रजापति दक्ष॥ भारद्वाज॥ गौत्तम॥ भार्गव॥ वशिष्ठ॥ कश्यप॥ विश्वामित्र और अत्रि यह सब कर्म पथ में भ्रमण कर्ते कर्ते श्रान्त होइ कैं॥ व्रहस्पति को अग्रवर्ती करिकैं ब्रह्मा के निकट जाइकै विनीत भाव से जिज्ञासा कर्ने लगे॥ भगवन् किस प्रकार सत्कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए किस प्रकार पाप से मुक्ति होइ॥ कौन सा पथ मंगल जनक है॥ सत्य औ पाप का लक्षण क्या॥ मृत्यु औ मोक्ष पक्ष का क्या वैलक्षण्य है॥ प्राणिगण की उत्पत्ति औ विनाश कैसें होइ है सो सव आप हमसों कथन करिये॥ ब्रह्मा बोले हे तापस गण यह स्थावर जङ्गमात्मक भूत समुदाय एक मात्र सत्य सरूप ईश्वर सें उत्पन्न होइ कैं स्व स्व कर्म सें जीवित रहैं हैं॥ यह लोग कर्म से अपना नित्य मुक्त स्वभाव भाव त्याग पूर्वक जन्म मृत्यु भाव प्राप्त होके अवस्थान करैं हैं॥ सत्यस्वभाव से निर्गुण है॥ जव वह सगुण होइ है तव उसको धर्म जीव आकाशादि भूत और जरायु आदि प्राणी यह पांच प्रकार सें कहाये जाइहैं॥ इसी हेतु से ब्राह्मण लोग नित्य योग पारायण क्रोध शून्य सन्ताप मुक्त औ धर्म के सेतु रूप होके सत्य का आश्रय कर्ते हैं॥ इस समय जो परस्पर तमः प्रकार से कदापि धर्म का............ (शेष लुप्त)

विषय—महाभारत संबंधी कुछ कथाओं का हिन्दी भाषा में रूपांतर करके संग्रह किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ आदि और अंत में खंडित है। रचयिता तथा रचनाकाल का पता इससे नहीं चलता। इसकी भाषा प्रायः खड़ी बोली है, परन्तु कहीं-कहीं अवधी की क्रियाओं का भी प्रयोग कर लिया गया है। अन्त से खंडित होने के कारण इसका लिपिकाल भी अज्ञात है।

संख्या १८१. कवित्त, कागज—देशी, पत्र—५४, आकार—८ × ५३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१०६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुवर दयाल जी, स्थान—रजौरा, डा०—मदनपुर, जि०—मैनपुरी।

आदि—कवित्त॥ पावस प्रवल पीअ पीवै न रटत जीव, दसही दिसान के से देस अव आए री। मोहन वताओ मन कैसे कठिन करौं, अवधि वितीत भई आली वरसा जु आएरी। मोरनि को सोर सुनि कोकिला की रटन दिन, पपीया की टेर सुनि मदन जगाए री। बूँदा आई वरसत गगन गेहरात आए, वैरी आए वादर विदेसी क्यौं न आएरी॥१६॥

किधौं मोर सोर करै अंतर को गये धाइ, किधौं झिलीगन बोलत नहै दई। किधौं पिक दादुर उहाँ फंदक ने मारि डारे, किधौं वक पाँति अंतर कौं भै गई। आलम कहत माई वालम न आए वर किधौं विपरीत रीत विधि ने उतै ठई। मदन महीप की दुहाई उहाँ फिरवे रही, जूझि परयौ मेघ किधौं बीजुरी सती भई ॥ १७ ॥

अंत—दामिनि जौं पट पीत लसैं धनु मोर किरीट अनूपम सोहैं। गाजत है धुन वाजत वाँसरी चात्रक चंद सखा सख जो हैं। सौतिन के परिहार हिए पय वूँद अखंड घने चित मोहैं। दोऊ इहे घन स्यामन में भटु देषि उठै भेदति को हैं ॥ १५१ ॥ गूँजेंगे भौंर तिन्है ओढ़ेंगी सुगंधन सौं, कोकिला की कूक चोंच रतन मढ़ामेंगे। फूलेंगे केसू एकु संधन कों देषिके, सेवती गुलावन के वागन लुटावेंगे ॥ मांगेगे जावक सोई·········(अपूर्ण)

विषय—श्रृंगार रस विषयक कुछ कविताओं का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में आलम, देव, पद्माकर, कालिदास तथा अन्य कई श्रृंगार रस के कवियों के कवित्त तथा सवैयों का संग्रह किया गया है। प्रायः सभी छंद वियोग श्रृंगार से सम्बन्ध रखते हैं और उत्तम भी हैं। खेद है संग्रह की प्रस्तुत प्रति का लेख अव्यवस्थित है। उसमें मात्रा, विराम और पंक्ति का कुछ ध्यान नहीं रखा गया है यद्यपि ऊपरी देखने में यह अच्छा लगता है।

संख्या १८२. कवित्त, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—११५२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लाड़ली प्रसाद जी, स्थान व पो०–बलरई, जि०–इटावा।

आदि—काली कहाँ देर करी चली क्यों न जाय माय, मोहि जो सतावै ताहि भक्षि जाउ कालिका। तु है कालरानी कालरूप की निशानी माय, तो सों न कहौं मेरो कौन रक्ष पालिका। क्रोध भरी जाउ माय शत्रु को जराय जरै, वरै चिता वीज दुसमन को को वालिका। माधौं परदेसी सरन आयो है तुम्हारे मातु, दुसमन के वंस को चवाय जाइ कालिका। मेरे होंय चुगिल चिन्हैं चून चून चाटि, चट्ट करदे चपट्ट चट्ट पट्ट एक राति में। मेरे होंय द्रोही तिनके रुधिर को भक्षण करि येही वरदान वर पाऊँ हर वात में। भवानी भवतारन मोसे पतित को उवारन है। संकट निवारन हाथ गहि लीजो हाथ में। कहैं कवि सीस नाय शंभु की सौगंद माय, मारो शमशेर सूल शत्रुन के गात में॥

अंत—माँगत माँगत मान घटै अरु प्रीति घटै नित के घर जाये। ओछे की संगति बुद्धि घटै अरु क्रोध घटै मन के समझाये॥ वैरी घटै वल वाहन सौं परिवार घटै कुल ओछति आये। कोटि उपाय करो सजनी अव काल टरै नहिं ओषदि षाये। नखविनु कटा देखे सीस भारी जटा देखे, जोगी कनफटा देखे छार लायें तन में। मौनी अनबोल देखे सेवड़ा सिर छोल देखे, करत किलोल देखे वन खंडी वन में। वीर देखे सूर देखे गुणी और क्रूर देखे, माया के भरपूर देखे भूलि रहे धन में। आदि अंत के सुखी देखे जन्महू के दुखी देखे, परिवेन देखे जिनके लोभ नांहि तन में।

विषय—विभिन्न कवियों के विभिन्न विषय सम्बन्धी कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह की रचना और वर्णनीय विषयक्रम को देखकर यह धारणा हुई थी कि उक्त संग्रह सिरसागंज निवासी प्रभुदयाल कवि की कविताओं का है, परन्तु ग्रंथ का अधिक अवलोकन करने पर यह धारणा निःसार सिद्ध हुई। यद्यपि इसमें कुछ छंद प्रभुदयाल के हैं अवश्य, पर अन्य कवियों के भी छंद कम नहीं हैं, जैसे पद्माकर, देव, केशवदास, गंग, नंद आदि। संग्रह कर्ता और रचनाकाल का कोई पता नहीं। ग्रंथ के आदि, मध्य और अंत के बहुत से पत्रे नष्ट हो गए हैं।

संख्या १८३. कवित्त, कागज—देशी, पत्र—८४, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२०१६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बौहरे गजाधर प्रसाद, स्थान—घरवार, डा०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—·········आवत ही ऊधों धाई ब्रजबाल सबै, श्याम को सँदेशो कछू कहियो रश्म को। पाती में लिखो सो मुख हू सों कह्यो, खर्च हू भेजो कछू व्याकुल चश्म को। कुविजा को त्यागिहि कैं हमारो त्याग न करै, गोकुल में जहाँ वसिवो रस्म को। तब सखी औ सहेली अलवेली के आगे, धरि लेउरी भस्मंती खर्च आया है खसम को॥ आनि दियो गुरु के सुत जानिके, भेष सुदामा किये छिन माहीं। देखि दुखी दल रावन को दई, लंक विभीषण को गहि बाहीं। साद को सागु सलौनो लगै जर—जोधन को पकवान न खाहीं। हाथी के हंक पै सिर्वण कियो प्रभु, मौनी भये कस वोलत नाहीं॥

अंत—घूँघट काहे को घालति हौ, हम घूँघट में कछु छींड़ि न ली हैं। जो मनमें उसवास करौ, तुम ठाड़ी रहो हम अंत चितइ हैं। जोवन गर्व करौ जिनि सुन्दरि, कालि परौं दिन चारि न रहिहैं। तूमहू न बनी रहिहो तिय·········तुम्हारे मिले वैकुंठ न जइहैं। सुगंध रंग चूनरी सुरंग रंग सों भरी, मनो आनंद की छड़ी वनी ठनी सतान में। लगो द्रगन नूप की दिवानी काम भूप की, उठी तुरंग रूप की अली गली वतान में। सुहाग भाग साज कें चलीं सिंघार राज कै, दुरे गुपाल भाजि कैं सो कुंज की पठान में। मुठी भरी गुलाल की निहारतीं खड़ी खड़ी हरी हरी पुकारतीं हरी हरी लतान में। स्वेत सारी स्वेत रूप की किनारी स्वेत ओढ़े, राधा प्यारी स्वेत सखियन के सँगन में। लाल बीरा लाल कंचुकी को हीरा लाल लाल, महँ···················(शेष लुप्त)

विषय—विविध कवियों के विविध विषय के छंदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रह के आदि और अंत के कई पत्रे खंडित हैं। इसमें प्रायः कवित्त और सवैयों का संग्रह है जिनमें प्रायः शृंगार विषयक वर्णन है। कुछ छंद भक्ति, विनय और गूढ़ार्थ विषय के भी हैं।

संख्या १८४. कवित्त, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८ × ५१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० इच्छाराम मिश्र, स्थान—कटहरा, डा०—सिरसागंज, जि०—मैनपुरी।

आदि—सिंह हिरानौ के वाहन सिरानो कि ध्यान धरे प्रभु को जपती हो। कैंकहुँ दानव युद्ध जुरै जहँ सोने के खप्पर लै भरती हो। कै कहुँ दासन कष्ट परै जहाँ अष्ट भुजा धरी के लड़ती हो। मोहि पुकारत वेर वही जगदम्ब बिलम्ब कहा करती हो। दीनी सिद्धि प्रगट प्रचंड है दियाल भई भेंटत ही पाप सब गए हैं विलाय के। अर्जी करैं ते ताकी तुरत सुनाई करी लागी न विलम्ब काम दीनो है वनाय के। मूरति विशाल छवि निरखि निहाल भयो रोम-रोम फूल रहे सुख सरसाय के। पाइन परैं ते मोइ दौलति दुनी की मिली मात बिन्दु वासिनी लियो है अपनाय के। कपट कराल और लम्पट लबार हूँ तो ओर ही तो पाप मैंने किए हैं अघाय के। वाहू का विचार कछु मन में न कीनौ आपु ते सब माफ करे पास ही बुलाय के। जन कर जोरि कहै राखियो हमारी लाज शत्रु के जो सीस पै चलाऔ खर्ग धाय के।

अंत—भाई सों भाई कहो सबसे आसनाई लहौ ऐसी काहै कमहि सो जगत सों इतरात हो। जीवन है वीस तीस चालीस औ पचास साठि सत्तर पचहत्तर से आगे नखटात हो। कहे दलसिंह सुख सम्पति परिवार सब साथी ओ आपने सब यहाँ ही छोड़े जात हो। कौन के भरोसे हरिनाम कों विसारि डारौ जीवन कितेक जापै जूना भये जात हो। हुआ क्रीट को मुकुट यहाँ मोर की लटक हुआ हाथ में धनुष यहाँ मुरली वजाई है। उहाँ अवध को वास इहाँ विन्द्रावन रहस, वहाँ सरजू सुहाई यहाँ जमुना सुहाई है। वहाँ रावन को मारौ यहां कंस को पछारो, वहाँ स्याम रामचंद्र यहाँ सामरे कन्हाई हैं। कहै लछमन ध्याई इन्हैं देत है वड़ाई सु इन्हैं स्याम रामरूप की इकट्ठी लूट पाई है। शशि को सो वदन जाको सरूप सव कारण के सो कुंदन की कील मानों डारहूते टोरी है। पूनों सी उजियारी मानौ कुसुम रंगगारी ओढ़े पीत पट सारी वह दिनन हू की थोरी है। कहिवे को नारी वृषभान की दुलारी श्री राम जू सम्हारी वह रुचि रुचि रंग चोरी है। अरी जसोधा रानी यह सनेह कैसो जु हों तेरो कुच्छन कारो मेरी राधा अति गोरी है।

संख्या १८५. कवित्त, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२४८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौधरी मलिखान सिंह जी, स्थान—कुरसेना, डा०—जसवंतनगर, जि०—इटावा।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ कवित्त लि० ॥ श्लोक ॥ काया हंस बिना नदी जल बिना दाता बिना जाचका। भ्रात स्नेह बिना कुल सुत बिना धेनेश्च दुग्धं बिना। दानं पात्र बिना निस ससि विना पुन्यं विना मानवा। एत सर्वं सोभिते किम परंवानी च सत्यं विना ॥ १ ॥ जोगी जोग बिना तपी वन वसा ॥ विद्या वसा पंडिता ॥ दातादान वसा न वसा नृपति छत वसा। वैद्योच कीर्ति वसा स्त्री मोहवसा ॥ क्रिया जल वसा ॥ प्रानंच धन्यंवसा ॥ एते सर्वं वसासुणा सवे दवेसु सर्वेसुवसा ॥ २ ॥ × × × अकल किठे गई छे थे कहो कान्ह गजी गई करो छोजी थांसों चुनरी देमुखी ॥ ६ ॥

अंत—तजिहैं ग्रहवास वन वास ही अवास करैं, धारैं व्रत मौन औ भवूति हू रमाई है। पहिरैं गलसेली अलवेली भुजमेली हम, पूरैं ध्वनि सृंगी औ अलख हू जगाइ है। लहै कर माल धृजवाल प्रभुद्याल हारि, एक चित्त धारि सार गोविंद गुण गाइ है। एकही अँदेस ऊधौं जाहि कहौ कृष्ण जी सौं, इतनी व्रजवाला मृग छाला कहँ पाइहैं॥ रावरे दोसुन पांइनि कौं, पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है। पाहन ते वरवाहन काठ कौ कोमल है जलधाइ रहा है॥ तुलसी सुनि केवट के वर वैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है। पापी है पांइ पषारि भलैं जू चढ़ाईये आयसु होति कहा है॥ दुख दारुण संकट मैंटन कौं............... [शेष लुप्त]

विषय—विभिन्न कवियों के विभिन्न विषय संबन्धी कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में कई कवियों के कवित्त हैं, परन्तु यह किसी क्रम विशेष को ध्यान में रखकर नहीं संग्रह किया गया है। संग्रह कर्त्ता एवं संग्रह काल का कोई पता नहीं चलता।

संख्या १८६. कवित्त चयन (अनुमान से), कागज—मूँजी, पत्र—२२, आकार—१०½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, अधिकारी गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—अथ फुटकर कवित्त लिख्यते। आजु हरि चाँदनी विलोकवे को रनुआँस, सिगरी बुलाईं मोद मंदिर में भरिगो। ताही समै सोभा को देषि देषि रघुनाथ, रीझि रीझी कछूना बषान मो पै करिगो। घूँघट खुलति दुलहैया के आनन ते, दसहू दिसान मैं प्रकास अैसो भरिगो। टारेगो गुमान सब सौतन कौ मेरे जानि, तरन समेत तारापति फीको परिगो।

अंत—मोर वारी पाषन की कलिगी विराजै सीस, अधर तमोलि वारे मानौ परवाल है। श्रीपति सुकवि कहे कोर वारे छोर वारे, भोरवारे वारिज से लोचन विशाल है। जोरवारे षल के मरोर वारे मद हरि, जसुधा किसोर वारे जाचक निहाल है। जाकी कोर वारे दुष दूरि करौ रोवा रे, दासन की वोर वारे साहिब गुपाल है।

विषय—इसमें निम्नलिखित कवियों के शृंगार रस के सवैया और कवित्त संगृहीत हैं। कई कवियों की रचना उत्तम और अप्राप्य हैः—१—रसलीन २—देव ३—अमान ४—कविहरि ५—कालिदास ६—ठाकुर ७—पदमाकर ८—मोहन सुकवि ९—किसोर १०—वैनी ११—कवि नायक १२—कविन्द १३—भूषण, १४—कवि दूलह १५—सुकवि दयाल १६—मुरलीधर १७—कवि बोधा १८—सूरत सुकवि १९—उधोराम २०—गंग २१—जसवंत २२—गुनवन्त २३—देवकीनन्दन २४—भारथ २५—व्रजचन्द २६—रसखान २७—परमदास २८—भूधर २९—आसानन्द ३०—पूरनचन्द ३१—कवि महराज ३२—कासी ३३—दासन।

विशेष ज्ञातव्य—यह प्राचीन कवियों का एक प्राचीन संग्रह है। इसमें कई एक कवियों की रचनाएँ ऐसी हैं जो अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। कालिदास और मोहन सुकवि की

कविता प्रस्तुत संग्रह में अधिक है। एक कवित्त इसमें भूषण का भी आया है। संग्रह महत्वपूर्ण है।

संख्या १८७. कवित्त लिलहारी, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—८½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० इच्छाराम मिश्र, स्थान—करहरा, डा०—सिरसागंज, जि०—मैनपुरी।

आदि—सोवत मोहि जगावत हो पिय सोय रही कछु वानि पड़ी है। जा लोक में लाज तुम्हें न काहू की कौनसी वात पै टेक गही है। नैनन नींद समाइ रही तवै अवै रसरीति सव विगड़ी है। वारहि वार चलावत हाथ कहा मेरी छाती पै थैली धरी है। (२) सूरज छिपैं अदरी वदरी अरु चाँद छिपै दिन मावस पाये। भोर के होत ही चोर छिपै और मोर छिपै नल के पग पाये। जोगी के भेष अनेक धरौ औरु कर्म छिपै नहि भभूत रमाये। केसोहि घूघट मार सखी जे तो चंचल नैन छिपैं न छिपाये॥ (३) एक दिना श्री द्वारिका नाथ विचारि के प्रीति की रीति निआरी, घटी वृषभान लली नटिनी वनि आय गये गिरधारी॥ बरषान कली नटिनी वनि आप गये गिरधारी॥ द्वार पै बैठि पुकार करी विछुरे को मिलाव महै हम प्यारी। लीला गुदायो सखी हमने हम हैं ललिहार की गोदनहारी॥ (४) रितु पावस आस लगी सजनी भरि नैननु भेंटों कुंज विहारी। लसे घनस्याम झुके बदरा वुदियाँ जो परै मनु लागु कटारी। पपिया नल कानन कूक करै मेरी सूनी सेज अगार से झारी। श्याम बिना कल नाहिं परै सो अरे ललिहार की गोदनहारी॥

अंत—सामल रंग हतौ हरि को जैसे घटा निस भादों की कारी। गोपी ग्वाल सखा सव संग में कुँजनु रास रचो वनवारी। गोपिन संग विहार करे, अरु जाय करी कुविजा घर वारी। श्याम विना कल नाहिं परै सो अरे लिलहार की गोदनहारी॥ काम हमारे जहे सजनी परदेशी सही हम हैं रुजिगारी। तुम जेहि कहो सम सोई करै तेरे रोमउरोम पै गोदे मुरारी॥ शाम घटा वृखवान लली तुम हो बड़े भूप की राजदुलारी। देहो कहा मुख से जो कहो हम हैं ललिहार की गोदनहारी॥ देहो हार हजारन के दुलरी तिलरी हँसुली अति भारी। देहैं छला सब हाथन कै कगना बड़े मोल गढ़े हैं सुनारी। देहि आभूषण चोर सवै अरु पहरन की अपनी सारी। मोतिन माल अमोल वनी स्रो अरे ललिहार की गोदनहारी। हे रतिवाढ रही निसवासर आजु मिली मोहि मारग प्यारी। जाति कहो ओर वादि कहो अरु औरु कहो मन की गति न्यारी। देहो कहा औरु लेहो कहा इतना कहिके हँसि वाँह पसारी॥ आउरी आउ दिखाओ सुई सो अरे ललिहार की गोदनहारी॥

विषय—कृष्ण का भेष परिवर्तन करके राधिका के यहाँ लिलहारी बनकर जाना और राधिका से प्रेम पूर्वक मिलना।

संख्या १८८. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—२७, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी; प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी, स्थान व डा०—वकेवर, जि०—इटावा।

आदि— × × × चलन लगीरी फेरि पवन सुगंध भरी, गुंजरन भौंर मकरन्द मदमाते है॥ क्वैलिया कसाइनी कुहू कै लगी फोरे कान, कानन सुहावने पलास रंगराते है॥ ठौर ठौर ठाड़ी कचनार कलियान लदीं, करत अधीर मारवीर तीर ताते है। व्यथित वियोगी दैन कुंजन में हूकैं लगे, आवत वसंत विरहागिन सों आँते है॥ कुहूकन लागीं फेरि क्वैलिया कदम्बनि में, महकन लागी पौन अंवनि के मौर तें। गुंजरन लागी मंजु कुंज भौंर गुंजनि तें, लागो मकरन्द झरै विरछन झौरतें॥ मार मतवारो जग्यो जोगीन के जीय लगे, दौरन वियोगि निज भौन ठौर ठौरतें॥ आवत वसन्त भई अवनि नई सी लागी, फवन किशोरी लाल औरै और तौरतें।

अंत—पूरि मनोरथ वारि रही अरु तृष्ण तरंग उठैं बहुभाँती। मोह के भौंर चिंता तटतें झट धीरज वृक्ष उखारति जाती॥ प्रीति ही ग्राह बसै उहि मैं पुनि तर्क वितर्क परवीन की पाँती। आस अपार नदी तरि जानकौं लाल किशोरी की कौंन विसाँती॥२७॥ वारि तरंग सी आयुगती, अंग यौवन रंग सदा न रहैगो। केलिकला करिबो अबला संग प्रेमपग्यो कवलो निवहैगो॥ चिततें चंचल वृत्त वृती, छिन में सुख भोग को रोग गहैगो। ए मतिमंद किसोरी लला मन भौनहिं अंत तो काल ढहैगो॥२८॥ लै गयो लगाय जन कौन धन धाम संग, नीकै कै......................(अपूर्ण)

विषय—शृंगार तथा वैराग्य विषय सम्बन्धी कुछ कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक में शृंगार और वैराग्य संबन्धी कुछ कविताओं का संग्रह है। इसमें दोहा, छप्पय, कवित्त तथा सवैया छंदों का व्यवहार हुआ है। शृंगार संबंधी कविताओं में, नखशिख, षटऋतु रति, विपरीत रति, मुग्धादि नायिका व्यंग एवम् उपालम्भादि का साधारण और संक्षिप्त रीति से वर्णन किया गया है। छन्दों में कुछ छंद ऐसे हैं जिनमें कवि छाप नहीं है, किन्तु अधिकतर छन्दों में किशोरीलाला, लाल किशोरी एवम् किशोरी लला की छाप है। यदि बिना छाप के छंद भी जिनकी भाषा तुलना करनेपर उक्त छापवाले छंदों की भाषा से करीब करीब टक्कर खाती है, इसी रचयिता के रचे हों तो निस्सन्देह इस ग्रंथ के रचयिता किशोरीलाल ही हैं।

संख्या १८९. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—८८, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०५६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—सारख, डा०—वरनाहल, जि०—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ कवित्त संग्रह॥ दोहा॥ राम नाम मणि दीप धरि, दीह दैहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरै, जो चाहसि उजियार॥१॥ रामनाम को अंक निधि,

साधनता सब सून्य । अंक रहित सब सून्य है, अंक सहित दस गुन्य ॥ २ ॥ यथा भूमि सब वीज मय, नषत् नेवास अकास । रामनाम सव धर्म मय, जानत तुलसीदास ॥ ३ ॥ तुलसी रघुवर परम निधि, ताही भजौ निहि संक । आदि अंत निर्वाहिये, जैसे नव को अंक ॥ ४ ॥ हरि सो हित पै राषिये, किये कोटि परकार । मिटै न तुलसी अंक नव, नव को लिषत पहार ॥ ५ ॥ कवित्त ॥ श्रीराम कृपाल विराजत मध्य महा छवि धाम गहैं धनुवाना । वाम दिसा महिजा सुठि सुंदरि दक्षिन ओर लषन वलवाना ॥ तुलसी हृदय धरु ध्यान सदा भ्रम संसै त्यागि कहौं परमाना । चामर चारू लियै प्रभु के ढिंग सोभित वायु तनै हनुमाना ॥ ६ ॥

अंत—गोल गोल गुम्मज विराजैं चारु श्रीफल से, कैधों सुभ सम्पट से सहत करारे हैं । कैधों युग जोवन जवाहर से राखे रचि, कैधों मन मोहन के मन के पियारे हैं । भन पजनेस कैधों चकवा के चकुला से, सोहत विसाल धरे उलटि नगारे हैं । मानो जुग्म सुघर अनूप छविदार सुग्म, ऐसे कुच कंचुकी में राजत तिहारे हैं । बैठी तिया गुरु लोगनि में, रति तें अति सुन्दर रूप विसेखी । आयो तहाँ मतिराम सुजान, मनोभव सौं वढ़ि काँति उरेखी । लोचन रूप पियौही चहैं अरु, लाजन जात नहीं छवि पेखी । नैन नमाय रही हियमाल में लाल की मूरति लाल में देखी ॥ मलय पवन मंद मंद कै गमन लाग्यौ, फूलनि के वृन्दन तें मकरंद ढारने । कवि मतिराम चित चोर चारों ओर चाहि, लाग्यो चैत चंद चारु चाँदनी पसारने । अलिक की आली आली मैन कैसे मंत्र पढ़ि, लागी सव मालिनी के मान मद झारने । सुमन सिंगार साज सेज सुख साजि करो, लाज करो आज व्रजराज पर वारने ॥ पान की कहानी कहा पानी को न पान करै, आहि कहि उठति अधिक उर अधिकै ॥ कवि मतिराम भई विकल विहाल वाल, राधिका जि·········· (अपूर्ण)

विषय—विविध कवियों की प्रेम, भक्ति एवम् शृंगार रस के छंदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में भक्ति, प्रेम और शृंगार रस संबंधी पद्यों का संग्रह है । ये पद्य देव, मतिराम, केशव, तुलसी, पद्माकर तथा पजनेश आदि कई कवियों के हैं । संग्रह में प्रधानता शृंगार रस की है । कुछ छंद ऋतु एवं नख-शिख वर्णन के भी हैं । ग्रंथ में विषय निर्वाचन को महत्त्व नहीं दिया गया है । जहाँ जो छन्द रुचा है, वहीं वहाँ रख दिया गया है । संग्रहकर्त्ता ने अपने नाम का कोई उल्लेख नहीं किया है । ग्रंथ का अन्तिम भाग नष्ट हो गया है जिससे उसके रचनाकालादि पर कुछ नहीं लिखा जा सकता ।

संख्या १९०. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—२०, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० इच्छाराम जी मिश्र, स्थान—करहरा, डा०—सिरसागंज, जि०—मैनपुरी ।

आदि—कवित्त ॥ घृत विनु भोजन, पंथ विनु साथी ज्यों दल बिनु हाथी जो माली वनुमान है । कूप जैसे पानी विनु, कवि जैसे वाणी विनु, रायण विनु रानी ज्यों आदर विनु दान है । रस रस रीति विनु मित्र परतीत बिनु, ब्याह काज रीति विनु जों

सुघर विनु तान है। जरद जैसे केसर बिनु मुख जैसे वेसर विनु, प्यारी विनु रैन ज्यों सुपारी बिनु पान है ॥ १ ॥ चेत ने न चीतो वैसाष वृथा बीतो, औ जेठ ने न चीतो वीतौ अषाढ़ अवकाश में ॥ सावन सताई भादों निपट डराई, क्वार ख्वार करवाई वीते कातिक उदास में। मारग ने मारी पूस देही चूसि डारी दया माघ न विचारी फसी फागुन की फाँस में। बीते बार मास भये परम हुलास तव प्राण के निवास आये गेह मलमास में ॥२॥

अंत—पृथु से पारथ से पाँडवा परिछित से वाणासुर रावण से महि में मिला गये। कंस केसी दुर्योधन से हरिनाक्ष हरिन कछप से अपयश लगा गये। कहत हैं गुलाबदत्त वक्र शिशुपालहू से कालनेम काल की कला गये। ऐसो नर अभिमानी भलो फिरै मोह माया में बालि से बली बला बूला से बिला गये। केते भये यादव सगर सुत केते भये जात हू न जानै ज्यो तरैया परभात की। बल वैणु अंवरीख मानधाता प्रहलाद कहा लौं कथा कहूँ रावण ययात की। वेहू न वचन पाये काल कौतुकी हाथ भाति भाति सेना रची घने दुख घात की। चार दिना को चवाव कोई करै अंत लुट जैहै जैसे पूतरी बरात की॥ जानी नहीं बेद रीति साध सों न कीनी प्रीति पूजौं न विघ्न सिंभु जिम्भु परौ रहौ। द्रव्य को प्रकाश पाय खाय न खवाय जानौ ऐसौ अभिमानी, सो गुमान में भरौ रहौ॥ हिन्दुपति विप्र कहै पाछै पछितानौ सठ कीनौ नहीं काज सो अकाज में अरो रहौ। दीनौं न दान लीनौं न जहान जस आलस के पिंजरा में पारस धरै रहौ॥ तीरथ में न दान दयौ वृत्त कान भेद लयौ मानी न प्रतित देहु धरम से तरै रहो। स्वारथ कीयौ ना परमारथ लगाओ कछू विरथा गमाई दीनसमता धरै रहौ। खाऔ न खवाओ न बधाऔ कछू कूप पापी सरम धराम पद के नाम से तरै रहौ॥ सुनौ नाही भारत अखारत ही जन्म गयो हाथ पारस फिरि आलस करै रहो॥

विषय—विविध कवियों की कविताओं का संग्रह।

संख्या १९१. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५६०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लल्लूमल जी महेरे, स्थान—बाउथ, डा०—वलरई, जि०—इटावा।

आदि—× × × छोड़ि सबै झक तोहि लगै वक आठउ जाम यही जिय ठानी। जातहीं दैहैं दियाल लड़ा भरि लैहों लदाय यही जिय जानी। पैहों कहाँ से अटारी अटा जिनको विधि दीनी है टूटी सी छानी। जो पै दरिद्र लिलाट लिष्यो सो लिलाट तो काहू के मैंटे न जात अजानी॥ मन मोहन मोहनी रूप धरो वरसाने चले वनिके लिलहारी। वृषभान के धाम पै अवाज दई तुम लीला गुदाओ सबै व्रजनारी। राधे अवाज सुनी श्री कृष्ण को लियो वुलाई पठावन हारी। लै आवो वुलाइ हमारे घरै व्रज आई है आजु नई लिलहारी॥ उन जाइ जवाब कियो श्री कृष्ण से तुम्हैं वुलावती राधिका प्यारी। अपने करसों कर साथ लयो जहाँ वैठी हुती वृषभानु दुलारी। सिर पै जुडला सो उतारि धरो अरु जाय खड़ी पिय पास अगारी। तबहीं हँसि राधे जवाब दियो तुमहीं लिलहारी की गोदनहारी।

अंत—बालि समय जब ख्याल परे तब मातु पिता सविता रही बैंड़े। तर्ण विअंगम कामिन के वस गर्व गुमान रहे तन येड़े। आई सुपेदी केसनि पै प्रभु काल चढ़ो तब टेरि वड़ेरे। जानो नहीं तीनों लोक के ठाकुर तीनों पन गए तीनों बेड़े॥ हरि कों हरि नाम गहो निजु है नेचंत रहो घर बाहिर सों। गनिका अभिमान विमान चढ़ी हरि हाथी छुटायो हाथनि सों। प्रहलाद को नाम उवारि लियो गरजो नरसिंह जो पाखरि सों। उमराय कहै प्रभु यों भजिये जैसें चातुर को चित गागरि सों॥ आनि दियो गुरु के सुत जानि के भेस सुदामा किये छिन माहीं। देखि दुखी दल रावण को दई लंक विभीषण को गहि बाहीं॥ सादु को सागु सलोनो लगै जर जोधन के पकवान न खाहीं। हाथी के हूँक पै सिर्वण कियो प्रभु मौनी भए कस बोलत नाहीं॥ बंशी बजाय करी वनिता वक........... (अपूर्ण)

विषय—विविध कवियों द्वारा रचित विभिन्न विषय सम्बन्धी कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में विविध कवियों के रचे हुए विविध विषय संबंधी सवैयों का संग्रह है। संग्रह कर्ता के नाम धामादि का पता अज्ञात है और न यही जाना जाता है कि इसका संग्रह कब हुआ। विषयों का कोई मुख्य क्रम नहीं रक्खा गया है फिर भी अनेक स्थल पर विषय क्रम को भी समादृत किया गया है। संग्रह के मध्य में कहीं-कहीं कुछ कृष्ण लीलाएँ कथन की गई हैं। इसके आदि और अंत के बहुत से पत्रे नष्ट हैं। शांत और भक्ति रस संबंधी भी कुछ पद हैं।

संख्या १९२. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—४८, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५३६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री चौ० जनकसिंह उर्फ तिलकसिंह जी रईस, स्थान—जायमई, जि०—मैनपुरी।

आदि—दोहा॥ शुक शारद कुल सनकादिक दुर्वास। भक्त भये भगवान के, वजिया के विरवास॥ १॥ नारद कुवेर बलि बावन व पान किये, वारन क्रिया निधान दानी वके दान के। शुक सनकादिक औ दशाईस अंबरीक, अंबरीक व्यास औ मुनीश जू प्रसिद्ध वे प्रमान के। सिद्धि भई शारदा वसिष्ट भये महामुनि, सेवरी सनाथ भई ज्ञान गिरवान के। सो कवि शिवराम इन्द्र भोगी भये भाँग ही ते, भाँग ही ते, भाँग के भरोसे भये भक्त भगवान के॥ दोहा॥ भाँग मिरच भोजन करैं, रहे न एकौ पीर। या विजिया के योग सों, रोग न रहत शरीर॥ २॥

अंत—लखन लखन लाल खंजन सुखंजन ये, आये मन रंजन मो रंजन हरत हैं। जोरि जोरि जोरी चरैं विवश करावै सुधि, वसुधा सुता की जातें हीय हहरत हैं। कास कास देखे होत जारत अकाश बैठि, तारा पति तारापति ध्यान ना करत हैं। कोशत रह्यो सो पायो कोशपुर पून्यो आस, पुशर्नां प्रहार विनु मारग धरत हैं॥ तालन पै ताल पै तमालन पै मालन वृन्दावन वीथिन वहार वंसी वट पै। कहै पदमाकर अखंड रास मंडल पै मंडित उमड़ि महाकालिन्द्री के तट पै। छिति पर छानपर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाड़िली की

लट पै । आई भले छाई यह शरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजुहि कन्हाई के मुकुट पै ॥ वंगसि वितुंड दिये झुंडन के झुंड रिपु मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रपुरारी को । कहे पदमाकर करोरन कों कोवदये षोडशहू दीन्है महादान अधिकारी को । ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को । दाता जयसिंह दोय वातें तोन दीनो काहू वैरिन को पीठि और डीढ़ि परनारी को ॥ सम्पति सुमेर की कुवेर की जु पावै ताहि तुरत लुटावत विलम्ब उर धारेना । कहै पदमाकर सुहेम हय............... (अपूर्ण)

विषय—शृंगार, करुणा तथा शांत रसादि संबंधी विविध कवियों की रचनाओं का संग्रह ।

संख्या १९३. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) – ८, परिमाण (अनुष्टुप्)—११५२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० चक्रपाणि जी दुबे, स्थान व डा०-बलरई, जि०—इटावा ।

आदि—॥ विहरत मन मोदा पैं ॥ कहा इतरात जात अहो आवौ कहौ वात, सुनै मन कंठ सुख गात न समायगौ । थोरो वैस भोरे भाइ चोरें लेत लंक चित, कुंडल झलक हेरें हियेराहिरायगौ ॥ तुम कान्ह साँवरे सिधारि देषौ नेकु कुंज, मेरो गोरो कान्ह लषैं मन ललचाइगौ । ग्रीव की लटक मुर भौंह की मटक वीच, चीरा की चटकमें अटकि मन जाइगौ ॥ १ ॥ राधा हरि राधिका वन आये संकेत । पादर जपै ॥ आसा महो चरण रेणु जुषाम हंस्यां, वृन्दावने किमपि गुल्म लतौ सधीनां । यादुस्यजं स्वजन मार्य्यं पथंवहित्वा, मेजुर्मुकंद पर्षी श्रुति मिर्षि मृग्यां ॥ १ ॥

अंत—चतुर्भुज स्वामी पै ॥ सुपच पहरि यज्ञोपवीत कर कुसन धरैं तजव । कर्म करैं अघ परैं डरैं पुनि विश्व त्रास तव ॥ पुनि लिलार पद तिलक देय और तुलसी मालधरि । हरि हरि गुन उच्चरै पाप कुल कर्महि परिहरि चतुर्भुज वपु ॥ नीति अंतिज भयौ जव मुरलीधर सरनौ लियौ । तिहि पाछैं किन लागीयै जिन लोह पलटि कि कंचन कियौ ॥ १ ॥ आदौ त्रयो दुजा प्रोक्ता एवैं मंत्र सत क्रिया ॥ १ ॥ पहिलै दराय पुनि पानी में वुडाव फेरि छाल उचराय पथरान तर जार है । तेलहित पाय तामें आपहि जराय तातें, तकुवा छिदाय नाना विध दुष सौं दहै । फेरि जल माँहि आय लोंनहिं लगाय घाय, दाँततर आय पुनि टूक टूक ह्वै ठयै । हाय जग आयकैं अव सुषहि गमाय कें, सुवड़ा कहाय कें वड़े कलेस कौं सहै ॥ १ ॥ वेद शास्त्रान................. (अपूर्ण)

विषय—विविध विषयों पर कहे अनेक छंद ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में विविध रचयिताओं के कहे हुए अनेक छंद हैं । इसमें परशुराम, गदाधर भट्ट, गोकुलनाथ, मानदास, सूरदास, मुरारिदास, तुलसीदास, चतुर्भुज, मीराबाई इत्यादि कवियों के छंद हैं । हिन्दी के अतिरिक्त कुछ छंद संस्कृत के भी हैं और एकाध उर्दू के भी । इन्हीं में कुछ अन्य कवियों की रचनाएँ भी हैं । ग्रंथ के आदि और अंत के बहुत से पत्रे नष्ट हो गये हैं तथा मध्य के भी कुछ पत्रे लुप्त हैं ।

संख्या १९४. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५३६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मुं० बच्चनलाल जी, स्थान—चकवाखुर्द, डा०—बसरेहर, जि०—इटावा।

आदि—..............तात को सोच न मातु को सोच न सोच पिता सुरधाम गये को। सीय हरे को तौ सोच नहीं नहिं सोच हमैं वनमाहिं रहे को। वन्धु विछोह को सोच नहीं नहिं सोच जटायु के पंख जरे को। केवल सोच वही तुलसी एक दास विभीषण वाँह गहे को। सुगंध लगाय के ऊवि मरौ प्रिय जानत हौ तन की सुकुमारी। हार चमेली को नीक लगे प्रिय लाज करौ पहिरौं तन सारी। और अभूषण का वरनों प्रिय लागत पाँय महावर भारी। मेरे सुभाव को जानो नहीं रसखान कपूर मुलायम ताड़ी। एक सुंदरि नारि रचे विधना पियके हिय से कबहूँ निसरैना। तात सुभाव बड़ा हँसना बलदेव सनेह से चित्त मिलैना। चित्त मिलै मन हूँ न मिलै देहिया न छुवो कोउ लोग हँसैना। चातुर यार चलाक बड़े यह कारन नारि हँसै तो फँसैना।

अंत—नाम बड़ौ धनधाम बड़ौ जस कीरति हू जग में प्रगटी है। द्वार अनेक गयन्द झुमैं उपमा कछु इन्द्र से नाहिं घटी है। सुख साज अनेकन पाय मनोहर फूले रहें मन ही मन में है। तुलसी जग जीवन भक्ति बिना जस सुन्दरि नारि की नाक कटी है। जोवन में रस भींजि गये मग में तुम जात चली रेउतानी। अंचल से मुख ढाँकि चलो नहिं लोग हँसै विगड़ै कुलकानी। देखत जात चली मग मैं कुछ नैनन से हँस अंग जवानी। मुख से कछु बोलि दिये जबहीं तबहीं हमरो जियरा है विकानी। मगमें मुसकात चली सजनी हँसि नैनन से कछु घूँघट टारी। सारि सँवारि भली विधि से अँचरा पट से उर जोवन टारी। देखि के छैल गिरे गलियाँ विच जोवन की यह सुन्दर नारी। गौरी शंकर...

(अपूर्ण)

विषय—विविध विषय सम्पन्न विविध कवियों की कविताओं का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में तुलसी, दास, रसखान, बलदेव, गौरीशंकर, धीर, तोष, मतिराम और जगन्नाथ आदि कई कवियों की कविताएँ हैं। संग्रह कर्त्ता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। ग्रंथ का अंतिम भाग लुप्त हो गया है।

संख्या १९५. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—४८, आकार—$९\frac{3}{4}$ × $६\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३०४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९०७, प्राप्तिस्थान—श्री रघुवरदास जी, स्थान—सूरजनगर, डा०—नोगवाँ, जि०—आगरा।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः॥ अथ कवित्त संग्रह करत हैं॥ सुन्दर सदन सो सलिल में विराजमान, ससि की उगनि उत सोभा झिलमिल हैं। सुभ्र हैं वसन चारु चमक रुपैरी तारु, मोती हीरा हारु दोऊ देषौ एक दिल हैं। रुप के उजारे हरि नैननि के

तारे प्यारे । प्रीतम पियारी सो पधारे दोउ मिल हैं । चौसर चमेली चारु सेज में सुगंध सारु देषि ब्रज चंद जू कौं चंद रह्यो षिल हैं ॥ १ ॥ काँच की नहरि किती दर्पन के हौज करे, कोटि हैं फुहारे स्वै छूटति गुलाब हैं । तास के सिमांनां तहाँ मोतिन की झालरि है, हीरन के जरे बाँस कलसौं की जाव हैं । चौसर चमेली चारु चाँदनी विहार चित, दोऊ रिझवार रीझे सषी त्यौं बेताव हैं । त्रिविध समीर तहाँ छौर सौं विमल नीर, न्योंते ब्रजराज जू कौं मानौं महताव है ॥ २ ॥

अंत—एरे मनलोभी सुनि दौरि दौरि जातौ हुतौ, रूप कौ लुभायौ समुझायो हो दरद मैं । देत हौन चैंन मैंन आपवस करयौ नैंन, परयौ आनि अधिक विधि मयन मद मैं । अब फल पायौ मुसिक्यानि मैं फँसायौ भौंह, कसनि कसायौ लै मिलायौ रे गरद मैं । मारिकैं कटाछिन सौं वेधि तीषे कोइन सौं, चूरि करि लोइन सौं डारयो नेह नद मैं ॥ २५ ॥ किधौं उन देसनि घुमड़ि घन वरसत किधौं मकरंद पथ नदी नद भरिगे । किधौं पिक चातिक चतुर चकवाक उड़ि, किधौं मत्त दादुर मधुप मोर मरिगे । तूतौ कहै आवत हैं आए न अजौलौं आली, किधौं कामसर काम करतैं निकरिगे । किधौं पंचसर हर फेरिकैं भसम कीन्हौं, किधौं पंचसरहू के पाँचों सर सरिगे ॥ २६ ॥ इति ॥ मिती वैसाष सुदी एकादशी सम्वत् १६०७ ॥

विषय—विविध कवियों की विविध विषय सम्पन्न कविताओं का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में देव, पद्माकर, मतिराम, सुन्दर, रसखान, चतुर, आलम, कालिदास, सुजान, घनानंद, सूरति, रघुनाथ, परसराम तथा रिझवार आदि कवियों की कविताओं का संग्रह है । अधिकतर इसमें श्रृंगार रस की रचनाएँ हैं ।

संख्या १९६. कवित्त संग्रह, कागज—देशी, पत्र—४८, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०५६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामदत्त शर्मा, स्थान—वम्हनीपुर, जि०—इटावा ।

आदि—॥ कवित्त ॥ पैसा विनु माय कहै मेरे तो कपूत पूत, पैसा विनु वाप कहै कैसो दुखदाई है । पैसा विनु ससुर कहै विहाता को छोड़ि जाउ, पैसा विनु सासु कहै कौन को जमाई है । पैसा विनु कार वार चलत न कहूँ कौ, देहरी पै बैठि जात जो लुगाई है । कहत गंगा दास तेरी साहिवी अपार देखी, जाके घर पैसा आज ताही की बड़ाई है ॥ १ ॥ माँगत माँगत मान घटै और प्रीति घटै नित के घर जायें । ओछे की संगति बुद्धि घटे और क्रोध घटै मन के समझायें । बैरी घटै वल वाहन सौं परिवार घटै कुल ओछति आयें । कोटि उपाय करो सजनी अब काल घटै नहिं ओषदि षायें ॥ २ ॥

अंत—हुआँ क्रीट को मुकट यहाँ मोर की लटक, हुआँ हाथ में धनुष यहाँ मुरली वजाई है । उहाँ अवध को वास इहाँ वृन्दावन रहस, उहाँ सरजू सुहाई यहाँ जमुना वहाई है ॥ उहाँ रावन को मारो यहाँ कंस को पछारो, ऊहाँ श्याम रामचन्द्र यहाँ सामरे कन्हाई है । कहै लछिमन ध्याई इन्हैं देत है वड़ाई, सुइन्हैं स्याम राम रूप की इकट्ठी लूटि

पाई है ॥ १९० ॥ शशि कैसो वदन जाको सरूप सब कारण कैसो, कुंदन की कील मानो डार हते टोरी है। पूनों सी उजारी मानो कुसुम रंग न्यारी आढ़ैं, पीत पट सारी बुह दिनतुहू की थोरी है ॥ कहिवे की नारी वृषभान की दुलारी श्री, राम जू सम्हारी वह रुचि रुचि रंग बोरी है। अरी यसोधा रानी यह सनेह कैसो जुरो, तेरो कृष्ण कारो मेरी राधा अति गोरी है ॥ १९१ ॥ मुतियनु को मुकुट देषैं मुक्ति होत अपनी, कानन बीच कुंडिलस·········(अपूर्ण)

विषय—विविध कवियों की विविध विषयक कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ के संग्रह कर्त्ता ने अपना नाम प्रगट नहीं किया है। इसमें देव, ठाकुर, अनन्य, घनानन्द, पद्माकर, केशवदास, देवीदास, गंगादास, गुलाब, ग्वाल, गुपाल और हीरालाल आदि अनेक कवियों की रचनाएँ दी गई हैं। प्रायः उत्कृष्ट और निकृष्ट सभी श्रेणी के कवित्तों का संग्रह है। शृंगाररस का प्राधान्य होने पर भी अनेक अच्छे-अच्छे छंद शान्तरस के भी हैं और थोड़े-थोड़े अन्य रसों के भी। छंद प्रायः कवित्त और सवैया ही प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं एकाध दोहा भी दिया गया है। विषय क्रम का संग्रह में कुछ ध्यान नहीं रक्खा गया है।

संख्या १९७. काव्य संग्रह, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०५२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लल्लूमल जी शर्मा, स्थान—बाउथ, पो०—बलरई, जि०—इटावा।

आदि—·············पीउ-पीउ पुकारै ॥ ३ ॥ काम सतावत मोहि पिया जब आनि खड़ी हमहूँ दुआरै। हार हमेल गरे बिच सो का भामिन नैनन दिये कजारै। आकुल वात हृदय चहुँओर चितै जब कंथ विना सखी खात पछारै ॥ गौरिन मानत है पप्याघर पीउ नहीं पीउ पीउ पुकारै ॥ ४ ॥ सुन्दर नारि अटा चढ़ि कैं सखी प्रीतम की नित बाट निहारै। लै अरसी कर में सजनी वह मौतिन की सिर माँग समारै ॥ जात गरी विरहानल में अब काहेन कंथ हमैं निरवारै। गौरिन मानत है पप्याघर पीउ नहीं पीउ-पीउ पुकारै ॥ ५ ॥ कारीघटा नभ छाय रही सखी आए घरही नहिं कंथ हमारे। एक तो पीउ विदेश गए दूजे सखी विरहानल सारै ॥ भावै नहीं सखी हमैं निसि वासर नैनन सौं जल नीरहि ढारै। गौरिन मानत है पपिया घर पीउ नहीं पिउ पीउ पुकारै ॥ ६ ॥ तारे की ज्योति में चन्द्र छिपै नहिं भानु छिपै न घन बादर आए। जंग चढ़े रज पूत छिपैं नहिं और नीच छिपै न बड़प्पन पाए। चंचल नारि की चालि छिपै नहिं नेह के नैन न छिपत छिपाए। जोगी को रूप अनेग धरो फेरि कर्म छिपै न भवूति रमाए ॥ १ ॥

अंत—शशि कैसो वदन जाको सरूप सब करण कैसो, कुंदन की कील मानो डोरहू ते टोरी है। पूनो सी उज्यारी मानों कुसुम रंग गारी ओढ़े, पीत पट सारी वहु दिननु ही की थोरी है। कहिबे की नारी वृषभानु की दुलारी श्री, राम जू सम्हारी वह रुचि रुचि रंग बोरी है। अरी यसोधा रानी यह सनेह कैसो जुरो, तेरो कृष्ण कारो मेरी राधा अति गोरी

है ॥ २५ ॥ मुतियनु को मुकुट देखें मुक्ति होति अपनी । कानन वीच कुंडिल सरूप शशि टारों री । पंकज से नैन वैन कंठ कोकिला को सो, चतुरभुजी मूरति मैं, नित उठि निहारों री । जब से काली नाग नाथो तव से कृष्ण कारो, भयो पांइ को पद्म छुअत तीन लोक तारोंरी । एरी ग्वालि गँवारि तैनें न जानी व्रज की सारि, ऐसे कृष्ण कारे पै कोटि राधा उआरोंरी ॥ २६ ॥ केते भए यादव सगर सुत केते भए, जात हू न जाने ज्यों तरैयाँ परभात की । वलि वेणु अंवरीष मानधाता प्रहलाद, कहाँ लौं कथा कहूँ रावण ययात की । येहू ना वचन पाये काल कौतुकी के हाथ, भाँति भाँति सेना रची घने दुख घात की । चारि दिना को चवाव कोई करै अन्त लुट जैहै जैसे पूतरी लुटि जात है बरात की । जानी नहीं वेद रीति साध सों न कीनी प्रीति, पूजे नहीं विष्णु सिंभू जिम्म में परयो रहौ, द्व्य को प्रकास पाय खाय............ (अपूर्ण)

विषय—विविध कवियों की विभिन्न विषय संबंधी कविताओं का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में कुछ सवैया और कवित्त संगृहीत हैं । संग्रहकार तथा उसके संबंध की अन्य बातों का परिचय इससे नहीं मिलता । संग्रह के आदि अंत और मध्य के बहुत से पत्रे लुप्त हैं । लिपि भी इसकी अशुद्ध है । अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ की गई हैं ।

संख्या १९८. कवित्तों का संग्रह, कागज—देशी, पत्र—५, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्यामलाल जी भटेले, स्थान—कुतकपुर, पो०—मदनपुर, जिला—मैनपुरी ।

आदि—.........चढ़ि कैं गिरिन्दै पांउ मसकि कपिन्द कूद्यौ, सैल गो पताल वायु लाल आयो पार है । नाद को सुनाई अंगदादिन को मोद छाइ, बैठो आइ सीस नाइ कीसन मझार है । जानकी निहारि आयो कह्यौ लंक जारि आयो, मारि आयो रावन के वीर वेसुमार है । सुनि हरिषाइ सबै जीवन सों पाई तहाँ, उठि उठि धाइ धाइ भेंटे वार वार है । आगें करि हनुमान चले वलवान सवै, आइ मधुकानन में कीन्है मधुपान है । दधि मुख कीस को कहा न माने मोद खाने, अतिहि अघाने पुनि कीन्हे पयान है । आए कीस नाथ पास परम हुलास छाये, पौन पूत कियौ काज कीन्ह या वषान है । मिलि कैं सुकंठ तिन अति उत्कंठित है, गौने तहाँ जहाँ बैठे भानु कुल भानु है ॥

अंत—कामिनि कैं वन कोयल कूक लगी मनु सांग हिए विच आड़ी । पापी खद्योत उड़ाय चहुँ दिसि पावक की चिनकी जनु छाँड़ी । दरकीं तव छोह भरीं छतियाँ प्रभुद्याल नदी अँसुवान सौं वाढ़ी । रोवति जोवति कंथ कौ पंथ निहारति वाल अटा पर ठाढ़ी ॥ आए हैं मेघ भरे वदरा लखि चन्द्र मुखी दुति अंगन वाढी । सोलै सिंगार करैं मुख मंजन लैकर में जल कंचन झाड़ी । प्रभुद्याल पिया नव जोवन वाल भई रुचि काम कलानि पै गाढ़ी । अटान चढ़ी डुपटान की ओट घटान की चोट लखैं धन ठाढ़ी ॥ तरुवर जो होते तरु वर पति झार होते, अंवा जो होते वीरहा लहू रखवावते । पंडित जन होते पंचिमी वताय

देते, गुनी जन होते तो होरी तान गावते । आये न प्रान प्यारे परदेश को सिधारे, सोवा घिर को पीठि पै परेवा उठि धावते । आली री होती जो ऋतु वसन्त आजु तो यहाँ, हमारेहू कंथ प्यारे घर कों सिधारते ॥ × × ×

विषय—विविध विषयों के कुछ छंदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ आदि और अंत के कुछ पत्रों के लुप्त हो जाने के कारण खंडित है । इसमें कुछ छन्द हनुमान की वीरता के, कुछ भक्ति के और कुछ पावस तथा वसंत के हैं । छंदों में कहीं-कहीं शब्द छूट गए हैं जिससे वे न तो पढ़ने ही में ठीक आते हैं और न उनमें लालित्य ही रहता है । यह नकल करनेवाले के प्रमाद और अनभिज्ञता का कारण है । संग्रहकर्त्ता के नामादि का कुछ भी परिचय नहीं मिलता ।

संख्या १९९. कवित्तों की पोथी, कागज—देशी, पत्र—६४, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२८०, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० जगन्नाथ प्रसाद, स्थान—धातरी, पो०—तिलियानी, जि०—मैनपुरी ।

आदि—·········सीतापति रामचन्द्र रघुपति रघुराई । रसना रस नाम लेत संतन कौं दरस देत वै है सत मुषचंद मंद सुन्दर सुखदाई ॥ दसन चमक चतुर चाल अैन बैन द्रग विसाल भृकुटी मनु अनल पाई—नासिका सुहाई ॥ केसरि कौ तिलक भाल मानौं रवि प्रातकाल अवन कुंडिल झल मलात रति पति छवि छाई ॥ मौतिन के कंठ माल तारागन उर विसाल मानौ गिरि सिषर फोरि सुरसरि धसि आई ॥ सुर नर मुनि सकल देव सिव विरंचि करत सेव कीरति ब्रह्मांडषंड तीनि लोक छाई ॥ सामरो त्रिभंग अंग कांछे कटि अति निषंग मानौ माया की मूरति आपुही वनि आई ॥ सषा सहित सरजू तीर ठाढ़े रघुवंश वीर हरषि निरषि तुलसीदास चरनन वलि जाई ॥

अंत—वईती विरंचि भई वामन पगन पर, फैली फैली फिरी ईस सीस पैर सु गथ की । आइ कैं जहान जन्हु जंघा लपिटाइ फिरी, दीननु के लीन्है दौर कीनी, तीनि पथ की ॥ कहै पदमाकर सु महिमा कहाँ लौं कहैं, गंगा नाम पायो सही सवके अरथ की । चारों फल फली फूली गह गही वह वही, लहलही कीरति लता है भगीरथ की । जैसें नैन मोकौं कहूँ नैक हू डरात हुतो, ऐसें अवहौं हूँ तोहि नैकहू न डरिहौं । कहै पदमाकर प्रचंड जौ परैगो तो, उमंडि करि तोसौं भुज दंड ठौंकि लरिहौं ॥ चलो चलि चलौ चलि विचलिन वीच ही तैं, कींच वीच नीच तो कुटुंब कौं कचरि हौं ॥ ऐरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंगा की कछार में पछार छार करि हौं ॥

विषय—भक्ति, श्रृंगार, प्रेम एवं राम, हनुमान और गङ्गादि पर कहे गए कुछ छंदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के आदि, अन्त और मध्य के बहुत से पत्रे नष्ट हो गये हैं । पोथी का जितना अंश उपस्थित है उसके आदि में रामचन्द्र संबन्धी गो०

तुलसीदासकृत एक पद दिया गया है। फिर बिना किसी क्रम का ध्यान रखे भक्ति, प्रेम, श्रृंगार तथा हनूमान और गंगा आदि विषयक कवित्त एवं सवैया हैं।, संग्रहकर्त्ता के नाम आदि का पता नहीं चलता।

संख्या २००. कवित्तों की किताब, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—५२८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री पं० श्रीराम जी दुबे, स्थान व पो०—भदाना, जिला—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ कवित्तों की किताब ॥ कुंदन को रंगु फीको लगै झलकै अति अंगनु चारु गोराई। आँषिन में अलसानि चितौनी में मंजु बिलासनि की सरसाई। को विनु मोल विकाइ नहीं मतिराम लहे मुसिक्यान मिठाई। ज्यौं ज्यौं निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरैसी निकाई ॥ १ ॥ दूसरे की बात सूझि परति न ऐसी जहाँ, कोकिल कपोतन की धुनि सरसात है। छाई रहे द्रुम वहु वेलिन शोमतिराम, अलि कुल कलित अँध्यारी अधिकाति है। नखत से फूले है सुफूलनि के पुंज घन, कुंजनि में होत मनो दिन ही में राति है। वातन की वाट कोऊ संग न सहेली कहि, कैसे तू अकेली दधि वेचन को जाति है ॥ २ ॥ वा चकई को भयो चित चीत्यो चितौति चहूँ दिसि चापसी नाची। ह्वै गई छीन छपाकर की छवि जामिन्ह जोन्ह जनौं जम जाँची॥ वोलत वैरी विहंगम देव सु सौतिन के घर संपति साँची। वोलहु पियो जु वियोगिन कों सु लियो मुष लाल विशाचि पराँची ॥ ३ ॥

अंत—तरनि तनूजा तीर तीषे तप करिवे को, बैठो दिढ़ आसन कै पहुमी को नंदु है। भीषम भनत भी पराग मुष पंकज की, नषत धरे उर न नषत नरिन्दु है। सुर सुरताई को विहाय कै अरुन शसी, सुत भयेउ कीधो भौम भेंटत सुइन्दु है। सौतिन के मन दहिवे को अनल कन कीधों। गोरे भाल तेरेई ईंगुर को विंदु है ॥ ३१ ॥ पहिले तजि आरसु आरसि देषि घरी कु वसै घनसारहिलै। पुनि पौंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगौछे में आँछे अंगोछनि लै ॥ कहि केशव में हजवादि सो साजि येते पर आँषि में आँजन है। वहुरौदुरि देषौ तो देषौ कहा सखि लाज तौ लोचन लागि यहै ॥ ३२ ॥ इति कवित्त समाप्तम् ॥दोहा॥ तनिक कंकरी के परैं, नयन होत बेचैन। वे वपुरे कैसें जियहिं, जिन नयन में नैन ॥ तिंय तरुनाई मलय तरु, अहि लपटे यहि हेत। वे सूखे वे चलि वसे, छाँड़ि कैंचुरी सेत ॥

विषय—केशव, देव, मतिराम तथा भीष आदि कवियों के श्रृंगार रस संबंधी कुछ कवित्त तथा सवैयों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में कुछ श्रृंगारी कवियों के रचे कवित्त तथा सवैयों का संग्रह है। संग्रह किसी भी नियम विशेष से आबद्ध नहीं है। जहाँ जो छन्द रुचिकर प्रतीत हुआ वहीं वह लिख लिया गया है। इससे विदित होता है कि संग्रहकार ने समय-समय पर सुने हुए छन्दों को याद कर लिया होगा और फिर स्मरण शक्ति से लिख लिया होगा संग्रहकर्त्ता का नाम, समय तथा अन्य विवरण अप्राप्त है।

संख्या २०१. कवित्तों की किताब, कागज—देशी, पत्र—६६, आकार—१० × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० गौरीशंकर जी, स्थान—लभौआ, पो०—शिकोहाबाद, जिला—मैनपुरी ।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः ॥ कवित्त लिष्यते ॥ एक ओर उज्जव मरालन की पाँति सोहै, एक ओर मंजुल कदंवन के मूल है । एक ओर मज्जन मुनीसन के वृन्द करै, एक ओर फूले अरविन्दन के फूल है । एक ओर पूजन विधान वेद पाठिन को, एक ओर चारु वनितान के दुकूल है । एक ओर भौंरनि के पुंज गुंजरत भारी, शूल को हरैया मैया कालिन्दी को कूल है ॥ राम कृष्ण रघुपति हरे, दयासिंधु भगवान । सीतापति यदुपति कहत, कव चलि जैहैं प्रान ॥ जौ सदा जीतो चहौ षट वर्ग वड़ौ अपवर्ग को चाहत द्वार है । जौ श्रुति सम्मति में विसवास तरो चहौ जो भवसिन्धु अपार है ॥ जौ महिमा जग वीच में चाहत जौ चित योग विराग विचार है । तौ सुष कंद चराचर वृंद भजौ रघुनन्द कौ नाम उदार है ॥ १ ॥ विष्णु के पाइन तें प्रगटी जेहि शंकर आपने सीस पै धारे । ब्रह्म कमण्डल वीच वसी श्री भागीरथ जू महि में अवतारे ॥ मज्जन जा में मुनीस करैं मुकताहल से झलकैं जलधारे । केवल गंग तेरे विचार अपार सुरापिन पापिन तारे ॥

अंत—डारि द्रुम डारन विछौना नव पल्लव के, सुमन झँगूला सोहै अति छवि भारी दै । पवन झुलावै केकी कीर वतरावै देव, कोकिला हिलावै हुलसावै कर तारी दै ॥ पूरित पराग सों उतारा करैं राई लौंन, कंज कली नायिका लतान सिर सारी दै । मदन महीप जू को वालक वसन्त ताहि, प्रात हिय ल्यावत गुलाव चुटकारी दै ॥ एक ओर वीजन डुलावति चतुर नारि, दूजी ओर झारी लिए ठाढ़ी जलपान की । पीछें से खड़ी वीरा षवावति पवासिन है, राधे मुख लाली भई जैसे तड़तान की ॥ ताही समै वंसीधर वांसुरी वजाई तव सुधि आई वृन्द्रावन कुंजन लतान की । बाईं गिरी नींर वारी दाहिने समीप वारी, पीछे पान दान वारी आगे वृषभान की ॥ इति कवित्त ॥

विषय—श्रृंगार, भक्ति, विनय, ज्ञान तथा प्रेम संबंधी कवित्तों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—विविध कवियों का विविध विषय सम्पन्न यह संग्रह ग्रंथ किसके द्वारा कब संगृहीत हुआ, इसका कुछ भी पता नहीं चलता । इसमें देव, पद्माकर, मतिराम तथा केशव आदि कवियों के कवित्तादि हैं ।

संख्या २०२. कवितावली, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—१० × ६¾ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०५६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुवर दयाल जी, स्थान—सिरसा, पो०—इकदिल, जिला—इटावा ।

आदि—चारिउ वेद पढ़े विधि सों, त्यों पुराण अठारह को नित गावै । मुक्ति के कारण पुन्य पहार हजारन वर्ष समाधि लगावै । कंचन दान सुमेर समान वड़ी सत संगति

में चित ल्यावै। हाथ उठाय कहौं सिग सौं तबहुँ रघुनाथ को भेद न पावै॥ उज्जल मकर पीठ आसन पदुम कीन्हें, उज्ज्वल दुकूल वर्ण उज्ज्वल सुहाई है। उज्ज्वल मुकुट पर सोहत किसोरचन्द, वंदत सुरेस सेस सिद्धि समुदाई है। करमें अभीत वर पंकज मनक कुम्भ, अंग अंग भूषण अपार छवि छाई है। गंगा जू को ध्यान जो विधान सों करत नीके, ताको देषि यम की जमाति डर खाई है॥ तीर तमालन की अवली, लवली लता कुंज वितान लसी है। योग करैं मुनि सिद्धि जहाँ, महा उज्जल वार की धार धसी है॥ चंदन माल मरालन के गन, सोहत कंज कली विलसी है। ताही को जन्म बड़ौ जिनके उर, गंग की मूरति मंजु वसी है॥

अंत—बसि गई नासिका में वदन सरोज वास, फँसि गई जीभि मे मिठाई ओठ सारे की। रसि गई रसरीति रसे रसे रोम रोम, डसे आवै कहर लहर जैसे कारे की। तसि गई गति एकै मन की अनेक संग, ऊधव विचारि देषो विपति विचारे की। कसि गई रति रूप कान में वंसो की तान, वसि गई आँषि में सुरति वंशी वारे की॥ दोहा॥ नहिं खंडित नहिं राहु डर, नहिं कलंक को लेश। पूरण वदन मयंक वलि, अलि मयंक ते वेश॥ कमल जाल पंकज सुभग, अरु चंपे की माल। उपमा लहत न अंग की, अति कोमल तन वाल॥ श्रम जल विन्दु कपोल पै, श्रुति कुंडल मृदु वैन। वा मूरति सूरति हिये विसराए विसरैन॥ कोमलता सव अंग की, लोचन की अलसानि। अजहूँ मो मन को हरै, तिय की मृदु मुसकानि॥ मृग मद तिलक..................(अपूर्ण)

विषय—भक्ति, प्रेम, विरह, वसंत, नख, शिख, नायिका भेद, सौंदर्य, हाव भाव तथा ज्ञान संबंधी विविध कवियों की रचनाओं का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के आदि के पत्रे लुप्त हो जाने से वह खंडित है। इसमें भक्ति, प्रेम तथा श्रृंगार संबंधी विविध कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं। साधारणतया चुनाव अच्छा है; किन्तु इस चुनाव में किसी विषय क्रम का समादर नहीं हुआ है। यद्यपि कहीं-कहीं एक विषय के चार छः छन्द एकत्र भी मिल जाते हैं, पर आगे चलकर फिर इसी विषय पर और छंद मिल जाते हैं। ग्रंथ तथा ग्रंथकार के विषय में कोई विशेष बात ज्ञात नहीं होती।

संख्या २०३. कवितावली संग्रह, कागज—देशी, पत्र—२२, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६६४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० महादेव प्रसाद जी कारिन्दा, स्थान व पो०—बसरेहर, जिला—इटावा।

आदि—किधौं मोर सोर करै अंतर को गये धाय, किधौं झिलीगन बोलत न हे दई। किधौं पिक दादुर उहाँ फंधक ने मारि डारे, किधौं वक पाँति अन्तर को भे गई। आल परुहत माई वालम न आए घर, किधौं विपरीति रीति विधि ने उतै ठई। मदन महीप की दुहाई जहाँ फिरिवे रही, जूझि परयो मेघ किधौं वीजुरी सती भई॥ २१॥ किधौं वाही देस में जु आई रितु पावस की, वोलत न मोर सोर कोकिला इतै गई। किधौं

वाही देस कों जु दादुर पिता लगे औ, झली औ पपीहानु सों करत नई नई ॥ किधौं वही देश मां जरा जरत और कहूँ, होती जो महीप इन्द्र वाकी गति यों ठई । किधौं वही देस लराई भई रा··············मारे गये मेघ वीजुरी सती भई ॥ २२ ॥

अंत—चलत चलत दिन बहुत भए सकुचत कतचित चलत चलायेई । जात हैं कहो नाहिनें मिलत आन जान जिआ छाड़ो मोह वढ़त वढ़ामेंई । मेरी सोंहत मेंहिहर वेह हो सुखें सुख मोऊ है तिहारी सौंह रहैं हों सुष पायेंई । चले हीं वनत जो पैचलियै चतुर पिया सोवत ही छाँड़ि जैहों जागेंगी हौं आयेंई ॥ तीखे तेग वाही गे सलाहीचढ़े घोरनिपै, शाही चढ़े अमित अरिंदन की ऐल पै । कहैं पद्माकर त्योंही हाथी पै निसान चढ़े, धूरधार चढ़ैं पाक शासन की शैल पै । साजि चतुरंग चमू जंग जीति वे कों जव, हिमत वहादुर चढ़त फर फैल पै । लाली चढ़ै मुख पै वहाली चढ़े वाहन पै, काली चढ़ैं सिंह पै कपाली चढ़ै वैल पै ॥ मंद मंद आवत दबावत··················(अपूर्ण)

विषय—विविध कवियों की कविता का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में विविध कवियों की विविध विषय सम्बन्धी कविताएँ संगृहीत हैं । संग्रह कर्त्ता ने अपना नाम प्रकाशित नहीं किया । इसमें प्रायः श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही प्रकार के वर्णन हैं । कहीं-कहीं सूक्ष्मतया कुछ छन्द शान्त एवम् वीर रस के भी लिख दिये गये हैं । षटऋतु, नखशिख, एवम् नायिका भेद आदि श्रृंगार के अनेक प्रकार के वर्णन इसमें दिये हैं । मतिराम, चिन्तामणि, आलम, दत्त, गिरिधर, देव और पद्माकर इत्यादि कवियों की रचनाएँ इसमें सम्मिलित की गई हैं । ग्रंथ के आदि, अन्त और मध्य के बहुत से पत्रे नष्ट हो गए हैं । संग्रहकाल भी अज्ञात है ।

संख्या २०४. ख्याल, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—८ × ५३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—११५२, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामकृष्ण शर्मा, स्थान—घरवार, पो०—जसवंत नगर, जिला—इटावा ।

आदि—················जो के इस दुनियाँ में अमीरी छोड़ फकीरी करते हैं । वो क़िस्मत से फ़कीरी में भी अमीरी करते हैं ॥ इसी मसल की एक रवायत तुम्हें सुनाऊँ सुनो अगर । एक घसियारा हो गया फ़कीर खुरपा झाड़ में धर ॥ जैसे घर दो रोटी मिलें थीं और नमक की एक कंकर । वैसे ही उसको सदा रव पोंहचाता जंगल अन्दर ॥ लिखे हर्फ़ तकदीर के जो हैं कवतागीरी करते हैं ॥ १ ॥ शाह वलख़ भी छोड़ सलतनत गया उसी जंगल के स्थांन । वना रखा था जहाँ उस घसियारे ने अपना मकान ॥ वादशाह से कहा यहाँ मत ठैरो दिल में अपने किया गुमान । शायद ले ले मेरी एक नान में से ये भी एक नान ॥ जो हैं वसर वे पीर हमेशे ही वे पीरी करते हैं ॥ वोकि० ॥ २ ॥ सदा फिर ऊपर से आई मैं जो हूँ दीवाना शाह । तो दीवाना तू भी है इसमें नहीं है कुछ इश्तवाह ॥ जैसे अटको ढूंढ़ हूँ मैं कोठे पर होके गुमराह । वैसे ही तू भी वादशाही में खुदा ढूंडे है आह ॥ शेर नहीं मिलना है गर मुमकिन शुतर का नाम पर हज़रत ॥

अंत—सजन नहीं है मेरे वस का । मकसवज्ह (?) उसे पड़ा पर नारी का चसका जब तलग थी मेरी नादानी । ना चढ़ी पिया को सेज प्रीति की ना, वो रीति जानी ॥ सखी मुझे छाई वाला जवानी । मेरा टपक टपक रस जाय कंथ करै अपनी मन मानी ॥ ॥ दोहा ॥ एक तो उमड़ै जोवना, दूजै चढ़ा विरै का तेह । आप तो सौतन घर रह पड़ा, सूनी हमारी सेज ॥ सजन नहीं अपने रंग रस का ॥१॥ ना सुद मो थी वाले पन में पीया हुआ ना अपना । सदगा दे गया जवानी पन में । सुन्दरी करत सोच मन में ॥ मैं वीरै अग्नि मै जलूँ जैसें दामिनी दमकै घन में ॥ दोहा ॥ ऐसी सुंदरि छोड़ि कै, किया पर नारी सैं सैन । घर सौं पर घर जाय नित, पिया करै सुख चैन ॥ छवाकर वो वंगला खसका ॥२॥

विषय—दो एक मसल की रवायत, विरह वेदना, अंग शोभा, श्रृंगार तथा उपदेश संबंधी कुछ ख्यालों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—इस छोटे से ग्रंथ में नख सिख सौन्दर्य, उपालम्भ, संवाद और ऋतु विरह वेदना सम्बन्धी कुछ ख्यालों का संग्रह किया गया है । यद्यपि ख्यालवालों का यह नियम है कि वे ख्याल समाप्त करते हुए प्रायः अपनी छाप अवश्य रखते हैं और यही नहीं कभी-कभी तो अपने अखाड़े के मुख्य-मुख्य सभी व्यक्तियों के नाम किसी न किसी रूप में दे देते हैं; परन्तु प्रस्तुत संग्रह में इस प्रकार किसी का भी नामोल्लेख नहीं हुआ है । इस संग्रह में आये ख्यालों में केवल दो या तीन कड़ियों से अधिक किसी भी ख्याल में नहीं है । कहीं-कहीं अन्तिम कड़ी अधूरी ही रह गई है । लिखनेवाले ने मात्रा आदि की अनेक अशुद्धियाँ की हैं । ग्रंथ के आदि और अंत के बहुत से पन्ने लुप्त हो गए हैं । मध्य के भी बहुत से पन्ने नहीं हैं ।

संख्या २०५, कीर्तन रत्नावली •(अनुमान से), कागज—देशी, पत्र—१९४, आकार—१४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२९, परिमाण (अनुष्टुप्)—६१११, खंडित, रूप—प्राचीन (सजिल्द), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि— × × × रामराम कली पीय संग रंग भरि किलोले; सबन को सुख देन पिय संग करत सेन चित में, जब परत चैन तबहीं बोलें । अति ही विख्यात सब बात ईनके हाथ नाम लेत कृपा करो अतोले । दरसि करि परसि करि ध्यान में हियमें रहे सदा व्रजनाथ इनके संग डोले । अति ही सुख करन दुख सबके हरन एही लीनो पर न दे जो कोलें । ऐसी जमुने जानि करो तुम गुन गान रसिक प्रीतम पाये अनग अमोले ।

अंत—राग सारंग तुमको छाक लाल ले आई । बहुत बेर के भूखे जानि के, जसुमति मात पठाई । वीच मिले मृग नाद विमोहित तिन यह ठौर वताई । चरन कमल के चिन्ह विलोकत मिस सब गयो भुलाई । ढिग आए सुनि वचन मनोहर आरति अति उपजाई । वेन नाद मृदु सुधा श्रवन धरि, विरहा अंग बढ़ाई । मुख निरखत अपने कर मोहन छाक तरे उतराई । मुख चुम्बन दे रसिक सिरोमनि ग्वालिन गरे लगाई ।

विषय—यमुना के गीत, पत्र १—१४ । गंगा जी के पद, पत्र १५—१७ । मंगला दर्शन (प्रातः ४ बजे) के गीत, पत्र १८—२१ । खंडिता के गीत, पत्र २२—३४ ।

चीर हरण लीला, पत्र ३५—४४। पुनः मंगला के गीत, पत्र ४५—४६। मुरली और अभ्यंग के पद, पत्र ४७—५०। श्रृङ्गार के गीत, पत्र ५१—५५। बन बिहार, फल फलारी, माटी घुटहवन के पद, ५६—६५। दामोदर लीला, दोहन, माखन चोरी, उलाहना, पनघट लीला, लग्न के पद, पत्र ६६—९७। भोग बीड़ी, कुञ्ज-निवास, राधिका-मान, फूल-मण्डली, चन्दन, धोती और ऊपरने का श्रृङ्गार, वेणुनाद आदि के पद, पत्र ९८—११२। रूखरी, पनघट, पत्र ११३—१२६। बाल लीलाएँ, निकुंज लीला, गाय बुलाना, गोचारण के बाद कृष्ण का गृह आगमन, पत्र १२७—१४७। बड़े होने का श्रृंगार, ब्यारु के पद, दुग्ध पान, शयन-गीत, प्रेम के पद, पत्र १४८—१६५। रतिराग, विलास, मान के गीत, पोढिबे के पद, आसरे के पद, पुनः कलेऊ, नित्य कर्म के पद, श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के पद, १६६—१८१। टिपारे के गीत, सेहरा, भोजन बुलायबे के गीत, कुंज भोजन, व्रज भक्तों का भोज, भोजन ठंडा करने के गीत, पान खाने इत्यादि के पद, पत्र १८२—१९४। (अपूर्ण) निम्नलिखित भक्त कवियों के गीत दिए गए हैं:—रसिक प्रीतम, गोविन्द प्रभु, विट्ठल गिरधर (गंगाबाई), गदाधर (भारद्वाज गोत्र के विप्र), भगवान हित रामराय, व्रजजन, दामोदर हित, केसोदास, गोपालदास, विट्ठल विपुल, मदनमोहन, चतुर बिहारी, मुरली, धोंधी, विद्यापति, तानसेन, आसकरन, मुरारीदास, विष्णुदास, रामदास, स्यामदास, कल्यान, रसिक शिरोमनि, जगन्नाथ, कुँवर सैन, हरिनारायण स्यामदास, गंगादास, श्रीभट, व्यास स्वामिनी, कृष्ण जीवन लछिराम, हरिदास, विष्णुदास, अग्रस्वामी, मुरारीदास, मानदास, माधोदास, वल्लभदास इत्यादि। रेखांकित कवियों के पद संग्रह में बहुलता से आये हैं।

विशेष ज्ञातव्य—यह पदों का विशालकाय संग्रह महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। वैष्णव सम्प्रदाय के प्रायः सभी विषयों के गीत इसमें आ गए हैं। ब्रज गीतों की ओर हिंदी संसार का विशिष्ट रूप से जब ध्यान आकृष्ट होगा तब इस प्रकार के संग्रहों का उपयोग किया जायगा। इसमें ऐसे बहुत से पद हैं जो अप्रकाशित और अप्राप्य हैं। पदों के कुछ संग्रह जो प्रकाशित भी हुए हैं उनमें भी ये पद नहीं आये हैं। हाल में वैष्णवों में भी दो विचार धाराएँ होने के कारण कुछ पदों के संग्रह बम्बई और अहमदाबाद के मन्दिरों से प्रकाशित हुए हैं। ठाकुर सेवा, नित्यकीर्तन और उत्सवों पर गाये जानेवाले प्रायः बहुत से गीत इनमें आये हैं और इनका उपयोग भी मन्दिरों में होता है। परन्तु दूसरा पुराने विचारों का दल अब भी कट्टर है। वह प्राचीन ग्रंथों का ही प्रयोग करता है। जो ग्रंथ उसके पास हैं उनको प्रकाशित करने की बात तो अलग रही किसी को दिखाने में भी नाक-भौं सिकोड़ता है। इस संग्रह में अधिक गीत वल्लभ संप्रदाय के गवैयों के संकलित हैं। कुछ राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों के गीत भी संगृहीत हैं। विद्यापति के नाम से भी कुछ गीत आये हैं। यह विद्यापति कौन थे? इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता। सुप्रसिद्ध विद्यापति और इनकी भाषा में विशेष अन्तर है। पर केवल भाषा से ही निर्णय करना ठीक नहीं। मीरा के पद मारवाड़ में ठेठ मारवाड़ी भाषा में सुन लीजिए और ब्रज में विशुद्ध ब्रज भाषा में, बुन्देलखण्ड में ठेठ बुन्देलखन्डी में तथा पूरब में चीखी पूर्वी में। एक जगह

इस संग्रह में 'रुखरी' के पद आये हैं। इन गीतों में बन की ओषधियों और बूटियों का अच्छा वर्णन है।

संख्या २०६. कीर्तनसार, कागज—मूँजी, पत्र—१३२, आकार—९ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६४०, खंडित, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकर लाल समाधानी, श्री गोकुल नाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः रागदेव गंधार। श्री आचार्य जी को कीर्तन। आजु जगती पर जै जै कार। प्रगट भये श्री वल्लभ पुरुषोत्तम वदन अग्र अवतार। धनि-धनि माधव मास रे एकादशी कृष्ण पंछ गुरुवार। श्रीमुख वाक्य कलेवर सुन्दर, धरयो जगमोह न मार। श्री भागवत आत्मिक अंग जीनके प्रगट करन विस्तार। दुंदुभी देव बजावत गावत सुर वधु मंगलवार। पुष्टि प्रकास करे हैं भुवन पर जनहित जगत पुकार। आनन्द उमग्यो लोक तिहुँपुर जन गिरधर बलिहार।

अंत—गावत रामजनम की गाथा। दसरथ के ग्रह प्रगट भये हैं पूरन ब्रह्म सनाथा। आज प्रार्थना सकल भई है अब काज देव सब करिहैं। दुष्ट देवन सुखदायक भुव को भार ऊतारि है। भवन चतुर दस करत प्रसंसा भरो भाग्य रघुकुल को जांहि। नेति नेति निगम सब गावें सोई सुत कौसिल्या ले आहि। देत असीस सुत मांगद जन पुरवासी नरनारी। कौसिल्या नन्दन तुम देखो अगरदास बलिहारी। × × ×

विषय—१—आचार्य वल्लभ की बधाई के गीत, पत्र १—४८ तक।
२—जन्माष्टमी की बधाई, पत्र ४९—१०४ तक।
३—कृष्ण बाल लीला और रामनवमी की बधाई के गीत, पत्र १०५–१३१ तक।
निम्मलिखित पद-रचयिताओं के गीत संकलित हैं:—जन गिरधर, अष्टछाप के कवि, हरि जीवन, बलिदास, चरनदास, विट्ठल गिरधर, गोपालदास, विष्णुस्वामी, द्वारकेश, गोविन्द प्रभू, रसिकदास, मानिकचन्द, जन भगवान, श्री विट्ठल, माधोदास, हरदास, आसकरन, सगुनदास, ब्रजपति, वृन्दावन चन्द, वल्लभदास, अग्रदास, तुलसीदास आदि।

संख्या २०७. कीर्तन वानी, कागज—मूँजी, पत्र—१३२, आकार—१० × ९ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६०३०, खंडित, रूप—जीर्ण, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, अधिकारी गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—राग बसन्त। आज जनम दिन व्यास सुवन रितुराज वधावन आई। फूली चम्प चमेली नवेली सहेलनि संग सुहाई। पल्लव पीत रसात दुकूलनि भूषन फूल विकासौ। मनो करन कुसुम कृत भाजन सौरभ सार सुवासौ। मुक्ति लता वलिता पर रंजन विंजन सुधर पूजते। मोरे नूतरसू तन पर पिक थोर निकर कूजते। देखत केसरि फूलनि फूल नये सिर किसुंक जाते। मनहु हंसे अनुराग रसे मुखकारन ते भये राते। नृत्य कलाप अलापिन कोकिल सुक संगीत बजावै। वृत्ती स्वर मधु गुंजरी अनुसर मंजरी

जाइ सुनावै। वन्दन जीरनि सार सुगन्धनि चन्दनि सार निसारे। छिरकत सुमन समूह समाज सखीयनि सीर समीरे। झूमरे झोरनि पौरनि वन्दनि माल मराल निरागे। देत मनो कमल निकर भूर निठूर निपूर परागे। उदितहिं आनन्द चन्द सुधा रस भीजि वधू वन वेली। कृष्णदास हित फूलत छिन छिन झूलत इहि रस झेली।

अंत—रागनट। राधा प्यारी नैन तेरे मत्त जुग, अलि पिये मनो मकरन्द। वदन अंवुज पर उड़त मानौ, परे विविध वर फन्द। नील पट में मृगनि छवि धरे, रहत अति जु स्वछन्द। अकुलाय सम्भ्रम तें निकसि, मानो परेवा गुर छन्द। रति जगे अलसात घूंमत, भई अति गति मन्द। जै श्री दामोदर हित निरषि, निरषित भरे आनन्द॥ × × ×

विषय—राधा कृष्ण की शोभा, रूप, प्रेम, भक्ति, वृषभान वंशावली, राधिका और बरसाने की महिमा। निम्नलिखित भक्त कवियों के पद आए हैं:—कृष्णदास, अनन्य, सहचरी, किशोरीलाल, व्यास, लोकनाथ हित, प्रेमदास हित, वृन्दावन हित, रूपलाल हित, कुंजलाल हित जै श्री हित (हितहरिवंशजी), चन्द्रसखी, प्रेमदास हित, वृजपति हित, कृष्णदास हित, उदयलाल हित, लालदास, उदयचन्द हित, कमलनैन, दामोदर हित, व्रजलाल हित, उदय सखी, चन्द्रसखी, हित हरिवंश, मकरंद हित, नागरीदास, जोरीलाल हित, सुंदरदास हित, हित हरिलाल, हितअलि, गरीबदास हित, कुम्भनदास, व्रजजन दास हित, नन्ददास, सूरदास, कल्यान स्वामिनी, पत्र—१२—१०२। रासलीला विषयक गीत। हित हरिवंश, कृष्णदास हित, श्री दामोदर हित, रूप कुँवरि, व्यास स्वामिनी, सहचरिहित, ध्रुव हित, श्री कमलनैन हित, विहारिनदास, श्री रूपलाल हित, नागरीदास, श्री विट्ठल विपुल, श्री हरिदास, सिरसदास, हित मकरन्द, जै श्री हित (हित हरिवंशजी), विजय सखी, रूपहित, विहारीदास, हित अलि, हित माधुरी, हित व्रजलाल आदि। पत्र १०२—१३२।

विशेष ज्ञातव्य—यह पद संग्रह बहुत उपयोगी है। यह बड़ा भी है। इसमें बहुत से पद ऐसे हैं जो अन्यत्र अलभ्य हैं और बहुत से पद रचयिता भी नवीन आए हैं। जो नवीन जँचे हैं वे इस प्रकार हैं:—१–सहचरी २–लोकनाथ हित ३–प्रेमदास हित ४–चन्द्रसखी ५–कुंजलाल हित ६–उदयचन्द हित ७–उदय सखी ८–मकरन्द हित, ९–जोरीलाल हित १०–सुन्दरदास हित ११–हित अली १२–हित हरिलाल १३–गरीबदास हित १४–रूप कुवँर हित १५–विजय सखी १६–रूपहित १७–हित माधुरी।

ख्याल रखना चाहिये कि राधावल्लभी सम्प्रदाय के बहुत से शिष्यों की इसमें रचनाएँ हैं जो अप्राप्य और अज्ञात हैं। इस दृष्टि से संग्रह बहुत उत्तम है और साथ ही महत्व का है।

संख्या २०८. लतीफों की किताब, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२०, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री ठाकुर महिपालसिंह जी, स्थान—करहरा, पो०—सिरसागंज, जि०—मैनपुरी।

आदि—........(पृ० ४ से उद्धृत) विदून अकलि के कुछ नहीं होग॥ दूसरा लतीफा॥ एक अन्धे की औरत निहायत वदसूरत थी॥ वह वड़ाई के सवव कहा करती

अथ खुदा तूने मुझे इतना हुस्न दिया तौ खाविंद को अन्धा क्यों किया ॥ एक दिन अन्धा बोला मेरी आखें तो नहीं जो तेरी सूरति देखूँ । मगर इतना जानता हूँ । जो तेरी सूरति अच्छी होती तो अंधे के घर क्यों आती ॥ तीसरा लतीफा ॥ कहते हैं एक रोज अकबर बादशाह शिकार को जंगल में गया वहाँ एक जमींदार हल जोत रहा था ॥ और अपने गले में ढाल डाल रखी और उसकी आवाज भी अच्छी थी । अकबर बादशाह ने बीरवर से कहा कि यह आदमी निहायत वेवकूफ मालूम होता है । वीरवर ने कहा दुरुस्त अल्लानेबी इसकी अक्लमन्द है मुल्ला साहब वोले उसकी किसी दौलत मंद से आशनाई है ॥ वादशाह ने फरमाया कि इसका इम्तिहान क्योंकर लिया जावे ॥ यह सुनकर मुल्ला उसके पास गये और जमींदार से कहा भैया टालिया खाला सारुव जिंदा हैं या नहीं तुम तौ हमको क्या पहिचानते होगे हम तुम्हारे खालाजाद भाई हैं तुम जब बहुत सगैर मना थे हम नौकरी करने को चले गये थे ॥

अंत—॥ सत्रहवाँ लतीफा ॥ एक रोज वीरवर बादशाह के हजूर में जमीन देखता आता था ॥ बादशाह ने पूछा कि जमीन क्यों देखता है ॥ वीरवर ने कहा कि मेरा बाप जमीन में गुम हो गया है । उसको ढूँढता हूँ । बादशाह ने कहा अगर हम बता दें तो क्या दो ॥ वीरवर ने कहा कि आधा आपका ॥ इस बात को सुनकर बादशाह खामोश हो गये ॥ अठारहवाँ लतीफा ॥ अकबर बादशाह ने एक रोज नूर बीवी तवायफ से कहा कि जिस नाम के अखीर में वान का लफ्ज़ होता है, वह हरामजादा होता है ॥ जैसे—सारवान फीलवान, गाड़ीवान वगैरह । वह बोली हाँ महरवान सच है ॥ इति समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—अकबर और बीरबल संबंधी अठारह लतीफों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—इस पुस्तक का आदि का भाग नष्ट हो गया है । इसमें पहला लतीफा नहीं है, केवल एक अन्तिम वाक्य मात्र रह गया है ।

संख्या २०९. लावनी मोहना, कागज—देशी, पत्र—८, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० भीषम सिंह जी जमींदार, मौजा—हैवतपुर, पो०—सिरसागंज, जिला—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ मोहना की लावनी लिष्यते ॥ आधी रात दर्मियान हुआ एक सपना । लगा था चेटक हुआ है दिल दिवाना ॥शेर॥ गया था दक्खन को वतन छोड़ अपना । रतन कूप ऊपर आम मिली मौना ॥ जिक्र सुन लेना वटाऊ की । आस तन छोड़ी घरवार की ॥ राह ली उस्दा नग्र की । सुरत जो देखी मौना की ॥ खाक वहाँ हो गई दोनों की । प्रीति यों निभ गई दोनों की ॥ चौक शुरू हुआ ख्याल का । मौना ने प्रीत निवाही पिलाकर पानी । जल गई यार के साथ बात रख अपनी ॥ तख्त एक दिल्ली शहर मकाने । वटाऊ रहता था वहाँ ज्वाने ॥ ख्वाव में लगे इश्क वाने । तड़पती चली यार जाने ॥ एक दिन जो वटाऊ गया रंग महलों में । लग रही नींद सो रहा भूल गफलत में ॥ मौनी का हुआ ख्वाव मिली सपने में । खुल गई नींद जब पड़ी सोच दिल में ॥ मौना की खातिरी

करूँ मुल्कों में जहाँ मिलैगी मौना नारि मिलूँ दिली में सव ज्वान को फिक्र झुरन सव तन में। हो गया फजर तयार घड़ी एक पल में। नहीं दिल चैन दिन रैन तजा अनपानी। सव छोड़ दिया घर वार दिल पर वेठानी ॥ मौना ने निवाही प्रीति पिलाकर पानी ॥ जलगई यार के साथ वात अपनी रखलीनी ॥ १ ॥

अंत—देखी मौना की चतुराई। करके हिकमत ये वात बनाई ॥ सरासर झूंठ सच है आई। यार की फिर जाफत ठहराई ॥ यहाँ वुढ़िया झूंठी पड़ी सवों ने जाना। पंचों में बिगड़ गई वात हुआ था मरना ॥ ये कहैं छैल वटाहू पर वातहुन मौनी। खुश दिल से दे दो रजा विदा कर देना ॥ फिर करौ यहीं आराम फजर उठ जाना ॥ मैं अर्ज करुं महराज मान लो कहना ॥ तुम रखो गरीव का मान ब्यानकर अव छोड़ दिया घर वार वतन मैने अपना ॥ मैं तेरे षातर आया हुआ ॥ खूव किया मुल्कों में नाम वात सुन मौना ॥ तू करना दिल में याद लगी नित झुरनी। मौना ने निवाही प्रीति पिलाकर पानी ॥ ११ ॥ खूव मन माना सौदा किया। ग़म से जव लगा तड़कने हिया ॥ फज्र जद हुआ हुक्म ये......(अपूर्ण)

विषय—दिल्ली शहर के एक मुसाफिर का 'मौना' नाम्नी स्त्री को स्वप्न में देखकर मोहित होना, उसका सजकर नगर को जाना, कूप पर दोनों की भेंट होना और मौना का पानी पिलाना। मौना का मुसाफिर को अपने साथ घर ले जाना। सास का विलंब होनेपर रुष्ट होना और मौना का बहाना बना कर मुसाफिर को अपने मायके का ब्राह्मण बतलाना। सास का उसको बुलाकर खातिर करना। रात को सोकर उठनेपर सासु को बहम होना। पंचों के सामने मौना को सौगंध खिलाना एवं मौना को लज्जा रहना तथा मुसाफिर का फिर रहना।

संख्या २१०. महालक्ष्मी जु की कथा, कागज—देशी, पत्र—८, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—९०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुबर दयाल जी, अध्यापक, स्थान व पो०—जसवन्त नगर, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणाधिपतये नमः। अथ महालक्ष्मी जू की कथा लिष्यते ॥ दषिन दिशा विषैं एक मंगल सेन राजा होत भये। ता राजा के दो रानी होती भई। तिन रानिन के नाम कहत हैं। सुरभागा अरु दुरभागा होत भई। सो एक समय राजा रानिन सहित मस्लन पर वैठे हते। सो रानी सो राजा कहत भये कै रानी तुम्हारे भाव को वाग बनावत है। सो जाकी सोभा नंदनवन ते अधिक हू है तव रानी कहत भई के अहो महाराज बाग वने तो अच्छी है। तव कछुक दिनन में वाग तय्यार भयो। तव कछुक दिनन में वाग में सुअर पैठत भयो। सो वा सुअर ने वाग के विरछ उपटाई डारे। अरू फल खाई लये। तव वाग के रखवारे ने राजा सोभा आनि कही। कैसो महाराज हम नाहि जानत है। एक सुअर आइकै वा बाग में प्रापति भयौ है सो वाने वाग उजारि डारो ॥

अंत—तव तये सुरी भिछातैं आये। सो देख कै कही कै वावा मेरी मढ़ी में को है। वेटा होई तौ धर्म कौ वेटा है। अरु वेटि होई तो धर्म की वेटि है। तव रानी कहत भई।

तब तपसी देष के कहि कै बेटी तोको महालक्ष्मी की सराप है। अब तैं जा अपछरा की सेवा करीया। तब तोमें प्रसन्न हू है। सो तै जा रानी अपछरन की सेवा करि। तब महा लक्ष्मी रानी सों कहिके अरी दुष्टिन तै कहां है। अरी चिंडार तै जातरहु। तब अपछरन नै छिमापन करायो। तब महालक्ष्मी वरदान देत भई। तब सोरन काया भई। तौलों राजा सिकार षेलवे को आवत भये। सो राजा ने देषी सो घर को लै आवत भये। तब दोइ रानी जा व्रत को करत भई या प्रकार करकैं। जो जा व्रत को कहै। अरु कहावै अरु सुनै ताको महालक्ष्मी बड़ी सिद्धि देत है। अरु संतान देत है। अरु क्रोध सों रहै तो फल देत है। अरु बिना सिद्धि व्रत रहै तौ अविरथा है। इति श्री भविष्योत्तर पुराने महालक्ष्मी की कथा संपूर्ण समाप्त ॥

विषय--कथा रूप में महालक्ष्मी का माहात्म्य और पूजा का वर्णन।

संख्या २११. महोबे की लड़ाई, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—१० × ६$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—६६२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ला० बाला प्रसाद जी, स्थान—किटौत, पोष्ट—सिरसागंज, जिला—मैनपुरी।

आदि—अथ महोवे का युद्ध ॥ सवैया ॥ आपको वाहन बैळ वली वनिता हूँ को सिंह सदा डर पेखिकै। मूसे के उपर चढ्यो सुत एक तौ एक मऊर के उपर देखि कै ॥ भूषण हैं कवि चन्द्र फनिन्द्र के वैर परे सब ही ते विसेखि कैं। तीनो लोग के ईश गारैशि (? गिरीश) सो योगी भयो घर की गति देखि कै ॥ सुमरनी ॥ कण्ठे बैठो तुम कण्ठासुर जिव्हा वैठु सरस्वती माय ॥ जो जो अक्षर हमको भूले, माता कण्ठ बैठि कहि जाउ ॥ दहिने भुजापर भैरव बावा, बायें पूत अंजनी क्यार ॥ सन्मुख चौकी जगदम्बा की, जो संकट मा होय सहाय ॥ तैतिस कोटि देवता सुमिरो, और ईश्वर को सीस नवाय ॥ सांका गावों मैं वीरन को, यारो सुनियो कान लगाय ॥

अंत—बड़ी बड़ाई भई माहिल की, नीक बतायो नौ लखा हार ॥ दगी सलामी फिरि माड़ौं में, जीति के आयो करिंगा राव ॥ फिर खुलवाया देश राज को, पत्थर कोल्हू दीन पेराय ॥ लैकै खोपरिया उन दोनों की, बरगद पेड़ दीन लटकाय ॥ अनन्द बधाई बाजी माड़ौं में, घर घर होय मंगलाचार ॥ इहाँ की बातें इहइ रहि गई, अब आगे का सुनो हवाल ॥ लड़िका पैदा भे महुवे मा, रानी मलहना के गरभहिं मांय ॥ ब्रह्मा रंजित दुई भाई भे, नृप परिमाल के ये दोउ पूत ॥ ऊदल पैदा भे देवै के, सुलखे विरमा के भये पेट ॥ ऐस लड़ाई भई महुवेमा, सो हम गाई के दीन सुनाय ॥ इति श्री महोबे की लड़ाई समाप्त ॥

विषय—जेठ के दशहरा पर माड़ौंगढ़ के राजकुमार करिंगा का बिठूर में गंगा स्नान के लिये आना। उसकी बहन का नवलखा हार मँगाना। गंगा स्नान करके करिंगा का बाजार में हार तलाश करना। बाजार में उसका न मिलना। मायल से भेंट। उसकी सम्मति से महोबेपर चढ़ाई करना, और युद्ध होना। उसका जीतकर माड़ोपर पहुँचना और आनन्द मनाया जाना।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक आल्हा छन्द में लिखी गयी है। इसमें माढ़ो के कुँअर करिंगा की लड़ाई का वर्णन किया गया है। यह पूर्वी हिन्दी में लिखी गई है। इसमें प्रायः वीर और भयानक रसों का परिपाक हुआ है। अत्युक्ति का विशेष समादर किया गया है। कहा जाता है कि आल्हा में ५२ गढ़ की लड़ाइयों का वर्णन है। उत्तरी भारत में इस आल्हा का बड़ा प्रचार है और वह विशेषतःश्रावण - भादों में मेह की हलकी फुहारों के पड़ते समय बड़े आनन्द से गाया जाता है। प्रायः श्रावणी पर गाँव-गाँव में आल्हा का गायन होता है।

संख्या २१२. मानसागर, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—११ X ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२२९, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठाकुर भजनलाल जी, मुकाम—होछा, पोस्ट—राया, जिला—मथुरा।

आदि—श्री वल्लभ श्री गोविन्द प्रभु श्री कृष्णाय नमो ॥ अथ मान सागर लिख्यते ॥ राग सारंग ॥ मान मनायो स्यामा प्यारी, कहियत मदन दहन को नायक, पीर प्रीत की न्यारी; तूँ जु कहत हो······अब कहो कैसे रूसी; बिनुही सिसर रितु तमक ताम सत, तुव मुष कमल विधूसी; तेरो विरह रूप रस नागर, लीनी पलटि कछूसी; ते मैं हुती प्रेम की सम्पति, सो सम्पति किन मूसी; उन तन चिते आप तन चितयो ओ रूप की रासी; पीय अपनो नहीं होय सषी री ईस सेइये कासी।

अंत—नवल गुपाल नवेली राधा, नए नेह बस कीनो; प्राननाथ सो प्रान पियारी, प्रान पलट सो लीनो; विविध विलास कुला रस की विधि, उभय अंग परवीनो; अति हित मान मान तजि भामिनि, मनमोहन सुख दीनो; श्री राधे कृष्ण केलि कौतूहल श्रवन सुने जे गावे; तिनके सदा समीप स्याम नित तिहि आनन्द बढ़ावै; कबहूं न जाय जठर पावक जिनको यह लीला भावै; जीवन मुक्त सुर सो जग में अन्त परम पद पावै। इति श्री मान सागर संपूर्णम्

विषय—इस ग्रंथ में अष्टछाप तथा अन्य कवियों के उन गीतों का संग्रह है जिनमें राधा जी के मान करने एवं श्री कृष्ण द्वारा उन्हे मनाने का वर्णन है।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रह में एक ही विषय के पद संकलित होने से उपयोगी है। इसमें राधा जी के मान के ही गीत हैं। अष्टछाप के अतिरिक्त गोविन्द प्रभू, रसिकराय, कल्यान, दामोदर प्रभृति के भी कुछ गीत हैं।

संख्या २१३. मनिहारिनादि लीला, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—१८ × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—५७६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—वौहरे गजाधर प्रसाद, स्थान—धरवार, पो०—वलरई, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ मनिहारिन लीला ॥ है विछुआ दोउ पाँइनि में अरु नूपुर नो अति शोर कियो री ॥ श्याम के शीश पै सारी लसै अरु पैंधती घाँघर लाल

हो रोरी ॥ है दुलरी तिलरी नक बेसरि नवलख हार जड़ाऊ जड़ोरी ॥ देखो सखी यह कैसो वनी हरि ने मनिहारिन को रूप धरोरी ॥ १ ॥ नख सों सिख लौं सिंगार किये जब सुन्दर नारि को भेष धेरोरी । काच के जोर अमोल डला विच कान्ह सम्हारि के भेष किये री ॥ नारि की चालि पै चालि चलैं मुसिक्याय मनोहर............यो हरि ने मनिहारि को रूप धरोरी ॥ २ ॥ वीच मिली ललिता सजनी तिनके ढिंग मोहन जाय खड़ोरी । दीयो वताय कै भानु सुता ग्रह नाम सुनो हरि को जो वड़ोरी ॥ लाई हौं जोर सजाय सवै विधि वैन सुधा रस नैन भरोरी । राधे को जाय जवाव दियो हरि ने मनिहारि को रूप धरोरी ॥ ३ ॥

अंत—हेरति वाट रहति निसिवासर, आजु मिले मोहि स्याम पियारी । जाति कहौ और वादि कहो तुमरे, मन की गति है जगतेहु नियारी ॥ देहो कहा अरु लीहो कहा, इतनी कहिकैं उन वाँह पसारी । आउरि आउ दिखाउ सोई अरे, लिलहारी की गोदनहारी ॥ ३ ॥ एक दिना श्री द्वारिकानाथ विचारि के रीति की प्रीति न्यारी । वरषान लगी वृषभान लली नटवी वनि आपु गए गिरिधारी ॥ द्वार पै वैठि पुकार करी विछुरे को मिलावत हैं हम प्यारी । लीला गोदावो सखी हम हैं लिलहरि की गोदनहारी ॥ ४ ॥ कैसतो श्याम तुमारे सखी, कैसे लगो उनकी निजु प्यारी । कौन श्याम हतो हरि को अरु, काहे को तजी तुमसी घरवारी ॥ आपु तो खेल सवै विसरी तुम्हरो, दुख देखि भई मतवारी । काम तुम्हारे अनेक करैं सो, हम हैं लिलहारि की गोदनहारी ॥ ५ ॥ इति ॥ समाप्तम् शुभम् ॥

विषय—श्री कृष्ण की मनिहारिन, विसातिन, चीरहरण, वंशी तथा लिलहारिन लीलाओं का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—इस ग्रंथ में पाँच लीलाओं का संग्रह किया गया है । संग्रहकार के नामादि तथा समयादि का कुछ पता नहीं है । संगृहीत लीलाएँ एक ही कवि की रची नहीं हैं । उनमें से एक गौरीशंकर शाहजहाँपुरी की भी है ।

संख्या २१४. मेषादि दोषोपाय, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनष्टुप्)—६४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—लाला जगन्नाथ प्रसाद आढ़तिया, स्थान व पो०–जसवन्तनगर, जिला—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ मेषादि दोषोपाय लि० ॥ मेष लग्न १ पेट शूल क्षुधामंद सुष्क कंठ नेत्र पीड़ा अंग फूटणी होय । शाकिनी दोष कहिए जाकौ निवारण करै खिचड़ी अन्न २॥ दीवा चौमुखा ॥ रक्त पुष्प वड़े ४ पुतली १ सिंदूर की विन्दी करैं रक्त खप्पर में सव धरै ॥ पूर्व दिशा देय तौ रोग जाय ॥ १ ॥ वृष लग्न २॥ उदर पीड़ा संतान दोष उपजै अजीरण रहै मुख सूका रहै अर्द्ध दृष्टि देषै ॥ सन्निपात उपजै ताकौ निवारण करै ॥ दही भात स्वेत पुष्प बड़े ४ दीवा चौमुखा ३ अन्न की खिचड़ी सर्व पश्चिम मैं देइ दोष जाय ॥ २ ॥

अंत—कुंभ लग्नम् ॥ ११ ॥ साँकिनी दोष कहिये पुत्तली ४ मस्तक सिंदूर स्वल्प पेट चलै पेट शूल रहै नेत्र पीड़ा कफ होय स्वेत पुष्प सुहाली ॥ १४ ॥ भात पूर्व दिशा

देय ॥ ब्रह्म भोजन करै साँकिनी दोष जाय ॥ ११ ॥ मीन लग्नं ॥ १२ ॥ जोगिनी दोष कहिये उदर पीड़ा क्षुधा मंद रहै अंग टूटै आलस्य रहै ताकौ निवारण करै ॥ दीपक १॥ सप्तधान्य की खिचड़ी कृष्ण खप्पर पानी करवा मुख १ सुपारी १४ वड़े १४ जोगी का पात्र पूर्ण करै दाम ९ वड़े ६ सर्व उत्तर दिशा में देय तो रोग जाय ॥ १२ ॥ इति मेषादि द्वादश दोष विचार ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—बारह लग्नों के दोष तथा उनके निवारण के उपाय।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता का पता नहीं है। इसमें प्रायः बारह लग्नों के दोष और उनके निवारण के उपाय समझाकर लिखे गये हैं। रचयिता लग्नों के विचार से प्रेत बाधा का होना मानता है तथा उतारे आदि से उक्त प्रेत बाधा का निवारण कैसे हो जाता है इसका उसने इस छोटे से ग्रंथ में वर्णन किया है।

संख्या २१५. नाम माला, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामलाल जी, स्थान—कौंढ़र, पोस्ट—जसराना, जि०—मैनपुरी।

आदि—॥ अथ ग्रंथ नाम माला लिष्यते ॥ धरि त्रिवेणी ध्यान सनान गंगा जाइ कासी। गया गोमती न्हाइ रहै गोकुल षटमासी ॥ नोउपर सातूं पुरी परसि चढ़े केदार। नाम समान नहीं कलजुग में निगम कहै निरधार ॥ १ ॥ करै जिग असमेद विपर लषकोटि जिमावै। प्रथीपर दषणा देहै सुमिरि पीछें फिरि आवै ॥ वेद जुगुति सारी करै, चूके नहीं लगार। नाम समान नहीं कलजुग में, निगम कहै निरधार ॥ २ ॥ हेम तुला गउदान भाण उगतैं कीजै। नारी कूंजर सेज दान निग्रह कन्या दीजै ॥ माणिक मोती पुनि करै ग्रहण होवतिवार। नाम समान० ॥ ३ ॥ सदाव्रत अनदेह करै, षटदरसण सेवा। पूजा सालगराम और नहीं दूजा देवा ॥ छपन भोग निति प्रतिकरै, पालै विधि आचार ॥ नाम समान० ॥४॥ कासी करवट लेइ ईस कूं सीस चढ़ावै। मगर भोज तप करै, अगिनि में देह जरावै ॥ गंगा सागर झाँप ले, मरै षड़ग की धार। नाम० ॥ ५ ॥ वनवासी वन जाइ सहै तन कष्ट अपारा। कंदमूल षण षाइ करै फल फूल अहारा ॥ सीत घाम सरि परि सहै, कसकै नहीं लगार ॥ नाम समान० ॥ ६ ॥ मुनि व्रत लै रहै दिगंबर दूधा धारी। उभै हाथ नष तुचा तपन सूं देही गारी ॥ जटा जूट षसष धरया, काया कसै अपार। नाम० ॥७॥ सींगी जटा वभूत जोग कूं दरसण दीजै। गिरिवर गुफा निवास, वास वनषड़ को कीजै ॥ चौरासी आसन करै रूँधै दसूं दुवार। नाम समान० ॥ ८ ॥ वरणाश्रम षट दर्शन और सव कीये भेषा, भगत वोध भगवंत जैन जिंगम अरसेषा। कवि ग्यानी पंडित गुनी नाना पंथ अपार। नाम समान नहीं० ॥ ९ ॥ नाना विधि के धरम करम करि, जगत भुलाना। भजन विना कछु नाहिं, फूल सेंवल को जाना ॥ ज्यूं सुवरो षालीरह्यो, अंतकाल की वार। नाम समान० ॥ १० ॥ ज्यूं कुंजर को षोज और सव षोज समावै। राम नाम जिन लिया धरम सव यामैं आवै। नाम लिया जिन सव किया कहै भागोत पुकार। नाम समान नहीं कलजुग में निगम० ॥ ११ ॥

अंत—कल जुग आयौ घोर चले नहिं वेद विकारा। राम नाम जिन लियो सोई सब उतरे पारा ॥ राम नाम नौका भई भौजल तारण हार। नाम समान नहीं कलजुग में निगम कहै निरधार ॥ १९ ॥ सील दया तप जोग देव तेतिस अराधा। अड़सठ तीरथ कीया नाम का साधन साध्या ॥ जैसें फौज ऊंरंदं संग जाना दूलहा लार। नाम० ॥२० ॥ ताते तंत नाम सूं लागो भाई। प्रेम भगति रुचि रुचि करो अधरम सब दयो है वहाई ॥ मनसा वाचा कर्मणा, सुमिरो आतमराम। आप तिरौ औरां कूं त्यारो, दास सरै सब काम ॥ २१ ॥ इति ग्रंथ माला ॥ संपूर्णम् ॥

विषय—श्री रामनाम की महत्ता का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की नकल कर दी गई है।

संख्या २१६. निगुरी सगुरी, कागज—देशी, पत्र—५, आकार—६३/४ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० भूपदेवजी, ग्राम—छौली, पो०—श्री बलदेव, जिला—मथुरा।

आदि—॥ अथ निगुरी सुगरी को पद ॥ हरिजन साकट नारी वार्ता वोहोत अड़ी ॥ कूप चढ़ी पणिहारि दोन्यूं झगड़ि पडी ॥ टेर ॥ बोली हरिजन नारि मोहि भरिलेणै देरी ॥ लागेगी तेरी छींट जाइगी गागरी मेरी ॥ तू पोछे भरि लीजियो हे कहा होति है वार ॥ एतौ जब सुगरी कह्यौ है जलि उठी निगुरी नारि ॥ १ ॥ बोली निगुरी नारी काहा ऐसो होइ आई ॥ अंति हमारी जाति काहा तेरे चतुराई ॥ तू पीछे भरि लीजियो री सब दुनिया भरि जाइ। जे तू भगतणि राम की री न्यारोइ कूप बनाई ॥२॥ तूतौ निगुरी नारि नांव हरि को नहि जाणै। हिरदै नहि हरि नांव आपणी बुद्धि वषाणै ॥ तू संगी जीवा जौणि कीहे चौरासी की देह। मोसूं झगड्यां क्या हुवा हे तू पहिले भरि लेह ॥ ३ ॥

अंत—बोली ताहित नारी नुगरी कूं कीनी झूंठी। सो कहै सोही राम सब ही कह ऊठी ॥ रीछ भील वंदर तिरयौ रामनाम ल्यौलाइ। तेरा आन देव सू कौन तिरयो सो एकोहि देव वताइ ॥ १५ ॥ हेलीरी नुगरी लागि पाइ सुगरी पै दीछया लीनी। जो जैसो उनमान आपसी उनकूं कीनी ॥ गुरुवेली मेला भया एयो होकर ग्यान विचारै। राम नाम प्रतापतै जीती हरिजन नारि ॥ १६ ॥ पद ॥ १ ॥

विषय—सुगुरी (कोमल हृदयवाली) निगुरी (कठोर हृदयवाली) नाम की दो स्त्रियों में कुएँ पर पानी भरते समय विवाद उठ पड़ा। सुगुरी नारी पहले पानी भरना चाहती थी। वह पवित्र और हरि को भजनेवाली थी अतः उसने शान्त होकर धीरे से निगुरी नारी से अपनी यह इच्छा प्रगट की। निगुरी नारी अपने स्वभावानुकूल उत्तेजित हो पड़ी। वह देव, पीर और गांगा को माननेवाली थी। हरिजन नारी ने अपना पक्ष समर्थन किया। इसी तरह निगुरी नारी ने भी। अंत में विवाद खतम हुआ और हरिजन नारी जीत गई तथा निगुरी नारी उसकी शिष्या बन गई।

विशेष ज्ञातव्य—इस ग्रंथ के रचयिता का नाम मालूम न हो सका। इसके बाद वाले (बारहमासी) ग्रंथ जो इसके साथ लिपिबद्ध है पढ़ने से कुछ ऐसा मालूम होता है

कि यह किसी रतनदास की रची हुई है। कविता भावमय न होकर उपदेशात्मक है। कुएँ पर पानी भरनेवाली स्त्रियोंके स्वाभावानुकूल समय-समय पर होनेवाले झगड़ा तथा विवाद का अच्छा चित्रण है। रचनाकाल तथा लिपिकाल नहीं दिये हैं।

संख्या २१७. नित्यपद, कागज—मूँजी, पत्र—११६, आकार—१४ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—५१०४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—संकरलाल समाधानी, स्थान—श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—श्री गोकुलेश जयति अथ नित्यपद लिख्यते ॥ प्रथम श्री आचार्य श्री गुसाईं जी के दीनता के पद लिख्यते ॥ राग भेरों ॥ जय जय जय श्री वल्लभ नन्द। कोटि कला श्री वृन्दावन चन्द ॥ वानी वेद न लहे पार। सो ठाकुर श्री अकाजू के द्वार ॥ सेस सहस मुख करत उचार व्रज जननी वन प्रान अधार। लीला ही गिरधारी सो हाथ ॥ छीत स्वामी श्री विट्ठलनाथ ॥

अंत—राग विहागरो। श्री वल्लभ लीजे मोहि उबार। यह कलिकाल कराल कठिन है, लागत है डर भारी। तृष्णा तरंग उर उत भव सिंधु में, डारत कितहू उछारी ॥ परत भमर ममता मद मच्छर, दाबे देत पतारि ॥ काम क्रोध मद लोभ माया जल जन्तु रहे मुख फारि ॥ चरणाम्बुज नौका नहि सूझे, वीच अविद्या पहार ॥ और कहाँ लौं करौ विनती, विधि न जात विस्तार ॥ चरण सेवक को सेवक कहेत, हे रसिक पुकार ॥ इति श्री नित्य की पोथी समाप्तं ॥ लिखतं लिखि गोकुल जी मध्ये ॥ श्री गोपाल कीर्तनिया ॥ ताके सार्गिद वल्लभने ॥

विषय—मंगलाचरण, जागरण के पद, कलेऊ, मंगलाभारती, विभास, गोसाईं गोकुलनाथ की भक्ति, पुनः जागरण, खण्डिता, मंगला आरती के पुनः पद, गंगा जी के गीत, खण्डिता के पद, पत्र १—२९ तक। ललित खण्डिता, बाललीला, दधिचोरी, जगायबे के पद, कलेऊ के गीत, जमुना माहात्म्य और शोभापद, जागरण, भारती श्रृंगार के पद, पद खण्डिता, पद बाल लीला, छप्पन भोग के गीत, पत्र ३०—९० तक। आसावरी, सम्मुख शोभा के पद, पद भोजन, पद छाक के, गोकुलनाथ जी का भोजन, ऋषि पत्नि की लीला, भोग सिरायबे के पद, राज भोग की आरती, फूल मण्डली, पद पनघट, पद खसखाने के। भागवत माहात्म्य, गीत गोविन्द की अष्टपदी, पद भोग के, पद टिपारें के, पत्र ९१—१६४ तक। गीत संध्या आरती के, पद गोदोहन के, पुनः सन्ध्या आरती, शयन आरती, राधामान, शयन आरती, बियारू, मान, दूध के पद, पद मुरली के, पद शयन एवं शयन आरती, मान, पोढिबे के गीत, बीन आश्रय के, पत्र १६५—२३१ तक।

छीत स्वामी, रसिक, श्री विट्ठल गिरधारी, रघुनाथ दास, कृष्णदास, दास गोपाल, चतुर्भुज, परमानन्द, सूरदास, जगजीवन, रामराइ, केशवदास, जनराय, गजाधर, नारायण नाथ, गोपालदास, भगवान हित रामराय, दामोदर हित, कृष्णदास, बिहारीलाल, व्रजपति, विष्णुदास, गोविन्द स्वामी, रसिक, श्री विट्ठल, सगुनदास, पुरुषोत्तमदास, नन्ददास,

स्यामदास, जन भगवान, वृन्दावन हित, आसकरन, अग्रस्वामी, श्री भट्ट, मुरारीदास, विट्ठल, चतुर विहारी, रसिक प्रीतम, गिरिधर, तुलसी, विहारीलाल, गदाधर मिश्र, श्री विट्ठल गिरधरन, कुम्भनदास, धोंधी, हित हरिवंसलाल, ब्रह्मदास, विष्णुदास, कृष्णजीवन लछिराम, कमल, हरिदास, आसकरन, श्री गोपालदास रसिक, जगन्नाथ कविराय, रामराइ प्रभू, चतुर बिहारी, कृष्णजीवन हरिकल्याण, सन्तदास, कल्यान, हरिनारायण, स्यामदास, गोपालदास, रामदास, रसिक, मदनमोहन, विद्यादास, मानदास, वल्लभदास, हरिदास, हित हरिवंस, स्यामदास, तानसेन, नागरिया, धर्मदास, जगजीवनदास, श्याम श्याम, विहारीदास, सूरदास, मदनमोहन, हरिनारायण स्यामदास, हरिदास, विष्णुदास, श्रीपति, पद्मनाभ आदि के पद इसमें ऊपर लिखे हुए विषयों पर संगृहीत हैं।

विशेष ज्ञातव्य—इस संग्रह में विशेषतया मंदिरों में होनेवाली नित्य ठाकुर सेवा के गीतों का संकलन है। मन्दिरों से तात्पर्य वल्लभ कुल के मंदिरों से है। क्योंकि और मंदिरों में सेवा का और क्रम हो सकता है। सबेरे ४ बजे मंगला के गीत गाये जाते हैं और फिर जागरण विषयक। इसी प्रकार दिन भर की दिनचर्या के गीत गायक लोग आज दिन भी मंदिर की पौली में गाते हैं और ठाकुर सेवा दो चार पुजारी करते रहते हैं। गायक पूजा का मुख्य अंग है। उसके बिना सेवा हो नहीं सकती। सब मन्दिरों में विशेष रूप से सब वाद्य-यन्त्रों के साथ गायक नियुक्त रहते हैं और कुछ मौखिक तथा कुछ हस्तलिखित ग्रंथों से देख-देखकर पद गाते हैं। जैसे ही आषाढ़ का महीना आया, पानी बरसा और बादल गरजा कि प्रत्येक मंदिरों में मल्लारों का गाना आरंभ हुआ। इन मलारों को सावन-भादों भर गाया जाता है। अष्टसखाओं के सब मलारों से लेकर अन्य प्राचीन पद रचयिताओं के निर्मित मलार भी गाए जाते हैं। कई मंदिरों में ऐसी भी प्रथा है कि केवल मात्र अष्टछाप रचित गीतों के और-और रचयिताओं के गीत नहीं गाये जाते। प्रस्तुत संग्रह में अनुमान से ८४ अथवा ८५ से अधिक गायकों के पद हैं। संग्रह में कई पद खोज में नवीन हैं। इसके अतिरिक्त कई पद रचयिता भी नवीन प्रतीत होते हैं। उनपर विचार होना आवश्यक है। रघुनाथदास, नारायण नाथ, जन भगवान, गिरिधर, ब्रह्मदास (? बीरबल), कमल, चतुरविहारी, सन्तदास, रामदास, मानदास, वल्लभदास, स्यामदास, धर्मदास, पद्मनाभ आदि खोज में नवीन प्रतीत होते हैं। इसमें सूरदास मदनमोहन के पद भी कुछ आए हैं। कुछ गीत मदनमोहन और विद्यादास ने भी मिलकर बनाए हैं। उनकी सम्मिलित छाप आई है।

संख्या २१८. नित्य पद, कागज—मूँजी, पत्र—८२, आकार—११ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०२८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री गोकुलेश जी का मंदिर, मु०—वल्लभपुर, पो०—गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—सुबल श्री दामा कह्यो सखन सों, अर्जुन संख बजाइये। घर जेबे की भई है विरियाँ, गिरधर लाल जगाइये। ठोर ठोर मधुर धुनि बाजे, मधुर मधुर सुर गाइए।

कुंज सदन जागे नंद नंदन, मोदक वीरा फल लाइये। वर हरिदास के पूरे मनोरथ, गोकुल ताप नसाइये। लटकृत आवत कमल फिरावत, परमानन्द बढ़ाइये।

अंत—घर आँगन पुर वन वीथनि अलवेली फिरे अलबेली। आज काल में ते यो लागति मानो भई मन मथ की चेली। संग सखीन के तजि तजि भजि है ह्वै है जाति अकेली। धोंधी के प्रभु को निरखि निरखावति, चाहत सुछवि नवेली। गोरस वेचन को रस जाने, जिनके गोधन खरिक वासरु क्यों नागरी मन आने। कमल नैन नेकु जात न निरखे सो क्यों जो जासो हठ ठाने। धोंधी के प्रभु जाहि सर्वसु मानो तिनसो इह मान मान न माने।

विषय—निम्नलिखित भक्त कवियों के भक्ति भाव भरे पदों का संग्रह। १—परमानंद, २—कुम्भनदास, ३—धोंधी, ४—हित हरिवंश, ५—सूरदास, ६—गोविन्द्र प्रभू ७—रसिक प्रीतम, ८—रामदास, ९—नागरीदास इत्यादि।

संख्या २१९. नित्य के पद, कागज—मूँजी, पत्र—१९४, आकार—१० × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप् छन्द)—२८८५, पूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण लाल खादी की जिल्द), लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री ठाकुर करन सिंह जी, मु०—जमनामतो, पो०—गोवर्धन, ज़िला—मथुरा।

आदि—अथ श्री कृष्णाय नमः॥ अथ नित्य के कीर्तन लिख्यते॥ राग भैरों घर प्रात समै उठ करिए श्री लछमन सुत गान॥ प्रगट भये श्री वल्लभ देत भक्ति दान॥ श्री विट्ठलेस महाप्रभु रूप के निधान॥ श्री गिरधर श्री गिरधर उदय भये भान॥ श्री गोविन्द आनन्द कन्द कहा वरनौ गान॥ श्री वाल कृष्ण वाल बाल केलि रूप ही सुहान॥ श्री गोकुलनाथ प्रगट किये मारग वखान॥ श्री रघुनाथ लाल देखि मनमथ लजान॥ श्री जदुनाथ महाप्रभू पूरण भये भगवान॥ श्री घनश्याम पूरन काम पोथी में ध्यान॥ पुंडरंग विट्ठलेस करत वेद गान॥ परमानन्द निरख लीला थके सुर विमान॥

अंत—राग विहागरौ भरोसो श्री वल्लभ को भारी॥ काहे को मन भटकत डोले जो चाहे फल चारी॥ श्री विट्ठल गिरधर सव बालक जगत कियौ उधारी॥ पुरुषोत्तम प्रभु नाम मंत्र दै चरन कमल सिरधारी॥ अरे मन श्री वल्लभ गुन गाय॥ वृथा काल क्यों खोवत है रे वेद पुरान पढ़ाय॥ श्री गिरराज चरन पैवे को नाहिन और उपाय॥ रसिक चरन सरन गहि चितई तऊ तन डुलाय॥ श्री वल्लभ सुवन श्री विट्ठलनाथ॥ रहु जैसे सरन संतत ग्रेहौ मेरो हाथ॥ परो आरत मैं पुकारों भव समुद्र के पास॥ रसिक विनती करे राखो चरन कमलन साथ॥ इति श्री नित्य के पद सम्पूर्णम् समाप्त॥ श्रीरस्तु॥

विषय—१ आचार्य महाप्रभु जी की प्रार्थना के गीत, पत्र १—४ तक। २—यमुना जी, गंगा जी, जागरण, कलेऊ, दधि मंथन, खण्डिता, मंगला आरती, व्रतचर्या, स्नान, श्रृंगार, खिलौना, चन्द्र प्रस्ताव सम्बन्धी गीत, पत्र ५—५२ तक। ३—क्रीड़ा, खेल, सम्मुख श्रृंगार, घुटरुअन चलना, माटी खाना, फलादि भोजन के पद, पत्र ५३—७९ तक। ४—दामोदर लीला, गोदोहन, माखनचोरी, उलाहना, पनघट का उलाहना, भोजन,

प्रथम मिलाप, कुंजों का जीमना, व्रज भक्तों के घर का भोजन, भोग ठंढा करना, क्रीड़ा, छाक, कुंज लीला, ग्रीष्मकालीन खस के बंगला, मान आदि के पद, पत्र ८०—११२ तक। ५—हिलग, पनघट, दान, लगन, मान, आरती, निकुंजों की गुप्त लीला, स्मरण, ब्रजवासियों का विरह, उत्थापन, गाय बुलाना, गाय आगमन, भोगसमय, शृंगार, पनघट, दान, मान, बाल लीला, मुरली आमर्नी, टिपारा, सन्ध्या आरती, दोहन, सम्मुख के शृंगार का वर्णन, व्यारू, दूध, पौढ़न, मान, मिलाप, विनती और गुसांई वल्लभाचार्य के जन्मोत्सव और प्रशंसात्मक गीत, पत्र ११३—१९४ तक।

निम्नलिखित पद रचयिताओं के पद इस संग्रह में आये हैं:—परमानंद, रसिक गोपालदास, नंददास, कुम्भनदास, ब्रजपति, गोविन्द, प्रभु, कमलनयन, छीतस्वामी, विट्ठल गिरधर, हरिदास, विप्र गदाधर, चतुरभुजदास, रसिक, प्रीतम, सूरदास, कृष्णदास, केशवदास, चतुर विहारी, विष्णुदास, श्री भट्ट, रामदास, जगजीवन, रसिकराय, व्यास स्वामिनी आदि।

इस संग्रह में सूरदास और कुम्भनदास के पद अधिक हैं। यद्यपि ग्रंथ कुम्भनदास जी के वंशजों के पास निकला है तथापि इसमें उनके दस या बीस से अधिक पद नहीं हैं। उनके कुछ गीत और दिये जाते हैं:—

॥ राग विलावल ॥ जो पै चोप मिलन की होई ॥ तो कित रह्यो परे मेरी सजनी लाखि करो किन कोई ॥ जो पै विरह परस्पर व्यापे जौ जिय कछू बनैं ॥ डरु अरु लोक लाज अपकीरत एकौ चित न गनै ॥ कुंभनदास जोइ मन लागी तो कित ओर सुहाई ॥ गिरधर लाल रसिक विन देखे पल भर कलप बिहाई ॥ राग सोरठ ॥ किते दिन हो गए विन देखैं। तरुन किसोर रसिक नंद नंदन कछुक उठत मुख रेखें ॥ वह सोभा वह कान्ति मनोहर कोटिक चन्द विसेखें ॥ वह चितवन वह हास मनोहर नागर नट भेखैं ॥ स्याम सुंदर सौं मिल खेलवे की आवत जिय उमेखें ॥ कुम्भनदास लाल गिरधर विन जीवन जनम अलेखें ॥

संख्या २२०. नित्य के पद, कागज—मूँजी, पत्र—१००, आकार—१०$\frac{१}{२}$ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१००, पूर्ण, रूप—प्राचीन (रेशमी पीली जिल्द), पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—संवत् वि० १८८७ (१८३० ई०), प्राप्तिस्थान—विहारी लाल ब्राह्मण, स्थान—नई गोकुल, गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः अथ नित्य के पद लिख्यते ॥ राग भैरव ॥ प्रात समें उठि करिये श्री लछमन सुत गान। प्रगट भये श्री वल्लभ प्रभू के देत भक्त दान। श्री विट्ठलेश महा प्रभू रूप के निधान। श्री गिरधर घरऊदे भयो भान। श्री गोविन्द आनन्द कंद कहाँ वरनो गान। श्री वालकृष्ण बालि केलि रूप ही सुहान। श्री गोकुलनाथ प्रगट कियो मारग बखान। श्री रघुनाथ लाल देखि मनमथ ही लजान। श्री जी नाथ महाप्रभू पूरण भगवान। श्री घनस्याम पूरन काम पोथी में ध्यान। पुण्डरंग विट्ठलेश्वर करत वेद गान। परमानन्द निरखि लीला थके सूर विमान ॥

अंत—जै जे वन्ती ॥ तोरों तो कन्हैया कारो मेरी राधा गोरी है। अति ही रूप मानो चन्द जैसी उजियारी, चम्पा कैसी कली मानो ढार सो उतारी है। संख चक्र गदा

पद्म पीताम्बर धारी है, ऐसे स्याम सुंदर पर कोटि राधा वारी है। उतते आए नन्द नन्दन इत वृषभान दुलारी है, राधा कृष्ण जोरी पर सूर बलिहारी है। ईती श्री नित्य के पद सम्पूर्ण ॥ समाप्तं ॥ मिती आसोज वदी ३० संवत् १८८७ गुरुवार ॥ श्री रस्तु ॥

विषय—	पद संख्या		पद संख्या
अथ आचार्य वल्लभ तथा गुसांई जी के गीत	११	घुटरुवन के गीत	६
श्री जमुना जी के गीत	१५	माटी के	२
जगायबे के गीत	१२	दामोदर लीला	७
कलेऊ	५	दुहिबे के	४
हिलग के गीत	६	छैया के पद	१५
दधिमथन	७	माखन चोरी	७
खण्डिता के गीत	५८	उराहने के	२०
मंगला के गीत	६	श्रृंगार	२५
अथ व्रतचर्या के	५	पनघट के	१२
न्हवायवे के गीत	२	दानलीला	१७
श्रृंगार	९	लगन के	२१
खिलौना	३	कुल्हे के	२
चन्दा प्रकाश	२	टिपारे के	२
खेलिबे के	४	सेहरे के	३
बलदेव जी के	३	भोजन बुलाइबे के	१०
बाल लीला	११	भोजन मिलने के	१२
भोग सरिवे के गीत	२	व्रज भक्तन के	६
बीड़ी के	४	दूध के	३
छाक के	२८	बीड़ी के	१
भोग सरिवे के	२	सयन समय के	४५
बीड़ी के	२	मान के	२२
राज भोग समै के	२६	मान छूटिवे के	३
कुंज के पद	१०	मान मिलाप के	१०
मान के	५	पोढ़िवे के	२५
बाललीला	५	ब्रह्माणी के	४
उलाहना	९	विनती के	२०
दान के	६	सोरठि गीत	७
पनघट के	६	जय जयवन्ती	२
उराहने के पनघट को	४	बाललीला, दान मुरली के	१२
खसखाने के	७	आवनी पूरवी के	३०

आरती	२	संध्या	२०
चंदन	२	संझा आरती सिंगार	३
फूल मण्डली	६	दुहिवे के पद	९
उत्थापन समै के	३	शयन समय के	३८
कुल्हे और टिपारे के	६	वियारु के गीत	१०
भोग समय के	१६	कुल गीतों की संख्या—योग	७३७

निम्नलिखित भक्तों के गीत इस ग्रंथ में आए हैं:—अष्टछाप के सब कवि, रसिक, विट्ठल, गिरधर, गोविन्द प्रभू, गिरधर, व्रजपति, हरिदास, गजाधर, आसकरन, सूरदास मदनमोहन, रसिक प्रीतम, दास गोपाल, केसव, विट्ठल विपुल, विद्यापति, जगन्नाथ, कविराय, विष्णु-दास, रामदास, माधोदास, हरिनारायण, स्यामदास, मदनमोहन, चतुर बिहारी, कल्यान, तानसेन, रामदास, रसिकराय, भगवान हित रामराय, आसकरन, हित हरिवंस, धोंधी, श्री भट्ट इत्यादि।

संख्या २२१. नित्य पद, कागज—सन का बना हुआ, पत्र—४१, आकार—९ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—७३४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री गोकुलेश जी का मन्दिर, स्थान—वल्लभपुर, पो०—गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—श्री वल्लभ चरन सरन जाय सब सुख तूँ लहिरे, रसना गुन गाइ गाइ दरसन परसाद पाइ, और काज लाग भागि वल्लभ रति गहि रे, रैन दिन चिन्तत रहों वल्लभ श्री वल्लभ कहि, इनही के रूप रंग इनही रस वहिरे; श्री विट्ठल गिरधर याही रस रहो भारी चाहना चाहे तो तुम ही चाप चहिरे; जय जय श्री वल्लभ नन्दन। सुर नर मुनि जाकी पद रज वन्दन॥ माया वाद कियो जु निकन्दन। नाम लेत काटत भव फंदन॥ प्रगट पुरुषोत्तम चरचित चन्दन। कृष्णदास गावत श्रुति छन्दन॥

अंत—कोऊ मैया वेर बेंचन आई; टेरि सुनत मोहन उठि दौरे, भीतर भवन बुलाई सूकत धान परयो आँगन में कर अंजुली बनाई; ठमकि ठमकि चलत अपने रंग जसुमति लेत बलाई; लिये उठाय चुचकारि हियो भरि मुख चुम्बन मुसुकाई; परमानन्द स्वामी अति आनन्द बहुत बेर जब खाई।

विषय—बाल कृष्ण लीला और भक्ति सम्बन्धी स्फुट पदों का संग्रह। निम्नलिखित भक्त कवियों के पद संगृहीत हैं:—१-श्री विट्ठल गिरधर २-दासगोपाल ३-छीत स्वामी ४-चतुर्भुज ५-सूरदास, ६-रसिक ७-गिरधर, ८-विद्यापति ९-भगवान हित राम राय १०-दामोदर हित ११-गोविन्द प्रभू १२-ब्रजपति १३-अग्रस्वामी, १४-बिहारीदास १५-नन्ददास आदि।

संख्या २२२. नुस्खों की पुस्तक, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२००८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य,

लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामचन्द्र जी वैद्य, स्थान व पो०—करहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—..................रोग नष्ट होइ। पिपरा मूल, इन्द्रजव, सींहुडवा, देवदारु, गुग्गुल, बायविरंग, भारंगी, दालचीनी, सोंठि, मिर्च, पीपल, चीता, कायफल, पुहकरमूल, राइसन, जैतकावीज, हरड, दोनों कटहली, अजवाइन, जटामासी, चिरायता, घुड़वच, वच, पाठा इनसे बीस द्रमों के काढ़े के पीये से सब सन्निपात, बुद्धिभ्रंग, पसीना, सीत का लगना, अनर्थक बोलना, सूल, अधोवायु के रुकने से पीड़ा के साथ पेट फूलना, हृदय का विस्फोटक, कफयुक्तवात, प्रसूता वायु के सब रोग नष्ट होते हैं॥ अर्कमूल जवासा, चिरायता, देवदारु, राइसन, कया जैतके बीज, सँभालू, घुडवच, अरणी, सहजना, पीपला मूल, पीपल, वच, चीता, सोंठ, अतीस, भंगरा इनका क्वाथ पीया भया दुःसह सन्निपात के ज्वरों कूं धनुर्वाय को, दाँतों के बंधकूं शीत से असह्य ऐसे सरीर के काँपने कूँ स्वांस कांस कूं और प्रसूता स्त्री के वात व्याधि कूं हरण करै॥

अंत—लोह अभ्रक ताँबे इनकी भस्म सुधापारा इन चारों की समान मात्रा दूनी गंधक इनको लोहे के पात्र में रख के वेर की समिधि की मीठी आग से पकावै पकाय के गायके गोबर से धरती को लीप कै उसपर केले का पत्ता बिछाय के उसपर ढाल दे और तुरन्त दूसरे पत्ता से ढक दे तब पंचामृत पर्पटी नाम से प्रसिद्ध रस होइ उसे वैद्यक की आज्ञा शुभ दिन से भक्षण करा करै तो संग्रहणी जाय॥ राजयक्ष्मा, अतीसार ज्वर प्रदर आदि स्त्रियों के पांडुरोग, विष का रोग, अमलपित्त अर्स रोग मंदाग्नि ये सब रोग विध्वंस होइ॥ बच, सोंठि, जीरो, मरिच विष जिसे वछना............(अपूर्ण)

विषय—विविध रोगों के विविध नुस्खों का संग्रह।

संख्या २२३. नुस्खों की पुस्तक, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—१० × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२००८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्री राम जी दुबे, स्थान व पोस्ट—भदाना, जिला—मैनपुरी।

आदि—अपरगि गंधगुर॥ जो ए अनूपान सों षाइ दिन ४१ तब गुन पावे अजवाइनि सों षाइ काया कल्प होइ॥ सोंठि सो षाइ बाई जाइ, मिरच सों षाइ जुरु जाइ, पीपरि सों षाइ भूष लागै॥ दही सों षाइ कूवति होइ पान सों षाइ बंधे जुर जाई षाँड सो षाई पित्तु नीको होइ सहत सों षाइ ताप जाइ गाइ के मठा सों षाइ जलंधर जाय गुर सों षाइ पीर जाइ देह की जाइ सीठी चामर के धोवन सों षाइ चिनगिया प्रमेह जाय। नीबू के रस सों षाइ जेहर नाहीं चढ़ै देह में जवासे की जर सों खाइ वेगि थमि जाइ॥ सुपारी सों षाइ अंग की सपेदी जाइ कारी छेरी के दूध सों षाइ ताप जाइ गाइ के मूत सों षाइ अजीत वर्नु जाइ गाइ के घीव सों षाइ तो तरुन होइ बूढ़ आदिमी भंग सों षाइ बंधेज होइ तिल सों षाइ तो कलपु होइ वार सुफेद ते स्याम होहि जीरे सों षाइ नामर्द मर्द होहि पुष्टि अधिक होहि॥ चूरन वा पुष्टि को॥ गुजराती इलायची २५ लौंगें २५ नाग केसरि २५

वेर की मींगी २५ साठी की षील २५ प्रीयंगु २५ चंदन २५ रक्त चंदन २५ मिश्री २५ सवनि को पीसि मिलाइ षाइ काहिली जाई भूष पुष्टि होइ ॥ चूरन पुष्टि को दूसरो ॥ नाग केसरि तोले १ दालचीनी तोले २ लाइची दाने तोले ३ मिरचै ४ पीपरि ५ सोंठि ६ मिश्री २५ मिलाइ षाइ वलु पुष्टि होइ ॥

अंत—॥ चीतोरी की ओषदि ॥ छोटी कटेरी की जर मासे तीनि अँडि आइनि ३ छुआरे ३ षुरासानी अजवाइनि ३ वंसलोचन १ जमाल गोटा १ जेको अंक हे ते मासे लेके पुराने गुर में साने गोली करै २१ वनाव प्रात समय षाइ ता पाछे दूध भात षाइ ॥ मलमल चितोरी की ॥ मोम सिंदुर रार मुरदासंग मस्तंगी तूतीया कथा बराबर लैकें पीसै कडुए तेल में डारै अच पेपक के कपड़ा पै लपेटै जषम पर लगाकै नीको होइ जषम ॥ दवा बवासीर की ॥ अनार की छालि कारी मिरचैं बरावरि लेवे डारि कैं पीवै दिन तीनि नीक होइ ॥ दूसरी सोरा कलमी पीसि कैं जंगल की राह में लगावै रगरै और आगि पै डारिकैं धूनी देइ दिन ३॥ रार मिसुरी सुहागा गंधक भेड़ के दूध में लगावै पीसि कैं तो दादु नीक होइ ॥ रसकपूर तोले एक १) इकईस लौगें पान इकईस लैकें गोली बनावै इकईस एक रोज षाइ चीतोर नीक होइ ॥ दवा षासी की पापरी कथा त्रकुटा वहेरा का वकला.........(अपूर्ण)

विषय—कई प्रकार के रोगों के नुसखे। कई वस्तुओं के लाभ, गुण और प्रयोग। अनेक काढ़े, चूर्ण, पाक, चटनी तथा गोलियाँ बनाना, उनका प्रयोग एवम् लाभ। कई धातुओं का शोधन और उनके प्रयोग की विधि तथा वैद्यक सम्बन्धी कुछ चुटकुले और सस्ते नुसखे।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के आदि अंत के कई पत्रे नष्ट हो गये हैं। किन्तु जो भाग उपलब्ध है उसमें प्रायः वैद्यों की जानकारी की कितनी ही बातें संगृहीत हैं। रचयिता एवं रचनाकाल और लिपिकाल विषयक बातों का इससे कुछ पता नहीं चलता। इसमें प्रायः सस्ती चिकित्सा पर विशेष ध्यान दिया गया जान पड़ता है। हस्तलेख बहुत अशुद्ध लिखा हुआ है।

संख्या २२४. नुसखों की किताब, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२८०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० राजाराम जी शर्मा, स्थान—साढ़ूपुर, पोष्ट—शिकोहाबाद, जिला—मैनपुरी।

आदि—·······...पृ० १ से पृ० ९ तक खण्डित। दसवें पृष्ठ से उद्धृतः—
॥ सोरठा ॥ त्रिफला सौंठि विडंग, मिर्च पीपरी मौथ हो ॥ पीपरामूल लवंग, देवदारु तज लायची ॥ दोहा ॥ पद्म पत्र अरु रासना, गज केसरि जो मिलाइ। सव तें मिश्री दुगुन लै, षैई रोग मिटि जाइ ॥ सौंठि पीपरै कांकड़ा श्रींगी, पोहौ कर मूल कचूर ॥ भारंगी मोथा मिरच, तप्त जल लेवैं महाँ स्वास को नाम करै ॥ फरिहारी और पौहकर मूल जानि वाँसा सोंठि कुलथी यह पीस दीजिये ताते नीर सों तो स्वास काँस की षीर जाइ ॥ वाँसा और सौंठि तथा पीपरै इनहि सम भाग लै पीसै अरु गोली वनाइ धरि लेइ सहत सौं तो स्वाँस

की हानि होति है । वासा सौंठि पीपरि वच कटई पीसि पीजिए तत्ते जल सों तौ षाँसी षाँसी जाइ ।।

अंत--गज केसरि असगंध सालि सिता गौरोचन यह सव दूध सों पीवै तो ततकाल गर्भ वंधु होय ।। १ ॥ सहत कटाई लाइकै पय सों पीवै तो वाँझ स्त्री कें हू गर्भ होय ॥ तीन दिन में गर्भ रहै ।। शिरस फूल जायफर सागरफेन वायविडंग और लायची गजकेसर संभाय इनकी जल सों गोली कीजिये टंक एक परवान पय सों पीजिये सात दिन यह औषधि हितकर बंध्या गर्भ जो होइ ध्रुव और सव जौनि दोष दुरि होंय संशय नाहीं ॥ सीत मूंग गौ को घृत यह पथ्य कराइकैं ॥ सौंठि मिर्च पीपरै गजकेसर जौ कटाई गौ घृत सों जो नारि पीवै वाकहँ अवश्य ही गर्भ होय ॥ धाइ लजालू कमलफल और गौरेठी यह चावल के जल सौं देय तौ गर्भ थँभि जाय ॥..................(अपूर्ण)

विषय--कास, स्वास, हिक्का, हिचकी आदि अनेक रोगों के नुसखों का संग्रह तथा बाल्य और स्त्री रोगों के नुसखे ।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत पुस्तक में अनेक रोगों के नुसखों का संग्रह है और उनमें प्रायः नित्य प्रति के काम में आनेवाले नुसखे हैं । खेद है ग्रंथ के आदि और अंत के बहुत से पत्रे नष्ट हो गए हैं । मध्यभाग के भी कुछ पत्रे नहीं हैं । इसमें कहीं-कहीं पद्य का भी प्रयोग किया गया है ।

संख्या २२५. नुसखा संग्रह, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२०४८, खंडित, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामेश्वर दयाल जी, स्थान—दतावली, पो०—इटावा, जिला—इटावा ।

आदि—॥ ज्वरांकुश तीजरा कहूँ ।। पारा टंक ॥१॥ मीठाटंक ॥१॥ धतुर के वीज टंक ६॥ हर्रा टंक ६।। अवरा ॥ टं० ६॥ वहेरा टं० ६॥ सव वस्तु भंगरा के रस सैं षलिकैं गोली वाँधै माष वरावरि एक गोली एक रोज खाइ सर्व ज्वर जाइ ॥ १ ।। अथ तीजरा कहु॥ गदहपुर्ना सनीचर के दिन नेवति आवै अतवार के दिन वड़े विहाने उसकी जरि उपारि कै पहुँचा में वाँधै तीजरा जाय ।। अथ तीजरा कहुँ ।। पीपरि टंक ३॥ ऐंठी ओंइठी से पीसि पिआवै दिन १४ तीजरा जाइ ॥ अथ मंत्र तीजरा कहुँ ॥ ॐ चके रसटी देवी वीसहर वीनासनी स्वाहा ।। वार २१ पढ़ि झारै तीजरा जाइ ॥

अंत—॥ मरद होइ ताकी विधि ॥ गुर नागरि कुठ वरावरि इनको चूर्ण करै सांझ सकारैं षाइ दिन ११ टंक २ तव उघरै न फिरि मानुष होइ ॥ और विधि याही को ॥ स्त्री पुरुष कौ वीज मैली मसत को नाक को छूछा को आंषी को दुनह को ले स्त्री के दूध सो पीवें ढाके षाल मो भरै दिन सात तक मानुष होइ ।। भाँडे में मूंदि राषै पानी में मूँदिकर तव सिद्धि होय ॥ मुख सुवास की विधि ॥ मुरा नाग केशरि कुठ वरावरि इन्ह को चूर्ण करै घसि कैं सांझ सकारे षाइ दिन ११ सुवास कवहूं न जाइ ॥ और विधि ॥ कूट

कचूर का चूर्ण करै घसि कै सहत सौं सांग षाइ गो घीव सों टंक पाँच मास १ सुवास होइ पावत्र अंण सो षाइ तौ सुवास होइ..........................(अपूर्ण)

विषय—अनेक रोगों के नुसखों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—इस छोटे से ग्रंथ में अनेक रोगों के नुसखों का संग्रह है। संग्रह-कर्त्ता ने इसमें अपने नामादि का परिचय नहीं दिया है। ग्रन्थ का अन्तिम भाग नष्ट हो गया है। इसके नुसखों की महत्ता इसमें है कि ये छोटे-छोटे चुटकुले हैं। एक-एक रोग के कई-कई नुसखे लिखे गये हैं। कहीं-कहीं एकाध मंत्र और जन्त्र भी दिए हैं।

संख्या २२६. पद, कागज—देशी, पत्र—३, आकार—६ × ४१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—९६, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री चतुर्वेदी उमराव सिंह जी पाण्डेय विशारद, टाईपिस्ट कलेक्टरी कचेहरी, मैनपुरी।

आदि—श्री गनेशाय नमः ॥ आज व्रजभूमि नवरंग सोभा वनी रास खेलत नवल संग प्यारी। माधुरी रूप रस केलि सोहावनी चन्द्रिका मोर छवि देत न्यारी ॥ झलक कुंडल चलक पीतपट अति सरस कर कमल फूल लीनै विहारी ॥ लगनि मैं मगन मोहन निरषि नेह सों रंग रस मूल राधे निहारी ॥ सषीनि निर्तंत धनी वनि ठनी हित सनी वजति मुरली मधुर सुर सुधारी ॥ जुवति की जूथ मैं प्रेम पूरन पगे जुगल जग प्रान जीवन अधारी ॥ गगन सुरगनन देषन छयौ ऐ अली सिव विरंचि सवनि सुधि विसारी ॥ छवि छवीली छवीले छकित होइ मैं जीव तन आदि सरवस्तु वारी ॥ १ ॥ आज नव कुंज मनं रंज षेलत सषी स्याम स्यामा परम प्रेम भीनै। रास के श्रंग रस रंग दोउ सनै जात नाहिंन नवल नवलि चीन्है ॥ केलि कल्लोल कुंडल करत लोल अति वजत सुषसार सुठि मधुर नवीनै ॥ हरत मन मोहनी लाइ व्रज वाल चित धरत जव भेष नटवर नवीनैं ॥ निर्ति नौतन करत तत तारनि ढरत बाँसुरी लेत सुधि सुरनि छीनैं ॥ सप्तसुर मान की तान सुषतैं भरत चर अचर होत हित माहि लीनैं ॥ मीन सम लीन नैना भए रूप निधि प्रान छवि सोहनी छकित कीनै ॥ प्रभु छवीले रसिक लाल जीवनि अली सुषनि के सुष सवै मोहि दीनै ॥ २ ॥

अंत—॥ राग वसंत ॥ होरी खेलि कहाँ ते आए रसिक साँवरे रंग भीने। रंग चुचात पितंवर काँधे कनक पिचक करमे लीनें ॥ प्रातप ठोकत लाल गुलालन कौन नारि रस वस कीनै। प्रान पियारे पाई मन की होत कहा अव हँसि दीनै ॥ हिय अंकित नष चंद नवल के लषियत है पट झीनैं ॥ अंक भरी मुसकाई छवीले घन दामिनि की छवि छीनैं ॥ ६ ॥ रंग घटा घुमड़ी वृज मंडल दामिनि सि भामिनि दमकैं। मुरली मधुर वजति सुठ सुंदर होत मृदंगनि की गमकैं ॥ निर्तति मोहन सोहन छवि सौ नूपुर पाइन......(अपूर्ण)

विषय—कृष्ण और राधिका की रास क्रीड़ा और होली खेलने आदि का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में ६—७ पद ही उपलब्ध हैं। न जाने इसके अंतिम भाग के कितने पद लुप्त हो गए हैं। जो यहाँ प्रस्तुत हैं वे उत्तम हैं और एक प्रौढ़ कवि के रचे प्रतीत होते हैं।

संख्या २२७. पद, कागज—देशी, पत्र—१८, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—७९२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० शिव सिंह जी, स्थान—दिहुली, पोष्ट—वरनाहल, जिला—मैनपुरी ।

आदि—··················मुनि साथ चले रघुनाथ लषन लषन लघु भाई। पहिले जाइ तारिका मार्यो असुर समूह नसाई ॥ मुनि मन हरषि लषन रघुवर लखि मानो उर आनन्द न समाई। लषन ॥ १ ॥ मुनिवर से बोले रघुराई। यज्ञ करौ तुम जाई ॥ मुनिवर यज्ञ करन जव लागे। तव धायो मरीच रिसाई ॥ लषन लघु ॥ २ ॥ मारा वान राम उर ताके शत योजन उड़िजाई। विश्वामित्र देषि हरषाने तव फूलनि की झरिलाई ॥ लषन लघु ॥ ३ ॥ ·········नि राम चलो मिथिलापुर धनुष यज्ञ लषि आई ॥ राम लषन संघ लैकै महीपति गौरे पहुँचे जनकपुर जाई ॥ लषन लघु भाई ॥ ४ ॥ ३५ ॥

अंत—वनि आये की वतियाँ। सषियाँ मोहन जाइ मधुपुरी छायो। वृज की छोड़ि सुरतिया अव तौ पीति कियौ कुवरी सों भोग कियो दिन रतियाँ ॥ जो कोउ देषत भै लागै टेढ़ि मेढि वहु भँतियाँ। सो कुविजा अव भई सुंदरी मानहु नवल जुवतिया ॥ गोवर हारी कंस रजा की लिखति हुकुम की पतियाँ। सो कुवजा माधव संग विहरै होइ गई पूरि सवतिया ॥ ज्यौं ज्यौं सुधि आवत कुविजा की त्यौं त्यौं कसकत छतिया। कहा कहौं माधव को सजनी जिन्ह मोहि दीन्ह विपतिया ॥ ऊधौ जाइ कह्यो माधव सो करिहैं मोरि सुरतिया सूर स्याम विनु विकल राधिका तलफि मरै दिन रतिया ॥ २७ ॥ वृजराजहि आवत देषि हँसी··················(अपूर्ण)

विषय—राम और कृष्ण के विषय में कहे गये कुछ पदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक के आदि और अन्त के बहुत से पत्रे लुप्त हैं। कुछ पद राम कथा से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ कृष्ण लीला से। कृष्ण लीला के पद अधिक हैं। संग्रहकार का कुछ पता नहीं ।

संख्या २२८. पद चयन, कागज—बाँसी, पत्र—१४, आकार—८×७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२२, अपूर्ण, रूप—जीर्ण, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—खचेरमल ब्राह्मण, मुकाम—उहरोली, पो०—बरसाना, मथुरा ।

आदि—राग विहागरो। गायो न गुपाल मन लायो न निवार लाज पायो न प्रसाद साधु मंडली में बेठिकें; धायो न धमकी श्री वृन्दा विपुन की कुंजन में रह्यो न सरन जाय श्री विट्ठलेश राय के; श्री नाथ जी ने देख छक्यो छिन हूँ न छवीली छवि सिन्धु पोर पर्यो नाही सीसहूनवाय के, कहे हरिदास तोहिं लाज हू न आई जिय जनम गमायो न कमायो कछू आय के ।

अंत—राग बिहागरो। मोहि है बल दोऊ ठौर को; एक भरोसो दोऊ ठौर को, दूजो नंद किसोर को; मनसा वाचा कहत कर्मना, नाहिन भरोसो और को; छीत स्वामी गिरधरन श्री विट्ठल श्री वल्लभ सिर मोर को ।

विषय—राधा कृष्ण के श्रृंगार और गुणानुवाद संबंधी गीत इसमें संगृहीत हैं। निम्न भक्त कवियों के गीत विशेष रूप से आए हैं:—१—अष्टछाप २—हरिदास ३—व्रजपति ४—रूपलाल ५—कल्यान ६—कमलनैन ७—रसिक सिरोमणि इत्यादि।

संख्या २२९. पद हिंडोरा, कागज—बाँसी, पत्र—३१, आकार—९×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३४९, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पण्डित पूर्ना, स्थान—कोनई, पो०-राधाकुण्ड, जिला-मथुरा।

आदि—राग सोरठ ॥ सुरंग हिंडोरना सुरंगं हिंडोरना रंग भवन नृप नंदराय के ॥ विश्वकरमा रच्यो विश्वकरमा रच्यो हरि हेत विविध विनायके ॥ मरुवे जग मग नग जटत अति मन भावते ॥ टेक ॥ मन भावते नग जटत मरुवे विविध मुक्ता मन खरचे ॥ डाडी विसाल रसाल अद्भुत झूमका परंग सचे ॥ पटली परम घनसार की डाडी बनी निरमोलना। रिषीकेश प्रभु नृपत नन्द के रंग भवन हिंडोरना ॥ हिंडोरा माई झूले श्री गिरधर लाल ॥ संग झूलत वृषभान नन्दिनी बोलत वचन रसाल ॥ पीय सिर पाग कुसुम्भी सोहत तिलक विराजत भाल ॥ प्यारी पहिरे कुसुम्भी चोली चंचल नैन विसाल '। ताल मृदंग बाजे बहु वाजत आनन्द उर न समात ॥ श्री वल्लभ पद रज प्रताप ते निरख रसिक बल जात ॥

अंत—राग जंगलो ॥ व्रजमोहना रंग हिंडोरना ॥ चलो सखी मिलि झूलन जैये वृन्दावन निज ठोरना ॥ मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल पीताम्बर झक झोरना ॥ पुरुषोत्तम प्रभु का छवि निरखत स्याम घटा घन घोरना ॥ झूलनपर बलबल जा दीया ॥ प्यारी जू पहिरे कुसुम्भी सारी प्यारे दे मन भा दीया। सषी री वे अँषिया रस पागी झुक झुक झोटा खा दीया ॥ पुरुषोत्तम प्रभु का छवि निरखत तन मन नैन सिरा दीया ॥ ब्रज के आंगन माई ईचों हिडोरो ॥ सिव ब्रह्मादिक देखन आये संकर ता थिक नाचो ॥ व्रज की वधू अटा भई ठाढ़ी अपुनो तनमन वारे ॥ परमानन्द दास को ठाकुर चित चोरयो इनकारे ॥

विषय—आधे आषाढ़ से लेकर शरदागमन तक मन्दिरों में जो गीत गाये जाते हैं वे मलार और हिंडोरा कहलाते हैं। हिंडोरों में राधाकृष्ण के झूला एवं उनके अनेक प्रकार के विहारों का वर्णन है। निम्नलिखित कवियों के गीत संग्रह में आए हैं :—१-ऋषिकेश २-गोविन्द ३-परमानन्द ४-कुम्भनदास ५-मदनमोहन ६-पुरुषोत्तम ७-सूरदास ८-श्री विट्ठल गिरधर ९-चत्रभुजदास १०-नन्ददास ११-विष्णुदास १२-कृष्णदास १३-गदाधर आदि।

संख्या २३०. पद माला (अनुमानिक), कागज—बाँसी, पत्र—५७, आकार—११×६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—११४३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—अमोलक राम, ग्राम—घोसेरस, पो०-गोवर्धन, मथुरा।

आदि—सारंग ॥ नैननि लागि हो चटपटी; मदन मोहन पीय नीकसे द्वार से, केसो भीत पाग लट पटी; दुरि जाय फिरि चितये री मोतन, नैन कमल मनोहरन भृकुटि;

गोविन्द प्रभू पीय चलत ललित गति, कछुक सखा अपनी गटी। कहा भयो मुख मोरे कछु काहु जो कह्यो; रसिक सुजान लाड़िलो ललन मेरी अँखियन माँझ रह्यो; अब कछु बात फैली परी जु ओरु प्रेम जामन दीयो भयो दूध ते दह्यो; ग्रेई लोक अति सुजान जु सर्व सुहऱ्यो गोविन्द प्रभू जो लह्यो ॥

अंत—दूलहे केसरि रस सों न्हात; तेल उबटनो लगावे व्याह को दिन आनन्द मंगल गाएमात; सुंदरि मिलि मंगल गावत मंगल बहोत सुहात; वलभदास के न्हात सोभा कहियन जात ॥ सारंग ॥ वल्लभ वरु देखे सव के मन, निरखि निरखि ललचाई; सिस सेहरो जगमगाई खों, निरखि नैंनन अघाई; वहे मंडफ मध्य दुलहनी संग जुवती जूथ, जुरि मिलि मंगल गावहीं; वलि बलि राम नवल दुलहे की सोभा कहि नहिं जाई। × ×

विषय—राधा कृष्ण के शृंगार और प्रेम लीलाओं के वर्णनात्मक गीत।

संख्या २३१. पदमाला (अनुमानिक), कागज—मूँजी, पत्र—२६, आकार—१० × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—३४८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—जयरामदास बनिया, स्थान—सौंख, पोष्ट—माठ, मथुरा।

आदि—कीजिए नन्दलाल कलेऊ; खीर खाँड औ माखन मिश्री, लीजिये परम रसाल; औंट्यो दूध सद्य धोरी को, तुमको देऊ गोपाल; बैनीं बड़ी होइ बल की सी, पीजिये मेरे बाल; हौ वारी या वदन कमल पर चुम्बन देहो गाल; गोविन्द प्रभु कलेऊ कीनो, जननी वचन प्रतिपाल।

अंत—वे देखो वरत झरोखन दीपक हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी; सुन्दर वदन निहारन कारन रख्यो हे बहुत जतन करि प्यारी; कंठ लगाइ भुज दो सिरहाने अधर अमृत पीवत सुकुमारी; तन मन मिलोरी प्रान प्यारे सों नौतन छवि वाढी अति भारी; कुम्भनदास प्रभु सौभग सीवा जोरी भली वनो इकसारी; नव नागरी मनोहर राधे नवललाल श्री गोवर्धन-धारी;

विषय—प्रातः काल, मंगला, शृंगार, ग्वाल-भोग, राजभोग, सेरैवे, संमुख, संध्या, शयन भोग, पोढ़ाइवे के गीत। १—अष्टसखा २—गोविन्द प्रभू ३—रामदास ४—मदनमोहन आदि कवियों के पद हैं।

संख्या २३२. पदमालिका (अनुमानिक), कागज—मूँजी, पत्र—६९, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२१८३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, अधिकारी, मन्दिर गोकुलनाथ जी, गोकुल, मथुरा।

आदि—राग सारंग : ताल चौताला। गोवर्द्धन गिरि सिंह सिलन पर बैठि के छाक खात दधि ओदन। आस पास व्रज ग्वाल मण्डली, मधि हौं मधि वलि मोहन ॥ राजत खात खवावत प्रेम प्रमोदन ॥ १ ॥ काऊ कौ छिकनोई तुरि गहि डारत वहवा की है ओरन।

बाल केलि क्रीड़त गोविन्द प्रभु हँसि गिरि जात सुवल की हसन ॥ राग कान्हरो ॥ मोहन वंसी अधर धरीरे । सप्त सुरन सौ तानले लेतै सब ब्रज श्रवन करीरे ॥ मोहिलई सब ब्रज की सुंदरि घर घर धूम परी रे ॥ 'श्रीकर' श्री हरिदेव निरखि छवि छकि गावत प्रेमभरी रे ॥

अंत—रागटोडी । ताल मूल । मेरी बैंया क्यो मरोरे आन आन; अनी अनी देखो चितै रही मुखपर अंचर दे कहा दानी की कान ; हों अपनो रस गोरस लाई काहू के ववा को कहा; नंदराइ कुल कियो उजागर लगे विरानो खान । दान दान योंही करि राख्यो घेरि लेति यों ही अबलान; 'साँवरी सखो' जसोमति रानी ढिग लेजु चलोगी; तोहिं ए भली सिखाई बानि । अरे बोल्यो को हे बगर में; हम ही घर में, सोवत लोग नगर में; को काहू के जिय की जाने भीजत विरहा झर में; इहि वर चोर चोरी कोउ आवै अलियाँ गलियाँ डगर में; 'आनन्दघन' हौ उठी सवारी सास ननन्द के डर में ।

विषय—यह संग्रह महत्वपूर्ण है । इसमें निम्नलिखित पद रचयिताओं के गीत संगृहीत हैं । विषय भक्ति और शृंगार है । १—गोविन्द प्रभू, २—जग जीवन ३—भगवान हित रामराय ४—आनन्द घन (इनके गीत अधिक हैं) ५—सूरदास ६—रामराय ७—परमानन्द ८—वृन्दावनदास ९—श्री कर (पद अधिक हैं) १०—मौजीकरन ११—चुन्नीलाल (पद अधिक हैं) १२—जानकीदास १३—कृपासखी १४—हरिदास १५—केसोदास १६—श्यास स्वामिनी १७—श्रीधर (पद अधिक हैं) १८—श्रीभट्ट १९—कुंभनदास २०—चतुर विहारी २१—श्री विट्ठल गिरधर (नाम गंगाबाई) २२—हीरा सखी (पद अधिक हैं) २३—दयासखी (पद बहुत हैं) २४—रसिक गोविन्द २५—गदाधर २६—कल्यान २७—नन्ददास २८—गिरधर अली २९—धोंधी ३०—रसिक बिहारी ३१—नागरिया ३२—ब्रजनिधि (इनके पद अधिक हैं) ३३—अली जय कृष्ण ३४—इच्छाराम ३५—किसोरीदास ३६—आजम ३७—रसनिधि ३८—कृष्णदास ३९—विट्ठल विपुल ४०—विजय सखी ४१—विहारिनदास ४२—छीत स्वामी ४३—अर्जुन ४४—हरिसेवक ४५—धोरज (पद अधिक हैं) ४६—श्री निवास ४७—मुरलीधर ४८—साँवरी सखी ४९—पदमाकर ५०—रसखान ।

विशेष ज्ञातव्य—यह संग्रह बड़ा महत्व का है । इसमें अच्छे-अच्छे कवियों के पदों के अतिरिक्त कई अज्ञात कवियों के भी पद आये हैं ।

संख्या २३३. पदों की पोथी, कागज—देशी, पत्र—८६, आकार—९$\frac{3}{4}$ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९३५, अपूर्ण, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० फूल सिंह, स्थान—रजौरा, पो०—मदनपुर, जिला—मैनपुरी ।

आदि—........दोउ राजकुमार मुनि संग मिथिला आइये ॥ टेक ॥ सखि क्रीट मुकुट माथे बन्यो घुंघुर वारे केस । वैजंतीमाला गले आछे सुन्दर वेष ॥ मुनि ॥ सषि भाल तिलक माथे वन्यो भौंहे बनी है कमान ॥ मुनि ॥ सुर नर मुनि मन मोहैइ बिनु सर संधान ॥ मुनि ॥ सषि अग्र कीर नासा वनो मुष चन्द्र समान ॥ जगमगात मानो दामिनी वारों कोटि भानु ॥ सषि कर को दंड विराजही कटि भाथा तीर । मन हरि लीयो माई माधुरी

मोहै रघुवीर ॥ मुनि ॥ सषि अन ब्याह हुलसी फिरै ब्याहि लेति उसास । गौने की मौनैं रहीं लषि रघुवर आस ॥ मुनि ॥ सषि वचन सवद औसे कहै गुरु पुरजन लोग । नाहक बैद बुलाइये जावै नहिं रोग ॥ मुनि ॥ सषि नयनन मैं वसिवो करौ निसि दिन यह ध्यान । वीर भजौ रघुवीर कौ भावै नहिं आन ॥ मुनि० ॥ ६ ॥

अंत—लगि रहे रघुवीर अखिया मैं ॥ टेक ॥ मैं सरजु जल भरन जाति ही भरन विसरि गई नीर । रुनुक झुनुक पग नूपुर वाजै चाल चलत गंभीर ॥ विनु देषे मोहि कल न परति है नैन धरत नहिं धीर ॥ क्रीट मुकट मकरा कृत कुंडल गलविच मुक्ता हीर ॥ सारंग धनुष वान कर राजै पहिरैं पीत पट चीर । संष चक्र गदा पद्म विराजै सोभित स्याम सरीर ॥ संग सषा सरजू तट विहरैं रामलषन दोउ वीर ॥ तुलसिदास प्रभु रूप निहारैं हरत संत जन पीर ॥ ६५ ॥ रघुवीर वदन छवि देषि कें छवि छाके हो नैना ॥टेक॥ एक टक रहि नरनारि जनकपुर की मुष नहिं आवत बैना ॥ सव सषिआ मिलि मंगल गावत आजु जनकपुर चैना ॥ सषियन मध्या जानुकी विराजे घूंघट पट की सैना ॥ ठगिसि रही सुधि वुधि सव विसरी राज कुँवर दोउ ऐना ॥ सिव विरंचि सनकादिक नारद उपमा को कहि·············(अपूर्ण)

विषय—रामचरित्र संबंधी विविध कवियों के पदों का संग्रह ।

संख्या २३४. पदों का संग्रह, कागज—देशी, पत्र—६४, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, नागरी, लिपिकाल—सं० १८८५ वि०, प्राप्तिस्थान—श्री फूलचन्द जी साधु, स्थान—दिहुली, पो०—वरनाहल, जिला—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥......परत कनक नीये से वार वार···सरोलट नोचत मगत चन्द नंदरनीय से ॥ सट पटाय गीर परत भगीतलफेरी उठत हरी सुखदनीय सेहलर बाती समझवाती व्रजतीय तोरत स्म कंठ रमनीय से ॥ तव जसुदा भाजन ये कालय पुरीत कीन चरप नीपते ॥ लीजे ललचद औ भीतर धय धरत ही री वहुषतय सोय तो कलमलत जल भीतर धय धरता हरी वह वनीय से जाके सिव सनपावत ध्यावत शेस सहस फनि अति सोख लेत भरी नये नद ए क्रष्ण धन धनी से ॥ गिरधारी जी सो काहे को लड़ी······तो गिरधर वन वन डोलतहों थल हे लकुटी ॥ दध मोरी खाय मटुक मोरी फोरत वरवस बाँह गहि ॥ १ ॥ चलु माइ मैं तोहि वतायो मोसो डगरी ॥ गोरे से वदन नील पट ओडे चंचल चपल षड़ी ॥ २ ॥ वड़े वड़े असुवन गिरधर रोवै तूँ मुसक्यात षाडी ॥ तू तरुणि मेरो गिरधर वाल क्रष्णौ कर भुज पकरी ॥ ३ ॥ भलो न्याव तुम कीन जसोमति सुत की और लड़ी ॥ सूरदास यह व्रज में वसिये को कैसे निवही ॥

अंत—मनुज तनुरे फिर मिलनाहै चड़ी·····रागिन दे स्वाख । जो परैगी भला पिचकारी या सुन कुंज विहारी ॥ माला फूल दुकूल पामरी क्या विगरैगी तिहारी ॥ और की और विचार करो तुम्हारो हजारों की सारी ॥ औरन से नहँ सो न कहो कछु मेरी

दधि जो विगारी ॥ बहुत सहौं तौ सहों औरो दिन देहै वचा कि सों गारी ॥ भौंह कसी लाखि फेरि हँसी पुनि वाम वसी कर हारी ॥ राम गु······श्याम नहिं मानत खाँहि······ विगारी ॥ ...सं० १८८५ चैत कृष्ण······चतुर्वेदि वाला घेर··..........(अपूर्ण)

विषय—कृष्ण लीला संबंधी पदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में श्री कृष्ण प्रेम संबंधी पद संगृहीत हैं। दधि लीला आदि के पदों के अतिरिक्त इसमें कुछ पद कृष्ण राधिका की शोभा के विषय में और कुछ भक्ति तथा प्रेम के संबंध में हैं। इसके कुछ पद महात्मा सूरदास रचित हैं और कुछ ऐसे हैं जिनके रचयिताओं ने अपना परिचय नहीं दिया है।

संख्या २३५. पद पुथलिया, कागज—देशी, पत्र—५२७, आकार—५ × ३ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०५४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (जिल्द नारंगी रंग की), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पण्डा मुरलीधर सनाढ्य, कानून गो की गली, रामदास की मण्डी, मथुरा।

आदि—श्री कृष्नाय नमः ॥ अथ राग सारंग ॥ अक्षै तृतिया अक्षै लीला नवरंग गिरधर पहिरत चन्दन ॥ वाम भाग वृषभान नन्दिनी विच विचित्र कीये नव चन्दन ॥ १ ॥ तन सुख छींट ईजार बनी हे पीत उपरना विरहे निकन्दन ॥ अति उदार वनमाल मलिका सुभग पाग जुवति मन फन्दन ॥ नख सिख लो सीगार अटपटे श्री वल्लभ मारग मन रंजन ॥ कृष्णदास प्रभू गिरधर नागर लोचन चपल लजावत खंजन ॥ आज बने नंदनन्दन री नव चन्दन को तन लेप कीये ॥ तामे चित्र कीये केसर के सोभित हे सखी सुभग हीये ॥ तन सुख को कट (?) वन्यो हे पिछोरा ठाडे हे कर कमल लिये ॥ रुच वनमाल पीत उपरना नेन मेन सर सेन दीये ॥ २ ॥ करनफूल प्रतविंब कपोलन मृगमद तिलक लिलाट दीये ॥ चत्र भुज प्रभु गिरधरन लाल सिर टेढ़ी पाग रही भृकुटी हीये ॥ ३ ॥

अंत—मंडल जोर जोर बैठो रे भैया हो सब मिल भोजन कीजे बिंजन मन रंजन ले आई वदन देखत जीजे। आपुन खात खवावत ग्वालिन फिर चाखत रसिकराय छवि निरख अघैया ॥ हरिनारायण स्यामदास के प्रभु की लीला अपार वाढ़ी जमुना जल पीजै ॥ मंडल रुचना रुचना रुच सों रची; चित्र विचित्र ब्रज की वालन ॥ दध पयो नवनीत मधु रसकरा पलासन के पत्रन की पुटन की पंगत सची ॥ १ ॥ नाना पकवानन के पनवारे लोनवारे खाटे बखारे विजन नाहिन अनगन वची ॥२॥ सूरीदास प्रभु भोजन कर बैठे अवसेस लैंन को सहचरी निकट आय ललची ॥ ३ ॥ × × ×

विषय—१—कार्तिक शुक्ला अक्षय नवमी पर गाये जानेवाले गीत, इनमें प्रायः यह वर्णित है कि नन्द यशोदा ने किस समारोह से अपने दुलारे पुत्र श्री कृष्ण के साथ यह उत्सव मनाया। २—राधा कृष्ण की युगल जोड़ी के रूप वर्णन के गीत। ३—कृष्ण और गोपों की बाल क्रीड़ाएँ। ४—यमुना यम फन्द नाशिनी के माहात्म्य सम्बन्धी पद। ५—वृषभान नन्दिनी राधा और कृष्ण का विवाहोत्सव। ६—मान के गीत; राधा का

मचलना और कृष्ण का मनाना । ७—भोजन और रास लीलाओं के गीत । अष्टछाप कवियों के अतिरिक्त इस संग्रह में अनेक अन्य कवियों के गीत भी सम्मिलित हैं । अन्य कवियों में मुख्य धोंधी, रूपलाल, कल्यान, वृन्दावन दास, लछिराम, हरिनारायण, स्यामदास, मुरारी दास और श्री विट्ठल गिरधर हैं । बहुलता अष्टछाप के गीतों की है ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह छोटे गुटकाकार रूप में है । नारंगी रंग की जिल्द बँधी है और एक लम्बा डोरा बाँधने के लिये लगा है । सन्-संवत् इसमें कुछ नहीं पड़ा है, परन्तु देखने से २०० वर्ष से अधिक प्राचीन प्रतीत होता है । अष्टछाप के कवियों के बहुत से अलभ्य पद हैं । इनके अतिरिक्त अन्य कवियों के भी गीत हैं । ग्रंथ स्वामी रोज प्रातः इस पुस्तक के गीतों का पारायण करते हैं । उन्हें इस पर बहुत प्रेम है । बड़े आग्रह और सिर पचाने के बाद उन्होंने इस ग्रंथ का विवरण लेने दिया है । उनका ख्याल है कि इस गुटके में बहुत से ऐसे पद हैं जो अन्यत्र अप्राप्य है । उनका यह भी कहना है कि बहुत से मन्दिरों के गवैये हमारे गुटके से गाने के लिये पद नकल करके ले गए ।

संख्या २३६. पद सागर (अनुमान से), कागज—देशी, पत्र—१२५, आकार—८ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२१८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १७१७ वि० (१६६० ई०), प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, जिला—मथुरा ।

आदि—× × × प्रिय की प्रीति विचारि लला । तनु मनु धनु दैउ वारि लला ॥ इति करत कत आरि लला । मन वचनन प्रति पारि लला ॥ अपने सुष्षहि सभारि लला । इह रस मनु अनुसारि लला ॥ आही है सेज सवारि लला । नव निकुंज पग धारि लला ॥ करहु बिहारु निहारु लला । सुन्दरि मुरि मुसक्याइ लला ॥ स्याम सखी सुख पाइ लला । अद्भुत उकति उपाइ लला ॥ कौतिग देषो आइ लला ॥

अंत—करत काम केला जू; दल मल दोनी सैन दीरघ दुरन्त गाने न दान करि दाने बाढ़ि लाल अलबेला जू; सहज सनेह सुठि सुन्दर सलोने सुख रूप स्याम सवहिंन के सिरमौर जू; सखी के समाजन मैं साजे है सिंगार सब अंगन की सोभा सम रस कौन और जू, साँवरा सहेली संग पहिरै है सारी स्वेत साधे सनीसर ससि लोल सिर बोर जू; सनमुष ठाद है सलजता सुभाव लिए सैनन की सैन मिली नैनन की कोर जू; संवत् १७१७ मिती वैशाख बदी १२ लिषतं नानु ॥ वास आवैर ॥

विषय—प्रस्तुत ग्रंथ में होरी के उत्सव धमार और वसन्त आदि गीतों का संग्रह है । गीत अधिकतया निम्नलिखित कवियों के बनाए हुए हैं:—१—श्री हरिदास २—बिहारी दास ३—नागरीदास ४—विट्ठल विपुल आदि ।

संख्या २३७. पद सागर (अनुमानिक), कागज—देशी, पत्र—१४१, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—८५२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री मुन्शीलाल कायस्थ, स्थान—भिसावली, पो०—राया, जिला—मथुरा ।

आदि—नवल बसन्त नवल वृन्दावन खेलत नवल गोवर्धनधारी । नव पल्लव बन माल विराजत नवल नवल बनी गोकुल नारी ॥ छिरक सुगन्ध कुम कुमा केसर लाल गुलाल बनी अति भारी । देखत सुरनर केतिक भूले मिट्यो ताप तन मदन विथारी ॥ नवल जमना जल कमल विगसित नवल पवन लागत सुखकारी । 'कृष्णदास' प्रभु रसिक मुकुट मनि नवल रसिक बनी राधा थारी ॥

चलो चलोरी वृन्दावन बसन्त आयो । फूल रहे फूलन के डोंरा, मनो मकरन्द उड़ायो । केकी कीर कपोत और खग, कोलाहल उपजायो ॥ व्यास स्वामिनो की छवि निरखत, रोम रोम सुख पायो ॥

अंत--सो धो बहोत सीस ते नायो । रंगे बसन कीयो मन भायो ॥ नवल अबीर सखा सँग लीने । फिरत उड़ावत भेंट भरि लीने ॥ नैन आँजि रोरी मुख माड़ति । प्रेम अत्यंगन दे दे छाड़ति ॥ हरि मृदु भुजा कंठ ले लावति । अन्तर को अनुराग जनावति ॥ मगन भई तन सुधि न सभारति । प्राननाथ पर सरब सुवारति । चतुरभुज प्रभु पिय सब सुख सागर ॥ सुरनर मोहे गिरधर नागर ॥ × × ×

विषय--१--बसन्त की शोभा और भगवान् कृष्ण की बाल एवं किशोर कालीन लीलाएँ । २--होरी, फाग के उत्सव । ३--भक्ति, प्रेम और श्रृंगार सम्बन्धी गीत । ४--बाँसुरी के गीत । छीत, चतुरभुज, कृष्णदास, परमानन्द आदि अष्टसखा तथा व्यास स्वामिनी, कल्यान, आसकरन, तुलसीदास, दामोदर हित, भगवान हित रामराय, विहारी लाल, रस आनन्द, ब्रजनाथ, विट्ठल गिरधर, खेमदास, रसिक प्रीतम, रसिकराय आदि भक्त कवियों के पद संगृहीत हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पद संग्रह में बिहारीलाल, खेमदास, ब्रजनाथ और रस आनन्द के गीत सर्व प्रथम आए ज्ञात होते हैं । कुछ पद राधावल्लभी सम्प्रदाय के भक्त कवियों के भी हैं, पर अधिकांश वल्लभ कुल के अनुयायी गायकों के हैं । संग्रह अपूर्ण है और तिथि हीन है, पर प्राचीन प्रतीत होता है ।

संख्या २३८. पदसागर, कागज—देशी, पत्र—१८६, आकार—१०½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२४३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (अमौवा की जिल्द), लिपि—नागरी, पद्य, प्राप्तिस्थान—पं० शिवचरण, स्थान—सीही, पो०—राधाकुंड, मथुरा ।

आदि — × × × राग विलावल ॥ नन्दराय लला तुम राधा रस बस कीने हो ॥ नन्दराय लला ॥ गुन प्रेम रूप रस भीने हो ॥ वह सुरत समागम कीने हो ॥ हौ कहत तुम्हारे जिय की हो ॥ इह कोक कला सब जाने हो ॥ ताते तुम्हारे मन माने हो ॥ नन्द राय लला० ॥ यह प्रति छन नौतिन लागे हो ॥ भयो मदन विकल फिर जागे हो ॥ यह गौर बरन तन सोहे हो ॥ मुरली जर को मन मोहे हो ॥ यह नख सिखपरम सुदेसा हो ॥ कक मदन मोहन वेसा हो ॥ नन्द० ॥ यह भाग सुहाग की पूरी हो ॥ घनस्याम सजीवन

मूरी हो ॥ यह षेलत पिय संग होरी हो ॥ वर संग लिये सत गोरी हो ॥ नन्द० ॥ मिली वंसी वट तर आई हो ॥ सब सोज फाग की लाई हो ॥ सत पुलीनता रोरी छाई ॥ करन कनक की पिचकाई । गिरिधरन कल्प तरु तीरा हो ॥ संग गोप कुँवर बलबीरा हो ॥ नन्द० ॥ डफ ताल बाँसुरी वाजे हो ॥ कोऊ खेलत हँसत न लाजे हो ॥ नव सत सजी आई गोरी हो ॥ पति मात पिता की चोरी हो ॥ कल गावत मीठी गारी हो ॥ रस खेल मच्यौ अति भारी हो ॥ तहँ उड़त गुलाल अबीरा हो ॥ चोवा चन्दन अरगजा नीरा हो ॥ तह भरती भरावती नारी ॥ रंग रंगित भीनी सारी हो ॥

अंत—राग कल्यान ॥ डोल झोलत गिरिधरन नव नन्द लाल ॥ ब्रजपुर बनिता निरखि वारत हैं कंठन की मनीमाल ॥ सकल सिंगार अनूप विराजत कूजित बैन रसाला ॥ माधोदास निरखी गोपीजन प्रमुदित श्री गोपाला ॥ डोल झूलत हैं प्यारो लाल विहारी काहु के हाँथ अधोटी काहु के वीन काहु के अरगजा छिरकत रंग रह्यो ॥ डांडी छोड़े खेल मच्यो जु परस्पर नहीं जानीयतु पग क्यौं रह्यो ॥ हरिदास के स्वामि स्यामा कुंज विहारी इनको खलकिन हू न लह्यो ॥ डोल चन्दन को झूले हलधर वीर श्री वृन्दावन में कालिन्दी के तीर ॥ गोपी रही अरगजा छिरकत उड़त गुलाल अबीर ॥ सुर नर मुनिजन केतिग आए व्योम विमानन भीर ॥ वाम भाग राधिका विराजत पहिरे कसूभी चीर ॥ परमानन्द स्वामी संग झूलत वाढ्यो रंग सरीर ॥

विषय—होरी और धमार के गीत । १—अष्टछाप, २—हित हरिवंस, ३—मधु मंगल, ४—वल्लभ, ५—गोविन्द प्रभु, ६—मुरारीदास, ७—कृष्णजीवन लछिराम, ८—माधोदास, ९—कल्यान, १०—विष्णुदास आदि । उपर्युक्त पद रचयिताओं के गीत आए हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—इस संग्रह में विशेषतया अष्टछाप के कवियों के गीत हैं । अन्य कवियों की रचनाएँ कम हैं । संग्रह अपूर्ण है, फिर भी इसमें बहुत से पद हैं । संग्रह का लिपिकाल अज्ञात है । किन्तु कागज से संग्रह पुराना प्रतीत होता है । इसमें कुछ ऐसे गीतों का संग्रह है जो ब्रज के ग्राम्य गीत कहे जा सकते हैं । आरंभ का पद उदाहरण स्वरूप है । इसे यहाँ अद्यावधि बड़े-बड़े नक्कारों को बजाकर गाते हैं । गाने का यह दृश्य बड़ा मनोहारी होता है । एक-एक नक्कारा इतना बड़ा होता है कि ठेले पर चलते हैं और फिर आठ-आठ दस-दस आदमी उसे बजाते हैं । वे नाचते और उछलते हैं । संग्रह में मधु मंगल मौर वल्लभ के गीत नवीन मालूम होते हैं ।

संख्या २२९, पद सागर, कागज—मूँजी, पत्र—३६, आकार—१२ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—११२८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण जिल्द), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामकुमार जी, स्थान—धरवार, पोस्ट—फरै, जिला—मथुरा ।

आदि—× × राग आसावरी । आज सबन के काज सँवारे; जय जय जय भुव भार उतारेन सेष सहित रघुवीर पधारे; प्रमुदित दसरथ देत वधाई, बहुते पुन्य रामनिधि

पाई; मंगल गान करत मिलि नारी, धन्य कौशिला कूँख तिहारी; पूँगी रम्भा तोरन राजे घर मोतिन चोक विराजे ; मुनि कों बोलि वेद धुनि कीनी, जनम पत्र करि आसिस दीनी; रघुपति सोभा कहा विचारो चन्द्रकोटि वदन पर वारों, नवमी मंगल जोग महाविधि द्वारे ठाड़ी अष्ट महानिधि; राम जनम सुनि पूरी मन आस चरन रेनु पावै हरिदास, नायकी माई री प्रगट भए श्री राम सुनत मनोहर नाम; जय जय कार भयो वसुधाम सन्तन के अभिराम; सुर नर मुनिजन देखन आए, रघुपति पूरन काम; वन्दीजन द्वारे सब ठाढ़े, करत निगम धुनि गान ; परमानन्द दास को ठाकुर, रघुपति रूप निधान ।

अंत—राग केदारो । नवल नागरि बधू मधुरें गावें; नवल नव रंग संग अंग अंग माधुरी, मधुर मधुर नव रंग उपजावें; सुघर अवधर तान लेत सुर सहज रस, विविध बन्धान निधि-विधि बढ़ावें; जदपि अति निपुनवर मदन मोहन, वदन तदपि विथकित मुरली पार न पावे; रीझि भये मगन अति गुणन मोहन कुँअर, रास में रंग रच्यो कापे कहि जावे; लाल गिरवर धरन रसिक प्रिय मुकुट मनि रसिकरस वस कृष्णदास दुलरावै;

विषय—१ राम जयन्ती के गीत, २–कृष्ण का वन विहार, ३–चौबीस अवतारों का गीत, ७–जमुनाजी के गीत, ५–रासलीला । अष्टछाप कवि, हरिनारायण, स्यामदास, तुलसी दास, गोविन्द प्रभू, द्वारकेश, आनन्दघन, दास दामोदर, मुरारीदास, विहारी-विहारन, व्यास, मदनमोहन इत्यादि के गीत संग्रह में आए हैं ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पद संग्रह में अच्छे-अच्छे भावपूर्ण गीत संगृहीत हैं । आनन्दघन के गीत विशेष महत्व के हैं । इनके पद भी यत्र तत्र फुटकर संग्रहों में मिलने लगे हैं । पहले यह विश्वास था कि इन्होंने पदों की रचना नहीं की, पर अब यह गलत सिद्ध हुआ । फिर भी प्रचुर मात्रा में एक ही संग्रह में इनके पद अभी भी नहीं मिले ।

संख्या २४०. पद समुच्चय, कागज—सनी, पत्र—१४०, आकार—११ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३११, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—हीरालाल वोहरा, स्थान—पालई, पो०—गोवर्धन, जिला—मथुरा ।

आदि—होरी ॥ राधा जू के मन्दिर आयो खेलत बर होरी ॥ जो तू आयो मेरे मंदिरवा ग्वाल सषा क्यो न लायो ॥ भूलि गयो है तू वा दिन की सुधि मैं तोइ पकर मँगायो ॥ मुरलिका करते छुँडायो ॥ वादिन की कहा वात कहू री मैं कहा तेरो चुरायो ॥ तेरो कहा कछु चोरि लियो है न काहू को खायो ॥ नाहक मोइ चोर वनायो ॥ पर के फाग में चीर चोर लियो छल्ला एक चुरायो ॥ जाय कहूँगी सब सषियन मैं जहाँ तोइ पकरि मँगायो ॥ अरे कहा विजया खायो ॥ वादिन की सुधि भूलि गयो तू जमना तट चीर चुरायो ॥ सूरदास यह प्रेम को झगरो चरन कमल चित लायो ॥ उर आनन्द न समायो ॥

अंत—गहनो चुरायो तुमने जादो केसो राय को । हाथ की अँगूठी लीनी तोरा लीनो पाम को ॥ माथे को सिर पेंच लीनो रतन जड़ाव को । गाम तो बरसानो कहिये श्री राधा

सुषधाम को ॥ कान्हा जी को सासरो राधा जी को माइको । लेके तो भागि आइ फेरि नाई जाइबो ॥ सूर स्याम मदन मोहन नयो गदवाइबो ॥ मोहनी रूप बनायो हरि वानो ॥ बाँह बरा बाजू बंद सोहैं छला छाप गुस्तानो ॥ मुष भर पान सींक भर सुरमा ले दरपन कान्हा मन मुसकानो ॥ माई जसोधा यों उठि बोली तू क्यो बनो जनानो । एक गूजरी मोहि छल लै गई वाई छलिबे बरसाने मोई जानो ॥ बरसाने की कुंज गलिन में कान्हा फिरत दिमानो ॥ श्री वृषभान की पोरी पहुँच्यो श्री राधा सो कान्हा जाइ बतरानो ॥ × × ×

विषय—होरी, फाग, बाँसुरी, शृंगार तथा भक्ति विषयक निम्नलिखित पद रचयिताओं के गीत इसमें आए हैं :—१-सूरदास, २-पुरुषोत्तम, ३-देवदास, ४-व्यास स्वामिनी, ५-कृष्णजीवन लछिराम, ६-विष्णुदास, ७-नंददास, ८-रूपलाल, ९-लषनदास, १०-जन गोविन्द, ११-सूरस्याम मदनमोहन, १२-तानसेन, १३-नागरीदास, १४-हरिदास, १५-तुलसीदास, १६-विट्ठल गिरधर, १७-विश्वनाथ, १८-ललित किशोरी, १९-वृन्दावन हित। इन सब कवियों के गीतों के अतिरिक्त इसमें नन्ददास की संपूर्ण पंचाध्यायी, वृन्दावन हित की 'ब्रह्मचारी लीला' एवं रूपलाल हित विरचित 'अन्तर्ध्यान लीला' भी हैं। रेखांकित कवियों के गीत संग्रह में अधिक हैं।

संख्या २४१. पद संग्रह, कागज—मूँजी, पत्र—१२६, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५२०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकर लाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—राग सारंग । कूकें देत जात कानन पर ऊँची टेरन नाम सुनावत; सुन्दर पीत पिछौरी ले ले मुखपर फेरि सवन बिझुकावत; काहू को बछरा काहू को ले ले आगे आन दिखावत; पूँछी उठाई सुभी हैं भाजत आपुन हँसत औ सबन हँसावत; फिरि चुचुकारि सुधी कर भाजत बिछुरिन अपने हाथ हिलावत; श्री विट्ठल गिरधर बलदाऊ इहि विधि अपनी गाइ खिलावत; गाय खिलाई आए नन्द नन्दन सोभित लाल मृदंग बजावत, ऐ हँसि हँसि ग्वाल देत करतारी आछे आछे मंगल गावत; अति आनन्द नन्द जू की रानी गज मोतिन के चौक पुराए; वारि वारि न्येछावर डारत जवही लाल घर भीतर आए; आछे चीर बहुत भाँतिन के गोपी ग्वाल सबै पहिराए; श्री विट्ठल गिरधर लाल को मुख चुम्बत अरु लेत बुलाए ।

अंत—राग अड़नो । भूषन साजे साँवल अंग; लाड़िली वर बन जू को लीयो है री संग; रच्यो रास विलास कानन रसिक वर नव रंग; कला नटवर धरत जब कछु देखि लजत अनंग; बेन धुनि सुनि थकित मुनि गति लेत थेई थेई थुंग; श्रीविट्ठल गिरधरन की बलिजाऊँ ललित त्रिभंग । राग विहागरो । बैठी पिय को वदन निहारत, लावन ऊपर वारि वारि तन मन धन जोवन वारे । कबहुँक निकट जाय प्रीतम के पगिया पेंच सँवारे । कबहुँक करत कलोल चुम्बन दे हरत चन्द उजियारे । कबहुँक प्रीतम अजर सुधारस भेटन अंगीया उघारे । रसिक प्रीतम के संगम प्यारी पूरव विरह बिसारें ॥ × × ×

विषय—अन्नकूट और गोवर्धन के पद; पत्र १—३३ तक।
कान्ह जगावन तथा दीपमालिका के पद;
हठरी, पत्र ३४—४२ तक।
रूप चौदस के गीत, इन्द्रमान भंगकरण, पत्र ४३—६० तक।
गोचारन, पत्र ६१—६६ तक।
रासलीला संबन्धी पद, पत्र ६७—१२५ तक।
(अपूर्ण)

नीचे लिखे पदरचयिताओं की रचनाएँ इसमें संगृहीत हैं:—अष्टछाप कवि, हरिदास, विट्ठल गिरधर, लालदास, कल्याण, केसो, विष्णुदास, व्रजपति, रसिक प्रभू, गोविन्द प्रभू, जगन्नाथ, ब्रजदास, रामदास, हित दामोदर, व्यास स्वामिनी, दास सखी, हित हरिवंश, कृष्णजीवन लछिराम, वृन्दावनचन्द, प्रेमदास, आसकरन, विहारीलाल, श्रीभट, श्री मदन मोहन; चतुर विहारी, भगवान हित, कमलनयन इत्यादि।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में बहुत से पद रचयिताओं के अनुपलब्ध गीत हैं। इनमें से कुछ गंगाबाई (विट्ठल गिरधरन) के उद्धृत कर दिए हैं। लालदास, केसव, ब्रह्मदास, दाससखी और प्रेमदास के पद भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

संख्या २४२. पद संग्रह (अनुमानिक), कागज—देशी, पत्र—१४०, आकार—१३ × ५३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१२८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्रीयुत मूला वोहरेजी, मौजा—मड़ौरा, पो०—गोवर्धन, मथुरा।

आदि—प्रात समै उठि के नन्दरानी अपने सुत को आन जगावै; ठाढ़े ग्वाल बाल बछ गोपी टेरि टेरि के तुम्हे बुलावै; मंगल भोग सिद्धि कर राख्यो सब हिल मिल के तुम्हहि जिमावै; फेरि उबटि अन्हवाय स्वच्छ जल माथे चन्दन चारु लगावै; ब्रजमें तेरी करैं बड़ाई अब तूँ स्यामो भयो कहावै; प्रभु घनस्याम लिए कर लकुटी ग्वालन के संग गाय चरावैं। लाऊ तोकूँ दुलहिन लाऊँगी छोटी; चलो वेगि अब करो कलेऊ माखन मिश्री रोटी; चन्दन घिसिके उबट अन्हवाऊँ तब बाढ़ेगी चोटी; श्री विट्ठल विपुल विनोद बिहारी बात नहीं यह खोटी।

अंत—राग किदारो। मान तजि चलिरी झूलन बैठे श्याम हिंडोरे; झूले अकेले बाग वृन्दाबन नाहिं सखी कोई और; धीर समीर बहत तहाँ सीतल बहुबिधि उठत हिलोर; कोकिल गान करें ऊँचे सुर बोलत चातक मोर; कही मानि चलि वेगि हठीली विनती करो कर जोर; यह सुनि उठि चली भामिनी तजो मान तृण तोर; बैठी जाय निकुंज हिंडोरे शीतल पवन झकोरे हरि सों मिली व्यास की स्वामिनी ज्यों चपल की कोरें। स्याम जू देह दिसा तन भूली; सेजम सोवत आज स्याम संग प्रेम हिंडोरे झूली; मदन मोहन मुख कमल देखि के अंग अंगन फूली; चत्रभुज प्रभू नीवी बन्द खोल्यो द्वै फोदा मखतूली।

विषय—जागिबे, कलेऊ, पनघट, जमुनाजी, श्रृंगार आदि के गीत, पत्र १–१९ तक। ग्वालबाल, पलना, भोजन, आचमन, छाक, वर्षाऋतु, मुकुट, बीड़ी, कुञ्ज, यमुना जी, राधा मान, शयन के गीत, पत्र २०–३७ तक। गुसांईं जी की बधाई, महोत्सव, बलदेवजी, राधिका जन्मोत्सव, राधाजी की बाललीला, मान, दान, साँझी आदि के पद, पत्र ३८–७९ तक। शरद पूर्णिमा, गाय खिलाना, ब्याह, व्रतचर्य्या, वसन्त, स्नान यात्रा, रथयात्रा, महाप्रभु जी की बधाई, धमार, होरी, इत्यादि, पत्र ८०–१२८ तक। निम्नलिखित कवियों के पद संगृहीत हैं:—अष्टछाप, मदनमोहन, रूपमाधुरी, कल्यान, हरिनारायण, स्यामदास, रामदास, व्यास स्वामिनी, हित हरिवंस, धोंधो, विष्णुदास, माधोदास, आसकरन, द्वारकेश, गोपालदास, चतुरबिहारी, दास भगवान, किशोरीदास, गदाधरदास, कृष्णजीवन लछिराम, मानकचन्द, पद्मनाभ, विट्ठल गिरधरन, रामराय, केसो, आनन्दघन, रसिकप्रीतम, तानसेन, दामोदर, मुरारीदास, हरिदास, ऋषिकेश, गरीबदास, कटहरिया, लालदास, गोविन्द प्रभू इत्यादि।

संख्या २४३. पद संग्रह, कागज—मूँजी, पत्र—९२, आकार—९ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२१, अपूर्ण, रूप—प्राचीन (जीर्ण), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री भगवानदास वैश्य, मौजा—सिहोरा, पो०—राया, जिला—मथुरा।

आदि—राग मलार। धूमरे बादर झूम झूम झूम वरषन लागी है; दामिनी के दमक चौंकत चपक स्याम घन की गरज सुनि जागे; छीतस्वामी गिरधर श्री विट्ठल ओत प्रोत रस पागे। बादर झूम रहे सगरी निसा के वरसन कूँ रहे छाय; जागे सव ग्वाल बाल जाय घिरे ठाढ़े द्वार लीये हैं लाज लगाय; दोहनी दे दीनी हाथ दियो है साथ बछरा जोवत मुग रांभत है गाय; परमानन्द नन्दरानी फूली अंगना समानी बारम्बार वार बार लेत है वलाय।

अंत—बुन्दन कर लाग्यो आँगन, करत कलेऊ दोऊ भैया; भवन में आवो लाल संग लावो ग्वाल कहत यशोदा मैया; भीजेंगे बसन सब खेलन को सब दिन मेरो कह्यो मान लेहुँ बलैया परमानन्ददास प्रभू जो भावे सो लीजे मथ मथ प्यावत घैया॥

विषय—प्रस्तुत ग्रंथ में वर्षाऋतु में गाये जानेवाले मलार गीतों का संग्रह है। अधिक गीत अष्टछाप के कवियों के हैं और थोड़े से अन्य कवियों के भी हैं।

संख्या २४४. पद संग्रह (अनुमानिक), कागज—स्यालकोटि, पत्र—११०, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३८१२, अपूर्ण, रूप—बहुत जीर्ण (खुले पत्रे), पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकरजी याज्ञिक, अधिकारी, गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—विष्णु चरण जल ब्रह्मा कमंडल शिव जटा राजति देवी गंगा। भागीरथी सकल जग पावन भूमि भार हरण अलष नन्दा तारण तरण तरंगा॥ हरिद्वार प्राग सागर संग मनुष्य ताप हरण त्रिविध मन रंगा। 'धीरज' के सव रोग दोष दूरि करौ पाप प्रहार

करौ हो निरमल अंगा ॥ राग हमीर ॥ मुरली ठकुरानी मनमानी में जानी मोहन अधर रस सानी । वदन सिंघासन की रजधानी अलक चँवर दुरानी कर नख सोभा ठानी ॥ सप्त सुरनि गानी सप्त रंध्रनि वांनी कोऊ वनया समानी अकथ कहानी ॥ 'जीवन गिरधर' यस समझानी सु यह ठहरानी मुरली बिरानी ॥

अंत—रागटोड़ी ॥ धाइ मिलोंगी जब आवेंगे सदा रंगीले श्री नन्द नन्द पीय प्यारे । आछी नीकी तान गाइ बजाइ लाल कौ वोराऊ हस्तक भेद । सुगन्ध एताधिलंग धमकट धिलांग······राग के वारो ॥ मन मेरो बस करि लीनो ए सलोने सुघर चतुर अति ही सुन्दर । वंसीवट जमनातट ठाड़े ग्रहि द्रुम डार छबि सों कर ॥ बड़े नैन वाके दुख मोचन चितयो मृदु मुसकाय कें मो तर । विवस भई लखि रूप माधुरी भूलि गई जैबो घर । कबहुँक बात कहत रसभरी सरनी कबहूँक गावत गीत मनोहर ॥ 'दयासखी' घनस्याम सुरनर मोहें और कौंन त्रिभुवन पर ॥ × × ×

विषय—निम्नलिखित कवि एवं कवियित्रियों के गीत प्रस्तुत ग्रंथ में आए हैं। इनमें से कई एक के नाम सर्वप्रथम विदित हो रहे हैं । इनकी कविता भी उच्चकोटि की है:— १—वल्लभ रसिक, २—नागरीदास, ३—व्यास, ४—रसिक गोविन्द, ५—हित अनूप, ६—हरि नारायण घनस्याम, ७—वृन्दावन हित, ८—कृष्णदास, ९—सूरदास, १०—सदारंग, ११—हरिदास, १२—धीरज, १३—नन्ददास, १४—गोविन्द प्रभू, १५—विट्ठल विपुल, १६—कुम्भन दास, १७—हित हरिवंस, १८—श्री भट्ट, १९—जगन्नाथ कवि, २०—चतुरविहारी, २१—आनन्दघन, २२—विट्ठल गिरधर, २३—जगन्नाथ, २४—गजाधर, २५—जीवन गिरधर राय, २६—भगवान हित रामराय, २७—रघुनन्दन प्रभु, २८—सूरदास मदन मोहन, २९—मदन मोहन, ३०—कृष्णजीवन लछिराम, ३१—बैजू बावरो, ३२—कृपासखी, ३३—दयासखी, ३४—श्री विट्ठल गिरिधर (गंगाबाई), ३५—मुरारीदास, ३६—तान तरंग (केशवदास की वेश्या), ३७—अर्जुन, ३८—रामराइ, ३९—श्री सिवराम सखी, ४०—परमानन्द; ४१—सदानंद ४२—कृष्णदास, ४३—धोंधी, ४४—रसिक सखी, ४५—हित जुलकरण, ४६—परमानन्द स्वामी, ४७—किसोरी मोहन, ४८—कल्यान, ४९—गंगाराम, ५०—वल्लभ, ५१—मानदास, ५२—आसकरन, ५३—रामदास, ५४—रामचन्द्र, ५५—सरसदास, ५६—दामोदर हित, ५७—रसिक विहारी, ५८—सुख सखी, ५९—केसव, ६०—भगवन्त, ६१—विष्णुदास, ६२—गोकुल नाथ, ६३—शिवराम, ६४—चतुरदास, ६५—आसानंद, ६६—हित ध्रुव, ६७—बिहारिनदास, ६८—मधुसूदन, ६९—गिरिधर, ७०—रघुनन्दन, ७१—सहचरी, ७२—चतुर्भुज, ७३—कमलनयन ७४—स्वामीदास, ७५—रसिकदास, ७६—जानकीनाथ, ७७—तानसेन ।

विशेष ज्ञातव्य—यह पद संग्रह खोज में बहुत उपयोगी है । यह विशाल भी है । इसमें अष्टछाप कवियों की कविता तो नाम मात्र है, असल में और और कवियों की रचनाएँ हैं । जिनमें से कई कवि ऐसे हैं जिनके नाम अद्यावधि अज्ञात हैं । आनन्द घन, बैजूबावरा, गंगाबाई, सूरदास, मदनमोहन के गीत बहुत महत्व के हैं । सखी सम्प्रदाय की कवियित्रियों की रचनाएँ भी हैं । जो अन्यत्र सुलभ नहीं हैं । इनमें दयासखी, कृपासखी,

रसिक सखी, लाड़िली सखी, सुखसखी, सहचरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ओरछा दरबार के प्रसिद्ध कवि केशवदास की तानतरंग वेश्या के बनाये हुए कुछ पद भी इसमें हैं जो अन्यत्र नहीं पाये जाते। कई दृष्टियों से मथुरा की खोज में यह ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण है।

संख्या २४५. पदसंग्रह, कागज—मूँजी, पत्र—६३, आकार—१०½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—१८२३, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामचरण जी, स्थान—भरतिया, पो०—विसावर, जिला—मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः। गोद बैठि गोपाल कहत ब्रजराज सों; अहो तात एक बात श्रवन दे मेरी। भमन माँझ हों गयो धरी जहाँ सो जघनेरी मेहसि मांग्यो माय पे भोजन देरी मोहि। कर लकुटी लेषिज कह्यो रे यह क्यों देहौ तोहि। छुदित जानि के नेह रोहनी निकट बुलायो दूध प्याय चुचकारि सीख दे कंठ लगायो। यह बलि भुगतें देवता कह्यो हरे लगि कान ताते रुचि रुचि करत हे हो साक पाक पकवान। यह निश्चै करि कहो कौन सो देव तुम्हारो। जौ इतनी बलि षाय काज कहा करे हमारो॥

अंत—मालवराग। रास विलास रस भरे नितंत नवल किसोर औ नवल किसोरी; एक ही वैस एक रूप गुन गिरधर स्याम राधिका गोरी; नव पट पीत और नव भूषन नव किंकनी करि जुग थोरी; जानो सकल सिंगार विराजत मानो त्रिभुवन ता सौभग चोरी; तात वंधान वे नर विसो मिली विधना रचीं सुघर यह जोरी; कुंभनदास प्रभू गोवर्धनधर सुरत केलि कचकी छोरी। नाचत रास में गोपाल संग मुदित घोषनारी; तरु तमाल स्याम लाल कनिक वेलि प्यारी; चलि नितम्ब नुपुरादि कटि लोल वंक ग्रीवा; राग तान मान सहित वैन गान सीवा; श्रमजल कन सुभर भरे रैंन रंग सोहे; कृष्णदास प्रभू गिरधर ब्रज जन मन मोहे।

विषय—१-गोवर्धन लीला, २-अन्नकूट, हठरी और दीपमालिका के पद, ३-इन्द्रभान, ४-रासलीला सम्बन्धी गीत। ब्रजजन, अष्टछाप कवि, गिरधर, केसवदास, विट्ठल गिरधर, लालदास, विष्णुदास, गोविन्द प्रभू आदि के गीत इसमें संगृहीत हैं।

संख्या २४६, पद संग्रह (अनुमान से), कागज—बाँसी, पत्र—१४८, आकार—५½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६६४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मथुरेश जी का मंदिर, स्थान—कन्नावर, पो०—महावन, मथुरा।

आदि—राग सारंग। आज नन्दराय कें आनन्द भयो; नाचत गोपी करत कोलाहल मंगल चारु ठयो; राती पीरी चोली पहिरें नूतन झुमक सारी; चोवा चंदन अंग लगाए सेंदुर मांग सँवारी; माखन दूध दह्यो भरि भाजन सकल ग्वाल ले आए; बाजत बेनु पखावज महुवर गावत गीत सुहाए; हरद दूब अक्षत दधि कुमकुम आँगन बाढ़ी कीच; हँसत परस्पर प्रेम मुदित मन लागि लागि भुज वीच; चहुँ वेद धुनि करत महामुनि पंच शब्द ढम ढोल; परमानँद बढ्यो गोकुल में आनन्द हृदै कलोल।

अंत—वजत वृषभान के बधाई; सवनि भावति कुँवर राधिका कीरत हैने है जाई; नन्दराय अरु बड़े बड़े गोप सबे गृह नोति बुलाए; सुनतहि आनन्द भयो सबनि के हुलसि हुलसि के आए; तिलक करति गावत अरु नाचत घोष सकल ब्रजनारी; श्री विट्ठल गिरधर संग ले कूबरी चौक बैठारी। राधा जू जनम सुन्यो मेरी माई; सकल शृंगार बाल ब्रज गोपी घर घर वजत वधाई; अति सुकुमारी धरि सुभ लछन कीरति नेहे जाई; परमानन्द करि निछावरि घर घर वात लुटाई।

विषय—१—कृष्ण जन्म की बधाई, राधिका जन्म की बधाई, अष्टछाप, भगवान हित रामराय, आसकरन, कल्यान, हित हरिवंस, जन हरिया, कृष्णजीवनलछिराम, विट्ठलगिरधर, मदनमोहन इत्यादि भक्त कवियों के गीत संगृहीत हैं।

विशेष ज्ञातव्य—वल्लभ सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण की जयन्तियाँ बड़ी धूमधाम से मनाई जाती हैं। मंदिरों में उसी प्रकार से उत्सव मनाया जाता है, जैसे सचमुच उनका जन्म आज ही हुआ हो और उस अवसर पर बधाई के गीत गाये जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में ऐसे ही गीतों का संग्रह है।

संख्या २४७. पद संग्रह (अनुमान से), कागज—स्यालकोटी, पत्र—६३, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—११३४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—गोकुलिया ब्राह्मण, स्थान—कोयला, पो०—महावन, मथुरा।

आदि—गंधार न्हात बलि कुँवर कुँवरि गिरधारी; जसोमति तिलकु करत मुख चुम्वति आरत नवल उतारी; आनन्द राय गोप सहत सब नन्दरानी ब्रज प्यारी; जलसों घोरि केसरि कस्तूरी सुभग सीसते ढारी; बहोत करत सिंगार सवै मिलि सबही रहत निहारी; चन्द्रावलि ब्रज मंगल राधा रस भरी वृख भान दुलारी; मन भाये पकवान जिमावत जात सबै बलिहारी; श्री विट्ठल गिरधरन सकल ब्रज सुख मानत छोटी दिवारी।

अंत—राग सोरठ। हरिसों टेर कहत ब्रजवासी; इन्दु रिसाय वारस्यो हम ऊपर नेक न लेत उसासी; तुम विनु ओर कोन हे नन्द सुत काटन को दुख रासी; तव गोविन्द प्रभु गिरवर धार्‍यो मघवा रह्यो षिसासी। गोरी माइ देषत को कान्ह बारो; निरमल जल जमुना को कीनो गहि आन्यो नाग कारो; अति सुकुँवार कवलहू ते कोमल गिरि गोवरधन धारो; बूड़त ते ब्रज राषि लीयो है मेटि इन्द्र को गारो; है कोऊ बड़ो देव देवनि में जसुमति पूत तिहारो; ब्रह्मदास भक्तन को जीवन सर्वस प्रान हमारो।

विषय—कृष्णचन्द्र की लीलाओं संबंधी निम्न लिखित भक्त और पद रचयिताओं के गीतों का संग्रहः—१—ररमानंद, २ कृष्णदास, ३ गोविन्द प्रभू, ४—केसोदास, ५ कुम्हनदास, ६ नन्ददास, ७ छीतस्वामी, ८ श्री विट्ठलगिरधर, ९ चतुर्भुज, १० हरिदास, ११ गिरिधर, १२ रसिक प्रभू, १३ आस करन।

संख्या २४८. पदसंग्रह, कागज—बाँसी, पत्र—७७, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०७८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—जमनादास कीर्तनिया, नवा मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—अथ नित्य के पद लिख्यते ॥ राग भैरव । जागो मेरे गिरधरे जग उजियारे । कोटि काम वारो मुसकन पर, कमल नयन अँखियन के तारे । ग्वाल बाल बच्छन संग लेके, जमुना तीर बन जाउ सवारे । परमानन्द कहत नन्दरानी दूरि जनि जाऊ मेरे ब्रज रखवारे ॥

अंत—राग पूरवी । मोसे न बोले रे नन्द लाला ॥ तेरो कहा लीये जात छाँड़ दे अंचल होत गहे जानत औरसी बाला ॥ कमल फिरावत मोय रिझावत इत पर गावत तान रसाला ॥ धोंधी के प्रभु हाथ दूर राखो, टूटेगी मोतिन माला ॥

× × ×

विषय—श्री कृष्ण भक्ति, उसकी पूजा आराधना तथा विभिन्न लीलाओं सम्बन्धी गीत इसमें संगृहीत हैं । निम्न लिखित भक्तों के गीत इसमें आए हैं:—

१ परमानंद, २ सूरदास, ३ चत्रभुजदास, ४ कुम्भनदास, ५ गोविन्द प्रभू, ६ दास-गुपाल, ७ छीतस्वामी, ८ रसिक प्रीतम (हरिराय), ९ नन्ददास, १० कृष्णदास, ११ रसिक शिरोमणि, १२ धोंधी , १३ श्री विट्ठल, १४ विष्णुदास, १५ केशवदास , १६ गिरधर, १७ आस करन, १८ कान्हर दास, १९ गदाधर, २० हरिनारायण, २१ हित हरिवंश, २२ मुरारी दास, २३ व्यास दास, २४ श्री भट्ट, २५ हितरामराय ।

संख्या २४९. पद संग्रह, पत्र—६, आकार—८½ × ६ इंच, कागज—देशी, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री कृष्णमुरारी जी वकील, स्थान—परिगवाँ, पोष्ट—मैनपुरी, जिला—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री सरस्वतीय नमः ॥ राग भैरव ताल झूमरा ॥ आछो नीको लौनौ मुष भोरई दिषाइयै । निसि के उनींदे नैंना तुतरात मीठे बैना भामतो मेरे जीके सुषहिं वढ़ाइयै ॥ १ ॥ सकल सुष करणहार त्रिविध ताप दुष हरन उरकौ तिमिरि वाढ्यो तुरत नसाइयै ॥ द्वारै ठाढ़े ग्वाल वाल करो कलेऊ मेरे लाल मिश्री रोटी छोटी मोटी माषन सों षवाइयै परमानन्द प्रभु जननीं मुदितमन फूली फूली फिरै अंगन समाइयै ॥ ३ ॥ राग जै जैमंती ॥ तालसूधौ ॥ कवाली ॥ ओढ़ि चलौ मृग छालाऽहो पीय धनुष धरौ काहू मुनिवर के ग्रह दंड कमंडलभेष मुनि कौ कर गहौ तुलसी माला ॥ १ ॥ तुम दोऊ बन्धु अकेले वनमें हम अवला सँग वाला औचक भैंट होइ काहू भट सों जब जीय होइ जंजाला ॥ २ ॥ क्षत्रीवंस महावलधूरे करि न सकौ हौ ढ़ाला ॥ समर जूझगति अवगति प्रीतम हमरौ कौन हवाला ॥ ३ ॥ अवधि विहाइ फिरिलैहै सुनियो दीन दयाला ॥ धनुष वोल्यि पिय तवहीं चहिये जव होऊ अवध भुवाला ॥ ४ ॥ सीयतन हेरि हँसे रघुनन्दन

बोले बचनरसाला ॥ कान्हर लहा श्री रामचन्द्र के रंगनाथ रखवाला ॥ ५ ॥ राग ईमनि तलु चारि ॥ राजत जानुकीवर रामचन्द्र लछिमन भरत शत्रघन हनुमान ॥ वेदनि की महाघोर वंदीजन करत॰ सांर गंधर्व एक ओर करत गान ॥ अैसे अनंद कंद जोनमंद महामंद अब की थै देव काहू दुष्ट की न करी कान । ब्रह्मादिक सिव सुरजान ॥ निरषत चढ़ि चढ़ि विमान ।' सुन्दरा अवधि जहाँ उदित भान ॥ २ ॥

अंत—रागदेवगितः ॥ नहिं मोरे वलमा देन उसी राहन के ॥ हम जानी पीअ ओर निवाहौ निकसे जात दिना हमारे जुवन के ॥ राग इकताल पास ॥ वनवारी वनें आए हौ दीयै चंदन षौरिगरै ॥ सोहै वनमाल भौहैं धनुष सुनेत्र विशाल स्रवन कुंडल सोभलाल मुकट लटक देषि देषि रीझि रीझि गोपी सब भई विहाल झूमि झूमि द्रमि द्रमि मृदंग छम छम धरत चरन सामरौं छवीलौ छैल धीरज कौए भए ममगन हौत अर्पतर्प होति गति सुधंग राग इमनिताल पर जुलम करै हम से तीन ये छैल जौवन मतवारौ ॥ वही आय करि धूंघट पट षोलै और कहौ मैं केतीरुसि रहो फिरि फिरि बोलै हँसि बोलै उलैती ॥ माधौ रसाल असो कवि टपतन सीयाराम सुख देती ॥ विनती ॥ गनपति सुमिरि सदा मन मोरे निसदिन विलमुन करीयै मन मैं तू तू ध्यान लगईयै वः सुरफकसी एक दंत मुष माहि विराजै ॥ लंबोदर पूरन सब काजै झपक सर्व देवा महि आदि तू दे दे देवा करत रही औं सदा सर्वदा सेवातः सुरफक ॥ सुंडादंड प्रवल जग माहीं गहुरीनंद देषत दुषद हई दास गरीव क्रपा करु मो पौन ॥ राग मलार तार सूधौ ॥ × × ×

विषय—राम और कृष्ण के संबन्ध में विविध कवियों के रचे पदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रन्थ में कई कवियों के पदों का संग्रह है । इसमें परमानंद, तुलसीदास, अग्रदास, ग्वाल, कान्हर, कुंम्भनदास, गोविन्ददास, नंददास, सूरदास, चतुर्भुजदास, हरिवंश, कृष्णदास तथा माधोदास आदिसुप्रसिद्ध कवियों के राम-कृष्ण संबन्धी पद हैं । प्रत्येक पद के ऊपर रागादि का नाम भी दे दिया गया है । ग्रंथ के आदि और अंत के बहुत से पत्र नष्ट हो गए हैं ।

संख्या २५०. पदसंग्रह, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—१० × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—७८४०, खण्डित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि— नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० दुर्गाप्रसाद जी, मु०—छपैटी, स्थान व पोस्ट—इटावा, जिला—इटावा ।

आदि—दीन हित वेद पुराननि गायो । भक्तवछल कृपालु मृदुल चित जानि सरन हौं आयो ॥ तुम्हारे रिपुकौ हौं अनुज विभीषन वंस निसाचर जायौ ॥ करि करुना भरि दिष्टि विलोकौ तब जानौं अपनायौ ॥ बचन विनीत सुने रघुनंदन तब हँसि निकट बुलायौ ॥ उठि भेटे भरि अंक भरत ज्यौं लंकपती मन आयो ॥ कर पंकज सिर धरसि अभय कियौ जन परहेत जनायो ॥ 'तुलसिदास रघुनाथ भजन करि किहिन परम पद पायो ॥ तेरी सौं मोरी आली री । मोहि सुनत वसुरिया सुधि न रहति तन की ॥ तनिक चकित होति मुष

जोति जगमगी, मनु तौ लगि रहौ उनही सौं ॥ घरमें पड़ी रहति गुरुजन घेरा घेरी सौं ॥ कैसी करिये कौलौं भरिए कुलकी कानि झँझटेरी । आनँदघन रस पान करन कौ, प्रान पपीहा तरफरात उरझेरी सौं ॥ राग टोड़ी ॥ वायें कर धनुष लिए दहिनैं कर सर सोहैं उरझे मुंषारविंद सोई रामचन्द्र हैं । नाथन के नाथ अनाथन सहाय होत ह्वै में विसारैउ जोई सोई मतिमंद हैं ॥ देवनि वंदि छोड़ी दुष्टनकौं दंड दीन्हों संतन सहाइ कीन्हों सोई आनंद के कंद हैं ॥ राजा रघुवंसमनि कृपा के कल्पतरू अग्रदास स्वामी सोई दसरथकौ नंद हैं ॥

अंत—राग टोड़ी ॥ ताल सूधो ॥ आगें आगें चल्यो जात भागीरथ कौरथ, पाछे ते आवति है तरंग रंग भारी गंग । झलमलाति जल की जोति, स्याम हरित दुति होति, रमिणी रमण मनौं सीस सीस मोती भरैं गंग । परसत भूपति ई लो भसमरूप ठौर ठौर उठि जागे-भए हैं सलिल अंग । नंद दास प्रभु अंगम के जंत्र छूटे सुरपुर सोर भयो सब चले एक संग ॥ रागविलावल-ताल कमाली ॥ चलहि राधिके सुजान तेरे हित सुष निधान, रासु रच्यो स्यामतट कलिंद नदिनी । निर्तत जुवती समूह रागरंग अति कुतूह वाजति रस समूह, अति मुरलिका अनंदिनी । वंसीवट निकट जहाँ, परमरम्य भूमि तहाँ, सकलसुषद मलय वहै वाउ मंदिनी । जानि इक दीवस कास, कानन अतिसै सुबास, राकानिसि सरद-मास विमल चाँदनी ॥ नर वाहन प्रभु निहारि लोचन भरि घोष नारि, नष सिष सौंदर्य काम दुष निकंदिनी । बिलसिहिं भुज ग्रीव मेलि भामिनि सुख सिंधुझेलि, नवनिकुंज स्याम केलि जगत वंदिनी ॥ सारग चौतौरा ताल ॥ दीनभयौ गज राज छीन भयो··········· (अपूर्ण) ।

विषय—विविध कवियों के रचे विविध राग एवम् विविध विषय संपन्न कुछ पदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत हस्तलेख में प्रायः अष्टछाप और उनके अतिरिक्त व्रज के अन्य कवियों की कविताओं (पदों) का संग्रह है । हस्तलेख खंडित है । लिपि भी इसकी अशुद्ध है । संग्रहकार का नाम एवं रचनाकाल-लिपिकाल अज्ञात हैं ।

संख्या २५१. पद संग्रह, कागज—देशी, पत्र—४२, आकार—१० X ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८०६४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बंगाली लाल जी, स्थान—अहलादपुर, पो०—इटावा, जिला—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ पद ॥ राग मलार ॥ वनचर कौन दिशा ते आयो । कहाँ वे राम कहाँ वे लछिमन कहाँ मुंद्रिका पायो ॥ हौं हनुमंत राम को पायक तुव सुधि लेन पठायो । रावन मारि तुम्हैं लै जातो राम अज्ञा नहिं लायो ॥ तुम डरपो मति मेरी माता राम जोरि दल आयो । सूरदास रावन कुल षोवन सोवत सिंह जगायो ॥ राग मारु ॥ तुम्हैं पहिचानत नाहीं वीर ॥ इन नैनन मैं कबहु न देष्यो राम लषन के तीर ॥ लंका वसत

देव अरु दानव उनके अगम सरीर। तो देखे मों जिय डरपतु हैं नैननि आवत नीर॥ तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्हीं तो जिय उपजी धीर। सूरदास प्रभु लंका कार आने सागर तीर॥

अंत—सुनि तमचुर को सोर घोष जाजरी। नव सत सात सिंगार चली ब्रज नागरी॥ ध्रुव॥ नव सत सात सिंगार अंग पाटंबर सोहै॥ एक ते एक विचित्र रूप त्रिभुवन मन मोहै॥ इन्द्रा वृन्दा राधिका श्यामा कामा नारि। ललिता अरु चन्द्रावली हो सखियन मध्य सुकुमारी॥ १॥ कोउ दूध कोउ दुहे वमहेरो लै चली सयानी। कोउ मटकी कोउ माठ भरी नवनीत मथानी॥ गृह गृह ते निकसि चली जुरी जमुना तट जाय। सबै हर्ष मन में कियो हो उठी स्याम गुण गाय॥ २॥ यह सुनि नन्दकुमार सोन दै सखा बुलाए। मन हर्षित भए आपु जाय सब सषा जगाए॥ सैन वैन दै साँवरे राखे द्रुमनि चढ़ाय। और सखा कछु संग लै हो रोकि रहे मग जाय॥ ३॥ एक सखी अवलों किंत वह सब अली बोलाई। यह वन में इकबार लूट हम लई कन्हाई॥ तनक फेर फिरि आइए अपने सुखहि विलास। यह झगरो सुनि होयगो हो गोकुल उपहास॥ ४॥ उलटि चली जब सखी तहाँ कोउ जानन पावै। रोकि रहे सब सखा............(अपूर्ण)

विषय—राम तथा कृष्ण की लीलाओं के कुछ पदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह के आदि अन्त और मध्य के कई पत्रे नष्ट हो गए हैं। इसमें अधिकतर सूरदास जी के पदों का संग्रह किया गया गया है। कुछ पद स्वतंत्र हैं और कुछ लीलाओं से संबंध रखते हैं। सूरदास के अतिरिक्त तुलसी, मीरा, ध्रुवदास तथा कृष्णदास इत्यादि अन्य कई कवियों की रचनाएँ भी दी गई हैं। इन रचनाओं में कुछ साधारण हैं और कुछ उत्कृष्ट भी हैं। लीलाओं के अतिरिक्त पदों के संग्रह करने में किसी भी नियम का निर्वाह नहीं हुआ है। संग्रह का बहुत सा भाग दीमक द्वारा नष्ट कर दिया गया है। जो पत्रे रह गये हैं उनमें भी दीमक ने छेद कर दिये हैं।

संख्या २५२. पद संग्रह, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—१० × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१००४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्यामाचरण जी कम्पाउण्डर, स्थान व डाकघर—अजीतमल, जिला—इटावा।

आदि—वृन्द्रावन कुँवर कन्हाई आजु लीन्हे भीर ग्वाल बालन की घेरि लियो समुदाई॥ वृन्द्रावन की कुंज गलिन में छीनि छीनि दधि खाई॥ कोऊ सषी कहुँ जानन पावै गहि बहियाँ बैठाई॥ काहू की चुनरी गहि फारयौ काहू की धरै कलाई, कहा न माने नन्द महर को वर बरन करैं ढिठाई॥ सूरदास बलिजाऊँ चरनन की, तिन मोहि लियो अपनाई॥ २०॥ रंग चुवै गुलाबी नैनों से। काजर दिहैं नैन की कोरवा बोले मधुरी वैनों से। वैंदी भाल जराऊ टीका झलक दिखावै अैनों से॥ सारी सुरख पहिरि अँगनिवा ठाढ़ी पियहि वोलावै सैनों से॥ सूर स्याम याही रस अटके रसिया मोहन चैनों से॥२१॥

अंत—वनि आए की वतियाँ सषियाँ, मोहन जाइ मधुपुरी छायो। बृज की छाँड़ि सुरतिया अवतौ प्रीति कियौ कुवरी सो—भोग कियो दिन रतियाँ॥ जो कछु देषत भै लागत टेढ़ि मेढ़ि वहु भँतियाँ। सो कुविजा अब भई सुन्दरी मनहुँ नवल जुवतिया॥ गोबर हारी कंस रजा की लषत हुकम की पतिया। सो कुविजा माधव संग विहरै, होइगै पूरि सवतिया॥ ज्यों ज्यों सुधि आवै कुबिजा की; त्यों त्यों कसकति छतिया। काह कहैं माधव को सजनी, जिन मोहि दीन विपतिया॥ ऊधो जाइ कहौ माधव सौं, करिहैं मोर सुरतिया॥ सूर स्याम विनु विकल राधिका तलफि मरै दिन रतियाँ॥

विषय—कृष्ण राधिका के बाल चरित्र सम्बन्धी कुछ पदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक में सूरदास रचित कृष्ण राधिका के प्रेम सम्बन्धी कुछ पदों का संग्रह है। संग्रह कब और किसने किया? इसका कुछ पता नहीं चलता। इसका प्रस्तुत हस्तलेख खंडित है और साथ ही साथ दीमक का खाया हुआ है। संग्रह में किसी विषय क्रम को स्थान नहीं दिया गया है।

संख्या २५३. पद संग्रह, कागज—मूँजी, पत्र—३९, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४८२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री गोकुल विहारी जी का मन्दिर, स्थान—वल्लभपुर, पो०—गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—× × × राग टोड़ी। तेरे अंग लाल सारी सोहे। एक ओर घूँघट पट अरुन उदै हैं मानो एक ओर चन्द किरनि मोहे, विथुरी अलक मानो वदरन झाई, चमक दसन मानो चपला सी जोहे, वल्लभ पीय आय आनन्द घन, बरखावत कोटि काम मन मोहे। राग विलावल। वल्लभ लाल साँची कहो क्यों न बतियाँ, हमसों अवधि वदि अनत विलम रहे, कहाँ रहे सब रतियाँ, तुम वहु नायक सब सुखदायक ऐही तिहारी गतियाँ; वल्लभ पीय अब नैन उर आन सुफल करों मेरी छतियाँ।

अंत—राग सोरठ। सुन्दर दूलह की बलिहारी; लटकत आवत गाँठि जोरि घर, संग दुलहिन सुकुमारी; सीस सेहरो सोभित दोऊ सिर हीरा जटित मुक्ता री; पान खात मुसक्यात परस्पर गरे सों हार निवारी; मंगलचार बधाई करत सब, नाचत देकर तारी; देत असीस चिर जीवो वल्लभ पीय तन मन धन वारी।

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य्य जी के जीवन सम्बन्धी गीतों का संग्रह। विशेषतया उनके जन्मोत्सव और विवाह आदि के गीत हैं।

विशेष ज्ञातव्य—पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य जी हैं। उनको भगवान् का अवतार समझा जाता है। उनकी पूजा अर्चना उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार श्री ठाकुर जी की। उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य-मुख्य घटनाओं के उत्सव साल भर तक मन्दिरों में मनाए जाते हैं। ऐसे ही गीतों का प्रस्तुत संग्रह में संकलन किया गया है। पद छोटे और भावपूर्ण हैं। उनमें कवित्व है। संग्रह साधारण तथा अच्छा है।

संख्या २५४. पद संग्रह, कागज—मूँजी, पत्र—१९४, आकार—१३ × ६ इंच, पंक्ति—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३१४, अपूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बिहारीलाल ब्राह्मण, नई गोकुल, गोकुल, मथुरा ।

आदि—पद जागिबे के राग विभास । छगन मगन जागो भयो प्रात; रोहिनी कहत चिरैयां बोली बोलत है तोय जसुमति मात; सबल तोक मंगल मधु मंगल, सबही गौ चरावत जात; उठो लाल तुम करो कलेऊ, पीछे एक कहूँगो बात; उठि के लाल आँगन में आए, दोऊ भैया मिलि माखन खात; रामदास प्रभु दोऊ ढोटन को हँसि हँसि श्री मुख निरखत तात ।

अंत—रथ पर राजत सुन्दर स्याम; रतन जड़ित आभूषन कोटी उदय भये भान; मन कंचन रथ आजु सीं गायो नन्दराय के धाम; रथ चढ़ चले मदन मोहन पीय ढिग भैया बलराम; मात जसोदा करत आरती मंगल गावत वाम; हरिनारायण स्यामदास के प्रभु पूरे मन के काम ।

विषय—जगाने के गीत, २—मंगला भोग के गीत, ३—कलेऊ खण्डिता, पनघट, जमुना, पोढ़िबे आदि के पद, ४—बाललीला; होरी-धमार, फूल डोल, बसन्त आदि के पद; ५—महाप्रभु तथा गुसांई जी की बधाई, ६—हिंडोरा और झूलने के पद ।

नीचे लिखे कवियों के पद इस संग्रह में हैं :—

अष्टछाप, कल्यान, हरिनारायन, स्यामदास, व्यास, रामराय, रामदास, तुलसीदास, धोंधी, वृन्दावन हित, दामोदर हित, आसकरन, हित हरिवंश, आनन्दघन, चतुर बिहारी, हरिदास, विष्णुदास, रसिक प्रीतम, गरीबदास, लालदास, कटहरिया, गोपालदास, गदाधर, द्वारिकेस, गिरधर आदि ।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रह किसी प्राचीन ग्रन्थ से नकल किया हुआ मालूम होता है । अष्टछाप के अतिरिक्त और भी पद रचयिताओं के गीत इसमें आये हैं । रामराय, गरीबदास, लालदास और कटहरिया खोज में सर्व प्रथम आये प्रतीत होते हैं । बीच में महाप्रभु वल्लभाचार्य्य तथा गोकुलनाथ जी गोसांई के जन्मोत्सव के भी छोटे-छोटे भाव पूर्ण गीत आए हैं ।

संख्या २५५. पद संग्रह (अनुमानिक), कागज—बाँसी, पत्र—३३, आकार—११ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—३८१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री चन्द्र घमण्डी, स्थान—धनिगाँव, पो०—भैंसई, मथुरा ।

आदि—धनाश्री ॥ आज मैं नन्दहि जाचन आयो; जनम सुफल करिबे को मैंने रहसि बधायो गायो; महरि कहत या बालक के गुन किनहुँ नाहि बतायो; भलो भलो सब लोग कहत हैं सब ग्रंथन में जनायो; प्रथम रूप संखासुर मारयो कमठपीठ ठहरायो; श्री वाराह नृसिंह अवतरयो बालि पाताल पठायो; परशुराम क्षत्रिन के कारन केऊ राज छुड़ायो; रामरूप धरि रावन मारयो लंक विभीषन पायो; श्री भक्तन हित गोकुल प्रगटे

गोपिन प्रेम बढ़ायो; गिरि गोवर्धन सात धोस लों बाये हाथ उठायो; मारयो कंस केसी हनि डारयो और ही साल सलायो; महरि कहत यह भलो दसो दिस सब दिन के मन भायो।

अंत—तुम जु मनावत सोई दिन आयो। अपनो बोल करो किन जसुमति, लाला घुटुरुवन धायो। अब चलि है पायन ठाढ़ो ह्वै महरि बजाय बधायो। घर घर आनंद होत सबन के दिन दिन होत सवायो। इतनो वचन सुनत नन्दरानी, मोतिन चौक पुरायो। बाजत तूर तरुनि मिलि गावत लाल पढ़ा बैठायो। परमानंद रानी धन खरचत ज्यो विधि वेद बतायो। जा दिन को तरसत मेरी सजनी गहि अगुरियाँ धायो।

विषय—निम्नलिखित भक्त कवियों के कृष्ण जन्मोत्सव एवं उनकी बाल क्रीड़ाओं के गीत इसमें आए हैं:—१—सूरदास जी, २—कल्यान, ३—परमानन्द, ४—रसिक, ५—विट्ठल गिरधरन, ६—चतुर्भुज, ७—नन्ददास, ८—व्यास, ९—ब्रजपति, १०—वृन्दावन हित, ११—गोविन्द।

संख्या २५६. पदसंग्रह, कागज—देशी, पत्र—१००, आकार—७½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२३००, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मा० छिद्दू सिंह जी, स्थान—सिहाना, डाकघर—जैंत, जिला—मथुरा।

आदि—जन्माष्टमी की बधाई के पद लिष्यते ॥ राग विलावल ॥ मोद विनोद आज ग्रहनंद। कृष्णपक्ष भादौं निसि आठे प्रगटै गोकुल चंद ॥ १ ॥ वंदन वारि ओंर विद मनोहर वीचबने पट की रस छंद। गोपी ग्वाल परस्पर छिरकत पुलिकतवें हेरत मतिगयंद ॥ २ ॥ भवन द्वार गोमें वर मंडित वरषत कुसुम उपमा इंद। विट्ठलदास हरद दधि मधु घृत रंजित दान करत मकरंद ॥ ३ ॥ आज नंद जू के द्वारें भीर। गावत मंगल करत कुलाहल आनंद प्रेम मगन अहीर ॥ १ ॥ एक आवत एक जात विदा ह्वै ठाढ़े मंदिर के तीर। एक जू तिलक रोचना माथे एकन को पहिरावत चीर ॥ २ ॥ एकन गऊ दान देत हैं एकन को मन राखत धीर। सूर सुमत वड़भागि तिहारे धन्य जसोदा के पुन्य सरीर ॥ ३ ॥ × ×

वृषभान लडैती दान दै। अहो प्यारे सवै सयाने साथके, तुमहू सयाने लाल हो। लिष्यो दिषावो सांमरे कब दान लीनो पशुपाल हो ॥ ३ ॥ नन्दराय लला घर जान दे। अहो प्यारी ले आये तो लेंइगे और नई न करि हैं आजु हो। मोहि नित्त राय पठै वही सों वीरा दै ब्रज राज हो ॥ ४ ॥

अंत—मलार के पद ॥ अपने हाथ पथन को छदना मौहू को करि देहू। भीजत है मोरी सुरंग चूनरी ओढ़ पितम्बर देहू ॥ १ ॥ तैं ओढ़े मेरे दुरको अचरा तापर कामर देहू। "रामदास" प्रभु रस वस भोजै गावत बाल सनेहू ॥ २ ॥ हिंडोरा के पद ॥धनाश्री॥ हिंडोरना हो रोप्यौ नंद अवास। हिंडोरना हो मनमें भूमि सुवास। हिंडोरना हो विस्वकर्मा श्रुतिधार। हिंडोरना हो कंचन संभ सुढार ॥ छंद ॥ कंचन षंभ सुठार डांडी रसाल भवरा छविरंगे। हिरा पिरोंजा कनक मणिमय जोति चहुँदिसि जगमगे। चित्त फटिक प्रकास

चहुँ दिसि कहा कहों निरमोलना। कहै "कृष्णदास" विलास निसिदिन कहाकहो नंदभवन हिंडोरना॥ १॥ × × × तू राषिले री झोटा तरल वहैं। इत नव कुंज द्वार कदंव पर चित जात उत जमुना तट लोग हैं॥ १॥ आवत जात पटल पटांतल तन सों ऊपर वितान फल फूल छहैं। 'कल्यान' के प्रभु गिरिधरन रसिकवर झूलत हैं नये नहैं॥ २॥ ॥ पवित्रा॥ पवित्रा पहिरत गिरधर लाल। रुचिर पाटके फोंदना करि करि पहिरावत सब बाल॥ १॥ आस पास सब सषा मंडली मानौ कमल अलि माल। 'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहन गोवर्धन धर लाल॥ २॥ इति पदावली।

विषय—१—जन्माष्टमी की बधाई के पद ३३, पत्र १० तक। २—ढाढ़ीन के पद ३, पत्र १०। ३—पालना पद ७, पत्र १०। ४—छठी २, पत्र १२। ५—दसौंधी पद २, पत्र १३। ६—अन्न प्रासन पद २, पत्र १३। ७—करन छेदन पद २, पत्र १३। ८—राधाष्टमी बधाई पद १६, पत्र १४। ९—राधाष्टमी के ढाढीन के पद २, पत्र १७। १० राधाजी के पलना के पद २, पत्र १८। ११—दान के पद २०, पत्र १९। १२—वामन जी के पद २, पत्र २९। १३—नवविलास के पद ९, पत्र ३०। १४—सांझी के पद २, पत्र ३२। १५—करषा के पद ४, पत्र ३७। १६—दसहरा के पद ४, पत्र ३८। १७—विवाह के पद १, पत्र ३९। १८—विवाह के खेलवे के पद १, पत्र ४०। १९—नवनागरी के पद १, पत्र ४०। २०—रासके पद ५, पत्र ४२। २१—अंतरध्यान के पद २, पत्र ४३। २२—धनतेरसि के पद ३, पत्र ४३। २३—रूपचौदसी के पद २, पत्र ४४। २४—अन्नकूट के पद २, पत्र ४४। २५—अन्नकूटके पद ६, पत्र ५०। २६—गायखिलायवेके पद २, पत्र ५१। २७—दीपमालिका के पद २, पत्र ५२। २८—कान्ह जगाइवे के पद ४, पत्र ५३। २९—हटरी के पद २, पत्र ५३। ३०—इन्द्रकोप के पद ४, पत्र ५३। ३१—भाईदूज के पद २, पत्र ५४। ३२—गोपाष्टमी के पद २, पत्र ५४। ३३—प्रबोधनी के पद ४, पत्र ५५। ३४—गुसाईं जी के बधाई के पद २३, पत्र ५५। ३५—वसंत के पद १८, पत्र ६०। ३६—धमारि कीर्तन के पद २२, पत्र ६३। ३७—डोल के पद ६, पत्र ७५। ३८—फूलमंडली के पद १६, पत्र ७६। ३९—रामनवमी के पद २, पत्र ७९। ४०—आचार्यजी की बधाई के पद १६, पत्र ८०। ४१—अक्षयतृतीया के पद २, पत्र ८२। ४२—नृसिंहचतुर्दसी के पद २, पत्र ८३। ४३—स्नानयात्रा के पद ३, पत्र ८३। ४४—रथयात्रा के पद २०, पत्र ८४। ४५—मलार के पद २७, पत्र ८४। ४६—हिंडोरा के पद २३, पत्र ८८। ४७—पवित्रा और राखी के पद ४, पत्र ९८।

संख्या २५७. पद संग्रह (गुटका), कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—५ × ३ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—३४०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकर लाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन बल्लभाय नमः॥ राग सारंग॥ दिन दूले मेरो कुँअर कन्हैया। नित उठि सखा सिंगार बनावत, नित आरती उतारत मैया। नित उठि आंगन

चन्दन लिपावति, नित ही मोतिन चौक पुरैया ॥ नित उठि मंगल कलस धरावत, नित ही वन्दनवार बधैया। नित उठि ब्याह गीत मंगल धुनि नित सुरनर मुनि वेद पढ़ैया; नित नित आनन्द होत वार निधि नित ही गदाधर लेत बलैया ॥ राग टोढ़ी ॥ कनक कुंडल मण्डित कपोल अति गौरज छुरत सुकेस; मद गज चालि चलत सुरभिन संग लाड़िले कुमार ब्रजेस; नैन चकोर कीये ब्रजवासी पीवत वदन राकेस; अति प्रफुलित मुख कमल सवन के गोप कुल नलिन दिनेस; अति मद तरुन विधुनित लोचन अति बिगसत रस कृपावेस; चितवत चल माधुरी वरखत गोविन्द प्रभु ब्रज द्वारे प्रवेस।

अंत--राग अड़ानो। आज माई बनेरी लाल गोवरधन धर; रतन जड़ित छाजे पर बैठे वृन्दारन्य पुरन्दर; ग्रथित कुसम अलका वलि अति छवि, धुनित मधुप अबतंसन पर; लटकि लटकि जासी दामा अंस, मधिहँस मिलवत करसों कर; मानो कौस्तुभ हृदे पदक विराजत कंठ माल अरु मोतिन को लर; गोविन्द प्रभू जू सकल ब्रज मोह्यो, कंठ मेलग जलन सुन्दर वर। × × ×

विषय—भगवान् कृष्ण का शृंगार और उनकी केलियों का भक्ति पूर्ण वर्णन किया गया है।

संख्या २५८. पद संग्रह (गुटका), कागज—काश्मीरी, पत्र—६२, आकार—५ × ३$\frac{1}{3}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—७४४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकरलाल समाधानो, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि— × × × दोऊ भैया जैमत मा आगें; पुनि पुनि लेत दधि खात कन्हाई और जननि पै माँगे; अति मीठो दधि आज जमायो बलदाऊ तुम लेहू; देखोधों दधि स्वाद आप ले ता पाछे मोहि देहू; वलि मोहन दोऊ जेंमत रुचि सों सुष लूटत नँदरानी; सूर स्याम अन कहत अघानो अचवन माँगत पानी। भाजि गयो मेरो भाजन फोरि; लरिका सहस एक संग लीनो नाचत फिरत साँकरी खोर; मारग तो कहू चलन न पावै धावत गोरस लेत अजोर; सकुच न करत फाग सी षेलत तारी देत हँसत मुख मोर; बात कहों तेरे ढोटा की सव ब्रज बांध्यो प्रेम की डोर; टोना सो पढ़ि नावत सिरपर जो भावे सो लेत है छोर; आपु खाई सो सव हम जाने औरनि देति सींकहरि टोर; सूर सुतहि वरजो नन्दरानी अव तोरत चोली वन्द डोर।

अंत—केदारो। प्यारी तूँ देखि नवल निकुंज नायक रसिक गिरवर धरन; सकल अंग सुखरास सुन्दर सुभग साँवरे वरन; सहज नटवर भेष दरसन नयन सीतल करन; कर सरोज परसत जुवती जन मन हरन; वेगि चलि मिलि गुन निधान साज पट आभरन; चतुर भुज प्रभु नवरंगे नायक सुरत सागर तरन। पोढ़िये प्यारे गिरधरन राय; नवल नागर कुँअर राधिका सोहत सेज विछाय; नाना फल सुगन्ध वोहत रची सोंधो वर वीर

बनाय; साज सिंगार सकल मृग नैनी अंग अंग बहुते भाय; अद्भुत रीत देखि मन मोहन आतुर पग धरयो धाय; चत्रभुजदास प्रभु रसिक सिरोमनि मिले रसिकन भेंट उर लाय। × ×

विषय—राधाकृष्ण की लीलाओं संबंधी पदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रति बहुत प्राचीन विदित होती है। संभवतः १७ वीं शती पूर्वार्द्ध की है। गोकुल के जिस संग्रहालय से यह ग्रंथ विवरण के लिये प्राप्त हुआ है वह अष्टछाप कवियों के समय का है। वल्लभाचार्य के समय से ही शंकरलाल समाधानी के पूर्वज वल्लभ कुल के शिष्य होते चले आ रहे हैं। गोकुलनाथ जी के मंदिर में प्रबन्ध करने का उनका ही पैत्रिक अधिकार है। उनके पीछे जो समाधानी की पदवी लगी है उसका मतलब प्रबंधक से है। किसी समय गोकुलनाथ जी के मंदिर पर मुसलमानों के आक्रमण का भय था। उस गड़बड़ में अष्टछाप के जमाने के जितने भी हस्तलिखित ग्रंथ थे वे सब समाधानी जी के पूर्वजों के पास रख दिये गए थे। पीछे जब व्यवस्था हुई तो उन्होंने मंदिर को वापिस नहीं दिया। हस्तलेखों को भी वे किसी को नहीं दिखलाते। मंदिर के अधिकारियों को भी बड़े परिश्रम के बाद कभी-कभी एक दो ग्रंथ दिखला दिये जाते हैं। मेरे ख्याल से मथुरा का यह सबसे प्राचीन संग्रह है और इसमें १६वीं-१७वीं शताब्दी के ग्रंथ हैं जो जीर्णावस्था में हैं। प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ अष्टछाप के समय का है। आधुनिक प्रचलित पदों से इसके पद अधिक प्रामाणिक हैं। खोज में ग्रंथ मूल्यवान है।

संख्या २५९. पद्य की पोथी, कागज—देशी, पत्र—२३, आकार—८ × ५३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—११०४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामचन्द्र जी वैद्य, स्थान व पोस्ट—करहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—× × × सुगन्ध लगाइके ऊभि मरौ, औ वोझ मरौ पहिरे तन सारी। हार चमेली को भारौ लगै, पिय जानत हो हमरी सुषवारी॥ मेरे स्वभाव को पावो नहीं, रसखान गुलाव मुलायम सारी॥ और अभूषन का वरनौ, मेरे पाँव महावर लागत भारी॥ काहे को मसतावत मोहि, पिया विन नीकौ न लगै न कोई। एक समै सपने भई भेंट, भली विधि सों लपटाइ कैं सोई॥ सोवत ते जव जागिपरी चहुँओर चितयके मिलो नहिं कोई। मेरी सखी दुष कासों कहौं, मुसकाय हँसी हँसिकैं फिरि रोई॥ एक दिन जो अटा पै चढी दै काजर और लै अरसी॥......गार सिंगार करै और मोतिन मांग भरी लरकी। जब सुधि आइ गई पिय की सखि रस की बूँदन दरसी। पपिया जन पियो रटो नहीं जिउ गिरी ग्रह खाय कबूतर सी॥ एक दिना जो अटा पै चढ़ी है काजर और लै अरसी॥ कमलन में कमल नैन मोतिया मदनमोहन, निरगस में नरोत्तम निहारी है। गुलछाप में बिहारी चपा में चतुरभुज गुल दाउदी में दामोदर वसौ विहारी है। जाफरान में जगन्नाथ सेवती में सीताराम कदम में कन्हई अलाल अच्छ छवि तेरी है। कहत है नंदकिसोर लाल गुलाव में गुपाल लाल चमेली विराजति है गीरधारी लहै॥

अंत—आली गई हुती कानन में रितुराज को आजु समाज लषी है। फूली लता त्रिकसे तरु पुंज निकुंज के पाइ हिए हरषी है ॥ भेंटे मृगा हरणी को निशंक दुरे वनितान में अंगरिषी है। वान से मालती फूल पै भौंर मनौ मधु काम को नाम लिषी है ॥ चूमि कै चख सों प्यारी परोसिन को मुख आइ अरथौ रस भीनो। काम कला न प्रकाशन को फिरि धाइकैं...................... (अपूर्ण)

विषय—कुछ श्रृंगारात्मक कवित्तों तथा सवैयों का संग्रह ।

संख्या २६०. पद संग्रह, कागज—स्यालकोटी, पत्र—१४, आकार—१० × ८ इंच, पंक्ति—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४३०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० दुर्गा प्रसाद जी ब्रह्म भट्ट, लालदरवाजा, लक्ष्मीदेवी की गली, मथुरा ।

आदि— × × × दाम ही ते इज्जति बड़ाई होत दाम ही तें, दाम ही ते देव पूजा दाम ही ते धामु है। दामही तीरथ मिलाप होत, दाम ही ते, दाम ही ते भाई बन्द दाम ही ते कामु है। दाम ही जस लाग्यो फिरे देवी दास, ज्यापै नहीं दाम ज्याकौ सूखि जातु चामु है। राजा उमराव बादशाह केह करै न बात, बोसो बिसैं देखि देखौ दाम ही में रामु है।

अंत—करत निरन्तर गान तान सुन वौही चाहत। लोचन चाहत रूप रैन दिन रहत सराहत। नासर अतर सुगन्ध चहै पुषपन की माला। तुचा चहै सुख सेज संग कोमल तन वाला। ये रसना हूँ चाहत रहत, नित खट्टे-मीठे चरपरे। इन पाँचन से परपंच मिलि भूषन कूँ भिक्षुक करे। × × ×

विषय—उपदेशात्मक कवित्त, सवैया, छप्पय आदि का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—कबीर, ग्वाल, देवदास, ब्रह्म. तुलसी, सुन्दर, वैताल, केशवदास, प्रभुदयाल, ठाकुर और पद्माकर आदि कवियों की कविताएँ इस संग्रह में आई हैं।

संख्या २६१. पद्यावली, कागज—देशी, पत्र–२१, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३४४, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रघुवर दयाल जी, स्थान—सिरसा, पोस्ट—इकदिल, जिला—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ पद्यावली लिष्यते ॥ सुषद कदम तर राजत जोरी। नवल किशोर निचोर रूप के नंद नँदन वृषभान किसोरी। जिनके वदन सदन सुषमा के कोटि मदन रति छबि सोऊ थोरी ॥ चष झष जोरि मुष विहँसत करत परस्पर चित चोरी। स्याम गौर पटपीत नील जुत घन दामिनि अविचल इकठौरी ॥ मुकुट चन्द्रिका प्रभा भानुजनु भूषन उडगन जुत निकसौरी। लषि सब भाँति अलौकिक लीला गति मति भारति की भइ भोरी ॥ दास भवानी मति ललचानी चहत दरस यह गुरुहि निहोरी ॥१॥ ॥ मनहरण ॥ शेष विहगेश में गजेश तुरगेश में, नगेश में नदेश वानरेश में आभूति है। इन्दु में अरुण में अगिनि में वरुण में, वनद में धनद में अनिल में अकूति हैं ॥ शमन सुरेश

में मनोजहू गनेश में, विधि माधव महेश में वाहि की करतूति है। रस रूप अमित हिसा में ना किसा में एक, दसहू दिसा में रामै चन्द्र की विभूति है ॥ २ ॥ दोहा ॥ विद्या बुद्धि विवेक नहिं, कछु अवलंब न आन। छवित करे मो कवित मों, कविताई हनुमान ॥ ३ ॥

अंत--डारि द्रुम पालन बिछौना नव पल्लव के, सुमन झँगूला सोहै अति छवि भारी है। पवन झुलावै केकी कीर बतरावै देव, कोकिल हिलावै हुलसावै करतारी है ॥ पूरित पराग सों उतारा करैं राई लौन, कंजकली नायिका लतान सिर सारी है। मदन महीप जू को बालक वसन्त ताहि, ताहि प्रात हिये लावत गुलाब चुटकारी है ॥ आजु मन भावन को पाइकै मयंक मुखी, परी परयंक पै निशंक विहरति है। जोर सों मजे ही मजे करति रसीली रति, लंक लचकाय चाव चौगुनो भरति है ॥ कवि रतनेश वेश नाज सों निहारि हँसि, छपकि छबीली हौंस हिय की हरति है ॥ धरति धीरे से हाथ फेरि पीठि पीतमकी, मनो रस रंग जंग सावस करति है ॥ × × × (शेष लुप्त)

विषय- श्रृंगार, प्रेम, उपालंभ, नायिका भेद, ऋतु वर्णन, नख-शिख, भक्ति तथा ज्ञान सम्बन्धी पद्यों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत हस्तलेख एक संग्रह ग्रंथ है। संग्रहकार के संबंध में कोई बात विदित नहीं होती। विविध विषय संपन्न पद्यों का इसमें संग्रह है। विषय क्रम का ध्यान नहीं रक्खा गया है। जहाँ जिस विषय का छन्द मिला वहीं उसको लिख दिया गया है। संग्रह का अन्तिम भाग नष्ट हो गया है।

संख्या २६२. पालने के पद, कागज—बाँसी, पत्र—२६, आकार—९ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)--१२, परिमाण (अनुष्टुप्)--६४४, पूर्ण, रूप--प्राचीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान--श्री बिहारीलाल ब्राह्मण, नई गोकुल, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः अथ पालने के पद लिख्यते ॥ चक्षुश्रवा ग्रीव को पलना ललना तिहि माँझ झुलावति हैं। युवती मुख पंकज वंक चिते मिलि के क्षिति को सुत गावति हैं। व्रजराज त्रिया कर डोर गहे गरुवे गरुवे हुलरावति हैं। दास गुपाल भले व्रज नारी मिलि ऐसेई लाड़ लड़ावति हैं ॥ यह नित प्रेम जसोद जू मेरे तिहारे लाल लड़यावन को। प्रात समय पालने झुलाऊँ संकट भंजन जस गावन को ॥ नाचत कृष्ण नचावत गोपी सों ताल बजावन को। आसकरन प्रभु मोहन ढोटा निरखि वदन सचुपावन को ॥

अंत—झूलो झूलो हो पलना। जिनिक रोओ रे हँसो मेरे ललना। तुमको और मगाऊँ खिलोना, काहे को हठो खेलो मेरे छोना। हो ढिंग बैठी तोहि झुलाऊँ, गीत नये नये तोहि सुनाऊँ। देखि लटकत केसो ऊपर फूँदना, दोऊ कर रबकि गहे नन्द नन्दना। तेरे चरन के नुपुरु बाजें, श्रवन दे सुनि खटपद गाजें। सद माखन तेरे कर देहौं, मुख में मेलि बलैया लेहौं। क्यों रोवे मेरे बहुत दुखन को, मोको दायक सकल सुखन को। दुलरावति सुत को नन्दरानी, रसिक सनेह भरी मृदुबानी ॥

विषय—कृष्ण को सुलाते समय की जसोदा की बहुत ही मधुर लोरियाँ इसमें दी गईं हैं।

विशेष ज्ञातव्य—हिन्दी साहित्य में लोरियों की चर्चा अभी ही हुई है। ग्राम्य गीतों के साथ-साथ बहुत सी प्रकाशित भी हो गई हैं। प्रस्तुत संग्रह ग्रन्थ में अष्ट छाप के कवियों की लोरियाँ संगृहीत हैं। इस दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है। इसके बहुत से गीतों में कोमल भावों का बहुत ही सुन्दर प्रदर्शन है। उनका मधुर स्पर्श हृदय में स्थाई गुदगुदी छोड़ता है। प्रस्तुत संग्रह देखने में सवासौ वर्ष पुराना मालूम पड़ता है। समय का उल्लेख नहीं है। अक्षर बड़े-बड़े और सुन्दर हैं।

संख्या २६३. पावस, कागज—देशी, पत्र—४, आकार—८ × ५३ इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० इच्छाराम जी मिश्र, स्थान—करहरा, पो०—सिरसागंज, जिला—मैनपुरी।

आदि—सावन आवन हेरिसखी मन भावन आवन चोप विसेखी। छाये कहूँ घन आनंद जानि सम्हारि के ठौर ले भूलि विसेखी। बूँद लगै जब अंग उदौ उलटी गति अपने पापीन पेखी। पौन सो लागति अग्नि सुनी है सो पानी सो लागति अग्नि न देखी॥ चहुँ ओर उठी घन घोर घटा वन मोर करे सखी सोर खरें। ब्रज ओर निहारि निहारि तिया कहि बैन इतै दोऊ नैन भरे। आवत नाहिन लाज तुम्हें फटि जाउन पापी हो प्राण अरे। जिन बीचन हार परे कवहू तिन बीचन आजु पहार परे॥ २॥ लाग्यो अषाढ़ सबै सुख साजन मों जिय में विरहा दुख बोई। सामन में सब केलि करें मैं अकेली परी संग साथ न कोई। कैसे जिओं ए सजनी ऋतु पावस में घनश्याम वियोगी। कौन सो चूक परी विधना बरसात गई परि साथ न सोई॥ ३॥ लागे अषाढ़ सबै घर आवत देस विदेस रहैं नहिं कोई। मानस की कहिये जु कहा पशु पंक्षी सबै वस काम के होई। कोई सखी मुख मोरि हँसे यह पावस देखि तिया रति जोई॥ ४॥

अंत—नहिं मधु मास नहीं झर मेंह नहीं घन गर्ज सुनी घन की। नहिं ऋतु पावस बोलहि मोर नहीं वह भूमि हरी झुमकी। नहिं मधु मास के न भली नहीं वह पपिया कूक दई पिय की। लंकेस बड़ो अचरज्ज भयौ विन वादर वीजु कहाँ चमकी॥ हेम पुरी त्रिपुरारि पुरी कैलासपुरी शिव शंकर की। सागर बीच बसै तट तीर सो देव अदेबहु पावन की। खेलत नारि विना संगसार सुपासिन को जब ही हरि की। महाराज भनैं अचरज्ज कहाँ विन वादर वीजु उहां चमकी॥ भारी सेन साजि के समूहरी अषाढ़ आयौ, प्रीतम तो विदेश प्यारी विरहाओ सहेलीपै। दादुर उर मोर सोर करत चहुँओर धाय दावती अँधेरी रैनि भावती हवेलीपै। कहे पदमाकर घन माते मतन्ना ज्यों मदन नगारेदै आओ अलबेली पै। पावस झुकि झूमि आओ एते दल साजि आओ विरहानि अकेलीपै॥ साउन माँस भयो मन भावन घोर घमंड धरा महराई। खेलत को बल माहि चली मिलि संग सखी वनि अंग सुहाई। वृन्द कहै फिर आवत ही घन की घन बूँदर सों छिति छाई। क्यो न उताल सुचाल चली वहु भींजत भींजत गेह लों आई॥

विषय—पावस वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह में महाराज, पद्माकर, वृन्द, घनानंद और अन्य कई कवियों के पावससम्बन्धी गीतों का संग्रह है।

संख्या २६४. पवित्रा मंडल, कागज—मूँजी, पत्र—८६, आकार—११ × १० इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—३०९६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—संवत् १८७४ वि० = सन् १८१७ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री बिहारीलाल ब्राह्मण, नई गोकुल, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजनवल्लभाय नमः ॥ श्री दामोदरायनमः ॥ एक समें श्री महा प्रभू जू चातुर्मासा श्री गोकुल में विराजत हे सो श्रावण सुदि एकादशी को श्री प्रभु जू ने दामोदर दास जू अरु परीक्षित जू अरु वैष्णव पाँच सात हते। वा समी अकस्मात ही ॥ अरु पविन्त्रा एक-एक इनको दीयो अस कहा महाबन तथा मथुरा जाओ ॥ अरु ऐसी भाँति की पवित्रा करिवायला। सो पचीस सो महा प्रभु जू आगम की रीति देखि जानि के पवित्रा करते सो सूत तीन सै साठि तार प्रमान विंलाद चारता को दूनो एसो करते। अरु वैष्णव हू एसे सूत ही के करते ॥ सो अपने सेव्य तथा श्री महा प्रभुजी कों पहिरावतो ॥ याके लिये जो तीन सै साठि सूत १ गुंजा यह विचार लौकिक लोकन के मुखतें सुनतें ॥ अरु आगम शास्त्र हू कहते। अरु प्रभु सों कछु इनके वैष्णवहू न पूँछते वे सूधे वैष्णव हुते। अरु मारग हू नौतन हुतो। अरु श्री प्रभू जू हू ऐसे ही करते। याको अभिप्राय जानते पर कहते नहीं। अरु कोऊ पूँछे तो कहे।

अंत—याते जो काहू सो कहवे की श्री महा प्रभु जू की आज्ञा नाहीं इतनी बात श्री दामोदर दास जू नें कही तब रस मत्त जू ने दावत कीनी अरु कही जू यह अग्नि मण्डलाकार करि श्री महाप्रभु जू को जन्म समे वेष्टित भई सो याको कारण कहा सो कृपा करिके कहो जू सो कहत है जो एक तो बालक चरित्र वरदन समें अरु दूसरो तो चोरी संकेत वरद करिकें जन्म लीला संवाद रस-भस्म करि अग्नि अवतार कनके पालना संकेत द्वारद कीने पांछे आनन्द मन उलस के जायकें श्री कृष्ण जू कों भेट कीनी अस उद्धारणो सो दृष्टि रूपीन करते इन लोकन के तो अग्नि मण्डलाकार हें काहे कों करते तब तो कर्ण रूपी निवेदन न होतो पाछें एक दोय जन्म में उद्धार करते तब श्री ठाकुर जी ने विचारि कें कही श्रम वम बहुत होइगो। अरु जैसो यह एक ही बेर उद्धार भयो। अरु या उद्धार में इहां वेग पधारि न सके तो उद्धार करत करत बहुत दिन बीतते। ताते याही तरें को उद्धार कीये यह जाननों ॥ इति श्री पाविन्त्रा मंडल भाषा में समाप्तं ॥ लिखितं भट्ट कान्ह जी श्री गोकुल मध्ये यमुना तटे। मिती द्वितीय श्रावण सुदि २ संवत् १८७४ ॥

विषय—संस्कृत में वल्लभ संप्रदाय का एक ग्रंथ 'पविन्त्रा मण्डल' नाम का है जिसका प्रस्तुत भाषान्तर किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—गद्य में होने से ग्रंथ महत्व का है। मूल ग्रंथ संस्कृत में है। उसी पर यह भाष्य है। भाष्यकार का कोई पता नहीं लगता। पुष्पिका में दिया हुआ 'कान्ह भट्ट' नाम लिपिकर्त्ता का है भाष्यकार का नहीं। सन् १८१७ में ग्रंथ की लिपि की गई है अतः सवा सौ वर्ष से भी अधिक का है। ग्रंथ पूरा है और बड़े ही सुन्दर अक्षरों में लिखा है।

संख्या २६५. फगुवा, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—लाला शंकर लाल जी, स्थान व पोष्ट—मलाजनी, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः॥ अथ फगुवा लिख्यते॥ फगुवा॥ सखी चरण कमल बलिहारी भूप सुत चारी॥ अवधपुरी राजा नृप दशरथ मिथिलापुर पगधारी॥ बोली चतुर सखी मृदुबानी मै दैन चहौं एक गारी॥ भूप सुत चारी॥ १॥ ३६० मातु राउर के एक पुरुष कै नारी। उनकर नेम धर्म कैसे निमउत अब तौ वरिष दिना कै वारी॥ भूप सुत चारी॥ २॥ इतना सुनि मुनिनायक बोले सुनहु जनक की नारी। लेहु परीक्षा राजा दशरथ की गोरी लेइ चलु अपनी अटारी॥ भूप सुत चारी॥ ३॥ सुनि गुरु वचन भये मुदित भये राजा हर्षित भये नर नारी॥ तुलसिदास बलि बलि चरणन की जहँ गुरु के वचन अधिकारी॥ भूप सुत चारी॥ ४॥

अंत—॥ फगुवा॥ सखी ये दोउ भूप किशोरी समाज में आई। राजा जनक प्रण इक ठाना धनुहा दीन धराई॥ देश देश के भूपति आये धनुक केउ नहिं सकत उठाई। समाज में आई उठे राम गुरु अज्ञा लेइके धनुहाँ लेत उठाई॥ खैंचत उठावत केउ न देखत धनु तोरि के देत वदाई॥ समाज में आई॥ टूटे धनु शब्द भइ भारी परशुराम चढ़ि आये॥ कहु जड़ जनक धनुक केहि तोरा हमसे नृप देव बताई॥ समाज में आई॥ २॥ अरुन नैन लक्ष्मन निधि बोले का रिस कीन गोसाई। तुलसी तीनि लोक मंगन भय ऐसी धनुही तोरा लड़िकाई॥ समाज०॥ ४॥.........शेष लुप्त॥

विषय—रामायण सम्बन्धी कुछ वर्णनों का उल्लेख।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक में महात्मा तुलसीदास जी तथा अन्य कवियों द्वारा रचे गये कुछ फगुवों का संग्रह है। संग्रहकार ने अपना परिचय कहीं नहीं कराया है और न संग्रहकाल ही दिया है। सभी फगुवे प्रायः राम कथा से सम्बन्ध रखते हैं। पुस्तक का अन्तिम भाग लुप्त हो गया है।

संख्या २६६. फुटकर कवित्त, कागज—देशी, पत्र—३६, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—११८८, अपूर्ण, रूप—पुराना, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० छोटेलाल जी उपाध्याय, स्थान—भाऊपुरा, पोष्ट—जसवन्त नगर, जिला इटावा।

आदि—॥ श्री गनेशाय नमः॥ अथ फुटकर कवित्त लिष्यते॥ कैऊ ध्यान धारत है समाधि विष लीन ह्वै, मिलावै परमातमा सूं आतम विचार कूं। केते निह काम अजपाके रहे रटे नाम केते, केते जपै संकर धतूरे के अहारी कूं॥ केते सकाम मंत्र जंत्र आठौं जाम जपै, केते लोभ दाम के गनेस सुषकारी कूं। तारौ या न तारौ एक आसरौ तुम्हारौ मोहि, कोऊ कछू धारौ मैं तो धारयौ गिरिधारी कूं॥ १॥ निगलिहै अँगार ब्रजवासिन के हेत सेती, धनाजू की रवेती विनि बोये निपजाई है। भीषम पन अरु द्रौपदी की लाज राषी, असरन सरन कीं रति वेद मत गाई है॥ बूढ़त बचायो व्रज कर पर गिरिधारी, महता नरसी कू

तुम हुंडी सिकराई है। करिये न वार अब सुनिये पुकार मेरी, मोपर व्रजराज गजराज की सी आई है ॥ २ ॥

अंत—गूँजेगे भौंर तिन्है आटोंगी सुगन्धिन सों, कोकिला की कूक चोंच रतनन मढ़ामेंगे। फूलेंगे केसू पहुप संभन को देषिके, सेवती गुलावन के वागन लुटामेंगे ॥ मांगेंगे जाचक सोई देमेंगे दान तिन्हैं, मदनन के वानन को तोड़िकें उड़ामेंगे। भनत कवि चैन आज आनंद हमारे सषी, स कन्त जे वसन्त मेरे दोऊ घर आमेंगे ॥ ९ ॥ लहकत लतान गहे कत अंव मोर, महकत सुगन्ध जातें मन ललचामेंगे। वन उपवन वीच उड़त पराग सषी, शीतल कदंव मंद पवन झुलामेंगे ॥ वोलत विहंग पुंज कुंजन कलोल करैं, कोकिल मधुसुर हिंडोल राग गामेंगे। फूले कुसुमन पर लपटेंगे मधुकर, आली आई री वसंत अब कन्त घर आमेंगे ॥ को वचिहै यह वैरी वसंत सौं आवत योवन आगि जगावत। बोलत ही वौरी करि डारत अंग अनंग के वान चलावत ॥ होत हैं करेजन की किरचैं कवि देव जू कोकिला कूक सुनावत। वीर की सों बलवीर विना उ ············(शेष लुप्त)

विषय—कुछ फुटकर छन्दों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत हस्तलेख में देव, चैन, आलम तथा अन्य अनेक कवियों के छंद संगृहीत हैं। संग्रहकर्ता के नाम धामादि का कोई विवरण नहीं दिया है। अशुद्धियाँ प्रायः अनेक स्थलों में हैं। विषय क्रम का कोई समादर नहीं हुआ है। शृंगार रस के कवित्त तथा सवैयों का ही विशेषतया प्राधान्य है। कुछ छन्द शान्तरस, भक्ति तथा विनय सम्बन्धी भी आए हैं।

संख्या २६७. फुटकर कविता, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८ × ५$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५३६, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लल्लूमल जी शर्मा, स्थान—वाउथ, पो०—वलरई, जिला—इटावा।

आदि—नाम लेत दुःख कहूँ रंचकहू रहत नाहिं, होत नर विंधमान आप गुन गायके। ईश औ मुनीश सब पूजत हैं ताइ आइ, लोक जोति सोऊ तो रही है झहराइके ॥ तीनों शर शत्रु की सुमहिमा कहाँ लो कहों। धाई धाई संत रहे आसन लगाइके। पाइनि परै ते मोहि दौलति दुनीकी मिली, मातु विंधयवासिनी लियो है अपनाइके ॥ १ ॥ विंध्याचल चोटी मध्य आसन विराजी आपु, सुरसुरी घाट की तरंग रही छाय के। तीर तो सरस तहाँ सवरे दिखाई देत, देव सुरलोक सें लियो है वास आइकै ॥ दरश करैंते ताके फल को नमाना पार, जनके रहो है प्रेमु हिये में समाइकै। पाइनु परैं तो मोइ दौलत दुनी की मिली, मातु विंध्यवासिनी लियो है अपनाइ कै ॥ २ ॥ तातो दिन तातो रैनि तातो सेज स्याम बिना कबहुँ कबहूँ रैनि मोहि जागतही जात है। ऐसे निरमोंही सों प्रीति करी मेरी आली खीरा कैसो मिलन ज्यों करील कैसो पात है। कहत कवि दूल्हा जाते विरहा विगारी वात विरहा के विगारैंते जरोही तन जात है। सूरज के उदौत से दाह छूटति जोनन में जेठ की तपनि कहो कैसे कै बुझात है ॥ ३ ॥

अंत—मैं निकसी अपने घर ते उत आवत स्याम बजावत बीना। राह अचानक भेंट भई औरु मैं सकुची उन घूँघट चीना॥ प्रेम भरी चिपटाइ लई मुख चूमत जात चिचातु पसीना। लाज निगोड़ी पै गाज परै भरि नैनन स्याम को देख न लीना॥ सुनि अब तोहि सुनाऊँ सखी बतियाँ रतियाँ की पियारी खरी। प्रिय मंदिर मोहि छिपाइ के स्याम करी छविता दिल माँझ अरी॥ श्री प्यारी परी परियंक पैं राजनि भूजित सो शुभ शोभ घरी। लखि चाहत पाँय सुलाग बहुरि उठो रिझ हार सुहाग भरी॥ चंदन सो मुख माँजि के सुन्दरि केस सुखावत ठाड़ो अटा। कमल कली से दोऊ कुच राजत ऊपर ओढ़े झीनो पटा॥ कवि गंग कहै सुनि गंग मते जाकी सूरति ऊपर स्याम लटा। सुरझावति केस गई ससि कम्प मनो ससि ऊपर छाई घटा॥ द्रग तेरे देखे मृग सेवत उजार वन, कटि देखे केहरी कुलह तजि गयो है। देह तेरी देखि कंचन अग्नि परे धाय, मुख देखे कलानिधि कला हीन भयो है। दसननु की जोति देखि दाड़िम हू दरार खात, नासिका के देखें कीर बनोवास लयो है। चालि तेरी देखें गजराज ना धरत पांउ, भौंह की मरोर से पिनाक बान नयो है॥ मैं निकसी सकरी गलियाँ उत आवत स्याम फिरावत डोरी। कुंजगलिन में भेंट भई उरझो ककना उर पाट की डोरी। मैं निहुरी सुरझावन को........ ....(शेष लुप्त)

विषय—विविध कवियों की फुटकर कविता का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—इस हस्त लेख में फुटकर कवित्तों का संग्रह है। रचनाएँ विविध कवियों की हैं। संग्रहकार ने अपना परिचय नहीं दिया है और न संग्रह का समय ही दिया गया है। इसमें विनय, भक्ति, प्रेम, समाज-सुधार, उपदेश, नीति एवं शृंगार तथा शान्तरस विषयक छन्दों का संग्रह है। हस्तलेख के आदि और अंत के बहुत से पत्रे लुप्त हैं।

संख्या २६८. फुटकर नुस्खों की किताब, कागज—देशी, पत्र—६४, आकार—८ × ५$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२००८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० वंशीधरजी शर्मा, स्थान व पो०—सिरौली, जिला—इटावा।

आदि—॥ ज्वर का इलाज ॥ पहले सात दिन ज्वर को लंघन कराइ कैं देवदारु, धनियाँ, छोटी बड़ी कटकटैया अरु सौंठि यह सब ओषधें दो तोला लेके घोलै पानी में आग पर चढ़ावै $\frac{1}{4}$ रहे उतारि कर गुनगुना पीजै ३ वा ५ दिन तब ज्वर पचिके नष्ट हो जावै॥ ॥ वात के ताप को ॥ गिलोइ सौंठि मौथा जवासा इनका क्काथ पीवै॥ पित्त के ज्वर को॥ चिराइता, कुटकी, मोथा, पित्त पापरा, जवासा इनका क्वाथ पीवै ॥ वात के ज्वर को॥ गिलोइ सौंठि पीपरामूल इनका क्वाथ बनावै॥ कफ के ज्वर को॥ सोंठि अरुपा मोथा जवासा इनका क्वाथ पीवै॥

॥ प्रमेह को ॥

अंत—त्रिफला ४। जीरो ४। धना ४। दालचीनी ४। लोंग २। नाग केसरि ४। तुकमरैयां २। कौंच के बीज ४। इलायची २। पीसी मिश्री घृत मिलाइ गोली १। बना पावै

(तथा) लोह टं० १ सहद सो चाटै तथा सत गिलोइ त्रिफलासार तीनों = टं० १ सहत सें खाय (तथा) मिश्री सिंवारे खेती चीनी = पीसि टं० २॥ जल से उतारे ॥ ॥ मल्लम घावे फोरा की ॥ लीला थोथा, मुर्दासंग, सफेद कत्था, सिंदूर, सिंगरफ, मोम, केसर, सुफेदा सब पैसा २ भर ले गौ का घृत गर्म कर नीचे उतारै पाछै नीला थोथा पीसि डारै ताही समय मोम डारै फिरि पिघिलाई कर औषदि डारै एक जीव करे फिरि कांसे की थाली में जल खूब डालकर अँगुली से धोवै खूब तब मल्लम तयार हो फोरा को खूब नीव के पानी से साफ धोकर महरम लगावै । ......(अपूर्ण)

विषय—विविध रोगों की औषधियों के नुस्खों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत ग्रंथ में अनेक रोगों के चुने हुए नुस्खों का संग्रह है । औषधियों की मात्रा अनुपान ओर अवधि आदि का विवरण भी यथास्थान दे दिया गया है । ग्रन्थ में किसी प्रकार के विषय क्रम को समादृत नहीं किया गया है । संग्रह कर्त्ता का नाम और संग्रह का समय भी अविदित है ।

संख्या २६९. फुटकर पद, रचयिता—आनंदघन और दयासखी आदि, पत्र—१०४, कागज—बाँसी, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६६४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—वि० १९०८ = सन् १८४१ ई०, प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, अधिकारी, गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि--श्री गणेशाय नमः ॥ अथ फुटकर पद लिख्यते ॥ राग बिलावल ॥ नंदराइ लला ब्रजराज लला तुम राधा रस बस कीने हो । यह सुरति समागम नीकी हो ॥ टेक ॥ हौं कहति तुम्हारे जी की हो; यह कोक कला सब जाने हो, ताते तुमरे मन माने हो । यह प्रति छिन नीकी लागे हो, भयो काम विकल सब जागे हो ॥ यह गौर बरन तन सोहे हो मुरलीधर को मन मोहे हो ॥ यह नख सिख परम सुदेसा हो, मोहन मन कर विस्वासा हो ॥ यह भाग सुहाग की पूरी हो घन स्याम सजीवन मूरी हो ॥ यह खेलते पिय संग होरी हो, हरि संग लिए सब गोरी हो ॥ मिलि वंसी वट तर आई हो, सब सौज फागु की लाई हो । तब पुलिन तरीछी छाई हो लिए कनक करन पिचकाई हो ॥

अंत--॥ राग सोरठ ॥ अरी हो स्याम रंग रँगी; देषि विकाइ गई वह मूरति सुरति माँझ पगी; एक जु कन्हैया मेरे नैननि में निसि द्योस रह्यो करि मौन, गाइ चरावत जात सुन्यो सखी सो धों कन्हैया कौन; कहौ कोंन सों कोन पतीजै मेरे कौन करें बकवाद; कैसे के कह्यो जात गदाधर गूँगे पै गुर स्वाद । × × × वै बस कीनी प्यारी नंद नन्दन गिरधारी, तुम मुख देख चन्द जोति लजावत इत ह्वै आवत तो कोंन सुधि मत वारी । घरी घरी पल छिन तेरोइ सुमिरन और न सुहात कछु सोहे बिहारी । राम राइ तेरे रूप लुभाने विकाने अनमोलनि श्री वृषभान दुलारी ॥ इति श्री फुटकर होरी पद ग्रंथ सम्पूर्णं । लिषतं मिश्र गिरवर भरतपुर मध्ये पठनार्थं रसालदार जी संवत १९०८ ॥ शुभं भूयात ॥

विषय--माधुरीदास रचित होरी और फाग के गीत, पत्र १--९ तक। जनहरिया, लाड़िली सखी, उदय, माधोदास, कृष्णजीवन लछिराम, आनन्द-घन, छीतस्वामी, जगन्नाथराइ, राधेदास, परमानन्द, हीरालाल, दयासखी, नागरीदास, कुम्भनदास, माधुरी, भगवानहित रामराइ, हित हरिवंश, हित अनूप, गिरधर, नन्ददास, श्रीधर, प्रेमदास, केसव, हित दयाल, सूरदास, गोविन्द, व्यास, कृष्णदास हित, किशोरी-दास, गदाधर, श्री जगन्नाथ माधौ, माधौदास, हितध्रुव, रूपहित, सदानन्द, रसिकबिहारी, विहारिनदास, हीरासखी, चतुर्भुज इत्यादि के गीत इस ग्रंथ में हैं।

टिप्पणी---रेखांकित कवियों के पद अधिक हैं।

विशेष ज्ञातव्य--प्रस्तुत विशालकाय गीत संग्रह अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होता है। इसमें ऐसे बहुत से गीत आए हैं जो अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। एक विशेषता यह है कि इसमें आनंदघन के पद अधिक हैं। आनन्दघन के गीतों को देखकर कहना पड़ता है कि इनकी संख्या काफी अधिक है। संग्रह में निम्नलिखित कवियों के नाम नवीन प्रतीत होते हैं:--१—जनहरिया, २—लाड़िली सखी, ३—राधेदास, ४—हीरालाल; ५—माधुरी, ६—हितदयाल, ७—सदानन्द, ८—हीरासखी।

लिपिकाल १८४१ ई० है। ग्रंथ भरतपुर निवासी गिरवर मिश्र ने किसी रसालदार के लिये लिखा है।

संख्या २७०. प्रेमविनोद, कागज—आधुनिक सफेद कागज, पत्र—१४, आकार—५½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)--६३, पूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि--नागरी, प्राप्तिस्थान –पं० उमाशंकर जी द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य, पुराना शहर, वृंदावन, जिला--मथुरा।

आदि--अथ प्रेमविनोद लिष्यते ॥ दोहा ॥ गुरु परम गुरु परात्पर जिनके चरन सरोज। मन तू अलि ह्वै गंध लै, पावै प्रेम मनोज ॥ १ ॥ अरिल्ल ॥ रंग्यो युगल के रंग वढ्यौ अतिहेतरे। लगी प्रेम की चोट तनक नहीं चेतरे। नैन निपट के नीर शीत सब गात रे। परि दाह्य इहाँ फिर होय और नहीं वात रे ॥ २ ॥ दोहा ॥ नेह नगर के डगर में वहे प्रेम के सिंधु। वामै पीर कैसे कढै ह्वै गयै अंधहि कंध ॥ ३ ॥ प्रेमशहर में बसत गुरु लीनी दोय विसाय। मोल मगहगै मन सटै, माथौ धून नहाय ॥ ४ ॥ प्रेम नगर के डगर में, सहजहि निकस्यौ आय। अब आवन की सुधि नहीं, फिरि निकस्यौ नहिं जाय ॥५॥

अन्त—मद मातौ रातौ रहे, प्रेम छक्यौ अद्भूत। तनहू की सुधि ना रहे, कहाँ त्रिया कहँ पूत ॥ ४२ ॥ प्रेम न वारी नीपजै, प्रेम न हाट विकाय। कृपा होय तव सहज ही, पावै विरला ताय ॥ ४३ ॥ आन वात भावै नहीं, प्रेमी के मन मूरि। सुरत रहे नित महल में, छकि छकि परै हजूरि ॥४४॥ × × × प्रेम सुधा रस जिन पियौ, तिनकौ सुधि नहिं कोय। एक रहे सुधि पीय की, दूजी सुधि नहीं होय ॥ ४७ ॥ नहीं आचार अपरस नहीं, नहिं संयम नहिं ताय। प्रेमी है दरशै नहीं, सहज मिलै सो खाय ॥ ४८ ॥ प्रेम नगर के डगर में वहे सरित आनन्द। सहजहि न्हावै जाय कोऊ, छूटै जग के छन्द ॥ ४९ ॥

॥ सोरठा ॥ उभै खटावै नाहिं, जग सुख चाहे प्रेम सुष। एकहि खूंटे माँहि, द्वै गज नाहीं बंधि सकै ॥ ५० ॥ लाग्यौ प्रेम कौ तीर लागै सोइ जानि है। ज्यौं ब्यावर की पीर, बाँझ न जानै बापुरी ॥ ५१ ॥ दोहा ॥ भक्त ग्यान वैराग्य के सर्वोपर यह सार। प्रेम विनोद सीखै सुनै, सुष पावै प्रेम अपार ॥ ५२ ॥ इति श्री प्रेम विनोद सम्पूर्णम् ॥

विषय—प्रेम का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ केवल दोहों में रचा गया है। रचयिता एवं रचनाकाल और लिपिकाल अज्ञात हैं।

संख्या २७१. प्रेत मंजरी, कागज—देशी, पत्र ५१, आकार—८ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप् छन्द)—२९४५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, गद्य, रूप—प्राचीन, प्राप्तिस्थान—श्री गोकुल कृष्ण सिंह जी जमीन्दार, स्थान—आदियापुरा, पो०—वनकटी, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ प्रेत मंजरी ग्रंथ लिष्यते ॥ तत्र तावत् पुत्रादि रासन्न मृत्युपित्रादिकं ज्ञात्वा षडब्दादि प्रायश्चित प्रत्याम्नाय गायत्र्यायुत जपं वा गायत्र्या तिलहोम सहस्र धेनुदानं तीर्थयात्रा वा द्वादश ब्राह्मण भोजनं सूवर्ण रूप्य योर्निष्कं तदर्द्धं वा गोवृष मूल्यं यथा शक्यनु रूपं प्रायश्चितं मद्द्वाराकारयेत् ॥ तदऽशक्तौ स्वयं वा कुर्यात्॥ तद्यथा ॥ गंगादि तीर्थे गत्वा तत्र यथाविधि स्नात्वा शुद्धे शुक्र वा ससी परिधायवद्धशिखः कृत तिलकः सपित्रकरः पूर्वाभिमुख उपविश्य आचम्य प्राणानायम्य ॥ आदित्यादि देश कालौ संकीर्त्य ॥

भाषा भावार्थ—प्रथम पुत्र पौत्र भाई आदि अपणे पिता माता भाई दादे आदि का रोग आदि द्वारा मृत्यु के वश हुआ जान के (षडब्दादि) अर्थात् ६ या ३ या १॥ आदि के १८०।९०।४५ प्रजापतिकृत निमित्त १०००० गायत्री जपो या १००० गायत्री मंत्र करिके तिल होमः ॥ धेनुदान। तीर्थयात्रा ॥ अथवा एक एक व्रत निमित्त १२ ब्राह्मण भोजन ॥ या ४०।२०।१० मासा सुवर्ण ॥ रजत। या गौवृषभ का मोल अपनी शक्ति के अनुसार करिके पिता आदि के हाथ से प्रायश्चित्त करावै ॥ अथवा आप करि देवे ॥ करने की विधि॥ प्रथम गंगा आदि तीर्थ में जाके स्नान करै और धोया हुआ वस्त्र पहन के चोटी में गाँठ देय और भस्म चन्दन दर्भ पवित्र करके पूर्व को मुख किया हुआ तीनि बेर आचमन करें और प्राणायाम करके देश काल आदिक उच्चारण पूर्वक प्रायश्चित संकल्प लैके पुरुष सूक्त से अंगन्यास और विष्णुपूजन षोडषोपचार से करे ॥

अंत—॥ पंचघटदानं ॥ ॐ अद्यामुक० प्रेतस्य पंचक मरेणात्पन्न दुर्गति निवारणार्थं तज्जनित वंशारिष्ट विनाशार्थं च इमे पंचघटाः स्वर्ण प्रतिमा वस्त्र फल यज्ञोपवीत धान्य-सहिता वस्त्रादि दैवतास्त चद्देवता प्रीतये नाना म गोत्रैभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दातुमह महमुत्सृजे इति संकल्प ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ॥ तत आचार्य दिभ्यः पयस्विनीं गां० १ महिषी २ सप्तधान्यादि ३ स हिरण्यं घृतपात्रं च ५ दद्यात् ॥ इन मंत्रों से अभिषेक करै और यजमान पंचघटों के दान का संकल्प लेकैं ब्राह्मणों को दे देवै ॥ और आचार्य आदि सबहिकों गौ १

महिषो २ सतधान्य सुवर्ण ४ तिल ५ घृत पात्र देवै ॥ अन्य ब्राह्मणों को भूयसी दक्षिणा देके देवता अग्नि का विसर्जन करे और हाथ में जल लेकें इस पंच शान्ति कर्म करके अमुक प्रेत की पंचक मरण दुर्गति निवृत होवौ और हमारे सकल अरिष्ट दूर होवो ऐसे करके पृथिवी पर त्याग देवै ॥ फिर (ॐ यस्यास्मृत्या०) इसको पढ़के कर्म पूर्ति के अर्थ विष्णु का स्मरण करै और सामग्री ब्राह्मणों को देके घृत में मुख देखके स्नान करै ॥ इति पंचक शांति प्रकारः ॥ इति प्रेत मंजरी अन्त्येष्ठ श्राद्ध प्रकाश ॥ ग्रंथ समाप्तम् ॥

विषय—अन्त्येष्ठि श्राद्ध-कार्य का विवरण ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत 'प्रेत मंजरी' नामक ग्रंथ के रचयिता के संबंध में किसी भी प्रकार का कोई परिचय नहीं मिलता है ।

संख्या २७२. पूजाविधि (संभवतः), कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—५ × ३½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—११५, अपूर्ण, लिपि—नागरी, पद्य, रूप—प्राचीन, प्राप्तिस्थान—पं० खेमचंद जी, मु०—मेहरारा, पो०—जलेसर रोड, जि०—मथुरा ।

आदि–अदछि को भरयो मदिरा सम पानी । दया धर्म सब निर्फल जानी ॥९॥ दीछा विन नर नारी मरै । होय प्रेत कर नरकही परै ॥ यो दोस समुझि पुनि लीजै दीक्षा । निहचय मानै गुरु की शिछा ॥ १० ॥ संतन कौ···ज मारिग गहिये । गृह में रहे कि बन मै जइये ॥ तन मन धन संतन सौं सानै । गृह मै रहै विरक्ति मानै ॥ ११ ॥ भक्ति भेद गुरु सनि बूझै । प्रेम प्रीति तव न्यारी सूझै ॥ प्रेम प्रीति को लछिन सुनौं । ए छह भक्ति जुदी झरि गुनौ ॥ १२ ॥ प्रीति की वात ॥ जम की त्रास काल भय मिटै । पाप दहन हित नामैं रटै ॥ १३ ॥ भक्ति मुक्ति को चाहे सुष । भक्ति करें कछु रहैं न दुष ॥ मुक्ति पदारथ लघु करि जानै । कृष्ण भक्ति सर्वोपरि मानै ॥ १४ ॥ प्रीति रीति गोपिनि की रीति । कृष्ण भक्ति करि लीने जीती ॥ आठों सुनों भक्ति के अंग । प्रथम श्रद्धा और सत संग ॥ १६ ॥ गुरु सेवा अरु द्रष्टि विश्वासै । बहुरि करै वृन्दावन वासै । श्री भागवत श्रवण रुचि करै । नाम नेष्ठा ध्यान मन धरै ॥ १७ ॥

अंत––अथ छः प्रकार के भोजन ॥ षटे मीठे और चरपरे । कटुक षाये मधुर रस करे । मोपै प्रभु जू अनुग्रह कीजै । प्रीति हेतु जो भोजन लीजै ॥ ७२ ॥ जमुनेदिक दीजै भरि झारी । वहुरि परोसे कंचन थारी । प्रथम थारु दुहुनि के धरैं । सषीन सहित सब पारस करैं ॥ ७३ ॥ भोग लगाय आचौन करावै । सुगंध युक्त तंबोल षवावै ॥ धूप दीप दै आरती उतारै । लैकरि चौंवर आपु सिर ढारै ॥ ७४ ॥ करि दंडवत परिकर्मा देही । अस्तुति करि पुनि करै सनेही ॥ सुषद सेज कीजै विश्राम । मन में बसौ सदा अभिराम ॥७५॥ × × × सरधा कै भक्ति जो करै । ताकौ स्याम तनक में ढरै ॥ प्रगट सेवा अब हरि की कीजै । हरि भजि तनकौ लाहौ लीजै ॥ ८१ ॥ जैसी विधि मानसी कही । सो प्रगट कर्म करि लीजै सही ॥ विश्वासार्थं ॥ ध्यान सेवा प्रतिमा में देषे । जैंसे जीव सरीर में लेषे ॥ ८२ ॥ तैसे पंछी करि विस्वास । सुरति पषी दे अंडा पास । सुरति पुरी भई अंडा षोलै । बच्चा

निकसि पंछी सौं बोलै ॥ ८३ ॥ प्रगट पूजापः ॥ जैसे ग्रहस्त ग्रह में पगे । ऐसे हरि की सेवा लगे ॥ × × ×

विषय—भगवान् की सेवा-अर्चना भक्ति भाव से करने की विधि दी गई है ।

विशेष ज्ञातव्य—यह हस्तलेख अपूर्ण है । प्रारंभ के तीन पत्रे लुप्त हैं । अन्त में पत्र संख्या पन्द्रह के बाद के पत्रे लुप्त हैं । ग्रंथ कर्ता का नाम विदित न हो सका । रचनाकाल और लिपिकाल भी अज्ञात हैं ।

संख्या २७३. पुराने समय की प्रारंभिक शिक्षा की किताब, कागज--देशी, पत्र-१, आकार--१० × ५३/४ इंच, पंक्ति—८, परिमाण (अनुष्टुप् छन्द)—९, अपूर्ण, लिपि—नागरी, गद्य, रूप—प्राचीन, प्राप्तिस्थान—पं० लाडिली प्रसाद जी, स्थान—धरवार, पो०—बलरई, जिला—इटावा ।

आदि—लपदंती लिषो मकाराः नामो जारे सुरेन सधियोः । यती संधीः सुतरताः दुरती पाटी समपीता २ विदंत आइ आइ उने न पायताः सुखेकी रचौः दुरवीच ना मीनंः बौहो वीचना मीनंः अनपट चाहे चाः वीदतं कथिताः असन्हान करंताः अरघ दीवंताः राम जपंताः पांडे जी की धोवती धुवंताः चट पढंताः विद्या लीवंताः सारदा माता पुजंताः गऊ विरामन पुजंताः माता पिता गुरु......(पूर्ण नकल)

विषय—पुरानी आरंभिक शिक्षा विषयक पुस्तक ।

संख्या २७४. पूर्णमासी की वार्ता, कागज—बाँसी, पत्र—३२, आकार—८ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप् छन्द)—४३१, अपूर्ण, रूप—नवीन, लिपि—नागरी, गद्य, प्राप्तिस्थान—शंकर लाल समाधानी जी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ॥ अथ पूर्णमासी जी की वार्ता लिख्यते ॥ श्री वृन्दावन नित्य विहार ॥ जानि अजन को वास छोंडि के सनदीपन रिषीश्वर की माता ॥ श्री वृन्दाबन करिवे को आई ॥ ताको नाम पूर्णमासी जी हे ॥ सो वह पूर्णमासी जी अपनो नाती संग लाई ॥ ताको नाम मधु मंगल कृष्ण को सखा हे ॥ श्री कृष्ण के संग गाय चाराइवे में रहत हैं ॥ श्री कृष्ण को रिझावत हें ताते मधू मंगल के ऊपर श्री नन्दराय जी श्री यशोदा जी बहुत प्यार करत हें ओर नन्दी मुखी एक ब्राह्मणी हे सो पूर्णमासी जी की टहल करत हे और विन्द्रावन में राज आनन्दहित करत हें । पूर्णमासी जी हे सो श्री कृष्ण की गुरु की माता हैं । पूर्णमासी जी ओर नन्दी मुखी ब्राह्मणी मन लगाय श्री कृष्ण को स्मरण नित्य नेम करि भाव सहित दोऊ जनी करत हें । श्री यमुना जी में स्नान करत हें सो कछुक दिन में वसन्त रिति आई ।

अंत—श्री कृष्ण जी बोले ॥ अहो सखी हो जानत हो ॥ वृखभान जी की बेटी हें ॥ तब सखी बोली ॥ अहो ढोटा तुम ओर के भरोसे श्री राधा सो चंचलता मति करो ॥ तव मधु मंगल बोल्यो ॥ अरी ग्वालिन तुमहुँ ओर के भरोसे छोटे जिन जानियो ॥ यह तो

व्रज कुँवर हैं ॥ लाल कन्हैया जू याको नाम हैं ॥ सबन पें नित्य दान लेत हैं ॥ तुम पैंते बहोत दान मागनो हैं ॥ तब विसाखा बोली वीर तुमको मीठो दधि देहुंगी ॥ इनको साथ छोड़ि कें हमारे साथ चलो ॥ तब मधुमंगल बोल्यो ॥ अरी एक वेर तो प्याइ री ॥ पीछें जो कछू तू कहेंगी सो हम करेंगी ॥ तब एक चुलू भरि के मधु मंगल के मुख में चोयो ॥ तब मधु मंगल नाचत नाचत श्री कृष्ण जी के पास आयो ॥ तव देखे तो श्री राधा जी को अंचर गहे एक कदम्ब तरे ठाढ़े हैं ॥ × × ×

विषय—श्री कृष्ण भगवान् की गुरु की माता का नाम पूर्णमासी था। वह वृन्दावन में रहती थीं। उसके यहाँ जिस प्रकार कृष्ण का राधा आदि सखियों के साथ मिलन हुआ और जिस प्रकार राधाकृष्ण का विवाह हुआ उसका विस्तार पूर्वक वर्णन है।

विशेष ज्ञातव्य—यह गद्य ग्रंथ खोज में उत्तम है। किसी वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी का ही रचा हुआ है। पर उसका नाम ज्ञात नहीं हुआ।

संख्या २७५. महिम्न स्तोत्र की टीका, कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—१०½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—५४९, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० यज्ञदत्त जी मिश्र, स्थान—खेड़ा, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—हे महादेव तुम्हारी ये महिमा है सो वचन का यों है। पंथा मारग जिसको अतीत कहै उल्लंघन कीन्हे हैं जिस महिमा कूँ अति व्याघृत करिकैं वेद जो हैं सोऊ चकित कहे समय अभिधत्ते कहैं प्रतिपादन करते हैं सो तुम किस करिकें अस्तुति करणे योग्य हो कहि विधि गुण कितने तुम्हारे गुण हैं और आप किसको जानि परते हो नहीं आपकी स्तुति करि सकैं नहीं॥ आप किसी कूं जानि परते हौ और अर्वाचीने पदे कहैं तुम्हारी जो लीला विग्रहे तिसके विषय किसका मन और वचन नहीं पहुँचत है ॥ लीला विग्रह कौं सवै प्रतिपालन करते हैं ॥ २ ॥

हे ब्रह्मन् तव कहै तुमको सुरगुरु यो हैं बृहस्पति तिनहूको जो है वाग्वचन सो विस्मय पद कहै आश्चर्य करण वारे हैं ॥ का नहीं हैं कैसे हो तुम वचन जेहैं वेद तिनको वतावते हो कैसे वचन मधुरता करिकैं पूरण हैं फिर कैसे हैं वचन वे परम अमृत की तुल्य हैं मेरी जो बुद्धि है सो इनि है तो कहे यह कारणते अस्मिन अर्थे कहै यह अर्थ विषय इस अर्थ विषय इस अर्थ विषय निवसिता कहै निश्चय कीन्हे हैं कौन अर्थ विषय यह जो मेरी वाणी है तिसको तुम्हारे जो गुण हैं तिनका जो कथन है तिस करिकैं जो है पुराये तिस करिकैं पुनामि कहै पवित्र करो ॥ ३ ॥

अंत—कसक है थोरो है परणित कहै विचार जिसका और क्लेश की वश्य अयसा जो मेरा चित्त है सो कहा और गुण सीमा को उल्लंघन किये आपकी जो ऋद्धि महिमा है सो कहा यहि विचार करिकै चकित कहे डराना जो मैं हूँ तिसकूं तुम्हारी जो भक्ति है अंगीकृत है निर्भय करिकै तुम्हारे जे चरण हैं तिन विषै वाक्य जे है तेही भए पुष्प तिसका जो उपहार है पूजा तिसकूं अधात कहै अर्पण करती भई ॥ ३१ ॥ है ईश अंजन का जो

पर्वत है तिसकी तुल्य काजर होइ सिंधु जो समुद्र है सो स्याही का पात्र होइ कल्प वृक्ष की साषा है सो लेषनी होइ पृथ्वी जो है सो पत्रा होइ और शारदा जो देवी है सो सर्व काल मैं आपके गुर्णनि कूं लिषा करै तौ भी तुम्हारे गुणन कूं पार नहीं पावै और मनुष्य की का सामर्थ्य है ॥ ३२ ॥

विषय—महादेव जी की स्तुति ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ पुष्पदंताचार्य कृत 'महिम्न स्तोत्र' (संस्कृत) ग्रंथ की टीका है । टीकाकार ने अपने नामादि का कुछ भी पता नहीं दिया है । टीका की शैली पुरानी पंडिताऊ है । व्याख्या करते हुए 'जो है,' 'सोहै,' 'ऐसा' 'किसकूं' तथा 'तिसकूं' इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है जो उक्त शैली का नमूना है । ये शब्द पुरानी उर्दू में भी व्यवहृत होते थे; परन्तु अब वहाँ भी मतरुक (त्याज्य) कर दिये गये हैं । टीका व्याख्या सहित है और वह समझ में भी आती है । शोध में ग्रंथ नवोपलब्ध है ।

संख्या २७६. राग माला, कागज—देशी, पत्र—५, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप् छन्द)—१९८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठा० लक्ष्मण सिंह जी, स्थान—सुमेरपुर, जिला—इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री सरस्वतीय नमः ॥ राग भैरव ताल झूमरा ॥ आछौ नीकौ लौनो मुष भोरई दिषाइयै । निसि के उनींदे नैना तुतरात मीठे बैना भामते हो मेरे जी के सुषहि बढ़ाइये ॥ १ ॥ सकल सुख करणहार त्रिविध ताप दुष हरन उर कौ तिमिरि बढ़्यो तुरत नसाइयै ॥ २ ॥ द्वारैं ठाड़े ग्वाल वाल करौ कलेऊ मेरे लाल मिश्री रोटी छोटी मोटी माषन सौं षाइयै ॥ ३ ॥ तनकसौ मेरौ कन्हैया वारि फेरि डारी मैया वैनी तौ गुहौं तेरी गहरु न लाइयै ॥ ४ ॥ परमानन्द प्रभु जननी मुदित मन फूली फूली फूली फिरै अंगन समाइयै ॥ ५ ॥ राग जै जै मंती ताल सूधौ कवाली ॥ होऊं चलौ मृग छाला । हो पीय धनुष धरौं काहू मुनिवर के ग्रह दंड कमंडल, भेष मुनिन कौ कर गहौं तुलसी की माला ॥ १ ॥ तुम दोऊ वन्धु अकेले वन में हम अवला संग वाला । औचक भेंट होइ काहू भट सौं जव जीय होइ जंजाला ॥ २ ॥ क्षत्री वंस महाबल पूरे करि न सकौं होयला ॥ २ ॥ समर भूमि गति अवगति प्रीतम हमरौ कौन हवाला ॥ ३ ॥ अवधि विहाइ फेरि लैहै सुनीयो दीन दयाला ॥ धनुष वान पिय तवही चहियै जब होऊ अवध भुआला ॥ ४ ॥ सिय तन हेरि हँसे रघुनंदन वोले वचन रसाला । कान्हर लहा श्री रामचंद्र के रंगनाथ रखवाला ॥ ५ ॥

अंत—वाएँ कर धनुष लियैं दहिने कर सर सोहैं । ऊरेझे मुषारविंद सोई रामचंद्र हैं । नाथनि के नाथ अनाथ निसहाइहोत, हृदेमें बिसावै सोई मतिमंद हैं । देवनि वंद छोड़ी दुष्टन कौ दंड दीन्हों, संतन सहाय कीन्हों सोई आनंद के कंद हैं । राजा रघुवंसमनि कृपा के कल्पतरु, अग्रदास स्वामी सोई दसरथ कौ नंद है ॥ ३ ॥ मुनि संग राजत कमला कंथा, सहस्र वाहु रामन वानसुर सकल ही आए तुरंत ॥ १ ॥ भूमि परे सुधि तन की

नाहीं, सुर सेवक वलवंत। गुरु आयसु रघुनंदन टोरी चाप तुरंत ।। तिहि अवसर आए तहाँ स्वामी क्रोध कियो उत्पन्न, कहु जड़ जनक धनक किन तोरयो तेही मारौं तुरंत ॥ तुलसीदास आस रघुवर की जनक के द्वारे जुरंत, राम लषन दोऊ कर जोरैं हम पर चूक परंत ।। राग मलार ।। तर तर तार पति तीर सैलगत ऊर, और सुरपति अली वरषा विनोद है। कहै कवि ग्वाल धन पीउ लै पपीहा बोलै, कारी दारी कोइल कहाँ ते काम सोध है ।। १ ।। चहूंओर कौंधा चकचौंधा लगै मेरी आली, श्याम सुखदाइ माइ दासीपर मोधो हैं। राती पीति वैरषै धजारी डाड़ी धअ धीरौ, अै............(अपूर्ण)

विषय—विविध राग और ताल संयुक्त कुछ पदों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत हस्तलेख संग्रह ग्रंथ है। संग्रहकार के संबन्ध की सभी बातें अज्ञात हैं। ग्रंथ के आदि, मध्य और अंत के बहुत से पत्रे नष्ट हो गए हैं। उसका जो अंश उपलब्ध हुआ है उसमें अनेक रागों का संग्रह है। संगृहीत पदों में अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों और उनके अतिरिक्त अन्य कई भक्त कवियों की रचनाएँ हैं। कवियों के नाम इस प्रकार हैं:—सूरदास, तुलसीदास, परमानन्ददास, नंददास, कुम्भनदास, माधोदास, गरीबदास, अग्रदास, गोविन्ददास, कान्हरदास और हित हरिवंश आदि।

संख्या २७७. राग रागिनी भेद, कागज—देशी, पत्र—२, आकार—९¾ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० लाड़िली प्रसाद जी, स्थान—धरवार, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ।। अथ राग रागिनी भेद ।। आदि नाद अनहद भयो, ताते उपज्यो वेद। पुनि पायी वा वेद में, सकल सृष्टि को भेद ।। अथ राग गुन वर्नन ।। ।। दोहा ।। भैरव की धन भैरवी, मंगाली वैरारि। मध्य माध्वी सिंधुवी, पाँचों विरहिनि नारि ।। टोढ़ी गौस गुन कली, षवावति को कछ। मालकोष की रागिनी, गावति अति दुलछ ।। रामकली यह मंजरी, और कहौ दे साषि। ये नारी हिंडोल की, ललित विलावलि राषि ।। देसी नट अरु कान्हरो, केदारा कामोद। दीपक की प्यारी सवै, महा प्रेम परमोद ।। १४ ।। ध० ।। १५ ।। भूपाली अरु गूजरी, देसी कार मल्हार। तनक वियोगिनि कामिनी, मेघ राग की नारि ।। भैरव सुर ताकै कहैल्ल चलै अघाय। मालकोस तव जानिये, पाहन पिघिल वहाय ।। चलै हिंडोला आपु ते, सुनत राग हिंडोल। वरषै घन जलधार अति, मेघ राग के वोल ।। १८ ।।

अंत—अथ मेघ राग स्वरूप ।। दोहा ।। स्याम वरन जो मेघ है, गहे हाथ तरवार। अति आतुर चातुर खरौ, गावत सुर विस्तार ।। ६४ ।। सवैया ।। मेघ मल्हार महा अति सुंदर, इंदर की छवि आपु वन्यो है। पहरे पट स्याम गहे तरवारि, जु माल गरे यहि भाँति ठन्यो है। जैसोहि चाहिये वैसोहि अंग सोई तैसेई भाँति आपु वन्यो है। काम को आतुर है अतिही तिय की रति कौ चितचाव वन्यो है ।। ६५ ।। अथ रागिनी स्वरूप ।।दोहा।।

भूपाली विरहिन षरी, केसरि वोरे चीर। भयो विरह की ज्वाल ते, पीरो सकल सरीर ॥ ६६ ॥ विरह जरा तन गूजरी, रोवत छूटे केस। कामदेव कानन लगे, तिनहि कियो उपदेस ॥ ६७॥ देस वार कंचन वरन, षेलत पिय के संग। हिय हुलास जो काम चढ्यो जो जोवन अंग ॥ ६८ ॥ वीन गहे गावत बहुत, रोवत हैं जल धार। तन दुर्बल विरहा दहै, विरहिनि नारि मलार ॥ ६९ ॥ सेज विछाई कमल दल, लेटि रही मन मारि। लेत उसास उसेपरी, तनक वियोगिनि नारि। ७० ॥

विषय—राग रागिनियों के भेद और स्वरूपादि का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता का पता नहीं है। इसमें राग रागिनियों पर विचार किया गया है। राग रागिनियों के भेद, गुण, लक्षण, सम्बन्ध और स्वरूपादि पर बड़ी उत्तमता से प्रकाश डाला गया है। संभवतः यह ग्रंथ बहुत बड़ा रहा होगा; परन्तु यहाँ केवल तीन ही पत्रे उपलब्ध हैं जिनको देखने पर ज्ञात होता है कि प्रतिलिपिकार ने इतनी ही प्रतिलिपि की थी। क्योंकि अंतिम पृष्ठ में इतना स्थान खाली रह गया है कि अभी उसमें कई पंक्तियाँ लिखी जा सकती थीं। यदि आगे का भाग लुप्त हुआ होता तो अवश्य ही यह पत्रा पूरा लिखा होता।

संख्या २७८. राग सागर, कागज—स्यालकोटी, पत्र—१२६, आकार—९ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५६४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—राग भैरव ॥ आछो नीको लोनो मुख भोरही दिषाइये; निसि के उनींदे नैंन तोतरात मीठे बैन भावत हैं जिय के मेरे सुखही वढ़ाइये; सकल सुख करन त्रिविध ताप हरन उर को तिमिर बाढयो तुरत नसाइये; द्वार ठाड़े ग्वाल बाल करहु कलेऊ लाल, मीसी रोटी छोटी मोटी मांखन सो खाइये; तनक सो मेरो कन्हैया वारि फेरि डारी वेनी गुहूँ बनाय गहर न लाइये; परमानन्द प्रभु जननी मुदित मन फूली फूली फूली उर अंगन समाइये। प्रात भयो जागो वल मोहन सुषदाई; जननी कहे बार बार प्राण के अधार मेरे, दुःख हरो स्याम सुन्दर कन्हाई। दूध दही माखन घृत मिश्री मेवा वदाम; पकवान भाँति-भांति विविध रस मिठाई। छीत स्वामी गोवर्धनधारी लाल, भोजन करि ग्वालन के संग बन गोचारन जाई।

अंत—अपने लाल को व्याह करूँगी बड़े गोप की वेटी; जिनसों हमसो जतियां चारों भोजन भेंटा भेटी; मात जसोदा लाड़ लड़ावै अंग सिंगार करावैं; कस्तूरी को तिलक वनावैं चन्दन षोर वनावै; कहिरी मैया कब लावेगी मोको दुलहिन नीकी, परसि परसि मोहि खीर जिमावे रोटी चुपरी घी की; ए सब सखा वरात चलेंगे होंजु चढ़ोंगो घोरी; जन परमानन्द खवावे वीरा लीने झोरी। राग विलावल ॥ श्री यमुना करुनामई विनती सुन लीजे, दरसन ते पावन सदा सुमिरत अघ छीजे; मंजन तुव जल पाणी मन सुध करि लीजे;

गावत वेद पुरान में जयते सुष जीजें; भाव भक्ति वरदान ही मोकों वर दीजे; श्री विट्ठल गिरधर के गाऊ गुण रस भीजे।

विषय—प्रभाती तथा जागरण के गीत,	पत्र	५	३४	तक।
श्रृंगार के गीत,	,,	३५	४१	,,
कुंज तथा खण्डिता के गीत,	,,	४२	७८	,,
कलेऊ के गीत,	,,	७९	८३	,,
मंगला आरती, मंजन श्रृंगार	,,	८४	९२	,,
किशोर स्वरूप का श्रृंगार, ग्वाल और गोचारण, व्रज भक्तों के मनोरथ, ग्वाल भोग,	,,	९३	१०९	,,
यमुना जी के पद, चीर लीला,	,,	१०९	१२०	,,

अष्टछाप, दामोदर, भगवान हित रामराय, रसिक प्रीतम, गोपालदास, ब्रजपति, हरिदास, आसकरन, श्री विट्ठल गिरधरन, मुरारीदास, गोविन्द प्रभू, गदाधर, विष्णुदास इत्यादि भक्त कवियों के पद इसमें संगृहीत हैं।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रह उपयोगी है।

संख्या २७९. राग संग्रह (अनुमानिक), रचयिता—अष्टछाप आदि, कागज—मूँजी, पत्र—२४, आकार—६१/२ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्) २४३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—कीर्तनिया जी, मदन मोहन का मन्दिर, स्थान—जतीपुरा, डा०—जतीपुरा, जि०—मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ॥ राग सारंग ॥ अरी छकि हारी री चारि पाँचक आवत मधि ब्रजराज लला की। बहुत प्रकार विंजन परिपूरन पठवनि बड़े लला की। ठठकि ठठकि टेरत गोपाले चहूँवा दृष्टि करें। बजत बेन धुनि सुनि चली रा चपलगति परासोलीकेरें ॥ २ ॥ परमानन्द प्रभू प्रेम दृष्टि मन टेरि लई कर ऊंची बाँह।। हसि हसि कसि कसि फेंटा कठिन सो बटत छाक वन ढाक मांह ॥ ३ ॥ आगे आउरी छकि हारी ॥ जब तू टेरी तब हों बोल्यो सुनिय न टेर हमारी ॥ १ ॥ मैया छाक सवारी पठई तूं कित रही अवारी। अहो गोपाल लाल हों भूली मधुरी बोलन पर वारी ॥ २ ॥ गोवर्द्धन उर्द्धरन धीर सों प्रीति बढ़ी अति भारी ॥ जन भगवान मगन भई ग्वालिन तन सब दसा विसारी ॥ ३ ॥

अंत—लीजे ग्वालन अपनी छाक। जब ते तुम आये वन तबते रहत चढ्यो चित चाक ॥ १ ॥ देषि लेउ नीके कर सगरे कीने बहुविधि पाक ॥ भोजन करो बैठि सीतल में छाया उनहो ढाक ॥ २ ॥ हौंहू ढिग बैठो ज्यो हूँ तो मेरे चरन को उतरे थाक ॥ ज्यों भावे त्यों षेल करो तुम मेरे आगे निसंक ॥ ३ ॥ पूरो सकल मनोरथ मेरे आगे ई यह ताक ॥ रसिक प्रीतम निसुके विछुरें ते हम आई हो नांक ॥ लटकि लाल रहे श्री राधा के भर। सुंदर वरि बनाइ सुंदरी हसि हसि देत जात मोहन कर ॥ १ ॥ गोपी सब सनमुष

भई ठाढ़ी तिनसों केलि करत सुंदर वर ।। ज्यों चकोर चन्दा तन चितवत ज्यो आली निरषत गिरि...घर ।। २ ।। कुंज कुटी और बाग वृन्दावन बोलत मोर कोकिला तरु तर ।। परमानन्द स्वामी मोहन की बलिहारी या लीला छबि पर ।। ३ ।।

विषय--प्रस्तुत ग्रंथ में छाक संबन्धी गीतों का चयन है। छाक प्रातः के भोजन को कहते हैं जिसमें भोजन का मुख्य पदार्थ नवनीत और रोटी होता है। भगवान् कृष्ण सखाओं सहित जब गौओं को चराने के लिये वन में जाते थे तो माता यसोदा उनके खाने को वहीं भेज देती थीं। उसी छाक भोजन संबन्धी पद इसमें आए हैं।

अष्टछाप कवियों के गीतों के अतिरिक्त जो गीत इस ग्रंथ में आए हैं उनके नाम क्रमशः ये हैं :—१-जन भगवान, २-गोविन्द, ३-आसकरन, ४-धोंधी, ५-मुरारीदास, ६-विट्ठल गिरधर, ७-जगजीवन, ८-रसिक प्रीतम, ९-कल्यान, १०-परमानन्द, ११-रसिक प्रीतम, १२-श्री विट्ठल गिरधर और १३-कुंभनदास।

विशेष ज्ञातव्य—वर्तमान अनुसंधान कार्य की विशेषता यह है कि अष्टछाप कवियों के पदों के बहुत से संग्रह मिल रहे हैं। इनमें कई तो अत्यन्त मूल्यवान और दुर्लभ हैं। प्रस्तुत संग्रह में अष्टछाप के तथा और दूसरे कवियों के छाक सम्बन्धी गीत संगृहीत हैं।

संख्या २८०. रामभजन, कागज—देशी, पत्र—१६, आकार—८½ × ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५६, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—ठाकुर रुस्तम सिंह, स्थान—दिखतौली, पो०—शिकोहाबाद जिला—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशायनमः ।। अथ राम भजन लिष्यते ।। भजु रघुवर स्याम जुगल चरना ।। भजु० ।। इतही अजोध्या निरमल सरजू। उत मथुरा शीतल जमुना ।।भजु०।।१।। इतही कौसल्या माई गोद खिलावै। इत जसुदा जी झुलावै झुलावै पलना ।। भजु० ।।२।। इति मुनि नारि अहिल्या तारेउ। उत कुवरी संग किहेउ रवना ।। भजु० ।। ३ ।। इतही जनकपुर धनुआ तोरेउ। उत मुख पर मुरली धरना ।। भजु० ।। ४ ।। इतहि लंका रावन मारेउ। उतही कंस पधारेउ धरिना ।। भजु० ।। ५ ।। इत तुलसी उत सूर कहायेउ। जुगल चरन पर चित धरना। भजु रघुवर स्याम जुगल चरना ।। ६ ।।

अंत—सखी व्रजमोहन कब अइहैं। ग्वाल बाल सब राह निहारें दरसन कब दुइहैं ।। सखी० ।। १ ।। चैत मास चिंता भई मन में कवन खबरि कै हैं। नंद नन्दन गोपाल लाल विना विरहासों तैहै ।। सखी० ।। २ ।। ऋतु वैसाख में पास नहीं मोहन कैसैं दुख कैहैं ।। घाम देखि मोहि काम सतावै कामिनि मरि जैहैं ।। सखी० ।। ३ ।। हमसे जेठ बहुत दिन कुवरी उनहिन संग रहइहै। हम वरसन दरसन कौं तरसैं कब लगि तरसइहैं ।। सखी० ।। ४ ।। हिंगादास अषाढ़ में अइहैं हरि के गुन गइहैं ।। यहँ चउमासा सब व्रजवासी हंसि हंसि कैं गइहैं ।। सखी० ।। ५ ।। मुरलिया वाजी जमुना तीर कालो कान्हैया

काली मुरलिया कालो जमुना को नीर ।। १ ।। पैठि पताल कालिनाग नाथे कैसैं धरै जिया धीर ।। मुरलिया० ।। २ ।।...........शेष लुप्त ।।

विषय--राम और कृष्ण की भक्ति सम्बन्धी तथा वियोगावस्था सूचक भजनों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य--इस ग्रंथ का अंतिम भाग नष्ट हो गया है । इसमें राम कृष्ण भक्ति सम्बन्धी कई कवियों के भजनों का संग्रह किया गया है । संग्रहकर्त्ता ने अपने नामादि का कुछ भी परिचय नहीं दिया है । अन्तिम भाग में कृष्ण और गोपियों के प्रेम अथवा वियोगावस्था का वर्णन है ।

संख्या २८१. राम गीता, कागज—देशी, पत्र—५, आकार—१० × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी, स्थान—बकेवर, जिला—इटावा ।

आदि--श्री गणेशाय नमः ।। अथ ग्रंथ रामगीता लिष्यते ।। दोहा ।। पूछत कथा विचित्र मत, साधक सत्ति प्रमान । जाहिसेइकै पाइये, अनुमत अचल विधांन ।। छन्द प्रकृत ।। सौमित्र की सिक्षित सार गाई । सो राम के प्रश्न संज्ञा सुनाई ।। ये कांत सो आसनी राम पायो । सौमित्र सो प्रश्न ताको सुनायो ।। त्वं शुद्ध बोधं महा तत्व ज्ञानी । त्वं आत्मा धीस ऐसो विधानी ।। अज्ञान भव वारिध सो अपारा । ताको कहो नाथ कैसे विचारा ।। सौमित्र की भावना शुद्ध जाना । तासों अभै ज्ञान संज्ञा बषाना ।। सौमित्र को प्रश्न स्रोता सो रामं । तासो को ज्ञान संज्ञा अकामं ।। सात्रा सुनो सो गुणो ज्ञान सोई । जाते न अज्ञान को भाव होई ।। अज्ञान काया महासिन्धु जानी । तामें कही आतमा ज्ञान मानी ।। ताकी प्रचै ज्ञान जो भाऊ चाहै । सो सदगुरुं ज्ञान सोभा उलाहै ।। वार्णींश्रमी सो सवै भाउ त्यागै । सो सदगुरुं भाउ संज्ञानु रागै ।। सो सद्‌गुरुं भाव संज्ञा न पावै । ताको नहीं आतमा ज्ञान आवै ।। सो देह को सर्व संवादु गावै । सो भूत रागी विषै भाउ भावै ।।

अंत--ताते निराकार जानै अकासा । त्यागै सवै भूत की भोग आसा ।। इन्द्री विषै दोष ते मोष पावै । जाते निराकार भाउ आवै ।। सो प्राण पंथी अभै सत्रु त्यावै । जैसे जल सिंधु को बुन्द सारा ।। ताकी तथा धार पायो विचारा । ऐसी परिक्ष्या निराकार केरी ।। सिक्ष्या लहो प्राण संज्ञा अपेरी ।। सिक्ष्या निराकार को भाउ पावा । सो सद्‌गुरुं सार जाको लषावा ।। ऐसी कथा सो तथा राम गावा । जैसे निराकार ताको प्रभावा ।। सौमित्र सिक्ष्या तथा ज्ञान पावा । ताते निराकार को आवा ।। जोगी भयो सार संज्ञा विचारी । सिक्ष्या निराकार इक्ष्या संभारी ।। सिक्ष्या परिच्या निराकार केरी । सो पाइ कै शर्व त्यागै वषेरी ।। जो भूत संज्ञा महा भर्म कारी । त्यागै महा मोह संज्ञा अपारी ।। जो सूक्षमी ब्रह्म की नाल सारा । ताकी अभै नाल संज्ञा सभाँरी ।। आनन्द पायो गहे नाल सारा । त्यागै विषै भर्म संज्ञा अपारा ।। जैसें क्षुधावंत अमृत पाई । तोको अभै स्वाद संज्ञा मिठाई ।। संतोष आयो तथा स्वाद पाई । ताते अभै सुत्र संज्ञा लगाई ।। त्यागै सवै भूत

की काल फांसी। पायो अभै ज्ञान आनन्द रासी॥ अनित्य संज्ञा तजे देह आसा। जातैं अभै भाउ पायो अकासा॥ नित्या तमासो अभै भाउ जाना। ताते अभै भाउ को ठान ठाना॥ जाते.लह्यो.................

विषय—श्री रामचन्द्र जी का सौमित्र जी को आत्मज्ञान का उपदेश देना।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयितादि का पता नहीं चलता। यह मूल संस्कृत ग्रंथ वाल्मीकि रामायण के एक खण्ड का अनुवाद जान पड़ता है। तुलसीकृत रामायण में भी राम द्वारा लक्ष्मण को आत्मज्ञान का उपदेश दिया गया है। रचनाकाल एवं लिपिकाल अज्ञात हैं।

संख्या २८२. राम जन्म कथा, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—२६४, अपूर्ण, लिपि—कैथी, पद्य, रूप—प्राचीन, प्राप्तिस्थान—पं० अयोध्या प्रसाद जी, स्थान—फुलरई, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—........॥ दोहा॥ रथ ते उतरि राजा गए, चरन तन सोहि। सिंगी रिषि के मन में, दया उपजी ओहि॥ कहु राजा तै कर कथी कादुषी तुरित कहौ करि दया सो सुषी॥ इन्द्र सरग ये ढारि लड़ायो। ताहि राज ले तोहि बसायो॥ कहै रिषी मैं सब कर सुषी, एक पुत्र विन मैं बड़ दुषी॥ दोहा॥ तीनि भुअन फिरि आयऊ, कतहु न पूजी आस। गुरु उपदेस गोसांइ, आयो तोहरे पास॥ सुनि कै रिषि समाधि तब कीन्हा, श्रम निवारि कै आहुति दीन्हा॥ मूल मंत्र कीन्ह अहि पाना। हृदय मगन नारायन आना॥ चाउर चुनी पिंड इक कीन्हा, सो राजा के कर लै दीन्हा॥ दोहा॥ प्रान बल्लभा नारि ताहि पियावहु जाइ। त्रिभुअन सुन्दर वेटवा, सो जग जन्महि आइ॥ सो लै राय चले पुनि कैते, दुषी परायन पावै जैसे॥ मन महँ लोग वसे चहुँ पासा,..............॥ नित उठि दान देत है राजा। सुफल मनोहर वाजन वाजा॥ पांच मंगल गावहिं वर नारी, ब्राह्मन वेद पढ़ै झनकारी॥

अंत—दोहा कौसिल्या वौ केकई, सुमिता करिहि अनंद। सुर कंठ बहु गावतीं, धुआं धूप श्रम छंद॥ जैसैं कौशिल्या दशरथ राऊ। तैसे राम के सीता भाऊ॥ सब रनिवास मिलि आरती उतारी। हरषवंत सब अरु अरुनारी॥ राम लषन तब पढ़ि कैं आए, भरत शत्रुहन पढ़ै पढ़ाए॥ कहे कोसिल्या मनहि विचारी। वेटा कहत लाज महतारी॥ दोहा॥ सव रानी का अस वोलै, वेटा कहत सव पाप। सीता सवकी मातु है। राम सवनि के वाप॥ इति श्री राम जन्म कथा समापित॥ संपूरन॥ जो प्रति देषा॥ लिषा मम दोसु न॥ दीयते॥ पंडितजन सों वीनति मोरि॥ टूटल छूटल सव अछर॥ मिलाइव जोरि॥

विषय—राजा दशरथ को शृंगी ऋषि द्वारा पुत्रों की प्राप्ति होना, विश्वामित्र का यज्ञ पूर्ण होना, धनुषयज्ञ, रामादि विवाह और वर वधुओं सहित राजा दशरथ का अवध आकर उत्सव मनाना आदि विषयों का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—पुस्तक के रचयिता का पता नहीं है। यह कैथी लिपि में लिखा गया है, परन्तु अशुद्ध बहुत है। बहुत से शब्द एवं पंक्तियाँ छूट गई हैं।

संख्या २८३. रास पंचाध्यायी, कागज—देशी, पत्र—१३, आकार—१३$\frac{1}{3}$ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२९, पूर्ण, रूप—नवीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामदत्त जी, स्थान—ब्रह्मपुरी, पो०—कोसी, जिला—मथुरा।

आदि—श्रीमते रामानुजाय नमः॥ अथ पंचअध्याई के पाँच अध्याय क्यों हैं ताको तात्पर्य यह है कै जैसे देह में पाँच प्राण होय तैसे ये अध्याय हैं पाँच तहाँ श्री भागवत कूँ सांगत्व निरूपणं प्रथम द्वितीय दोऊ चरण हैं तृतीय चतुर्थ ये दोउ घोंटू हैं पंचम ये दोउ जंघा है सप्तम कटि है अष्टम उदर है नवम हृदय है दशम मुखारविंद है एकादश दक्षिण भुजा है द्वादश भुजा है तह मुख मैं पाँच तैसे ये पाँच अध्याय हैं॥ अथवा वह काम को विजय है॥ कामदेव के पाँच वाण है तिनकूं परास्त कीनो जो कामदेव के अधिक मती बाण होते तो अधिक कमती अध्याय होते याते पाँच अध्याय है॥

अंत—श्री कृष्णचन्द्र नै अैसी रमणीय मधुर स्वर में वंसी वजाई जा गोपी कुँ बुलाई ताही नै शब्द सुनो और काहू के जात विरादरी की वैठी रही तिनसो मानो वंसी की पहिचान नहीं तासूं उनो ने तीन दियो और एक ही स्वर में सबके नाम लेके वंसी पुकारी तापै गोपी वोली यह वंसी मोही कूँ बुलाइबे आई है दूसरी माने मोही कूँ वोले हे तीसरी चोथी अैसे ही लाखन किरोरन कूँ प्रसन्नीत भई और सब ही गई और श्री कृष्ण पेसा अैसी वजावे हैं एक संग आकर्षण करे हैं सोउ श्री कृष्ण की इच्छा तै कोई सुने कोई नाय सुने पक्षी हिरन गाय जाकूँ बुलामे सोई सुने दूसरो न सुने जा गोपी कूँ मोहिन करै सोई सुनके मोहित होय है जापै मन चले हे सोई सुने है और सुनें॥ इति समाप्तम्॥

विषय—भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित 'रास पंचाध्यायी' अध्यायों का अनुवाद और भगवान् कृष्ण की लीलाओं का स्पष्टीकरण।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में भागवत दशमस्कन्ध के उन पाँच अध्यायों का भाषान्तर है जिनमें भगवान् कृष्ण के रास का वर्णन है। गद्य में होने से अनुवाद उत्तम है। भागवत वाचने वाले इस भाग को कभी-कभी अलग से श्रोताओं को सुनाते हैं। इसीलिये किसी पंडित ने सुविधा के लिये इसका अनुवाद कर दिया है। परंतु इसे कोरा अनुवाद ही नहीं कहा जा सकता, इसमें अनुवादक ने कुछ अपनी मौलिक बुद्धि का भी परिचय दिया है। ग्रंथ से अनुवादक का पता नहीं लगता। रचनाकाल और लिपिकाल भी अज्ञात हैं।

संख्या २८४. रसिक श्रृंगार, कागज—देशी, पत्र—१०, आकार—६ X ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२००, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामनारायण जी शर्मा, स्थान व डाक घर—जसराना, जिला—मैनपुरी।

आदि—........॥ कवित्त ॥ सूके सूके पात वेरिन कागद करि फेंट वाँधी, षेषटो पुरसि कांम लेषनि बनाई है। गिरी कहूं पाई कजरौटी सोई दोत कीन्हीं, नाथ लिषधारी है प्रतीति उपजाई है। सावधान भए मधु मंगलतिमंगल की, अधिक तिमंगलौ सबनि मन भाई है। कलबंक कलकल सुनि सुनि चौकि कहै, विषीया नूपुर वाजैं भैया कोऊ आई है ॥ ४ ॥ कीजिए मनोरथ ते पाइयत माँग, असे कहि मिली राधे चतुर सबै अली। कोमल अरुन पट इंडुरी बनाइ भरि, माषन कनक घटी माथैं नाथ लै चली ॥ मनमें किशोर पिय मिलवे की आसाडोरि वंधी आंन निकसी हैं गिरिराज की गली। मुषर नूपुर विछिया की धुनि सुनि सुनि गिरिधर अभिलाषा कलपलताफली ॥ ६ ॥

अंत—काहि चाडको है ठाली बैठो जो षवावै वोलै, अंगुरी दसन चाँप ये हैं गुन माने के। कोहै मानी वृन्दावन रानी फिरि मुसकानी, कीयें आनाकानी फल लागे पहचाने के ॥ कैसे फल ऐसे जैसे देषनि हौ देषें कहा, नाथ हम जिए जू सुवेई ढंग जाने के। जानति हौ कोहैं हम कोहौ हम जानति हैं, राजा नंद गाँवके हो चेरे वरसाने के ॥ ३१ ॥ भली है जू भलो चेरो जानि चलौ डेरा कछू, षाहु कै षवावहु जग ह्वै है जसुजस। सुनि नैन नीचे करि रहीं अनवोलीं तव, गिरिधर नाथ गहि वाँह चले रसुरस ॥ गिरिवन कुंज केलि कीनी कंठ भुज मेलि, गोरस मधुर रस चाष्यौ स्वाद ससमस। कोक कला कोविद स्वछंद नाना रति वंद, एक एक तें अधिक दोऊ विस्वा दस दस ॥ ३२ ॥ इति श्री रसिक श्रृंगार ग्रंथ ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—श्री कृष्ण की दान लीला का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ का आदि भाग लुप्त हो गया है। रचयिता के नाम धामादि का कुछ भी पता नहीं चलता। इसमें कवि ने युक्ति पूर्वक कृष्ण एवं राधिका, विशाखा आदि व्रज वनिताओं के संवाद का दिग्दर्शन कराया है। ग्रंथ में अशुद्धियाँ अधिक हैं।

संख्या २८५ ए. सिद्धि सागर या राशिमाला, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—६ × ४३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—४३२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामप्रसाद जी, स्थान व डाकघर—वकेवर, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ सिद्धिसागर ॥ अथ बारहों राशियों का विचार ॥ चू चे चोला ली लू ले लोआ। मेषराशि। × × × × × × दो दू थ झ ञ द दो चाची। मीनराशि। × × × × × १ चु चे चोला अश्विनी। × × × ॥ मेषराशि ॥ × × × × १२ दी पूर्वा भाद्र। दूथा झ ञ उत्तरा भाद्रपद। दे दो चा ची रेवती ॥ मीनराशि ॥ मेषराशि का फल ॥ स्वामी इसका मंगल है ॥ मुखपर वगल में नीचे अथवा पाँव के ऊपर काली मिर्चें की निशानी या काला तिल होगा या घाव शरीर में होगा ॥ पहिली अवस्था अथवा आखिर अवस्था में धनवान होगा। खरीद विक्री करेगा तो नफा होगी। छटये कन्या पड़ी है ॥ रोग इसको लोहू का होगा। गरमी

खून से होती रहेगी। वायु का जोर होता रहेगा हमेसा नहीं कभी कभी इलाज इसको सोंठि और सनाय को शहद में गोली बाँध छः छः माशे प्रतिदिन खाय तो रोग कभी न रहै ॥ सातवें तुला पड़ी है दो स्त्री करेगा एक ब्याही दूसरी गुप्त ॥ आठवें वृश्चिक पड़ी है मृत्यु इसकी पेट के विकार व लोहू के दस्त से होगी।

अंत—स्वामी इसका बृहस्पति है ॥ छठवें आसमान पर रहता है ॥ इसका चेहरा गोल होगा ॥ लम्बा कद मीठी जबान होगी बहुत तंग गरीबी तौर से पेश होगा भावली सुपना बहुत देखेगा कोई इसे तोहमत चोरी की लगा देगा ॥ सफर में माल पैदा करेगा ॥ सन्तान बहुत वफादार होगी ॥ बूढ़े भये पर संतति फलैगी ॥ रोग इसको गरमी से वादी होती रहेगी। छोटे चार पांव का एक जानवर इसके घर में रहैगा ॥ स्त्री चार करेगा ॥ मृत्यु इसकी दो पाँव वाले के हाथ से होगी ॥ दिवाल के ऊपर से गिरैगा ॥ नौकरी में नफा नहीं मिलेगी ॥ × × × इसको चार जगह खतरा है पहला चार वरष में इससे बचै तो पचीस वरष सात महीने बीस दिन जियेगा ॥ आगे राम जी की मरजी ॥ इति सिद्धि सागर ॥ राशि विचार ॥ समाप्तम् ॥

विषय—बारह राशियों की पहिचान और उनके फलाफल का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—इस छोटे से ग्रंथ में बारह राशियों की पहिचान और उनके फलाफल पर विचार किया गया है। प्रत्येक राशि का विस्तृत फल कहा गया है। इसमें रचयिता ने अपना परिचय नहीं दिया है और न रचनाकाल लिपिकाल का ही उल्लेख किया गया है।

संख्या २८५ बी. राशिमाला, पत्र—१६, आकार—६ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८८, पूर्ण, लिपि—नागरी, पद्य, रूप—प्राचीन, प्राप्तिस्थान—पं० देवीदयाल जी, स्थान व डाकघर—भरथना, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ राशिमाला ॥ अथ बारहों राशियों का विचार ॥ चू चे चो ला ली लू ले लो आ ॥ मेषराशि ॥ ई ऊ ए ओ वा वी वू वे वो ॥ बृषराशि ॥ का की कू घ ङ छ को के हा ॥ मिथुन राशि ॥ ही हू हे हो डी डा डू डे डी ॥ कर्क राशि ॥ मा मो मू मे मो टा टी टू टे ॥ सिंहराशि ॥ टा पा पी पू ष ण ड पे पो ॥ कन्या राशि ॥ रा री रू रे रो ता ती तू ते ॥ तुलाराशि ॥ तो ना नी नू ने ना या यी यू ॥ बृश्चिकराशि ॥ ये यो भा भी भू धु धा फ ढ़ा मे ॥ धनराशि ॥ भो जा जी जू जे जो खा खी खू खे खो गा गी ॥ मकरराशि ॥ गू गे गो सा सी सू से सो दा ॥ कुम्भराशि ॥ दे दू थ झ ञ द दो चा ची ॥ मीनराशि ॥

अंत—कुंचित प्रवीण मति, वस्त्र सु उज्वल धारि। शुक्रवार को जन्म जिहि, ताको कहा विचार ॥ ६ ॥ तामस क्रूर सुभाव कहि, दुर्बलता बहुताइ। शनिवार को जन्म जिहि, ताइ बहादुर गाइ ॥ ७ ॥ अति सुशील जीवन बहुत, कोमल कान्ति विनीत ॥ पुत्र मात आनन्द युत, शुक्ल पक्ष जन मीत ॥ ८ ॥ अतिमानी निज कार्य्य हित, चंचल

कलहित भाव । मन भाए सो करत है कृष्णपक्ष पर भाव ।। ९ ।। श्रद्धा शांति प्रसन्न चित, सुख सन्तोष विचार । जीवन ते बहुकाल तिहि, उत्तरायन परचार ।। १० ।। गोपालक अति गर्वता, कर्म कृषी ब्यापार । कठिन वित्त कटु वचन, तिहि दक्षिनायिन परचार ।। ११ ।। इति श्री रासिमाला नाम ।। ग्रंथ समाप्तम् ।। शुभमभूयात् ।।

विषय—बारह राशियों के फल, लग्न विचार, विवाह विचार तथा मकान बनवाने का विचार आदि बातों का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रन्थ ज्योतिष से संबन्ध रखता है । इसके रचयिता के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं होता ।प्रायः समस्त ग्रंथ गद्य में ही लिखा गया है; परन्तु उसका थोड़ा अन्तिम भाग पद्य में भी है जिसमें केवल थोड़े से दोहे मात्र हैं ।

संख्या २८६. रथयात्रा के गीत, कागज—मूँजी, पत्र—७३, आकार—६ × ५ इंच, पंक्ति—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० पन्नालाल जी, मु०—जतोरा, पो०—दाऊ जी, जिला—मथुरा ।

आदि—राग विलावल ।। तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा; मन में जटित सार जस रसे, सब धुजा चमर चित लोभा; मदन मोहन पिय मध्य विराजत, मनसिज मन के छोवा; देखत ही मन मोह रहत है, मनमथ मनके चोवा; चलत तुरंग चंचल भुव ऊपर, कहा कहौं यह ओभा; आनन्द सिन्धु मानो मकर क्रीडत मगन मुदित मन चोभा; इह विधि बनी ब्रज वीथिन महियां, देत सकल आनन्द । गोविन्द प्रभू पिय सदा बसो जीय वृन्दावन के चन्द ।

अंत—मलार ।। तुम देखो सखी रथ बेठे हरि आज; अग्रज अनुज सहित स्याम घन सवे मनोहर साज; हाटक कलसा धुजा पताका छत्र चमर सिर ताज, तुरंग चाल अति चपळ चले हें देखि पवन मन लाज; सुदि अषाढ़ द्वैज सुभ दिन, अति नक्षत्र सुभ जोग; बन माला पीताम्बर ओढ़े धूप दीप बहुभोग; गारी देत सबे मन भाई कीरति अमर अपार; माधोदास चरन नीको सेवक जगन्नाथ सुतिसार । × × ×

विषय—निम्नलिखित पद रचयिताओं के रथयात्रा के उत्सव संबन्धी गीत संगृहीत हैं:—१—अष्टसखा, २—माधोदास, ३—गोविन्द प्रभू, ४—हरिदास, ५—रामराय, ६—विट्ठल, ७—रसिकदास, ८—तुलसीदास इत्यादि ।

विशेष ज्ञातव्य—रथयात्रा व्रज में बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है । इसमें रथ पर बैठकर भगवान् की सवारी बाहर निकलती है और वहीं बड़े समारोह से उनकी पूजा होती है । इसमें लाखों मनुष्य एकत्र होते हैं । इसी उत्सव विषयक जितने भी गीत अष्ट सखाओं एवं अन्य भक्त कवियों के हैं, वे सब इसमें संगृहीत हैं ।

संख्या २८७. रुक्मनि पूर्व कथा, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—१०$\frac{3}{4}$ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१४४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—हरि प्रसाद जी, मु०—भीमा, पो०—राया, जिला—मथुरा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः। चौपाई। अस कारन श्री हरि तनु धारा। प्रभू के लीला चरित अपारा॥ जौन होय कमला अवतारा। सो सब सुनौ उमा विस्तारा॥ एक दिवस पौढे जदुनाथा। दावति चरन रमा निज हाथा॥ बोलै हँसि के हरि मुसुकाई। सुनौ रमा मम भक्त वड़ाई॥ मेरे भक्त न तुम बस होनी। ते धन जीवन जानत मोही॥ बोली रमा मृदुल मुसकाई। सुनौ नाथ मम भक्त दृढ़ाई॥ मेरी भक्ति जासु उर आवै। तिस कूँ तव नावैं न सुहावै॥ जो तव परम भक्त वनवारी। तिस कूँ मैं तुम हूँसो पियारी॥ हम तौ नाथ तुमारी माया। कनक कामनि दुई मम छाया॥ इन वस परे सकल सुर देवा॥ विसरैं ज्ञान ध्यान तप सेवा॥ हमरी कृपा बचै नर सोई। तव दृढ़ भक्त नाथ तहाँ होई॥ नहीं मानौ तौ जाऊ गुसांई। भेष पलटि सेवक ग्रह धाई॥ जौ जानौ अति दृढ़ निज दासा। ता घर जाय करौ तुम वासा॥

अंत—रे धनपति सुनि वचन हमारा। हरि सौं कचौ प्रेम तुम्हारा॥ साधु रूप श्री हरि बनि आए। बनिये तैने निज भवन बसाए॥ तव दृढ़ भक्ति विलोकन कारन। हमने करा जरा तन धारन॥ हम तौ रमा कृष्ण की माया। छल बल करि हम कनक दिखाया॥ कनक तुरत तव मति हरि लीनी। तजि हरि भक्ति मोर सिख कीनी॥ लोभ विवश मम आज्ञा मानो। घर ते काढ़ि दियो दर पानो॥ हमहूँ ताछिन तुरत विलानी। मम माया मम संग उंडानी॥ दो०॥ दुविधामति अति लोभ की, लोभ दुख को धाम। दुविधा में दोऊ गये। माया मिली न राम॥ रमा वचन सुनि धनपति बोला। को अपराध अंतिम में तोला॥ करि माया मम मति भरमाई। प्रभु सो हमसों कीन्ह जुदाई॥ तुमहूँ जिह अपराध कमायौ। निज पति को अपमान करायौ॥ तुमसों प्रभुसों होहु जुदाई। वर्ष नौक लौ श्रापौ माई॥ जन्म लेहु मानस घर जाई। दुई वर कूँ तव होहू सगाई॥ हूँ मैं रमा ज्ञान जो भूलौ। कछू दिन स्याम विरह झष झूलौ॥ फिरि न करौं कहुँ साधु विरोधा। याते साप दियौ वस क्रोधा॥ रमा कहा सुन रे अज्ञानी। तैं निज कच्ची भक्ति न मानी॥ हमकूँ वृथा लगायो दोषा। तोकूँ साप देहूँ करि रोसूं॥ जहाँ कहूँ जन्मौ जग जाई। तहाँ होऊ तू मम बड़ भाई॥

विषय—रुक्मिणी जी की पूर्व जन्म की कथा वर्णन की गई है जो निम्नलिखित प्रकार से हैः—एक बार रमा और भगवान् में इस प्रकार विवाद हुआ। भगवान् ने अपने भक्त की बड़ाई की। लक्ष्मी जी ने कहा कि मैं यदि आपके भक्तों के पास चली जऊँ तो आपकी बड़ी दुर्दशा हो जाय। जिसकी परीक्षा भेष बदल कर की गई। भगवान् एक साधू का भेष धारण कर उज्जैन के एक धनवान सेठ के यहाँ गये और कहा कि मुझे निवास इस शर्त पर दे कि मुझे तू कभी निकालेगा नहीं और न मेरा अपमान ही करेगा। सेठ ने उसकी बात मान ली। कुछ दिनों बाद लक्ष्मी जी भी एक गरीब वृद्धा का रूप धारण कर उस सेठ के पास गई। और उससे खाने को भोजन माँगा। उसको भोजन दिया गया। वह वृद्धा जिस वर्तन में खाती थी वह रत्नजटित हो जाता था। उसमें फिर वह भोजन नहीं करती थी। इस तरह धनी व्यक्ति उसकी सेवा सबसे पहले करने लगा। साधू

का सम्मान घटता गया। वृद्धा ने एक दिन उस साधू को निकलवाने के लिये कहा तो सेठ ने ऐसा ही किया। साधू के जाते ही लक्ष्मी भी विलीन हो गई। जो कुछ संपत्ति थी सब विलीब हो गई। सेठ बहुत दुखित हुआ। आकाशवाणी हुई कि भगवान् के प्रति कच्चा प्रेम होने से ही तेरी यह हालत हुई है। इस पर सेठ ने क्रोध करके कहा कि तूने ही मेरी बुद्धि पलटी है और यह अपराध तुम्हारा ही है। इसलिये तुझे श्राप देता हूँ कि तेरा जन्म मनुष्य योनि में होगा और कुछ दिन वियोग में रहना होगा। लक्ष्मी ने भी श्राप दिया कि तेरी बुद्धि राक्षसी है अतः तेरा जन्म भी होगा और तू मेरा बड़ा भाई होगा। पीछे वही सेठ रुक्म हुआ और लक्ष्मी रुक्मिणी हुई।

संख्या २८८. शब्दकोश, कागज—देशी, पत्र—६, आकार—१०×६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० अयोध्या प्रसाद बोहरे, स्थान व पो०—जसवंत नगर, जिला—इटावा।

आदि—॥ सेवक के नाम ॥ विधि करके करद सजन अनुचर अनुगम दिसि। भ्रित्य किरात जहमैं जसै छवि वनि नहीं जाति ॥ ३४ ॥ दासी नाम ॥ भ्रित्य दसी की कारी चरी, भारहि जु अंभ। रजति भनीमय अजिर मै के उर वसि के रंभ ॥ ३५ ॥ ×× ॥ अंजन नाम ॥ काजल गजपट लमषी नगदीह सुत सोइ। लोक जन दृग दै चली तहि नदिषि कोइ ॥ ३७ ॥ × × × मंगल नाम ॥ कुज अंगारक भूमि पुनि लोहित महि वाल। मंगला से ठठधरि जहाँ, सुदीपक जाल ॥ ४० ॥

अंत—॥ रूधिर नाम ॥ अंनितरक्त स्रोनि पुनि रुधिर आसू काछत जत। लोह पीवत पूतन पुनि, रत भरी छरिगत ॥ १३३ ॥ राक्षस नाम ॥ कौन असप पुनि जन निकष सुत दुरनाद। कवुरि असप निसाचर जातुधान का व्याद ॥ १३४ ॥ आघस रेछस पतकी भिहिषि गति हौति। उलटि समई पीया मै परगट जाकी जोति ॥ १३५ ॥ ॥ सूरज नाम ॥ दिव दिवकर विभाकर दिनकर भासकर हंस ॥ × × ×

विषय—एक वस्तु के अनेक नाम वर्णन।

संख्या २८९. शाखोच्चार, कागज—देशी, पत्र—७, आकार—६½×४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—३६, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० नारंगी लाल, स्थान—अदेसरा, पो०—सिरसागंज, जिला—मैनपुरी।

आदि—स्वस्ति श्री साखानि साखि प्रवर्द्ध मानाय चंद्र सूर्य साक्षी करुणय॥ ध्रुव से निश्चिलताप॥ गंगा जमुना जल से निर्मल ताप॥ दोऊ कुल को दीर्घ तापु॥ बायें अंग जो भगवती दाहिने दुर्गा देवी रक्षा करुणय॥ अमुक गोत्रस्य अमुक सर्मणः प्रपौत्राय अमुक शर्मणः प्रपद्यते स्वस्ति संवादे स्वस्ति संवादे ष्वभयं नोस्तुः॥ × × × अथ भाषा कृत साखोच्चार—ओं जरं ब्रह्म वेदांत विदेन दंति परनं पर धारनं। पुरूष्य स्थावरं॥ विस्व जगत कारनं नवांमीश्वरं नमो नमं॥ अभिगुन चंद्रतोनित्यं॥ यात्रा मंगल

सिद्धि अर्थं ॥ एक दंत सुवक सुंदर दीर्घ भुज दंड ऊद्धार लोचनं ॥ ललत दंडते गंडकलश परिघरें मनिमुकुट कुंडिल वनें ।। कंठ हीरा घनें ॥ असुर स्वर नाग मस्तिक जोरि ॥ सिद्धि-दाता गणेश्वरम् ॥ १ ॥

अंत—ओं सजंजलत नीलं दर्शतो उद्धार शीलं ॥ करत शीलं ॥ वैनवाजे रसालं ॥ तरण तुलसि मालं ॥ निमन हो गोपाल रालाः कमल नेनहारी हूदें देत संग्रामकारी। गिरिवर कर धारी वैनुतो अनुसारी ॥ वंति कुसंवो दीप को गोप कन्या विनोदी हरतते पुरतरासी देवकी के गर्भवासी ॥ चला चलत गगने ॥ नक्षत्र चक्रः प्रभु, जावरि दूवरि हरि हारिक मस्तिक फलं ॥ तावति सीता पार्व्वती ॥ व्यास कथा धारा भस्म सजंते तेन परमं भुजंते राज लक्ष्मी ॥ २ ॥ स्वस्ति श्री० ॥

विषय—विवाह समय पर होनेवाले वर कन्या पक्षों के शाखाओं का उच्चार।

विशेषज्ञातव्य—प्रस्तुत छोटी सी पुस्तक में शाखोच्चार का वर्णन है। उक्त शाखोच्चार वर और कन्या दोनों ही पक्ष से पढ़ा जाता है। इस पुस्तक में संस्कृत भाषा में कुछ श्लोक देकर भाषा पद्य में भी उसका वर्णन किया है। हिन्दी भाषा भी संस्कृत मिश्रित है। रचयिता के नामादि का पता इसमें नहीं दिया गया है।

संख्या २९०. समस्या पूर्ति, कागज—देशी, पत्र—३२, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप् छन्द)—७६८, खंडित, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बौहरे गजाधर प्रसाद, स्थान—घरवार, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ समस्या पूर्ति ॥ हँसैतो फँसैना ॥ एक सुन्दरि नारि रचे विधना, पिया के हिय से कबहूँ निसरैना। तात सुभाव बड़ा हँसना वल—देहू सनेहू से चित्त मिलैना ॥ चित्त मिलै मनहूँ न मिलै देहिं, याँ न छुवो कोउ लोग हँसैना। चातुर यार बड़े है चलाक यह, कारन नारि हँसै तो फँसैना ॥ १ ॥ सुगन्ध लगाय के ऊवि मरौं प्रिय, जानत हौ तन की सुकुमारी। हार चमेली को नीक लगै प्रिय, लाज करो पहिरों तन सारी ॥ और अभूषण का वरनौं प्रिय, लागत पाय महावर भारी। मेरे सुभाव को जानो नहीं, रसखान कपूर मुलायाम ताड़ी ॥ २ ॥

अंत—मथुरा में जनम लीन्हो गोकुल में गमन, कीन्हों सखियन घर जाय जाय माखन चुरायो है। गोपिन यशोदा सुनाय माता कहैं बुझाय, काहे को गोपाल जाय माखन लुटायो है ॥ मुसकात अस कहत कान्ह झूठे यह कहत आप, हम कैसें याके दहेड़िया को पायो है। कहते जगन्नाथ कवि भजते न व्रजनाथ, छवि भक्त के वस नाम चोरहू धरायो है। ऐहि घाट ते थोरिक दूर अहै करिलौ जलथाह दिखाइहौं जू। परसि पग धूरि तरै तरणी, घरिणी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥ तुलसी अवलंबन और कछू, लरिका केहि भाँति जियाइ-हौं जू। वस मारिये मोहि विना पग धोये, नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥

विषय—समस्या पूर्ति तथा अन्य कवियों के छन्दों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में कुछ समस्याएँ लिखकर उनकी पूर्ति की गई है और कुछ स्वतंत्र छन्दों का भी संग्रह हुआ है। रचनाएँ कई कवियों की हैं। उनमें से कुछ रचनाएँ तो नितान्त साधारण कवियों की हैं और कुछ देव, तुलसी और सूर जैसे उत्कृष्ट कवियों की हैं। समस्याओं का कोई क्रम नहीं है और न फुटकर छन्दों का ही कोई क्रम है।

संख्या २९१ ए. सम्वत्सर फल, पत्र—१२, आकार—६$\frac{३}{४}$ × ४$\frac{१}{२}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० प्रभुदयाल जी शर्मा, स्थान—सिरसा, पो०—इकदिल, जिला—इटावा।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ श्री सम्वत्सर फल लिष्यते ॥ प्रभव नाम संवत्सर फल ॥ मेघा वरषै अन्न सम होय ॥ आषाढ़ अगत वरषा ॥ सुर्भिक्ष ॥ उत्तर म्लेक्ष का राजा होय ॥ सरसव छोला उपजइ ॥ श्रावण अन्न मन्द ॥ श्रावण सकल वर्षा ॥ कुआर संपूर्ण वर्षा ॥ रोहिनी वरषाय ॥ नाग राजा देषे ॥ जान धाम ॥ १४ ॥ गोहूँ दाम ॥ १० ॥ मास मोट दाम ॥ १४ ॥ सामादाम ॥ ८ ॥ कोदों दाम ॥ ४ ॥ तिलदाम ॥ २५ ॥ कपासदाम ॥ ५० ॥ अष्टधातु दाम ॥ १५ ॥ घृत दाम ॥ ४ ॥ तैल दाम ॥ ३ ॥ गुरु दाम ॥ २ ॥ प्रजा सुषी ॥ विभव नाम सम्वत्सर ॥ मेघ राजा प्रवल ॥ षेती करण पण्डित की पूजा होय ॥ धान दाम ॥ १३ ॥ पचदाम ॥ १३ ॥ छोला ॥११॥ गोहूँ ॥ १८ ॥ घृत तैल दा० ॥ ३ ॥ गुरू ॥ २ ॥ मोट मासा ॥ १८ ॥ सामा कोदौं ॥ १२ ॥ तिल ॥२५॥ कपास ॥ ४० ॥ अष्टधातु ॥ ८० ॥ राजा प्रजा सुषी ॥ वेद पढ़हिंगे ॥ सकल लोक पुरान सुनहिं ॥ ३ ॥

अंत—॥ अथ मकर रासि फलम् ॥ कुंभर्नेसि गुरुश्चैवा यदा पृच्छति पार्वती ॥ उमा सम्वतसरोनाम सोपि राजा विधीयते ॥ हिमाचल सुतो नाथ संचिन्ते मेधा उच्येर ॥ वर्षा दिन ॥ ४० ॥ अषाढ़ ॥ ७ ॥ श्रावण ॥ १२ ॥ भादौं ॥ १८ ॥ आश्वनि ॥ ३ ॥ कार्तिकमर्घं भवति ॥ सषय कर्तव्यम् ॥ गुरु मजीठ घृत कपास षांड···मर्घं चिंता श्वतर्व्यं ॥ कार्तिक माहर्घा मास भक्षणम् ॥ अन्न संग्रह कर्तव्यम् ॥ कुंभ राशि फलम् ॥ मीन रासि गुरुश्चैवा, यदा पृच्छति पार्वती। उमा सम्वत्सरोनाम सोपि राजा विधीते। वर्षा दिन ॥४४॥ अषाढ़ ॥ ७ ॥ श्रावण ॥ १३ ॥ भादौं ॥ २० ॥ आश्वनि ॥ ७ ॥ कार्तिक अन्न संग्रह कर्तव्यम् ॥ गोहूँ चना मसूर मटर आदि समस्त भवेत् ॥ गाइ वृषभ महिषी महर्घ भवती ॥ चौरं भवेत् ॥ सम्वत्सर बृहस्पति काण्ड ॥ संपूर्णम् ॥ शुभम् मस्तु ॥

विषय—साठ संवतों का फल वर्णन।

विशेषज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में साठ संवतों के नाम तथा उनके फलों का वर्णन किया गया है। यह साहित्य किसने और कब लिखा, इसका विवरण ग्रंथ में कहीं नहीं दिया गया है।

संख्या २९१ बी. सम्वत्सर फल, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—७ × ४$\frac{१}{२}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२८८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य,

लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० हरदयाल जी, स्थान—भदेसरा, पो०—सिरसागंज, जिला—मैनपुरी ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ सम्वत्सर पत्र लिख्यते ॥ प्रभव नाम सम्वत् सर फलम् ॥ मेघा वरषै अन्न सम होय । अषाठ अगत वरषा ॥ सुभिक्ष ॥ उत्तर मलेक्ष का राज होय ॥ सर सव छोला उपजै ॥ श्रावण अन्न मंद ॥ श्रावण सकल वर्षा ॥ कुआर संपूर्ण वर्षा ॥ रोहिनी वरषाय ॥ नाग राजा देषै ॥ धान दाम ॥ १४ ॥ गेहूँ दाम ॥ १० ॥ मास मोट दाम ॥ १४ ॥ सामा दाम ॥ ८ ॥ कोदौ दाम ॥ ४ ॥ तिल दाम ॥ २५ ॥ कपास दाम ॥ ५० ॥ अष्टधातुदाम ॥ १५ ॥ घृत दाम ॥ ४ ॥ तैल दाम ॥ ३ ॥ गुड़ दाम ॥ २ ॥ प्रजा सुषी ॥ विभव नाम संवत्सर ॥ मेघा राजा प्रवल ॥ षेती करण पंडित की पूजा होय ॥ धानदाम ॥ १३ ॥ छोला ॥ ११ ॥ गोहूँ १८ ॥ घृत तैल ॥ दाम ॥ ३ ॥ गुर ॥ २ ॥ मोट मासा ॥ १८ ॥ सामा कोदौं १२ ॥ तिल ॥ २५ ॥ कपास ॥ ४० ॥ अष्टधातु ॥ ८० ॥ राजा प्रजा सुषी ॥ वेद पढ़हिंगे ॥ सकल लोग पुरान सुनहिं ॥ २ ॥

अंत—दुदभी नाम सम्वत्सर ॥ मेघ वर्षय आनन्द होय ॥ मंगलचार गाऔ । लोग सुषी ॥ राजा प्रजा सुषी, भैंस दूध देंइ ॥ ब्रह्मग गऊ पूजिए ॥ गुरु पूजिए । देवता पूजिए । सर्व कला आई ॥ वर्षा बहुत होय ॥ मास धान गोहूँ छोला गुड़ यव मसुरी कोदौ रहरी तिल कार सव वढ़ै ॥ सक्कर संग्रह करव ॥ आदि वैसाष लेव ॥ वेचव ना षावै सुषी रहवै । ॥ सर्धि नाम संवत्सर ॥ मेघा वरषै अन्न उपजै ॥ अन्न का संग्रह करव अन्न सर्व लेव ॥ साहमा वेचव ना नाहीं ॥ जे बेचैगा ते पछितायगा ॥ अन्न राषन ॥ ५३ ॥ रक्ता नाम सम्वत्सर ॥ अधिराम होय ॥ महाकष्टी ॥ राजा दुषी होय ॥ राजा मारि कै अन राजा होय संग्राम होय ॥ कलह होय ॥ अन्न का संग्रह करव ज्येष्ट वैसाष अषाढ़ श्रावण............ ॥ एवं सम्वत्सरो भवति ॥

विषय—संवत्सरों के नाम और उनके फल वर्णन ।

संख्या २९१ सी. सम्वत्सर फल, पत्र—२०, आकार—१० × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान रामदयाल जी शर्मा, स्थान—जगौरा, पो०—जसवन्त नगर, जिला—इटावा ।

आदि—·········कातिक मन्दौ । वाषरु कर्क तौ ॥ राज विग्रह होई ॥ मार्ग पौष माघ फागुन सम ॥ ४ ॥ अथ प्रमोद नाम फलं ॥ उनमत्त जगत सर्व धन धान्य समाकुलं ॥ सर्म धाजायते तत्र प्रमोदेथ वरानने रवि स्वामी ॥ देस मह पीड़ा होई ॥ वोरा धोरा परै ॥ चैत्र वैसाष सम ॥ अषाढ़ ज्येष्ठ समस्तौ ॥ श्रावण वर्षा वहुत ॥ भादौं वर्षा बहुत ॥ अस्वनि कातिक षरषरौ ॥ मार्ग पौष भलौ वाषरू चलसी ॥ माघ फागुन अन्न सुकाल ॥ ५ ॥ अथ प्रजापति संवतसर नाम फलं ॥ स्वुल्पस्य वर्षते मेघा सर्व व्याधि विवर्जिता । वहु क्षीरं घ्रतं गावो प्रजापतेश्च वरानने ॥ चन्द्र स्वामी ॥ प्रचंड वाजैगौ ॥ अन्न कर्क तौ व्यौपारी द्रविजे रही ॥ अस्वनि कातिक मार्ग सिअरौ ॥ पौष माघ फागुन ऐतौ मास मंदौ ॥ ६ ॥

अंत—॥ अथ छष कृत नाम फलं ॥ सौराष्टे वर देसो कोक नस्या वरानने। दुर्भिक्षं जायते घोरं छयक्रत संवत् सर प्रिये.॥ चैत्र कलह होइ॥ वैसाष उत्पात ॥ ज्येष्ट असाढ़ सावन भय॥ भादौ मेघ घनै॥ असुनि कातिक अति वर्षाः मार्ग मंदौ॥ सेस मास भले॥ इति छयक्रत नाम फलं॥ ६०॥ इति श्री महादेव पारवती संवादे॥ साठिक॥ संवत्सर फल॥ संपूर्णम्॥ शुभमस्तु॥

विषय—साठ संवत्सरों का फल वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ का आदि का भाग नष्ट हो गया है।

संख्या २९२ सम्वत्सर फल, कागज—देशी, पत्र—५१, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान-पं० चुन्नीलाल जी पुजारी, स्थान-नगला आशा, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः॥ अथ सम्वत्सर फल लिष्यते॥ संवत् १६५९ विरोधी सम्वत्सरस्य टीका॥ चन्द्र स्वामी मालव की भूमि दुरभिक्ष होइसी काग होइसी॥ मध्यप्रदेश॥ चैत्र वैसाष ज्येष्ठ आषाठ श्रावण वर्षा होइ भाद्रपद सफर ऐसी वर्षा मान ४॥ ५॥ कार्तिक मार्गसिर भला धानु सस्ता होइसी॥ रस कस सम॥ धान अति भलइ॥ इति विरोधी संवत्सर फलं॥ सम्वत १६६० वर्ष प्रधावी नाम सम्वत्सरस्य टीका॥ मंगल स्वामी काल करव्वौ अनूटंक २० नगर उछाछन होसी॥ अजमेरि झोलिसी अजमेरि दुर्भिक्ष होइसी॥ लोग प्रलय होसी॥ अनुटका॥ २०॥ मारूदेस दुर्भिक्ष होइसी लोग प्रलय होइसी चैत्र वैसाष महर्घता॥ जेष्ठ असाढ़ महर्घता वालि बाजिसी॥ वहत स्यान दाव पीड़ा होसी॥ मरुदेस पीड़ा होसी॥ भाद्रपद वर्षा होसी॥ षंड मंडले कार्तिग मार्ग सिर वर्षा स्वल्प होइसी॥ आश्वनि वर्षा घणी व माघ फाल्गुण फरकौ होसी॥ इति॥ ॥ शुभ क्रत सम्वत्सर १७५१ फलमाह॥

अंत—वर्ष शुभ नाम संवत्सर॥ शनिस्वामी॥ प्रजासुषी देस वसिस॥ घर घर मंगलचार होसी॥ चैत्र वैसाष ज्येष्ठ समस्त अषाढ़ महर्घता होइसी॥ श्रावण राज पीड़ा होसी॥ मंदा भाद्र वै आस्वनि नाज सम महर्घता मेघ होइसी रस गोरस समस्त कातिग मार्गसिर लोग सुषी होसी॥ पौष माघ फागुण आनंद होइसी॥ इति शुभ क्रत फलम्॥ सम्वत् १७५२ वर्षे पृथ्वी नाम संवत्सर॥ राहुस्वामी मध्यम ऊर्ध्वं क्रोध पाप घणा होइसी पर्वत देस विषैं चैत्र वैसाष ज्येष्ठ अषाढ़ भलो श्रावण भाद्रपद वै अवैन होइसी॥ वर्षा कर्म धर्म आश्वनि कार्तिक लोग छीजिसे॥ व्यौपार रहिसी॥ मार्ग सिर पौष माघ विग्रह॥ फागुण अति वर्षा होइसी संग्राम होइसी॥ इति पृथ्वी नाम संवत्सर॥ ॥ संवत् १७५३ वर्ष विस्वावसु नाम सम्वत्सर॥ रवि स्वामी॥ सर्वत्र काल॥ षरुग वाजि सें मेह कम होसी॥ अन्नु प्यारा होइसी॥ रस रुस भाव॥ वर्षाइ........शेष लुप्त

विषय—साठ संवत्सरों का फल वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता के नाम धाम आदि का पता नहीं चलता इसमें साठिक का वर्णन किया गया है। संवत्सर का नाम लिखकर उसके गुरु आदि के हिसाब से अन्न आदि की उत्पत्ति का हाल बताया गया है। ग्रंथ अंत में खंडित है। लिखावट प्राचीन जान पड़ती है, संस्कृत की क्रियाओं का कहीं-कहीं स्वतंत्र उपयोग किया गया है। अधिकतर विशुद्ध संस्कृत के शब्दों का प्रयोग होने से प्राचीन गद्य सा मालूम होता है। "हो सी" का बार-बार प्रयोग लेखक को मारवाड़ी सिद्ध करता है।

संख्या २९३. सम्वत्सर समुचय, पत्र—४२, आकार—५ × ४३/४ इंच, पंक्ति—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५१२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० मातादीन जी नम्बरदार, स्थान—कंजरा, पो०—करहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—॥ सिद्धि अव्यक्ताय नमः ॥ ॐ नमो नित्यं ज्योतिषाय महात्मने टीका सारं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं परमद्भुतं गोप्य स्वामी विजानीया सम्वत्सर समुच्चयं ॥ नाना सास्त्रों धृतं वाक्ये अर्थ कांडेषु निश्चयं ॥ भयक्तिंचित गोघता तातः ॥ अर्थ कांडेषु भाषितं ॥ २ ॥ तत्सर्वं जायते जेन। राजा मंगादि त्रं तथा मंत्र मेदमयंयुधे। मेघ वर्षादिकतथा ॥ ३ ॥ जाता स्त्री मरणं घात शस्त्र घातं तथैव च ॥ देश भंग च दुर्भिक्षम् मरणं भूरणं तथा ॥ ४ ॥ तत्सर्वं जाययेमे न श्रृणु पुत्र कलौयुगे ॥ विभव संवत्सर टीका ॥ श्रृणु तात यथार्थ विविधानि नि विष्णु स्वामी ॥ मध्यगना गिरि देव गिरि तिलंग येते देशे पीड़ा ढीली लोग पीवड़ा सूं धरि गाढ़ी पीड़ा ॥ राजभंगठल मुलताण गाढ़ी पीड़ा। अति वर्षा अवरदेश सस्त्र यह टीका गोप्य इति विभव संवत्सर टीका फलाफलं ॥१॥ सुक्ल नाम संवत्सरस्य टीका ॥ व्याख्या स्याम गोप्या गोप्य विचारण ॥ राज तंग विजानीया ॥ म्लेक्ष देस कलौयुगे ॥ ढरक राज्य पतडा मंत्री राज्य लभ्यते ॥ फाल्गुण सुदि १४ सुटीका होइसी खंडवकलर हूली पड़िसी पुरुष १ मरिसी राजा प्रजा सुषी शुक्ल नाम संवत्सर टीका मोहिश्वर स्वामी द्वादस मास फलाफलं ॥ २ ॥

अंत—॥ संवत् १६५६ ॥ वर्षे कीलक नाम संवत्सर टीका ॥ शुक्र स्वा चैत्र वैसाष फरकौ अ ॥ येष्ठ आषाढ़ मंदा मेघ घणदेव गिरि वेढ होइसी पछिम दुर्भिक्ष पड़िसी लोक व्यापी ये गाभाद्र वै अस्वनी तीकी मारिसी काती मागसिर पौष माघ फरकौ फागुण देव गिरि टूटैगो ॥ इति कीलक फलम् ॥ संवत् १६५७ ॥ वर्षे स्यौख्य नाम संवत्सर ॥ राहु स्वामी मेघ अल्प होइसी गौ अल्प षीर देइसी फल अल्प वैसाष करकौ राज विग्रह आषाढ़ अति वाजु वाजि सें श्रावण अन घारा भाद्र वै मंदा—अश्विनि कार्तिग दाढ़ वोला पड़िसें मार्गसिर पौषि वौ ये की हाणि पड़िसी माघ फाल्गुण अति भाव होसी इति सौख्य नाम संवत्सर फल ॥

विषय—संवत्सरों के नाम और उनके शुभाशुभ फलों का वर्णन।

संख्या २९४. संग्रह, पत्र—८४, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१६८०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० बच्चूलाल जी शर्मा, स्थान व पो०—कुरावली, जिला—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ संग्रह लिख्यते ॥ दोहा ॥ कहू वरनी नासिका, कहू वरनी दीठि । कवि काहू वरनी नहीं, कदलीदल सी पीठि ॥ मृग नैंनी की पीठि पै वैनी विराजै सुनेह सुगंधि समोइ रही । मानों कंचन के कदली दल ऊपर सामुली साँपिनि सोइ रही ॥ चुनि चीकनो चारु चुभे चित ऊपर शशि के केशनि जोइ रही ॥ कवि देव यही उपमा वरनैं रवि की तनया तन तोइ रही ॥ १ ॥ दोहा ॥ तिय ससुरे की सोधि के । प्रीतम दौरे आइ । हेल मेल की सुधि करौ, कवै मिलोगी आइ ॥ गोरी सी नारि परोसिनि प्यारी तो वोली तो वोली तही मिठ वोला । जो तोहि रूप दयो करता ने तो नेक चितइदे उघारि कैं ढोला ॥ चन्द्र मुखी चारों ओर निहारित मारि दिये मनु प्रेम को गोला । केशवदास विचारि कह्यौ ससुरे कोंचली करि ऊजर टोला ॥ २ ॥ लखि प्यारे की प्रीति को, तिय वोली मुसिकाय । उभय मास धीरज धरो, फेरि मिलोंगी आय ॥ जेठ रहौंगी, असाढ़ रहौंगी तो सांमन आइकै झूलोंगी झूला । मैं न रहौं ननुदैया के देस तो सासु निगोड़ी करे अनवोला ॥ मेरो पिया तो संग सोवतो चरखा कैसो साजु वजार को झूला । काहे को मीत उदास खड़े मैं तो आऊँगी फेरि वसाउँगी टोला ॥

अंत—वीर ब्रह्मचारी सुनि अर्जी हमारी जाय, मरजी तुम्हारी उरिन मोहि कीजिये । मुफसिल मोह ताज को लाज तुम्ही को नाथ, मेरी दरखास प्रभु विना टिकट लीजिये ॥ दुष्ट दुषदाई दलिद्र को निवारौ वेगि । सुमति सहाइ करि डिगरी कर दीजिये । दासन को सुनत रहे पापन कों हरत रहे, कष्ट निवारि आपु पानी जव पीजिये ॥ मन से महीपति के मन से मतंग होत, मदन मुहर्रिर की मिसिल मतवारी है । क्रोध कुतवाल लोग नाजरि को मिसिल से, ज्ञान मुसद्दी मुद्दई की मिसिल विगारी है ॥ अंधकार मददगार करत नारि पोट कछू, क्रन्दना चपरासी को दफ्तर अव जारी है । दोनोंनि की अपील एक डिगरी न होय केस, अर्जी हमारी नाथ मर्जी तुम्हारी है ॥ इति श्री संग्रह ग्रंथ संपूर्णम् ॥

विषय—विभिन्न विषयों से संबंधित अनेक छंदों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में कई कवियों के रचे छंदों का संग्रह किया गया है । इसमें विषय-क्रम का समादर नहीं हुआ है, जहाँ जैसा जी में आया वहाँ वैसा ही छंद लिख लिया है । समस्त ग्रंथ पर विचार करने पर उसमें अधिकतर श्रृंगार के ही छंदों का संग्रह हुआ जान पड़ता है । भक्ति और स्तोत्र के भी कुछ छन्द संगृहीत हैं । छन्द कुछ उत्कृष्ट और कुछ साधारण कोटि के हैं । प्रतिलिपि करने में बहुत अशुद्धियाँ हुई हैं । श्रृंगार के अंगों के विचार से इस संग्रह में प्रायः नख शिख, नायिका भेद, षटऋतु तथा नायक नायिका भेद आदि विषयों पर छन्द रचना हुई है । फुटकर छन्दों में कवि ने नर काव्य संबन्धी छन्द भी लिखे हैं जो किसी डिप्टी अथवा मजिस्ट्रेट की प्रार्थना से संबंध रखते हैं । उनका सार यही है कि मुझ जैसे गरीब की अर्जी विना टिकट के ही ले ली जाय और मेरी डिग्री दे दी जाय आदि ।

संख्या २९५. संग्रह, पत्र—३२, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—५१२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री फूलचन्द जी साधु, स्थान—दिहुली, पो०—वरनाहल, जिला—मैनपुरी ।

आदि—॥ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ कवित्त ॥ साउन सुदि तीज कों विहार होत कुंजन में, पवन प्रचंड साल होत है झकोरा में। दादुर किलकारें करें कोकिला प्रचार करें, मेघ बरसावें घनघोरा में ॥ इत वृन्दावन चन्द्र उत बेटी वृषभानु जी की। गावत मल्हार वीन वाजत मरोरा में। वासर विलौके चितै चारौं औरनि आज, श्री राधा कृष्ण झूलत हिंडोरा में ॥ १ ॥ पाननु की वीरी लाल माथे पै अवीर लाल, केसरि को रंग दीखे काल सों करोरी है। फूल ओ फुलेल चोया चंदन अगर लागे, केसरि कुसुम अति फूलो चहुँओरी है। वालम विन पीर मेरी हिये की हरेगो कौन, कहै रमता राग फाग आयो घनघोरी है। कीजै कहा काज आली जोवन अकारथ जाय, पिय विन होरी मोकों जहर की कटोरी है ॥२॥ अजव इजार लाल चकई कामा और पटका, लाल चूँदरी से पागलाल प्रीतम से पेखलै। छवि के छविले लाल फिरावैं जाल, जहाँ खड़े नंदलाल और रंग रेख लै। नखन ते भूमि लाल हाथ में गुलाल लाल, वृन्द्रावन चन्द्र लाल ब्रन्द में विसेखि लै। दगनि में डोरे लाल आँखें घनस्याम लाल, लाल जहाँ चाहें तो गोपाल लाल देखिलै ॥ ३ ॥

अंत—अंवु को बबूला ज्यों पानी में विलाइजात, त्यों ही शठ एक दिन आप हूँ विलाय है। मेरो तात मात भ्रात भगिनी और भावी, मेरो धन धाम हाय कछू न काम आय है ॥ पंचभूत पंचीकृत पोषत शरीर जौंन, तौनहू महेश पंच तत्व में विलाय है। ताते नित नेम भजि प्रभु के सरोज पद, माय में भुलाय किमि कारज नसाय है ॥ २१० ॥ भाई सों भाई कहै सव सो आसनाई लहौ, ऐसी काहे कमाई सो जगत में इतरात हो। जीवन है वीस तीस चालीस औ पचास साठ, सत्तर पचत्तर से आगे ना खटात हो। कहैं दल सिंह सुख सम्पति परिवार सव, साथी ओ आपने सव यहाँ ही छोड़ि जात हो। कौन के भरोसे हरि नाम को विसारि डारो, जीवन कितेक जापे जूना भये जात हो ॥ २११ ॥ हुआँ क्रीट को मुकट यहाँ मोर की लटक, हुआँ हाथ में धनुष यहाँ मुरली वजाई है। उहाँ अवधि को वास इहाँ वृन्द्रावन रहस, उहाँ सरजू सुहाई यहाँ जमुना वहाई है ॥ उहाँ रावन को मारो यहाँ कंस को पछारो, उहाँ स्याम रामचन्द यहा सामरे कन्हाई है। कहै लछिमन ध्याई इन्हैं देत हैं वढ़ाई, सुइन्है स्याम राम रूप की इकट्ठी लूट पाई है ॥ २१२ ॥ इति ॥

विषय—भक्ति, शान्त रस तथा प्रेम सम्बन्धी कविताओं का संग्रह।

संख्या २९६. संग्रह, पत्र—७६, आकार—१० X ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३६८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री पं० राम जी शर्मा, स्थान—असरोही, पो०—करहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—.........प्रात समय रघुवीरे जगावै कोशिल्या मैं तारी। उठो लाल जी भोर भयो है सुर नर मुनि हितकारी। भरत सत्रुघन चमर छत्र लियें जनक सुता लिये झारी। मेवा पान लियें कर लछिमन भरि कंचन की थारी ॥ सुनि प्रिय वचन उठे रघुनन्दन नैनन पलक उघारी। करि असनान नृप दान देत हैं तिलक सजोवत भारी ॥ तुलसिदास प्रभु रूप निहारि चरण कमल वलिहारी ॥ जो प्रभु मेरी ओर निहारे ॥ टेक ॥

लीन कुलीन सबही हुँ करत हुँ सांजगि नोन सकारो ॥ गुन चाहो सो एकहु नाहीं मैं अपराधी भारो ॥ वहीं पति नाहिं सुमति संपति कछु फल एक नाम तिहारो। काम क्रोध मद लोभ मोह सें इनसे करि देउ न्यारो। लोभ मोह की नींद वहत है करि लेउ नाम सहारो ॥ और अधम सव एक पला में एक पला में न्यारो। नाम सुनो तव तुमपर आयो ऐसो वुद्ध तिहारो। तुलसीदास प्रभु रूप भजो भगमानें सव संतन को प्यारो ॥

अंत--गोप दुहन वैठे गैयन कौं ब्रजपति ठाड़े। दुहूँ उँगरियन दुहूँ वेटन कों लिये प्रेम सों वाढ़े ॥ वावा कहत सुनो लालन तुम स्तन पानन कीनो। धार दुहाय सुस्ताय सहत निज हाथ लाल कर दीनो। पात पातुषी करन सिषये तामैं दूध पिवाये। तृप्ति भये दोऊ मिलि पीयो श्याम राम मन भाए ॥ गाय दुहाय भराय सो कुँवरि दै दुहाय घर लाए ॥ सिंहासन रोहिनी जू दीनो तह वैठे जदुराए। घृत पक व्यारु करो लाल कै संग महीपति राजै। ब्रजरानीजी वड़ी जिठानी रोहिनी जू तहँ आजै। सखी जसोधा की अस दासी धाय लाल की ठाड़ी। चाहत कह्यो पै कह्यो न आवत दुखहु लाज की बाढ़ी। नन्दराइ सो साहस करि करि रोहिन जू उचरी हैं। आजु प्रात सों मोहन मैया औधें वदन परी है। खाय न पीवै न मुख सों वोले वाकी यह गति देखें अन्न पान हम सवही भूलीं रहिगई एकै पेखें वाके वड़े उसास अरु अँसुआ··············

विषय--राम और कृष्ण चरित संबन्धी कुछ कवियों के पदों का संग्रह।

संख्या २९७. संग्रह, पत्र—६४, आकार १० X ६½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२८०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामसहाय कारिन्दा, स्थान—पैगू, पो०—भारौल, जिला—मैनपुरी।

आदि—···सुखद कदम तर राजति जोरी। नवल किशोर निचोर रूप के नन्दनँदन वृषभान किसोरी ॥ जिनके वदन सदन सुखमाके कोटि मदन रति छवि सोऊ थोरी ॥ चष झष जोरि मोरि मुष विहसत करत परस्पर चित चित चोरी ॥ स्याम गौर पट पीत नील जुत घन दामिनी अविचल मन जोरी। मुकुट चन्द्रिका प्रभा भानु जनु भूपन उडगन जुत निकसौरी ॥ लखि सव भाँति अलौकिक लीला गति मति भारति की भइ भोरी ॥ दास भवानी मति ललचानी चहत दरस यह गुरुहि निहोरी ॥ वृन्द्रा विपिन सोहावत सव विधि सुखद कदम जहँ सीतल छाहीं। त्रिविध बयारि वहत सुख दायक नाना खग वोलत तेहि ठाहीं ॥ मृदु मुसुकाइ नचाइ चपल चष स्यामास्याम धरे गल वाहीं ॥ जिनकी देखि अलौकिक सोभा अमित कोटि रति काम लजाहीं ॥ कोउ करै गान तान ऊँची लै कोऊ सखि निरतत नाहिं अघाहीं ॥ मोद विनोद अवनि नभ लखि खखि सुनि जय सुर सुमन वर माहीं ॥ कहत भवानी प्रिय प्रीतम छवि निसुदिन विलसत मो मन माही ॥

अंत—···क्षीर को पान कियो भली भाँति विधान सों दाखन को फलु खायो। ऊख सुधा मधुरा धर पल्लव नाना प्रकार विलास दिखायो। फेरि अपार हमैं भव सिंधु में कौने विचारन चाहत नायो। कृष्ण एही दोऊ वर्ण को कहो मन साँची कहा तुम पायो। रे चित

चंचल ताको तजो नित कालिन्दी कूलपै धेनु चरावै। छोहरो सोवह कारो अहीर उपाइते अपनी ओर बुलावै ॥ सुन्दरता मृदु मंद हँसी सो वसी करै लोक सदा श्रुति गावै ॥ दूरि के भूरि भरौ विषया हिय पूरि कै आपनो रूप दिखावै ॥ नागर नवेली अलवेली वृषभानु जू की भूषण जराऊ नख सिख लौं जरायो है। फूलन की सेज पैं सोवत मयंक मुखी आय व्रजराज ताहि औचक जगायो है। चौंकि उठी चपलासी चितै इतै उत वैठन की शोभा मृग शावक लजायो है। ताही समै एक लट लटकी कपोलऊपै मानो राहु चन्द्रमा पै चावुक चलायो है ॥ डारि द्रुम पालन विछौना नव पल्लव के सुमन झँगूला सोहै अति छवि भारी दै। पवन झुलावै केकी कीर वतरावै देव कोकिल हिलावै हुलसावै करतारी दै। पूरित पराग सों उतार करै राई लौन कंज कली नायका लतान सिर सारी दै। मदन महीप जू को बालक वसंत ताहि प्रात हिये लावति गुलाव चुटकारी दै ॥ गुलगुली गिल मैं हैं गलीचा हैं गुनीजन हैं चाँदनी हैं चिके हैं और चिरागन की माला है। कहैं पदमाकर त्यौं गजक गिजा हैं सजी सेज हैं सुराही है सुरा हैं और प्याला है। शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं, जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं। तान तुक ताला हैं विनोद के रसाला हैं सु वाला है दुशाला है विशाला चित्रशाला है ॥ एक ओर वीजन डुलावति है चतुर नारी दूजे ओर झारी लिये ठाड़ी जलपान की। पीछे खड़ी वीरा खवावति खवासिन राधे मुख लाली भई जैसे तड़ तान की। ताही समय वंसीधर वाँसुरी वजाई तव सुधि आई वृन्द्रावन कुंजन लतान की ॥ वाई गिरी नीर वारी दाहिने समीर वारी पीछे पान दान वारी आगे वृषभानु की। आजु मन भावन को पाय कै मयंक मुखी परी परि यंक पै निशंक विहरत है। जोर सो मजे ही मजे करति रति रसीली·..........

विषय—विविध कवियों को विविध विषयक कविताओं का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—संग्रह में तुलसी, मतिराम, देव, विहारी, पद्माकर, नरहरि, विहारी, भूषण, केशव और ग्वाल आदि कवियों की रचनाएँ हैं। विषय मुख्यतः श्रृंगार रस है। पर शांत रस और वीर रस की भी कुछ रचनाएँ हैं। अन्त में षट रस के छंद हैं।

संख्या २९८. संग्रह, पत्र—२४, आकार—८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—११५२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री फूलचंद जी साधु, स्थान—दिहुली, पो०—वरनाहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—किधौ मोर सोर करै अंतर कों गए धाइ, किधौं झिलीगन वोलत न हे दई। किधौं पिक दादुर उहां फंधक ने मारि डारे, किधौ वकपांति अंतर कौं भेगई ॥ आलम कहत माई वाल मन आप वर, किधौं विपरीत रीति विधि ने उते ठई ॥ मदन महीप की दुहाई उहां फिरि वे रही, झूज परौ मेघ किधौं वीजुरी सती भई ॥ १ ॥ किधौं वही देश सों जु आई रितु पावस की, वोलते न मोर सोर कोकिला इते गई। किधौं वही देश को जु दादुर पिता लगे झिली अरु पपीहानु सौं करत तेई त्रई ॥ किधौं वही देश मों जरा जरत ओर कहूँ होतो जो महीप इंद्र वाकी गतियौं ढई। किधौ वही देश लराई भई रा.........मरे गए सें जु वीजुरी सती भई ॥ २ ॥

अंत—विजुरी की चमक दमक सर चापन की, कोकिल पपीहा सोर मोर दुषदाई है। फूलेहे कदंव फूल लागत समान सूल, वरिद की घटा मानो नागनी सी धाई है। बाढ्यौ अति बैंन कहु लागत नहीं चैन, दुषदाई, लाग्यौ सेज कहूं नींद न पाई है। सव कसमीर तीर लागत हैं भोंना माहिं। आली विन प्यारे पीर पावस सव धाई है॥ दामिनि जो पट पीत लसैं धनु मोर किरीट अनूपम सोहैं। गाजत है धुन वाजत बाँसुरी चात्रक चंद सखा सुख जो हैं॥ सो तिनुके परिहार हिए पय बूँद अखंड चिते चित मोहैं। दोऊ इहे घन स्यामन में भटु देष उठे भेदहि को है॥

विषय—आलम, कालिदास, देव, मतिराम तथा पद्माकर आदि कवियों के शृंगार रस संबंधी कवित्त और सवैयों का संग्रह।

संख्या २९९. संकष्टास्तोत्र, पत्र—१, आकार—५ × ३$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—रघुवर दास जी, स्थान—सूरजनगर, पो०—नौगवाँ, जिला—आगरा।

आदि—॥ श्री राम ॥ गुरुवे नमः ॥ नमो कासिनी वासनी गंग तीरे। सदा अक्षितं चंदन रक्त पुष्पं ॥ सदा वंदितं पूजितं सर्व देवं ॥ नमो संकटं कष्ट हरनी भवानी ॥ १ ॥ नमो मोहिनी मोहितं भूत सेंनी ॥ सदा चंद्र वदनी हंस विक्रालं ॥ सदा मृगैनी गुन रूप वर्नी ॥ नमो० ॥ २ ॥ नमो मुक्त देवी नमो वेद माता ॥ सदा जोगिनी जोगिनी जोग्य गम्यं ॥ सदा कांमिनी मोहितं काम राजा ॥ नमो० ॥ ३ ॥

अंत—इदं पंच रत्नं पढ़ै प्रात काले, हरै पाप तनके बढ़ै धर्म ज्ञानं। सदा दुष में सुष में कष्ट मे रक्षिपालं ॥ नमो० ॥ तुही जोगिनी जोगिनी जोग धारै, तुही कामिनी कामिनी काम सारै। तुही विस्व माता करें षत्र धारै, नमो संकटं कष्ट हरनी भवानी ॥७॥ ॥ संकष्टा स्तोत्र संपूर्णम् ॥

विषय—संकठा देवी की स्तुति।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ की अविकल रूप से प्रतिलिपि की गई है।

संख्या ३०० ए. संतान सातें की कथा, पत्र—८, आकार—६ × ४$\frac{1}{2}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—९६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्री नारायण शर्मा, स्थान—भाड़री, पो०—शिकोहाबाद, जिला—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ सन्तान सातें की कथा लिष्यते ॥ एक समये के विषैं लोमस नाम रिषीसुर मथुरा जू कों गये तव वसुदेव अरु देवकी ने बहुत विधि सों तिनकी पूजा करी जव लोंमस नाम रिषीसुर देवकी सौं कहत भये कै अहो देवकी तुम वाँझ हौ जैसें गाय कौ वछेरु नाहीं जीवतु है तैसें तुम संतान की दुषी हौ ॥ तव लौम सुर नाम रषीसुर देवकी सों कहत भए ॥ कै अहो देवकी तुम महादेव पारवती की पूजा करौ जव भादौं की सुकल पछि की संतान सातैं आवैं तब महादेव पारवती की मूरति बनाइकै

अरु पूजा कीजै धूप दीप नैवेद्य चढ़ावै ॥ अरु सौंमें की रुपे की चुरीयाँ बनावै ॥ महादेव पारवती की पूजा करै ॥ यह देवकी सौं लोमा सुर नाम रषीसुर कहत भये ॥ कै नगर अजुध्या विषे नषु नाम राजा अरु रानी चन्द्रमुषी होति भई ॥ रानी चन्द्रमुषी अरु ब्राह्मणी भद्रमुषी सौं वहुत प्रीति होति भई ॥ सो नित ही रानी चंद्रमुषी अरु ब्राह्मनी भद्रमुषी सरजू जो है नदी ताके तीर अस्नांननि कौ नित ही जात रहै ॥ तव एक दिना देवगन महादेव पारवती की पूजा करत देषी ॥

अंत--जा व्रत स्त्री कौ संतान के अर्थं कहौ है ॥ महादेव के प्रताप तै सब मनो· कामना सिध्धि प्राप्त हुई है ॥ जा दिन जा व्रत कौ करै तादिन काहू सौं क्रोध न करै ॥ छमा सील संतोष सौ रहै ॥ ओरु एक वार भोजन करै ॥ अरु लवन जो है नौनु सो न षाइ ॥ अरु छेरी को दूध न षाई ॥ तातैं विधि पूर्वक जतन करि वृतु रहै तिनकैं उत्तिम संतान हू है ॥ या विषै संसय कछू नाहीं है अरु याही कथा जे सुनत है अरु जे बाँचत हैं तिनकौ बड़ौ फलु प्राप्ति हू है ॥ इति श्री भविष्योत्तर पुराणें संतान सातें की कथा संपूर्णम् ॥ ॥ समाप्तम् ॥

विषय--संतान सातें की कथा का विधान, उसके फल का वर्णन और व्रत के लाभ का कथन ।

विशेष ज्ञातव्य--इस छोटी सी पुस्तक में भादों शुक्ला सप्तमी के दिन व्रत रखने के नियम और उसकी कथा के उत्तम फल दिखाये गये हैं। पुस्तक व्रज भाषा गद्य में लिखी गई है।

संख्या ३०० बी. संतान सातें की कथा, पत्र—८, आकार—९ × ४$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—९६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, गद्य, प्राप्तिस्थान—विद्याराम जी शर्मा, स्थान व पो०—परतापनेर, जिला—इटावा ।

आदि—॥ श्री गनेशाय नमः ॥ अथ सन्तान सातें की कथा लिष्यते ॥ एक समै के विषैं लोमष नाम ऋषी सुर मथुरा जू को जात भये ॥ तव वसुदेव अरु देवकी नै बहुत विधि सौं पूजा करी ॥ जब लोमष नाम ऋषी सुर देवकी सौं कहत भए। कै अहो देवकी तुम बाँझ हौ ॥ जैसें गाइकौ वछेरु नाय जीवत है ॥ तैसें तुम सन्तान की दुषी हौ ॥ तव लोमस नाम ऋषी सुर देवकी सो कहत भए कै अहौ देवकी तुम महादेव पारवती की पूजा करौ ॥ जव भादों की सुकुल पक्ष की संतान सातैं आवै तब महादेव पारवती की मूरति वानाइये ॥ अरु पूजा कीजै ॥ धूप दीप नैवेद्य चढ़ावै ॥ अरु सोने की कै रूपै की चुरियाँ बनावै ॥ महादेव पारवती की पूजा करै ॥ यह देवकी सो लोमासुर नाम ऋषीसुर कहत भए ॥ कै नगर अजुध्या विषैं नषु नाम राजा अरु रानी चन्द्रमुषी होत भई रानी चन्द्रमुषी अरु ब्राह्मणी भद्रमुषी सौं वहुत प्रीति होति भई ॥ सो नित ही रानी चन्द्रमुषी अरु ब्राह्मनी भद्रमुषी सरजू जो है नदी ताकै तीर अस्नान को नित ही जात रहैं ॥

अंत—जादिन जा वृत कौं करै तादिन काहू सौं क्रोध न करै ॥ छमा सील संतोष

सौ रहैं ।। औरू एक बार भोजन करै ।। अरु लवन जो लौन सो न षाइ ।। अरु छेरी कौ दूध न षाइ ।। तातैं विधि पूर्वक जतन करि वृतु रहै तिनके उत्तिम संतान होहिगी ।। या विषैं संसै कछू है नही ।। अरु यहि कथा जे सुनत है ।। अरु जे बाँचत है तिनकौ वड़ौ फलु प्रापति होतु है ।। इति श्री भविष्योत्तर पुराने संतान सातैं की कथा ॥ संपूर्ण समाप्तम् ।। शुभम् ।। भूयात ।।

विषय--सन्तान सातें की कथा का वर्णन ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता के संबन्ध में कुछ पता नहीं लगता। समस्त कथा गद्य में लिखी है। भविष्योत्तर पुराण में वर्णित "संतान सातें की कथा" का यह रूपान्तर है।

संख्या ३०१. सप्त श्लोकी गीता, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—६½ × ४½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—६, परिमाण (अनुष्टुप्)—६३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८९७ वि०, प्राप्तिस्थान—पं० बाबूलाल जी, मुकाम—सलेमपुर, पो०—फरहे, जिला—मथुरा।

आदि—श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ श्री भगवानो वाच ।। हे अर्जुन जो पुरुष एकाक्षर ब्रह्म ॐकार को जपे अरु मेरो स्मरन करै ऐसी भाँति देह को तजै सो मोको पावै मुक्त होय। दोहा— प्रणव अक्षर को जप करै सुमरै मोको नित्य। इह विधि जो देही तजै लहै परम गति मीत ।। १ ।। हे अर्जुन सवही ठौर हाथ पाँव है जाके नेत्र शिर मुष सर्वत्र कहे ठौर ठौर है जाके श्रुति कहै कान तै सव ठौर है जाके जो सकल प्राणिन को रूप हुई के सकल लोक को व्योपार मे व्यापि के रह्यो है ।। दोहा ।। सर्वत्रहि कर चरन सिर त्योंही मुष द्रग कान । व्यापि रह्यो सब जगत में, मोहि दसो दिसि जान ।। २ ।। ।। अर्जुन उवाच ।। अव अर्जुन कहत है कि हे हृषीकेश जाते तुम्हारो अद्भुत प्रभाव है अरु भक्त वत्सल हो ताते तुम्हारी कीर्ति सो जगत हर्ष पाव है। अरु अनुराग को पावै है। अरु राक्षस भयभीत हुई के दिशादिशान को पलायन करतु है अरु सब सिद्धन को समूह नमस्कार करतु है। सो यह बात जुक्त है अचिरज नहि ।। दोहा ।। सब जगत को यह जुगत है रहे तुम्हें अनुराग। सिद्धन मत तोको सदा, राक्षस जाति जु भागि ।। ३ ।।

अंत—हे अर्जुन तू मेरे विषै मन रमि। मेरो भक्त होई। अरु मेरे निमित्त यज्ञादिक कर्म करि अरु मोको नमस्कार करियो तू या भाँति मो परायण होयगो। तो तू मेरी कृपा तैं ज्ञातो हुइ के मोहिं में आनि प्राप्त होयगो। यहाँ संदेह मति माने तू मेरो प्रिय है ताते मैं तोको प्रतिज्ञा करिके साँच कहत हौं। दोहा—मोको जीति सत्य यह तन मो मे मत राषि। अंत समै हो मोहिमे प्यारे तुम यह साषि ।। ७ ।। इति श्री भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे सुवोधिन्यां सप्तश्लोकी गीता समाप्तं ।।

विषय—भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को जो ज्ञान दिया उसका वर्णन किया गया है।

विशेष ज्ञातव्य--ग्रंथ के बीच के संख्या २१, २२ के पत्रे लुप्त हो गये हैं। सप्त-श्लोकी गीता का यह अनुवाद है। ग्रंथकर्त्ता ने न तो अपना नाम ही दिया है और न ग्रंथ का रचनाकाल ही। लिखने का संवत् एक दूसरे ग्रंथ के अंत में दिये संवत् के आधार पर है जो प्रस्तुत ग्रंथ के साथ एक ही हस्तलेख में है।

संख्या ३०२. सवैया तथा कीर्तन पद, कागज—बाँसी, पत्र—२२४, आकार—१० × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—६४५६, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८४४ वि० (१७८७ ई०), प्राप्तिस्थान—पं० मयाशंकर जी याज्ञिक, अधिकारी, गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—रामकली। अद्भुत चरित गोकुल राई। कहत जननी दूध मारत खीज कछु न सुहाइ। पूतना के प्रान सोष्ये रहे उर लपटाइ॥ सक भंजन छुवत कुच तिय कठन लाग जवाइ। तृणावर्त आकास ते पटक्यो सिलपर आइ॥ झरत लालन दोल झूलत हरे देत झुलाइ। जुगल अर्जुन तोर मार्यो हृदै प्रेम बनाइ॥ कहे तात पलास पल्लव देह देत बताइ॥

अंत--अद्भुत कौतुक देष सषी वृन्दावन होर परी री। उत घन सहित उदित सौदामिन, इतै मुदित राधिका हरी री॥ उत बग पाँत लसत इत सुन्दर, दाम विलास सुदेस परी री। उत घन गर्जन इते मुरली धुन, जलद उते इत अमृत भरी री॥ उते इन्द्र धनु इत वन माली, अति विचित्र हरि कंठ धरी री॥ सूरदास प्रभु कुँवर राधिका, नभ की सोभा दूर करी री॥

विषय—पद प्रस्ताव के,	पत्र	१	४	तक
पद मान के,	पत्र	५	१५	तक
नख सिख,	,,	२१	५१	तक
पद उठावन के,	,,	२२	२५	तक
रूप रस कवित्त,	,,	२६	२९	तक
कवित्त संग्रह,	,,	३०	४५	तक
बाल लीला पद,	,,	४६	५३	तक
वंश वर्णन,	,,	५४	५७	तक
पद प्रस्ताव के पुनः,	,,	५८	८०	तक
पद सखियों के मान के,	,,	८१	८६	तक
विभिन्न भक्ति विषयक गीत	,,	८७	१२५	तक
पद गौ आगमन के,	,,	१२६	१२८	तक

भोग आचमन, बीरी, पौढ़ना, मंगला आरती,
छठी, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चौगान

खेलना सम्बन्धी गीत,	,,	१२९	१३५	तक
गौओं के नाम, कुबजा विषयक और कृष्ण की बाल लीला के गीत,	,,	१३६	१५९	तक
स्फुट कवित्त, रूप रस कवित्त, पद छाक के योगी भेष, जेवनार, वन भोजन, ब्याहलो के गीत		१६०	१९९	तक
गोरा बादल की कथा	,,	२००	२०१	तक
दान लीला, कुंज महल, छंद, छप्पय	,,	२०२	२०३	तक
तिलसतनामक ग्रंथ,	,,	२०४	२०८	तक
बाल लीला जन्म चरित, गो० तुलसीकृत सप्त श्लोकी गीता पद्य में,	,,	२०९	२२४	तक

अष्टछाप, आसकरन, नागरिया, वृन्दावनदास, धोंधी, गोविन्द प्रभू आदि भक्त कवियों के पद इसमें आए हैं।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत हस्तलेख में पदों का संग्रह है। इसमें एक दो विशेषताएँ हैं। एक तो जगतनन्द का संपूर्ण 'तिलसत' इसके बीच में दिया है जो भारत जीवन प्रेस काशी से मुद्रित हो चुका है, पर किसी अन्य कवि के नाम से। वास्तव में यह 'जगत नन्द' का है। दूसरा इसमें गोस्वामी तुलसीदास कृत सप्त श्लोकी गीता दी हुई है जो पद्यबद्ध है। इसमें वैष्णवों की ठाकुर सेवा के केवल वार्षिक उत्सवों को छोड़कर प्रायः सभी पद आ गए हैं।

संख्या ३०३. सेवा फल, कागज—सनी, पत्र—२३, आकार—९ X ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—२४०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मदन मोहन जी का मन्दिर, मु० पो०—जतीपुरा, जिला—मथुरा।

आदि—अथ सेवा फल लिख्यते ।। सिद्धान्त मुक्तावली ग्रंथ श्री अचारज जी महा प्रभु कीए हें ।। तामें भगवद सेवा तीन प्रकार की कही है ।। एक तो पुष्टि सेवा ताकी रीति तो यह हे जो ।। श्री ठाकुर जी के ऊपर ही रात्रि दिवसई चित राखनो ।। और तो कछू हूँ जाने नहीं ।। जेसे नदी समुद्र में मिले ।। पाछे अपनो नाम तथा गुन रूप जाने नहीं ।। यो रीति सों श्री भगवान की सेवा करे ।। तब पुष्टि सेव सिद्धि होइ ।। १ ।। और दूसरी सेवा तो पुष्टि मर्य्यादा सो तो सेवा की रीति हे जो अपनो धर्म अपनो शरीर ता करिके श्री भगवान की सेवा ई करे तब पुष्टि मर्यादा की सेवा सिद्धि होइ ।। २ ।।

अंत—जब इन सब भोगन को त्याग होइ ।। तब सेवा हू भली भांति होई ।। ओर अपने शरीर को निर्वाह हूँ सब होइ ।। और जो आवश्यक होइ सो तो सब करनो ।। ओर उहाँ श्री भगवान जो प्रतिबंधक करें ।। तब यह मन में जानिये ।। जो श्री ठाकुर जी फलदान करिवे के नहीं ।। तब वाको ओर कोई साधन नहीं हे तहां श्री आचार्य जी महा

प्रभून ने साधन को उपदेश कीनो हे ।। जो अपने मन में जानि के दुसंग न करिए ।। श्री ठाकुर जी की इच्छा होइगी सोई करेंगे । इहाँ वल काहू को हे नहीं यह जानि कें भजन करनो ।। भजन करत हूमें प्रतिवंध सव मिटि जांइगे ।। तातें सबई छोड़ि एक श्री वल्लभाचार्य जी को शर्ण ही दृढ़ राषिये ।। ताई ते सबई सिद्धि होइगो ।। इति सेवा फल संपूर्णम्।।

विषय---आराध्यदेव बाल स्वरूप श्री कृष्ण की सेवा किस प्रकार होती है और किन भावों की प्रधानता रहती है, इन्हीं सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है ।

विशेष ज्ञातव्य---ऐसा प्रतीत होता है कि 'सेवाफल' नामक कोई ग्रंथ संस्कृत में है जिसका संबंध वल्लभ सम्प्रदाय से है । उसीका किसी ने व्रज भाषा में यह अनुवाद कर दिया है । अनुवाद के बीच-बीच में जो संख्याएँ पड़ी हैं उनसे यही बात सिद्ध होती है । गद्य में होने के कारण यह महत्व पूर्ण है ।

संख्या ३०४. सिद्धान्त विचार, कागज—देशी, पत्र—५७, आकार—६½ × ४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—७, परिमाण (अनुष्टुप्)—४२४, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १६१० वि०, प्राप्तिस्थान—पं० जमुना हरि जी, ग्राम—महोली, पो०—मथुरा, जिला—मथुरा ।

आदि—श्री कुंज विहारी विहारिन जी ।। अथ सिद्धान्त विचार लिष्यते ।। सव सारन को सार श्री मुख सों श्री स्वामी जू ने काहू काहू समै कह्यो सो जितनो सुन्यो मेरी बुद्धि में समायो । प्राकृत भाषा में लिषलियो । जो तत्काल समझयो परै । जैसे अमोलक लाल झीने पट में धरिये तौ स दिष्टि में आवै । ऐसे यह रतन अमोल जो कोटि जतन कीजिये तौऊ हाथ न आवै । सो सुगम दुर्लभ दिषरायौ । जापै श्री ललिते जी की पूरन कृपा दिष्टि होई ताकौ दिषरावनौ । कदाचित और को दिषरावनो नहीं जैसे महारंक अति कृपन अग्नित धन पावै ताकौ छिपावै । ऐसे या सिद्धान्त कौ राषै । कोटि कोटि मंत्र या सिद्धान्त के उपर नौछावर करने योग्य है यातै परै सिद्धांत कछू रह्यौ नाहीं । जो समुझैं सो निश्चै परम पद । जा पद कों कोऊ न पावै ताकों पावै । नित्य वस्तु दरपन सी दिषराई है । × × × एक श्री स्वामी जी की उदारतासों महा कठिन वस्तु हाथ परी । सव उपासिकन सों विनती है । याकों अपने हृदय में राषै । × × × ता श्री वृन्दावन में प्रिया प्रीतम कौ विहार है ता विहार कौ श्री स्वामी 'हरिदास जी' तीन काल अवलोकत हैं । इक छिन अंतर नाहीं यातें वृन्दावन सवतें सर्वोपर ताके उपासिकन मे श्री स्वामी जी सरवोपर जासमैं अर्जुन द्वारिका की रानी लै मथुरा में आयो तव उनको विरह बहुत भयो । एक दिन जमुना जी के कमल प्रफुलित देषि के बूझी तुम विरह में काहे तें फ्रफुलित भये हो । कही हम सदा उनके साथ रहें । कही हमको ऐसो साधन वतावो जासों सदा संग रहें । कही ऊधौ जी गोवर्द्धन के निकट रहत हैं । गुलमलता रूप वै उपदेश करेंगे । तव वा ठौर जायके विलाप कियो । ऊधोजी प्रगट भये श्रीमत भागवत पारायन सुनायो ।

अंत—ठाकुर सेवा विषै पाँच साधन होइ। तब ठाकुर जी प्रसन्न होइ॥ आत्मवत॥ सीत उष्ण, भूषप्यास जैसे आपको लागै तैसे ठाकुर कौ जानै॥ पुत्रवत॥ जैसे माता पिता पुत्र को लड़ावै तैसे ठाकुर को करैं॥ जारवत॥ जैस्त्री आन पति कौ प्रीत करै। वाकी प्रीति सब ठौर सों निकसि कै जार ही सों लगै, लोक लाज कुल कानि विसर जाइ तैसी ठाकुर कों करै। राजवत॥ जैसे राजा को सेवक मन में भै राषै मति काहू सेवा में चूक परै। तौ राजा जाने कहा करेगो। यां भांत ठाकुर को भै मानत रहै॥ सत्रुवत॥ जैसे सत्रु आपुको भूले नहीं ऐसे ठाकुर कों भूलै नहीं। सरूप जैसे आपनौं भूलौ नहीं तैसे ठाकुर की चिंता राषे। × × × एक महापुरुष ने अपने चेला के हाथ गोरषनाथ को प्रसाद भेजो। सो गोरषनाथ ने पायौ नाहीं। तब पूछी भेज कें तुम हरिकौ प्रसाद षावत नाहीं गोरषनाथ ने कही के प्रसाद ले आयो सो कोन्ह है। कही हमारौ सिष्य है। गोरषनाथ ने कही कैदिन को तुम रात कहौ। देषें सिष्य तुम्हारौ कहा कहै। वा महा पुरुष ने ऐसी ही कही। सब सिष्यन ने कही महाराज सूरज निकसत रहौ है। रात कहा है। तब गोरषनाथ ने कही ये चेला तुम्हारे नाहीं शब्दमे ही होइ सो चेला॥ याही तैं हमने हाथ को प्रसाद न पायौ। × × × वस्तु को दिष्यंत। मलयागिर को समस्त पवन वाकी पवन सों सब चंदन ह्वै जाई। वाके कछू इक्ष्या नांहीं। बाँस और अरंड सुगंध न होई। सतसंग कुपात्र को असरन करै॥ १॥ इति वचन का संपूणम् पौष्य शुक्ल॥ ५॥ बुधवासरे सवतु १९१०॥

विषय—श्री स्वामी हरिदास के मुँह से समय-समय पर भगवद्भक्ति विषयक तथा सांसारिक अनुभव विषयक उपदेश। श्री कृष्ण की उपासना उनके भक्तों ने जो श्रृंगारिक दृष्टिकोण से की है उसमें क्या रहस्य है, उसका भी स्पष्टीकरण किया है।

विशेष ज्ञातव्य—ग्रंथ के अवलोकन से लेखक का नाम मालूम न हो सका। इतना मालूम अवश्य होता है कि ये वचन या सार उपदेश स्वामी हरिदास जी के मुंह से निकले हैं और लेखक ने, जो स्वामी जी का ही एक शिष्य था, इन उपदेशों को प्राकृत बद्ध किया। यह प्राकृत भी हिन्दी ही जान पड़ती है। पुस्तक अपने ढंग की अनुपम है। रचनाकाल अज्ञात है।

संख्या ३०५. सिख नख सवैया, कागज—देशी, पत्र—१२, आकार—७ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१०८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० आत्माराम जी, ग्राम—रावल, पो०—गोकुल, जिला—मथुरा।

आदि—श्री गणेशाय नमः अथ शिष नष लिष्यते॥ छुटेवार वर्नन॥ जोवन सरोवर के कोमल शिवोल सूल काम तनु रूल मक्तूल कैसे तारे हैं॥ पंचसर सिंधुर के स्याह चौर किधौं भौंर किधौं सिरि सहज सिंगार रस सार हैं॥ माथैं मार मरकत मनि कै मयूष किधौं किधौं धरै चंद कौ तिमिर परिवार हैं। लामे लामे जामे जो तिल ताके वितान किधौं

किधौं स्याम वरन छवीले छुटेवार हैं ॥ १ ॥ वेनी वर्नन ॥ सीस पर सरस है कै पीठि की पनाह छूवै कै किधौं धसी धाराधर श्रृंगार रसाल की। निसापति अंक तैं किधौं निसारिसाइ चली छाह की छवीली धुष नलिन के नाल की। तामकी तरंगिनी कि चढ़ी तरूनी के तन किधौं अवलंवी वेलि अतनु तमाल की। काम के विलासिनि की वीज मील किधौं किधौं नाग रूप काछैं पाछैं आछी वेनी वालकी ॥ २ ॥ × × ॥ लिलाट वर्नन ॥ वार अंधकार सम सीस फूल तारागन पाटी नभ नीचैं अर्द्ध चन्द्र को सौ वांटु है। वंदन को विन्दु अरुनोदय कौ प्राची भागु तिलक तषत भागु कौं सुहाग पाटु है। रूप के रतन जर्यौं हाटक को पाटौ मानौं घूंघट मे प्रगट अषिल अंग राटु है। केलि समैं पिय प्रतिविंव कौ वैठक पीठ सुन्दर सुहागिन कौ लसतु लिलाट है ॥ ४ ॥

अंत—॥ ऊदर वर्नन ॥ पातु ऐसो पेषियतु जल जात देषियतु वास ही अघात मंद सांसही जगतु हैं। कदली के गाभै कैसी संका उपजति जिय भं।। संका मृदु पानि परस भजतु हैं। चंपे के कोमल दल एक ही सुभांझ चारि पांच पग चलै पूरन मंजिल हैं। विपुल विपुल विधि उरध विधान किधौं गुर तरवर आए हलाए न हलि हैं। सघन जघन किधौं मारमल्ल षेल षंभ किधौं विपरीत रूप जंगम कदलि है ॥ २८ ॥ पद वर्नन ॥ एडी तल रचे पेड़ी पानसे परम नीके जाके सम ताके पाके कोहर के फल है। तल की ललाई हेम गुराइ उपरिभाग वंधूक कुसुम पर चंपे के से दल हैं। उनके छुवत छुटैं मान गांठि माननि को विराजत वाल वेलि पल्लव कोमल है। सोभा हौं कहा लौं कहौं पौमिनि कै पाइनि की उपमा को उपजत अरविंद दल है ॥ २९ ॥ सर्वांग वर्नन ॥ बीजुरी की ताक किधौं रतन सलाक किधौं कोमल परम किधौं प्रीति लता पीकी है। रूप रस मंजरी कि मंजुल चंपक दाम किधौं कामदेव के अमर मूर जी की है। चन्द्रकला सकल कमलिनि कमलमाल जाके आगै लागति प्रदीप जोति फीकी है। दूजि सुर नर नाग पुरन विरंचि रवि जैसी नख शिख श्री राधिका जु नीकी है ॥ ३० ॥ इति सिष नष सवैया समाप्तम् ॥

विषय—नायिका के अंगों का श्रृंगारपूर्ण वर्णन किया गया है। अंग नामावली—१—छुटेवार २—वेणी ३—मांग—४—पाटी ५—लिलाट ६—भौं ७—नेत्र ८—पलक ९—श्रवण, १०—नासिका, ११—कपोल—१२—अधर १३—दंत १४—चिवुक १५—मुख १६—कंठ १७—भुज १८—भुज १९—कुच २०—कुचाग्र २१—रोमावली २२—उदर २३—पाँय २४—सर्वाङ्ग।

विशेष ज्ञातव्य—जैसा कि अन्त के सवैया से जान पड़ता है, यह छोटा सा ग्रंथ श्री राधिका जी के नख शिख पर लिखा गया है। वर्णन सरस है। लिपि कर्त्ता ने जहां तहां लिखने में बड़ी अशुद्धियां की हैं। रचयिता का नाम अज्ञात है। रचनाकाल और लिपिकाल भी नहीं दिए हैं।

संख्या ३०६. शिक्षामृत, कागज—देशी, पत्र—२४, आकार—१०×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—८१८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामकिशनदास,दाऊ जी का मन्दिर, कालीदह, वृंदाबन।

आदि—अथ पंच शिक्षामृत लिख्यते ॥ दोहा ॥ श्री श्री वल्लभ रूप वर, क्रीड़त रहे संकेत ॥ दया करी कलिकाल में, प्रगटे सज्जन हेत ॥ बाल भाव श्रृंगार रस आपुही दाता भुक्त ॥ निजानन्द को दान दे कीने जीवन मुक्त ॥ श्री विट्ठल वर नथ्थ भुव कीने विविध विलास ॥ कहि न सकूं रसना नहीं सींचे सुख की रास ॥ सप्त रूप धरि धरनि पें सुख सागर रह्यो फैल ॥ करुणारस लहरन बढ्यो भीजे रस की रेल ॥ पंचामृत प्राणेश जू, अधरामृत लख राय ॥ स्परशामृत नादामृत करुणामृत धनि धन्य ॥ पंचामृत या ग्रंथ में, शिक्षा दीन स्नेह ॥ स्वप्न सार चातक लगन, परसत पावन देह ॥ मैं अति ही अनुचित कियो गुप्त प्रगट करि देत ॥ क्षमा करें करुणा निधि विमल विरद को हेत ॥

अंत—सब जन हरि कों भजत हैं जो जाको अधिकार । हरि भजे वा दास को कोई जगत मझार ॥ जो या रस के रसिक है, तांकू मधु रस स्वाद । ऊंठ उलूकन परसहीं, सुनि के करही वाद ॥ शिक्षा दैन्य स्नेह कूं सुपनो अनुभव सार । होय पति व्रत चातकी ताके हित विस्तार ॥ व्रज भक्तन की कथा सुनि सुने ओर जस मूढ़ । जैसे गजवर त्याग कें, खर आसन आरूढ़ ॥ पन्नग हू सुनि मंत्र की राखत सत अवकान । मनुष होय माने नहीं, ताको कहा गति ठान ॥ काली फल रंजित कीए तत पतनी उर धार ॥ शिव हो शिव हो शिव शिव भए चरणोदिक सिरधार ॥ इति श्री शिक्षामृत सम्पूर्णम् ॥

विषय—वल्लभ संप्रदाय में मुख्यतः पांच प्रकार की भक्ति मानी जाती है:—(१) दैन्य (२) स्नेह (३) पातिव्रत (४) चातकी और (५) स्वप्नानुभव । इन्हीं पाँच सिद्धान्तों की विस्तार पूर्वक विवेचना इस ग्रंथ में की गई है । पाँच प्रकार की भक्ति की शिक्षा के कारण इसका नाम 'शिक्षामृत' पड़ा है ।

विशेष ज्ञातव्य—'शिक्षामृत' खोज में सर्वप्रथम प्राप्त हुआ है । विवरण में इसका जिक्र नहीं है । इसके रचयिता कौन थे, यह प्रस्तुत ग्रंथ से प्रगट नहीं होता, पर अनुमानतः श्री हरिराय जी इसके रचयिता मालूम पड़ते हैं । ये 'रसिक शिरोमणि' आदि नामों से विख्यात हैं । प्रस्तुत ग्रंथ की और इनकी कविता में साम्य है । मंगलाचरण में विट्ठल आदि को नमन करना सूचित करता है कि यह ग्रंथ वल्लभ संप्रदाय का है । अन्यत्र भी हरिराय जी के इसी नाम साम्य शैली और विषय के 'स्नेहामृत' और दैन्यामृत आदि नामक ग्रंथ प्राप्त हुए हैं । रचनाकाल तथा लिपिकाल इस प्रति में नहीं दिए हैं ।

संख्या ३०७. श्राद्ध प्रकाश, पत्र—५०, आकार ८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३७५, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० प्रभुदयाल जी शर्मा, ठि०—सनाढ्य जीवन कार्यालय, इटावा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री गणेश जी सदा सहाई ॥ अथ श्राद्ध प्रकाशान्तर्गत प्रेत तृप्ति कर पद्धति कल्प सुच्यते ॥ तत्र तावत् पुत्रादिरासन्न मृत्यु पित्रादिकं ज्ञात्वा षड़ब्दादि प्रायश्चित प्रत्याम्नाय ॥ गायत्र्या युत जपं वागायत्र्यातिल होम सहस्रम् धेनु दानं तीर्थयात्रा वा द्वादश ब्राह्मण भोजनं सुवर्ण रूप्य योर्निष्कं तदर्द्धं वा गो वृष मूल्यं यथा

शक्त्यनुरूपं प्रायश्चित्तं तद्द्वारा कारयेत् तद शक्तौस्वयम् वा कुर्य्यात् ॥ भाषाभावार्थ—प्रथम पुत्र पौत्र भाई आदि अपने पिता माता भाई दादे आदि का रोग आदि द्वारा मृत्यु के वश हुआ जानके (षड्ब्दादि) अर्थात् छै वर्षया ३ या १॥ वर्ष आदि के १८० ॥९० ॥ ४५ । प्राजापत्य व्रत निमित्त १०००० गायत्री जपा या १००० गायत्री मंत्र करके तिल होम ॥ धेनुदान ॥ तीर्थयात्रा वा द्वादश ब्राह्मण भोजन या ४०।२०।१० मासा सूवर्ण ॥ रजत ॥ या गौ वृषभ का मोल अपनी शक्ति के अनुसार संकल्प करिके पिता आदि को हाथ से प्रायश्चित करावै अथवा आप कर देवै ॥

अंत—॥ इति षोड्षो पचारैः पूजयेत् ॥ ततः तत्रैव अश्विन्यादि सप्त विंशति नक्षत्राणि सर्पान् इंद्रादि दिक्पालां श्चावाह्य ॥ गंधादिभिः पूजयेत् ॥ अथाग्नि स्थापनम् ॥ तत्रादौ होता चतुरस्त्रं हस्त मात्रं स्थंडिलं कृत्वा ॥ कुशैः परि समूह्य ॥ तान्कुशानै शान्यां परित्यज्य ॥ गोमयोदके नोय लिप्य ॥ तन्माध्येस्रुव मूलेन प्राग प्रप्रादेश मात्रं उत्तरोत्तर क्रमेण त्रिरु लिख्य ॥ भाषा व्याख्या—अश्विनी आदि सप्त विंशति नक्षत्र, सर्प, देवता, इंद्रादिक दिक्पालों को स्थापन करै ॥ फिर नाम मंत्र करके जुदी जुदी गंध पुष्पादिकों से पूजा करके अग्नि स्थापन कर देवे ॥ अग्नि स्थापन करने की विधि लिखते हैं ॥ होता पंचकलशों से पश्चिम या ईशान में चौकोण चौवीस अंगुल लंबा एक स्थंडिल अर्थात् वेदी बनाके दर्भा से वुहारे तथा दर्भा को ईशान में स्थापन करै ॥ गोमय कालेपा देवै ॥ फिर वेदी के नीचे में सुव्रे केलेर के भाग से दश अंगुल लंबी उत्तरोत्तर दक्षिण से लैके तीन रेखा लिखे। × × ×

विषय—श्राद्ध विषय का वर्णन।

विशेष ज्ञातव्य—मूल ग्रंथ संस्कृत में है जिसका भावार्थ हिन्दी में दे दिया गया है। ग्रंथ की प्रस्तुत प्रति में टीकाकार और रचनाकाल आदि का उल्लेख नहीं पाया जाता। इसका अन्त का थोड़ा सा अंश लुप्त भी है।

संख्या ३०८. श्री गुसाईं जी सेवकन की वार्ता, कागज—मूँजी, पत्र—१९३, आकार—१४×७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—१००९६, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—गंगाराम ब्राह्मण, इमली वाले, गोकुल, मथुरा।

आदि—अव श्री गुसाईं जी के सेवकन की वार्ता लिख्यते ॥ अव श्री गुसांईजी के सेवक वीरवल की वेटी आगरे में रहती तिनकी वार्ता ॥ सो एक समें श्री गुसाईं जी आप आगरे पधारे। तव एक वैष्णव के घर उतरे। सो ताके पास वीरवल को घर हुतो। सो श्री गुसाईं जी आप झरोखा में बैठे हते सो झरोखा में ते वीरवल की वेटी को दर्सन भयों श्री गुसाईं जी को। सो साक्षात् श्री कन्हैया जी कों दर्शन भयो तव इनके मन में आई। जो इनको सेवक हूँजिये तो भलो हें। ता पाछें अपने पिता सो पूँछी जो तुम कहो तो मैं इनकी सरन जाऊँ। तव वीरवल ने कही। जो सुखेन इनकी सेवक होऊ। ता पाछे उन वैष्णवन के घर की इस्त्रीन सों जाइके मिली। तव उनसों कह्यो। जौ तुम मेरी

विनती श्री गोसाईं जी से कहो। जो मोकों नाम देके सेवक करो। तब उन इस्त्रीन नें श्री गुसाईं जी सों वीनती करी। जो महाराज वीरवल की वेटी विनती करति है।

अंत—तव श्री गुसाईं जी ने उन वैष्णवन ते कही। जो अब कछू संदेह तुम्हारे मन में रह्यौ हे। तव वैष्णव सव चुप करि रहो। ता पाछे श्री गुसाईं जी ने कह्यो। जो अव ऐसो उपाय करिवे। जो श्री गोवर्द्धन नाथ जी को श्रम करनो न पड़े। तव श्री गुसाईं अपने मन में विचार करिकें भीतर मानसो तथा और सव सेवकन सों अपने श्रीमुख ते वचन कहे। जो आज पाछें घंटा नाद वेर तीन। ओर सेव नाद वेर तीन ३ करिके छिन १ ता पाछें तुम श्री गोवर्द्धननाथ जी के किवाड़ खोलियो। सो यह श्री मुष ते वचन कहे। तव गोविन्ददास वोहोत प्रसन्न भये॥ सो वे गोविन्ददास श्री गुसाईं जी के अैसे कृपापात्र भगवदीय हैं। × × ×

विषय—वीरवल की बेटी, गोपालपुर वासी महाधीमर, गुजरात वासी कवि रक्त, ऋषी केश, भवैया, गंगाबाई क्षत्राणी (विट्ठल गिरधरन की वार्त्ता), राजा जोत सिंह, बाघा जी रजपूत गुजरात, आगरे का सेठ, पत्र १ से २० तक। पाथो गुजरी अन्यौरवाली, माधोदास भटनागर, हिसार के कायस्थ बाप वेटा, पूर्व के कृष्णदास कायस्थ, एक राजा, यदुनाथ, एक धोबी, गोकुल के एक विरक्त एक बाई, ज्ञानचन्द सेठ, आगरा निवासी पटेल, कुणवी, आगरावासी स्त्री-पुरुष, गौठारी को जमाई गोपालदास, कोठारी राजनगर, मुरारी दास, काबुलवाले माधोदास, रेड़ा ब्राह्मण, हती, बेटा ताकी बहू आदि की वार्ता, पत्र २१ से ६२ तक। भट्ट का बेटा वासुदेव, अजव कुंवर पुरोहित, एक स्त्री पुरुष, जैत्य धर्न वारे, एक भीलनी, जनार्दनदास, दो भाई, एक कूंजड़ी, साहूकार का बेटा और वजीर की बेटी, कपूर क्षत्री माधवदास, भण्डारी जी, दामोदर, रूपाबाई सौदागर, माधवदास, सारस्वत ब्राह्मण, एक गुजराती वैष्णव, बलाई सेवक, एक क्षत्री का बेटा, इसी प्रकार अन्य वैष्णवों की वार्त्ता से लेकर गोविन्द स्वामी तक की वर्णित हैं, पत्र ६३ से १८७ तक।

विशेष ज्ञातव्य—यह विशालकाय ग्रंथ है। गोसाईं जी के सेवकों का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन इसमें दिया है। परन्तु यह अपूर्ण है।

संख्या ३०९. श्रीकृष्णाश्रय, कागज—मूंजी, पत्र—२४, आकार—१२×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण, (अनुष्टुप्)—९७८, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री नत्थी लाल जी गुसांई, मु० व पो०—वरसाना, जिला—मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः॥ अथ श्री कृष्णाश्रय की टीका भासा में लिख्यते॥ अब या कलियुग विषे श्री वल्लभाचार्य्य जी जीवन के उद्धार निमित्त प्रगट होइकें श्री गोवर्द्धन नाथ जी की आज्ञा ते नाम स्मरण उपदेश करि॥ वैष्णव करि जीवन कों या कलियुग में उद्धार में को उपाइ विचारत भये जो तहाँ प्रथम मोक्ष के साधन जे हैं॥ कर्म मार्ग, ज्ञानमार्ग, योगमार्ग ऐ आदि लेके मार्ग हे॥ सो इन मार्गन करिके मोक्ष कव सिद्ध

होइ ॥ जब इनके साधन जे हैं ॥ काल देस तीर्थ मंत्र करिबे वारे जीव तथा कर्म जो यज्ञ जेहैं ॥ इन मार्गन के साधन ते निदेश होइ ॥ तव ये मोक्षन के मार्गन ते मोक्ष होइ ॥ सो ते तो काल देश तीर्थ मंत्र ओर करिवे वारो जीव तथा कर्म जे अग्निहोत्र एकलि करिकें दोस सहित होइकें फल साधन नहीं होत। या भाँति श्री वल्लभाचार्य विचारि पाछे पुराण शास्त्र स्मृति श्रुति में विचारि पाछें या कलियुग में जीव को उद्धार को उपाइ एक हे ॥

अंत—जो श्री आचार्य जी जो ग्रंथ वेद पुराण गीता सास्त्र सव विचारि के जीवन के उद्धार निमत्त निरूपण कीए हें ॥ ताते सव सत्य हें ॥ ओर जे कलि के ब्राह्मण पंडित श्री भगवत मुख तें निकसे जे ग्रंथ ताही को अर्थ विरुद्ध निरुपण करत हें ॥ सो सव जीवन को भ्रम उपजाइ कें नरक में डारिवे को ए पंडित ब्राह्मण में उपाय कीए हें ॥ पेट के अर्थ अशुद्ध करत हें ॥ ताते या भाँति श्री गुसाईं जी श्री विठ्ठलेश्वर जी ग्रंथ पर कहे ॥ पर विश्वास राखिकें ओर सव छोड़िके श्री कृष्ण के आश्रय नित्य श्री कृष्ण के समीप दर्सन कर या ग्रंथ को पाट करे ॥ ताते सकल वेद पुराण सास्त्र विचारि जीवन को उद्धार कलियुग में एक ही श्री कृष्ण को आश्रय श्री आचार्य जी निरूपण कीए हें ॥ यह कोई असल करि माने सो नरक पाती होइ ॥ जो कोई या सिद्धान्त की निंद्या करे। ताहू जीवन को तीन लोकन में ठौर नहीं होइ ॥ ताते सुपात्र वैष्णव को यह ग्रंथ दीए सिषाए ॥ यह सिद्धान्त पूर्ण भयो ॥ इति श्री वल्लभाचार्य्यं विरचितं श्री कृष्णाश्रय भाषा समूणम् ॥

विषय—कृष्णाश्रय में आने से भक्ति द्वारा जीव का कल्याण किस प्रकार होता है, इसका विस्तार पूर्वक एवं प्रमाणों सहित विवेचन इस पुस्तक में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने किया है।

संख्या ३१०. श्रृंगार के कवित्त, पत्र—३२, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१९२०, अपूर्ण, पद्य, रूप—प्राचीन, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौहरे गजाधर प्रसाद, स्थान—धरवार, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—॥ अथ श्रृंगार के कवित्त लिख्यते ॥ जादिन ते विछुरे रघुनन्दन, तादिन ते मय कूम कड़ाके। जो चुरियाँ करहूँ न वनै, अब वे चुरियाँ गई ठौर वराके॥ दूती निदूति ने आनि कही तेरे ठाढ़े हैं पिउ दूरि धराके। कंचन से कुच जो हुलसे वंद टूटत तूम तड़ाक तड़ाके ॥ १ ॥ जा दिन ते विछुरे रघुनंदन ता दिन ते भरि नींद न सोई। एक दिना सपने भइ भेंट भलो विधि से लिपटाइ के सोई ॥ नैन उघारि चितई चहुँओर पिया तन हेरि रखो ना कोई। एरी सखी दुख कासे कहों मुसुकाइ हंसी हंसि कै फिरि रोई ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ काहू वरनी नासिका, काहू वरनी डीठि। कवि काहू वरनी नहीं, सो कदली दल सी पीठि ॥ ३ ॥ मृगनैनी की पीठि पे वैनी, विराजै सनेह सुगंध समोइ रही। मानों कंचन के कदली दल ऊपर सावली साँपिन सोइ रही ॥ चुनि चीकने चारु चुभे चित ऊपर सीस के केसन जोइ रही। कवि देव यही उपमा वरने रवि की तनया तन तोइ रही ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥ तिय ससुरे की सोधि कैं, प्रीतम दौरे आइ। हेल मेल की सुधि करो, कबै मिलोगी आइ ॥ ५ ॥

अंत—लागि रही तुमसे अखियाँ, तुम्हरे हित में इतनो सुख पायो। मेरी हाइ विथा न गई तनकी, जैसे सेमर सेहि सुआ पछिताओ ॥ मित्र नहीं तुम हो कपटी हम, प्रीति करी तुम वैर विसाओ। यार डुबोइ दियो जल में हम, प्रीति करी तुम वैर विसायो ॥ विनु देखे गुपाल हमैं नहिं चैन, वृथा घर वाहर की लड़ती हैं। कुल कानि गई तो हमारी गई—जि चवायल चैंचिल चौंकरती हैं ॥ अव भई सो भई सजनी तुम, लाख कहौ हमना डरती हैं। सासु हमारी कहै तो कहै अव, वीच परोसिन क्यों लड़ती हैं ॥ आवत हो नित मेरी गली तुम, लोग हँसावत हो जग माहीं ॥ साँझ सवेरे को फेरी करो अरु, मोहि लजावत हो जगमाहीं ॥ तुम तो कहत हम चतुर व············शेष लुप्त

विषय—श्रृंगार रस संबन्धी कुछ कवित्तों का संग्रह।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ में विविध कवियों के रचे श्रृंगार रस के कवित्तों का संग्रह है। संग्रह करने में किसी विशेष नियम का निर्वाह नहीं हुआ है। संग्रह अच्छा है, किन्तु अंत से खण्डित है। लिखावट अशुद्ध है। कहीं-कहीं पद घट बढ़ भी गये हैं। इस कारण पिंगल के नियमानुकूल न होने से अनेक छन्द भ्रष्ट हो गए हैं। परन्तु ऐसा प्रतिलिपि कर्त्ता के प्रमाद से हुआ जान पड़ता है।

संख्या ३११. श्रृङ्गार रस के भावादि, पत्र—१६, आकार—$११\frac{१}{२} \times ६\frac{३}{४}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—८६४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी शर्मा, स्थान व पोष्ट—ढकेवर, जिला—इटावा।

आदि—············प्रकृति रूपा संसार में सब नायिका हैं ॥ पुरुष रूप सब नायक है ॥ काम देव की प्रेरणनाते श्रृंगार रस की क्रीड़ा कौं करत है ॥ तामैं श्रृंगार रस की क्रीड़ा के नायक नायिका की प्रकारिता आदि दै कै ये अङ्ग है तिन कौं भावन सहित वर्नतु हैं ॥ श्रृंगार रस कौ स्थायी भाव रति जाके मन विषय उपजै ता प्रानी को या रस को आश्रय आलंवन कहिअै ॥ इति आश्रय आलंवन ॥ अब विषय आलंवन ॥ जासौं रति होय ताहि विषय आलंवन कहिअै ॥ विपय आलंवन पाँच प्रानी होत हैं ॥ पुत्र १ मित्र २ स्वामी ३ पति ४ स्त्री ५ ॥ इति पंच ॥ जब पुत्र आलंवन होइ तब या रसकों वात्सल्य श्रृंगार कहिये ॥ पुत्र चारि प्रकार के आत्मज १ लघुभ्राता २ भृत्य ३ चौथो इनसमान जिन्हैं जानिअै ॥ इति वात्सल्य श्रृंगार ॥ जब मित्र आलंवन होइ तब या रस कों सख्य श्रृंगार कहिअैं ॥ और मित्र आठ प्रकार के ॥ समानै विश्वष्ट १ समान विद्या २ समान कुल ३ समान शील ४ समान पौरुष ५ समान अभिलाष ६ समान सुख ७ अष्टम इन समान जिन्हैं जानिअै ॥

अंत—॥ अथ प्रगल्भ वचना ॥ नायक एक बात कहै ताको उत्तर भली भाँति देहि

ताहि प्रगल्भ वचना कहिए ॥ ३ ॥ मोहान्त सुरता ॥ जावत श्रम जलते शरीर शिथिल होइ नेत्रन में निद्रा आवै तथापि रति क्रीड़ाके विषय आनन्द जाको न घटै ताहि मोहान्त सुरता कहिए ॥ मान को मलाल० ॥ कोऊ एक मध्या मान अत्यन्त नहीं करत ताहि ताहि मान कोमला कहिअै ॥ ५ ॥ अथ मान कर्कशा ल० ॥ कोऊ एक मध्यमा मान विषय अत्यन्त कर्कशा होति है ताहि मान कर्कशा कहिए ॥ ६ ॥ ए छै प्रकार की मध्या कही ॥ अथ प्रगल्भा ल० ॥ प्रगल्भा नौ प्रकार की होति है ॥ पूर्ण तारुण्य १ मदांध २ उरुरता ३ भूरिभावा ४ रसाक्रांत वल्लभा ५ प्रौढ़ोक्ता ६ प्रौढ़ चेष्टा ७ मान कर्कशा ८ अभिज्ञा ९ ॥ ॥ अथ पूर्ण तारुण्य ल० ॥ तरुणता की परिपूर्णता सर्व प्रकार करिकै जाके शरीर में पाई जाइ ताहि पूर्ण तारुण्य कहिए ॥ १ ॥ मदान्धा ल० ॥ मद करि कैं जाकी अन्तःकरन की दृष्टि रुकी होए ताहि मदांधा कहिए ॥ ते मद रस शास्त्रोक्त ५ प्रकार के होत हैं । १ रूप मद २ यौवन मद ३ प्रेम मद ४ चातुर्य मद ५ काम मद ॥ अथ उरुरता ल० ॥ ... ...

[शेष लुप्त

विषय—नायिका भेद और रस, भाव, अनुभाव, संचारी भाव, आलंबन, उद्दीपन, आदि विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक आदि और अंत में खंडित है । इसके रचयिता का पता नहीं लग सका । अब तक खोज द्वारा हिन्दी भाषा में जो नायिका-भेद संबन्धी ग्रन्थ मिले हैं, वे प्रायः सभी पद्यात्मक हैं । परंतु यह ग्रंथ आदि से अंत तक गद्य में ही लिखा गया है । भाषा में प्रांतीयता का रंग है । ग्रन्थ में यह विशेषता है कि ग्रन्थकार ने लक्षणों को गोल न रखकर उनकी समस्त बारीकियों को स्पष्ट करके समझाया है । फलतः इसी एक ग्रन्थ के पढ़ने से वर्णनीय विषय की पर्याप्त जानकारी हो सकती है । किन्तु खेद है कि ग्रन्थ खण्डित और अस्तव्यस्त अवस्था में है जिससे उसका विषय विवेचन क्रम-हीन हो गया है । प्रयत्न करने पर भी उसे पूर्व रूप में प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं असंभव सा है ।

संख्या ३१२. स्वर्णादि धातु शोधन, पत्र—२, आकार—८×५$\frac{३}{४}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य—पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० द्वारिका प्रसाद जी, स्थान व पो०—बकेवर, जिला—इटावा ।

आदि—अथ तांबा मारण विधि ॥ ताँवा नौ पाली पत्र कर व कंटक वेधी प्रमान अंगुल चारि पत्र तैशा १० षारीलौन पैशा १० माठी पै २१ दुनो मिलावै पानी से सानै गीलकै पत्र के लेप करै कोइला के आगि से लाल करै वेर ३० एहि प्रकार पानी माह वतावै वेर ३१ लेप करै वतावै वार वार तव पत्र धोये पोंछै छोटकर तव षल माह डार वतवनी वुक रस डारव जेहि माह वुडै जतना पत्र ते हर चतुर्थ भाग पारा डारै तव षल करै दिन २४

नीबू के रस से जब पत्र हि चढ़ौ तब तोरि देषै जब जानै जे पत्र भीतर बाहर रस भीजैं तब पानी से धोइ डारै पीछे कपरा से तब एक पुरा माह कपर वटी करै घामे सुषावै तब पत्र औ पारा को बरोबरि गंधिक लेब सोधि बुक बतरे बीछाइब गंधक तत्र पत्र धरब परत परत देब बेर बेर मुख मूंदब षारी लौन सौं औ कर वटी मारी तब एक हाँडी माह बालू धरब तापर पुरा धरब फेर हाँड़ी के ऊपर बालू भरि लेब तब पर इसे मुद्रा करन तब आँच देब प्रहर २४ अथ प्रहर मध्यम पुनि तेज तब रात्रि माह जुडै देब प्रात देषै जौ परे वाके कंठ तादृश होइ तौ रहै देब जौ असरंगना आवै तौ फेरि चढ़ाइ देब ॥ परीक्षा ॥ एक पत्र तोरि मुष नावइ जौ पानी छुटै तौ कराही मह घृत तामें खरइ बरिलेब भुज व शुद्ध होइ ॥

अंत—॥ राँगा मारे का उपचार ॥ राँगा तोरा एक गोवर की घरिया मह लेब। तर ऊपर करिया तिल देब ॥ करडा की आँच महँ बड़ी बेर लहि राषब ॥ राँगा मरै षाइ मासा १॥ अनुपान सौ ॥ जस्ता मारे की विधि ॥ जस्ता पत्र कर पीपर के छाल के बुकनी करब ॥ पंकज पत्र के तर ऊपर देब । बुकनी हांड़ी महं राषब ॥ आँच देब पहर चौबीस ॥ तब जस्ता मरै ॥ लहसुनुआ की विधि ॥ लहसुन एक पोरिया सेर मधु सेर ५ घीउ गाइ के सेर २॥ और वे सह हनी सम दुइ भरि मरिचि पीपरि सौंठि धुसरी अजमोदा अचारक ॥

विषय—ताँबा, चाँदी, पारा आदि धातुओं तथा गंधक को शुद्ध करने की विधि।

संख्या ३१३. उत्सव के पद, रचयिता—अष्टसखा आदि, कागज—मूंजी, पत्र—२३२, आकार—१२ × १० इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५३१२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री महाप्रभू जी की बैठक, मु०—चन्द्रसरोवर, पो०—गोवर्धन, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ उत्सव के पद ॥ अथ श्री जन्माष्टमी की वधाई लिख्यते ॥ राग देव गन्धार ॥ ए ब्रज भयो महर कै पूत जब यह बात सुनी ॥ सुनि आनंद सब लोग गोकुल गणित गुनी ॥ व्रज पूरब पूरे पुन्य रुपी कुल सुथिर थुनी ॥ ग्रह लगन नक्षत्र बलि सोधि कीनी वेद धुनी ॥ १ ॥ सुनि धाईं सब ब्रजनारि सहज सिंगार किये ॥ तन यह हैं न्यूतन चीर काजर नैंन दीये ॥ कसि कंचुकी तिलक ललाट सोभित हार दिये ॥ कर कंकन कंचन थार मंगल साज लये ॥ ते अपने अपने मेल निकसीं भांति भली ॥ मानौ सकल मुनिन की पांती पिंजरन चूरि चली ॥ सब गावैं मंगल गीत मिल दस पाँच अली ॥ मानौ भोर भयौ रवि देखत निकसी कमल कली ॥ उर अंचल उड़त न जान्यौ सारी सुरंग सुही ॥ मुख मांड़े रोरी रंग सेंदुर मांगि छुही ॥ सब श्रवनन तरल तरौंना वैनी शिथिल गुही ॥ शिर बरखत कुसुम सुदेश मानौं मेघ फुही ॥

अंत—हिंगेरौरी ब्रज के आंगन में माच्यो ॥ वृन्दावन की सघन कुंज में जहां तहां रंग राच्यौ ॥ ब्रज की नारि सबै जुरि आँई इक गावत सुर सांच्यौ ॥ रसिक प्रीतम की बानिक निरखत शंकर तांडव नाच्यौ ॥ सांमन की पून्यौ मन भावन हरि आये घर झूलौंबी

पचरंग डोरी वांधिन डोरैंरी। परोंगी कुसुवी सारी कुंचुकी कसि वाँधौं कारी हीरा के आभूषन सोहै अंग गोरैंरी ॥ १ ॥ धरिहौं उर कुसुम हार निरिखोंगी वार वार नैंन निहारो नंदलाल कछुक वैंस थोरे ॥ रसिक प्रीतम सुखद संग पावस रितु विलसोंगी। भेटोंगी साँवरे संग कंठ भुजा जोरेरे ॥ २ ॥ राग विहागरौ ॥ झूलै माई जुगल किसोर हिंडोरैं। तैसे ही पावस रितु सुखदायक मंद मंद घन फोरैं ॥ पहर कुसुमी सारी नारि जुरि आई कंचुकी सोनें बोरे ॥ रसिक प्रीतम की वातिक निरखत रहो सदा मन मोरैं ॥

विषय—(१) जन्माष्टमी की बधाई के पद,	पत्र	१ से २१ तक।
२—पालने, बाल लीला, दान लीला, वामन लीला, सांझी नवरात्रि, दसहरा, रास के गीत,	पत्र	२२—६० तक।
३—धन तेरस, रूप चौदस, दीपमालिका, हटरी, गोवर्धन, अन्नकूट, गाय खिलाना, इन्द्रकोप, भाईदूज, गोपाष्टमी, ब्याहादि के पद,	पत्र	६१ ले ९३ तक।
४—गोसाईं जी की बधाई, वसंत के गीत,	पत्र	९४ से १११ तक।
५—धमार, फूलडोल, रामनौमी, आचार्य महाप्रभूजी की बधाई,	,,	११२ से १९९ तक।
६—अक्षय तृतिया, नरसिंह चतुर्दसी, रथयात्रा और मल्हार,	,,	२०० से २१४ तक।
७—हिंडोरा के गीत,	,,	२१४ से २३२ तक।

अष्टछाप के सब कवि विट्ठल गिरधर, रसिक प्रीतम, आनन्दराम, विट्ठलदास, हित हरिवंश, व्रजपति, विष्णुदास, द्वारकेश जू, माधवदास, भगवान हित रामराय, जगन्नाथ कविराय, कल्यान, रसिकदास, विट्ठल विपुल, रामदास, गोविन्द प्रभू, आसकरन, मानदास, मानिकचंद, दास गोपाल, सगुनदास, केसवदास, जन भगवान, रघुनाथदास, हरि जीवन, श्री भट्ट, गोकुलदास, दास गजाधर, श्री गोकुलनाथ, जन त्रिलोक, कृष्णदास, हीरालाल, गुपालदास, कृष्णजीवन लछिराम, माधुरीहित, हरिनारायण, जगन्नाथ जीवन, गोविन्दप्रभू, विट्ठलनाथ, तुलसीदास, अग्रदास, सगुनदास, रामदास, जन हरिया, हरि जीवन, जन भगवान, मदन मोहन आदि भक्त कवियों के गीत इसमें संगृहीत हैं।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत संग्रह का विवरण बड़ी कठिनाई से लिया गया है। चन्द्रसरोवर जहाँ सूरदास जी बहुत दिनों तक रहे है, वहीं महाप्रभु जी की बड़ी बैठक बनी है। यहाँ सभी बड़े बड़े आचार्यों वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ और हरिराय जी की बैठकें हैं। सब बैठकें एक वृहद् कुंज के भीतर बनी हैं। इसमें कई छोटे-छोटे मंदिर हैं और झाऊ, पीलू तथा कदम के वृक्ष हैं। एक बड़ी बावड़ी और वृक्षों के नीचे कई चबूतरे हैं। चारों ओर इस स्थान के एक कोट, अर्थात् दीवाल खड़ी है। चन्द्रसरोवर के किनारे ही यह स्थान है और बड़ा रमणीक है। बैठक को देखकर ऐसा मालूम होता है मानो वृन्दावन की सेवा कुंज में आ गये हैं। चारों ओर स्वच्छन्द मयूर और व्रज के नट-खटी बन्दरों की जमातें दीखती हैं। महाप्रभू वल्लभाचार्य की बैठक में यह पद संग्रह था,

पर जितने भी पुजारियों से मैं मिला मुझे नास्तिक अर्थात् पुष्टिमार्ग की मर्यादा से बाहर का आदमी समझकर रूखा व्यवहार करते थे। यहाँ वहाँ की सिफारिशें भी असफल हो चुकी थीं। मैं एक प्रकार से निराश सा हो गया था और महाप्रभु की बैठक के सामने बने उस चबूतरे पर बैठ गया जो 'सूरदास का चबूतरा, कहलाता है। इस चबूतरे से लगी हुई एक चौपाल और कुटी है। सामने झौरदार कुछ वृक्ष हैं। सूरदास जी के चबूतरे पर बैठकर मैंने निराशा की एक निश्वास छोड़ी। मुझे निश्चित सा जान पड़ा कि अब बैठक का हस्तलिखित ग्रंथ देखने को न मिलेगा। इधर यह भी विचार उठता था कि उसमें सूरदास की कोई अप्राप्य रचना तो न हो। अतः एक बार और प्रयत्न करना स्थिर किया और एक वल्लभदास मुखिया (मुखिया वे कहलाते हैं जो वल्लभ सम्प्रदाय की बैठक की नित्य आराधना के लिए नियुक्त हैं) से पुनः ग्रंथ दिखलाने की प्रार्थना की। उन्हें भावावेश में और भी बहुत कुछ कहा। फलतः उन्हें कुछ लज्जा आ गई और शीघ्र ही ग्रंथ लाकर दे दिया। मैं उस ग्रंथ पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ा। उन्होंने तो ग्रन्थ को देखने के लिये दस मिनट का समय दिया, पर मैंने बहुत शीघ्रता करते हुए भी एक घंटे में उसका विवरण लिया। मेरे साथ एक ग्रेजुयेट महाशय थे जिन्होंने इस अवसर पर बड़ी सहायता की। मैं बोलता गया और वे लिखते गये। ग्रन्थ बहुत बड़ा है और सूरदास जी की बैठक का है। अतः महत्व पूर्ण है। इस पर संवत् आदि नहीं पड़ा है किन्तु बहुत प्राचीन प्रतीत होता है। लगभग तीन चार सौ वर्ष पूर्व का लिखा होगा।

संख्या ३१४. उत्सव मालिका, रचयिता—अष्टछाप, कागज—बाँसी, पत्र—५६, आकार—९ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) १५, परिमाण (अनुष्टुप्)—८३४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—प्रभुदयाल कीर्तनिया, स्थान—तुलसी चबूतरा, जिला—मथुरा।

आदि—अथ उत्सव मालिका पद गावा तो क्रम लखो छै॥ अथ रथ जनाना पद अषाढ़ सुदी २॥ १-कुँवर चलिय आमि जु गहवर बन में जां बोलत मधुरे सार॥ २-आइ जु स्याम जलद घटा। ३-तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा॥ मदन मोहन पीय कीजिये कलेऊ॥ दूध में गेरी सान मान मिश्री आनी जोई जोई भाव लाल सोई सोई॥ लेउ खीर खांड घृत अति मीठे आम खांड और ग्वालन देंऊ॥ "व्रजपति" पिय खेलन कौ जाऊ वन सुवल श्री राम संग कर लेऊ॥ देखत ही हरि को वदन सरोज॥ प्रफुल्लित कमल सुधा रस में मानौ लुब्ध मधुप''' ॥ गौ रज छरित पराग रह्यो फबि सुन्दर अधिक सुकौस॥ "नन्ददास" नासिका मुक्ता मानो रही एक कन ओस।

अंत—फूलन के भवन गिरधर नवल नागरी फूल सिंगार अति ही राजें॥ फूलन की पाग सिर स्याम के राजे री फूल की माल हिये में विराजे॥ फूल सारी कंचुकी बनी फूल की फूल की फूल लहँगा निरख काम लाजे॥ छित स्वामी फूल सदन पियारी सदा विलस मिलत अंग काम छाजे॥ कुंज भवन गवन करौ तन की संताप हरौ पूरन चंद सो दास कंज खंजन कोटिक वारों मान मृग विसार डारों एसे इन नैनन कमल कृतार्थ कीजे॰।

जिनको पथ कोउ न पावत निगम हारे गावत गावत ...... पथ निदारत तिन सों दिल मिल सुख दीजे ॥ घोंधी को प्रभु रस सागर तेरे ही रस भींजे ॥

विषय—वर्ष भर के उत्सवों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों का संग्रह है। इसमें निम्नलिखित कवियों के गीत आए हैं :—

१—अष्ट छाप के सब कवि, २—व्रज पति,
३—विष्णुदास, ४—रामदास,
५—कल्यान, ६—घोंधी,
७—हरिनारायण, ८—माधोदास,
९—कृष्णदास आदि।

संख्या ३१५. उत्सव विधान, कागज—सनी, पत्र—३३, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)—४४८, अपूर्ण, लिपि—नागरी, गद्य, रूप—प्राचीन, प्राप्तिस्थान—रामस्वरूप पटवारी, मु०—बरौली, पो०—बलदेव, मथुरा।

आदि—ग्वाल कूं पधराये तव सुन ग्वालन गाय बहोर, पाछे ठाकुर जी के सानिध्य नन्दराय जी कूँ ग्वाल तिलक करे तव धना श्री की जायो है सुत नीको पाछे नन्दराय जी को हाथ पकड़ के बड़ो कीरतिनिया तथा ग्वाल बाल नन्द महोत्सव करे ता समें नन्द के आनंद भयो फेर नन्द महोत्सव की वधाई सारंग में १ एरी आज नन्दराय के। आज महा मंगल महराने २ घर घर ग्वाल देत है हेरी। ४ आंगन नंद के दधि कादो ५ नन्द महोछव हो वड़ कीजे ६ सब ग्वाल नाचे गोपी गामे ७ नन्द वधाई दीजे हो ग्वाल नै ८ गह्यो नन्द सव गोपिन मिलि के देहो हमें वधाई।

अंत—माह सुदी ६ के दिन श्री मदन मोहन लाल को पाट उत्सव मंगला के दरसन खुले 'नैन भर देखो नन्द कुमार' फेर अभ्यंग होय तव जायो हेसुतनीको चिरजीयो गोपाल। 'मंगल गावो माई आपुन मंगल गावै' सो वन फूली न फूली 'व्रज भयो महर के पूत सिंगार के सन्मुख गोकुल में हरि प्रगटे आय।' राज भोग आए 'जन्म सुत को होत ही आनन्द भयो नन्दराय के सरे में 'आज महामंगल महराने' सानिध्य में खेल के खुले तव प्रथम हरि री वृज जुवती सत संगे।' 'देखरी देख व्रजराज आगम सखी ॥ आयो जानो हरि जू रितु वसना ॥ × × ×

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय वाले वर्ष भर में जितने उत्सव और त्योहार मनाते हैं उन सबको किस तरह मनाना चाहिए, किस प्रकार ठाकुर जी का श्रृंगार हो, कौन गीत किस-किस उत्सव पर गाया जाय, क्या-क्या भोजन बनना चाहिये, इन्हीं सब का विवरण इस ग्रंथ में दिया गया है।

विशेष ज्ञातव्य—समस्त ग्रंथ गद्य में है। विषय अपने ढंग का अनोखा है।

संख्या ३१६. वैद्यक, पत्र—३२, आकार—१० × ६$\frac{3}{4}$ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५६०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी,

प्राप्तिस्थान—ठाकुर नवाव सिंह जी जमींदार, न०—खुशहाली, पो०- सिरसागंज, जिला—मैनपुरी ।

आदि—॥ अथ ब्रह्मागोली बनैवे की विधि ॥ हरदी १२ मोथन गावरी १२ कूट १२ वच १२ सैंधव १२ मिरिच १२॥ सौंठि तड़ी १२॥ चीत १२। वरावरि लेव क्षगरी के मूत सों गोली वांधै ॥छाह मा सुषावै चना प्रमान ताके अनोपान छमरा के रस सौं रगरि कै देइ तौ रतौंधी जाइ ॥ महरियाके दूध मा रगरिकैं लगावै तौं फुली जाइ ॥ पान के रसमा रगरिकै लगावै तो तिमिरि जाइ ॥ घी मा वा मधुमा रगरि कै लगावै तौ मांड़ा जाइ ॥ गाय के मूत्र मा देय तौ वँभनी जाइ ॥ मैथी सो षाइ तौ कांवर जाइ ॥ विसूचिका का दुइ वरी देय जो सिंधु काटै तो सतावरी देय जो किरिया सिंधु नाम विस षोवरी षाय तौ आठ वरी देइ गदहा के मूत्र सों अंजन देय तौ भूत छाड़ि भागै ॥ इति ॥

अंत—अथ ज्वरांकुश बनाइवे की विधि ॥ तवकी हरतारु टं० १२॥ लीला थोथा टंक ५ घोंघा का चून टंक ५ तीनिउ औषधैं बूकि निनारी करव मैर उव विउकुवार के रसते षल करव पहर २ तवै औषधि सरवा धरव ऊपर सर वा देकै लेसिकैं सुषाइ कै आंच देउ पहर ५ वा ६ सेराने काढ़ि लेव षाय कैं प्रमान रत्ती २ औ सिषरिन भातु पथ्य देउ सर्वताइ जूड़ी जाय ॥.................... [शेष लुप्त]

विषय—कुछ औषधियों के नुसूखे, धातुओं के फूंकने, चूर्ण-चटनी एवं गोली आदि बनाने की विधि, उनका प्रयोग, अनुपान तथा लाभ वर्णन ॥

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक खण्डित है। इसके आदि, अंत और मध्य के बहुत से पत्रे लुप्त हो गए हैं। यह कब और किसने बनाई, इस बात का उल्लेख पुस्तक में नहीं है। इसका विषय वैद्यक से संबन्ध रखता है। इसमें अनेक रोगों के नुसूखे देकर उनके बनाने की विधि, प्रयोग, अनुपान तथा लाभालाभ आदि बातों का पूर्ण विवरण दिया है। रस बनाने, धातुओं को मारने, चूरन चटनी आदि आवश्यक और नित्य प्रति की व्यवहारिक वस्तुओं के बनाने की स्पष्ट और सरल रीति इसमें यथास्थान दे दी गई है।

संख्या २१७. वैद्यक, पत्र—३२, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५३६, गद्य, रूप—प्राचीन, अपूर्ण, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० छोटेलाल जी, स्थान—भाऊपुरा, पो०—जसवन्त नगर, जिला—इटावा।

आदि—......बहुधा वीमारी मैदा के फसाद से होत है सो चाही कि जौ मैदामा कौनिउ तरह कर फसाद देखै तो जुलाव लैकैं मेदा साफ कै डारै ॥ और रोग चारि प्रकार सें होत है कफ १ पित्त वात रक्त कै के ॥ अथ प्रथम ज्वर के लक्षण ॥ शरीर गरम रहै पसीना न आवै ॥ मूंड़ धमकै ॥ हड़ फूटनि होइ ॥ भूख न लागै ॥ नींद न आवै ॥ ई लक्षण होइ तो जानै कि ज्वर है ॥ और जुर कइउ तरह से होत है ॥ वात ज्वर ॥ पित्तज्वर ॥ कफज्वर ॥ और कवौं दुइ लक्षण मिलि कै ज्वर होत है ॥ जैसे वात पित्त ज्वर ॥ वात कफ ज्वर ॥ पित्त कफ ज्वर ॥ और इनकर लक्षण अलग है ॥ और दवाई अलग अलग है ॥

मुदा उदवाई लिखीजात है ॥ जवन सब जुरन का फाइदा करति है ॥ देवी चंदन ॥ कमल गद्दा धनियां गुरिच नीम कर सींक ई सब दवाई कूटि का एक पाव पानी मा काढ़ा बनावै जौ आधपाव पानी रहि जाय तौ पिआवै तौ सात दिन मा सब प्रकार के ज्वर अच्छा होइ जाइ ॥

अंत—कवाव चीनी ऽ- सोरा कलमी ऽ- दुइनो महीन पीसि कै अधेला अधेला भरि दिन भरे मां तीनि दाईं खाइ तौ तीन दिन एही तरह करैं तौ सुजाख खून सहित सब प्रकार कर अच्छा होइ ॥ वंग चारि मासा सीतल चीनी छै मासा वंसलोचन १ मासा खैर दुधिया छै मासा लाची बड़ी छै मासा तज छै मासा सब पीसिकै सात पुड़ियां बनाइ कै गाइ कै माठा के साथ अथवा दूध के साथ खाय तौ सब प्रकार की सूजाख जाय ॥ अथवां स्वेत चीनी २ टंक जल के साथ देइ तौ सब प्रकार की सुजाख जाय ॥ अथवां जवाखार मिसिरी दुइनो वरावरि चूरन वनाइकै खाय तौ सब प्रकार की सुजाख जाय ॥ अथवां दूध गरम कै के और गुड़ मिलाइ कै २१ दिन पिअइ तो सूजाख पथरी वात सब प्रकार के रोग जायं ॥ अथवा ॥ गुरखुल ऽ५ सेर जर समेत कूटि के ऽ५ जलमा औटावै जो······शेष लुप्त

विषय—ज्वर के लक्षण, भेद तथा औषधियां, तिजारी तथा चौथैया आदि की दवाएं सन्निपात और उसके भेदोपभेदों के लक्षण एवं औषधि। ज्वर के दस उपद्रव, खांसी, स्वांस, हिचकी तथा विषम ज्वर उपचार। अतीसार, संग्रहणी, बवासीर, अजीर्ण, पांडुरोग, खांसी, हिचकी और कास, स्वांस को दवा। मृगी, वातरोग, प्रमेह, कफरोग, प्लीहा तथा सुजाक की दवाइयां।

संख्या ३१८. वैद्यक, पत्र—६४, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—३१७९, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामकृष्ण जी शर्मा, स्थान—धरवार, पो०—जसवंत नगर, जि०—इटावा।

आदि—........इके खयावै ॥ अथ क्रम दुःख सूल लक्षण घोड़ा वोड़री दांत से काटै आँ आंषी औ मुंह से पानी वहै दवाई सोंठि पीपरि जवाइनि ठांखकर वीज घोड़ वच भंगरा दुइ दुइ पैसा भरि संभालू कै पाती खाइ विआ ऽ= आध पाव सव वूझि के आध सेर गुड़ मिलाइके षिआवै ॥ अथवां ॥ सोंठ पीपरि मरिच कुट पलोस का विआ सव वरावरि कै कै गुड़मा सानिके षिआवै ॥ अथ सहावण सूल लक्षण ॥ घर घराय के वोलै और भुइमा गिरि परै औ कांपै ॥ दवाई ॥ लहसनु हींगु सैंधो नमक भांग कै जरि पलास कर वीज जवाइनि घोडवच सेंहुड़ दुइ दुइ पैसा भरि गुलकंद पाव भरि सव पीसिकैं आध सेर दहिउमा मिलाइ तीनि हींसा कै के तीनि दीन तांई षिआवै ॥

अंत—अथ प्रमेह रोग की उत्पत्ति लक्षण यत्न ॥ अधिक सोने सें नवा पानी पीने वारम्वार मैथुन करने सें धूप के रहने से प्रमेह रोग पैदा होता है तौने कर लक्षण ॥ ठंढा और पातर वारंवार मूतै और मूत्र के साथ वीज का प्रवाह होय शरीर दुरवल होय इन्द्री छीन परिजाय ई लक्षण होय तौ प्रमेह रोग जानै तैने कै दवा ॥ त्रिफलाकर चूरन वनाइ कै

सहत के साथ खाइ तौ प्रमेह रोग जाय ॥ अथवां ॥ औंरा कर रस निकारि के हरदी और सहत मिलाइ कै खाय तौ सब प्रकार का प्रमेह जाय ॥ अथवां ॥ गुरिच के रस मा सहत मिलाइ कै पिअइ तौ सब प्रकार का प्रमेह जाय ॥ अथवां सेमरि की छालि का रस कादि कैं हरदी और मधु के साथ खाइ तौ सब प्रकार का प्रमेह जाइ ॥ अथवां ॥ कूट पित पापड़ा कुटकी मिसुरी सब बराबरि लैकै २ टंक का काढ़ा देइ तौ प्रमेह रोग जाइ ॥ अथवां ॥ लोध काहू कर वोकला खस नीम का पाती और देवी चंदम सब बराबर लैकै और काढ़ा बनाइ गुड़ मिलाइ के पिअइ·····················[शेष लुप्त

विषय—अनेक रोगों के लक्षण, उत्पत्ति, इलाज और अनेक नुस्खों का संग्रह ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक, आदि अंत के बहुत से पत्रे लुप्त हो जाने के कारण खण्डित है। इसमें विविध रोगों के संबंध में अनेक नुस्खों का संग्रह दिया गया है । मनुष्यों के रोगों के अतिरिक्त पशुपक्षियों के रोगों पर भी विचार किया गया है । समस्त ग्रंथ प्रायः अवधी में रचा गया है। रचयिता के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ और न ग्रंथ के रचनाकाल एवं लिपिकाल का ही पता चला ।

संख्या ३१९. वैद्यक, पत्र—३१, आकार—१० × ६३/४ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—१३६४, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौधरी सुमेर सिंह, स्थान—सलेमपुर, पो०—जसवन्त नगर, जिला-इटावा ।

आदि—············|| अंजन विधि ॥ नीब की पाती ऽ= वेल की पाती ऽ- सिरसा की पाती ऽ। जामुन की पाती ऽ। अमिली की पाती ऽ। इन सबका खूब पीसै जिहिमा खूदी न रहै तेहि का पानी में छानि लियै कोई माटी का वर्तन में यो छाने ते बाचे रहै तेहि का फिरि बाटि के छानि लेइ सो पानी थिरवाइ कै निकारि डारै तौ बुकनी सुखै के धरि छोड़ै और जाती फल एक तोला भरे की वजन ते लिया लवंग मासा १ इलाइची गुजराती मासा एक जावित्री मासा एक पीपरि आधा मासा काली मिरच पाउ मासा समुद्र फैन मासा २ सिगरफ आधा मासा इन सब कौ पीसि मिही करि कै औ आध पाउ डेढ़ छटांक बुकनू फूले या जस्ता के कटोरा मा धरि कै औ तेल करू निसौत तेहिमा जस जस सोखै तस तस डारत जाइ नीव के सोटा ते घोटत जाइ बीस दिन तक अंजन सिद्धि होइ लगावै तौ फूली माड़ा तिमिर मोतिया विंदु सब रोग आंखी के जाइ निश्चै कै जानव ॥

अंत—|| अथ सिंगरफ कै क्रिया ॥ सिंगरफ कै डेली चहै तेतरी वजन ..इसो मिही कपरा मा पोटरी बांधै दूधमा लटकावै और दुग्ध औटावै जाइ सो दुग्ध ठंडा करिकै पीवै दिन···नामर्द मर्द होइ ॥ फिरि वह सिंगरफ कै तालेम···कांद होत है तेहिका वोरि कै वह डेली भरि देइ ऊपर ते वही ते सुख मूंदि लेइ मांटी लपेटै सुखै कै उपरा कै आंच देइ सेर भरे मा जब निर्धूम होइ तब निकारि कै दुसरे कांद मा भरै फिरि वही माफिक आंच देइ शत १०० पीछे से एक कांद कोरिकै वही तरह भरै तौ वीस कोंद पीसि पीठी करै तेहि का ऊपर ते लेप करै सुखै कपरौटी करै माटी लपेटै सुखै गजपुट आंच देइ

विगुनवा कंडा कै शीतलांग निकारि लेइ शपेद दूध की माफिक होइ तौ सिद्ध वजन खाइकै आधा चाउर वंगला पान मा खाइ तो पारा का सा गुन करै ।। काम करै ।। क्षुधा करै ।। कुष्ट जाइ ववासीर जाइ ।। भगंदर आमवात जाइ वाई सब प्रकार के जाइ लिंग छई झोल प्रसूति सर्व रोग जाइ ।। अथ योगे............

विषय—अंजन, गर्भ रहने की औषधि, संकोचन अन्य अंजन की विधियां, अण्ड वृद्धि चिकित्सा, वात की चिकित्सा, पुष्टि की औषधि, गर्भ स्तम्भन, धातु पुष्टि, प्रमेह, स्तम्भन की दवा, पुष्टि की औषधि गरमी जाने की औषधि तथा धन्वन्तर शतक सम्बन्धी अन्य औषधियाँ।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत पुस्तक आदि में खण्डित है। इसमें कुछ अच्छे-अच्छे नुस्खों का संग्रह है। संग्रह कर्त्ता का नाम ज्ञात नहीं है। औषधियों के अतिरिक्त कुछ धातुओं के शोधने की विधि, उनके अनुपान तथा उपयोग और लाभादि का वर्णन है। संग्रह के रचनाकाल और लिपिकाल ज्ञात नहीं हैं।

संख्या ३२०. वैद्यक, पत्र—२४, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—७२८, गद्य, रूप—प्राचीन, अपूर्ण, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० रामनरायन जी शर्मा, स्थान व पो०—जसराना, मैनपुरी।

आदि—............|| सन्नपात को निदान ।। कै तो तीनि दिना नौ अरु कै पाँच दिना दस दिना कूं उपास करै तो सन्निपात जुर जानि जै ।। ताकी वोषधि ।। दूनों कटइयाँ गुर पुरू दोय विलारे सोना वेल कुम्हेर पाउर अरनी जाहि दस मूल काढ़ो कहैं हैं ताहि पीपरि डारिकैं पियावना ।। जातें सन्निपात को बाढ़ो उपद्रव दूरि होत है ।। कुटकी सौंठि चिराइतौ दारु हरद दसमूल धना इन्द्र जव अरु गज पीपरि इन सव औषधनि जोरि कैं क्वाथ वनाइ रोगिया को पियावना। जासों स्वास कास तंद्रा विदाह अरु मोह जुर जाइ ।।

अंत—।। वदन दुरगंधता ।। कारौ जीरौ इन्द्र जव तीन दिना ताई कूटिकै विसइ तौ वदन पाक दुरगंधता अरु व्रन दूरि करै । कंठ रोग ।। पाट षषुदन पीपरि जवाषार रसौत दारु हरद इन सव कहं कूटि पीसि छानि कैं चूरन करि लेहि और तामाहि सहत मिलाइ गोली वांधि जे छोटी छोटी गोली बनावहि अरु गोली मुष मैं राषहि तौ कंठ कै सव उतपात नसायं ।। पाव षान मे वहुत सौ............

विषय—सन्निपात, स्वांस कास, तन्द्रा, विसूचिका, अजीर्ण, कृमि, उन्माद, छर्दि, अपस्मार, गुल्म, वात कौ तैल, नारायण तैल, स्वच्छन्द भैरवरस, आमवात, शूल, शुंठिपाक प्लीह, प्रमेह, मेद, शोथ, अंडवृद्धि, गंडमाल, व्रण, भगंदर, उपदंश नहरुवा, कुष्ट, रक्तविकार, आधा सीसी, तिमिरि, फूली, दांत का इलाज, स्त्री रोग, वदन दुर्गन्धता तथा कंठ रोग का वर्णन।

संख्या ३२१. वैद्यक, पत्र—२४, आकार—८½ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—१५५२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—चौधरी कृष्ण गोपाल सिंह जी रईस व जमींदार, मौजा—सूरजपुर, डा०—तिलियानी, जि०—मैनपुरी।

आदि—.........अथवन्द्या करन की दवा ॥ पीपलिय पैसा भरि वायविरंग पैसा भरि सुहागा पैसा भरि इन सव दवा कूं पीसि रितु के उपरान्त दिन पाँच पीवै जल के साथ वन्धा होइ सही ॥ १ ॥ अथ सव दोष पवित्र होने की दवा ॥ समुद्र फेन पैसा भरि इलाइची पैसा भरि जाइफल पइसा भरि वाइविरंग ॥ पैसा भरि सिस कूंपल पैसा भरि नागकेसरि पैसाभरि इन सव दवा कूं पीसि जल सूं वत्ती करि भग मैं राषै दिन तीनि सर्वदोष खुनी के जाँय ॥ अथ कपड़ा होने की दवा ॥ मालकाँगुनी छः मासे राई छै मासे ॥ विजैसार छै मासे ॥ षूव वारीक पीसि ठंठे जल के साथ पीवै दिन पाँच फूल आवै ॥

अंत—लोदु हड़ खटुआ पिआवाँस की छालि तेलकरू मैं पीसिकैं डारै विधि औटे वालक कैं लगावै दो वषत तौ जुर जाव ॥ दवा षाँसी की ॥ अदरषु-अरषु जवाषार कौ पान कौ रंग सहत राम करच षावै तौ ककुर षाँसी जाइ ॥ १ ॥ १ पारौ आँउरे ॥ सार ॥ सोंठिं ॥ हरतार ॥ तामेसुर ॥ मिर्चि ॥ पीपरैं ॥ हरवड़ी ॥ वड़ौ हर्रा ॥ आंउरे ॥ जमाल गोटा ॥ जवाषार ॥ सुहागा लौंगैं ॥ देवदारु ॥ इन दवाइयों को घमरा के अरष मैं घुरावै ॥ चारि पहर ॥ गलावै ॥ गोली ॥ मूंग परमान ॥ गऊ मूत सों देवै तो सिगरे नास होंइ ॥ तुलसीदल सों देवै तो वुखार जाइ ॥ नीव के राग सो देवै तो अनजानै तो देवधक जाइ खांड से देवै तो पित सु अंत होवै ॥ तिरफला से देवै तो दमको आजार जाइ ॥ धतूरे के राग सैं देवै तो भिक्रमजुर जाइ ॥ मोथा सों देइ तो आज जाइ सेंतसे देवै तो पुस्टी होइ पियान से देवै दंत रागु जाइ ॥ पान सों देइ तो निवलाई जाय ॥ कंदा से देवे तो पिंड रोग जाइ जाइफल से देवै तो वादी ववासीर जाइ ॥ अजवाइन के चांवर सो देय तो सुन जाइ ॥ कदली के राग से जाइ सरव विथा जाइ ॥.................

विषय—स्त्री, बच्चों एवं साधारण रोगों की औषधियों के नुसखे।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ आदि अंत के बहुत से पत्रे लुप्त हो जाने के कारण खंडित है। इसमें अनेक नुसखों का संग्रह है। ग्रंथ के अंत में संग्रह कर्त्ता ने स्त्रियों और बालकों के रोगों पर भी कई नुसखे लिखे हैं। औषधियों के बनाने का ढंग, परिमाण तथा अनुपान उनके लाभों सहित अंकित कर दिए गए हैं। संग्रह किसने किया, कब किया और उसका क्या नाम रक्खा, यह संग्रह से कुछ ज्ञात नहीं होता। ग्रंथ में अध्याय या प्रकरणों का क्रम नहीं रक्खा गया है और न औषधियाँ ही किसी विषय क्रम के ध्यान से लिखी गई हैं। जिस नुसखे को जहाँ चाहा संग्रह कर दिया है। हां, स्त्रियों तथा बालकों के रोगों के नुसखे विषय क्रम से लिखे हैं।

संख्या ३२२. वैद्यक की पोथी, पत्र—३२, आकार—१० × ७½ इंच, पंक्ति

(प्रतिपृष्ठ)—२०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२५६०, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री फूलचन्द जी साधु, स्थान—दितुली, पो०—बरनाहल, जिला—मैनपुरी।

आदि—दवा बवासीर की ॥ अनार की छालि कारी मिरचैं बरावरि करि लेवैं डारि कै पीवै दिन तीनि नीकी होवै ॥ औषदि दूसरी सोरा कलमी पीसिके जंगल की राह में लगावै रगरै और आगि पै डारि कैं धूनी देइ दिन तीन ॥ रार मिसुरी सुहागा गंधक भेड़ के दूध में लगावै पीसि कै दादु नीकी होइ ॥ दवा चीतोरी रस कपूर तोले १) इकईस लौंगैं पान इकईस लैकैं गोली बनावैं इकईस ऐक रोल षाइ नीकी होवैं ॥ दवा षांसी की ॥ पापरि कत्था चुरुटा बहेरा को वकुला पान के संग में गोली वाँधै तथा वमूर के कसके पानी में वांधै पान में षवावै नीको होइ ॥ जुलाव ॥ अजैपाल सोधिकैं अजमाइन की भूसी लौने वरावरि लेवे षवाइदेइ जुलाव होवैं ॥ जुलाव चीतोरी को। जुलाव साधारन देवे हरकोवकुला २५ निसोतु २५ सनाइ २५ सोंठि २५ मुनक्कादाष २५ अमलतास को गूदा २५ जे पैंसा भरि लेवे छटांक गुलकंद मुंजचसि सोंफ २५ मुहरेठी २५ लेइ सोस २५ उन्नाव २५ दाष २५ जोस लगावैं मीजें छानि पीवै दिन ३ षचरी षावैं ॥

अंत—॥ चूरन तापकौ ॥ तालीस २५ तंतरीक २५ दारिचीनी २५ नाग केसरि २५ काकरा सिंगी २५ हाहूवेर २५ अनार के दाने २५ विहीदाना २५ जीरो सुफेद २५ कारोजीरो २५ हरकी वकुली २५ आमरे २५ तज २५ सोंठि २५ मिरचैं २५ पीपरे कचूर २५ लोंग २५ जाइफर २५ दाष मुनक्का २५ छुहारे २५ गरी २५ इलायची २५ वंशलोचन २५ मिश्री २५ पीसि एक ए षाई भूष पुष्टि होइ जुर हानि होवै ॥ चूरन वा पुष्टि को ॥ गुजराती इलाइची २५ लौंगैं २५ नागकेसरि २५ वेर की मिगी २५ साटी की षील २५ प्रीयंगु २५ चंदन २५ रक्तचन्दन २५ मिश्री २५ सब पीसि मिलाइ षाइ काहली जाइ भूष पुष्टि होई ॥ चूरन पुष्टिको ॥ नाग केसरि तोले १ दाल चीनी तो० २ लाइची दाने ३ मिश्रै ४ पीपरि ५ सोंठि ६ मिश्री २५ मिलाइ षाइ वलु पुष्टि होई ॥ अगिनि मुष चूरन ॥ हींग भुजी तोले १ वच तोरे १ पीपरि ३ सोठि ४ अजवाइनि ५ हर्रे ६...........

विषय—विविध रोगों की औषधियाँ एवं काढ़े, चूर्ण, चटनी आदि का वर्णन।

संख्या ३२३. वैद्यक संग्रह, पत्र—२४, आकार—८ × ५१/२ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—७९२, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—स्थान—सारख, पो०—वरनाहल, ज़िला—मैनपुरी।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ अथ वैदक ॥ नाड़ी परीक्षा ॥ दोहा ॥ भूषो प्यासो सैन हुत, तेल लगावै जोइ। न्हायो होय जो तुरतही, नारी ज्ञान न होइ ॥ हाथ अंगूठा निकट की, नारी जीवन मूल। तासों पंडित देह को, जानै दुष सुष सूल ॥ नरको कर पग दाहिनो, त्रिय को कर पग वाम। तहां वैद जानै निरषि, नारी को परनाम ॥ संप्रदाय पोथीन सों, अरु अनुभव सों जानि। नारी लक्षन वैद्य फिरि, औषद कहै वषानि ॥ जेसें

परखै पारषी, रतन जतन करि ऐन। नारी परखै वैद इमि, भली भांति सुष चैन ॥ आदि मध्य अरु अंत में, वात पित्त कफ जानु। क्रमते नाड़ी तीनि विधि, यह नारी को ज्ञानु ॥ सांप जोंक गति सम चलै, नारी वात वषान। चपल काक मैडुक लवा, गति तव पित्त प्रवान ।। मोर कवूतर पडुकली, राज हंस तम चूर। इनकी गति नारी निरषि, कफ जानों निरमूर ॥ वात पित्त लक्षन ॥ दोहा ॥ वार-वार मण्डूक गति, वार वार अहि गौन। वात पित्त की नारिका, पंडित जानै ऐन ॥

अंत—॥ अथ तिमिर फूल को ॥ पीपरि त्रिफला लोध अरु, लाष सु सैंधो नोन। घिसि भँगरा के रंग सों, गोली करि नर तौन ॥ घिसि गोली अंजन करै, इमि गुन सरस विचारि। तिमिर काच कडु फूली, नैन रोग दै जारि ॥ अथ कर्म रोग ॥ दुष्ट पवन कर सहित कर, कान मैल को पोष। षाज स्राष अरु वधिरता, सूल करत ये दोष ॥ दुर्मला छन्द ॥ पके अंछे सुवरन से आक पात दस वारह ल्यावत। घिव चुपरि ताते अगरन पर धरि पात मेद सेक पावत ॥ मींजि मींजि कै पात काढ़ि रस कानि मांझ फिरफिर निचुरावत करन सूर इहि औषधि करि करि प्रवल वेदना सहित मिटावत ॥ दोह ॥ तुम सुंठी हींग सो, सिद्ध सु सरसों तेल। सूल वधिर··········

विषय—नाड़ी ज्ञान, तथा नेत्रादि की परीक्षाएँ, ज्वर लक्षण एवं उपचार। अतीसार संग्रहणी, अर्श, अजीर्ण, विशूचिका, क्रिमि, पाण्डु, रक्त-पित्त, कास, स्वांस, छर्द, अरुचि, उन्माद, अपस्मार, वात, कुष्ट, आमवात, गुल्म, हृदयरोग, प्लीहा, मूत्रकृच्छ, प्रमेह, मेद, अंडवृद्धि, गंडमाला, व्रण, अग्निदाह, भगंदर, उपदंश, विसर्प, नहरुआ, अमलपित्त, उदर रोग, रक्तविकार, शिररोग एवं नेत्र रोगादि का वर्णन।

संख्या ३२४. वैद्यक संग्रह, पत्र—१८, आकार—८×५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—३९६, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पं० श्यामाचरण जी कम्पाउण्डर, स्थान व पो०—अजीतमल, जिला—इटावा।

आदि—औषधि भूष की ॥ सोंठि मैदा ६॥ हींग कौ फूला ६ सोचरनोंन ६॥ सोहागा फूला ६॥ सब पीसि मैदा करै रोज षाइ भूष बहुत लागै ॥ चूरन भूष कौ ॥ पीपरि चीतो हर बड़ी सोंठि सोचरु सम भाग पीसि छानि धरै षाइ ताते पानी सौं उतारै भूष होइ ॥ चूरन भूषकौ ॥ सैंधो सोचरु वाइविरंग २५ त्रिफला २५ त्रिकुटा, २५ लौंग चीतौ २५ हींग अजवाइन २५ सव पीसि तीनि नीवू के रस के पुट देवै बन जन १२ सकारे षाइ भूष लागे औषद पित्त पापरा लक्षिमना कटाई की छालि सेत हा ब्रह्मा हरे शिव कोहा अंजुन पद मीथ पदमान नाभिषा परि कृष्ण मिर्चें लछिमी ॥

अंत—॥ अधूरा सीतवाई कौ ॥ सिषुला २५ आम की छालि २५ वनूर कौ कस २५ झांख कौ सींगु २५ चूल्हे की माटी –)। पीसि करि अधूरा करै वाई वा सीतु जाइ वातपु सीतु जाइ ॥ अधूरा सर्व रोग कौ ॥ पीपरामूल १ सिरस १ सौंठि १ कुचिला १ कषटाई १ काइफर १ रेनुका १ कुटकी १ मिर्चें १ कंकोल मिरचें १ पोकर मूल १ ककरासींगी १

जवासे की जर १ हींग १ नागरमोथा १ आजमोदा १ आम की जर १ भेड़ा चिरचिरी १ ....[शेष लुप्त]

विषय--भूख लगने, पुष्टिकरण और कुपच दूरी करण संबंधी चूर्ण; हिचकी, बहुवाक की दवा, समुद्रफेंन के गुण, नाड़ी विचार और कुछ नुस्खों का संग्रह।

संख्या ३२५. वल्लभ सम्प्रदाय ग्रंथावली (अनुमानिक), कागज--बांसी, पत्र--१४८, आकार--१०½ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)--१४, परिमाण (अनुष्टुप्)--२१२९, अपूर्ण, रूप--प्राचीन, गद्य, लिपिनागरी, प्राप्तिस्थान--श्री शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि-- × × × एवहि परलोके च सर्वथा शरणं हरि दुःख हानौ तथा पापे भयेक्य माघ पूरणः याको अर्थ यह लोक और परलोक के विषे सर्वथा हरि सरण करनो। यही सकल साधन जो हरि सरण ही जाइबो। दुख विषै हानि विषै पाप भये ते भय भए ते द्रव्यादिकन को मनोरथ आपुन विषे हरि सरण सोई साधन॥ अन्याश्रय न कर्तव्य ही आश्रय कहे हैं॥

अन्त--अब ठाकुर जी निकुञ्ज मंदिर में वैठे हैं। तहां श्री प्रिया जू की सहचरी प्रति कहत हैं। जो में इहां ही वसत हो। तूं जायकें प्रियाजू को इहां ले आवो मेरी विनती प्रणियत के वचन कहि वेग ही आवो विलम्ब करो मति। प्रिया जू के पास जाय कहियो या प्रकार सों ठाकुर ने साद्रस चित्त करिकें कह्यो। और सहचरी हूं अति चतुर हो। हे राधे इहा नन्द सुनू तुम्हारे विरह करि साम्प्रति क्यो हू करि कछु हु सुख नाईं॥ बहुत तो तुम्हारो माम लेकर विषाद कहत है॥ × × ×

विषय--वल्लभ सम्प्रदाय के निम्नलिखित छोटे-छोटे कई ग्रंथों का यह भाषानुवाद है:--१--आचार्य जी का स्वरूप, २--श्री गुसांईं विट्ठलनाथ जी का स्वरूप (हरिराय जी कृत संस्कृत में), ३--गुप्तरस गोसाईं जी विट्ठलनाथ जी कृत (इसमें वल्लभ संप्रदाय के गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों का वर्णन है), ४--भक्ति वर्द्धिनी (संस्कृत में) वल्लभाचार्य कृत व्रज भाषा में टीका। इसमें भक्ति विषयक मोटे-मोटे सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। ५--मंगल पद (गो० विट्ठलनाथ जी कृत), पालने और वसंत की अष्टपदी। ६--श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य का चरित्र (अपूर्ण)।

विशेष ज्ञातव्य--वल्लभ संप्रदाय के छः छोटे मोटे संस्कृत से अनुवादित ग्रंथों का यह एक संग्रह है। सभी में संप्रदाय सम्बन्धी सिद्धान्तों, भक्ति और ज्ञानका प्रतिपादन है। मूल संस्कृत के रचयिताओं का नाम विषय के खाने में दे दिया गया है। पर भाषाकारों का नाम विदित नहीं होता। ऐसा अनुमान होता है कि संप्रदाय के पंडितों ने ही इसका अनुवाद जन साधारण के स्वाध्याय के लिये किया है। संग्रह अपूर्ण है। देखने में प्राचीन मालूम होता है। लिपिकाल का पता नहीं चला।

संख्या ३२६. वल्लभ वंशावली, कागज—मूंजी, पत्र—३४, आकार—८ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१२, परिमाण (अनुष्टुप्)—६३१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९०२ वि० (१८४५ ई०), प्राप्तिस्थान—जमना प्रसाद ब्राह्मण, इमलीवाले, गोकुल, मथुरा ।

आदि—श्री वल्लभाचार्य जी कौ जन्म संवत् १५३५ वैसाख वदि ११ श्री वल्लभाचार्य जी के पुत्र २ ॥ १ श्री गोपीनाथ जी कौ जन्म संवत् १५६७ आश्वनि वदी १२ श्री विट्ठलनाथ जी कौ जन्म संवत् १५७२ पौष वदि ९ श्री वल्लभाचार्य्य जी के प्रथम पुत्र श्री गोपीनाथ जी तिनके पुत्र १ श्री पुरुषोत्तम जी कौ जन्म संवत् १५९३ मार्गशिर बदी ९ श्री वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी तिनके पुत्र ७ (१) श्री गिरधर जी को जन्म संवत् १५९७ कार्तिक सुदी १२ श्री गोविन्दराय जी कौ जन्म संवत १६०० मार्गशिर वदि ८ श्री बाल कृष्ण जी कौ जन्म संवत् १६०६ आश्वन वदि १३ श्री गोकुल नाथ जी कौ जन्म संवत् १६०८ मार्गशिर सुदी ७ श्री रघुनाथ जी कौ जन्म संवत् १६११ कार्तिक सुदि १२ श्री यदुनाथ जी कौ जन्म संवत् १६१३ चैत्र वदी ६ श्री घनस्याम जी कौ जन्म संवत् १६२९ मार्गशिर वदि १३ ॥

अंत—श्री गुसाईं जी के सात में पुत्र श्री घनस्याम जी तिनके पुत्र ॥ १ श्री ब्रजपाल जी कौ जन्म संवत् १६६९ भादों सुदि १४ । २ श्री चाचा गोपेश्वर जी कौ जन्म संवत् १६······श्री घनस्याम जी के द्वितीय पुत्र चाचा श्री गोपेश्वर जी तिनके पुत्र ४ १—श्री उपेन्द्र जी कौ जन्म सं० १६७९ श्रावण सुदि १२ । २—श्री गोपाल जी कौ जन्म संवत् १६८९ मार्गशिर सुदि ७।३—श्री कान्त जी कौ जन्म संवत् १७०१ आश्वनि वदि ३।४—श्री रमणजी कौ जन्म संवत् १७०४ जेठ वदि ५ श्री गोपेश्वर जी के चतुर्थ पुत्र श्री रमण जी तिनके पुत्र २ । १—श्री व्रजोत्सव जी कौ जन्म संवत् १७२९ मार्गशिर वदि १३ । २—श्री व्रजरमण जी कौ जन्म संवत् १७५७ द्वितीय आषाढ़ सुदी ४ इति श्री वल्लभाचार्य जी की वंसावली सम्पूर्णम् । मिती माघ वदि १० गुरौ श्री संवत् १९०२ श्री रस्तु ।

विषय—इसमें महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का संवत् १५३५ से लेकर संवत् १९१६ तक का वंश वृक्ष दिया है। इंग्लैण्ड के राजघराने की तरह ही तीसरी अथवा चौथी पीढ़ी में बाबा पर बाबा का ही नाम इनके कुल में आ जाता है। वैष्णव लोग आचार्य जी के इस वंश वृक्ष को कल्पवृक्ष कहते हैं।

विशेष ज्ञातव्य—यह ग्रंथ खोज में बहुत ही मूल्यवान है। इसमें वल्लभ कुल के समस्त उत्तराधिकारियों तथा वंशजों की जन्म तिथियाँ दी हुई हैं। शोध में ग्रंथ प्रथम बार ही मिला है। एक ही नाम के इनमें कई पुरुष हुए हैं। उनकी पहिचान करने में कुछ कठिनाई होती है। वल्लभ कुल के सात घर वर्तमान समय में हैं। उनमें अलग-अलग प्रथाओं का प्रचलन है। गोकुलनाथ के घर में यह नियम है कि चौथी पीढ़ी में वही नाम

लौटकर आ जाता है। लोक श्रुति से पता चला है कि यह वंशावली वैष्णव लोगों में बड़ी श्रद्धा से देखी जाती है और बहुधा इसका पाठ गीता की तरह किया जाता है।

संख्या ३२७. वर्ष गाँठ की बधाई, रचयिता—अष्टछाप, कागज—मूँजी, पत्र—३३, आकार—१४×८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—८७१, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८०२ वि० = १७४५ ई०, प्राप्तिस्थान—ध्यानदास जी वैष्णव, स्थान—करहला (महा प्रभु जी की बैठक), पो०—बरसाना, जिला—मथुरा।

आदि—सुनि आज सुदिन सुभ गाई ॥ वरस गांठि गिरधरन लाल की बोहोरि कुशल सों आई ॥ १ ॥ गोपी सब मिलि मंगल गावति मोतिन चौक पुराई ॥ विविध सुगंध उबटनो करिकें कुँवर कान्ह अन्हवाई ॥ २ ॥ पीताम्बर आभूषन सखियन करि सिंगार बनाई ॥ निरखि निरखि फूलत ललितादिक आनंद उर न समाई ॥ ३ ॥ तिलक करत अक्षत दे जसुमति सुत की लेत बलाई ॥ परमानन्द प्रभु सब मन भायो नंद सुवन सुखदाई ॥ ४ ॥ आयो हे अवधूत जोगी कन्हैया दिखलावे हो माई ॥ ध्रुव ॥ जटाजूट में गंग विराजे गुन मुकुन्द के गावे हो माई हाथ त्रिशूल दूजे कर डमरू सिंघीनाद बजावै ॥ ॥ १ ॥ भुजंग को भूषन भस्म को लेपन ओर सोहे रुण्ड माला ॥ अरधा चन्द्र लिलाट विराजे ओढ़न को मृगछाला ॥ २ ॥

अंत—जसुमति सबहिन देत बधाई ॥ मेरे लाल की मोहिं विधाता वरस गांठि दिखराई ॥ १ ॥ वैठी चोक गोद ले ढोटा आछी लगन धराई ॥ बोहोत दान आवत सब विप्रन लालन देखि सिहाई ॥ २ ॥ रुचि करि देहु असीस ललन कों अप अपने मन भाई ॥ श्री विट्ठल गिरिधर गहि कनिया खेलत रहौ सदाई ॥ ३ ॥ सब कोऊ नाचत करत बधाये ॥ नर नारी आपुस में लेले हरद दही लपटाये ॥ १ ॥ गावत गीत भाँति भाँतिन के अप अपने मन भाये ॥ काहू नहीं संभार रही तन प्रेम पुलकि सुख पाये ॥ २ ॥ नंद की रानी नें यह ढोटा भले नक्षत्रहि जाये ॥ श्री विट्ठल गिरिधरन खिलोना हमारे भागिन आये ॥ ३ ॥ × ×

विषय—(१) कृष्ण जन्म के समय का वर्णन, (२) नन्द यशोदा की प्रसन्नता, (३) व्रज के लोगों का उत्साह, (४) दान देने के गीत, (५) ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रूप रखकर आना और बाल कृष्ण के दर्शन करना, (६) सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र आदि देवताओं का आना और कृष्ण जन्म पर हर्षित होना, (७) व्रजनारियों के मंगलाचार।

विशेष ज्ञातव्य—प्रस्तुत ग्रंथ जीर्ण है। बहुत गीत इसके पढ़े नहीं जाते। इसमें जन्माष्टमी के उत्सव पर गाये जानेवाले अष्टछाप तथा उनके अनुयायियों के गीतों का संग्रह है। विशेषता यह है कि एक ही विषय के पद इसमें संगृहीत हैं। ऐसे संग्रह कम मिलते हैं। गंगाबाई के कुछ पद भी दिए हैं जिनमें से दो पद अंत के कोष्ठ में उद्धृत किये हैं।

संख्या ३२८. बर छोछव के पद, रचयिता—अष्ट सखा, कागज—बाँसी,

पत्र—७०, आकार—७ X ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१३, परिमाण (अनुष्टुप्)-८६२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—रामचन्द्र जी, गुलाल कुण्ड, मु०—गाढ़ौली, पो०—गोवर्धन, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ अथ वरछोछव के पद लिष्यते ॥ अथ जन्माष्टमी राग देव गंधार ॥ ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ॥ सुनि आनंदे सब लोक गोकुल गणत गुनी ॥ व्रज पूरव पूरे पुत्र कुल सिथर धुनी ॥ ग्रह लगन नक्षत्र वलि सोधि कीनी वेद धुनी ॥ १ ॥ सुनि धाई सब ब्रज की नारि ॥ सहज सिंगार कीए तन पहरें नौतरंचीर काजर नैन दीए ॥ कसि कंचुकी तिलक लिलाट सोभित हार हीए ॥ कर कंकण कंचन थार मंगल साज लीए ॥ २ ॥ अपने अपने मेल निकसी भाँति भली ॥ मानो लाल मुनन की पांति पींजरन चूरि चली ॥ मिलि गावें मंगल गीत मिलि दस पाँच अली ॥ मानो भोर भयो रवि देखि फूली कली ॥ ३ ॥

अंत—॥ राग सारंग ॥ राखी बाँधत है नंदराणी ॥ रतन जड़ित की राषी बनी है अति मोहन के मनमानी ॥ विप्र बुलाय दई दच्छिना जसुमति मन हरषानी ॥ कुम्भनदास गिरधर के ऊपर सरस सुवारत आनी ॥ राग सारंग ॥ राषी बांधत जसोदा मैया ॥ सकल भोग ले आगे राषे तनक जु लेउ कन्हैया ॥ यह छवि देषि मगन नन्दरानी निरषि निरषि सचुपेये ॥ जीवो पून जसोदा तेरो परमानन्द बलि जैये ॥ इति श्री वरछोछव के पद संपूर्णम् ॥ यह पुस्तक लिखी श्री गोकुल मध्ये श्री बाल कृष्ण जी के मंदिर में मूलचंद सुभ गोवर्द्धनदास ने पोथी लिखी ॥

विषय—निम्नलिखित विषयों के गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं:—
जन्माष्टमी के बधाई के गीत, पृष्ठ १ से २ तक। छठी के गीत, पृ० २ से ५ तक। ढाढ़ी के पद, पृ० ६ से ७ तक। पालने के पद, पृ० ७ से ८ तक। बाललीला के पद, पृ० ९ से १० तक। दान लीला के पद, पृ० ११ से १८ तक। वामन द्वादशी के पद, पृ० १९ से २२ तक। करवा के पद, पृ० २३ से २६ तक। दशहरा के पद, पृ० २७ से २८ तक। शरद निशा के पद, पृ० २९ से ३१ तक। रूप चौदस, पृ० ३२ से ३५ तक। दीपमालिका के पद, पृ० ३६ से ३७ तक। हटरी के पद, पृ० ३८ से ४० तक। कान्ह जगायवे के पद, पृ० ४१ से ४२ तक। गोवर्द्धन पूजा के पद, पृ० ४३ से ४५ तक। गाय खिलायवे के, पृ० ४६ से ४८ तक। इन्द्रकोप, पृ० ४९ से ५१ तक। भाई दूज के गीत, पृ० ५२ से ५४ तक। गोपाष्टमी के गीत, पृ० ५५ से ५७ तक। हरि प्रबोधिनी के गीत, पृ० ५८ से ६० तक। श्री गुसाईं जी की बधाई, पृ० ६१ से ६३ तक। वसंत के गीत, पृ० ६४ से ६७ तक। धमार के पद, पृ० ६८ से ७२ तक। डोल, (जन्म दिवस के उत्सव), पृ० ७३ से ७५ तक। रामनवमी के पद, पृ० ७६ से ८० तक। आचार्य जी की बधाई, पृ० ८१ से १०१ तक। अक्षय त्रितिया, पृ० १०२ से १०८ तक। नरसिंह चतुर्दशी, पृ० १०९ से ११२ तक। स्नान यात्रा, पृ० ११३ से ११८ तक। रथयात्रा पृ० ११९ से १२२ तक। मलार, पृ० १२३ से १२७ तक। हिंडोर, पृ० १२८ से १३७ तक। पवित्रा राषी, पृ० १३८ से १४० तक।

संख्या ३२९. वर्षोत्सव के पद, रचयिता—अष्टछाप, कागज—बांसी, पत्र—१४४, आकार—११ × ८ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२४, परिमाण (अनुष्टुप्)—४३२०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १८४० वि० = १७८३ ई०, प्राप्तिस्थान—श्री पंडित बिहारी लाल जी, मु०—चन्द्रसरोवर, पो०—गोवर्धन मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः ॥ अथ वर्ष दिन के पद लिख्यते ॥ अथ जन्माष्टमी की वधाई लिख्यते || राग देव गंधार ॥ व्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ॥ सुनि आनंदे सब लोक गोकुल गनित गुनी ॥ राग देव गंध कुमार ॥ नैन भरि देखों नन्द कुमार ॥ जसुमति कूँष चन्द्रमा प्रगट्यौ या व्रज को उजियार ॥ बन जिनि जाऊ आज कोऊ गोसुत ओर गाइ गुवार ॥ अपने अपने भेख सव मिलि लाओ विविध सिंगार ॥ हरद दूब दधि अछित कुम कुम मंडित करो दुबार ॥ पूरो चौक विविध मुक्त मनि गावो मंगल चार ॥ करत वेद धुनि विप्र महामुनि होत नक्षत्र विचार ॥ उदय पुण्य को पुंज सांवरो सकल सिद्धि दातार || गोकुल वधू निरतत आनदित सुन्दरता कौ सार ॥ दास चत्रभुज प्रभु चिरजीयो गिरधार प्रान अधार ॥

अंत—राग सारंग राखी वांधति जसोदा मैया ॥ विविध शृंगार पहिर पट भूषन हरि हलधर दोऊ भैया ॥ रतन जटित सिंघासन बैठे बहो जुरे गोकुल के छैया ॥ बाजत ताल मृदंग संख धुनि लागत परम सुहैया ॥ तिलक करत कर रक्षा बांधत अति हरषति मन महियां || विविध भोग आगे धरि राखे तनकु जु लेहु कन्हैया ॥ इंडुरी पिडुरी वारत सुतपर जननी लेत वलैया || आरती करत देत न्योछावर गोविंद बलि बलि जैया ॥ बहेनि सहोद्रा राखी वाँधति बलि और श्री गोपाल को ॥ कनिक थार में अछित कुम कुम तिलक करत नन्दलाल को ।। आरती करत देत न्योछावर वारत मुकुता माल को ॥ आसकरन प्रभु मोहन नागर प्रेम पुंज व्रज वाल को ॥ मिती ज्येष्ठ वदी ९ सूर्यवार संवत् १८५० पोथी लिख्यंक ॥ देवकरण श्री ब्राह्मण श्री गोकुल मध्ये जो वाँचे ताको भगवद् स्मरण ॥

विषय—१—जन्माष्टमी की बधाई, छटी, दसोंधी के पद, पत्र १ से २१ तक।

२—स्वामिनी श्री राधा जी की बधाई, दानलीला, वामन जी, सांझी, वन विलास, दशहरा, करषा, शरद, रास, के पद पत्र २२–५० तक।

३—धनतेरस, रूप चौदस, दीपमालिका, जागरण, गोवर्धन पूजा, गौओं को खिलाना, इन्द्रकोप, भाईदूज, गोपाष्टमी, देव प्रवोधिनी, पत्र ५१ से ७३ तक।

४—श्री गोकुलनाथ जी का जन्मोत्सव, वल्लभाख्यान, मूल पुरुष के पद, रामजन्मोत्सव, पत्र ७४ से ११४ तक।

५—आचार्य जी की बधाई, अक्षय तृतीया स्नान, यात्रा, रथयात्रा, मलार, हिंडोरा आदि के उत्सव, पवित्रा, राषी के पद, पत्र ११५ से १४४ तक।

निम्नलिखित रचयिताओं के पद संगृहीत हैं :—

सूरदास, दास चतुर्भुज, परमानन्ददास, विट्ठल गिरधर, माधोदास, विठ्ठलदास, नन्ददास, रसिक प्रीतम, जादवेन्द्र, जनगोविन्द, गिरधरदास, व्रजजन, धोंधी, गदाधर, गंगग्वाल, हरिनारायण, श्यामदास, भगवानहित, रामराय, नारायणदास, कल्यान, रसिक, कृष्णदास, गोविन्द प्रभू, द्वारकेश, हरिदास, कृष्णदास, कुम्भनदास, छीतस्वामी, व्यासजन भगवान, विष्णुदास, आसकरन, लालदास, जनैया, केसोदास, कान्ह, रामदास, गोपालदास, श्री गोकुलनाथ, विहारीदास, वल्लभदास, मानिकचन्द, सगुनदास, हरिजीवन इत्यादि।

विशेष ज्ञातव्य—वर्षोत्सव के सभी गीत संग्रहों में यह उत्तम मालूम होता है। लिपिकाल सन् १७८३ ई० है।

संख्या ३३०. वर्षोत्सव के पद, रचयिता—अष्टसखा आदि, कागज—मूँजी, पत्र—८४, आकार—९ X ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—९२३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—बिहारीलाल जी ब्राह्मण, नई गोकुल, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ अष्टसखान के अष्टछाप के कीर्तन वर्ष उत्सव के श्री गोवर्द्धन नाथजी के सन्निधान गाये जाये सो लिख्यते ॥ राग देव गंधार ॥ व्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी; सुनि आनन्दे सब लोक गोकुल गणत गुनी; ग्रह लग्न नक्षत्र बल सोधि कीनी वेद धुनी; व्रज पूरव परे पुन्य रूपी कुल सिषर थुनी; सुनि धाईं सब ब्रजनारी सहज सिंगार किये; तन पहरें नौतन चीर काजर नैन दिए; कसि कंचुकी तिलक ललाट पै सोभित हार हिए; कर कंकन कंचन थारन के मंगला साज लिए।

अंत—राग सारंग। राषी बाँधत है नन्दरानी; रतन जड़ित की सुभग बनी अति मोहन के मनमानी; विप्र बुलाइ दई बहु दछिना जसुदा मन हरषानी; कुम्भनदास गिरधर के ऊपर वारत सर्वस आनी; राखि बाँदत मात जसोदा बल और श्री गोपाल; श्रावन सुदि पून्यो को सुभ दिन तिलक करत विच भाल के; विप्र बुलाय दई बहु दच्छिना बारत मुक्ता माल के; चत्र भुजदास निरख मन फूल्यो गुन गावत गिरधरन लाल के। इति श्री वर्षो उत्सव के कीर्तन तथा उत्सव प्रनालिका सम्पूर्ण ॥ श्रीरस्तु॥

विषय—जन्माष्टमी, पालने और छठी के गीत,	पत्र	१ से १३ तक।
राधा की बधाई, दान लीला, वामन जी, विजयादशमी, रास विलास, धन तेरस, रूप चौदस, दिवाली, अन्नकूट, गोवर्द्धन, भैयादोज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी आदि के गीत,	पत्र	१३ से २४ तक।
गुसाईं जी का जन्मोत्सव, श्री आचार्य जी का उत्सव,	पत्र	२५ से ६४ तक।
होरी, धमार, रक्षाबंधन आदि के उत्सव पर गाये जानेवाले गीत,	पत्र	६५ से ८३ तक।

(१) आसकरन, (२) कल्यान, (३) गोविन्ददास, (४) विट्ठल गिरधर, (५) मानक चन्द, (६) विष्णुदास, (७) हरि जीवन, (८) रसिकदास और (९) गदाधर आदि भक्त कवियों के गीत अष्टछाप कवियों के गीतों के साथ-साथ इसमें संगृहीत हैं।

संख्या ३३१. वर्षोत्सव के पद, कागज—मूँजी, पत्र—१३१, आकार—११ X ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—६८११, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—रमन जी, स्थान—दहरोली, पो०—बरसाना, जि०—मथुरा।

आदि—॥ श्री राधा वल्लभो जयति ॥ प्रथम जथा मति प्रण ॐ श्री वृन्दावन अति रम्य ॥ श्री राधिका कृपा विनु सबके मननि अगम्य ॥ बर जमुना जल सींचत दिनहि सरद वसंत ॥ विविध भाँति सुमनसके सौरभ अलि कुल मंत ॥ अरुन नूतन पल्लव पर कूजित कोकिल कीर ॥ निर्तत करत सिषी कुल अति आनन्द अधीर ॥ बहत पवन रुचि दायक सीतल मंद सुगन्ध ॥ अरुन नील सित मुकलित जहाँ तहा पूषन वन्ध ॥ अति कमनीय विराजत मन्दिर नवल निकुंज ॥ सेवत सगन प्रीति जुत दिन मिन धुज पुंज ॥ रसिक रास जहाँ षेलत स्यामा स्याम किशोर ॥ उभौ वाहु परिरंजत उठे उनींदें भोर ॥ कनक कपिस पट सोभित सुभग साँवरे अंग ॥ नील वसन कामिनी उर कंचुकी कुसुभी सुरंग ॥ ताल पषावज मूराज डफ बाजत मधुर मृदंग ॥ सर सरकति गति सूचंत वर वसुरी मुष चंग ॥

अंत—जयति गिरिराज कृत छत्र ब्रजराज राज सुत सहत सुरराज गति गर्व हारी वर्ष हरिदास जनघोस सुष एसि नित्त सर्वदा हरित हुल्लास कारी ॥ सकल रस वर्द्धन सर्वं सुष कन्दन प्रणत इन्द्रादि सुरलोक चारी ॥ विपिन मधि नायकं भूमि छवि विभायकं पायकं नील मणि प्रीत प्यारी ॥ परम प्रिया हेत संकेत सुष कन्दरा तहाँ निसि दिवस विहर विहारी ॥ नागरीदास लषि बुधि बरनै कहा उतहि नग प्रगट जग महिमा भारी ॥ हमारो कान कहे सो कीजे; आवहु सिमट सकल ब्रजवासी परवत कौ बल दीजे ॥ मधु मेवा पकवान मिठाई षट रस विंजन कीजे ॥ आसकरन प्रभु गिरधर नागर सघन पिछोढ़ो पीजे ॥ मंगल समै षीचरी जैवत है राधा वल्लभ कुंज महल में । रति रस मसे गले गुन तन मन नाहि साभारत प्रेम गहल में ॥ चुटकी देत सषी संभरावत हँसति हँसावति चहल पहल में ॥ श्री कुंजलाल हित इहि विधि सेवत समै समै सब रहत टहलि में ॥

विषय—(१) धमार होरी के गीत, पत्र १ से ४६ ।
(२) फूल पलंग और फूल डोल का उत्सव, पत्र ४७ से ५० ।
(३) चन्दन रचना, उसीरमहल, जलविहार, जलरथ यात्रा, पत्र ५१ से ६३ ।
(४) मलार और हिंडोरा, पत्र ६४ से ७१ ।
(५) पवित्रा, राषी के गीत, पत्र ७२ से ८१ ।
(६) बधाई जन्मपत्री के, पत्र ८२ से ९३ ।
(७) श्री हरिवंश जी की वंशावली, पत्र ९४ से १०३ ।
(८) रास, दशहरा, रूप चतुर्दशी, दिवाली षीचरी, अन्नकूट, पत्र १०४ से १२५ ।
(९) नारायण भट्ट की बधाई, पत्र १२६ से १३१ ।
हित हरिवंश, वनमाली हित, सदानंद हित, श्री दामोदर हित, कुंजलाल हित, हित ध्रुव,

हरिदास, बिहारी दास, नागरीदास, सुषलाल हित, व्यास जी, कमल नैन, नन्ददास, माधुरीदास, गदाधर, नरहरिया, माधौजन, दयासखी, कृष्णजीवन लछिराम, किशोरी लाल हित, रूपलाल हित, सुखलाल, व्यास दास, प्रेमदास हित, व्रजपति, वल्लभ सखी, भगवान हित, वृन्दावन हित, कृष्णसखी, नागरी सखी, सूरदास, गोविन्द प्रभु, जुगल सखी (इनके पद अधिक हैं), आनंदघन (इनके पद बहुत हैं), चतुर्भुज दास, कल्यान, मीरा, रसिक प्रीतम, गरीबदास, हित अनूप, जगन्नाथ प्रभु, परमानन्द और छीत स्वामी ।

विशेष ज्ञातव्य—यह पद संग्रह खोज में विशेष महत्व का है । इसमें हित हरिवंश संप्रदाय के बहुत से भक्त कवियों के गीत आए हैं । बहुतों के नाम तो सर्वथा प्रथम बार ही विदित हुए हैं । अबतक उनके विषय में हमारी जानकारी कुछ भी नहीं थी । रचनाकाल तथा लिपिकाल अज्ञात हैं । कृष्णसखी, नागरी सखी, युगल सखी, वल्लभ सखी और मीरा के पद विशेष उल्लेखनीय हैं ।

संख्या ३२२. वर्षोत्सव की विधि, कागज—बाँसी, पत्र—३६, आकार—१०$\frac{1}{2}$ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१७, परिमाण (अनुष्टुप्)—६१२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा ।

आदि—अथ वर्ष दिन उत्सवन की वधाईन की नित्य कर्म की विधि लिख्यते । प्रथम जन्माष्टमी की विधि लिख्यते । मिती भादों वदी अष्टमी ८ मंगला के समें जगायबे ते अस्नान ताईं । व्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी । ओर सिंगार होत में देव गंधार की वधाई सबसे पहिले ॥ आज वन कोऊ है जिनि जाइ ॥ दूसरी नैना भई देखो नन्दकुमार ॥ तीसरी यहै सुख देखोरी तुम माई ॥ चोथे जनम सकल मानत जसोदा माय ॥ समें होय तो बिलावल की धनासिरी होय तिलक के समे जायो हो सुत नीको जसोदा रानी ॥ भोग आए ॥ प्रथम ही भादो मास अष्टमी ॥ भोग सरें ॥ सारंग की बधाई ॥ दरसन में । आजु नन्दराय के आनन्द ॥

अंत—हिंडोला मुकुट प्रसंग के गावने । सावन सुदी १२ टिपारो धरें तब सिंगार के दरसन में ॥ गामनो पावस नट नट्यो अखारो ॥ राज भोग के दरसन में ॥ मदन मोहन देषत अषारो रंग ॥ संजा में गावत रसिक राय ॥ सैन के दरसन टिपारे को पद गामनो । अरु सामन सुदी ९ ॥ वीयेसेइ ॥ हिंडोला ३ ॥ मलार के ॥ मलकाछि टिपारे को ॥ सामन सुदी ३ ॥ तीज के सिंगार के दरसन में ॥ लाल मेरी सुरंग चूनरी देऊ ॥ राजभोग के समे स्याम मुनि नियरे आए मेह ॥ राजभोग आये ॥ तथा व्रज भक्तन के ॥ तथा छाक के ॥ मुख व्रज भक्तन के ॥ कहत प्यारी राधिका अहीर ॥ आजु हमारे भोजन कीजे ॥ आज गुपाल पाहुने आए ॥ ओर एक गाय देनो । हिंडोरे के समें ॥ माईरी झूले हैं कुँवर गोप ॥ राधे जू देखिए वन शोभा ॥

विषय—जन्माष्टमी से लेकर वर्ष भर तक वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी जितने उत्सव मनाते हैं उनकी सम्पूर्ण विधि साम्प्रदायिक दृष्टि से विस्तार पूर्वक वर्णित है।

विशेष ज्ञातव्य—अष्टछाप के कवियों का जितना सम्मान वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों में देखा जाता है उतना अन्यत्र नहीं। इन्हें कृष्ण के आठों सखाओं के रूप में देखते हैं। इनके पद वेद वाक्य की तरह माने जाते हैं। इनके पदों में वर्णित श्रृंगार के अनुसार ही मूर्तियों का श्रृंगार होता है। भिन्न भिन्न उत्सवों और त्योहारों पर गाने के लिये इन कवियों के गीत नियत हैं। यह नियम तोड़ा नहीं जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में यही विषय भली भाँति प्रतिपादित किया गया है।

संख्या ३३३. वर्षोत्सव गीत सागर, रचयिता—अष्टछाप, कागज—मूँजी, पत्र—९६, आकार—११ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१९, परिमाण (अनुष्टुप्)—१७४८, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री बिहारीलाल जी रहसधारी, स्थान—चन्द्रसरोवर, पो०—गोवर्धन, मथुरा।

आदि—राग सारंग प्रभु पेहेरे पवित्रा पाट की। अद्भुत छवि मानो राजति है कुंकुम तिलक ललाट कौ ॥ १ ॥ अंग अंग लखनि शोभ निधि मनमथ कोटि जुगटि कौ ॥ चत्रभुज प्रभु गिरधर नागर छवि निरखिन मिटै त्रयताप कौ ॥ २ ॥ सारंग। पवित्रा पहिरे गिरवर धारी ॥ उरगुंजा की माल मनोहर श्री भामिनी सुरत सँवारी ॥ १ ॥ सखी सब सोभा संग बढ़ावत हँसत दे दे करतारी ॥ चत्रभुज प्रभु गिरधरन रोम पर वारो मुक्ति विचारी ॥ २ ॥ पवित्रा पहिरें श्री गोकुलराई ॥ स्याम अंगपर अमित माधुरी सोभा वरनी न जाई ॥ १ ॥ वाम भाग वृषभान नन्दिनी अंग अंग सरसाई ॥ गोपी सन्मुष ठाड़ी चितवत द्युति दामिनी चमकाई ॥ २ ॥ भक्त हेत मन मोहन लीला गूढ़ ही रीत उपजाये ॥ कुम्भनदास लाल गिरधर को रूप बरन्यो न जाइ ॥

अंत—ब्रज जन लोचन ही कौ तारो; सुन यसुमति तेरो पूत सपूत कुल दीपक उजियारौ ॥ १ ॥ धेनु चरावत जात दूर जब होत भुवं अति भारो ॥ घोष सुजीवन मुँह हमारौ छिन इत उत नहीं टारो ॥ २ ॥ सात दिवस गिरराज धर्यो कर सात वरष को वारो ॥ गोविन्द प्रभु चिरजीयौ रानी तेरो सुत गोपवंस रखवारौ ॥ माईरी देषत को कान्ह वारो ॥ निर्विष जल यमुना को कीनो गहे लायौ नाग कारो ॥ १ ॥ अति सुकुमार कमल उते कोमल गिरि गोवर्धन धार्यो ॥ डूबत ही व्रज राखु लीयो है सुरपति पाइन पार्यो ॥२॥ है कोऊ बड़ो देव देवन में यसोमति कुँअर तिहारो ॥ सन्तदास सन्तन को सर्वस जीवन प्रान हमारो ॥ ३ ॥

विषय—(१) जन्माष्टमी के गीत,	पत्र	१	से	२४।
(२) बाललीला, पालना आदि,	पत्र	२५	से	३२।
(३) दान लीला, रामनौमी, दसहरा आदि उत्सवों के पद,	पत्र	३३	से	५१।
(४) रास मंडली, दीपमालिका, अन्नकूट, प्रबोधनी के पद,	पत्र	५२	से	९०।
(५) रुक्मिणी विवाह के पद (अपूर्ण),	पत्र	९१	से	९६।

अष्टछाप के कवि, नरहरि, आसकरन, रसिक शिरोमणि, हित हरिवंश, चतुर विहारी, रामदास, विट्ठल गिरधर, किशोरीदास, रसिक प्रीतम, गिरधरदास, कल्यान, प्रहलाद दास, विष्णुदास, गरीबदास, ब्रजजन, विट्ठल विपुल, श्री भट्ट, मानिकचंद, अग्रस्वामी, हरिनारायण स्यामदास, मदनमोहन, नरसैया, हरिदास, व्यास, लालदास, सगुनदास, रिषीकेस, सन्तदास, श्री वल्लभदास आदि कवियों की रचनाएँ इस संग्रह में संगृहीत हैं।

विशेष ज्ञातव्य—विहारी लाल के संग्रह में से पहिले भी कुछ ग्रंथों के विवरण लिए जा चुके हैं। प्रस्तुत संग्रह महत्व पूर्ण है। चन्द्रसरोवर वही स्थान है जहाँ सूरदास रहे हैं।

संख्या ३३४. वर्षोत्सव गीतसागर, पत्र—६०, आकार—१२ × ७ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—३०, परिमाण (अनुष्टुप्)—२७००, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, गोकुलनाथ जी का मन्दिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री गोपीजन वल्लभाय नमः अथ उत्सव की बधाई लिख्यते ॥ प्रथम जन्माष्टमी की बधाई ॥ राग देव गंधार ॥ यह सुख देखो री तुम माई; वरस गाँठि गिरधरन लाल की बहुरि कुसल सों आई; आगम के नीके दिन लागत उर सुख लहर उठाई; ऐसी बात कहत व्रज सुन्दरि अप अपने मन भाई; पुनि हँसि लेत वलाय कूँख की जिहि जन्मे जु कन्हाई; तुम्हरे पूत अहोनन्द रानी सब तन तपन बुझाई; नन्द कुमार सकल या व्रज में आनन्द वेलि बढ़ाई; श्री विट्ठल गिरधर पूरण निधि सबहिं न भूखें पाई।

अंत—आज माई धन धोवत नन्दरानी; कातिक सुदित तेरस सुभ दिन अति बोलत मधुरी वानी; ऊवट न्हवाय बसन पहिराय मन में आनन्द आनी; श्री विट्ठल गिरधरन लाल को देखत हौ जु सिहानी। जसोदा मदन गुपाल बुलावै; धन तेरस आवो नित प्यारे ले उछंग हुलरावै; हीरा जरी वागा भूषन रुचि सों वहोत धरावै; व्रजपति की सुख सोभा निरखत रोम रोम सुख पावै; धन तेरसि दिन अति सुखदाई; राधा अति मनि मोद वढ़ोहे मन मोहन धनि पाई; राखत प्रीत सहित हृदै में गुरु जन लाज वहाई; द्वारकेश प्रभु रसिक लाड़िली निरखि निरखि मन भाई।

विषय—जन्माष्टमी की बधाई के गीत—अष्टसखा, श्री विट्ठल गिरिधर (उप० गंगा बाई जिनके गीत अधिक हैं), माधोदास, हित हरिवंश, जगन्नाथ, रामकृष्ण, व्रजपति, नागरीदास, हरिनारायण स्यामदास, जनगोविन्द, रामदास, धोंधो, आसकरन, रसिक प्रीतम, किसोरीदास, ठाकुरदास, रामदास, ब्रह्मदास, गरीबदास आदि रचित, पत्र १ से २२ तक
पालना झुलावन गीत—अष्ट सखाओं तथा अन्य पद रचयिताओं के, पत्र २३ से २५ तक
जन्मोत्सव की खुशी में नाच और भाटों का गान, पत्र २६ से २८ तक
जोगीलीला—किशोरीदास, सूरदास, रामकृष्ण, ठाकुरदास, रामदास कृत, पत्र २९ से ३५ तक
बाललीला—अष्टछाप, विट्ठल गिरधर आदि कृत, पत्र ३६ से ३९ तक
राधाजी की बधाई—अष्टसखा, हित हरिवंश, गरीब दास, गोपालदास, पत्र ४० से ४४ तक

दानलीला—सूरदास, माधौदास, नन्ददास, तानसेन, छीत स्वामी, गोविन्दप्रभू, पत्र ४५ से ४८ तक
सांझी—उत्सव—द्वारिकेश, व्यास, हरिदास, रसिकदास, पत्र ४९ से ५२ तक
कड़खा, रूप चौदसि, रास लीला आदि उत्सवों के गीत, पत्र ५३ से ६० तक

विशेष ज्ञातव्य—यह पद संग्रह बहुत उपयोगी है। नवीन पद इसमें बहुत आए हैं और कुछ रचयिता भी नवीन हैं। तानसेन, धोंधी और ब्रह्मदास प्रभृति के गीत उल्लेखनीय हैं।

संख्या ३३५. वसन्त धमार संग्रह, कागज—मूँजी, पत्र—१७२, आकार—११ × ९ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—३५८३, रूप—प्राचीन, पद्य, पूर्ण, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—पण्डित केदारनाथ ज्योतिषी, मारूगली, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः॥ श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ अथ वसन्त लिख्यते ॥ ॥ राग वसन्त ॥ हरि रिह व्रज जुवती सतसंगे ॥ विलसत कसणी प्रणवत वारन वरई वरति पतिमान भंगे ॥ ध्रुव ॥ विभ्रम संभ्रम लोल विलोचन रुचि रुचित भावं ॥ कापिद गंचल कुवलय निकरै रंचित तं कलरावं ॥ स्मित रुचि रुचिरानन कमल मुदीक्ष्य हरे रति कंदं ॥ चुम्बति कापि नितम्बवती करत लघु तरुवुक ममंद ॥ उदभट भाव विभावित चापल मोहननि धुव साली ॥ रमयति काम पिपीधन स्तन विलुलित नव वनमाली ॥ प्रिय परिरम्भ विपुल पुलकावलि द्विगुणित सुभग सरीरा ॥ उद्दायति सखि कापिस मंहरिणा रति रनधीरा ॥ निज पररंभ कृते नुद्रति मभि वीक्ष्य हरिं सविलासं ॥ काम पिकापि वलादकृ रोदग्ने कुतुकेन सहासं ॥ कामपिनी विवंध विमोकस सम्भ्रम लजित नयना ॥ रमते सम्प्रति सुमुखि वालादपि करतल धृति निज वसना ॥

अंत—नायकी ॥ नैना नैनन सो खेले होरी ॥ डोरे लाल गुलाल उड़ावनी पलक विकी कर जोरी ॥ उघरत मुंदत मुठीय चलावली फिरि फिर चितवत तीरछी की किसोरी ॥ हरि वल्लभ चितवन में चितवत सैनन ही चित चोरी ॥ सुनि डफ दौरी आई वाला ॥ मुरली छीन लई सामा जु वेंदी दीनी भाल ॥ काहु कर केसर वसी लीनी कोऊ लीऐ हे गुलाल ॥ कोऊ अँगुरी आन आँजत अंजन पहिरावत वन माल ॥ लली करी हरी नीके आये पूजे मन के ख्याल ॥ नन्ददास प्रभु छाड़ि हटीले टूटेगी मोतिन माल ॥ राग नायक आज होरी खेलन जैये सांवरे सलोने सोएरी अेहो ॥ वड़े षड़े माटल राय केसर के पिचकारी न कर लैये ॥ खेलत खेलत रंगु रह्यो अवीर गुलाल उड़ैये ॥ नन्ददास प्रभु होरी खेलत सिंधु वढ़ैये ॥

विषय—व्रज और कृष्ण लीला सम्बन्धी वसन्त, होरी के गीतों का संग्रह। निम्नलिखित कवियों के पद इसमें आये हैं—मुरारीदास, श्री हरिदास, श्री जयदेव, रसिक प्रीतम, अग्रस्वामी, कल्यान, गोविन्द प्रभु, छीत स्वामी, श्री वल्लभ, चत्रभुज, परमानंद, सूरदास, हरिजीवन, मानिकचंद, हित हरिवंस, व्यास, कुम्भनदास, कृष्णदास, श्री

भट्ट, मोहनलाल, व्रजपति, हरिवल्लभ, कृष्णजीवन, लछीराम, गोकुलचन्द, गजाधर, जगन्नाथ कविराय, श्री विट्ठल गिरधर, माधोदास, जनहरिया, आसकरन, नन्ददास, गोपीदास, सिरोमनि, ऋषिकेश, व्रजभूषन, मदनमोहन, गोपालदास, सुघर॰राइ, हरिनारायण, वेनीदास और रामदास इत्यादि।

विशेष ज्ञातव्य—यह अष्टछाप कवियों की कविता का संग्रह है। देखने से यह काफी पुराना प्रतीत होता है। वल्लभ सम्प्रदाय के एक धनिक गुजराती सज्जन के पास यह संग्रह था। वे जौहरी थे। कालचक्र से उनकी कला गिर गई और वे मथुरावास करने आ गए। कुछ कालोपरांत उनका परिवार नष्ट हो गया। उनकी विधवा स्त्री अब पंडित केदारनाथ जी के पास रहती है। यह संग्रह वह बेचना चाहती हैं। यदि कोई खरीदार हो तो उनसे लिखा पढ़ी कर ले। संग्रह उत्तम है।

संख्या ३३६. वसन्त के पद, कागज—बाँसी, पत्र—२०८, आकार—११ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१४, परिमाण (अनुष्टुप्)—१२०४, पूर्ण, लिपि—नागरी, पद्य, प्राचीन, प्राप्तिस्थान—श्री पं० जगन्नाथ जी गोस्वामी, आनन्द भवन पुस्तकालय, हरदेव जी का मन्दिर, गोवर्धन।

आदि—श्री राधा वल्लभोजयति ॥ अथ वसन्त के पद लिख्यते ॥ राग वसन्त ॥ मधुरितु श्री वृन्दावन अनन्द न थोर ॥ राजति नागरी नव कुशल किशोर ॥ जूथिका जुगल रुप मंजरी रसाल ॥ विथकित अलि मधु माधवी गुलाल ॥ चम्पक वकुल कुल विविध सरोज ॥ केतकी मेदनी मद मुदित मनोज ॥ रोचक रुचिर है त्रिविध समीर ॥ मुकलित नूतन निंदित पिक कीर ॥ पावन पुलिन धन मंजु निकुंज ॥ किसलय सपन रचित सुषपुंज ॥ मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग ॥ वाजत उपंग वीना वर मुष चंग ॥ मृग मद मलयज कुंकुम अबीर ॥ वंदन अग रसत सुरंगित चीर ॥ गावत सुंदर हरि सरस धमारि ॥ पुलकित षग मृग वहत नवारि ॥ जै श्री हित हरिवंस हंस हंस नी समाज ॥ अैसे ही करहु मिलि जुग जुग राज ॥ राधे देषि वन की वात ॥ रति वसन्त अनन्त मुकलित कुसुम अरु फल पात। वेनु धेनु नंदलाल बोली सुनिय क्यो अरसात ॥ करत कित विलम्ब भामिनि वृथा अवसर जात ॥ लाल मरकत मनि छबीलो तुम जु कंचन गात ॥ बनी श्री हित हरि वंस जोरी, उभय गुनगन मात ॥

अंत—रितुन कौ राजा आयौ हो वसंत ॥ चहुँदिसि प्रगटौ सब ही मन आनन्द ॥ विचित्र सार बनाइ कै पौहोप सुगंध लै लै भरत लाल कौ रटसि विकसन्त ॥ आम्रादिक वृक्ष मोरे कूकिला कूजत भमर वास लेत भयो है मै मन्त ॥ लाल गिरधर पिय मनरी मनावत सुरति अन्त का अन्त ॥ प्यारी के पायन परि कह्यो लाल चलि षेलत वसन्त ॥ मानपत्र झार दूरि करि डारे प्रीत कौ पर लहना ॥ मनोज वेलि उरहि चढ़ावत अधर नव पल्लव वचन रचना कौं होय वन्त ॥ तब हँसि बोली भले जू भूले आये राजाराम प्रभु अलि रस मन्त ॥ ललित वसन्त ललित श्री वृन्दावन ललित निकंज सुहाई ॥ ललित रसिक दोउ छवि सों विहरत ललित रंग वर्षाई ॥ ललित गुलाल चहुँदिसि छायो सोभा

वरनि न जाई ।। ललित जुगल सषि यह सुष देषत तन मन नैन सिराई ।। सरस वसंत सरस वृन्दावन सरस षेलत रह्यो छाई ।। सरस रसिक नागर सुष सागर संग अली सुखदाई कोऊ गावत कोऊ मृदंग बजावत कोऊ नितंत सरसाई ।। अवीर गुलाल उड़ावत छवि सौं जुगल सषी बल जाई ।। इति श्री वसन्त पद ।।

विषय—वसन्तोत्सव पर गाए जानेवाले गीतों का इसमें संग्रह है। भगवान् कृष्ण और ब्रजवासियों का वसन्त मनाने का इसमें सरस वर्णन है। निम्नलिखित कवियों के पद इसमें आए हैं जो राधावल्लभी संप्रदाय के हैं :—१—हित हरिवंश, २—नवल सखी, ३—श्री दास, ४—कृष्णदास हित, ५—दामोदर हित, ६—श्री कमल नैन हित, ७—रसिक दास, ८—गदाधर, ९—व्यास स्वामिनी, १०—नागरीदास, ११—हरिदास, १२—ध्रुवदास हित, १३—विहारिन दास, १४—श्री भट्ट, १५—अग्रस्वामी, १६—अगर अली, १७—नन्ददास, १८—कुम्भनदास, १९—गोविन्द प्रभु, २०—कृष्णसखी, २१—अलि भगवान्, २२—राजाराम, २३—कल्यान, २४—जुगलसखी इत्यादि ।

विशेष ज्ञातव्य—हित हरिवंश जी के संप्रदाय के कवियों की वसन्त सम्बन्धी रचनाओं का यह अद्वितीय संग्रह है। कई पद विशेषता पूर्ण हैं और सर्व प्रथम मिले हैं।

संख्या ३३७ ए. विज्ञप्ति, कागज—मूँजी, पत्र—५९, आकार—८ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१०, परिमाण (अनुष्टुप्)—३७५, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, लिपिकाल—सं० १९२३ वि० = १८६६ ई०, प्राप्तिस्थान—भोगीरामजी, मु०—सेई, पो०—तरोली, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ।। दोहा ।। जिन पद पंकज रजन कों खोजत अजहुँ ईश ।। अज रजनी दिन नमत हुँ श्री वल्लभ जगदीश ।। नमत श्री विट्ठलनाथ कुं नव रस सिंधु सुजान ।। गिरधर लाल वियोग में जिन जन दीनो जान ।। वामे ते कछु श्लोक लिख तक एक अर्थ ।। भाषाहित निज भक्त के विन जाने सव व्यर्थ ।। श्री विट्ठल गिरधरन की छातो बात प्रकास ।। करत परत अध गिरिन कुँकर हे भक्त निवास श्लोक—कियत्पूर्व जीवास्त दुचित कृतिश्चापि कियती भवान् यत्सापेक्षो निज चरणदाने वत भवेत् अतः स्वात्मानं छंतिरुम ममहत्वं व्रजपते समीक्षा स्मन्नेत्रे शिशिर य निजास्याम्वुज रसैः ।। याको अर्थ ।। हे ब्रजपते व्रज भक्तिन के पति जो तुम अपने चरण कमल के दान विषे साधन की अपेक्षा राखोगे तो वड़ो दुःख होयगो कहायतें जो प्रथम तो जीवको तनों बालाग्र को शत भाग ताहु में केवल अनीश्वर जीव सो साधन कहाँ करेगो, अरु ईनकी उत्तम कृति सो कहा जातें आप रीझो ।। ताते आप अपने उपमा हेतहिं जाकी एसो महातम हे जाको एसो जो आत्मा ताकुं देखिकें ।। अपने श्री मुख कमल के रस करिके हमारे नेत्र युगल कुं सीतल करो ।।

अंत—श्लोक। स्त्री रत्न हास प्रभया खिला गेतः चुम्बने स्तत्प्रति विम्वतैश्च ।। तांसां कुटाक्षे चतुर्गीय रुपाणि धत्सेक्षणाशो व्रजेश ।। हे व्रजेश तुम क्षण क्षण में चार युग के रूप कु

धरत हो स्त्री रूपी जो रत्न तिनके जो उज्जवल हास ताकी प्रभा श्री अंग उपरत है तब तो आप सत्ययुग को स्वेत रूप धरत हो अरु श्री अंग के विषै स्त्री को चुम्बन करिकें त्रेता युग को आरक्त रुप धरत हो अरु स्त्री के अंग के प्रति बिम्ब आपके श्री अंग पर परत है तब द्वापर को पीत रुप को धरत हो ॥ अरु उनके कटाक्ष करिकें कलियुग को शाम स्वरूप धरत हो ॥ ऐसे आपको रूप हम कब देखेंगे ॥ दोहा ॥ गुप्त बहुत ए बात है जाकी अनुपम रीत। सुनत श्री विट्ठलनाथ में बाढ़े दुर्लभ प्रीत ॥ श्री विट्ठल पद पद्म में रति उपजेगी जाहे ॥ दुर्लभ इनकी बात मैं रस बाढ़ेगो ताहे ॥ इति श्री विज्ञप्त भाषा सम्पूर्ण ॥ मिति वैसाष बदि ४ संवत् १९२३ का ॥

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के आध्यात्मिक ज्ञान एवं भक्ति का इसमें बहुत सूक्ष्म विवेचन है। मूल संस्कृत ग्रंथ के रचयिता विट्ठलनाथ गोस्वामी हैं। किसी अज्ञातनामा व्यक्ति ने उसकी भाषा की है।

विशेष ज्ञातव्य—खोज में यह ग्रंथ नवीन प्राप्त हुआ है। मूल इसका संस्कृत में है। जिसका व्रजभाषा में किसी अज्ञात व्यक्ति ने अनुवाद किया है। अनुवादक वल्लभ सम्प्रदाय के ही अनुयायी हैं, यह स्पष्टतया मंगलाचरण और अंत के दो दोहों से प्रकट है। मेरा ख्याल है भाषाकार हरिराय जी रहे होंगे।

संख्या ३३७ बी. विज्ञप्तभाषा, कागज—मूँजी, पत्र—२१, आकार—१४ × ६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—२३, परिमाण (अनुष्टुप्)—६३०, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री विहारीलाल ब्राह्मण, श्री नई गोकुल, गोकुल, मथुरा।

आदि—श्री विट्ठलेश्वराय चरणकमलेभ्यो नमः ॥ दोहा ॥ जिन पद पंकज रजन को, खोजत अजहूँ ईश; अज रजनी दिन नमत हू श्री वल्लभ जगदीस। नमत श्री विट्ठलनाथ को नव रस सिन्धु सुजान; गिरिधर लाल वियोग में जिन जन दीनो दान। वामे ते कछु श्लोक ले लिखत यथामति कछू अर्थ, भाषाहित निज भक्त के विन जाने सब व्यर्थ। श्री विट्ठल गिरधरन की छानी बात प्रकाश; करत परत अघ गिरन कूं करहें भक्त निवास ॥ चिन्ता सन्तान हन्तारो यत्पादाम्बुज रेणुवः स्वीया नाता निजा चार्य्य-प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

अंत—स्त्री रत्न हास प्रभया खिलांगेतः चुम्बनै स्तत्प्रति विम्ब तैश्च तासां कटाक्षे चतुर्गीय माना रुपाणि धत सेक्षणशो बृजेश हे व्रजेश तुम क्षण क्षण में चारियुग के रूप कुं धरत हो, स्त्री रूपी जो रत्न तिनके जो उज्वल हांस ताकी प्रभा श्री अंगऊपरत है। तब तो आप सतयुग के विषे स्वेत रूप धरत हो ॥ और स्त्री के अंग के प्रतिविम्ब आपके श्री अंग पर परत हैं ॥ तब द्वापर को पीत रुप को धरत हो और उनके कटाक्ष करिके कलियुग को स्याम स्वरुप धरतो ऐसे आपुको रुप हम कब देखेंगे। दोहा—गुप्त बहुत ए बात है जाकी अनुपम रीति; सुनत श्री विट्ठलनाथ में, बाढ़े दुर्लभ प्रीति। इति श्री विज्ञप्त भाषा सम्पूर्ण।

विषय—वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार वैष्णवों की भक्ति सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन।

विशेष ज्ञातव्य—वल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन तथा व्याख्या करते हुए गोस्वामी श्री विठ्ठलनाथ जी ने 'विज्ञप्ति' नामक ग्रंथ संस्कृत में लिखा। उसीकी सटीक प्रति यह खोज में पहली बार प्राप्त हुई है। टीका किसने की, यह पता नहीं चलता।

संख्या ३३८. विन्ती, पत्र—३, आकार - ८ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—११, परिमाण (अनुष्टुप्)—४१, पूर्ण, रूप—प्राचीन, गद्य-पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री खेमराज जी, स्थान—फतहपुर, पो०—बलरई, जिला—इटावा।

आदि—श्री गणेशाय नमः ॥ विन्ती ॥ प्रथम वर पक्ष की विन्ती ॥ श्लोक ॥ पयशा कमलं कमलेन पयः पयसा कमले कवि भांति सर। मणिनां वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलये न विभाँति करः। शशि नां च निशा निशया च शशी शशि ना निशया च विभाति नभः। भवतां च सभा सभया च भवांन भवता सभया च विभाति वयम् ॥ १ ॥ अर्थ—जल करिकैं कमल की शोभा है ॥ कमल से जल की शोभा है ॥ जल औरु कमल सें ताल की शोभा है ॥ इसी प्रकार मणि सें कंकण की शोभा है ॥ कंकण करिकैं मणि की शोभा है। मणि कंकण करिकैं हाथ की शोभा है ॥ चन्द्रमा करिकैं रात्रि की शोभा है ॥ औरु रात्रि करिकै चन्द्रमा की शोभा है। चन्द्रमा औरु रात्रि करिकैं आकाश की शोभा है ॥ आपसें सभा की शोभा है ॥ सभा करिकै आपु शोभित हैं ॥ सभा औरु आपुसें हम लोग शोभित हैं ॥ १ ॥

अंत—कन्यापक्षे—न कम्पयंति किरिरा निसम्वता वकंथशः। पय पयोधि निर्मलं द्विजेन्द्र भोजगत्रये ॥ अतपितामहो विभुर्भुजंगमे श्वरत्थनो। चकर शब्द धरकं धरा विघात संकया ॥ ४ ॥ हे द्विजों में श्रेष्ठ दुग्ध समुद्र तुल्य अत्यंत निर्मल जो आपका यश है ॥ उसकों सुनकर तीनों लोकों में कौन ऐसा है ॥ जो मस्तक नहीं हिलाता। इसी कारण ब्रह्मा जी नें पृथ्वी गिरने के भय से शेषनाग जी के कान नहीं बनाये ॥ कदाचित जो बनाते तौ आपका यश सुनकर शेष जी शिर कंपाते तौ अवश्य ही गिर पड़ती ॥ ऐसा आपुका यश है ॥ सीया वर रामचन्द्र ॥ × ॥ इति विन्ती उभयपक्ष की ॥ समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

विषय—वर कन्या उभय पक्ष से कही जाने वाली विवाह समय की विनती।

संख्या ३३९. व्रज गीत संग्रह (अनुमान से), कागज—मूंजी, पत्र—६२, आकार—१०½ × ७½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२०५७, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री शंकरलाल समाधानी, श्री गोकुलनाथ जी का मंदिर, गोकुल, मथुरा।

आदि—॥ मानको ॥ राग विहागरो ॥ नवल निकुंज नवल मृग नैनी नवल नेह तेरो लाग रह्योरी। चल चल री सखि तोहि स्याम बुलावत काहे न करत तूं मेरे कह्यो री। सुनि भमिनि एक बात छबीली आज मांग्यो हरि तेरो मह्योरी। छिन छिन विलम करत काहे को तेरो विरह नहि जात सह्योरी। अधर विम्ब राजत कर मुरली राधे राधे ऐसो नाम

कह्योरी ॥ आस करन प्रभु मोहन नागर लेहु प्रेम रस जात बह्योरी ॥ नवल किशोर नवल नागरिया अपनी भुजा स्याम कर धरिया । करत विहार तरुन तनया तट स्याम स्याम कमग रस भरिया । रहि लपिटाय प्रान प्यारे सों मर्कत मणि कुंचन जैसे जरिया । या उपमा को रवि ससि नाहीं कंद्रप कोट वारने करिया । सूरदास वलि वलि जोरी पर नंद नन्दन व्रषभान दुलरिया ॥

अंत—प्रथम दसेरा परम मंगल दिन धरें जवारे गोवर्द्धनधारी । कुम कुम तिलक सुभाल विराजत, अद्भुत सोभा लागत भारी ॥ अद्य सूढ़ भये नन्द के सुत, चले कुदावन महा सुख कारी । मन की अटक जहाँ भए ठाढ़े, चढ़ि अटा व्रखभान कुमारी ॥ चारयो नै भए जब सन्मुख सैन बतावत भुजा पसारी । गोविन्द प्रभु पीय रसिक कुंवर वर, प्रथम समाग मिली पिय प्यारी ॥

विषय—सांझी उत्सव, राधिका का मान, दानलीला के गीत, पत्र १ से २० तक
वामन और वलि, दानलीला, दधि और दूध का
लूटना, नंद के घर धूमधाम, सांझी के गीत, पत्र २१ से ७१ तक
नव विलास, वर्षोत्सव और दशहरा के गीत, पत्र ७२ से ९१ तक
निम्नलिखित भक्त कवियों के पद अधिकतया इस संग्रह में संगृहीत हैं :—(१) हरिदास, (२) आसकरन, (३) सूरदास, (४) गोविन्द प्रभु, (५) रसिकदास, (६) परमानंद दास, (७) नन्ददास, (८) कमलनैन, (९) चतुर्भुज, (१०) धोंधी, (११) विट्ठल गिरधरन, (१२) रसिक प्रीतम, (१३) कुम्भनदास, (१४) माधोदास, (१५) कृष्ण जीवन लछिराम, (१६) रसिक शिरोमणि, (१७) रामदास, (१८) तानसेन, (१९) जगन्नाथ कविराय, (२०) कल्यान, (२१) व्यास स्वामिनी, (२२) भगवान हित रामराय (२३) ब्रजभूषण, (२४) हरिनारायण स्यामदास, (२५) गोपालदास आदि ।

संख्या ३४०. व्रजगीत (अनुमान से), कागज—सनी, पत्र—२२, आकार—१०½×६ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१५, परिमाण (अनुष्टुप्)—४३९, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—मथुरेश जी का मन्दिर, मु०—कन्नावर, पो०—महावन, मथुरा ।

आदि—श्री गणेशाय नमः ऐसो को उदार जगमाँही । विन सेवा जे द्रवत दीनपर राम सरस कोऊ नाहीं । जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पाए मुनि ज्ञानी ॥ सो गति देत गीध सिवरी कौ मन न अधिक कछु मानी । सो सम्पति दस सीस काटि कै रावण सिव सों लीनी । सो सम्पदा विभीषण के हित सकुच सहित प्रभु दीनी । तुलसीदास सब भाँति सकल सुख जो चाहे मन मेरे ॥ जौ भजि राम काम निधि सुन्दर करिहै कृपानिधि तेरे ॥

अंत—ऐसे अनियारे किधौ सामत सुधारे किधौं, गज मत्त वारे किधौं मद्य के छिकारे हैं । कंजल के सारे खुरासान से उतारे, कारीगर के सुधारे ये तो वीर वान धारे हैं ।

घूँघट की ओट तै निकसि करि चोट करै कहै कवि देव आली ये तो नैन वृह के जारे हैं। अैसे जियराने नैन सुन्दरि छिपाई राखी; एक ही मरोर में करोर मारि डारे हैं ॥ दोहा—कवि रंजन गंजन अरिन, भंजन दुष सु विलन्द। चिरजीव किसोरी लाल तुम, आतम श्री गोविन्द ॥

विषय—भक्ति रस पूर्णपद, पत्र १ से १७। शृंगार के सवैया और कवित्त, पत्र १८ से २२ तक। १—तुलसीदास, २—श्री पति, ३—सूरदास, ४—पद्माकर, ५—रघुनाथ, ६—किशोरी लाल, ७—देव, ८—सुन्दर, ९—सुकवि निहाल आदि कवियों के गीत, सवैया और कवित्त संगृहीत हैं।

संख्या ३४१. जमुना चालीसी, रचयिता—अष्टछाप, कागज—बाँसी, पत्र—१८, आकार—९ × ५½ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—१६, परिमाण (अनुष्टुप्)—४०३, अपूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—श्री श्री राधा वल्लभ जी का मंदिर, स्थान व पोष्ट—वाद, जिला—मथुरा।

आदि—राग रामकली। श्री यमुना जस जगत में जोई गावे; ताके आसक्त होइ रहें हैं प्रानपति नयन वेनु रस जु छावें; वेद पुरान ते वात यहे अंगन प्रेम को भेद कोऊ न पावै; कहत गोविन्द श्री यमुने की जापर कृपा सोई श्री वल्लभ कुल सरन आवै; चरण पंकज रेणु श्री यमुने जु देनी; कलिजुग जीव उद्धारन कारन काटत पाप अव धार पैंनी, प्राण पति प्रान सुत आप भक्तन हित सकल सुष की तुम हो जुन सैनी; गोविन्द प्रभु विना रहत नहीं एक दिन अति ही आतुर चंचल जु नैंनी।

अन्त—श्री यमुना जी की आस अव करत है दास; मन क्रम वचन करि जोरि के मांगत निस दिन राखिये अपने पास। जहां जहां पिया अव रसिक वर रसिकन राधा संग मिलि करत हैं रास; दास परमानंद पारा अव व्रज चन्द्र देखि सिराने नैन मन्द हास ॥४०॥ इति श्री यमुना जो चालीसी सम्पूर्ण ॥ यह पुस्तक लिखी सोरों मध्ये श्री नटवर लाल के मन्दिर में गनेसीलाल ब्राह्मण ने। जो वांचे सुने तिनको राम राम ॥

विषय—यमुना जी को स्तुति संबन्धी गीतों का संकलन इस ग्रंथ में किया गया है।

संख्या ३४२. यमुना चालीसी, रचयिता—अष्टछाप, कागज—देशी, पत्र—१७, आकार—५½ × ५ इंच, पंक्ति (प्रतिपृष्ठ)—८, परिमाण (अनुष्टुप्)—२७८, पूर्ण, रूप—नवीन, पद्य, लिपि—नागरी, प्राप्तिस्थान—भोगीराम जी, मु०—सेई, पो०—तरोली, मथुरा।

आदि—श्री कृष्णाय नमः श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥ अथ श्री जमुना जी के चालीस पद लिख्यते ॥ रामकली ॥ पीय संग रंग भरि करि कलोलें ॥ सबन कों सुख देन पीय संग करत सेन चित में जब परत चैन तबही बोले ॥ अति ही विख्यात सब बात इनके

हाथ नाम लेत कृपा करि अतोलें ॥ दरस कर परस कर ध्यान हीय में धरि सदा व्रजनाथ इन संग डोलें ॥ अति ही सुख करन दुख सवन के हरन यही लीनो परन दे जु कोलें ॥ ऐसी जमुने जान करो तुम गुण गान रसिक प्रीतम पाए नग अमोले॥ राग राम कली—स्याम सुख धाम जहां नाम इनके ॥ निस दिना प्राणपति आप हिय में बसें जोई गावे जस भाग तिनके ॥ यही जगत में सार कहत बारम्बार सवन के आधार धन निधन के ॥ लेत यमुने नाम देत अभय पद दान रसिक प्रीतम पीया जो बस इनके ॥

अंत—राग रामकली—श्री यमुने पीया कों बस तुम जु कीने ॥ प्रेम के फन्द में घेर राखे निकर एसेनि मोल नग मोल लीने ॥ तुम जु पठावत जहां जु धावत तिहारे रस रंग में रहत भीने ॥ दास परमानन्द पाए अव व्रज चन्द्र परम उदार जमुने जुदी तीने ॥ राग राम कली—श्री जमुने सुख करनी प्राण पति के ॥ पीया जो भूल जात तिने सुधकर देत कहां लौ कहिये हेत इनके ॥ पीय संग गान करें उमंग जोर सभरें देत तारी कर लेत झटके ॥ दास परमानन्द पाए अब व्रज चन्द्र यही जानत सब प्रेम गति के ॥ इति श्री जमुना जी के चालीस पद सम्पूर्णम् ॥

विषय—गीतों में यमुना जी की शोभा और महिमा वर्णित है । ये गीत अष्टछाप और अन्य अनेक भक्त कवियों के हैं ।

चतुर्थ परिशिष्ट

(अ)—परिशिष्ट १ और २ में आये उन रचयिताओं की नामावली जो प्रस्तुत खोज में नये मिले हैं।

(आ)—पिछले खोज विवरणों में आये उन रचयिताओं की नामावली जिनकी प्रस्तुत खोज में नई रचनाएँ मिली हैं।

(इ)—संग्रह-ग्रंथों (पद-संग्रहों और कवित्त-संग्रहों) में आये उन कवियों की नामावली जो पहले अज्ञात थे तथा जिनका उल्लेख पिछले खोज विवरणों, मिश्रबंधु विनोद और शिवसिंह सरोज में नहीं मिलता।

चतुर्थ परिशिष्ट (अ)

परिशिष्ट १ और २ में आये उन रचयिताओं की नामावली जो प्रस्तुत खोज में नये मिले हैं।

क्रम संख्या रचयिता	परिशिष्ट १ और २ की क्रम संख्या	रचनाकाल ईसवी में	ग्रंथ संख्या	विशेष
१—अलबेली अली	२	१८ वीं	३	वंशीअली के शिष्य
२—अवधप्रसाद	५	१८७२ ई०	३	
३—अह्लाद दास	१	१८ वीं	१	जगजीवनदासजीकेशिष्य
४—आलम (सय्यद चांद सुत)	३	×	१	सय्यद चांद के पुत्र
५—इच्छाराम	४२	×	१	
६—उदय	१०२	१७६५ ई०	४	
७—कमलानंद	५२	×	१	
८—कल्यान	५०	×	१	
९—कल्यान राय	५१	×	१	
१०—किशोरी लाल	५५	×	२	
११—केशव दास	५३	१९ वीं	१	
१२—गंगादास	२५	×	१	
१३—गंगाबाई	२४	१६ वीं	१	
१४—गंगाराम पुरोहित 'गंग'	२६	१८ वीं	१	
१५—गोपेश्वर	२९	१६ वीं	१	३ प्रतियाँ
१६—चतुर्भुजदास	१७	१६ वीं	१	
१७—चित्रसिंह	१८	१८६१ ई०	१	
१८—जगन्नाथ	४३	×	१	
१९—जगन्नाथ शास्त्री	४४	×	१	
२०—जन जयकृष्ण	४५	×	१	
२१—जीवन महाराज की मां	४८	×	१	
२२—तुरसीदास	१००	×	७	
२३—तुलसीदास	१०१	×	१	
२४—दलेलपुरी	१९	×	१	३ प्रतियाँ
२५—दास	२०	×	१	
२६—दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	२३	×	१	

क्रम संख्या रचयिता	परिशिष्ट १ और २ की क्रम संख्या	रचनाकाल ईसवी में	ग्रंथ संख्या	विशेष
२७–देवीदास	२१	×	१	
२८–नवीन कवि	६९	१८३८ ई०	१	२ प्रतियां
२९–नेवल सिंह	७०	×	२	
३०–नौबति राय	६८	×	१	
३१–पठान मिश्र	७६	×	१	
३२–परशुराम	७३	×	१	
३३–परशुराम	७४	×	१३	
३४–प्रवीनराय	७५	१८२४	१	
३५–बचऊदास	६	१६ वीं	१	
३६–बदलीदास	७	१८ वीं	१	
३७–बनारसी	१०	१६९३ ई०	४	
३८–बलदेव सनाढ्य	८	१७५४ ई०	१	
३९–बलराम जी	९	×	१	
४०–भगवानदास	११	×	१	३ प्रतियां
४१–भवानीलाल	१२	१७८३ ई०	१	
४२–भीखमदास (अनंतदास)	१४	१९ वीं	१४	
४३–माधव	५८	×	१	
४४–माधवराय	५९	×	१	
४५–मिट्ठूलाल	६३	×	१	
४६–मिश्र	६२	×	१	
४७–मुकुंददास	६५	×	१	
४८–मोतीलाल	६४	×	१	
४९–यमुनादास	१०७	×	१	
५०–रघुबरदास	७८	१७४६ ई०	१	
५१–रत्नदास	८८	×	१	
५२–रसिक गोविंद	८६	×	१	
५३–रसिकदास	८५	×	२	
५४–रसिक सुन्दर	८७	१८५२ ई०	१	२ प्रतियां
५५–राघवानन्द स्वामी	७९	×	१	
५६–रामजी भट्ट	८१	१७८६ ई०	१	
५७–रामदास	८०	×	१	२ प्रतियां
५८–रामप्रसाद	८२	×	१	
५९–रावकृष्ण	८३	×	२	

क्रम संख्या रचयिता	परिशिष्ट १ और २ की क्रम संख्या	रचनाकाल ईसवी में	ग्रंथ संख्या	विशेष
६०–रिसालु गिरि	८६	१६४७ ई०	१	
६१–लालजी र[illegible]ान	५६	×	१	
६२–वंशी अली	१०३	१८ वीं	२	
६३–(जन) विक्रम	१०४	१८ वीं	१	२ प्रतियां
६४–वीरभद्र	१०५	×	१	
६५–शिवलाल	९२	×	१	२ प्रतियां
६६–शुक्राचार्य	९९	×	१	
६७–सहदेव	९०	×	१	
६८–सुंदरदास	९६	×	१	
६९–सुख सखी	९५	×	२	
७०–सुवंशराय	६८	१६९२ ई०	१	
७१–सूरतराम जन	९७	×	३	
७२–सोहन	६४	×	१	
७३–हरीदास वेन	३७	१८२२ ई०	२	
७४-हस्ति	३९	×	२	३ प्रतियां

—•—

चतुर्थ परिशिष्ट (आ)

पिछले खोज विवरणों में आये उन रचयिताओं की नामावली जिनकी प्रस्तुत खोज में नई रचनाएँ मिली हैं।

क्रम सं० रचयिता	परिशिष्ट १ और २ की क्रम संख्या	रचनाकाल ईसवी में	ग्रंथ संख्या	विशेष
१—आलम	४	१६ वीं	१	
२—कबीर	४९	१५ वीं	२६	
३—खड्गदास	५४	×	५	
४—गरीबदास	२७	१७ वीं	१	
५—गुसाईं जी	३२	१६ वीं	३	
६—गोकुलनाथ	२८	१६ वीं	१	
७—गोरखनाथ	३०	१४ वीं	२	
८—गोविंद रसिक या अलि रसिक गोविंद	३१	१८ वीं	१	
९—ग्वाल कवि	३३	१९ वीं	७	एक की ३ प्रतियाँ
१०—चरण दास	१६	१८ वीं	४	
११—जनराज	४६	१८ वीं	१	
१२—झामदास	४७	१७७४ ई०	१	
१३—दूलनदास	२२	१८ वीं	१	
१४—नंददास	६७	१६ वीं	१	
१५—परमानन्द दास	७२	१९ वीं	२	
१६—पहलवान दास	७१	१७९५ ई०	१	
१७—प्रभुदयाल	७७	१६ वीं	२	
१८—भीखजन	१३	१७ वीं	१	
१९—महादेव	६०	×	१	
२०—मातादीन शुक्ल	६१	१९ वीं	१	
२१—मुनिमान जी	६६	१७ वीं	१	
२२—रसखान	८४	१६ वीं	१	
२३—लेखराज सिंह	५७	१६ वीं	१	
२४—विहारीलाल अग्रवाल	१५	×	१	

क्रम सं० रचयिता	परिशिष्ट १ और २की क्रम संख्या	रचनाकाल ईसवी में	ग्रंथ संख्या	विशेष
२५—व्रजवासी दास	१०६	१८ वीं	१	
२६—शिवनारायण	९३	१८ वीं	१	
२७—सीताराम	६१	१९ वीं	१	
२८—हजारी दास	४०	१९ वीं	२	
२९—हजारी लाल	४१	×	१	
३०—हरिदास जी	३५	१६ वीं	१	
३१—हरिदास जी	३६	१६ वीं	९	
३२—हरिबक्स बिसेन	३४	१९ वीं	१	
३३—हरिराय	३८	१६ वीं	६	

———

चतुर्थ परिशिष्ट (इ)

संग्रह-ग्रंथों (पद-संग्रहों और कवित्त-संग्रहों) में आये उन कवियों की नामावली जो पहले अज्ञात थे तथा जिनका उल्लेख पिछले खोज-विवरणों, मिश्रबंधु विनोद और शिवसिंह सरोज में नहीं मिलता।

१—अमान
२—आसानंद
३—उदय
४—उदय सखी
५—कवि हरी
६—किशोरी मोहन
७—कृष्णजीवन हरिकल्यान
८—गजाधर
९—गजाधर मिश्र
१०—गिरिधर अली
११—गुनवंत
१२—गोकुलदास
१३—जगन्नाथ कविराज
१४—जय श्री हित
१५—जादवेंद्र
१६—जानकीदास
१७—जीवन गिरिधर राय
१८—जोरीलाल
१९—तान तरंग
२०—नंदुराय
२१—नगधरदास
२२—नरसैया
२३—नरहरिया
२४—नारायण नाथ
२५—पिय विहारी
२६—प्राण जीवन
२७—(जन) भगवान
२८—मधुमंगल
२९—मुरली मनोहर
३०—मौजी करन
३१—रघुनंदनदास
३२—रघुनंदन प्रभु
३३—रसिक निधि
३४—राधेदास
३५—रूप माधुरी
३६—रूप कुँवरी
३७—लाड़ली सखी
३८—विठ्ठल अगरदास
३९—विष्णु स्वामी
४०—व्रजजन
४१—व्यास रसिक
४२—श्रीकर
४३—सदारंग
४४—स्यामा स्याम
४५—सोभू जन
४६—हरिनारायन घनश्याम
४७—हरिराय 'जन'
४८—हित अली
४९—हित जुल करन
५०—हीरापति

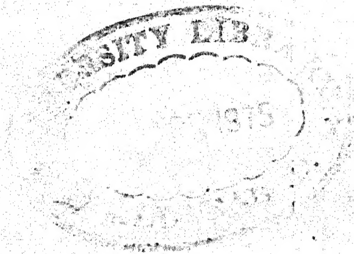
———

ग्रंथकारों की अनुक्रमणिका

ग्रंथकारों के सामने की संख्याएँ परिशिष्ट १ और २ में दी गई क्रम संख्याएँ हैं

ग्रंथों की अनुक्रमणिका

ग्रंथों के सामने की संख्याएँ परिशिष्ट १, २ और ३ में दी गई क्रम संख्याएँ हैं।



SITY LIB